सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय

२३

(मार्च १९२२–मई १९२४)

प्रकाशन विभाग
ना और प्रसारण मन्त्रालय

दिसम्बर १९६७ (पौष १८८९)

साढ़े सात रुपये

निदेशक, प्रकाशन विभाग, दिल्ली–६ द्वारा प्रकाशित
और जीवणजी डाह्याभाई देसाई, नवजीवन प्रेस, अहमदाबाद १४ द्वारा मुद्रित

भूमिका

इस खण्डमें ४ मार्च, १९२२ से ७ मई, १९२४ तककी अवधिसे सम्बन्धित प्राप्त सामग्री आ जाती है। इस अवधिमें लगभग २ वर्ष गांधीजी यरवदा जेलमें रहे। भारतमें यह उनका पहला कारावास था। उस कालमें कौंसिल-प्रवेशको लेकर कांग्रेसमें फूट पड़ गई और देशके अनेक हिस्सोंमें हिन्दुओं और मुसलमानोंके सम्बन्ध भी तनाव-पूर्ण हो गये। इसलिए जब फरवरी १९२४ में अपैंडिसाइटिसके आपरेशनके बाद गांधीजी-को समयसे पहले रिहा करना जरूरी हो गया, तब उन्होंने बाहर आकर देखा कि देशकी राजनीतिक परिस्थिति और सर्वसामान्य वातावरण उनकी गिरफ्तारीके समयसे भी ज्यादा मन गिरा देनेवाला है। कारावासकी अवधिमें उनके मन और शरीरको थोड़ा आराम मिल गया था और इस आवासका उपयोग उन्होंने चिन्तन और ध्यानकी दिशामें किया। गिरफ्तार होनेसे कुछ महीने पहले उनका मन परेशान था। जेलमें उन्होंने जल्दी ही अपनी स्वाभाविक शान्ति और गम्भीरताको पुनः प्राप्त कर लिया।

मार्च १९२२ के प्रारम्भिक दिनोंमें ही गांधीजीने अपनी गिरफ्तारीका अन्दाज लगा लिया था और वे उसे लगभग स्वागत करने योग्य मानने लगे थे। ७ मार्च, १९२२ को टी० प्रकाशम्के नाम लिखे गये अपने पत्रमें उन्होंने कहा: "लोग यह भी कह रहे हैं कि ७ दिनके अन्दर-ही-अन्दर मेरे सिरका बोझ उतर जायेगा।" (पृष्ठ २०) गिरफ्तारीके बाद दीनबन्धु एन्ड्रयूजको उन्होंने लिखा: "आखिर मुझे शान्ति मिल रही है। वह तो मिलनी ही थी।" (पृष्ठ ९९) मथुरादास त्रिकमजीको उन्होंने लिखा: "मेरी शान्तिका पार नहीं है।" (पृष्ठ १००) लगातार शारीरिक गति-विधिका बोझ उतना नहीं था, जितना बोझ था एक वशसे बाहर परिस्थितिमें सही निर्णय करते चले जानेका; शायद गांधीजीकी आन्तरिक शक्तियोंपर इस बातका सर्वाधिक प्रभाव पड़ा। बार-बार और मनःपूर्वक शान्तिके लिए की गई उनकी अपीलों-के बाद भी जब देशमें जगह-जगह हिंसा भड़क उठी, तो उससे गांधीजी बिलकुल हिल गये। अदालतके सामने अपने मुकदमेके दौरान उन्होंने इन हिंसक काण्डोंकी जिम्मेदारीको तत्परतासे स्वीकार किया। उन्होंने न्यायाधीशसे कहा: "रात-दिन सोते-जागते मैंने इसपर गम्भीरतासे विचार किया है और उसके बाद इसी निष्कर्षपर पहुँचा हूँ कि चौरीचौराके नृशंस अपराधोंकी या बम्बईके पागलपन-भरे कारनामोंकी जिम्मेदारीसे अपने-आपको अलग रखना मेरे लिए असम्भव है।" (पृष्ठ १२३) उन्हें लोगोंके इस पागलपनपर जितना दुःख था, सरकारके कारनामोंके प्रति भी उससे कम क्षोभ नहीं था। उन्होंने न्यायाधीशसे कहा कि आखिरकार कर्त्तव्यका निश्चय तो करना ही पड़ता है। "मैं या तो ऐसी व्यवस्थाको स्वीकार कर लेता, जिसने मेरी समझमें मेरे देशको अपूरणीय क्षति पहुँचाई है या फिर मैं यह खतरा मोल ले लेता कि मेरे देशवासी जब मेरे मुंहसे सचाईको समझेंगे तो उनमें रोषका उन्माद उमड़ सकता है।" (पृष्ठ १२३) अपने लिखित बयानके प्रारम्भमें उन्होंने जो-कुछ कहा था,

उसका अन्त इस तरह किया : "मेरा पूरा बयान सुनकर शायद आपको इस बातका अनुमान हो जायेगा कि मेरे भीतर ऐसा क्या-कुछ उमड़ रहा है जिसके कारण एक अच्छा-भला आदमी बड़ेसे-बड़ा खतरा मोल लेनेको तैयार हो सकता है।" (पृष्ठ १२४) उन्हें जिन बातोंके होनेका भय था, जब वे सामने आ गई तो उनका सिर लज्जासे झुक गया और उन्होंने कहा : "इस समय सत्यका मुझे जितना खयाल है, उतना एक वर्ष पहले न था; इस समय मैं अपनी अल्पताको जितना अनुभव कर रहा हूँ, उतना एक साल पहले नहीं कर पाता था।" (पृष्ठ १०४)

किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि गांधीजीने अपने मनमें हार मान ली थी। फरवरीके शुरूमें चौरीचौरा हिंसाकाण्डके बाद गांधीजीने बारडोली ताल्लुकेमें प्रारम्भ किया जानेवाला सविनय अवज्ञा आन्दोलन अनिश्चित कालके लिए स्थगित कर दिया और असहयोग आन्दोलनमें निहित रचनात्मक कार्यक्रमपर अपनी शक्ति केन्द्रित करना प्रधान-कार्य मान लिया, ताकि सविनय अवज्ञाके लिए आवश्यक वातावरण तैयार किया जा सके। पत्रों और लेखोंके माध्यमसे उन्होंने लोगोंसे कहा कि यदि मैं गिरफ्तार कर लिया जाता हूँ, तो लोगोंको पूरी तरह शान्त रहना चाहिए और मेरे कारावासमें रहते हुए रचनात्मक कार्यक्रमको पूरे उत्साहके साथ अंजाम देते रहना चाहिए। कांग्रेस कार्यकारिणीके जिस प्रस्ताव द्वारा सविनय अवज्ञा आन्दोलन मुल्तवी किया गया था, उसकी आलोचना करनेवाले सज्जनोंसे उन्होंने प्रार्थना की कि वे केवल नीतिके तौरपर स्वीकृत अहिंसामें निहित अभिप्रायको पूरे मनसे स्वीकार करें। "हमारी अहिंसा बलवानकी अहिंसा भले न हो, पर उसे सच्चे लोगोंकी अहिंसा जरूर होना चाहिए।" (पृष्ठ २५)

मुकदमेके दौरान गांधीजीको ब्रिटिश शासनके नैतिक औचित्यको चुनौती देनेका अवसर मिल गया और इस अवसरका उन्होंने पूरी शक्तिके साथ उपयोग किया। अपने एक लिखित बयानमें उन्होंने बताया कि वे एक कट्टर राजभक्त और सहयोगीसे राजनीतिक असन्तोषके हठी प्रचारक और असहयोगी क्योंकर बन गये। (पृष्ठ १२४) उन्होंने कहा कि यद्यपि यह बात तो मैंने दक्षिण आफ्रिकामें ही समझ ली थी कि भारतीय होनेके नाते मैं सारे व्यक्तिगत अधिकारोंसे वंचित हूँ, किन्तु वे उन दिनों ऐसा मानते थे कि यह ब्रिटिश शासन-पद्धतिकी एक विकृति-मात्र है और मूलतः वह पद्धति अच्छी ही है। अपने सार्वजनिक जीवनमें २५ वर्षतक वे इसी विश्वासके आधारपर काम करते रहे। पहला धक्का तो उनको १९१९ में रौलट कानूनसे लगा और इसके बाद जब जलियाँवाला बाग-हत्याकाण्डको राज्यके अधिकारियोंने नजर-अन्दाज कर दिया तथा खिलाफतके मामलेपर भारतीय मुसलमानोंको दिये गये वचनको साम्राज्यीय सरकारने जब भंग किया, तब ब्रिटिश राज्यकी ईमानदारीपर से गांधीजीका भरोसा पूरी तरह उठ गया। वे इस अनुभवके बाद अंग्रेजोंके बारेमें दूसरी तरहसे सोचने लगे और उन्हें मजबूरन मानना पड़ा कि ब्रिटिश राज्यने राजनीतिक तथा आर्थिक दोनों दृष्टियोंसे भारतको इतना असहाय बना दिया है, जितना वह पहले कभी नहीं था। उन्होंने कहा, "मुझे तो इस बातमें तनिक भी सन्देह नहीं है कि यदि हम सबके ऊपर

ईश्वर है तो उसके दरबारमें इंग्लैंडवालोंको और भारतके शहरी लोगोंको इस बातके लिए जवाब देना पड़ेगा। मेरे खयालसे तो मानव-जातिके विरुद्ध किये गये इस अपराधकी शायद ही कोई मिसाल मिले। (पृष्ठ १२६) उन्होंने कहा कि यद्यपि किसी विशेष प्रशासकके प्रति मेरे मनमें कोई द्वेष-भाव नहीं है, किन्तु जिस सरकारने कुल मिलाकर भारतका इतना अहित किया है जितना कि पहलेके किसी भी तन्त्रने नहीं किया था, उसके प्रति अप्रीतिकी भावना रखना मैं श्रेयकी बात मानता हूँ। अन्तमें उन्होंने न्यायाधीशकी विवेक-बुद्धिसे अपील करते हुए कहा: "इसलिए, न्यायाधीश महोदय, अब आपके सामने यही एक रास्ता है कि जिस कानूनपर अमल करनेका काम आपको सौंपा गया है, उसे यदि आप अन्यायपूर्ण मानते हों और मुझे सचमुच निर्दोष समझते हों, तो आप अपना पद त्याग दें और इस प्रकार अन्यायमें शरीक होनेसे बचें। इसके विपरीत यदि आपका यह मत हो कि जिस तन्त्र और जिस कानूनको चलानेमें आप मदद कर रहे हैं, वे इस देशकी जनताके लिए हितकर हैं और इसलिए मेरी प्रवृत्तियाँ सार्वजनिक कल्याणके लिए हानिकारक हैं, तो आप मुझे कड़ीसे-कड़ी सजा दें।" (पृष्ठ १२८)

जेलमें रहते हुए भी गांधीजीने विदेशी शासन-पद्धतिसे अपना युद्ध एक भिन्न स्तरपर जारी रखा। जेल-जीवनके सामान्य नियमोंको तो उन्होंने खुशी-खुशी मान लिया, किन्तु हुक्कामोंके ऐसे हरएक कामका उन्होंने विरोध किया, जो कैदीकी हैसियतसे उनके अधिकारोंको आघात पहुँचाते थे अथवा जिनमें मानवीयताके विचारोंकी अवहेलना होती थी। यरवदा जेलसे हकीम अजमल खाँके नाम लिखी गई उनकी पहली ही चिट्ठी सरकारने रोक ली और विरोधमें गांधीजीने अधिकारियोंको अपने इस निर्णयकी सूचना दी कि वे कैदीकी हैसियतसे प्राप्त पत्र लिखनेके अपने अधिकारका उपयोग ही नहीं करेंगे। वे जिन पत्र-पत्रिकाओंको पढ़ना चाहते थे, उनका जेलमें मँगाया जाना भी अस्वीकृत कर दिया गया। गांधीजीने इस तरहके निर्णयोंके विषयमें जेलके सुपरिटेंडेंटको लिखा कि इन्हें "मैं न्यायाधीश द्वारा दी गई सजाके अतिरिक्त एक सजा मानता हूँ।" (पृष्ठ १७४) उन्होंने कहा: "सही हो या गलत, मेरी यह मान्यता है कि कैदीके नाते मेरे भी कुछ अधिकार हैं। . . . मैं कोई मेहरबानी नहीं चाहता। और यदि इन्सपेक्टर-जनरलको यह खयाल हो कि मुझे कोई भी चीज या सुविधा मेहरबानीके तौरपर दी गई है, तो मैं चाहता हूँ कि वह वापस ले ली जाये।" (पृष्ठ १७४) जेलमें जो लोग गांधीजीसे मिलने आते थे, उनको लेकर अधिकारियोंका व्यवहार गांधीजीको और भी अखरा। मिलनेके लिए दी जानेवाली दरखास्तोंपर ठीक विचार नहीं किया जाता था जिसके फलस्वरूप गांधीजीको विरोध करना पड़ा: ". . .तो मुझे यह बात बता दी जानी चाहिए कि मैं किससे भेंट कर सकता हूँ और किससे नहीं ताकि निराशासे बचा जा सके और अपमानकी सम्भावनाको भी टाला जा सके।" और "प्रतिष्ठा और स्वाभिमानके विषयमें मेरे अपने कुछ विचार हैं; मैं चाहूँगा कि यदि हो सके तो सरकार उन्हें भी समझ ले और उनकी कद्र करे।" (पृष्ठ १७२) और "इसलिए मेरा आग्रह है कि सरकार इस पत्रका जल्दी, सीधा-सादा और कपटरहित उत्तर दे।" (पृष्ठ १७२)

कुछ अन्य बातोंको लेकर भी अधिकारियोंके साथ गांधीजीको लिखा-पढ़ी करनी पड़ी और उन्होंने अधिकारियोंसे अधिक समझदारी बरतनेकी अपील की। जिन राजनीतिक कैदियोंको कठोर कारावासकी सजा दी गई थी, गांधीजीने चाहा कि उनको भी वे विशेष सुविधाएँ दी जायें जो उन्हें दी जा रही हैं। अब्दुल गनी नामक कैदीके विषयमें उन्होंने प्रार्थना की कि उसे उसी तरह अपने मनकी खुराक दी जाये जिस तरह स्वयं उन्हें दी जा रही है। मुलशीपेटाके कैदियोंकी ओरसे उन्होंने मानवताके आधारपर जेलके प्रशासनमें बड़ी व्यग्रताके साथ हस्तक्षेप करनेका प्रयत्न किया। उन्होंने इन कैदियोंसे मिलनेकी अनुज्ञा चाही जिसका उद्देश्य यह था कि वे उन्हें जेलका अनुशासन माननेके विषयमें समझायेंगे और अधिकारियोंको अनुशासनकी सजाके रूपमें बेंतकी सजा आदि देनेका मौका न आने देंगे। इस सम्बन्धमें अधिकारियोंके नाम लिखे गये एक पत्रमें गांधीजीने इस बातकी ओर भी इशारा किया कि यदि बेंतकी सजा दुबारा देनेकी परिस्थिति न आनेकी दिशामें उन्हें अपने साथियोंपर प्रभाव डालनेका अवसर नहीं दिया जाता, तो वे उपवासतक कर सकते हैं। गवर्नरने इसे एक धमकीके तौरपर लिया, किन्तु बादमें उसने गांधीजीकी बात मान ली और कमसे-कम इस मामलेमें हल अच्छा ही निकला।

अधिकारियोंके साथ की जानेवाली यह लिखा-पढ़ी बहुत प्रचुर थी, किन्तु गांधीजी मुख्य रूपसे यही नहीं करते रहे। जेलमें इच्छा न रहते हुए भी उन्हें जो अवकाश मिल गया था, उसका उपयोग उन्होंने मुख्यतया अध्ययन करके अपनी बौद्धिक आवश्यकताओंको पूरा करनेमें किया। १९२२-२३ के दौरान जेलमें वे जो दैनन्दिनी लिखते रहे, उसमें अधीत पुस्तकोंका उल्लेख है और उससे विषयोंकी जो विविधता, अध्ययनकी गति और उसकी जो गहराई सूचित होती है, वह विश्वविद्यालयके किसी परिश्रमी विद्यार्थीके लिए भी ईर्ष्याका विषय हो सकती है। आध्यात्मिक और धार्मिक ग्रन्थोंके अतिरिक्त इस सूचीमें "हिस्ट्री ऑफ द डिक्लाइन ऐंड फॉल ऑफ द रोमन एम्पायर", किपलिंगकी "द फाइव नेशन्स", "बैरक रूम बैलेड्स" और "द सैकंड जंगल बुक", जूल्स वर्नकी "ड्रॉप्ड फ्रॉम द क्लाउड्स", मैकॉलेकी "लेज़ ऑफ एन्शेंट रोम" और शॉकी "मैन ऐंड सुपरमैन" जैसी अप्रत्याशित पुस्तकोंके नाम भी देखनेको मिलते हैं।

जेलमें गांधीजीको दक्षिण आफ्रिकामें सत्याग्रहका इतिहास भी सोचकर लिखनेका समय मिल गया। जेलसे बाहर आते-आते तक वे उसके लगभग ३० अध्याय लिख चुके थे, जो बादमें क्रमशः 'नवजीवन' और 'यंग इंडिया' में प्रकाशित होते रहे।

जेलमें उनकी लिखने और पढ़नेकी विपुलताको देखकर कोई यह न समझे कि वे एकान्तवास ही करते रहे। लोगोंमें और लोगोंके कामोंमें उन्हें सहज दिलचस्पी थी और इसलिए उन्होंने जेल-जीवनको आँख खोलकर देखा, कान खोलकर सुना और यह सब इतनी बारीकीसे कि रिहाईके बाद उन्होंने जेल-अधिकारियों, वार्डरों, सफैयों और कारावासके सर्वसाधारण वातावरणको लेकर विस्तृत संस्मरण लिखे।

जो व्यक्ति सदा दूसरोंकी चिन्तामें डूबा रहता था, कारावासके समयका उसका चित्र उस गम्भीर बीमारीकी बातका उल्लेख किये बिना पूरा नहीं हो सकता, जिसके

कारण शल्य-चिकित्सा तक आवश्यक हो गई। इस अवसरपर उन्होंने जो रुख अपनाया और जिस प्रकारका सुव्यवस्थित आचरण किया, उससे उनके मनकी अनुपम उदारता, शौर्य तथा स्नेहका परिचय मिलता है।

५ फरवरी, १९२४को गांधीजी जेलसे रिहा हुए। ड्रू पियर्सनके प्रश्नोंका उत्तर देते हुए (पृष्ठ २०९-१२) उन्होंने स्पष्ट किया कि एकान्तमें रहते हुए विचार करनेपर उनके धार्मिक, राजनीतिक और आधुनिक सभ्यता सम्बन्धी विश्वास परिपक्व ही हुए हैं। किन्तु उन्होंने यह भी स्वीकार किया कि देश १९२०-२१ में उनके सन्देशको सुननेके लिए जितना तैयार था, कदाचित् १९२४ में वह उतना तैयार नहीं रहा। ७ फरवरीको मुहम्मद अलीके नाम अपने पत्रमें उन्होंने कहा : "यद्यपि मैं देशकी मौजूदा हालतके बारेमें बहुत कम जानता हूँ, फिर भी मेरे पास यह समझ सकनेके लिए पर्याप्त जानकारी है कि देशकी समस्याएँ बारडोलीके प्रस्तावोंके समय जितनी जटिल थीं, आज उससे भी अधिक जटिल हो गई हैं।" (पृष्ठ २१५) असहयोगके जमानेमें जो हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य स्थापित हुआ था, बार-बार होनेवाले साम्प्रदायिक दंगोंसे उसके टूटनेका खतरा बढ़ गया और कौंसिल-प्रवेशकी अनुमतिके द्वारा कांग्रेसका असहयोगका सिद्धान्त भी मुल्तवी कर दिया गया। मोतीलाल नेहरू और देशबन्धु दासके नेतृत्वमें कौंसिल-प्रवेशके इच्छुक सज्जनोंने कांग्रेसके अन्तर्गत एक नया दल बनाया जो 'स्वराज्य दल'के नामसे प्रख्यात हुआ। जो लोग अपनेको अपरिवर्तनवादी कहते थे, उन्होंने इसका बहुत विरोध किया। स्वराज्य दलके नेताओंके प्रति गांधीजीके मनमें बड़ा आदर था और इसलिए वे उनसे सम्बन्ध-विच्छेद नहीं करना चाहते थे। वे उनके कार्यक्रमके विषयमें बिना सोचे-समझे कुछ कहना भी नहीं चाहते थे, इसलिए उन्होंने परिस्थितिका अध्ययन किया और स्पष्ट शब्दोंमें स्वराज्यवादी दलके कार्यक्रमसे अपनी असहमति प्रकट की और कहा कि स्वराज्यकी दिशामें इस कार्यक्रमने बाधा ही डाली है और उसके द्वारा अपनाई गई अड़ंगा-नीतिमें हिंसाकी गन्ध है। (पृष्ठ ४४४-४७) किन्तु उन्होंने कौंसिल-प्रवेशको एक तथ्यके रूपमें स्वीकार कर लिया। उन्होंने माना कि वह कदाचित् एक आवश्यक बुराई है और यह मानकर कांग्रेसके अपरिवर्तनवादी और स्वराज्यवादी दलोंमें सहयोग उत्पन्न करनेका प्रयत्न किया।

रिहाईके बाद अन्य क्षेत्रीय समस्याओंपर भी गांधीजीको विचार करना पड़ा। इनमें त्रावणकोरके अस्पृश्य समाजों द्वारा हिन्दू मार्गोपर आवागमनको लेकर किया गया वाइकोम सत्याग्रह, (पृष्ठ ४६९-७२) सरकार द्वारा नाभा नरेशके विरुद्ध उठाया गया कदम (पृष्ठ २४३-४९) तथा सिखों द्वारा गुरुद्वारोंमें सुधार-सम्बन्धी आन्दोलन (पृष्ठ २२५, २४३-४९) प्रमुख थे। गांधीजीने इन समस्याओंपर अपने विचार आसानीसे निश्चित करके सत्याग्रहके आधारभूत सिद्धान्तोंके साथ उनका मेल बैठाते हुए अपनी सलाह दी। (पृष्ठ ५०७-१०)

'यंग इंडिया' और 'नवजीवन'के सम्पादकत्वको पुनः हाथमें लेते ही उन्होंने फिर एक बार अपनी राजनीतिक गति-विधियोंके आध्यात्मिक आधारकी बात जोर देकर कही। "यंग इंडियाके नये और पुराने पाठकोंसे", (३-४-१९२४) नामक लेखमें

उन्होंने कहा : "मेरे पास कोई नया कार्यक्रम नहीं है।. . . मैं भारतकी आजादीके लिए जी रहा हूँ और उसीके लिए मरूँगा, क्योंकि यह सत्यका ही अंग है। स्वतन्त्र भारत ही उस सच्चे ईश्वरकी पूजा करनेके योग्य हो सकता है।. . . .परन्तु मेरी स्वदेशभक्ति मुझे दूसरे देशोंकी सेवासे विमुख नहीं करती। इसमें किसी दूसरे देशको हानि पहुँचानेकी तो कोई बात ही नहीं है, बल्कि इसीमें सभीके सच्चे लाभके लिए जगह है।" (पृष्ठ ३६३) उसी अंकमें "मेरा जीवन-कार्य" नामक एक दूसरे लेखमें उन्होंने कहा : "मैं अपने देशकी जो सेवा कर रहा हूँ, वह तो मेरी उस साधनाका एक अंग है जिसके द्वारा मैं पांचभौतिक देह-धारणसे अपनी आत्माको मुक्त करना चाहता हूँ। इस दृष्टिसे मेरी देश-सेवा केवल स्वार्थ-साधना समझी जा सकती है। मुझे इस नाशवान ऐहिक राज्यकी कोई अभिलाषा नहीं है; मैं तो ईश्वरी राज्य — मोक्षको पानेका प्रयत्न कर रहा हूं। . . . इस प्रकार मेरी देशभक्ति और कुछ नहीं, अपनी चिर-मुक्ति और शान्ति-लोककी मंजिलका एक विश्राम-स्थान है। इससे यह मालूम हो जाता है कि मेरे समीप धर्म-शून्य राजनीति कोई वस्तु नहीं है। राजनीति धर्मकी अनुचरी है। धर्महीन राजनीतिको एक फाँसी ही समझा जाये, क्योंकि उससे आत्मा मर जाती है।" (पृष्ठ ३७३) और धर्मसे उनका अर्थ हिन्दू धर्म नहीं था, बल्कि "मेरा अभिप्राय उस धर्मसे है . . . जो मूलभूत सत्य है; जो संसारके समस्त धर्मोंका आधार-स्वरूप है (पृष्ठ २१०)। पृष्ठ १५८-५९ पर सत्य और असत्यमें बताये गये भेद तथा पृष्ठ १६२ पर बोहमनकी 'सुपर सेंसुअल लाइफ' से लिए गये उद्धरण और पृष्ठ ३८४ पर मोक्ष और स्वर्गसे सम्बन्धित टिप्पणियाँ इस बातको भली-भाँति व्यक्त कर देती हैं कि वे भीतरी और बाहरी, दोनों प्रकारके जीवनको स्वच्छ रखनेके प्रति कितने जागरूक थे और इन बातोंको लेकर कितना गहरा विचार करते थे।

एस्थर मेननको उसके विवाहके अवसरपर लिखते हुए (पृष्ठ २२-२३) उन्होंने पारिभाषिक शब्दावलीसे दूर रहकर परम्परागत हिन्दू धर्मके उस धार्मिक विचारका स्वरूप चित्रित किया है जो मोक्षका दाता है और जिसकी जड़ें कर्त्तव्यकी भूमिमें हैं। सत्य और उसके उन विविध पहलुओंके प्रति जो साधकके सामने उपस्थित होते हैं, उनकी श्रद्धा आजन्म उनकी सार्वजनिक जीवनकी आधारशिला रही। ट्रान्सवालके किसी ईसाई सज्जनको पत्र लिखते हुए भी उन्होंने लगभग यही बात कही : "मुझे अपना कोई स्वार्थ-साधन नहीं करना है और न मेरी ऐसी कोई सांसारिक महत्त्वाकांक्षा है जिसकी पूर्ति करनी हो। ईश्वरका साक्षात्कार ही मेरे जीवनका एकमात्र उद्देश्य है, और मैं दुनियाको जितना ही अधिक देखता हूँ तथा उसके बारेमें जितने अधिक अनुभव होते जाते हैं, उतना ही मैं महसूस करता हूँ कि इस प्रेरणाको ग्रहण करनेका तरीका जुदा-जुदा हुआ करता है। (पृष्ठ २८५)

आभार

प्रस्तुत खण्डकी सामग्रीके लिए हम, साबरमती आश्रम संरक्षक तथा स्मारक न्यास (साबरमती आश्रम प्रिजर्वेशन ऐंड मेमोरियल ट्रस्ट) और संग्रहालय, नवजीवन ट्रस्ट, गुजरात विद्यापीठ ग्रन्थालय, अहमदाबाद; गांधी स्मारक निधि व संग्रहालय, राष्ट्रीय अभिलेखागार, (नेशनल आर्काइव्ज ऑफ इंडिया), नई दिल्ली; बम्बई सरकार-गृहविभाग; तथा श्री छगनलाल गांधी, अहमदाबाद; श्री नारणदास गांधी, राजकोट; श्री नारायण देसाई, बारडोली; श्रीमती राधाबहन चौधरी, कलकत्ता; तथा 'ट्रायल ऑफ गांधीजी', 'ड्रिंक एड ड्रग इविल इन इंडिया', 'बापुना पत्रो–४; मणिबेन पटेलने', 'बापुनी प्रसादी', 'बालपोथी', 'माई डियर चाइल्ड', 'श्रेयार्थीनी साधना', 'सेवन मन्थ्स विद महात्मा गांधी', 'स्टोरी आफ माई लाइफ', 'स्पीचेज ऐंड राइटिंग्स ऑफ एम० के० गांधी', इन पुस्तकोंके प्रकाशकों और निम्नलिखित समाचार-पत्रों और पत्रिकाओंके आभारी हैं—'अमृत बाजार पत्रिका', 'गुजराती', 'टाइम्स ऑफ इंडिया', 'नवजीवन', 'बॉम्बे क्रॉनिकल', 'यंग इंडिया', 'सर्चलाइट', तथा 'हिन्दू'।

अनुसन्धान और सन्दर्भ-सम्बधी सुविधाओंके लिए अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी पुस्तकालय, गांधी स्मारक संग्रहालय, इंडियन कौंसिल ऑफ वर्ल्ड अफेयर्स पुस्तकालय, सूचना व प्रसारण मन्त्रालयके अनुसन्धान और सन्दर्भ विभाग, नई दिल्ली; साबरमती संग्रहालय और गुजरात विद्यापीठ, ग्रन्थालय, अहमदाबाद, हमारे धन्यवादके पात्र हैं।

पाठकोंको सूचना

हिन्दीकी जो सामग्री हमें गांधीजीके स्वाक्षरोंमें मिली है उसे अविकलरूपमें दिया गया है। किन्तु दूसरों द्वारा सम्पादित उनके भाषण अथवा लेख आदिमें हिज्जोंकी स्पष्ट भूलें सुधार दी गई हैं।

अंग्रेजी और गुजरातीसे अनुवाद करते समय उसे यथासम्भव मूलके निकट रखनेका पूरा प्रयत्न किया गया है, किन्तु साथ ही भाषाको सुपाठ्य बनानेका भी पूरा ध्यान रखा गया है। जो अनुवाद हमें प्राप्त हो सके हैं, हमने उनका मूलसे मिलान और संशोधन करनेके बाद उपयोग किया है। नामोंको सामान्य उच्चारणके अनुसार ही लिखनेकी नीतिका पालन किया है। जिन नामोंके उच्चारणके बारेमें संशय था उनको वैसा ही लिखा गया है जैसा गांधीजीने अपने गुजराती लेखोंमें लिखा है।

मूल सामग्रीके बीच चौकोर कोष्ठकमें दिये गये अंश सम्पादकीय हैं। गांधीजीने किसी लेख, भाषण आदिका जो अंश मूल रूपमें उद्धृत किया है वह हाशिया छोड़कर गहरी स्याहीमें छापा गया है। भाषणोंकी परोक्ष रिपोर्ट तथा वे शब्द जो गांधीजीके कहे हुए नहीं हैं, बिना हाशिया छोड़े गहरी स्याहीमें छापे गये हैं। भाषणों और भेंटकी रिपोर्टोंके उन अंशोंमें जो गांधीजीके नहीं हैं, कुछ परिवर्तन किया गया है और कहीं-कहीं कुछ छोड़ भी दिया गया है।

शीर्षककी लेखन-तिथि दायें कोनेमें ऊपर दे दी गई है; जहाँ वह उपलब्ध नहीं है वहाँ अनुमानसे निश्चित तिथि चौकोर कोष्ठकोंमें दी गई है और आवश्यक होनेपर उसका कारण स्पष्ट कर दिया गया है। जिन पत्रोंमें केवल मास या वर्षका उल्लेख है उन्हें आवश्यकतानुसार मास या वर्षके अन्तमें रखा गया है। शीर्षकके अन्तमें साधन-सूत्रके साथ दी गई तिथि प्रकाशन की है। गांधीजीकी सम्पादकीय टिप्पणियाँ और लेख जहाँ उनकी लेखन-तिथि उपलब्ध है अथवा जहाँ किसी दृढ़ आधारपर उसका अनुमान किया जा सका है, वहाँ लेखन-तिथिके अनुसार और जहाँ ऐसा सम्भव नहीं हुआ है वहाँ उनकी प्रकाशन-तिथिके अनुसार दिये गये हैं।

साधन-सूत्रोंमें "एस० एन०" संकेत, साबरमती संग्रहालय, अहमदाबादमें उपलब्ध सामग्रीका, "जी० एन०" गांधी स्मारक निधि और संग्रहालय, नई दिल्लीमें उपलब्ध कागज-पत्रोंका, और "सी० डब्ल्यू०" सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय (कलेक्टेड वर्क्स ऑफ महात्मा गांधी) द्वारा संगृहीत पत्रोंका सूचक है।

सामग्रीकी पृष्ठभूमिका परिचय देनेके लिये मूलसे सम्बद्ध कुछ परिशिष्ट दिये गये हैं। अन्तमें साधन-सूत्रकी सूची और इस खण्डसे सम्बन्धित कालकी तारीखवार घटनाएँ दी गई हैं।

विषय-सूची

चित्र-सूची

१. पत्र : कोण्डा वेंकटप्पैयाको[1]

सत्याग्रहाश्रम,
साबरमती,
४ मार्च, १९२२

प्रिय मित्र,

मैंने तुम्हारा १९ फरवरीका पत्र इसलिए रख छोड़ा है कि तुम्हें विस्तारसे लिख सकूँ।

तुम्हारा पहला प्रश्न है कि क्या अपेक्षित अहिंसात्मक वातावरण कभी बनाया भी जा सकता है और यदि बनाया जा सकता है तो कब? यह प्रश्न जबसे असहयोग प्रारम्भ हुआ है तभीसे पूछा जाता है। जब मेरे कुछ निकटतम और समादरणीय सहयोगी भी मुझसे यह प्रश्न कुछ ऐसे भावसे पूछते हैं जैसे अहिंसात्मक वातावरणकी अपेक्षा यह कोई नई चीज हो, तब मुझे बड़ी हैरानी होती है। मुझे इसमें जरा भी सन्देह नहीं कि यदि हमें अहिंसामें और अपने-आपमें पक्का विश्वास रखनेवाले कार्यकर्ता मिल जायें तो हम सविनय अवज्ञा आन्दोलन चलानेके लिए अपेक्षित अहिंसात्मक वातावरण अवश्य बना सकते हैं। इन कुछ दिनोंमें मैं जो समझ सका हूँ वह यह है कि बहुत कम लोग अहिंसाके स्वरूपको पहचानते हैं। 'अवज्ञा'से पहले 'सविनय' विशेषणके प्रयोगका अर्थ निश्चय ही यह है कि अवज्ञा अहिंसापूर्ण होनी चाहिए। लोगोंको ऐसी कार्रवाइयोंमें भाग न लेनेकी तालीम क्यों न दी जाये जिनसे उनका सन्तुलन बिगड़नेकी सम्भावना हो? मैं मानता हूँ कि तीस करोड़ लोगोंको अहिंसापूर्ण बना सकना कठिन होगा; किन्तु मैं ऐसा माननेको तैयार नहीं हूँ कि यदि हमें सचमुच ईमानदार और समझदार कार्यकर्ता मिल जायें तो आन्दोलनमें सक्रिय भाग न लेनेवाले लोगोंको अपने घरोंके अन्दर ही रहनेके लिए तैयार करना कोई कठिन काम होगा। चौरीचौरामें[2] तो स्वयंसेवकोंने जान-बूझकर जुलूस निकाला था। उसे शरारतन ही थानेकी ओर ले जाया गया था। मेरी रायमें जुलूसकी तैयारी ही आसानीसे रोकी जा सकती थी। जुलूसके तैयार हो चुकनेपर उसका थानेके सामनेसे गुजरना तो बहुत ही आसानीसे टाला जा सकता था। कहा जाता है कि जुलूसमें दो या तीन सौ स्वयंसेवक थे। मैं तो यह मानता हूँ कि इतने अधिक स्वयंसेवकोंका कारगर ढंगसे पुलिसवालोंकी नृशंस हत्याएँ रोक सकना बहुत आसान था; या फिर इतना तो हो ही सकता था कि सबके-सब स्वयंसेवक आगकी उन लपटोंमें जल मरते जो उनके

१. आन्ध्र प्रदेश कांग्रेस कमेटीके अध्यक्ष।

२. संयुक्त प्रान्तके गोरखपुर जिलेके एक गांवमें ५ फरवरी, १९२२ को लोगोंकी एक भीड़ने थानेमें आग लगा दी थी जिसमें २२ सिपाही जीवित जल गये थे। गांधीजीको इस घटनासे बहुत दुःख हुआ था और १२ फरवरी को उन्होंने पाँच दिनका उपवास रखा था। देखिए खण्ड २२, पृष्ठ ४३८-४४।

नेतृत्वमें चलनेवाली भीड़ने प्रज्वलित की थीं। यह बताना भी बहुत जरूरी है कि ये लोग जानते थे कि उपद्रव होनेवाला है, वे जानते थे कि पुलिस सब-इंस्पेक्टर वहाँ मौजूद हैं, वे जानते थे कि जनता और उसके बीच पहले भी दो बार झगड़ा हो चुका है। क्या चौरीचौराकी दुःखद घटनाको न होने देना सर्वथा सरल काम नहीं था? मैं मानता हूँ कि किसीने हत्याकी कोई योजना नहीं बनाई थी, किन्तु स्वयं-सेवकोंको, जो-कुछ वे कर रहे थे उसके परिणामका पूर्व अनुमान होना चाहिए था। बम्बईकी दुःखद घटनाके समय तो मैं खुद ही वहाँ मौजूद था। लोगोंको बहिष्कारके लिए तैयार करते समय उनसे सहनशील बने रहनेको कहना कार्यकर्त्ताओंका कर्त्तव्य था, और इसी तरह मजदूर लोग जिन क्षेत्रोंमें जमा हो रहे थे, वहाँ स्वयंसेवकोंको तैनात करना भी उनका कर्त्तव्य था। लेकिन उन्होंने इन कर्त्तव्योंकी उपेक्षाकी। जब जनता लोगोंकी टोपियों और पगड़ियोंपर हाथ डालने लगी तब खुद मुझे इस उद्दण्डताको रोकनेकी भरपूर कोशिश करनी चाहिए थी; किन्तु मैंने भी वैसा नहीं किया। अन्तमें, मद्रासकी बात लीजिए। मद्रासमें जो घटनाएँ हुई उनमें से एक भी ऐसी नहीं थी जिससे बचा नहीं जा सकता था। मद्रासमें जो-जो हुआ उसके लिए मैं कांग्रेस कमेटीको ही जिम्मेदार मानता हूँ। बम्बईके अनुभवकी याद ताजा थी। इसलिए यदि उन्हें पूरा-पूरा विश्वास नहीं था, तो वे हड़तालको टाल सकते थे। सच तो यह है कि इन सभी मामलोंमें किसी भी कार्यकर्ताने न तो अहिंसाके पूरे अभिप्रायको समझा और न उसके व्यवहारगत अर्थको ही। उन्हें जोश-खरोश पसन्द था, वे उसमें रस लेते थे, और इन बड़े-बड़े प्रदर्शनोंके पीछे उनके दिलोंमें अनजाने ही यह भाव मौजूद था कि इस तरह वे अपनी ताकतका प्रदर्शन कर रहे हैं; और यह चीज अहिंसासे बिलकुल उलटी पड़ती है। नीतिके रूपमें अहिंसापर अमल करनेके लिए यह कतई जरूरी नहीं कि अमल करनेवाले लोग साधु-सन्त हों; पर यह तो जरूरी है ही कि वे ईमानदार हों और समझते हों कि लोग उनसे क्या आशा करते हैं।

तुम कहते हो कि लोग इसी भावनाके वशीभूत होकर काम कर रहे हैं कि स्वराज्य साल-भरमें मिलनेवाला है। तुम्हारे कथनमें काफी सचाई है; यदि लोग उत्साहके क्षणमें मन्द गतिसे काम करते हैं तो निश्चय ही स्वराज्य नजदीक नहीं आता। अस्थायी जोश-खरोशकी बात तो मैं समझ सकता हूँ परन्तु जोश ही जोशसे काम नहीं चलता; और न उसे महान् राष्ट्रीय गति-विधिका मुख्य अंग बनाना चाहिए। आखिरकार स्वराज्य कोई ऐसी चीज तो है नहीं कि जादूकी छड़ी घुमाई और वह सामने आ गया। स्वराज्य तो एक क्रमिक विकास है, जिसमें हम दृढ़तासे तिल-तिल करके शक्ति हासिल करते चलते जायें तो एक ऐसा समय अवश्य आयेगा जब कि हमारी शक्ति इतनी बढ़ जायेगी कि जिन्होंने अनधिकारपूर्वक सत्ता हथिया रखी है उनपर भी उसका असर पड़ेगा। तथापि इस तरह इस प्रक्रियामें हम क्षण-क्षण स्वराज्यके निकट पहुँचते जाते हैं।

कन्याकुमारीके समीप स्थित किसी झोंपड़ीमें होनेवाली हिंसाका असर हिमालयकी तलहटीमें स्थित एक शान्त तहसीलपर पड़े बिना नहीं रह सकता; बशर्ते कि इन दोनोंके बीच जीता-जागता सम्बन्ध हो; ऐसा होना ही चाहिए, यदि ये दोनों स्थान

भारतके अविभाज्य अंग हैं और दोनों ही स्थानोंपर तुम्हारा स्वराज्यका झण्डा फहराता है। साथ ही बारडोलीमें सामूहिक सविनय अवज्ञाके सम्बन्धमें विचार करते समय मैं किसी दूरस्थ कोनेमें बसी उन तहसीलमें घटनेवाली घटनाओंको कोई महत्त्व नहीं देता जहाँ कांग्रेसका असर न हो और जहाँ हिंसा कांग्रेस आन्दोलनके सिलसिलेमें न की गई होगी। किन्तु गोरखपुर, बम्बई या मद्रासके बारेमें ऐसा नहीं कहा जा सकता कि उनमें ऐसे सम्बन्धका अभाव है। इन सब स्थानोंमें एक राष्ट्रीय कार्यक्रमके सिलसिलेमें ही हिंसा भड़की। मलाबारकी जोरदार मिसाल[1] तुम्हारे सामने है। वहाँ मोपलाओंने संगठित, सुनियोजित ढंगसे हिंसा की, फिर भी अपने किसी कार्यक्रमपर हमने मलाबारका प्रभाव नहीं पड़ने दिया और न मैंने उस अरसेमें अपने विचार ही बदले। मैं आज भी मलाबार और गोरखपुरके अन्तरको समझता हूँ। मोपला खुद ही असहयोगकी भावनासे तनिक भी प्रभावित नहीं थे। अन्य भारतीय मुसलमानोंसे उनका साम्य नहीं है। मैं यह माननेको तैयार हूँ कि आन्दोलनका उनपर अप्रत्यक्ष रूपसे प्रभाव पड़ा था। मोपला विद्रोह इतने अलग किस्मका था कि भारतके अन्य हिस्सोंपर उसका असर नहीं पड़ा; जब कि गोरखपुरकी घटना एक नमूनेके रूपमें थी और इसलिए यदि हम उसके विरोधमें तत्परताके साथ कदम न उठाते तो भारतके अन्य हिस्सोंमें भी आसानीसे उसका बुरा असर फैल सकता था।

तुम कहते हो कि व्यक्तिगत सविनय अवज्ञा आन्दोलन वापस ले लेनेपर लोगोंकी मनःस्थिति जाननेका कोई अवसर नहीं बच रहेगा। हम ऐसा नहीं चाहते, इसके विपरीत हम तो यह चाहते हैं कि लोग उद्योगों और रचनात्मक कार्योंमें अपने-आपको इतना खपा दें कि उनके मनमें अशान्ति उत्पन्न होनेका लगातार बना रहनेवाला खतरा ही समाप्त हो जाये। जो आत्म-संयमकी आकांक्षा रखता है ऐसा व्यक्ति अपने आपको प्रलोभनोंमें फँसनेके अवसरोंसे दूर रखता है; फिर भी यदि वे उनसे बचनेकी इच्छाके बावजूद, अपने-आप उपस्थित हो जाते हैं तो वह उनका सामना करनेके लिए तैयार भी रहता है।

हमने निश्चय ही असहयोगका कोई भी काम मुलतवी नहीं किया है। तुम 'यंग इंडिया' में यह बात साफ तौरपर कही गई देखोगे। मेरी पक्की राय है कि हमारी सफलता इसी बातपर निर्भर है कि हम अपनेमें अनुपम आत्म-संयम पैदा करें और सभा-निषेध सम्बन्धी सुने-सुनाये आदेशों तकका उल्लंघन न करें। हमें अपना आन्दोलन सभी प्रतिबन्धोंको मानते हुए और सविनय अवज्ञाके बिना भी चलाना सीखना चाहिए। यदि लोग जोश-खरोशके कार्यक्रम चाहते हैं, तो हमें उनको ऐसा कार्यक्रम नहीं देना चाहिए; भले ही हमें अप्रिय बननेका खतरा उठाना पड़े और हम बिलकुल इने-गिने ही क्यों न रह जायें। जनताको खुश रखनेकी दृष्टिसे कोई अव्यवस्थित आन्दोलन चलानेकी अपेक्षा देशके कोने-कोनेमें बिखरे हुए केवल दो-चार सौ गिने-चुने कार्यकर्त्ताओं द्वारा कार्यक्रमपर दृढ़तापूर्वक अमल होते रहनेसे कहीं अधिक स्थायी प्रभाव पैदा होगा। इसलिए मैं चाहूँगा कि तुम स्वयं ही हृदय-मन्थन करो और सत्यको खोज करो।

१. देखिए खण्ड २१, पृष्ठ ४८-५०।

यदि तुम अब भी समझते हो कि जो तर्क मैंने तुम्हारे सामने प्रस्तुत किये हैं, उनमें दोष है, तो मैं चाहूँगा कि मैंने जो स्थिति अपनाई है, तुम उसका विरोध करो। मैं चाहता हूँ कि हम सब मौलिक ढंगसे विचार करें और स्वतन्त्र रूपसे अपने निर्णयों-पर पहुँचे। अपने-आपमें और आन्दोलनमें हमारे लिए आमूल परिवर्तन करना नितान्त आवश्यक हो गया है। अहिंसा एक अव्यवहार्य स्वप्न साबित हो तो भी मुझे इसकी कोई परवाह नहीं। हम इसमें जो विश्वास रखते हैं, कमसे-कम इतना तो है ही कि वह हमारा हार्दिक विश्वास है। मैं तो एक ही बात जानता हूँ कि हिंसाकी व्याव-हारिक वास्तविकताकी अपेक्षा मैं अहिंसाके स्वप्नलोकमें विचरना अधिक पसन्द करूँगा। मैंने इसपर अपना सब-कुछ वार दिया है; पर इससे मेरे सहयोगियोंका कोई सम्बन्ध नहीं है। उनमें से अधिकांश इसे एक शुद्ध राजनीतिक आन्दोलन मानकर इसमें शामिल हुए हैं। उन्होंने मेरे धार्मिक विश्वासोंको नहीं अपनाया है, और मैं अपने धार्मिक विश्वास उनपर जबरदस्ती थोपना भी नहीं चाहता।

जल्दी ही स्वस्थ होनेकी कोशिश करो। यदि तुम्हें जरूरी लगे तो इस विषय-पर और बातचीत करनेके लिए यहाँ आ जाओ।

हृदयसे तुम्हारा,

श्रीयुत कोण्डा वेंकटप्पैया
गुण्टूर

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ७९७७) की फोटो-नकलसे।

२. मेरी निराशा

मैं एकाएक निराश होनेवाला आदमी नहीं हूँ। निराशाके बादलोंमें भी मैं आशा-की किरणें देख लेता हूँ और उसीपर जीता हूँ। लेकिन कह सकता हूँ कि इस समय अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीकी जो बैठक[1] हुई है उसने मुझे निराश ही किया। आशावादी होनेके कारण जहाँ घोर अन्धकार दिखाई दे रहा है, मैं वहाँ भी उजाला ही देख रहा हूँ, यह मेरी ज्यादती ही है।

यदि मेरे विचारको बहुमतका समर्थन न मिला होता तो मुझे अवश्यमेव सफलताकी किरणें दिखाई देतीं। लेकिन मैं तो बहुमतके बोझके नीचे कुचला जा रहा हूँ। मुझे अपना जयघोष अप्रिय लगता है और अनेक बार तो सचमुच अपने कान ही बन्द करने पड़ते हैं। इस जयघोषके साथ ही अहमदाबाद; वीरमगाँव, अमृतसर,[2] चौरीचौरा आदि स्थानोंमें सुधबुध गँवाकर लोगोंकी टोलियोंने खून किये और मकानोंको जलाया।

१. यह २४-२५ फरवरी, १९२२ को दिल्लीमें हुई थी। इसमें सामूहिक सविनय अवज्ञाको स्थगित रखने और व्यक्तिगत सत्याग्रहकी छूट देनेका प्रस्ताव पास किया गया था।

२. अप्रैल १९१९ में रौलट अधिनियमके विरोधमें हुए प्रदर्शनोंके दौरान अहमदाबाद, वीरमगाँव और अमृतसरमें भीड़ हिंसापर उतर आई थी।

अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीने मुझे अधिक मत दिये। लेकिन मैं अच्छी तरह देख सका कि बारडोलीका प्रस्ताव[1] सचमुच बहुत कम लोगोंको पसन्द आया है। मुझे ये मत मेरे कारण मिले, मेरे विचारोंकी सत्यताके कारण नहीं। उनकी क्या कीमत आँकी जा सकती है? जहाँ प्रजाकी सत्ताकी स्थापना करनेका प्रयास किया जा रहा हो वहाँ एक व्यक्तिकी जयसे क्या लाभ? वहाँ तो सत्य और सिद्धान्तकी जय ही उचित होती है। बहुमतके हृदय और मस्तिष्कमें द्वन्द्वयुद्ध चल रहा था। उसका हृदय मेरी ओर जाता था, मस्तिष्क मुझसे सौ योजन दूर जाता था। उससे मैं व्याकुल हुआ और अब भी व्याकुल हूँ।

इस तरह बलात् गाड़ी कबतक चलेगी? मेरी आत्मा साक्षी देती है कि यदि हम मन, वचन और कर्मसे शान्तिवादी हों अर्थात् शान्तिको व्यवहार-धर्म और समयानुकूल धर्म मानते हों, तो भी यह बात हमें पूर्णिमाके चन्द्रमाकी तरह स्पष्ट रूपसे दिखाई देनी चाहिए कि चौरीचौराकी घटनाके बाद बारडोलीके प्रस्तावोंके[2] अलावा और कोई मार्ग हो ही नहीं सकता। तथापि [अखिल भारतीय] कांग्रेस कमेटीमें बारडोलीके प्रस्तावका अनुमोदन किया गया सो कोई प्रस्तावके औचित्यको ध्यानमें रखकर नहीं बल्कि मेरी खातिर किया गया। जिन नाविकोंको स्वयं तो दिशाका कोई भान नहीं होता, लेकिन जो चालकपर विश्वास रखकर नावको खेते जाते हैं वे चालकके मरने अथवा उसमें विश्वास न रह जानेपर नावको डुबा देते हैं। ऐसी नावमें यात्रा करना खतरनाक है। उसी तरह जो लोग बिना सोचे-समझे अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीके प्रस्तावको पास करते हैं वे कांग्रेस रूपी नावको डुबा देंगे।

मुझे तो यह बात स्पष्ट दिखाई देती है कि यदि हम यह मानते हों कि हमें केवल शान्तिसे ही विजय प्राप्त हो सकती है, तो शान्ति-अशान्ति दोनोंकी मिलावट नहीं चल सकती, यदि मिलावट की गई तो वह [दूधकी तरह] फट जायेगी और हमें लाभके स्थानपर हानि होगी। जैसे बारडोलीके आन्दोलनका प्रभाव सारे हिन्दुस्तानपर होता वैसे ही चौरीचौराकी घटनाका प्रभाव भी सारे देशपर होगा ही। यदि हमारा मन स्वस्थ हो तो हमें ऐसा ही लगना चाहिए। हम आकाशमें सूर्य और चन्द्र दोनोंको एक साथ नहीं देख सकते। सर्दी और धूप एक साथ नहीं हो सकती। धूपको छायाके रूपमें दिखानेका ढोंग कितने दिनतक चल सकता है? उत्तर दिशाकी ओर जानेवाले व्यक्तिको यह कहकर कितनी देरतक भरमाया जा सकता है कि वह उत्तर दिशाकी ओर नहीं बल्कि दक्षिण दिशाकी ओर जा रहा है। शान्तिके नामपर अशान्ति हो तो उसे कहाँतक छिपाया जा सकता है?

जिस नीतिको व्यवहारके रूपमें स्वीकार किया हो उसका पालन भी कमसे-कम जबतक व्यवहार चलता है तबतक अवश्य किया जाना चाहिए। समयानुकूल नीति भी जबतक चले तबतक पूरी तरहसे चलनी चाहिए। पाँच दिनोंतक उद्यम करनेका

१. कांग्रेसकी कार्य-समितिकी बैठक ११-१२ फरवरीको बारडोलीमें हुई थी। गांधीजीके अनुरोधपर समितिने सामूहिक सविनय अवज्ञाको रद करनेका और उसके स्थानपर कताई-बुनाई, शराबबन्दी, सामाजिक सुधार और शैक्षणिक प्रवृत्तियोंका रचनात्मक कार्यक्रम रखनेका निश्चय किया था।

२. देखिए खण्ड २१, पृष्ठ ४३२-३५; और खण्ड २२, पृष्ठ १०६-१३ तथा पृष्ठ ३१०-१२।

वचन देनेवाले मनुष्यको कमसे-कम पाँच दिनोंतक तो उद्यम करना ही चाहिए। आलस्यका प्रेमी होनेपर भी एक बार उद्यम करनेका वचन देनेके बाद वह यह नहीं कह सकता कि उद्यममें श्रद्धा न होनेसे वह पाँच दिन भी उद्यम नहीं कर सकता। पाँच दिन भी उद्यम करनेकी बातपर जिस मनुष्यकी श्रद्धा न हो उसके बारेमें हम सब निस्सन्देह यही कहेंगे कि उसको उद्यमी लोगोंकी टोलीसे बाहर ही रखना चाहिए।

भारतीयोंने निश्चय किया है कि शान्तिके बिना भारतका उद्धार असम्भव है, क्योंकि शान्तिके बिना हिन्दुस्तान एक नहीं हो सकता और शान्तिके बिना चरखा नहीं चलाया जा सकता। हिन्दू-मुस्लिम एकता और चरखेके बिना हिन्दुस्तान एक पग भी आगे नहीं बढ़ सकता। हिन्दू-मुस्लिम एकता हिन्दुस्तानकी जान और चरखा शरीर है। दोनोंका मूल शान्ति है।

वस्तुस्थिति इतनी स्पष्ट होने और 'शान्ति' शब्दका उच्चारण करनेके बावजूद हम अपने दिलोंमें अशान्तिको ही पालते रहे हैं, और हमारे दिलोंमें क्रोध भरा हुआ है। 'मुखमें राम बगलमें छुरी' के कायल बगुला भगत क्या स्वर्ग जा सकते हैं?

मेरे अनेक बार चेतावनी देनेके बावजूद बारडोलीका प्रस्ताव भारी बहुमतसे पास हो गया। इससे मैं असमंजसमें पड़ गया हूँ। यदि ये सब मत सोच-समझकर दिये गये हों तो इसका परिणाम अच्छा हो सकता है। इतने मत देनेवाले लोग यदि यह मानते हों कि हमें अब शान्तिकी ओर चुपचाप काम करनेकी जरूरत है तो हमने अबतक जितना बल अर्जित किया है उससे कहीं अधिक कर सकेंगे।

जान-बूझकर जेल जानेकी पहले जितनी जरूरत थी उतनी ही जरूरत अब कुछ समयके लिए जेल जाना स्थगित रखनेकी है। अत्याचारी राज्यमें मुक्तिका दरवाजा जेल तो हमेशा रहेगी। लेकिन जेलमें जानेके लिए भी कलाकी जरूरत है। चोर और पाखण्डी जेल जाते हैं, किन्तु वे स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं करते। वे तो वहाँ सजा ही भोगते हैं। चित्तमें अशान्ति और मनमें क्रोध लेकर जो जेल जाते हैं वे जेलमें सुखी नहीं रह सकते। उन्हें तो जेल सेवागृह नहीं जान पड़ता। शान्त चित्तसे जेल जानेवाला मनुष्य यही मानता है कि वह जेलमें भी पूर्ण अथवा अधिक सेवा करता है। वह जेलमें स्वस्थ मनसे विचारोंको विकसित करता है, अधिक संयम रखता है, और नियमोंका अधिक पालन करता है। हाथमें जहरका प्याला थामे हुए सुकरातने अपना सर्वोत्तम भाषण दिया था और मरकर अपना और अपने वचनोंका अमरत्व सिद्ध किया था। तिलक महाराजने अपने दो महान् ग्रन्थ जेलमें लिखे थे। उन्होंने जेलमें एक क्षण भी व्यर्थ गँवाया, ऐसा नहीं कहा जा सकता। अब भी जो कैदी[1] जेलमें अपना कार्य कर रहे हैं, वे तो सेवा ही कर रहे हैं।

इस समय जेल जानेका प्रयत्न करना अशान्तिका पोषण करनेके बराबर है। इसलिए इस समय जेलसे बाहर रहना हमारा धर्म हो गया है।

हमारे मनमें ऐसी शंका उठ सकती है कि "इससे तो शत्रु हमें कायर मानेगा और हमारी अपकीर्ति होगी"। जब शत्रु हमें कायर माने लेकिन वस्तुतः हम कायर न

१. वे लोग जो १९२०-२१ के असहयोग आन्दोलनके दौरान जेल गये थे।

हों, तब हमारी विजयकी घड़ी समीप आती है क्योंकि हमारी तथाकथित कायरता तो हमारा बल है और शत्रुकी झूठी मान्यता उसे भुलावेमें डालती है। जो सिर्फ ईश्वरकी सहायताकी अपेक्षा करता है उसकी अपकीर्ति हो ही कैसे सकती है? अपकीर्ति तो तभी हो सकती है जब हम तनिक भी अशोभन कार्य करें। हमें जेलके भयसे जेलका त्याग नहीं करना चाहिए। लेकिन जेल जानेमें नासमझी होने, घमण्ड हो जाने और अशान्ति होनेका भय हो तो हमें उसका त्याग करना चाहिए। हम शत्रुको प्रसन्न करनेके लिए नहीं वरन् अपनी आत्माकी खुशीके लिए जेल जाना बन्द करें। जेल जानेके विचारका त्याग करके क्या हमें फांसीपर चढ़नेकी तैयारी नहीं करनी चाहिए?

शत्रु जो चाहे वह हम न करें। इस समय शत्रु यह चाहता है कि हम अधिक जोश करें। वह हमें चिढ़ा रहा है। वह हमें मुक्का दिखा रहा है, हमें अपनी लाल-पीली आंखें दिखा रहा है, हमें घुड़की दे रहा है और [मानो क्रुद्ध सिंहकी तरह] अपने अयाल फड़फड़ा रहा है। यदि हम उसके चिढ़ानेसे चिढ़ते हैं तो गोया हम हारते हैं। उसके हथियार मद, दम्भ, अशिष्टता और धमकी हैं। हमारे हथियार शान्ति और नम्रता हैं। शत्रु हमें भले ही डरा हुआ कहे अथवा माने, यह हमको ठीक लग सकता है, लेकिन हम प्रतिज्ञा-भंजक सिद्ध हों यह उचित नहीं लगता।

इसीसे तो मैंने निर्णय कर लिया है कि हम फिलहाल कैदियोंको भूल जायें, यह हमारा पहला प्रायश्चित्त है। हमने भूलें की हैं इसलिए हम कैदियोंको रिहा करवानेकी अपनी शक्ति खो बैठे हैं और कैदी सरकारकी मेहरबानीसे नहीं छूटना चाहते। यदि सरकारके रिहा करनेपर वे रिहा होते हैं तो इससे वे खिन्न होंगे और हमें भी लज्जित होना पड़ेगा।

हम उन्हें जेल जाकर ही रिहा करवा सकते हैं, ऐसा कोई अनिवार्य नियम नहीं है। हम अपने सत्यबलसे और अपनी प्रतिज्ञाका पालन करके उन्हें छुड़वा सकते हैं। हम अपना बल जितना जेल जाकर बता सकते हैं उतना ही रचनात्मक कार्य करके भी बता सकते हैं। बल हमारे किसी विशेष कार्यमें नहीं है वरन् हमारी वृत्तिमें है। घमंडके कारण जेल जानेवाला मनुष्य बलवान नहीं है लेकिन जो मनुष्य यह जानते हुए भी कि वह कायर माना जायेगा, जेल जानेसे इनकार कर देता है वह बलवान हो सकता है। बल सत्य कार्य करनेमें है।

यदि हिन्दुस्तान अथवा गुजरात एक मासमें रचनात्मक कार्यको पूरा कर दिखाये तो हम एक मासमें ही कैदियोंको छुड़वा सकते हैं। यदि बहुत सारे प्रामाणिक, समझदार और प्रसिद्ध स्वयंसेवक मिल जायें तो एक मासमें रचनात्मक कार्यको पूरा करना कोई मुश्किल बात नहीं है।

१. हर स्त्री-पुरुषको कांग्रेसकी प्रतिज्ञा लेनी चाहिए और चार आने देकर कांग्रेसके दफ्तरमें अपना नाम दर्ज कराना चाहिए।

२. तिलक स्वराज्य-कोषके[1] लिए चन्दा इकट्ठा करना चाहिए।

१. बाल गंगाधर तिलककी स्मृतिमें स्थापित, जिनकी मृत्यु १९२० में हुई थी।

३. राष्ट्रीय स्कूल चलाने चाहिए।

४. शराब पीनेवालोंके घरोंमें जाना चाहिए।

५. विदेशी कपड़ोंका उपयोग करनेवालोंको खादी पहननेके लिए समझाना चाहिए और घर-घर चरखेका प्रचार करना चाहिए।

६. अन्त्यज-वर्गकी मदद करनी चाहिए।

७. पंचायतोंकी स्थापना करनी चाहिए।

८. बिना भेदभावके रोगी अथवा घायलकी सेवा करनी चाहिए चाहे वह गोरा हो अथवा काला।

इन कार्योंमें एक भी कार्य ऐसा नहीं है जिसको करनेके लिए युगोंकी जरूरत हो। यदि लोकमत हमारी प्रवृत्तिके विरुद्ध हो तो ऐसी जरूरत हो सकती है। लेकिन हम इस समय तो यह दावा करते हैं कि लोकमत हमारे साथ है। यदि लोकमत हमारे साथ हो और हमारे पास अच्छे कार्यकर्त्ता हों तो उपर्युक्त कार्योंमें ऐसा कौन-सा कार्य है जिसमें हम तुरन्त सफल नहीं हो सकते?

मेरे विचारसे तो इससे लोगोंकी परीक्षा भी हो जाती है और यदि वे सचमुच शान्तिपूर्वक विजय प्राप्त करना चाहते होंगे तो वे उपर्युक्त कार्योंको उत्साहपूर्वक करेंगे। किन्तु यदि वे सिर्फ अशान्ति ही चाहते होंगे तो वे रचनात्मक कार्यमें अवश्य हमारा विरोध करेंगे और जब हम सविनय अवज्ञा शुरू करेंगे तब वे उसकी आड़में कानूनका अविनय भंग करनेके लिए तैयार हो जायेंगे। हमारे सामने यह एक सबसे बड़ा खतरा आ खड़ा हुआ है। इसलिए जो शान्तिपूर्ण प्रवृत्तियाँ चलाना चाहते हैं उनके लिए यही उचित है कि वे दृढ़तापूर्वक अपने मार्गका अनुसरण करें। इस मार्गपर चलते हुए भले ही वे मुट्ठी-भर रह जायें, भले ही उन्हें अपमान सहना पड़े और उनकी प्रतिष्ठा चली जाये। ऐसा हो तभी वे अपना कार्य निर्भय होकर चला सकते हैं और जो भी कदम उठाना हो दृढ़तापूर्वक उठा सकते हैं। इस समय तो जब वे सविनय अवज्ञा जैसा उग्र कार्य हाथमें लेना चाहते हैं तब उनके रास्तेमें अनेक विघ्न आ पड़ते हैं।

मेरा मार्ग स्पष्ट है। मैं देखता हूँ कि मेरे नामका दुरुपयोग किया जा रहा है। मेरे नामपर चौरीचौरामें खून हुआ। मैं सविनय अवज्ञाकी बात करता हूँ तो सुननेवाले मेरे 'सविनय' शब्दको छोड़कर केवल 'अवज्ञा' शब्दको ही ग्रहण करते हैं। सविनय-अवज्ञा पदमें अविच्छिन्न समास समझना चाहिए। रसायन शास्त्रमें दो प्रकारके मिश्रण माने जाते हैं। एक सामान्य मिश्रण जिसमें सब वस्तुएँ अपना-अपना गुण कायम रखती हैं। दूसरा ऐसा मिश्रण है जिससे एक तीसरी ही वस्तु पैदा होती है और उसका गुण दोनोंमें से किसी भी मूल वस्तुके गुणसे नहीं मिलता। सविनय अवज्ञा भी एक ऐसा ही रासायनिक मिश्रण है। उसमें 'अवज्ञा' का कोई भी बुरा परिणाम नहीं होता और उसमें हम केवल विनयसे उत्पन्न होनेवाले परिणामोंको नहीं देखते। विनयके साथ बहुधा हम दुर्बलता देखते हैं, 'अवज्ञा' के साथ हम उद्धतता और असत्य आदि देखते हैं। किन्तु 'सविनय-अवज्ञा' में तो केवल दोषहीनता और निर्भयता ही होनी चाहिए। जबतक ऐसे

निश्चय ही ईश्वर सत्यका रक्षक है। सत्यकी सदा ही जय होती है, यह जाननेके बावजूद अगर मैं भयके कारण अविश्वास रखूं तो मुझ जैसा कायर कौन होगा?

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ५-३-१९२२

३. स्वदेशी बनाम खादी

"स्वदेशी" शब्द अत्यन्त परिचित है। यह एक व्यापक शब्द है। ऐसे शब्दका असर अच्छा भी होता है और बुरा भी। समुद्र व्यापक है। वह न हो तो हमें प्राणवायु ही न मिले। परन्तु समुद्र अग्निकी तरह सर्वभक्षी है। उसमें गंदगी तो इतनी मिलती रहती है कि उसका पार ही नहीं। पर फिर भी वह विशुद्ध ही बना रहता है। किनारा छोड़ते ही उसका पानी आईनेकी तरह पारदर्शक दिखाई देता है। सूर्यकी किरणोंमें उसका फेन हीरे-मोतीकी तरह चमकता है, हीरे-मोतीका तेज उसके आगे तो कोई चीज ही नहीं। समुद्रपर नौका तैरती है। पर यदि उसका पानी कोई पी ले तो कै हुए बिना न रहे। पीनेका पानी तो कुएँ-बावलीमें, छोटे-छोटे पोखरोंमें, मीठेसे-मीठा मिलता है। इसी प्रकार स्वदेशी भी एक समुद्र है, महासागर है। उसके सहज पालनसे देश तर सकते हैं। व्याख्यामें वह शब्द सुन्दर मालूम होता है। पर आज तो यदि हम स्वदेशीके समुद्रमें कूद पड़ें तो डूब जायें। आज तो वह एक ऐसा मनोरथ है जिसे पूरा कर पाना हमारी शक्तिके बाहरकी बात है।

स्वदेशीके नामपर कोई कहते हैं कि हम तो स्वदेशी ताले ही बनायेंगे या लेंगे 'चब' के नहीं। कोई 'रॉजर्स' चाकूको छोड़कर ऐसे कुन्द चाकूको जो नक्कूकी नाकपर भी नहीं चलता, पसन्द करते हैं अथवा नये चाकू बनानेका प्रयत्न करते हैं। कोई स्वदेशी कागज चाहता है, कोई रोशनाई, कोई होल्डर और कोई आलपीन। इस प्रकार प्रत्येक मनुष्य अपनी-अपनी इच्छाके अनुसार स्वदेशी वस्तुकी चाह प्रकट करके उसकी भावनाका पोषण करता है। पर उससे देशका काम नहीं चलता। इससे तो स्वदेशीका काम और नाम दोनों भ्रष्ट होते हैं।

मकान बनानेवाला कारीगर पहले ही से झरोखे, खिड़कियाँ-दरवाजे, सजावट आदिके फेरमें नहीं पड़ता। पहले तो वह बुनियाद डालता है। फिर दीवारें उठाता है और जब इमारत पूरी हो जाती है तब उसपर चूना-कलई चढ़ाता है। यही हाल स्वदेशीकी रचनाका है।

हम अब स्वदेशीका रहस्य इस हदतक समझ गये हैं, और उसका व्यावहारिक उपयोग इतना जान चुके हैं कि उसका सच्चा और विशेष अर्थ हम जान गये हैं। स्वदेशीके नामपर हमने आजतक अपनेको धोखा दिया, कुछ उलट-फेर किये। स्वदेशीके मानी हैं देशमें तैयार हुआ कपड़ा, यह पहली सीढ़ी थी। फिर देखा कि विदेशी सूतका देशमें बना कपड़ा सच्ची स्वदेशी नहीं है। उससे देशको बहुत ही थोड़ा लाभ होता है। दूसरी सीढ़ी यह हुई कि यदि सूत देशी मिलोंका ही कता हुआ हो और देशी

मिलोंमें ही कपड़ा तैयार हो तो काम दे सकता है। पर अधिक अनुभव होनेपर देखा कि इससे भी अभीष्ट अर्थ सिद्ध नहीं होता। उसका एक कुफल यह हुआ कि मिलके कपड़ोंका भाव खूब तेज हो गया और ऐसा समय आ गया कि कपड़ेकी तंगी होने लगी।

तीसरी सीढ़ी यह थी कि सूत भले देशी मिलोंका हो पर वह बुना हाथ-करघोंपर जाना चाहिए। इससे भी हम स्वदेशीका मर्म नहीं समझ पाये थे।

अब मालूम होता है कि हम यह चौथी सीढ़ी जान गये हैं कि स्वदेशीके मानी हैं हाथ-कते सूतकी हाथ-बुनी खादी। इसको छोड़कर दूसरी सब बातें गलत और निरर्थक हैं।

खादीका मतलब है चरखा। चरखे बिना खादी कहाँसे तैयार हो सकती है? खादी स्वराज्यकी तरह हमारा जन्मसिद्ध हक है और आजन्म केवल उसीका उपयोग करना हमारा कर्त्तव्य है। जो इस कर्त्तव्यका पालन नहीं करता वह स्वराज्यको नहीं पहचानता।

स्वदेशीका और स्वराज्यका यही हेतु हो सकता है, और है भी कि उसके द्वारा भूखसे पीड़ित भारतके लोगोंको भोजन मिले, भारतसे दुर्भिक्षका काला मुँह हो जाये, भारतकी महिलाओंके सदाचारकी रक्षा हो, भारतके बच्चोंको दूध मिले।

जबतक भारतमें चरखा चूल्हेकी तरह सर्वव्यापी नहीं हो जायेगा तबतक भारतका फिरसे आजाद होना मेरी समझमें असम्भव है।

फर्ज कीजिए कि आज हिन्दुस्तानको स्वेच्छापूर्वक व्यवहार करनेकी आजादी मिल गई, मान लीजिए कि भारतने बाहरसे सस्तेसे-सस्ता कपड़ा मँगाया, भारतने अपनी तथा विलायतकी परिस्थितिके विरोधपर विचार किये बिना 'फ्री ट्रेड' यानी ऐसा व्यापार शुरू किया जिसमें बाहरसे आनेवाले मालपर करकी कोई रोक नहीं होती तो भारतकी दशा आजसे भी अधिक खराब हो जायेगी।

भारतको यदि कोई मुफ्तमें पकाकर खाना दिया करे तो जिस प्रकार उसके चूल्हे उखाड़ फेंकना अनुचित है उसी प्रकार चरखेको धता बता देना लाभदायक नहीं हुआ। चूल्हेमें कितना बखेड़ा है। घर-घर चूल्हा और घर-घर आग, कितना अनर्थ है। हरएक गृहिणीको सुबह हुई कि धुआँ खाना पड़ता है, कितना अत्याचार है। ऐसी मनमोहक दलीलोंके धोखेमें आकर यदि हम चूल्हेको उखाड़ फेंके और हर गाँवमें लोग भोजनालयोंमें ही भोजन किया करें तो कैसा हो? तो भारतके बच्चोंको दर-दर भटकना पड़े, इसमें तिलमात्र सन्देह नहीं। चूल्हेका नाश अर्थशास्त्र नहीं, यह तो अनर्थशास्त्र है। उसे तो शास्त्रका नाम देना भी शोभा नहीं देता।

चरखेको नष्ट करके हमनें भूख और व्यभिचारको अपने घर न्यौत लिया है। चूल्हेको हटाना मानो मौतको बुलाना है। यदि हम चरखेकी पुनः स्थापना करें तो हमारे खण्डहरवत् टूटे-फूटे घर फिरसे दमक उठें।

इसलिए इस समय हमारा विशेष और सर्वोपरि धर्म खादी है। खादीकी बिक्री घीकी तरह होनी चाहिए। हाथका कता सूत दूधकी तरह कीमती समझा जाना चाहिए। चरखा भी एक पूजनीय गाय है। जिस प्रकार गाय बिना घरकी शोभा नहीं

होती उसी प्रकार चरखेके विना भी उसकी शोभा नहीं है। घरके छोटे-बड़े गाय दुहनेको कोई नीच काम नहीं मानते। उसी तरह छोटे-बड़े सब लोगोंको चरखा कातनेमें कोई हलकापन न मानना चाहिए, बल्कि उसे अपने घरके एक आवश्यक कामकी तरह करना चाहिए। गाय तो कभी-कभी मार भी बैठती है, खली-भूसी चाहती है। पर चरखा तो ऐसा परोपकारी है कि वह न तो कभी किसीको मारता है और न कुछ खानेको ही माँगता है। उसके पाससे सफेद दूधकी तरह सूत जब चाहे तब ले लीजिए। गाय तो अपनी शक्तिके अनुसार दूध देती है, पर चरखा तो हमारी शक्तिके अनुसार सूत देता है। चरखेकी रक्षा गोरक्षाके ही समकक्ष है। जो लोग चरखेकी रक्षा करना चाहते हैं उन्हें ऐसी ही खादी काममें लानी चाहिए जिसमें ताना और बाना दोनोंका सूत हाथ-कता हो।

प्रान्तीय कमेटियोंको खादी बेचनेके लिए विज्ञापन देने पड़ते हैं। इससे मुझे शर्म मालूम होती है। हरएकको शर्म मालूम होनी चाहिए। परदेशी अथवा मिलके बने कपड़ेका तो बिकना, पर खादीका पड़ा रहना —— इसे भारतके उदयका चिह्न नहीं कहा जा सकता। यह तो गेहूँको छोड़कर भूसी खाने-जैसी बात हुई।

चरखेके उद्धारके बिना गोरक्षा प्रायः असम्भव हो गई है। भारतके किसानोंके पास धन नहीं है। इससे वे अपने मवेशी बेच डालते हैं अथवा उन्हें भूखों मारते हैं। जिस प्रकार भारतके आदमी दुर्बल हैं उसी प्रकार मवेशी भी दुर्बल हैं। क्योंकि भारतकी हालत दिवालियेकी-सी हो रही है। भारत आज अपनी पूँजीपर जी रहा है। इससे वह पूँजी दिनपर-दिन कम होती जाती है। भारतको काफी प्राण-वायु ही नहीं मिल रही है। इससे उसका दम घुट रहा है। भारतको कमसे-कम चार मास अनिच्छापूर्वक बेकार रहना पड़ता है। इस प्रकार जिसे निरुद्यमी रहना पड़ता हो उसका विनाश न हो तो क्या हो? भारतके करोड़ों लोगोंके लिए अपने खेतोंका सहायक उद्यम चरखा ही है, दूसरा नहीं।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ५-३-१९२२

४. टिप्पणियाँ

कांग्रेसका कर

लोगोंके मनपर जिसका शासन हो उसे हमेशा कर मिल जाता है। भारतमें कितने ही बड़े-बड़े मन्दिर हैं। उनका खर्च भक्तजन स्वेच्छासे चलाते हैं; उसके लिए किसी प्रकारका परिश्रम नहीं करना पड़ता। काशी-विश्वनाथके मन्दिरपर सोनेका कलश है। उसके लिए क्या स्वयंसेवक लोग घूमते फिरे थे? श्रद्धावान् लोगोंने खुद ही उसके लिए दान दिया। अमृतसरमें सिखोंके गुरुद्वारेमें बिल्लौरका फर्श है, चाँदीके दरवाजे हैं, गुम्बजपर सोना चढ़ा हुआ है, इसीसे वह स्वर्णमन्दिर कहलाता है। इसमें जो सम्पत्ति है वह भी श्रद्धालु सिख लोगोंने अपनी इच्छासे दी है। ये आलीशान मस्जिदें हम जगह-जगह देख रहे हैं, उनके लिए भी धन घर-घर गये बिना ही एकत्र

हुआ है। कांग्रेसके लिए भी ऐसा ही होना चाहिए। यदि लोग कांग्रेसको धर्मका और कर्मका साधन मानते हों, यदि मुसलमान भाई यह मानते हों कि कांग्रेसके राज्यका अर्थ है खिलाफतका छुटकारा और मुसलमानोंकी स्वतन्त्रता, यदि हिन्दू लोग यह मानते हों कि कांग्रेसके राज्यका अर्थ है गोरक्षा और हिन्दुओंकी स्वतन्त्रता, यदि पारसी भाई यह मानते हों कि कांग्रेसके राज्यका मतलब है अगियारीकी रक्षा और पारसियोंकी आजादी, यदि भारतके ईसाई-यहूदी भी ऐसा ही मानते हों तो उन सभीको अपना स्वार्थ और धर्म समझकर कांग्रेसका पोषण करना चाहिए। कांग्रेसका पोषण करनेके मानी हैं कि उसे कुछ और नहीं तो कर अवश्य देना। यदि यह संस्था लोकप्रिय हो तो उसे धनकी कमी होनी ही नहीं चाहिए। इस बातका पता थोड़े ही दिनोंमें लग जायेगा कि यह संस्था लोकमान्य है या नहीं।

इस बार कांग्रेसने कर ही लगाया है। एक कर तो पहलेसे था — यह कि जो लोग उसके सभासद होना चाहते हैं, मतदाता होनेकी इच्छा रखते हैं उन्हें प्रतिवर्ष चार आने देने चाहिए। यह दूसरा कर ऐसा है जो उन सब लोगोंको — सरकारी नौकरोंको भी — फिर वे चाहे सभासद हों या न हों, जो कांग्रेसको पसन्द करते हैं, देना चाहिए।

जो तिलक महाराजको पूजते हैं वे लोग दें, जो यह मानते हैं कि उनके नामका बड़ेसे-बड़ा स्मारक स्वराज्य प्राप्त करना है, वे लोग दें।

वह कर क्या है? पिछले वर्षकी आमदनीका सौवाँ हिस्सा। अर्थात् जिसे सालाना सौ रुपया वेतन मिलता है उससे कांग्रेस एक रुपया चाहती है। यह कर हलकेसे-हलका कहा जा सकता है। सरकार तो बही-खाते जाँचती है; पर कांग्रेस हृदयकी जाँच करेगी। जिसकी जैसी आमदनी हो उसके अनुसार यह रकम वह कांग्रेसके दफ्तरमें पहुँचा दे।

पर यह लेख लिखनेमें मेरा एक निजी हेतु भी है। प्रति सप्ताह 'नवजीवन'की लगभग ३५,००० प्रतियाँ बिकती हैं। एक प्रतिके पढ़नेवालोंकी संख्या कमसे-कम तीन मान लें तो १,०५,००० पाठक हुए। मैं उनकी परीक्षा लेना चाहता हूँ। यदि उन्हें कांग्रेसका कार्य पसन्द हो तो वे अपना कर 'नवजीवन'की मार्फत भेज दें। प्रत्येक मनुष्य अपना-अपना कर सीधे भेज दे या यह भी हो सकता है कि 'नवजीवन'के पाठक अपने मित्रोंसे — अपरिचितोंसे नहीं — कर इकट्ठा कर लें और फिर स्वयं उसे 'नवजीवन'के दफ्तरको भेज दें। पहुँचकी सूचना 'नवजीवन'में प्रति सप्ताह प्रकाशित होती रहेगी और वह रकम प्रान्तीय कमेटीके मन्त्रीको पहुँचा दी जायेगी।

आशा है, सब लोग सचाईके ही साथ अपनी-अपनी आमदनीका भाग देंगे। हाँ, अधिक जितना चाहें उतना दें। कम किसीको नहीं देना चाहिए। जो कम देना चाहते हों वे भेंटके तौरपर जो चाहे सो दें। करके तौरपर तो तिलक स्वराज्य कोषमें कमसे-कम प्रति सैकड़ा १) ही देना चाहिए, अधिक भले ही जितना चाहें उतना दें। जो लोग अधिक दे सकते हैं वे अधिक जरूर दें जिससे न देनेवाले लोगोंकी रकमकी पूर्ति हो जाये। यह मान लिया जायेगा कि अधिक देनेवाले उन लोगोंकी ओरसे दे रहे हैं।

इस धनका उपयोग फिलहाल तो मुख्यतः तीन कामोंमें किया जायेगा। दाता इच्छानुसार अपनी दी हुई रकम इन तीनमें से किसी भी कामके लिए अंकित कर सकता है; खादी अथवा चरखेका प्रचार, शिक्षा और अन्त्यजोंकी सेवा। इस साल शिक्षाका काम अच्छी बुनियादपर चलाना है। सरकारी विद्यालयोंमें एक भी लड़केका रहना मैं शर्मकी बात मानता हूँ। हम अपने शिक्षालयोंकी हालत अच्छी बनाकर प्रत्येक बालक-बालिकाको इस ओर खींच सकते हैं। यदि एक भी बालक ऐसा निकले जो पाठशाला न जाता हो तो इसे भी मैं शर्मकी बात समझूँगा।

ये दोनों विभाग ऐसे हैं कि यदि अच्छी तरह चलाये गये तो कर देनेवालेको तथा समस्त जनताको दस गुना बदला मिल जायेगा। पिछली साल गुजरातने जो पन्द्रह लाख दिये थे उनका उपयोग मुख्यतः इन्हीं दो कार्योंके लिए हुआ है। इस साल अन्त्यज-सेवामें अधिक धन लगाना पड़ेगा। सो यदि गुजरातियोंको कांग्रेसका कार्य सन्तोष-जनक मालूम हुआ हो तो वे अधिक ही धन देंगे, कम नहीं और उसे वसूल करनेमें कम मेहनत करायेंगे। जनता कांग्रेसका कितना आदर करती है, उसकी यह पहली कसौटी है। मैं आशा करता हूँ कि सब लोग एक-दूसरेकी राह देखे बिना अपने-आप इस करको अदा कर देंगे।

सब लोग यह बात ध्यानमें रखें कि प्रान्तीय कमेटीका हिसाब-किताब बिलकुल ठीक है। स्थानीय और अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी द्वारा नियुक्त दो लेखा परीक्षकों-ने उसकी जाँच भी की है। वह अपना हिसाब समय-समयपर प्रकाशित भी करती रही है।

अहमदाबादकी नगरपालिका

नगरपालिका जनताके हाथमें है, सत्ता [सरकार द्वारा नियुक्त] समितिके हाथ-में। जिस समय सरकारने समिति नियुक्त कर दी, उसी समय नगरपालिका राष्ट्रीय हो गई, क्योंकि समितिकी नियुक्तिके साथ ही सरकारसे जनताके चुने प्रतिनिधियोंके सम्बन्ध टूट गये।

इस घटनाको दो दृष्टियोंसे देखा जा सकता है। सरकारने नगरपालिका बन्द कर दी, इसे यदि हम अपने लिए एक अप्रत्याशित अनिष्ट मानें तब तो ऐसा नहीं कहा जायेगा कि नगरपालिका राष्ट्रीय हो गई, बल्कि यही कहा जायेगा कि जनतासे सत्ता छीन ली गई है। किन्तु यदि हम ऐसा समझें — और यही समझना ठीक भी है — कि हमारा तो लक्ष्य ही यही था कि सरकार या तो नगरपालिकाकी सत्ता स्वीकार करे या फिर उसे बन्द ही कर दे तो माना जायेगा कि नगरपालिका स्वतन्त्र हो गई है और इसलिए राष्ट्रीय भी हो गई।

और यह सचमुच राष्ट्रीय हुई है या नहीं, इसका निर्णय तो नागरिकोंपर निर्भर करता है। यदि नागरिक लोग प्रतिनिधियोंमें विश्वास रखें, अपने नगरका काम उन्हींसे करायें तो इसका मतलब होगा कि नगरपालिका राष्ट्रीय हो गई है। किन्तु जिन बातोंमें वे अपनी स्वतन्त्रताका प्रयोग आसानीसे कर सकते हैं, उन बातोंमें भी यदि उन्होंने समितिकी सत्ता स्वीकार कर ली तब तो यही माना जायेगा कि नगरपालिका सरकारके हाथोंमें चली गई।

नागरिकों और उनके प्रतिनिधियोंकी लाज स्वयं नागरिकोंके ही हाथमें है। कोई भी व्यक्ति किसीको उसकी मरजीके खिलाफ अपने वशमें नहीं कर सकता। यह अटल नियम है। हाँ, यह सही है कि हजारों मामलोंमें हमें प्रतीत ऐसा ही होता है कि लोग बल-प्रयोगके सामने लाचार होकर काम कर रहे हैं। यदि कोई मौतका डर दिखाकर मुझसे कोई काम कराता है तो हम यही मानते हैं यह जबरदस्ती है। लेकिन यदि मैं मरनेपर उतारू हो जाऊँ तो मुझसे कौन क्या करा सकता है? इसलिए किसीका भी यह कहना कि अमुक काम उसने अपनी मरजीके खिलाफ किया है माना नहीं जा सकता। किन्तु रूढ़ि ऐसी अवश्य है कि जब कोई व्यक्ति शरीर-बलके सामने लाचार होकर कुछ करता है तो कहा यही जाता है कि उसने वह काम अपनी इच्छाके विरुद्ध किया। लेकिन वास्तविकता ऐसी नहीं है। आत्माको यदि कोई बाँध या मुक्त कर सकता है तो वह स्वयं आत्मा ही है।

झगड़ा तो सिर्फ शिक्षाके सवालपर ही था। प्रकाश-व्यवस्था, टट्टी-पानी आदिके मामलेमें नगरपालिका सरकारकी इच्छाके अनुकूल ही चलना चाहती थी। गलियों और सड़कोंपर प्रकाशकी व्यवस्था सरकार करे, इसमें हमारा कोई बड़ा नुकसान नहीं हुआ जाता था। लेकिन यह चीज हमें बरदाश्त नहीं थी कि हमारे बालकोंके हृदय-मन्दिरमें ज्ञानकी ज्योति भी सरकार ही जलाये और उनके मस्तिष्ककी सफाई भी वही करे। यह ज्योति, यह सफाई स्वाभाविक नहीं थी। इसलिए हमने शिक्षाको राष्ट्रीय रूप दिया। इस विषयपर हमारे और सरकारके बीच मतैक्य नहीं हो पाया और वैर हो गया। यह एक ऐसी बात है जिसमें नागरिक अपनेको सर्वोपरि सिद्ध कर सकते हैं। सरकार सड़कोंको साफ करना चाहे तो करे; हमें सड़कोंको साफ करनेके लिए उसको सौंपना नहीं है, लेकिन बच्चोंको तो जब हम अपनी इच्छासे सरकारी स्कूलोंमें भेजेंगे तभी वह उन्हें पढ़ा पायेगी। इसलिए शिक्षाके सम्बन्धमें नागरिक लोग इच्छा-भर करनेसे अपनी स्वतन्त्रताकी रक्षा पूरी तरह कर सकते हैं।

दिल्लीसे लौटनेपर[1] मैंने सुना कि लगभग सात हजार बालकोंके लिए कोई पैंतीस राष्ट्रीय शालाएँ तो खोली जा चुकी हैं तथा अभी ऐसी और भी शालाएँ खोलनेकी व्यवस्था की जा रही है। यह सुनकर मुझे बहुत खुशी हुई। मुझे उम्मीद है कि समिति अर्थात् सरकारके स्कूलोंमें एक भी बालक या बालिका नहीं रह जायेगी।

और यदि नागरिक लोग चाहें तो एक भी बालक या बालिका सरकारी स्कूलमें न जाये। कुछ काम तो सिर्फ हमारे आलस्य या उदासीनताके कारण ही बिगड़ जाते हैं। हमें आशा करनी चाहिए कि नागरिक लोग कमसे-कम अपने बच्चोंकी ओरसे तो उदासीन नहीं ही रहेंगे। उसमें तो सिर्फ पैसा जुटाने और अच्छी शिक्षाकी व्यवस्था कर देनेकी ही जरूरत है। शिक्षाका नियन्त्रण अपने हाथमें रखें तो बच्चोंको कमसे-कम खर्चमें अच्छीसे-अच्छी शिक्षा दी जा सकती है।

जिन माता-पिताओंने अपने बच्चोंको सरकारी स्कूलोंसे निकाल लिया है, जिन लोगोंने अपने मकान दिये हैं और जिन शिक्षकोंने सरकारी नौकरी छोड़ दी है, उन्हें

१. गांधीजी १ मार्चको दिल्लीसे अहमदाबाद लौटे थे।

मैं धन्यवाद देता हूँ। आशा है कि उन्होंने जो काम आरम्भ किया है उसे वे पूरा करेंगे और आगे बढ़ायेंगे।

अब यह सवाल है कि नागरिकोंका पैसा तो समितिके हाथमें जायेगा, वे कर तो देंगे ही। मेरी सलाह है कि अभी इस सवालपर विचार न किया जाये। यदि नागरिक लोग शिक्षाके कार्यक्रमको अच्छी तरह पार लगा दें तो मैं मानूँगा कि उनकी पूरी जीत हो गई है। इस कामको पूरा करके ही दूसरे सवालोंपर लड़ाई करना ठीक होगा। यदि अभी हम दूसरे सवालोंपर लड़ना शुरू कर देंगे तो सम्भव है कि इस कामका, जो सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है, नुकसान हो। इसके अलावा दूसरे सवाल-पर लड़ाई छेड़नेसे कटुता बढ़नेकी भी सम्भावना है। शिक्षाका कार्यक्रम तो मिठाससे और बिना किसी गड़बड़ीके पूरा हो जाये, इसीमें शोभा है। यदि नागरिक लोग यह काम स्वतन्त्र रूपसे चला सकें और उसमें प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष किसी रूपमें जोर-जबरदस्ती न करें तो यह कोई मामूली बात नहीं होगी।

व्यापारियोंकी चिन्ता

ऐसा दिखाई देता है कि व्यापारी लोग आजकल घबरा रहे हैं। उनका खयाल है कि वर्तमान आन्दोलनसे व्यापारका सत्यानाश हो जायेगा। यह खयाल सच नहीं है। यह आन्दोलन व्यापार या व्यापारियोंके खिलाफ नहीं बल्कि व्यापारके लिए चलाया गया है। आज व्यापारी लोग सौ रुपये पीछे सिर्फ पाँच रुपये पैदा करते हैं और बाकी बाहर भेजते हैं। इस आन्दोलनके सफल हो जानेपर सौके-सौ रुपये ही व्यापारियोंके घरमें रहेंगे; या वे पाँच रुपये अपने घरमें रखकर पंचानवे रुपये गरीबोंके घरमें पहुँचायेंगे।

व्यापारियोंको सिर्फ निर्भय होनेकी आवश्यकता है। कुछ विश्वास रखनेकी जरूरत है और कुछ साहस दिखानेकी आवश्यकता है। सरकार व्यापार कराती हो, सो बात नहीं। वह तो गुलामी और अधिक हुआ तो दलाली कराती है। यदि वह एक हिन्दु-स्तानीको करोड़पति होने देती है तो उसके पीछे यूरोपमें सौ करोड़पति बनाती है। जो व्यापारी इस सीधे हिसाबको समझ जाये वह तो इस युद्धमें कूद पड़े, और यदि व्यापारी अपने हिस्सेका काम पूरा करें तो यह लड़ाई शीघ्र ही समाप्त हो जाये और वे तथा देश शान्तिके साथ अपने-अपने काममें लग जायें।

कपड़ेके व्यापारियोंको अधिकसे-अधिक हिम्मत दिखानेकी आवश्यकता है। विलायती कपड़े तथा मिलके कपड़ेका व्यापार छोड़कर उन्हें शुद्ध खादीका ही व्यापार करना चाहिए। खादीका व्यापार भी ईमानदारीसे किया जाये तो खूब चल सकता है और सैकड़ों आदमी उसके द्वारा अपनी जीविका कमा सकते हैं तथा लोक-कल्याण हो सकता है। यह माननेका तो कोई कारण ही नहीं है कि व्यापारी लोग सचाईसे काम नहीं ले सकते। अनुभवसे व्यापारी लोग देखेंगे कि यदि वे अपने लोभकी एक हद बाँध लें तो उन्हें असत्यका अवलम्बन करनेकी जरा भी जरूरत न रहे।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ५-३-१९२२

५. प्राक्कथन

सत्याग्रह आश्रम
साबरमती
५ मार्च, १९२२

तीन महीनेसे ज्यादा समय हो गया, शराब और मादक वस्तुओंकी बुराईपर श्री बदरुल हसन द्वारा लिखी पुस्तककी टाइप की हुई पाण्डुलिपि मेरी मेजपर पड़ी हुई है। मैं उसे पढ़कर काफी लम्बा प्राक्कथन लिखना चाहता था और इसीलिए प्राक्कथन लिखना मुल्तवी करता रहा। पर अब इसे और मुल्तवी नहीं किया जा सकता।

श्री बदरुल हसन कई महीनेतक मुझे साप्ताहिक 'यंग इंडिया' के प्रकाशनमें मदद देते रहे हैं। 'यंग इंडिया' के पाठकोंको शराब और अफीमखोरीकी लतोंपर लिखे उनके लेखोंका स्मरण होगा। उनसे सरकारी रिपोर्टों और क्रमबद्ध आँकड़ोंका गहरा अध्ययन प्रकट होता है। पाठकोंके सामने अब जो पुस्तक प्रस्तुत है, उसमें 'यंग इंडिया' में प्रकाशित श्री बदरुल हसनके लेखोंको ही परिवर्धित और विस्तृत रूपमें पुनः प्रकाशित किया गया है। जो इन्हें पढ़ेगा वह लाभ ही उठायेगा और जो सुधारक भारतको इस दोहरे दोषसे मुक्त करानेपर तुला है, उसे भी इससे अवश्य मदद मिलेगी। श्री बदरुल हसनकी पुस्तकको पढ़नेसे पता चलता है कि इस आदतको किस तरह सरकारकी नीतिसे बढ़ावा मिला है। पुस्तकमें जो तथ्य और आँकड़े पाठकोंके सामने प्रस्तुत किये गये हैं, उनसे साफतौरपर पता चलता है कि भारतके लोगोंकी इन दोनों बुरी लतोंका सरकारने लाभ उठाकर पैसा कमाया है। ये दोनों दोष भारतमें ही बहुत शुरूसे मौजूद थे, इस तर्कको किसी तरहकी सफाईके रूपमें पेश नहीं किया जा सकता। राजस्व बढ़ानेके लिए वर्तमान सरकारने इस बुराईको जितना संगठित रूप दिया, उतना अन्य किसीने कभी नहीं दिया था। परन्तु मुझे लेखकके निष्कर्षोंको पहलेसे ही जाहिर नहीं कर देना चाहिए। तरुण लेखकको स्वयं अपनी बात सिद्ध करने दीजिए।

मो० क० गांधी

ड्रिंक ऐन्ड ड्रग इविल इन इंडिया

६. पत्र : देवदास गांधीको

रविवार [५ मार्च, १९२२][१]

चि० देवदास,

वसुमतीबहनके बारेमें तुमने जैसा लिखा वैसा ही है। कृष्णदासको तो मैं योगी मानता हूँ। उसकी शान्ति, धीरज, बुद्धि, एकाग्रता आदि सारे गुण अनुकरणीय हैं।

अपने पत्रमें तुमने प्रश्न पूछे सो ठीक ही किया। मैं अनेकान्तवादी हूँ। एक वस्तुके अनेक पहलुओंको देख सकता हूँ। गार्ड किसी सवारीको [बिना टिकटके यात्रा करते हुए] पाये तो यह जरूरी नहीं कि उससे पिछले चेकिंग स्टेशनसे ही किराया माँगा जाये। यह नीति-व्यवहार है। इसी बातको ध्यानमें रखकर मैंने यह कहा था कि किराया आबूरोडसे नहीं दिया जा सकता। इसके सिवा, ऐसा करना तुम्हारा कर्त्तव्य तो कदापि नहीं था। ये लड़के निर्दोष भावसे सवार हुए थे। मैंने यह बात स्वीकार की थी कि यह किराया उन्हें देना चाहिए, यानी पालनपुरसे देना चाहिए। मैं यह समझा था कि वे यह किराया देनेसे इनकार कर रहे थे।

मॉडर्न स्कूलका मामला ऐसा है कि लड़कोंको युवराजके सम्मानके काममें जबरदस्ती घसीटा गया। इसके प्रतिकारका उपाय धरना देना नहीं था। इस चीजके खिलाफ आवाज उठा सकते थे। इसके सिवा मैंने ऐसा समझा कि तुम्हारा कहना यह है कि लड़कोंको सजा दी गई इसलिए तुमने धरना देनेके उपायका आश्रय लिया। मैं कहूँगा कि यह तो और भी खराब हुआ।

अभी और कोई प्रश्न पूछना हो तो पूछना।

अब चूँकि जवाहरलाल [जेलसे रिहा होकर] आ गये हैं, इसलिए तुम्हें काफी मदद मिलेगी।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च :] वक्तकी पाबन्दीका नियम पालना।

मूल गुजराती पत्र (एस० एन० ७९७९)की फोटो-नकलसे।

१. पत्रमें जवाहरलाल नेहरूके जेलसे रिहा होनेका उल्लेख है; उनकी रिहाई ३ मार्च, १९२२ को हुई थी।

७. पत्र : देवदास गांधीको

मौनवार [६ मार्च, १९२२][1]

चि० देवदास,

यह तार और पत्र[2] यहां मिले हैं। पत्र सतीश बाबूका है। इसका उत्तर तुरन्त देना।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च :]

मैंने तुम्हें कल उत्तर भेजा है। जब तुम्हें फुरसत मिले तब हेडमास्टर जोजेफसे मिल तो लेना ही।

मूल गुजराती पत्र (एस० एन० ७९८०) की फोटो-नकलसे।

८. पत्र : मथुरादास त्रिकमजीको[3]

मौनवार [६ मार्च, १९२२]

अब तो तुम्हारा मन शान्त हो गया होगा; इसलिए ज्यादा कुछ लिखनेकी बात नहीं रह जाती। महादेवको अभी नहीं लिखा है। आज लिखनेका विचार है। यदि लिखा तो उसे लिफाफेमें रखकर तुम्हें भेज दूंगा और तुम उसे महादेवको भेज देना। इससे तुम्हारी जिज्ञासा शान्त हो जायेगी।

तुम मुझे जैसा चाहो वैसा पत्र लिख सकते हो। इसके लिए माफी माँगनेकी जरूरत नहीं। उससे मैं तो कुछ-न-कुछ सीख ही सकता हूँ।

मैं अनेकान्तवादी हूँ। जैन-दर्शनसे सबसे महत्त्वपूर्ण बात मैंने यही सीखी है। वेदान्तमें वह गूढ़ रूपमें है, जैन-दर्शनमें स्पष्ट है। मैंने दिल्लीमें जो-कुछ किया[4] उसमें, और आन्दोलनको स्थगित करके मैं अब जो-कुछ कर रहा हूँ उसमें मुझे तनिक भी विरोध नहीं दिखाई देता। यदि मैं दिल्लीमें कड़ा रुख अपनाता तो वह मेरी हिंसा मानी जाती। मेरे साथी निश्छल भावसे अपनी मुश्किलोंको मेरे सामने रख रहे थे, उन्हें मैं कैसे दुत्कार सकता था? लेकिन जब मैंने प्रान्तोंको स्वतन्त्रता देनेका निश्चय किया

१. 'पुनश्च' के अन्तर्गत जोड़े गये भागमें स्पष्टतः मॉडर्न स्कूलकी उसी घटनाकी ओर संकेत है जिसका उल्लेख गांधीजीने देवदासको लिखे अपने ५ मार्च, १९२२ के पत्रमें किया है।

२. ये उपलब्ध नहीं हैं।

३. गांधीजीके भानजे।

४. गांधीजीने २४ फरवरी, १९२२ को अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीकी बैठकमें सामूहिक सविनय अवज्ञाको स्थगित करनेकी सलाह दी थी; देखिए खण्ड २२, पृष्ठ ५०५-९।

तभी मैंने अपनी योजना बना ली और इस तरह दोनों पक्षोंको सन्तोष दिया। सरकारी पक्षका मन रखनेकी तो मुझे जरूरत ही नहीं थी। इसीसे गोखलेने[1] मुझे दो विशेषण दिये थे। मैं जितना कठोर हूँ उतना ही कोमल हूँ, ऐसा कहकर उन्होंने [भारत सेवक] समाज [सर्वेंट ऑफ इंडिया सोसाइटी] के सदस्योंको मुझे समाजमें लेनेकी सलाह दी थी। लेकिन वे लोग केवल मेरी कठोरता ही देख सके। मैं रविवार और सोमवार सूरतमें बिताऊँगा और मंगलवारको सुबह बारडोली जाऊँगा।

[गुजरातीसे]

बापुनी प्रसादी

९. पत्र : टी० प्रकाशम्‌को

सत्याग्रह आश्रम
साबरमती
७ मार्च, १९२२

प्रिय प्रकाशम्[2],

आपने मेरे भावी कार्यक्रमके विषयमें पूछा है। मैंने अभी-अभी आपके नाम निम्नलिखित तार भेजा है:

"शनिवारतक अहमदाबादमें, रवि और सोमको सूरतमें, मंगलवारको बारडोली।"

पर यह सरकारकी मर्जीपर निर्भर है क्योंकि कानोंमें लगातार यही भनक पड़ रही है कि छुट्टी तो मुझे अबतक कभीकी मिल जानी थी। लोग यह भी कह रहे हैं कि सात दिनके अन्दर-ही-अन्दर मेरे सिरका बोझ उतर जायेगा। यदि वह शुभ घड़ी न आई तो उपर्युक्त कार्यक्रम बरकरार समझिए। यदि मैं गिरफ्तार कर लिया जाऊँ तो आपसे तथा उन अन्य कार्यकर्ताओंसे जो जेलके बाहर रहेंगे मेरी यही अपेक्षा रहेगी कि सर्वत्र पूरी शान्ति बनाये रखनेकी चेष्टा की जायेगी। देशमें शान्ति बनाये रखना ही मेरे प्रति अधिकसे-अधिक सम्मान प्रकट करना होगा। जेलमें रहते हुए यदि मुझे यह खबर मिली कि किसी असहयोगीने अथवा असहयोगीकी ओरसे किसीने एक भी व्यक्तिको जख्मी किया या उसका अपमान किया है अथवा किसी इमारतको नुकसान पहुँचाया तो मुझे बड़ा ही दुःख होगा। अगर जनता या कार्यकर्तागण मेरे सन्देशको तनिक भी समझ पाये हैं तो वे अनुकरणीय शान्ति कायम रखेंगे। मेरी गिरफ्तारीके दूसरे ही दिन यदि सारे हिन्दुस्तानमें सर्वथा स्वेच्छासे त्यागे हुए विदेशी कपड़ोंकी बिना किसी दबावके होली जलाई जाये और लोग केवल खद्दरको ही उपयोगमें लानेका दृढ़ संकल्प कर लें, तथा पर्याप्त खादी न मिलने तक [हिन्दू] लोग भारतके शानदार मौसमको देखते हुए एक छोटी धोतीसे काम चला लें

१. गोपालकृष्ण गोखले (१८६६-१९१५)।

२. टी० प्रकाशम् (१८७६-१९५७); स्वराज्यके सम्पादक, 'आन्ध्र-केसरी' के नामसे विख्यात मद्रासके मुख्य मन्त्री।

और मुसलमान अपनी धार्मिक रीतियों द्वारा अपेक्षित कमसे-कम कपड़ा पहनकर गुजर कर लें तो निःसन्देह मुझे सन्तोष होगा। कार्यकर्त्ताओंने अबतक चरखा चलाना शुरू नहीं किया है। वे अब चरखेका जोरोंसे प्रचार करने लगे हैं और चरखोंकी माँग बड़ी तेजीसे बढ़ गई है। यह सुनकर भी मुझे बड़ी खुशी होगी। भावी कार्यक्रमके बारेमें मैं जितना अधिक विचार करता हूँ और हमारे बीच अलक्षित रूपसे हिंसाकी भावना निश्चय ही बढ़ते जानेकी जितनी अधिक खबरें मिलती जाती हैं उतना ही अधिक मेरा यह विचार पक्का होता जाता है कि अभी व्यक्तिगत सत्याग्रह शुरू करना भी गलत होगा। अपने अनुयायियोंकी संख्या बहुत विशाल बता सकनेके फेरमें असत्य आचरण करनेकी अपेक्षा सत्य-पथपर चलते हुए सारे संसारसे परित्यक्त हो जाना कहीं अच्छा है। हमारी संख्या अधिक हो अथवा नगण्य, जबतक हमें अहिंसापर विश्वास है तबतक रचनात्मक कार्यक्रमका पूरा-पूरा पालन किये बिना छुटकारा नहीं मिल सकता। अगर हम उसपर आज अमल करते हैं तो कल ही सारे देशको सविनय अवज्ञाके लिए तैयार समझिए। और यदि आप यह नहीं कर सकते तो व्यक्तिगत सत्याग्रह भी नहीं छेड़ा जा सकता। और यह कोई कठिन काम नहीं है। अगर अखिल भारतीय और प्रान्तीय कांग्रेस कमेटियोंके सभी सदस्योंको यह विश्वास हो जाये कि सविनय अवज्ञासे सम्बन्धित मेरी शर्तें सही हैं तो यह आन्दोलन शुरू किया जा सकता है। पर अफसोस है कि उनको ऐसा विश्वास अभीतक नहीं हुआ है। नीति तो एक अस्थायी चीज होती है; उसमें रद्दोबदल किया जा सकता है, लेकिन जबतक कोई नीति ठीक मानी जा रही है तबतक उसपर पूरे उत्साह और पूरी लगनके साथ अमल करना ही पड़ेगा।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ७९७३) की फोटो-नकलसे।

१०. तार: टी० प्रकाशम्‌को

[८ मार्च, १९२२]

वेंकटप्पैयाकी गिरफ्तारी सुनकर खुशी।[१] आशा है कोई हड़ताल, प्रदर्शन, सविनय अवज्ञा यहाँतक कि मानसिक क्षोभ भी नहीं होगा बल्कि रचनात्मक कार्यक्रमपर अमल करनेका दृढ़ संकल्प किया जायेगा। वेंकटप्पैयाके प्रति प्रेम रखनेवाले हरएक आन्ध्रवासीके लिए सर्वाधिक प्रभावकारी प्रदर्शन होगा समस्त विदेशी वस्त्रोंका परित्याग, अस्पृश्यता निवारण और कताई। आपकी जरूरतोंपर ध्यान दे रहा हूँ।

गांधी

[अंग्रेजीसे]
सेवन मन्थ्स विद महात्मा गांधी

१. देखिए "देशभक्तकी गिरफ्तारी", ९-३-१९२२।

११. पत्र : मगनलाल गांधीको

बुधवार [८ मार्च, १९२२][1]

चि० मगनलाल,[2]

डा० मेहताने[3] रतुके लिए एक आदमीकी माँग की है। उसका विचार करते हुए मुझे सुरेन्द्रके[4] अलावा और कोई नहीं सूझता। इस कामके लिए धीरज, प्रेम और तितिक्षा चाहिए। सुरेन्द्रसे पूछना वह लिहाजके कारण हाँ न करे। वह रतुको साथ लेकर चाहे तो घूमे-फिरे और उसे जीत ले तो यहाँ ले आये। लेकिन यदि उसकी मर्जी न हो तो भले ही इनकार कर दे। तुम्हें इसका कोई दूसरा उपाय सूझे तो बताना। सुरेन्द्र जानेका विचार करे तो मुझसे बारडोलीमें मिल ले और फिर चला जाये। यदि वह जानेका निर्णय करे तो डाक्टरको तार देकर पूछना कि क्या हम सुरेन्द्रको भेजें। मैं यह पत्र अजमेर जाते हुए लिख रहा हूँ। वहाँसे शुक्रवारको वापस आऊँगा।

बापूके आशीर्वाद

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें मूल गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ५९८७)से।
सौजन्य : राधाबहन चौधरी

१२. पत्र : एस्थर मेननको[5]

अजमेर
८ मार्च, १९२२

रानी बिटिया,

यहाँ मैं केवल एक दिनके लिए आया हूँ। तुम्हें पत्र लिखनेका अवकाश मुझे यहीं मिल पाया है। तुम्हारी उछल-कूद भरी आजादी तो छिन गई; लेकिन दूसरे व्यक्तिके जीवनमें भागीदार बनकर तुम उससे कुछ ज्यादा ही पा गई हो। विवाहका

१. गांधीजी इस तारीखको अजमेर पहुँचे थे।

२. मगनलाल खुशालचन्द गांधी (१८८३-१९२८); गांधीजीके भतीजे।

३. डाक्टर प्राणजीवन मेहता, गांधीजी जब लन्दनमें विद्यार्थी थे, ये तभीसे उनके मित्र थे।

४. सम्भवतः अहमदाबादके सुरेन्द्र मेढ़, जिन्होंने दक्षिण आफ्रिकामें सत्याग्रह आन्दोलनमें भाग लिया था।

५. एस्थर फैरिंगको गांधीजी अपनी बेटी मानते थे। वे भारतमें डेनिश मिशनरीकी तरह आई थीं और बादमें साबरमती आश्रममें रहने लगी थीं। कालान्तरमें उन्होंने ई० के० मेननसे विवाह कर लिया था।

यदि कोई अर्थ है तो यही है कि वह अधिक आत्म-समर्पणकी दिशामें ले जाये। आगे चलकर यही हम सबको करना है। दो समान (शासित होनेवाले) व्यक्तियोंके परस्पर आत्म-समर्पणका अर्थ अधिक स्वतन्त्रता है, क्योंकि वह किसी महत्तर उत्तरदायित्वकी स्वीकृति है। महत्तम उत्तरदायित्वका पालन ही अधिकतम स्वतन्त्रता है। यह ईश्वरके प्रति पूर्ण आत्म-समर्पणसे ही प्राप्त होती है।

मैं जानता हूँ कि तुम जब भी हो सकेगा अवश्य आओगी। यदि मैं अब भी न पकड़ा गया तो मैं कुछ समयतक गुजरातसे बाहर नहीं जाऊँगा। मेरी गिरफ्तारीके बारेमें तरह-तरहकी अफवाहें हैं।

कुमारी पीटर्सनका[1] मेरा एक पत्र पड़ा हुआ है।

तुम सबको प्यार सहित,

तुम्हारा,
वापू

नेशनल आर्काइव्ज ऑफ इंडियामें सुरक्षित मूल अंग्रेजी पत्रकी फोटो-नकल तथा 'माई डियर चाइल्ड' से।

१३. अहिंसा

जब कोई मनुष्य यह कहता है कि मैं अहिंसापरायण हूँ, तब उससे यह आशा की जाती है कि यदि उसे कोई हानि पहुँचाये तो वह उसपर क्रोध न करे, उसका नुकसान न चाहे; बल्कि उसकी भलाई ही चाहे। न वह उसके प्रति अनर्गल प्रलाप करेगा और न उसे किसी तरहकी शारीरिक चोट ही पहुँचायेगा। वह तो अन्यायकर्त्ता द्वारा किये गये अपने हर तरहके नुकसानको सहन ही करेगा। इस तरह अहिंसा पूर्ण निर्दोषिताकी अवस्था है; और पूर्ण अहिंसाका अर्थ है प्राणिमात्रके प्रति दुर्भावका पूर्ण अभाव। इसलिए अहिंसामें मनुष्यसे नीचेकी कोटिके प्राणियों, यहाँतक कि हानिकर कीड़े-मकोड़ों और पशुओंका भी समावेश है। उनकी सृष्टि हमारी विनाशक प्रवृत्तियों-का पोषण करते रहनेके लिए नहीं हुई है। यदि हम सृष्टिकर्त्ताके हेतुको समझ पाते तो हमें इस बातका पता लग जाता कि उसकी सृष्टिमें उन जीवोंका उचित स्थान क्या है। अतएव अहिंसाका क्रियात्मक रूप क्या है? प्राणिमात्रके प्रति सद्भाव। यही शुद्ध प्रेम है। क्या हिन्दू शास्त्र, क्या 'बाइबिल' और क्या 'कुरान', सब जगह मुझे तो यही दिखाई पड़ा है।

अहिंसा एक पूर्ण स्थिति है। सारी मनुष्य-जाति इसी एक लक्ष्यकी ओर स्वभावतः परन्तु अनजाने बढ़ रही है। मनुष्य जब अपने तईं निर्दोषिताकी साक्षात् मूर्ति बन जाता है तब वह कुछ दैवी पुरुष नहीं हो जाता। उसी अवस्थामें वह सच्चा मनुष्य

1. एन मेरी पीटर्सन, एक डेनिश मिशनरी।

बनता है। आजकी अवस्थामें तो हम कुछ अंशोंमें मनुष्य और कुछ अंशोंमें पशु हैं। हम घूँसेके बदले घूँसा जमाते हैं; ऐसा करते हुए दाँत पीसते हैं और ऊपरसे अपने दर्प और अज्ञानके वशीभूत होकर इसे मनुष्य जातिके अस्तित्वको सचमुच सार्थक बनाना तक कह डालते हैं। हम ढोंग रचते हैं कि प्रतिहिंसा मनुष्यकी स्वाभाविक प्रवृत्ति है और हमारा इसके बिना काम ही नहीं चल सकता। परन्तु इसके विपरीत धर्मग्रन्थोंमें तो हम यह पाते हैं कि प्रतिहिंसाको कहीं भी अनिवार्य कर्त्तव्य नहीं माना गया है; उसके लिए केवल छूट-भर दी है। अनिवार्य कर्त्तव्य तो संयम है। प्रतिहिंसा एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें न जाने कितने नियमों और उपनियमोंके पालन करनेका ध्यान रखना पड़ता है। और संयम तो हमारे जीवनकी सहज-सरल गति है। बिना पूर्ण संयमके मनुष्य पूर्णावस्थाको पहुँच ही नहीं सकता। इस प्रकार सहनशीलता संयम — ही मनुष्य-जातिका विशेष धर्म है।

लक्ष्य तो हमेशा आगे-ही-आगे खिसकता रहता है। ज्यों-ज्यों अधिक प्रगति होती जाती है त्यों-त्यों हमें अपनी अयोग्यताका अधिकाधिक आभास होता है। सन्तोष तो प्रयत्नमें है, अभीष्ट सिद्धिमें नहीं। पूर्ण प्रयत्न ही पूर्ण विजय है।

अतएव, यद्यपि मैं सदासे भी अधिक आज इस बातको महसूस करता हूँ कि मैं अपने लक्ष्यसे बहुत दूर हूँ, तथापि मेरे लिए तो पूर्ण प्रेमका सिद्धान्त ही अपने अस्तित्वका नियम है। जब-जब मुझे असफलता मिलेगी, मैं असफलताके कारण और भी अधिक निश्चयके साथ प्रयत्न करूँगा।

लेकिन मैं कांग्रेस और खिलाफत संगठनके द्वारा इस सर्वोपरि सिद्धान्तके अमलका प्रचार कर ही नहीं रहा हूँ। मैं अपनी मर्यादाओंको खूब अच्छी तरह जानता हूँ। मैं जानता हूँ कि ऐसा प्रयत्न असफल ही रहेगा। सारे मनुष्य-समाजसे यह आशा करना कि वे सब एकबारगी इस सिद्धान्तके अनुसार चलने लगेंगे, इस सिद्धान्तके रहस्यका अज्ञान सूचित करता है। लेकिन फिर भी कांग्रेसके मंचसे मैं उस सिद्धान्तसे निकले नियमोंका प्रचार तो अवश्य कर रहा हूँ। कांग्रेस तथा खिलाफत समितिने तो इस सिद्धान्तसे निकलनेवाले निष्कर्षोंका एक अंश-मात्र स्वीकार किया है। यदि कार्यकर्त्ता लोग सच्चे हों, तो थोड़े ही समयमें यह बात जानी जा सकती है कि विशाल जन-समूहपर सीमित परिमाणमें उसका प्रयोग किस तरह किया जा सकता है। लेकिन वह सीमित परिमाण भी तभी खरा ठहर सकता है जब कि वह भी उसी कसौटीपर कसा गया हो; जिसपर सम्पूर्ण सिद्धान्त। एक बूँद पानीमें वे सब गुण-धर्म होने चाहिए जो एक पूरे सरोवरके पानीमें होते हैं। अपने भाईके साथ मैं जिस अहिंसाका व्यवहार करूँगा, वह सारे विश्वके प्रति मेरी अहिंसासे भिन्न नहीं हो सकता। जब मैं अपने भ्रातृ-प्रेमको सारे विश्वतक व्यापक करूँ तो उस अवस्थामें भी उसे सत्यकी कसौटीपर खरा उतरना चाहिए।

जब किसी नियमका व्यवहार देश और कालकी मर्यादासे बाँध दिया जाता है, तब उसे व्यवहार-नियम या व्यवहार-धर्म कहते हैं। अतएव उच्चतम व्यवहार-नियमका पालन ही उस सिद्धान्तका पूर्ण रूपसे पालन करना है। लेकिन हम प्रामाणिकताका व्यवहार चाहे नीति समझकर करें, चाहे सिद्धान्त समझकर, जबतक वह प्रामाणिकताके

साथ व्यवहृत होती है, तबतक वह सिद्धान्त ही है। ईमानदारीको व्यवहार-नियमके तौरपर माननेवाला दुकानदार भी वैसा ही और उतने ही गज कपड़ा देता है, जितना कि ईमानदारीको धर्म समझनेवाला दुकानदार। दोनोंमें फर्क केवल इतना ही है कि चतुर दुकानदार अपनी ईमानदारीको उस समय छोड़ देगा जब उसमें उसे लाभ दिखाई नहीं देगा और उसपर श्रद्धा रखनेवाला दुकानदार अपना सर्वस्व गँवा देनेपर भी उससे मुँह नहीं मोड़ेगा।

पर असहयोगियोंकी राजनैतिक अहिंसा इस कसौटीपर ज्यादातर खरी नहीं उतरती। इसीसे यह संघर्ष लम्बा खिचता जा रहा है। इस कारण अंग्रेजोंकी दुराग्रही प्रवृत्तिको दोष नहीं देना चाहिए। प्रेममें पत्थर तकको पिघला देनेकी शक्ति होती है। मैं इस बातको जानता हूँ; अतएव अपने इस विचारको मैं त्याग नहीं सकता। यदि अंग्रेजों अथवा दूसरे लोगोंपर इसका यथेष्ट असर नहीं होता, तो इसका अर्थ यही है कि या तो वह प्रेमाग्नि ही हमारे अन्दर नहीं है या वह पर्याप्त रूपसे प्रचण्ड नहीं है।

हमारी अहिंसा बलवान्की अहिंसा भले न हो, पर उसे सच्चे लोगोंकी अहिंसा जरूर होना चाहिए। यदि हम अहिंसापरायण होनेका दावा करते हैं तो हमें उस घड़ीतक अंग्रेज अथवा अपने सहयोगी भाइयोंको हानि पहुँचानेका इरादा कदापि नहीं करना चाहिए जबतक हम अपना यह अहिंसापरायणताका दावा छोड़ नहीं देते। लेकिन हममें से अधिकांश लोगोंने निःसन्देह उन्हें नुकसान पहुँचाना चाहा है। यदि ऐसा किया नहीं है तो उसका कारण या तो हमारी कमजोरी है या यह भ्रान्ति है कि केवल शारीरिक हानि न पहुँचानेसे ही हमारे अहिंसा-व्रतका यथोचित पालन हो जाता है। हमारी अहिंसाकी प्रतिज्ञामें तो भविष्यमें भी प्रतिहिंसा करनेकी सम्भावना नहीं बचती। किन्तु जान पड़ता है कि दुर्भाग्यसे हममें से कुछ लोगोंने आज नहीं तो आगे चलकर बदला लेनेकी ठान रखी है।

मेरे आशयका गलत अर्थ न लगा लिया जाये। मैं यह नहीं कहता कि अहिंसाको व्यवहार-नियमके तौरपर माननेमें आगे इस नीतिका त्याग कर चुकनेपर भी, प्रतिहिंसाकी सम्भावना नहीं रह जाती। किन्तु यदि संग्राममें हमारी विजय हुई तो निश्चय ही प्रतिहिंसाकी सम्भावना नहीं बचती। इसलिए जबतक हम अहिंसाको व्यवहार-नियमके तौरपर मानते हैं, तबतक हम अमली तौरपर अपने अंग्रेज हाकिमों तथा उनके सहयोगियोंके साथ मित्रताका बरताव करनेपर बाध्य हैं। जब मैंने यह सुना कि भारतके कुछ स्थानोंमें अंग्रेज अथवा जाने-माने सहयोगी इधर-उधर बेखटके आ-जा नहीं सकते तो मुझे शर्म मालूम हुई। उस दिन मद्रासकी एक सभामें जो लज्जाजनक दृश्य दिखाई दिया, वह अहिंसाके पूर्ण अभावका सूचक था। जिन लोगोंने यह समझकर कि उस सभाके सभापतिने मेरा अपमान किया है उन्हें शोर-गुल मचाकर बोलनेतक नहीं दिया, उन्होंने न केवल खुदको बल्कि अपनी नीतिको भी कलंकित किया। उन्होंने अपने मित्र और सहायक श्री एन्ड्र्यूजके[1] हृदयको चोट पहुँचाई। उन्होंने खुद अपने

१. चार्ल्स फ्रेयर एन्ड्रयूज (१८७१–१९४०); अंग्रेज धर्म-प्रचारक, लेखक, शिक्षाविद् और गांधीजीके एक घनिष्ठ सहयोगी।

ही उद्देश्यकी हानि की। यदि उक्त सभापति महोदयकी यह धारणा हो कि म धूर्त हूँ तो उनको वैसा कहनेका पूरा अधिकार था। किसीका अज्ञान हमारी उत्तेजनाका कारण नहीं होना चाहिए। और फिर असहयोगी तो बड़ीसे-बड़ी उत्तेजनाको भी तरह देनेकी प्रतिज्ञासे बँधे हुए हैं। उत्तेजनाका अवसर तो तब होगा जब मैं धूर्त व्यक्तिकी तरह आचरण करूँ। मैं मानता हूँ कि यदि वैसा अवसर आये तो हर असहयोगीको अहिंसाका अपना व्रत तोड़ देनेका पूरा हक होगा और कोई भी असहयोगी अपनेको गुमराह करनेके जुर्ममें मेरी जानतक ले लेनेका पूर्ण अधिकारी होगा।

यह तो हो सकता है कि इतने मर्यादित रूपमें भी अहिंसाको अपनाना अधिकांश लोगोंके लिए सम्भव न हो। हो सकता है कि उनका स्वार्थ रहते हुए भी लोगोंसे इस बातकी आशा न रखी जाये कि जहाँ अपने प्रतिपक्षीको वे हानि नहीं पहुँचा रहे हैं, वहाँ हानि पहुँचानेका इरादा तक न करें। यदि स्थिति ऐसी हो तो ईमानदारीका यही तकाजा है कि हम अपने संघर्षके सिलसिलेमें 'अहिंसा' शब्दका प्रयोग करना छोड़ दें। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं कि अगर हम अहिंसाको छोड़ें तो विकल्पमें तुरन्त हिंसाको अपनाना आवश्यक है। उस अवस्थामें होगा यह कि लोगोंसे अहिंसाके अनुशासनका पालन करनेके लिए नहीं कहा जायेगा। तब मुझ जैसा मनुष्य यह महसूस न करेगा कि चौरीचौराकी जिम्मेदारी मेरे सरपर है। इस मर्यादित अहिंसाकी विचारधारा तो उस गुमनाम अवस्थामें भी, फलती-फूलती रहेगी और उसके कन्धोंसे उतरदायित्वका वह गुरुतर भार भी नहीं रहेगा, जिसे वह आज वहन कर रही है।

परन्तु यदि अहिंसाको ही इस राष्ट्रका व्यवहार-धर्म बने रहना है, तो मानव समाज और राष्ट्र दोनोंकी प्रतिष्ठाके विचारसे हमें उसका अक्षरश: तथा निष्ठाके साथ पालन करना ही पड़ेगा।

और यदि हम इस व्यवहार-धर्मके अनुसार चलनेका इरादा करते हों, यदि हम उसके कायल हों, तो हमें तुरन्त ही अंग्रेज तथा सहयोगी भाइयोंका समाधान करना चाहिए; और उनसे इस बातका प्रमाणपत्र हासिल कर लेना चाहिए कि वे लोग हमारे बीचमें अपने-आपको पूरी तरह सुरक्षित समझते हैं और उनके तथा हमारे विचारोंमें तथा राजनीतिक दृष्टिमें जमीन-आसमानका फर्क होते हुए भी वे हमें अपना मित्र समझते हैं। अपने मान्य अतिथियोंके तौरपर अपनी राजनीतिक सभाओंमें हमें उनका स्वागत करना चाहिए। जिन सभाओंका सम्बन्ध किसी दल या मतसे न हो, वहाँ तो हम उनको अपने साथियोंकी तरह ही मानें। हमें ऐसी सभाओंका आयोजन भी करना चाहिए। हमारी अहिंसासे हिंसा, द्वेष और दुर्भाव निष्पन्न नहीं होने चाहिए। दूसरे मर्त्य बान्धवोंकी तरह हमारी कसौटी भी हमारे अपने कार्य ही होंगे। स्वराज्य-प्राप्तिके लिए अहिंसात्मक कार्यक्रम बनानेका मतलब ही अपना काम अहिंसात्मक रीतिसे चलानेकी योग्यता है। और इसका अर्थ है आज्ञा-पालनका भाव पैदा करना। श्रीयुत चर्चिलका[1], जो कि केवल पशु-बलके ही मन्त्रको जानते हैं, यह कहना बहुत ठीक है कि आयरलैंडका प्रश्न भारतके प्रश्नसे अलग प्रकारका है। उनके कथनसे यही

१. सर विन्स्टन चर्चिल (१८७४–१९६५) ब्रिटिश राजनीतिज्ञ; और लेखक।

आशय निकलता है कि आयरलैंडवालों ने हिंसाके मार्गपर चलकर स्वराज्य प्राप्त किया है, अतएव यदि आवश्यकता पड़ी तो वे हिंसा-बलके द्वारा उसकी रक्षा भी कर सकेंगे। इसके विपरीत यदि भारत वास्तवमें अहिंसाके द्वारा स्वराज्य प्राप्त कर ले, तो उसे प्रधानतः अहिंसात्मक उपायोंके द्वारा ही उसकी रक्षा भी करनी होगी। और इसे श्री चर्चिल तभी सम्भव मानेंगे जब भारत अपनी योग्यता इस सिद्धान्तको अपने उदाहरण द्वारा प्रत्यक्ष करके सिद्ध कर दे। और यह बात तबतक अशक्य है जबतक समाजमें अहिंसाका इतना प्रवेश नहीं हो जाता कि जिससे लोग अपने सामुदायिक अर्थात् राजनीतिक जीवनमें अहिंसाको अपना लें; दूसरे शब्दोंमें फौजी हुकूमतके बजाय, जैसा कि आज है, देशमें गैरफौजी हुकूमतकी प्रधानता हो जाये।

अतएव अहिंसात्मक साधनोंसे स्वराज्य प्राप्त करनेके दौरान अव्यवस्था और अराजकताको थोड़े समयके लिए भी कोई स्थान नहीं मिल सकता। अहिंसाके बलपर प्राप्त स्वराज्य तो एक उत्तरोत्तर शान्तिपूर्ण क्रान्ति होगी — ऐसी विकासशील क्रान्ति कि सत्ता चन्द लोगोंके हाथोंसे निकलकर सहज ही जनताके प्रतिनिधियोंके हाथोंमें इस तरह जा पहुँचेगी जैसे किसी सुपोषित वृक्षकी डालसे पूरी तरह पका हुआ फल टपक पड़ता है। मैं फिर कहता हूँ कि सम्भव है वह घड़ी आये ही नहीं; फिर भी मैं जानता हूँ कि अहिंसाका इससे घटकर कोई अर्थ ही नहीं हो सकता। और यदि वर्तमान कार्यकर्त्तागण अपेक्षाकृत इससे अधिक शान्तिमय वातावरण तैयार हो जानेकी सम्भावनाको न मानते हों, तो उन्हें चाहिए कि वे अहिंसात्मक कार्यक्रमको तिलांजलि दे दें और इससे बिलकुल भिन्न दूसरा कार्यक्रम तैयार कर लें। यदि इस खयालको मनमें छिपाये हुए कि आखिरको तो हमें शस्त्रास्त्रोंके बलपर ही अंग्रेजोंसे अधिकार छीनना है, हम कार्यक्रमको उठायेंगे तो हम अपने अहिंसाके दावेके प्रति झूठे ठहरेंगे। यदि हमें अपने इस कार्यक्रमपर विश्वास है, तो हमें यह मानना ही पड़ेगा कि अंग्रेज लोग जितने शस्त्रबलसे निस्सन्देह प्रभावित हो जाते हैं, उतने प्रेमबलसे नहीं होंगे, ऐसी बात नहीं है। जो लोग इसके कायल नहीं हैं उनके लिए दो रास्ते हैं। एक तो है कौंसिलें, जो निस्सन्देह उनके लिए अनुभवकी पाठशालाएँ हैं, जहाँ उन्हें पीढ़ी-दर-पीढ़ी अपमानित होते रहनेके बाद अक्ल आयेगी; दूसरा विकल्प है ऐसी भयानक और त्वरित घटित होनेवाली रक्तमयी क्रान्ति, जैसी संसारमें कभी देखी नहीं गई। ऐसी क्रान्तिमें शरीक होनेकी मुझे जरा भी इच्छा नहीं है। और मैं स्वेच्छापूर्वक उसे आगे बढ़ानेका साधन बननेको तैयार नहीं हूँ। मेरी समझके अनुसार हमारे सामने दो ही विकल्प हैं — या तो हम अहिंसाको और उसके आवश्यक अंगके रूपमें असहयोगको अपनायें, या फिर अनुक्रियात्मक सहयोगकी नीति अपनायें अर्थात् सहयोगके साथ-साथ रोड़े अटकानेकी नीति अपनायें।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ९-३-१९२२

१४. चौरीचौराके बाद

सम्पादक
'यंग इंडिया'
महोदय,

गोरखपुर जिला कांग्रेस-कमेटीकी ओरसे हाता तहसीलमें छः व्यक्ति इस बातके लिए नियुक्त किये गये थे कि वे गाँवोंमें फिरसे सामान्य जीवनकी स्थापनामें सहायक हों। मैं उनमें से एक था। हाता तहसील चौरीचौरासे लगी हुई है। वहाँ थोड़े ही दिनोंके निवास-कालमें मेरे पास पुलिसके निरंकुश अत्याचारोंकी खबरोंकी हर तरफसे भरमार रही। धनावटीसे यह खबर मिली (और मुझे उसे गलत माननेकी कोई वजह नजर नहीं आती) कि पुलिसने लोगोंसे चौरीचौराके मामलेमें फाँस लेनेका डर दिखाकर रिश्वतके तौरपर रुपये ऐंठे। मुझे गाँवोंका दौरा करते समय, उसरीमें अधिकृत रूपसे बताया गया कि देवगाँवके तीन व्यक्ति —— छत्रधारी, राम खगीद और अमलूसे पुलिसके घुड़सवारोंने भाले दिखाकर, क्रमशः दस रुपये, दो रुपये और एक रुपयेकी रकमें ली हैं। लोगोंको क्रूरतापूर्वक मारने-पीटनेकी खबरें भी मिलीं। उशाँव गाँवके भगेलुआ कोरीके शरीरपर बेरहमीसे बरसाये गये कोड़े या बेंतोंके गहरे-गहरे निशान तो खुद मैंने अपनी आँखों देखे। पीटनेके बाद उससे एक रुपया भी छीन लिया गया जो कांग्रेसके कोषका था। मैं ऐसे लोगोंको जानता हूँ जो सचमुच लूट गये हैं। यदि सरकार इन खबरोंका खण्डन करती है तो जो आरोप मैंने लगाये हैं उनकी सचाई सिद्ध करनेकी जिम्मेदारी मेरी होगी।

यह निर्विवाद है कि पुलिसके बहुतसे कारनामे तो जनताके सामने कभी आते ही नहीं। बेचारे खालावादियों (बस्ती तहसीलके लोगों) पर जो अगणित मुसीबतें ढाई गईं और वे उन्हें जिस असीम धैर्यके साथ सह रहे हैं, यदि आपको इसका पता लगे तो आप उनपर आशीर्वादोंकी वर्षा किये बिना नहीं रहेंगे।

सुदर्शन भवन
इलाहाबाद, २८-२-१९२२

आपका,
जंगबहादुर सिंह

चौरीचौरामें जन-समूहका अपराध कुछ भी क्यों न रहा हो, विभिन्न संवाद दाताओंने पुलिसके जिन अत्याचारोंकी खबरें भेजी हैं वे अत्याचार सर्वथा अन्यायपूर्ण हैं।

लोगोंके पास इसका यही इलाज है कि इन अत्याचारोंके बावजूद वे पुलिससे प्रेम करें और उसे क्षमा करते रहें।

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, ९-३-१९२२

१५. टिप्पणियाँ

किंकर्तव्य विमूढ़

लाहौरसे एक सज्जनने ३ मार्चको लिखा है:

बारडोलीके फैसलेके बारेमें जो भी तथ्य प्रकाशमें आये हैं, उनसे ऐसा लगता है कि यह फैसला या तो पण्डित मालवीयके[1] प्रभावमें आकर या अहिंसाकी किसी विकृत कल्पनाके कारण किया गया है। यदि पहली बात है तो यह बहुत ही अनुचित है, और यदि दूसरी है तो अत्यन्त अविवेकपूर्ण है। क्या यह ठीक नहीं है कि कांग्रेसका आदर्श स्वराज्य है, अहिंसा नहीं? लोगोंने अहिंसाको आम तौरपर अपना लिया है, जो कांग्रेसके उद्देश्यके लिए निश्चय ही पर्याप्त होना चाहिए। बम्बई और गोरखपुर-जैसी अहिंसा-भंगकी इक्की-दुक्की घटनाओंके कारण पूरे आन्दोलनको ठप कर देना मेरी समझमें नहीं आता। और यदि एम० पॉल रिचर्डका यह कहना सच है कि आप अहिंसाकी मार्फत एक विश्व-नेता बननेकी महत्वाकांक्षा रखते हैं, चाहे इसके लिए भारतीय हितोंकी हानि ही क्यों न होती हो, तो यह निश्चय ही एक अशोभनीय और, साफ कहिए, बेईमानीकी बात भी है।

और फिर क्या आपने आन्दोलनको सहसा रोक देनेके परिणामोंपर विचार कर लिया है? नतीजा श्री मॉन्टेग्यूकी[2] धमकीके रूपमें हमारे सामने है। लॉर्ड रीडिंग[3] और उनकी सरकारका रुख हमारे प्रति जितना कठोर आज है उतना पहले कभी नहीं था। उसने लगभग घुटने टेक दिये थे। जहाँतक जनताका सवाल है, विभिन्न वर्गों और जन-साधारणमें भी आमतौरपर अविश्वासकी भावना व्याप्त है। लोगोंके साथ इस तरह खिलवाड़ करना खतरनाक बात है। उनकी इस झुंझलाहट और निराशासे यह प्रकट होता है कि वे यह संघर्ष प्राण-पणसे चला रहे थे। क्या आपको यह दिखाई नहीं देता कि इससे लोगोंको बड़ा धक्का लगा है और इस तरहके एक-दो आघात और लगे कि लड़नेवालोंका हौसला पस्त हो जायेगा।

१. पण्डित मदनमोहन मालवीय (१८६१-१९४६)।
२. भारत-मन्त्री, १९१७-२२।
३. लॉर्ड रीडिंग (१८६०-१९३५); भारतके वाइसराय और गवर्नर जनरल, १९२१-२६।

इसके अलावा, मैंने जिम्मेदार मुसलमानोंको हिन्दुओंतक से सहयोग बन्द कर देनेकी बातें करते सुना है। उनके लिए यह लड़ाई धार्मिक है, बल्कि कहना चाहिए कि जिहाद है। जिहाद खुदाका और पैगम्बरका फरमान है। इसे शुरू करना और जब जी चाहे रोक देना कोई मजाक नहीं है। वे कहते हैं कि अगर हिन्दू अलग हट जाते हैं तो हमें खुद अपना रास्ता निकालना चाहिए। इसे लेकर मेरा मन बेचैन है। क्या आप मेरी बेचैनी दूर करनेका कष्ट करेंगे?

पत्र-लेखकके प्रति सहानुभूति हुए बिना नहीं रह सकती। यह पत्र उसी मनोवृत्तिका द्योतक है जिसके दर्शन मुझे दिल्लीमें हुए थे। मैं यह तो पहले ही साफ-साफ बता चुका हूँ कि पण्डित मालवीयजीका बारडोलीके फैसलेसे कोई सम्बन्ध नहीं है; और न इसका अहिंसाकी किसी क्लिष्ट कल्पनासे ही कोई सरोकार है। लेखकका पत्र इस निर्णयका पूर्ण औचित्य सिद्ध कर देता है। मेरे निकट बारडोलीका फैसला सीमित अहिंसाकी राष्ट्रीय प्रतिज्ञाका युक्तियुक्त परिणाम है। मैं इस मतसे पूर्णतया सहमत हूँ कि *राष्ट्रका लक्ष्य स्वराज्य है, अहिंसा नहीं। और यह भी सच है कि मेरा लक्ष्य जितना स्वराज्य है, उतना ही अहिंसा है; क्योंकि मेरी यह धारणा है कि* जनता अहिंसाके अलावा किसी और उपायसे स्वराज्य प्राप्त नहीं कर सकती। लेकिन क्या मैंने यह बात इन स्तम्भोंमें बार-बार नहीं कही कि भारत यदि हिंसासे भी स्वतन्त्र होता है तो उसके पराधीन बने रहनेकी अपेक्षा मैं इसे अधिक पसन्द करूँगा? गुलामीमें रहते हुए उसे गुलाम बना रखनेवाले देशकी हिंसामें साथी बनना पड़ता है। परन्तु, यह सच है कि मैं मुक्ति प्राप्त करनेके किसी हिंसात्मक प्रयासमें शामिल नहीं हो सकता, चाहे इसका *कारण और कुछ न होकर* मेरा यह विश्वास ही क्यों न हो कि हिंसा द्वारा सफलता नहीं मिल सकती। अपने बड़ेसे-बड़े दुश्मनपर भी मैं गोली नहीं चला सकता। यदि मैं संसारको यह विश्वास दिलानेमें सफल हो जाता हूँ कि मानव-जातिकी प्रगतिके लिए अहिंसाका नियम ही सर्वश्रेष्ठ है और हिंसा उसके लिए बेकार है, तो पत्र-लेखक महोदय देखेंगे कि भारत अनायास ही अपना लक्ष्य प्राप्त कर लेगा, लेकिन मैं यह बात निस्संकोच भावसे स्वीकार करता हूँ कि मैं तबतक कदापि सफल नहीं हो सकता जबतक कि पहले भारतको यह विश्वास न दिला दूँ कि वह *अहिंसा और सत्यके द्वारा ही स्वतन्त्र हो सकता है,* और किसी साधनसे नहीं।

मुझे यह बात भी स्वीकार कर लेनी चाहिए कि श्री मॉन्टेग्यु या लॉर्ड रीडिंग इस फैसलेके बारेमें क्या सोचेंगे, इससे मुझे कोई सरोकार नहीं है। इसलिए उनकी धमकियोंसे मैं विचलित या प्रभावित नहीं होता, और न किसी अन्य असहयोगीको ही होना चाहिए। असहयोगीने अपना अनुष्ठान पीछे मुड़कर न देखनेके संकल्पके साथ आरम्भ किया था। परन्तु एक बात निश्चित है कि यदि भारत मन, वचन और कर्मसे अहिंसक हो जाये, तो श्री मॉन्टेग्यु और लॉर्ड रीडिंगतक का हृदय परिवर्तन हुए बिना नहीं रहेगा। इस समय स्थिति यह है कि यद्यपि कर्मकी हदतक अहिंसामें हमने आश्चर्यजनक प्रगति की है, किन्तु मन और वचनसे हम अभी अहिंसक नहीं हुए हैं। श्री मॉन्टेग्यु और लॉर्ड रीडिंगको हमारे कथनकी सचाईमें विश्वास नहीं है और

न उन्हें इस बातमें ही विश्वास है कि सच्चे कार्यकर्त्ता ऐसा वातावरण पैदा कर सकते हैं जो वस्तुतः अहिंसात्मक हो। इसलिए आवश्यकता इस बातकी है कि हम मन, वचन और कर्ममें अधिकाधिक अहिंसावादी बनें।

जहाँतक जनताका सवाल है, मुझे इसमें सन्देह नहीं कि वह इस शुद्धिकारक आघातको सहन कर ले जायेगी। आजके इस निरुत्साहको मैं क्रमशः होनेवाली निश्चित प्रगतिकी भूमिका मानता हूँ। और यदि ऐसा न भी हो, तो भी बारडोलीके निर्णयके औचित्यसे इनकार नहीं किया जा सकता। यह औचित्य जनताकी स्वीकृतिपर निर्भर नहीं है। ईश्वर है, चाहे सारी दुनिया उसे अस्वीकार करती रहे। सत्य कायम रहता है, भले ही उसे जनताका समर्थन न मिले। सत्य आत्मनिर्भर होता है।

जिम्मेदार मुसलमान यदि अहिंसाके सहज परिणामोंको, जो स्पष्ट हैं, नहीं देखेंगे तो मुझे निश्चय ही दुःख होगा। मेरे विचारमें यह लड़ाई जिस हदतक धार्मिक मुसलमानोंके लिए है उसी हदतक हिन्दुओंके लिए भी है। मैं यह मानता हूँ कि हमारा जिहाद एक आध्यात्मिक जिहाद है। लेकिन दूसरे सब युद्धोंकी भाँति जिहादकी भी अपनी कड़ी पाबन्दियाँ और सीमाएँ होती हैं। हिन्दू और मुसलमान एक ही नाव-पर सवार हैं। असन्तोष दोनोंको है, और दोनों एक-दूसरेके साथ भागीदारी खतम करनेके लिए स्वतन्त्र हैं। दोनों या उनमें से कोई एक मुझे सेनापतिके पदसे भी हटा सकता है। यह पारस्परिक सहयोग सर्वथा स्वेच्छापर निर्भर है। अन्तमें, मैं पत्र-लेखकको यह विश्वास दिलाना चाहता हूँ कि जिस दिन मुझे यह पता चल जायेगा कि मैं लोगोंके मनमें अपनी बात नहीं बैठा सकता, उसी दिन मैं अपने-आप नेतृत्व छोड़ दूँगा।

अन्य उलझनें

पाठकोंको अहिंसापर इस सप्ताहका अग्रलेख[1] पढ़ना चाहिए। मुख्य सिद्धान्तोंके विवेचनमें ही लेख काफी लम्बा हो गया है। इसीलिए मैंने महत्त्वपूर्ण प्रासंगिक विषयों-पर यहाँ विचार न करके उन्हें टिप्पणियोंके लिए छोड़ दिया था।

उदाहरणके लिए हमारे आगे निम्नलिखित प्रश्न हैं:

१. व्यक्तिगत सविनय अवज्ञा पुनः कब शुरू की जा सकती है?

२. किस तरहकी हिंसासे सविनय अवज्ञा समाप्त हो जायेगी?

३. अहिंसाकी सीमित धारणामें क्या आत्म-रक्षाके लिए कोई स्थान है?

४. मान लीजिए मुसलमान या हिन्दू आन्दोलनसे हाथ खींच लेते हैं, तो क्या एक ही सम्प्रदाय अहिंसात्मक आन्दोलन चला सकता है?

५. मान लीजिए हिन्दू और मुसलमान दोनों मुझे छोड़ देते हैं, तो अहिंसाके मेरे प्रचारका क्या होगा?

मैं इन प्रश्नोंको क्रमसे लेता हूँ। सविनय अवज्ञाके लिए, यहाँतक कि व्यक्तिगत सविनय अवज्ञातक के लिए वातावरण शान्तिमय चाहिए। वह तबतक शुरू नहीं की

१. देखिए "अहिंसा", ९-३-१९२२।

जानी चाहिए जबतक कि कार्यकर्त्ता अहिंसाकी भावनाको आत्मसात् न कर लें, और सहयोगियोंसे, चाहे वे अंग्रेज हों या हिन्दुस्तानी, मुक्त कण्ठसे यह न कहनेवालें कि उन लोगोंके दिलोंमें सहयोगियोंके प्रति कोई दुर्भावना बाकी नहीं रह गई है। इसकी सबसे पक्की कसौटी यह होगी कि हमारी सभाओंमें असहिष्णुता और हमारे लेखोंमें कटुताका लेश भी न बचे। दूसरी आवश्यक कसौटी यह होगी कि हम रचनात्मक कार्यक्रमपर गम्भीरतासे अमल करें। यदि उसमें हम जमकर नहीं लग सकते, तो यह मेरे लिए इस बातका निश्चित प्रमाण होगा कि हम नहीं मानते कि अहिंसासे हमारा उद्देश्य पूरा हो सकता है।

अहिंसात्मक वातावरण

किसी भी प्रकारकी हिंसा होते ही सविनय अवज्ञा बन्द कर दी जायेगी, सो बात नहीं है। पारिवारिक झगड़ोंसे, चाहे उनमें रक्तपात ही क्यों न हो जाये, मैं नहीं डरूँगा; और न डाकुओंकी हिंसासे ही घबराऊँगा। अलबत्ता वह मेरे लिए इस बातकी सूचक होगी कि अभी जन-साधारणका आम शुद्धीकरण नहीं हो पाया है। जिस प्रकारकी हिंसा होनेपर सविनय अवज्ञा आवश्यक रूपसे रोक देनी चाहिए वह है राजनीतिक हिंसा। चौरी-चौरा-काण्ड राजनीतिक हिंसाका एक उदाहरण था। वह हिंसा एक राजनीतिक प्रदर्शनसे उभरी थी; यदि हम उस प्रदर्शनका आयोजन पूर्ण शान्तिसे नहीं कर सकते थे तो हमें यह आयोजन करना ही नहीं चाहिए था। मैंने मलाबार[1] और मालेगाँवको[2] अपने मार्गमें बाधक नहीं बनने दिया, क्योंकि मोपला विशेष प्रकारके लोग हैं और वे उल्लेखनीय सीमातक अहिंसासे प्रभावित नहीं हुए थे। मालेगाँवका मामला अपेक्षाकृत अधिक पेचीदा था; पर यह बात बिलकुल साफ है कि प्रमुख असहयोगियोंने वहाँ हत्याको रोकनेकी भरसक कोशिश की थी। इसके अलावा तब सामूहि कसविनय अवज्ञाके जल्दी शुरू होनेकी बात भी नहीं थी। उससे व्यक्तिगत सविनय अवज्ञामें अन्यत्र कोई बाधा पड़ना सम्भव नहीं था।

आत्म-रक्षा

असहयोगीकी प्रतिज्ञामें ऐसा कुछ नहीं कहा गया है कि उसे वैयक्तिक आत्म-रक्षाका भी अधिकार नहीं है। असहयोगियोंके लिए राजनीतिक हिंसा निषिद्ध है। इसलिए असहयोग जिनका अन्तिम धर्म नहीं है, उन्हें निश्चय ही आक्रमणकारियोंसे अपनी या अपने आश्रितों और बाल-बच्चोंकी रक्षा करनेकी पूरी स्वतन्त्रता है। परन्तु वे अपना बचाव पुलिससे न करें; चाहे वह अपने मनसे, चाहे अधिकृत रूपसे कर्त्तव्य पालन कर रही हो। इसलिए उस प्रतिज्ञाके अनुसार उन्हें लगान वसूल करनेवालोंसे, जिन्होंने मैं मानता हूँ कि स्वयंसेवकोंको गैरकानूनी तौरपर मारा-पीटा था, अपना बचाव करनेका अधिकार नहीं था।

१. देखिए खण्ड २१, पृष्ठ ३३५-३७।
२. देखिए खण्ड २०, पृष्ठ ६९-७१।

यदि मुसलमान या हिन्दू अलग हो जायें

यदि हिन्दू और मुसलमान दो बड़े सम्प्रदायोंमें से एक अहिंसा सम्बन्धी इकरारको तोड़ दे तो मैं यह मानता हूँ कि अकेले एकके लिए संघर्षको चलाना असम्भव तो नहीं, किन्तु बहुत ही कठिन अवश्य हो जायेगा। उसे अहिंसाकी नीतिमें अटूट विश्वास रखना होगा। यदि किसी भी एक सम्प्रदायके मनमें यह बात बैठ जाये कि भारत हिंसात्मक उपायोंसे पीढ़ियोंतक भी स्वराज्य प्राप्त नहीं कर सकता, तो वह अपने अविचल अहिंसात्मक, अर्थात् प्रेमपूर्ण आचरणसे अन्य सभी विरोधी पक्षोंको अपनी ओर खींच सकता है।

यदि दोनों मुझे छोड़ दें

यदि दोनों पक्ष मुझे छोड़ देते हैं, तो मैं हमेशाकी तरह शान्त रहूँगा और यह बिलकुल निश्चित है कि अहिंसाका अपना प्रचार जारी रखूंगा। तब मुझपर प्रतिबन्ध नहीं रहेंगे, जैसे कि आज हैं। तब मैं अपने सिद्धान्तपर जोर दूंगा; जब कि आज मैं उसे केवल नीतिके ही रूपमें चलाता प्रतीत होता हूँ।

जुर्म गढ़े जा रहे हैं

एक सज्जनने नीचे लिखा नोटिस अनुवाद करके भेजा है, जो रावलपिण्डी छावनीके मजिस्ट्रेटकी ओरसे कुछ स्वयंसेवकोंके नाम जारी किया गया था:

> मेरा ध्यान इस ओर दिलाया गया है कि तुमने रावलपिण्डी छावनीमें हो रहे सरकार-विरोधी प्रचारमें भाग लिया था (या तुम वहाँ उपस्थित थे)। छावनीमें वही लोग रह सकते हैं जो सरकारके खैरख्वाह हों। इसलिए तुम्हें चेतावनी दी जाती है कि यदि भविष्यमें तुम्हें किसी ऐसी सभामें उपस्थित पाया गया तो तुम्हें छावनीकी हदसे बाहर कर देनेका अनुरोध किया जायेगा।

इस तरह इस मजिस्ट्रेटने उन सभाओंमें उपस्थित होना तक जुर्म करार दे दिया है, जिनमें सरकार-विरोधी प्रचार होता है। सरकार-विरोधी प्रचार तो कभी-कभी सहयोगी तक करते हैं। इस तरहके आदेशोंकी भरमारसे तो सरकार खुद अपने ही बोझसे दबकर टूट जायेगी, जैसे कि मोटापेसे पीड़ित व्यक्ति अन्तमें चलने-फिरनेसे लाचार हो जाता है।

निवासके अधिकारपर प्रतिबन्ध

एक मित्रने नीचे लिखा नोटिस भेजा है, जो नोआखलीके जिला मजिस्ट्रेटकी ओरसे १६ फरवरीको जारी किया गया था:

> मुझे विश्वस्त रूपसे यह सूचना मिली है कि नोआखली नगरमें "स्वराज्य आश्रम" नामकी एक इमारतका उपयोग तथाकथित स्वयंसेवकोंको शरण देनेके लिए किया जा रहा है, और इन स्वयंसेवकोंका सम्बन्ध एक ऐसी संस्थासे है जो दण्डविधि संशोधन अधिनियमके अधीन गैरकानूनी घोषित कर दी गई है।

मुझे विश्वस्त रूपसे यह भी सूचना मिली है कि जिस भूमिपर यह इमारत है उसके मालिक बाबू नलिनीकान्त मुखर्जी हैं और यह इमारत उनकी अनुमतिसे पहले बाबू प्रमथनाथ सेनगुप्तके अधिकारमें थी, और बादमें उसे तथाकथित स्वयंसेवकोंके निवासमें परिवर्तित कर दिया गया है।

इसलिए मैं नोआखलीका जिला मजिस्ट्रेट ओ० एम० नारायण बाबू नलिनीकान्त मुखर्जी, बाबू प्रमथनाथ सेनगुप्त और स्वयंसेवकों तथा उन अन्य लोगोंको, जो इस समय इस इमारतका या जिस भूमिपर वह है उसको उपयोगमें ला रहे हैं या उसमें रहते हैं, इस बातके लिए तलब करता हूँ कि वे १८ फरवरी, १९२२को दोपहर १२ बजे नोआखलीके जिला मजिस्ट्रेटकी अदालतमें यह बतायें कि दण्ड प्रक्रिया संहिताकी धारा १४४ के अधीन इस आशयका एक आदेश क्यों न जारी कर दिया जाये कि उक्त स्वयंसेवकगण इस इमारत या भूमिको किसी भी प्रयोजनके लिए उपयोगमें नहीं ला सकते। इस तरहके आदेशका आधार निम्नलिखित है:

एक तो यह कि उक्त स्वयंसेवकगण एक गैर-कानूनी संघसे सम्बन्ध रखते हैं और इसलिए यह इमारत एक गैर-कानूनी प्रयोजनके लिए उपयोगमें लाई जा रही है, और

दूसरे यह कि इस इमारतको जो स्वयंसेवक उपयोगमें ला रहे हैं उनका आचरण पड़ोसके लोगोंके लिए क्षोभका कारण है और सार्वजनिक शान्तिके लिए एक खतरा है।

मुझे नहीं मालूम कि इस नोटिसकी सुनवाईके दिन क्या हुआ। लेकिन यह बात ध्यान देनेकी है कि चूंकि स्वयंसेवक इस इमारतको "किसी भी प्रयोजनके लिए" उपयोगमें नहीं ला सकते, इसलिए इससे यही अर्थ निकलता है कि वे उसे अपनी गति-विधियोंके लिए ही नहीं, बल्कि निवासतक के लिए भी उपयोगमें नहीं ला सकते। यह नोटिस जिस आधारपर जारी किया गया है वह आधार भी नोटिसकी तरह ही विचित्र है। मजिस्ट्रेटका तर्क है कि चूंकि स्वयंसेवक एक गैर-कानूनी संघसे सम्बन्ध रखते हैं, इसलिए जिस मकानमें वे रह रहे हैं वह एक गैर-कानूनी प्रयोजनके लिए उपयोगमें लाया जा रहा है। इससे नतीजा यही निकलता है कि किसी भी व्यक्तिका अपने मकानको किसी अन्य व्यक्तिको किरायेपर देना खतरेसे खाली नहीं है। भला वह कैसे जान सकता है कि कोई व्यक्ति आगे-पीछे चोर या बाकायदा राजद्रोह फैलानेवाला निकल आयेगा।

दूसरा कारण तो पहलेसे भी अधिक हास्यास्पद है। जिन स्वयंसेवकोंका अपराध केवल यह है कि वे दण्ड-विधि संशोधन अधिनियमकी खुली अवज्ञा करते हैं, उनका आचरण अपने पड़ोसके लोगोंके लिए क्षोभका कारण कैसे हो सकता है, और यदि वे उनके लिए क्षोभका कारण बनते हैं तो इस तरहके स्वयंसेवकोंको जेलमें बन्द क्यों नहीं कर दिया जाता? मजिस्ट्रेटकी कार्रवाई तो लगभग ऐसी ही है जैसे कि किसी

चोरको खुला छोड़ दिया जाये और सर्वसाधारणपर यह जिम्मेदारी लादी जाये कि वह उसे पनाह न दे ताकि वह इस रूपमें दण्ड पा जाये। यह दरअसल लोगोंको 'लिंच कानून' की[1] शिक्षा देना है।

हमलेके लिए भड़काना

बंगाल चेम्बर ऑफ कॉमर्सके अवकाश-प्राप्त प्रधानने[2] ऐसी अन्धेरगर्दी (लिंच कानून) के पक्षमें एक बहुत ही धृष्ट घोषणा की है। उन्होंने पाखण्डका नकाब उतार फेंका है और जातीय श्रेष्ठताका राग अलापा है। उन्होंने नरमदलवालोंको उनके कर्त्तव्यों-का निर्देश किया है और अंग्रेजोंसे कहा है कि उन्हें "हमला होनेपर उसका मुँह-तोड़ जवाब देना चाहिए।" हमने जिस प्रणालीको स्वीकार किया है, उसे देखते हुए हम इस ढिठाईका उत्तर देनेमें असमर्थ हैं। बिलकुल उत्तेजित न होना ही इसका उत्तर हो सकता है। फिलहाल मुझे बंगाली दोस्तोंसे यही कहना है कि वे स्वेच्छासे, सोच-समझकर, अपनी शक्तिका एहसास करते हुए शान्त रहें, घबरायें नहीं और प्रतिरोध न करें। क्रोधके वशीभूत होकर सविनय अवज्ञा शुरू करना केवल एक अन्तर्विरोधी आचरण ही नहीं होगा, बल्कि शत्रुके हाथोंमें खेलना भी होगा। नोआखलीके जिला मजिस्ट्रेट और बंगाल चेम्बरके अवकाश-प्राप्त प्रधानके भड़कावेमें आनेवाले अंग्रेजोंको मनमानी करने दीजिए। हमारा कार्यक्रम यह है कि हमें प्रहारोंको, प्रतिकार किये बिना, शोभनीय ढंगसे झेलना है, और इस तरह जिला मजिस्ट्रेट और चेम्बरके प्रधान, दोनोंको निरस्त्र कर देना है। प्रतिक्रियाके अभावमें यह रोष अपने आप ठण्डा पड़ जायेगा।

ग्वालियर राज्य और गांधी टोपी

एक सज्जनने मुझे ग्वालियर राज्य द्वारा जारी की गई विज्ञप्तिकी प्रति भेजी है, जिसपर पेशी अफसरके हस्ताक्षर हैं। अखबारके लगभग पाँच कॉलम इससे भरे हुए हैं। यह खादीके विषयमें एक अच्छा-खासा लेख ही है। उसमें कहा गया है कि ग्वालियरके बाशिन्दे खादी शौकसे पहनें, वे तो उसे बराबर पहनते चले आ रहे हैं और कपड़ेकी महँगाईको देखते हुए लोगोंका खादी पहनना कुछ अजब भी नहीं है। पर लोगोंको यह चेतावनी भी दी गई है कि वे खादीपर होनेवाले व्याख्यानोंको सुनने न जायें; अन्तमें 'गांधी टोपी' पहननेकी मनाही की गई है। मूल हिन्दी लेखके शब्द इस प्रकार हैं :

> यहाँ यह बता देना जरूरी है कि आजकल खादीकी एक खास किस्मकी टोपी चलनमें आ गई है। यह किश्तीनुमा है और इसकी तह की जा सकती है। हकीकत यह है कि ये टोपियाँ कपड़ेकी बचतके खयालसे नहीं बल्कि एक खास पार्टीके निशानके रूप पहनी जाती हैं और खास किस्मके खयालातोंके साथ उसका इतना गहरा ताल्लुक हो गया है कि माना यह जाता है कि

१. भीड़ द्वारा नियुक्त अवैध अदालत जो संदिग्ध व्यक्तिपर आनन-फानन मुकदमा चलाकर सजा सुना देती है।

२. सर रॉबर्ट वाट्सन स्मिथ।

उनके पहननेवाले उसी खयालके हैं। इस वजहसे इस टोपीका पहनना नामुनासिब है। इस निषेधमें दूसरी किसी किस्मकी टोपियाँ शामिल नहीं हैं — फिर चाहे वे खादीकी हों चाहे और किसी कपड़ेकी।

बेचारी सीधी-सादी और सस्ती खादीकी टोपीके खिलाफ इस खामख्वाहकी बदगुमानीपर मुझे अफसोस है। मैं ग्वालियरके हाकिमोंको यह बता देना चाहता हूँ कि यद्यपि यह सच है कि बहुतेरे असहयोगी लोग "गांधी टोपी" नामसे प्रसिद्ध टोपी पहनते हैं, पर हजारों आदमी ऐसे हैं जो उसे केवल सुविधाजनक और सस्ती होनेके कारण पहनते हैं; और असहयोगसे उनका उतना ही सम्बन्ध है जितना कि खुद पेशी अफसर महोदयका।

कुछ और लिखित समाचारपत्र

लगता है लिखित समाचारपत्रोंकी संख्यामें असम हर प्रान्तसे बाजी मार ले जायेगा। गोलाघाटसे अब असमियामें एक लिखित साप्ताहिक शुरू हुआ है। इसमें आम समाचार और बड़े जोरदार सम्पादकीय स्तम्भ रहते हैं। मेरे पास उसका तीसरा अंक अनुवाद करके भेजा गया है। इसका नाम 'वन्देमातरम्' है। आजादीकी हमारी इच्छापर किसी आंग्ल-भारतीयने यह फब्ती कसी थी कि आजादीकी इच्छा तो शेरों और चोरों तकमें होती है। सम्पादक अपनी टिप्पणियोंमें इसकी आलोचना करते हुए कहते हैं :

> हम नहीं चाहते कि दूसरे लोग हमें आजादीका अर्थ सिखायें। हिन्दुस्तानका आग्रह है कि वह अपने घरका आप मालिक बन जाये। वह आजादीका पाठ पढ़नेवाला महज एक विद्यार्थी नहीं बनना चाहता। इस नौकरशाही-व्यवस्थाके अधीन वह काफी अरसेसे धोखा तक खाता रहा है। लेकिन अब उसे होश आ गया है और उसकी आँखें खुल गई हैं।

इस साप्ताहिकके सम्पादक और व्यवस्थापकसे भी मैं वही आशा रखता हूँ, जो दूसरे लिखित समाचारपत्रोंके सिलसिलेमें व्यक्त की जा चुकी हैं। अर्थात् वे सचाईका खूब कड़ाईसे पालन करेंगे और इस नये उपक्रममें हिंसात्मक या उत्तेजनात्मक भाषाका प्रयोग कदापि न होने देंगे।

"आपत्तिजनक" तार

दमनकी खबरोंवाले तारोंको आपत्तिजनक बताकर अस्वीकार कर देना आजकल एक फैशन-सा हो गया है। यहाँ एक ऐसा ही तार है, जो सिन्ध प्रान्तीय कांग्रेस कमेटीके मन्त्री द्वारा २२ फरवरीको हैदराबादसे भेजा गया था :

> सिन्धमें दमन तेजीसे चालू है। सहीती जिलेमें, जहाँ धारा १०८का बेधड़क प्रयोग किया गया है, श्री गोविन्दरामको एक वर्ष कठोर कारावासका दण्ड दिया गया है और जिला कांग्रेस कमेटीके प्रधान तथा 'शक्ति' पत्रके सम्पादक श्री खेमचन्दपर मुकदमा चलनेवाला है। सिन्ध प्रान्तके प्रचारक श्री

डालूमलको उसी धाराके अधीन गिरफ्तार कर लिया गया है। थरपारकर जिलेके नगरपारकरकी तरफ, जहाँ रसाई,[1] बेगार और लापकी[2] क्रूर प्रथाएँ प्रचलित थीं, उनके कार्यके फलस्वरूप बन्द हो गईं। यह बात स्थानीय अधिकारियोंके लिए असह्य हो गई और सात कार्यकर्त्ताओंके नाम धारा १४४ के अधीन यह नोटिस जारी कर दिया गया है कि वे मुगलबीनके इर्दगिर्दके पाँच मीलके क्षेत्रमें किसी सभामें भाषण नहीं दे सकते। वहाँ एक मेला लगता है और यह कार्रवाई मेला लगनेसे पहले की गई है, जिसका उद्देश्य प्रचारको रोकना है। शिकारपुर जिला कांग्रेस कमेटीके संयुक्त मन्त्रियों, श्री सोभराज और बाधूमल तथा सात अन्य व्यक्तियोंको रास्ता रोकनेके अपराधमें सौ-सौ रुपया जुर्माना या तीन-तीन महीनेकी साधारण कैदकी सजा सुनाई गई है। इन नौ कार्यकर्त्ताओंने नगरकीर्तन आयोजित किया था। उनका इरादा कोई जुलूस निकालनेका नहीं था; और इसलिए उन्हें पुलिसके हस्तक्षेपकी आशंका नहीं थी। लेकिन शिकारपुरकी पुलिस वहाँ आ धमकी। इनमें से एकने जुर्माना अदा कर दिया, लेकिन औरोंने जेल जाना ही पसन्द किया। कराचीके सिटी मजिस्ट्रेटको यह अतिरिक्त अधिकार दिया गया है कि वह राजद्रोह सम्बन्धी धारा १०८के अनुसार नेकचलनीके लिए जमानत माँग सकता है। इसका अर्थ यह है कि अधिकारी कराचीमें युवराजके आगमनसे पहले कार्यकर्त्ताओंको रास्तेसे हटाकर मैदान साफ कर लेना चाहते हैं।

रघुनाथपुरसे बक्सर सब-डिवीजनल कांग्रेस कमेटीके प्रधानने हकीमजीके[3] नाम एक तार भेजा है, जो इस प्रकार है:

> महात्माजीको यह सूचना दे दें कि ब्रह्मपुर मेलेमें पिछले दो दिनोंसे जो कांग्रेस कैम्प लगे थे, आराके कलक्टर, सुपरिंटेंडेंट, हथियारबन्द गोरखों और ब्रह्मपुरके रेजीडेंट व डिप्टी कलक्टर रामेश्वरसिंह द्वारा कल रात जबरदस्ती गिरा दिये गये हैं। स्वयंसेवकोंको क्रूरतासे पीटा गया और उन्हें हाथी दौड़ाकर भगा दिया गया। तम्बू, झण्डे तथा अन्य सामान छीन लिया गया। शराब और गाँजेके ठेकोंपर धरना देनेवाले स्वयंसेवकोंको बड़ी बेरहमीके साथ लाठियोंसे पीटा गया। यहाँ पूर्ण शान्ति है।

तीसरा तार बेलसंडसे मिला है। थाना कांग्रेस कमेटीके मन्त्री लिखते हैं:

> स्थानीय पुलिस सब-इंस्पेक्टर श्री नाथसहाय राय आजकल लोगोंको हिंसाके लिए भड़कानेपर तुले हुए हैं। २३ फरवरी, १९२२ को वे पचरा और अठकोनी गाँवोंमें गये और वहाँ उनके हुक्मसे पुलिसके सिपाही बाबू मुसाफिरसिंह, भुवनेश्वरसिंह और रामवृक्ष महतो नामक तीन स्वयंसेवकोंके जनानखानोंमें जबरदस्ती

१ और २. एक प्रकारकी रिश्वत।

३. हकीम अजमलखाँ (१८६५-१९२७); भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके अध्यक्ष, १९२१।

घुस गये। पहले दो स्वयंसेवकोंके घरोंसे वे १५ रुपयेकी कीमतके बरतन-भाँडे ले गये, और तीसरेके घरसे मय पिंजरेके एक पहाड़ी तोता जिसकी कीमत दस रुपये होती है; छः रुपये कीमतकी एक रजाई, दो रुपये आठ आने कीमतकी एक धोती, अठारह रुपये कीमतका साढ़े चार मन धान, २० रुपये कीमतकी ७ मन मकई, ११ रुपयेका बूटूक (बटलोई), तीन बच्चोंके साथ एक बकरी जिनकी कीमत १० रुपये होती है, इस तरह कुल ६७ रुपये, ८ आनेका माल उठा ले गये। २५ फरवरी, १९२२ को यही सब-इन्स्पेक्टर मुहम्मद जानसे, जो पहले ही जेलमें हैं, जुर्माना वसूल करनेके लिए भतौलिया पहुँचे और वहाँ उसके भाई शेख शाबू जानके मकानमें जबरदस्ती घुस गये। एक सालसे भी अधिक समयसे शाबूकी घर-गिरस्ती मुहम्मदकी घर-गिरस्तीसे बिलकुल अलग है। वहाँसे वे अनाजकी कोठी तोड़कर ४० रुपयेकी कीमतका १० मन धान, ९ रुपये कीमतका १ मन ५½ पँसेरी चावल और ५ रुपये कीमतका एक कलसा, इस तरह कुल ५४ रुपयेका सामान ले गये।

ये तीनों तार महत्त्वपूर्ण हैं और इनमें दमनका ब्योरा दिया हुआ है। जब कांग्रेस कार्यालय जलाये और लूटे जा रहे हों, कार्यकर्त्ताओंको किसी-न-किसी बहाने जेलोंमें बन्द किया जा रहा हो, तो सविनय अवज्ञा करनेका लोभ संवरण कर पाना मुश्किल हो जाता है। लेकिन मैं कार्यकर्त्ताओंको सविनय अवज्ञा न करनेकी चेतावनी देता हूँ। यदि वे एक पूर्णतया अहिंसात्मक वातावरण चाहते हैं, तो उन्हें फिलहाल सभी तरहकी उग्र कार्रवाई रोकनी होगी। हर व्यक्तिको खुद ही अपना कांग्रेस दफ्तर और खिलाफत दफ्तर बन जाना चाहिए और अपने कार्यको चरखे और खद्दरके प्रचार तक सीमित कर देना चाहिए। और यदि कोई उसकी बात न सुने, तो उसे मैं यह विश्वास दिलाता हूँ कि यदि वह धुनाई, हाथ-कताई या हाथ-बुनाई — इनमें से किसी भी एक काममें अपना पूरा समय लगाये तो वह उस दिनका सदुपयोग ही होगा। यह एक बहुत ही उपयोगी और स्थायी काम है, जिसमें न तो पीछे हटनेका सवाल है और न गलतीकी ही कोई सम्भावना है।

भ्रामक प्रचार

डब्ल्यू० आई० एन० लिबरल एसोसिएशनकी प्रचार समितिकी ओरसे जो इश्तिहार बाँटे जा रहे हैं, चारों तरफसे पाठकगण उन्हें मेरे पास भेजते जा रहे हैं। मुझे समितिका जोश और सरगर्मी अच्छी लगती है। इसका काम हमारे हितमें ही है; असहयोगियोंको वह चुस्त बनाये रखती है और उन्हें उनकी बुराईसे आगाह करती रहती है। मैं प्रचार समितिको केवल यह सुझाव दूंगा कि अतिरंजनासे उसे कोई लाभ नहीं होगा। मुझे यकीन है कि वह जान-बूझकर अतिरंजनासे काम नहीं लेगी। इसीलिए मैं उसके कुछ गलत बयानोंको सुधारनेका साहस कर रहा हूँ।

इश्तिहार नम्बर ६ में कहा गया है:

गांधी-राज आनेपर भारतका रूप कैसा होगा?

रेलें नहीं होंगी, अस्पताल नहीं होंगे, मशीनें नहीं होंगी। सेना और नौ-सेनाकी भी जरूरत नहीं होगी। कारण, गांधी अन्य राष्ट्रोंको यह विश्वास दिला देंगे कि भारत उनके मामलोंमें टाँग नहीं अड़ायेगा, और इसलिए वे भी भारतके मामलोंमें टाँग नहीं अड़ायेंगे।

न कानून जरूरी होंगे, न न्यायालय जरूरी होंगे, क्योंकि हरएक अपने लिए खुद ही कानून होगा। हर व्यक्तिको, जो वह चाहता है, करनेकी स्वतन्त्रता होगी। जीवन बहुत ही सरल हो जायेगा, क्योंकि हर आदमीके लिए खद्दरकी लँगोटी लगाकर घूमना और खुलेमें सोना लाजिमी होगा।

मैं इसे अतिरंजना नहीं कह सकता। यह तो एक चतुराईसे भरा हुआ विद्रूप है, जिसका प्रयोग पश्चिमी ढंगके संघर्षमें जायज समझा जाता है। किन्तु इन शब्दोंसे जो व्यंजित होता है वह सही नहीं है। मैं बताता हूँ कि मेरा आशय क्या है। पहली बात तो यह है कि भारत "गांधी-राज" कायम करनेकी कोशिश नहीं कर रहा है। वह स्वराज्य कायम करनेके लिए व्याकुल है, और स्वराज्यकी प्राप्तिके लिए गांधीको खुशीसे बलिदान कर देगा। और यह उचित ही होगा। "गांधी-राज" एक आदर्श स्थिति है, और उस स्थितिमें ये पाँचों नकार एक सही तस्वीर पेश करेंगे। लेकिन ऐसी कल्पना कोई कभी नहीं करता है — मैं तो निश्चित रूपसे नहीं करता — कि स्वराज्यमें रेलें नहीं होंगी, अस्पताल नहीं होंगे, मशीनें नहीं होंगी, सेना और नौसेना नहीं होगी, कानून और न्यायालय नहीं होंगे। इसके विपरीत, रेलें होंगी; फर्क इतना ही होगा कि उनका उद्देश्य भारतका सैनिक अथवा आर्थिक शोषण नहीं होगा, बल्कि वे आन्तरिक व्यापारको बढ़ावा देनेके लिए प्रयुक्त की जायेंगी और तीसरे दर्जेके यात्रियोंके लिए यात्रा काफी आरामदेह हो जायेगी। तीसरे दर्जेकी जनता जो किराया अदा करती है, उसके बदलेमें उसे कुछ मिलेगा। कोई भी यह आशा नहीं करता कि स्वराज्यमें बीमारियाँ बिलकुल नहीं रहेंगी; इसलिए अस्पताल भी निश्चय ही रहेंगे। लेकिन यह आशा जरूर की जाती है कि अस्पताल तब भोग-विलासके कारण पीड़ित लोगोंके लिए न होकर, संयोगवशात् पीड़ित लोगोंके लिए होंगे। चरखेके रूपमें मशीन भी निश्चितरूपसे होगी ही। वह भी आखिर एक नाजुक ढंगकी मशीन ही है। पर मुझे इसमें सन्देह नहीं कि स्वराज्य होनेपर भारतमें कितने ही कारखाने भी खड़े होंगे, लेकिन वे जनताकी भलाईके लिए खड़े होंगे, आजकी तरह उसका खून चूसनेके लिए नहीं। नौसेनाकी बात मैं नहीं जानता, पर मैं यह जानता हूँ कि भावी भारतकी सेना किरायेके टट्टुओंकी सेना नहीं होगी, जिसका प्रयोग भारतको गुलाम बनाये रखने और अन्य राष्ट्रोंको उनकी स्वतन्त्रतासे वंचित करनेके लिए किया जाता है। सेना बहुत कम कर दी जायेगी, उसमें ज्यादातर स्वयंसेवक होंगे और उसका प्रयोग भारतकी सुरक्षा और रखवालीके लिए किया जायेगा। स्वराज्यमें कानून और न्यायालय भी होंगे। पर वे लोगोंकी स्वतन्त्रताके संरक्षक होंगे, आजकी तरह ये ऐसी नौकरशाहीके हाथोंके औजार नहीं होंगे, जिसने समूचे राष्ट्रको नपुंसक बना दिया है और जो उसे और भी नपुंसक बनानेपर तुली हुई है। अन्तमें, जहाँ हर व्यक्तिको — अगर वह ऐसा चाहेगा

—लँगोटी लगाकर घूमने और खुलेमें सोनेकी स्वतन्त्रता होगी; किन्तु मैं यह आशा भी करता हूँ कि तब आजकी तरह करोड़ों लोग पर्याप्त वस्त्र खरीदनेकी असमर्थताके कारण, एक गन्दा चिथड़ा पहनकर घूमनेपर बाध्य नहीं होंगे। आज तो तन ढकने लिए उनके पास यह लँगोटी ही है और अपने थके-हारे, भूखे-प्यासे शरीरको विश्राम देनेके लिए उनके नसीबमें खुला मैदान ही है। इसलिए 'हिन्द स्वराज्य'[1] में व्यक्त किये गये कुछ विचारोंको उनके उचित सन्दर्भसे अलग करके विकृत रूपमें लोगोंके सामने इस तरह रखना, मानो मैं सभीको उन विचारोंके अनुसार चलनेका उपदेश दे रहा हूँ, ठीक नहीं है।

एक और पुस्तिकामें गुण्डागर्दीकी इक्की-दुक्की कार्रवाइयोंको, जो निःसन्देह असहयोगियों या उनसे सहानुभूति रखनेवालों द्वारा ही की गई हैं, इस तरह पेश किया गया है मानो वह असहयोगियोंका आम पेशा हो। उसके बाद उनसे यह विचित्र निचोड़ निकाला गया है:

> असहयोगका मतलब है—संहार, रक्त-रंजित गृह-कलह और अव्यवस्थाके पुराने दुर्दिनोंकी ओर लौटना।

असहयोगका मतलब निश्चय ही आंशिक रूपसे, जहाँतक आवश्यक हो, संहार है। लेकिन वह बम्बईकी तरहका संहार नहीं है, जैसा कि इस पुस्तिकामें कहा गया है। उसका मतलब दरअसल, दोषपूर्ण व्यवस्थाका शान्तिपूर्ण उपायोंसे संहार है। और मैं यह जाननेके लिए बहुत ही उत्सुक हूँ कि खूनी गृहकलह और अव्यवस्थाके वे पुराने दुर्दिन कौनसे थे। क्या इतिहासमें इस तरहके विश्वासके लिए कोई प्रमाण मिलता है? मैंने तो लोगोंको गुजरे हुए अच्छे दिनोंकी प्रशंसाके ही गीत गाते सुना है। देशी भाषाकी पाठ्य पुस्तकोंमें मैंने कुछ ऐसे पद्य जरूर देखे हैं, जिनमें ब्रिटिश शासनकी प्रशंसा और उससे पहलेके शासनकी बुराई की गई है। परन्तु मुझे नहीं मालूम कि कभी कोई ऐसा भी समय था जब भारतमें एक सिरेसे दूसरे सिरेतक "रक्त-रंजित गृहकलह और अव्यवस्था" का साम्राज्य रहा हो।

बिहारमें खद्दरकी प्रगति

'बिहार हेरॉल्ड' में निम्नलिखित समाचार छपा है:

> बिहार और उड़ीसा सरकारकी भूमिकर प्रशासन रिपोर्टमें यह कहा गया है कि पटना, भागलपुर और तिरहुतमें रैयतमें अपने अधिकारोंकी समझ बढ़नेसे अबवाबकी[2] उगाही बहुत कम हो गई है। भागलपुरमें असहयोग आन्दोलनके कारण इस तरहकी जबरन वसूलियोंका विरोध कड़ा हो गया है।
>
> चरखा और हथकरघा उद्योगके पुनरुत्थानमें असहयोगका योगदान उल्लेखनीय है। सरकारी आँकड़ोंके अनुसार, बिहारमें पहने जानेवाले कुल कपड़ेका ⅓ वाँ भाग हथकरघेपर बुना जा रहा है। चरखेसे बुनाईके धन्धेको और

१. देखिए खण्ड १०, पृष्ठ ६-६९।
२. सिंचाई-कर।

> प्रोत्साहन मिला है। पटना, तिरहुत, उड़ीसा और छोटा नागपुर डिवीजनोंमें मोटियाकी कताई और बुनाई बहुत सफलतापूर्वक चल रही है। देशी करघोंपर तैयार किये गये मोटे कपड़ेका चलन बढ़ गया है, यह साफ जाहिर है।... नवादामें टसरकी बुनाई और औरंगाबादमें दरियों वगैरहकी बुनाईका धन्धा बराबर तरक्की कर रहा है।

इस उद्धरणसे जाहिर होता है कि बिहारमें रचनात्मक कार्य उत्तरोत्तर आगे बढ़ रहा है। तीन साल पहले वहाँ एक भी चरखा या घरके कते सूतसे तैयार एक गज खद्दर भी मुश्किलसे दिखाई देता था। बिहारकी गरीब जनता ही यह जानती है कि चरखा उसके लिए कैसा वरदान सिद्ध हुआ है।

विधान-परिषद्के एक सदस्यका इस्तीफा

खीरीके एक वकील श्रीयुत सीतारामने संयुक्त प्रान्त विधान परिषद्की सदस्यतासे इस्तीफा दे दिया है, और मेरे पास उसकी एक नकल भेजी है। इस्तीफेका मजमून इस प्रकार है:

> बहुत ही खेदके साथ मैं संयुक्त प्रान्त विधान परिषद्की अपनी सदस्यतासे इस्तीफा दे रहा हूँ। सुधारोंकी घोषणाके बाद ही मैंने पहली बार परिषद्का चुनाव लड़ा था। मेरा यह विश्वास था कि सुधारोंके बादकी सरकार सुधारोंके पहलेकी सरकारसे भिन्न होगी; आतंक और डायरशाहीका शासन अतीतकी एक घटना बन जायेगी और अब इस देशमें अनुचित और अकारण दमन नहीं होगा, बल्कि केवल अपराधी व्यक्तियोंको ही दण्ड दिया जाया करेगा; और परिषदोंमें निर्वाचित होकर लोग देशकी सच्ची सेवा कर सकेंगे। परन्तु एक सालके अनुभवने मेरी तमाम आशाओंपर पानी फर दिया है। मैंने देखा है कि परिषद्में दूसरोंके प्रति सम्मान और सद्भावना तो कम, गर्व और अकड़ ही अधिक है। वर्गीय और साम्प्रदायिक स्वार्थ अब भी पूर्ववत् बना हुआ है। मेरे अपने जिलेके अनुभवसे मुझे यह यकीन हो गया है कि शासनतन्त्रमें डायरशाहीके लिए अब भी जगह है।... राज्यके विशेष प्रबन्धक श्री यंगने ऐसी हरकतें की हैं, जिनसे शान्ति भंग हो सकती है, और वे ... राज्यकी सारी आबादीपर जुल्म ढा रहे हैं, पर सरकारने इस मामलेमें इन्साफके लिए कुछ नहीं किया। पण्डित हरकरणनाथ मिश्रको, जो लोगोंमें अहिंसाका प्रचार कर रहे थे और रैयतको यह समझा रहे थे कि वे जमींदारोंको अपना लगान अदा कर दें और आजकी परिस्थितियोंको देखते हुए सविनय अवज्ञा शुरू न करें, तीन सालकी कैदकी सजा दे दी गई है। हालमें भारत-भरमें और खासकर इस प्रान्तमें जो गिरफ्तारियाँ हुई हैं, उनसे मुझे यह विश्वास हो गया है कि सरकारने यह नीति निश्चित कर ली है कि जो भी व्यक्ति भारतके लिए सच्चा स्वशासन चाहता है उसे बन्द कर दिया जाये। दुःखके साथ कहना पड़ता है कि अपनी

प्रकृतिवश मैं इस तरहकी सरकारका अंग नहीं रह सकता। इसलिए मैं अपनी सदस्यतासे इस्तीफा देता हूँ।

उन्होंने मुझे यह सूचना दी है कि इस तरह जो जगह खाली हुई है उसके लिए पाँच उम्मीदवार हैं। उनकी उम्मीदवारीसे मुझे कुछ लेना-देना नहीं है। श्रीयुत सीताराम और वे, दोनों ही पक्ष ठीक हैं। श्रीयुत सीतारामको इन सुधारोंकी असलियत जाननेके लिए निजी अनुभवकी जरूरत थी। आशा है, अब जो व्यक्ति निर्वाचित होगा वह भी अपने अनुभवसे सीखेगा, लेकिन यह सब हो चुकनेके बाद भी कुछ लोग ऐसे बच रहेंगे जो ईमानदारीसे ऐसा मानेंगे कि, चाहे इन्हें अच्छी कहिए या बुरी, ब्रिटिश शासक हमें जो विधान परिषद् दे रहे हैं केवल उनके द्वारा ही हम कोई प्रगति कर सकते हैं। असहयोगियोंके लिए विधान परिषदें और विधान सभाकी कार्यवाहियाँ इस बातका साक्षात् प्रमाण होनी चाहिए कि उनसे उनका अलग रहना बुद्धिमत्तापूर्ण था।

शान्त रहनेकी अपील

सर रॉबर्ट वाटसन स्मिथके भाषणके सिलसिलेमें मेरे पास क्रोध-भरे पत्रोंका ताँता लगा हुआ है। एक पत्रमें मुझे सलाह दी गई है कि मैं उस दुःखद भाषणका पूरा-पूरा जवाब दूँ। एक और सज्जनने मुझे अखबारकी एक कतरन और उसके साथ पत्र भेजा है, जिसमें वे पूछते हैं :

> **क्या यह भारतके प्रति एक औसत अंग्रेजकी मनोवृत्तिका परिचायक नहीं है? और यदि ऐसा है, तो क्या हमें बेधड़क उनसे यह नहीं कह देना चाहिए कि वे भारतसे निकल जायें और देशको केवल इस धरतीकी सन्तानोंके हाथमें छोड़ दें? क्या हमारा यह घोषणा करना बहुत गलत होगा कि हमारा तात्कालिक उद्देश्य अंग्रेजोंको भारतसे निकाल बाहर करना है?**

पत्रलेखकका कहना है कि वे आन्दोलनके एक विनीत अनुगामी हैं। मैं उन्हें और उनकी तरह सोचनेवालोंको सादर यह बताना चाहता हूँ कि उपर्युक्त पत्रांश जिस मनोभावका सूचक है, वह एक असहयोगीके अनुरूप नहीं है। असहयोग हृदय-परिवर्तनकी एक प्रक्रिया है और हमें अपने आदर्श आचरणसे सर रॉबर्ट वाटसन स्मिथ-जैसे अंग्रेजोंतक का हृदय-परिवर्तन करना है। जहाँ मैं यह माननेको तैयार हूँ कि बंगाल चेम्बर ऑफ कॉमर्सके अध्यक्ष अधिकांश अंग्रेजोंकी मनोवृत्तिका प्रतिनिधित्व करते हैं, वहाँ एक अच्छी खासी संख्यामें ऐसे भी लोग हैं जो निश्चित ही स्मिथकी-सी मनोवृत्ति नहीं रखते। और जबतक हमारे बीच एन्ड्रयूज, स्टोक्स,[1] पियर्सन[2]-जैसे व्यक्ति हैं, तबतक हमारी यह इच्छा कि प्रत्येक अंग्रेज भारतसे निकल जाये, भद्रजनोचित नहीं होगी। यों भी यह जरूरी नहीं कि हम, जैसा पत्रलेखकने सुझाया

१. सैम्युल स्टोक्स, समाज-सेवक और सी० एफ० एन्ड्रयूजके साथी।
२. विलियम विन्स्टनली पियर्सन, एक मिशनरी।

है वैसा, अलगावका रुख अपनायें। अंग्रेज कभी-न-कभी समझदारी और बुद्धिमानीका दृष्टिकोण अपनायेंगे, इस बारेमें मैं निराश नहीं हूँ। आखिर वे व्यावहारिक लोग हैं। वे 'फिसल पड़ेकी हरगंगा'को भली-भाँति चरितार्थ करना जानते हैं। देखा तो यही गया है कि जिसे वे तर्कसे नहीं मानते, उसे हालातसे मजबूर होकर मान जाते हैं। परन्तु पत्रलेखकसे मेरा कहना है कि हममें कुछ आत्मविश्वास भी होना चाहिए। हमें जो आज कूड़ा-करकट मान लिया जाता है, उसमें क्या हमारा अपना कुछ भी दोष नहीं है? यदि हम अबतक इतने कमजोर रहे कि अपने अधिकारोंका आग्रह नहीं कर सके, हममें इतनी फूट रही कि हम अपनी इच्छाओंकी ओर किसीका ध्यान आकर्षित नहीं कर सके, इतने स्वार्थी रहे कि देशके लिए त्याग नहीं कर सके और इतने अज्ञानमें रहे कि देशके सच्चे हितोंको समझ नहीं सके, तो फिर यदि अंग्रेज व्यापारी हमारी कमजोरियोंका फायदा उठाकर हमारे मालिक बन बैठें और यह सोचने लगें कि उन्हें न केवल भारतमें रहनेका, बल्कि हमसे "लकड़ी काटनेवाले और पानी भरनेवाले" मजदूरोंकी तरह काम लेनेका भी परम्परागत अधिकार है, तो इसमें आश्चर्यकी कौन-सी बात है? पत्रलेखकने जो रुख अपनाया है, उससे केवल क्रोध ही नहीं, हममें आत्मविश्वासका अभाव भी प्रकट होता है। इसलिए मैं यह सोचता हूँ कि कांग्रेस द्वारा ग्रहण की हुई नीति ही शोभनीय और व्यावहारिक नीति है। यदि अंग्रेज और अन्य लोग मित्र और राष्ट्रके सेवकोंकी तरह रहें, तो हमारे देशमें उनके लिए काफी जगह है। लेकिन यदि कोई, चाहे वह अंग्रेज हो या कोई और, भारतमें शासक या मालिककी तरह रहना चाहता है तो यहाँ उसके लिए जगह नहीं है। हमें जातीय श्रेष्ठताके पिशाचसे लड़ना है, चाहे इसके लिए हमें प्राणोंकी बलि क्यों न देनी पड़े। साथ ही हममें यह समझने लायक नम्रता भी होनी चाहिए कि हम अपने ही पापका फल भोग रहे हैं। क्या हमने भारतके अछूतों-के साथ वही व्यवहार नहीं किया है जो स्मिथ-जैसे अंग्रेज हमारे साथ करते हैं।

जेलसे रिहा

पण्डित जवाहरलाल, मौलवी गुलामतुल्ला, शेख शौकत अली, श्रीयुत मोहनलाल सक्सेना, पण्डित बालमुकुन्द वाजपेयी, डा० शिवराज नारायण और डा० एल० सहाय मीयाद पूरी होनेसे पहले ही लखनऊ जेलसे रिहा कर दिये गये हैं।[1] जाहिर है कि संयुक्त प्रान्तकी सरकारने दुबारा जाँचके लिए जिन न्यायाधीश महोदयको नियुक्त किया था, वे इस नतीजेपर पहुँचे हैं कि सजाएँ गलत थीं। इन सजाओंमें से कितनी बिलकुल गलत हैं, यह ईश्वर ही जानता है। लेकिन एक चीज आज साफ जाहिर है कि कैदी अपनी रिहाईपर बजाय खुश होनेके दरअसल दुःखी हुए हैं। पण्डित जवाहरलाल और उनके साथियोंके साथ मेरी पूरी सहानुभूति है। अपंजीकृत पत्र 'इंडिपेंडेंट'में[2] उनका निम्नलिखित सन्देश छपा है:

१. जवाहरलाल नेहरू अन्य नेताओंके साथ २२ नवम्बर, १९२१ को गिरफ्तार किये गये थे।

२. यह फरवरी १९१९ में शुरू किया गया था; देखिए खण्ड १५, पृष्ठ ८३। असहयोग आन्दोलनके दौरान सरकारने इसकी जमानत जब्त कर ली थी।

> मैं क्या सन्देश दूं? पता नहीं मुझे क्यों रिहा कर दिया गया है। मेरे पिताजी, जो दमेके मरीज हैं, और मेरे सैकड़ों साथी अब भी जेलमें हैं। मैं ऐसा महसूस करता हूँ कि मुझे बाहर आनेका कोई अधिकार नहीं था। मैं केवल यही कह सकता हूँ: लड़ाई जारी रखो, भारतकी आजादीके लिए काम करते रहो। आरामकी जरूरत नहीं है, और किसी झूठे समझौतेके लिए अपने सिद्धान्तोंको छोड़नेकी जरूरत नहीं है। अपने महान् नेता महात्मा गांधीके पीछे चलो और कांग्रेसके वफादार रहो। कुशल बनो, संगठित होकर काम करो, और सबसे बड़ी बात यह है कि चरखे और अहिंसाको मत भूलो।

उग्र पन्थी नहीं है

संयुक्त प्रान्तके प्रचार आयुक्त लखनऊसे लिखते हैं कि १५ फरवरीके अपने पत्रमें उन्होंने देहरादूनसे निकलनेवाले 'गढ़वाली' को असावधानीमें एक उग्र पन्थी पत्र कह दिया था। अब उन्होंने लिखा है कि वह दरअसल एक नरम विचारोंवाला पत्र है।

ओछा अत्याचार

ढाकाके बाबू विमलानन्द दासगुप्तको एक सार्वजनिक सभाके सिलसिलेमें, जो ढाकामें गत २३ जनवरीको हुई थी और जबरदस्ती तितर-बितर कर दी गई थी, गिरफ्तार कर लिया गया था। बादमें उनपर मुकदमा चलाया गया और उनके विरुद्ध कोई प्रमाण न मिलनेपर वे बरी कर दिये गये। परन्तु, अधिकारियोंके लिए यह पर्याप्त नहीं था। इसलिए अब उन्हें वकालत-सम्बन्धी अधिनियमकी धारा ४० के अधीन निम्नलिखित नोटिस मिला है:

> ढाकाके जिला मजिस्ट्रेटने मुझे यह रिपोर्ट दी है कि इस अदालतके एक वकील बाबू विमलानन्द दासगुप्त, एम० ए०, बी० एल०, ने जुलाई १९२१ में अपनी वकालत स्थगित कर दी और वे तथाकथित ढाका नेशनल कालेजमें अर्थशास्त्रके प्रोफेसर नियुक्त हो गये। यह भी पता चला है कि उक्त विमलानन्द दासगुप्तने इस नौकरीके लिए उच्च न्यायालयकी अनुमति नहीं ली। जिला मजिस्ट्रेटकी रिपोर्टसे यह भी पता चलता है कि उक्त विमलानन्द दासगुप्त उस सभामें उपस्थित थे और उन्होंने उसमें भाग भी लिया था जो २९ जनवरी, १९२२को ढाकामें ढाकाके जिला मजिस्ट्रेट द्वारा दण्ड-प्रक्रिया संहिताकी धारा १४४के अधीन जारी किये गये आदेशोंके प्रतिकूल आयोजित की गई थी।
>
> आगे यह भी पता चलता है कि उक्त विमलानन्द दासगुप्तपर जब भारतीय दण्ड संहिताकी धारा १८८के अधीन मुकदमा चला, तो उन्होंने अदालतमें यह कहा कि ब्रिटिश सरकारके प्रति उनके मनमें कोई वफादारी नहीं है और जांच करनेवाले मजिस्ट्रेटके पदके लिए उनके हृदयमें कोई सम्मान नहीं है। इससे यह मालूम होता है कि उक्त विमलानन्द दासगुप्तने इस तरह वकीलोंके लिए बनाये गये नियमोंका शोचनीय उल्लंघन किया है।

> **इसलिए इस नोटिस द्वारा उक्त विमलानन्द दासगुप्तको यह आदेश दिया जाता है कि वे ७ मार्चको या उससे पहले यह बतायें कि उच्च न्यायालयको यह रिपोर्ट क्यों न दे दी जाये कि वह उनका वकालत करनेका अधिकार समाप्त या स्थगित कर दे।**

इस तरह जो तमाशा श्री शेरवानीके[1] साथ शुरू हुआ था, ढाकामें उसकी पुनरावृत्ति की जा रही है। लगता है इस नोटिसको जारी करनेवाला जज यह नहीं देख पाया कि कैफियत बिलकुल दूसरी है। जो लोग वकालत स्थगित कर चुके हैं, उनके स्वराज्यकी प्राप्तिसे पहले अदालतोंमें लौटनेकी सम्भावना ही नहीं है। स्वराज्यकी प्राप्तिके बाद, साफ है कि ऐसे सभी वकील यदि चाहेंगे तो अपनी वकालत फिर शुरू कर देंगे। फिर इस नोटिसका सिवाय इसके और क्या नतीजा निकल सकता है कि अदालतकी स्थिति हास्यास्पद हो जाती है और जनसाधारणको अदालतोंके बहिष्कारके लिए एक और कारण मिल जाता है, क्योंकि अदालतोंके द्वारा वकीलोंको किसी ऐसे आचरणके लिए दण्ड नहीं दिया जा रहा है जो व्यावसायिक शिष्टाचारके प्रतिकूल हो, बल्कि इसलिए दिया जा रहा है कि वे अमुक ढंगके राजनीतिक विचार रखते हैं, विचार बहुत उग्र हैं या कट्टर यह एक अलग बात है। ('दण्ड' शब्दका प्रयोग मैंने इसलिए किया है कि नोटिस जारी करनेवाला जज अपने-आपको इस विश्वाससे भरमा रहा है कि जो वकील अपनी वकालत स्थगित कर चुका है उसे वकालतके अधिकारसे वंचित करके वह उसे 'दण्ड' दे रहा है।) बाबू विमलानन्दपर तामील हुए इस नोटिसके फलस्वरूप यदि ढाकाके उनके बन्धु वकीलोंके रुखमें सख्ती आ जाती है और उनमें-से कमसे-कम कुछ अदालतोंको छोड़ देते हैं, चाहे वे ऐसा इस बातके विरोधमें ही क्यों न करें कि अदालतोंको इस तरह राजनीतिक उत्पीड़नकी मशीनोंमें परिवर्तित किया जा रहा है, तो मुझे इससे तनिक भी आश्चर्य नहीं होगा।

आशीर्वाद

बड़ोदादा[2] (द्विजेन्द्रनाथ ठाकुर)ने मुझे एक छोटा-सा सुन्दर पत्र भेजा है, जिसमें नीचे लिखी पंक्तियाँ भी हैं:

> **पीड़ासे छटपटाती हुई हमारी इस धरतीपर मानव-जातिके लिए शान्ति और सद्भावका एक नया युग आरम्भ करनेको भारत-माताकी सन्तानोंकी हार्दिक प्रार्थनाओंको वहन करनेवाला जो विशाल जहाज आज बढ़ रहा है, उसकी तेज और धीमी गतिके सम्बन्धमें मेरे विचार इस प्रकार हैं:**

१. तसद्दुक अहमद खाँ शेरवानीने, जो राष्ट्रीय मुस्लिम विश्वविद्यालयके अध्यक्ष थे, वकालत छोड़ दी थी। अलीगढ़में उपद्रवोंके तुरन्त बाद वे गिरफ्तार किये गये थे और इलाहाबादके पास नैनी जेलमें रखे गये थे। देखिए खण्ड २२, पृष्ठ १३८-३९, ३७३।

२. रवीन्द्रनाथ ठाकुरके बड़े भाई; ये सिद्धान्त-रूपमें गांधीजीकी असहयोग योजनाके बहुत बड़े प्रशंसक थे।

होशियार कप्तान जब अपने जहाजको किसी ऐसे स्थानपर पाता है जहाँ बहुत सारी खतरनाक चट्टानें हों, तो वह उसे सही दिशामें चलाते हुए उसकी गति धीमी कर देता है। पर जैसे ही वह खुले समुद्रमें पहुँचता है, जहाँ इस तरहकी रुकावटें बिलकुल नहीं होतीं, वह अपने जहाजकी गति तेज कर देता है। लेकिन बेवकूफ कप्तान, जहाँ समुद्रमें जलमग्न चट्टानें न हों वहाँ भी, चट्टानोंके भयसे अपने जहाजको एक गलत दिशामें मोड़ देता है। इस प्रकार वह एक अनजान क्षेत्रकी ओर बढ़ जाता है, जहाँ पानीके नीचे चट्टानें छिपी होती हैं। और जैसे ही उसका जहाज उनके पास पहुँचता है, वे उसे चकनाचूर कर देती हैं।

महात्मा गांधी अपने जहाजको पहली रीतिसे चला रहे हैं, जब कि उनके सलाहकार चाहते हैं कि वे दूसरी रीति अपनायें।

मुझे आशा है कि आन्दोलनके अन्तमें यह कहा जा सकेगा कि मैं एक "होशियार कप्तान" ही था। मैं यह बात सच्चाईके साथ कह सकता हूँ कि तूफानके जैसे थपेड़े मैं इस समय खा रहा हूँ वैसे मैंने जीवनमें कभी नहीं खाये। अभीतक मैंने अपने-आपको इस विश्वाससे भरमाये रखा कि यदि मेरी कुछ सीमाएँ हैं, तो साथ ही मुझमें काफी क्षमता भी है। परन्तु इस समय ऐसा लगता है कि जितने गहरे पानीमें मुझे नहीं उतरना चाहिए था मैं उससे अधिक गहरेमें पहुँच गया हूँ। इसलिए बड़ोदादा-जैसे निर्मल और साधु पुरुषकी प्रार्थनाएँ और आशीषें इस समय मेरे लिए बहुत ही शुभ हैं।

यदि यह बात सच है तो भयानक है

एक सज्जनने, जिन्होंने अपना नाम मेरे सूचनार्थ लिख भेजा है, अपने पत्रपर "पंजाबका एक राष्ट्रवादी" इस रूपमें ही हस्ताक्षर किये हैं, लिखते हैं:

१६ तारीखके अपने अंकमें आपने लिखा है:

"सिखोंमें सचमुच गजबकी जागृति आ गई लगती है। अकाली दल न केवल प्रभावशाली अहिंसाका एक दल बन गया है, बल्कि वह एक सुन्दर आचार-संहिता भी तैयार कर रहा है। गुरुद्वारा कमेटी अब एक गैर-सिख पण्डित दीनानाथकी रिहाईपर जोर दे रही है, और जो चाबियोंवाले मामलेके[1] सिलसिलेमें गिरफ्तार किये गये हैं।"

ऐसा लगता है कि आपको तथ्य मालूम नहीं है, नहीं तो आप युद्धप्रिय अकाली दलको "प्रभावशाली अहिंसा" का दल बताते हुए शायद कुछ हिचकते। होशियारपुर जिलेमें अकाली जत्थोंके उद्दण्ड और उपद्रवी व्यवहारके कारण वहाँ फौजका एक दस्ता भेजना पड़ा है। अभी उस दिन होशियारपुरसे दो

१. देखिए खण्ड २२, पृष्ठ ४३७।

मीलकी दूरीपर बिलासपुरमें एक सभा हुई थी, जिसमें कोई २,००० अकाली मौजूद थे। जिस जगह वक्ता बैठे हुए थे, उसके चारों ओर लोग कतारें बाँधे खड़े थे और सबके हाथोंमें नंगी तलवारें थीं। वक्ताओंने बहादुरीके साथ यह घोषणा की कि आज कोई सरकार नहीं है; एक भविष्यवाणीके अनुसार काबुलसे एक अकाली आयेगा और वह तमाम विरोधी शक्तियोंको परास्त कर दिल्लीके सिंहासनपर बैठेगा; और हम इशारा पाते ही क्रान्तिकारी कार्यवाहियाँ शुरू कर देनेको बिलकुल तैयार हैं। होशियारपुरमें अकालियोंका अपना एक फौजी रसद विभाग और खुफिया विभाग है। इर्दगिर्दकी खबर रखनेके लिए उनके पास साँड़नी-सवार हैं। गौरीशंकरमें जब कुछ राजनीतिक कैदियोंपर मुकदमा चल रहा था, अदालतके बाहर एक भारी भीड़ जमा हो गई और दर्पपूर्ण भावसे मजिस्ट्रेटसे कहा कि कैदियोंको हमारे हवाले कर दिया जाये।

अकालियोंकी शपथमें से अहिंसाकी प्रतिज्ञा अब हटा दी गई है; और वे सेवाका जो व्रत लेते हैं वह केवल गुरुद्वारा-सुधारतक सीमित नहीं है। हर रोज सभाएँ होती हैं, और मौजूदा सरकारकी जगह सिख-शासन स्थापित करनेकी बात खुल्लमखुल्ला कही जाती है। लुधियानेसे खबरें मिली हैं कि जोशीले सिखोंके जत्थे तलवार, कुठार और हथौड़े लिये, बड़े ठाठसे परेड करते हुए, अपने 'दीवानों' में जाते हैं। वे बाकायदा जत्थे बनाकर बाजारोंमें से गुजरते हैं, और जब कभी भारी संख्यामें रेलसे सफर करते हैं तो टिकट नहीं खरीदते। कभी-कभी वे यहाँतक दावा करते हैं कि उन्हें मुफ्त सफर करनेका अधिकार है, क्योंकि वे मूर्खतापूर्वक यह मानते हैं कि देश उनका है। समनालामें अकाली वक्ताओंने यह घोषणा की "बादशाह जॉर्ज पंचम हमारा बादशाह नहीं है। सरदार खड़कसिंह हमारा बेताजका बादशाह है।" २३वें पायनियर्स दलके कुछ आदमियोंने, जो कसूर तहसीलमें अपनी छुट्टियाँ बिताकर लौटे हैं, शिकायत की है कि अकालियोंने उन्हें धमकी दी है कि यदि उन्होंने फौरन फौजकी नौकरी नहीं छोड़ दी और वे खालसा सेनामें शामिल नहीं हुए तो उनकी औरतोंके साथ बुरा व्यवहार किया जायेगा। संक्षेपमें, ये कुछ ऐसे भयानक तथ्य हैं जिनसे आपका यह विचार बदल जाना चाहिए कि पंजाबके केन्द्रीय जिलोंके सिखोंमें जो जागृति आई है, वह अहिंसात्मक है।

इस पत्रने मुझे चौंका दिया है। इस रिपोर्टपर सहसा विश्वास नहीं होता। परन्तु चूँकि पत्रलेखकका दावा है कि यह विवरण बिलकुल सही है, और चूँकि मैं सिखोंकी अहिंसाकी भूरि-भूरि प्रशंसा कर चुका हूँ, इसलिए इस रिपोर्टको प्रकाशित करते हुए भी मुझे झिझक महसूस नहीं हुई। तथापि मैं इसपर तबतक अपनी राय प्रकट नहीं कर सकता जबतक कि उन सिख मित्रोंसे, जिन्हें मैं इस विषयमें लिख चुका हूँ, पूरी बातका पता न चल जाये।

छानबीनके योग्य एक मामला

अकालियोंके विरुद्ध "पंजाबके एक राष्ट्रवादी" के आरोपोंकी चर्चाके वाद जो पत्र मेरे सामने आया वह फेनी, जिला नोआखलीके एक प्रसिद्ध नागरिकके पाससे आया है। उन्होंने अपना नाम और पूरा पता दिया है, और मुझसे अपना नाम प्रकाशित न करनेके लिए भी नहीं कहा है। लेकिन मैं जान-बूझकर उनका नाम नहीं दे रहा हूँ। क्योंकि यदि उनके पत्रमें वताये गये तथ्य सही हैं, तो सम्भव है कि सच्ची वात कहनेका साहस दिखानेके कारण उनके साथ दुर्व्यवहार किया जाये। १६ फरवरीको भेजा गया उनका पत्र इस प्रकार है:

> मैं आपका ध्यान नोआखली जिलेके फेनी सब-डिवीजनकी आजकी स्थितिकी ओर खींचना चाहता हूँ। यद्यपि मैं असहयोगी नहीं हूँ, पर आपके लिए मेरे हृदयमें सम्मान है। आपका यह आन्दोलन अहिंसात्मक घोषित किया गया है। परन्तु आपके अनुयायियोंकी हिंसा सहनशीलताकी सीमासे वहुत आगे बढ़ गई है। उनमें न तो शान्ति और व्यवस्था है और न बड़ोंके लिए कोई आदर। गाँवोंके वदमाशोंको अपना धन्धा जारी रखनेका एक सुनहरी मौका मिल गया है और वे स्वयंसेवक दलोंमें शामिल हो गये हैं। उन्हें रोकनेवाला कोई नहीं है। देश इस समय इन लोगोंकी मुट्ठीमें है। हरएक हाटवाले दिन वेचारे माल वेचने-वालों और दुकानदारोंसे रुपया ऐंठा जाता है। जबकि गरीव दो वक्तका भोजन भी मुश्किलसे जुटा पाते हैं, उन्हें हर रोज सुबह और शाम एक-एक मुट्ठी चावल देना पड़ता है, नहीं तो उन्हें सताया जाता है। जो अभागे, असहयोगी नहीं हैं वे सामाजिक वहिष्कारके शिकार हो रहे हैं, उनपर मैला फेंका जाता है, उनके घर जला दिये जाते हैं, उन्हें धमकी दी जाती है, उनपर हमले होते हैं, पत्थर फेंके जाते हैं और इसी तरहकी दूसरी वातें होती हैं। वे जबान नहीं खोल पाते। आपके सूचनार्थ मैं नीचे इस हिंसाके कुछ उदाहरण दे रहा हूँ:
>
> १. हाईकोर्टके वकील मौलवी नूरुल हक, श्री अली हैदर चौधरी और वाबू यशदाकुमार घोषपर मैला फेंका गया, क्योंकि वे कौंसिलके लिए उम्मीद-वार थे।
>
> २. मुंशी मुहम्मद वासिल और दीवानी अदालतके क्लर्क मुंशी रियाजुद्दीन अहमदपर वाजारमें वेरहमीसे हमला कर दिया गयां और उनकी वेइज्जती की गई, क्योंकि उन्होंने अपनी टोपियाँ स्वयंसेवकोंको देनेसे इनकार कर दिया था।
>
> ३. वाजार रियाजुद्दीन मुंशी, वाजार पीर वक्श मुंशी, वाजार दारोगा मोहम्मद आमा और अन्य वहुतसे वाजार जबरदस्ती वन्द कर दिये गये और खरीदारों व वेचनेवालोंको वाजारमें इकट्ठा नहीं होने दिया गया, क्योंकि इन वाजारोंके मालिक असहयोगी नहीं है।

४. स्थानीय सब-डिवीजनल आफिसर तथा अन्य प्रमुख व्यक्तियोंके साथ छेड़छाड़ की गई और कई जगह उनकी मोटरें जबरदस्ती रोक ली गईं; कई जगह उनपर पत्थर और धूल फेंकी गई।

५. गांवके एक शरीफ आदमीके घरमें आग लगा दी गई और उसे दूसरे तरीकोंसे धमकी दी गई, क्योंकि जब एस० डी० ओ० की मोटर जबरदस्ती रोक ली गई थी तो उसने उनकी व उनके साथीकी मदद की थी।

६. खान साहबके घरको जलानेकी बार-बार कोशिश की गई और आखिर उनका घर जलाकर खाक कर दिया गया, और उसके बाद मजदूरोंको धमकी देकर उनके यहां काम करने और फिरसे मकान बनानेसे रोका गया।

७. सहयोगियोंको गुमनाम पत्रों और पोस्टरों द्वारा और लोगोंको उनके खिलाफ खुल्लमखुल्ला भड़काकर आतंकित किया जाता है।

८. खान साहबको बांसके पुलपर से नहर पार नहीं करने दी गई और उनका सबके सामने अपमान किया गया। और भी अनेक उदाहरण हैं। ये बिलकुल सच्ची घटनाएँ हैं और मेरी यह चुनौती है कि कोई भी इन तथ्योंको गलत सिद्ध करके दिखाये। कांग्रेस और खिलाफतके स्थानीय कार्यकर्त्ता इस सिलसिलेमें कोई कदम नहीं उठाते, बल्कि वे इसमें उलटा गर्व अनुभव करते हैं, क्योंकि उन्होंने तो मनमानी करनेका ठेका ले रखा है। मानवताके नामपर मेरी आपसे यह अपील है कि कृपया इसकी जाँच कराइए। मुझे पूरा विश्वास है कि आप इस स्थितिको बेरोकटोक नहीं चलने देंगे और जो लोग आपके मतके अनुयायी नहीं हैं, उन्हें भी जिन्दा रहने देंगे।

मैंने इस पत्रके अनावश्यक लगनेके कारण केवल एक या दो ही अंश छोड़े हैं। अभीतक मेरे पास जब-तब असहयोगियोंके खिलाफ शिकायतें आती रही हैं और मैंने उनमें लगाये गये आरोपोंकी सचाई जाननेके लिए उन्हें प्रकाशित करने या उनके विषयमें अन्य कार्रवाई करनेमें संकोच नहीं किया है। प्रायः ये आरोप अतिरंजित और कभी-कभी अनुचित भी सिद्ध हुए हैं। परन्तु यह काफी आश्चर्यकी बात है कि मेरे पास अब ऐसे निश्चित आरोप आ रहे हैं जिनका भेजनेवाला उन्हें सिद्ध करनेको भी तैयार है। दुर्भाग्यवश मुझे हफ्ता-दर-हफ्ता "इन कोल्ड ब्लड" (नृशंस घटनाएँ)[1] शीर्षकसे बंगाल, असम, संयुक्त प्रान्त, पंजाब, आन्ध्र और अन्यत्र हो रहे भीषण दमनके किस्से छापने पड़े हैं। इनमें से किसी-न-किसी स्थानसे सुनियोजित दमनकी खबरें बराबर मिलती रहती हैं। परन्तु मैं अपने-आपको इस विश्वाससे भरमाता रहा हूँ कि कुल मिलाकर असहयोगियोंका आचरण निर्दोष रहा है। इसलिए नोआखलीकी इस खबरसे मुझे गहरा धक्का लगा है। मैं जानता हूँ लोग इसका प्रतिवाद करेंगे किन्तु पत्रमें इतना तथ्यपूर्ण ब्योरा दिया गया है कि ये आरोप साररूपमें सम्भवतः सही निकलेंगे। पत्र-लेखकने जाँचकी माँग की है। काश कि मेरे पास ऐसा करनेके लिए समय और

१. ये **यंग इंडिया** के जनवरी–फरवरी १९२० के अंकोंमें प्रकाशित हुए थे।

अधिकार होता। लेकिन मैं कांग्रेस और खिलाफत कमेटियोंके सभी असहयोगी कार्य-कर्त्ताओंको इस बातके लिए आमन्त्रित करता हूँ कि वे इन आरोपोंका जवाब दें। मैं चाहूँगा कि वे मेरे पास प्रकाशनार्थ पत्र भेजें, जो संक्षिप्त और युक्तियुक्त हों। जो आरोप सही हैं, उन्हें पत्रमें साफ-साफ और दृढ़तापूर्वक स्वीकार किया जाये। मैं प्रान्तीय कांग्रेस कमेटीको भी इस बातके लिए आमन्त्रित करता हूँ कि वह इस मामले-पर तुरन्त ध्यान दे; एक या दो आयुक्तोंको इस कामके लिए नियुक्त करे और एक पूर्ण व विस्तृत जाँच करवाये। पत्र-लेखकका नाम जाननेकी उन्हें जरूरत नहीं क्योंकि उनके खयालसे जिन लोगोंको सताया गया है, उनके नाम उन्होंने साफ-साफ दे ही दिये हैं। इसलिए जाँच बिलकुल आसान है। इस बीच जो लोग धमकी, जोर-जबर-दस्ती, हमलों और सामाजिक बहिष्कारकी ऐसी कार्यवाहियोंके, जो कांग्रेसी या खिला-फती असहयोगियों द्वारा या उनकी ओरसे की गई हों, प्रामाणिक उदाहरण भेज सकते हों, उनका 'यंग इंडिया' के स्तम्भमें स्वागत है, क्योंकि मैं यह जानता हूँ कि बुराइयों-का प्रकाशन उनका आधा इलाज ही है। वस्तुतः हर कांग्रेसी खिलाफती है और हर खिलाफती कांग्रेसी; लेकिन चूँकि देशमें हमारे ये दो संगठन हैं, इसलिए मैं दोनोंसे यह अपील करता हूँ कि वे हमारे अपने कुकर्मोंका निर्दयतासे परदा फाश करें। प्रशासकोंके कुकर्मके लिए मुझे हजारों बहाने मिल सकते हैं, और किसी कारण नहीं तो केवल इसीलिए कि हम उन्हें इसी लायक मानते हैं; किन्तु हम तो अहिंसा और ईमानदारीका पूरा आचरण करनेका दावा करते हैं। यदि हम अपने प्रति कठोर रहें तो इस संघर्षको कहीं अधिक तेजीके साथ सफल बना सकते हैं। धमकी देने, जोर-जबरदस्ती करने, हमला या सामाजिक बहिष्कार करनेके लिए हमारे पास कोई भी कारण नहीं है। जो लोग मुझे शिकायती पत्र भेजना चाहते हों, उनसे मैं यह अनुरोध करूँगा कि वे संक्षेपमें बिलकुल सही बातें लिखें और साफ लिखावटमें कागजके सिर्फ एक ओर लिखें। मेरे पास हर रोज जो भारी डाक आती रहती है, उसे पूरा-पूरा देख पाना कोई आसान काम नहीं है। यदि वे मेरी इस मामूली-सी प्रार्थनाको मान लेंगे तो उनके पत्रोंपर जल्दी ध्यान दिया जा सकेगा। पत्र-लेखक अस्पष्टसे सामान्य निष्कर्ष निकालनेसे भी बचनेकी कोशिश करें। निश्चित ब्यौरे, जैसे कि नोआखलीवाले पत्रमें दिये गये हैं, बहुत ही आवश्यक हैं, क्योंकि तभी उनपर यकीन किया जा सकता है और तभी उनसे जाँचमें सहायता मिल सकती है।

वचनका मूल्य

श्री सुब्रह्मण्य शिवके माफीनामेकी खबरके बारेमें 'यंग इंडिया' में मैंने उन्हें अपनी स्थितिको स्पष्ट करनेका जो निमन्त्रण[1] दिया था, उसके उत्तरमें उन्होंने निम्न-लिखित स्पष्टीकरण भेजा है:

> मेरी रिहाईके बारेमें सरकारकी विज्ञप्तिसे बहुत-से देशवासियोंके मनमें मेरे और मेरी वर्तमान स्थितिके सम्बन्धमें गलतफहमी पैदा हो सकती है।

१. देखिए खण्ड २२, पृष्ठ ३८३।

स्वयं महात्माजीने 'यंग इंडिया'में यह इच्छा प्रकट की है कि मैं एक पूर्ण वक्तव्य देकर अपनी स्थिति स्पष्ट कर दूं। गत २० जनवरीके 'हिन्दू'में मैं अपनी स्थिति पहले ही स्पष्ट कर चुका हूँ। मेरा स्पष्टीकरण इस प्रकार है:

विज्ञप्तिके शब्दोंसे यह भाव निकलता है कि सरकारको मैंने कोई वचन दिया है इसलिए उसने मुझे छोड़ा है। लेकिन त्रिचनापल्ली सेंट्रल जेलके सुपरिन्टेन्डेन्टको जो आदेश दिया गया वह इस प्रकार था:

"सपरिषद् गवर्नर, दण्ड प्रक्रिया संहिताकी (अमुक) धारा के अधीन, वन्दी सुब्रह्मण्य शिवकी बाकी सजा बिना शर्त खुशीके साथ माफ करते हैं।"

आदेशके 'बिना शर्त' शब्दोंसे यह साफ हो जाता है कि किसी वचन या शर्तका कोई जिक्र नहीं किया गया, और मेरी रिहाईका मुख्य कारण प्रधान सर्जन और जिला मेडिकल ऑफिसरकी सिफारिशें ही रही होंगी। मुझपर कोई शर्त नहीं लगाई गई है; और मैं पहलेकी तरह अपनी इच्छानुसार किसी भी ढंगसे काम करनेके लिए स्वतंत्र हूँ, अपने देशवासियोंको मैं यह बता देना चाहता हूँ।

अब दो शब्द अपने वचनके बारेमें। सजा हो जानेके बाद फौरन ही मैं जेलमें इतना सख्त बीमार पड़ गया कि तेज बुखारके अलावा मुझे हर रोज बेशुमार दस्त भी आने लगे। यहाँतक कि कभी-कभी मैं प्रलाप करने लगता। मेरे जीवनकी कोई आशा नहीं बची थी। ऐसे ही समयमें मैंने सरकारको यह वचन लिखकर दे दिया कि यदि मुझे रिहा कर दिया जाये तो मैं भविष्यमें राजनीतिसे अलग रहूँगा। कुछ लोग इसे मेरी कमजोरी समझ सकते हैं। परन्तु यदि उन परिस्थितियों और उस समयको ध्यानमें रखा जाये जिसमें कि मैंने यह लिखा था, तो मेरा खयाल है कि मुझे निश्चय ही क्षमाका अधिकारी समझा जायेगा। होमर तकने यह माना है कि इन्सानसे गलती होती ही है; और मैं भगवान् नहीं हूँ। अपने देशवासियोंसे, जो मेरे जीवनको १९०५ से देख रहे हैं, यह आशा रखनेका मुझे पूरा-पूरा अधिकार है कि वे मेरी इस छोटी-सी पिछली कमजोरीको बहुत महत्त्व न देंगे।

यद्यपि सभी यही चाहेंगे कि लोग यन्त्रणाएँ झेलते हुए भी माफी न माँगें, परन्तु जो व्यक्ति शारीरिक पीड़ासे कमजोर पड़ जाते हैं उनकी आलोचना करना बाहरवालों का काम नहीं है। इसलिए श्री शिवकी जनतासे यह अपील ठीक ही है कि माफीनामा देनेके कारण वह उनके बारेमें कोई कठोर राय कायम न करे। लेकिन बात यह है कि एक बार माफीनामा दे देने और कोई वायदा कर लेनेके बाद उसे ईमानदारीसे पूरा किया जाना चाहिए था। माफीके आदेशमें जो "बिना शर्त" शब्द हैं, श्री सुब्रह्मण्य शिवको उनसे लाभ उठानेका कोई अधिकार नहीं है। वे इस बातके परिचायक हैं कि एक असहयोगीकी ईमानदारीपर भरोसा किया जा सकता है। निश्चय ही सरकार द्वारा यह विश्वास सर्वथा उचित था कि श्री शिव अपने लिखित वचनका पालन

करेंगे। मैं चाहता हूँ कि जहाँतक सत्य और अहिंसाका सम्बन्ध है, असहयोगीको इस योग्य बनना चाहिए कि उसकी ओर कोई अँगुली न उठा सके। इस संघर्षकी सफलता एकमात्र नैतिक प्रतिष्ठाके अर्जनपर ही निर्भर है, और वह केवल तभी हो सकती है जब सभी तरहकी परिस्थितियोंमें पूरी तरह सतर्कताके साथ ईमानदारी बरती जाये। बिना शर्त माफीकी बातसे श्री शिव जो लाभ उठाना चाहते हैं, उसे उठानेके बजाय वस्तुतः उन्हें यह चाहिए कि वे, कमसे-कम इस कार्यमें, सरकारकी इस उदारताको स्वीकार करें कि उसने माफीनामेका उल्लेख करके उनको जलील नहीं किया है। इस दुःखद प्रकरणको समाप्त करनेसे पहले मुझे श्री सुब्रह्मण्य शिवसे यह निवेदन करना ही होगा कि वे अब भी इस आशयकी एक खुली घोषणा कर दें कि वे राजनीतिमें कतई भाग नहीं लेंगे, साथ ही दिये हुए वचनके भंगके लिए क्षमा भी माँग लेंगे। मुझे यकीन है कि उनके अपने वचनपर कड़ाईसे जमे रहनेसे उन्हें या जनताको कोई हानि नहीं होगी। उनके लिए सामाजिक और आर्थिक कार्यका व्यापक क्षेत्र खुला हुआ है। खद्दरके विशुद्ध आर्थिक और नैतिक पहलुओंको लेकर वे उसका बहुत-कुछ कार्य कर सकते हैं।

पत्नीकी बधाई

लायलपुरके श्री अब्दुर्रहमान गाजीने, जब उनपर मुकदमा चल रहा था, निम्नलिखित पत्र लिखा था :

> स्वराज्य-मन्दिरमें पहुँचकर निश्चिन्तताके साथ बैठ जानेसे पहले, मैं अपने एक दोस्तके पास आप तक पहुँचा देनेके लिए ये कुछ पंक्तियाँ छोड़े जा रहा हूँ। यह मुकदमा, जैसा कि आम तौरपर होता है, एक भारी ढकोसला है। मुझपर धारा १०८ लगाई गई है। सबके-सब गवाह ऐसे ही लोग हैं, जिनका कुछ-न-कुछ अपना स्वार्थ है। मौजूदा सरकारका पूर्णतया नैतिक पतन हो चुका है, यह बात इस मुकदमेसे मेरे आगे बिलकुल साफ हो गई है। इस मुकदमेके सम्बन्धमें अखबारोंको भेजे गये तार रोक दिये हैं। मेरी पत्नी इस मुकदमेके बारेमें क्या लिखती है, आपको जानकर खुशी होगी :
>
> "अपनी गिरफ्तारीपर मेरी बधाई कबूल कीजिए। खुदाका शुक्र है कि जिस दिनका एक मुद्दतसे इन्तजार था वह आ गया और खुदाने आपकी कुर्बानी मंजूर कर ली। हम सब बहुत खुश हैं। खुदा करे कि आप अपने मुल्क और मजहबके लिए खुशीसे तकलीफें सह सकें। खुदा हमें अपने मकसदके लिए मुसीबतें सह सकनेकी ताकत दे।"
>
> मैं आशा करता हूँ कि अब मेरी रिहाई राष्ट्रीय संसदके आदेशोंसे होगी।

यह पत्र २६ जनवरीको लिखा गया था। ४ मार्चको इसे पढ़ते हुए दिलको कुछ ठेस-सी लगती है, क्योंकि राष्ट्रीय संसद अब उतनी निकट नजर नहीं आ रही जितनी निकट वह, निःसन्देह, २६ जनवरीको आ रही थी। लेकिन एक सिपाहीके लिए यह बात महत्त्वपूर्ण नहीं है कि लड़ाईमें जीत कब होती है। उसके लिए तो

केवल अपने मोर्चेपर जमे रहना महत्त्वपूर्ण है। शानदार रिहाई तो मैं उसे मानता हूँ जो स्वराज्य संसद आते ही अधिनियम बनाकर करेगी या फिर जो रिहाई समय पाकर अपने आप होगी। और निःसन्देह, मैंने अभी यह आशा नहीं छोड़ी है कि यदि बारडोलीका संशोधित रचनात्मक कार्यक्रम सफलतापूर्वक पूरा किया जा सका तो कैदियोंको राष्ट्रकी शक्तिसे रिहा कराया जा सकेगा।

कलकत्ता अभी तैयार नहीं है

कलकत्ताके एक सज्जन अपने पत्रमें लिखते हैं:

> मेरा मन मुझे यह कहनेको बाध्य करता है कि बंगाल, पड़ोसी-प्रान्त बिहारकी तुलनामें, स्वदेशीके लिए कुछ नहीं कर रहा है। वह अभी बहुत पीछे है। जो स्वयंसेवक होनेका दम भरते हैं वे भी खद्दर नहीं पहनते। मैं इस महानगरके प्रायः सभी प्रमुख भागोंमें घूमा हूँ, पर मुझे एक भी आदमी ऐसा नहीं मिला जो खद्दर पहने हो। दूसरी ओर बिहारमें शायद ही कोई आदमी ऐसा मिलेगा जो विलायती कपड़े पहने हो। गांवोंमें अभी लोगोंने खद्दरकी धोतियां पहननी शुरू नहीं की हैं। पर मिलकी धोतियोंकी जगह खद्दरकी धोतियां चालू करनेकी कोशिशें हो रही हैं।

मैंने पत्रके केवल कुछ अंश ही उद्धृत किये हैं। आगे वे कहते हैं कि यदि कलकत्ते-जैसी ही दशा बंगालके गांवोंमें भी है, तो सत्याग्रहकी लड़ाई जीतना सम्भव नहीं है। इसका समर्थन अन्य कई पत्रोंसे भी होता है। पर मैं यह माननेको तैयार नहीं हूँ कि खुद कलकत्तेमें भी खद्दरके आन्दोलनमें कोई प्रगति नहीं हुई है। साथ ही मुझे लगता है कि कलकत्तेके विरुद्ध यह आरोप अधिकांशतः सच है। खद्दरका पहनावा कलकत्तेमें आम बात नहीं बल्कि एक अपवाद है; और इस तथ्यसे इनकार नहीं किया जा सकता कि पूर्ण सत्याग्रह तबतक असम्भव है जबतक कि उसकी पूर्ववर्ती शर्तें पूरी तरह अमलमें न लाई जायें। यदि हमें शान्तिपूर्ण स्वराज्यकी स्थापना करनी है — और शान्तिपूर्ण उपायोंसे प्राप्त स्वराज्य शान्तिपूर्ण ही होगा — तो हमें निर्माणके लिए उतना ही तैयार रहना चाहिए जितना कि हम विनाशके लिए तैयार लगते हैं। यदि संक्रान्ति कालमें हमें गड़बड़, अराजकता और गृह-कलहसे बचना है, तो बहिष्कारके साथ-साथ निर्माण भी चलते रहना चाहिए। हटाई गई चीजोंकी जगह दूसरी चीजें लाते जाना चाहिए और एक ओर अवज्ञा तो दूसरी ओर अनुशासन भी चाहिए। निर्माणका सबसे बड़ा अंग खद्दर-आन्दोलन है। यदि इस संघर्षको अन्त तक अहिंसात्मक रखना है, तो हम उसकी उपेक्षा करनेकी हिम्मत नहीं कर सकते।

एक दिलचस्प सूचना

सर्वश्री प्रकाशम्, नागेश्वरराव और नारायणरावने गुण्टूर जिला कांग्रेस कमेटी द्वारा चुने गये इलाकोंकी सामूहिक सविनय अवज्ञाकी तैयारीके बारेमें जो रिपोर्ट जारी की थी, यद्यपि वह अब पुरानी पड़ गई है, पर फिर भी पढ़नेमें दिलचस्प है। आयुक्तोंने इलाकेके दो भाग किये हैं: पेड्डानन्दीपाडु फिरका और उसके आसपासके

तमाम गाँवोंकी एक संलग्न इकाई बनती है, और दूसरे भागमें पालनाड, विनुकोंडा और सेट्टनपल्लीके बाकीके फिरके तथा ओंगोल, नरसारावपेट, तेन्नाली और रिप्पलीके भाग आते हैं। उनकी यह राय है कि चुने गये इलाकेका दूसरा भाग खद्दर-सम्बन्धी शर्तोंको तो सर्वथा पूरा करता है, पर अस्पृश्यता-सम्बन्धी शर्तोंको नहीं करता, यद्यपि लोगोंकी मनोवृत्तिमें बहुत सुधार हुआ है। अहिंसाके बारेमें उन्होंने जहाँतक यह माना है कि लोग स्वभावसे अहिंसात्मक हैं, वहाँ उनका कहना है कि "फिर भी हमें इसमें सन्देह है कि घोरतम उत्तेजना और अपमानकी परिस्थितिमें वे अडिग रह सकेंगे या नहीं।" वे इस निष्कर्षपर पहुँचे हैं कि हिन्दू-मुसलमान एकताकी शर्त अधिकतर पूरी कर ली गई है।

इलाकेके पहले भागके बारेमें तो उक्त तीनों सज्जन बहुत ही ज्यादा उत्साही हैं। उनका अन्दाजा है कि स्वयंसेवकोंकी कुल संख्या लगभग ४,००० है।

> वे खद्दरकी वर्दी पहनते हैं और बैज लगाते हैं। सभी उम्रके आदमी भरती हुए हैं। हमें ६० और ६५ सालतक के सक्रिय कार्यकर्त्ता मिले हैं। कुछ गाँवोंमें पंचम स्वयंसेवक डटकर काम कर रहे हैं और वे दूसरे लोगोंके साथ आजादीसे उठते-बैठते हैं। संगठनकी सबसे बड़ी खूबी यह है कि वे अपने कर्त्तव्यमें पूरी निष्ठासे जुटे हुए हैं और अहिंसाको अपने धर्मका अंग मानकर उसका पालन कर रहे हैं।

खद्दरके विषयमें उनकी राय यह है:

> अधिकतर गाँव आत्मनिर्भर हैं। कुछ गाँवोंमें लगभग हर घरमें एक या एकसे अधिक चरखे चल रहे हैं। हर गाँवमें जो सूत कतता है, उसे आम तौर-पर गाँवके पंचम लोग बुनते हैं। कट्टर ब्राह्मणतक अपने कपड़े पंचम भाइयोंसे बुनवा रहे हैं। ज्यादातर गाँवोंमें ५० प्रतिशतसे अधिक लोग खुद अपना तैयार किया हुआ खद्दर पहनते हैं। कुछ गाँवोंमें तो ऐसे लोगोंका अनुपात ९५ प्रतिशत तक है।

अस्पृश्यताके बारेमें उनका कहना है:

> हमें यह देखकर आश्चर्य हुआ कि इस इलाकेके कुछ गाँवोंने अस्पृश्यता-को मिटानेकी दिशामें इतने थोड़े समयमें ही असाधारण प्रगति कर ली है। अपने इन देशवासियोंके विचारोंमें इस तरहकी क्रान्ति लाना सम्भव है, इसका हमें यकीन नहीं होता था। हमने देखा कि तथाकथित अछूत पंचायत बोर्डमें लिये गये हैं। कुछ स्थानोंपर कट्टर ब्राह्मणोंने पंचमोंको हाथसे पकड़कर खुद अपने बीच बैठाया और कहीं-कहीं वे ब्राह्मणोंके घरोंमें वही सब काम कर रहे हैं जो कि अन्य जातियोंके लोग करते आये हैं। एक धनी ब्राह्मण सज्जनने हमें बताया कि वे और आसपासके गाँवोंके उनके कुछ मित्र अपनी सारी आमदनी अपने जरूरतमन्द पंचम भाइयोंके लिए खर्च करेंगे।

परन्तु उनकी आखिरी राय यह है:

> कुछ गाँवोंमें अस्पृश्यता मिट गई है और कुछमें उसके शीघ्र ही मिट जानेकी सम्भावना है। हमारे विचारमें प्रगति सभी जगह समान और पर्याप्त नहीं है।

अन्तिम रूपसे वे इस निष्कर्षपर पहुँचे हैं:

> बेशक यह प्रगति सराहनीय है, लेकिन यह मानना कठिन है कि यदि और भी उग्र और पाशविक तरीके अपनाये गये तो जनता कहाँतक पूर्णतया शान्त रह सकेगी। अनुशासन सीखनेके लिए उन्हें बहुत कम समय मिला है। वे अभी लड़ाईकी शुरूकी स्थितिमें हैं। अधिक उपयुक्त हम यह समझते हैं कि आन्दोलन तवतक के लिए स्थगित रखा जाये जवतक कि लोग दमन और अत्याचारके सारे अस्त्रोंको व्यर्थ करने योग्य मजबूत न बन जायें।

इस महत्त्वपूर्ण रिपोर्टसे ये प्रासंगिक उद्धरण मैंने यह दिखानेके लिए दिये हैं कि (१) उक्त तीनों आयुक्तोंने अपना कार्य बिलकुल निष्पक्ष दृष्टिकोणसे किया है; (२) चुने गये इलाकेने कांग्रेसकी शर्तोंको पूरा करनेकी दिशामें आश्चर्यजनक प्रगति की है; (३) सविनय अवज्ञाके प्रश्नपर थोड़े-बहुत विश्वासके साथ विचार करनेसे पहले अभी बहुत ज्यादा काम होना आवश्यक है। मैं जानता हूँ कि भारतके बहुत-से भागोंमें कांग्रेस द्वारा निर्धारित शर्तोंको पूरा करनेके लिए असाधारण प्रयत्न हो रहे हैं, ताकि लोग सविनय अवज्ञाके अपने अधिकारका उपयोग कर सकें। यह निश्चय ही अपने-आपमें अभिनन्दनीय है। परन्तु रचनात्मक कार्य किसी बाहरी जोशपर आधारित नहीं होना चाहिए। उसे तो सविनय अवज्ञाके जोशसे निरपेक्ष रहकर चलते रहना चाहिए। अस्पृश्यता-निवारण, खद्दर तैयार करना, हिन्दू-मुस्लिम एकता, अहिंसाका पालन, ये कोई अस्थायी कार्यक्रम नहीं हैं। ये वे चार स्तम्भ हैं जो स्वराज्यके ढाँचेके सदा आधार रहेंगे। इनमें से किसी एकको भी हटानेसे वह बिना गिरे न रहेगा। इसलिए इन चार बातोंमें जितनी तरक्की होगी, हम स्वराज्य और सविनय अवज्ञाकी योग्यताके उतने ही निकट पहुँचेंगे। यदि अवज्ञा सचमुच सविनय हो तो उसमें भी कोई जोशकी बात नहीं उठती। जब डेनियलने मीडों और फैरीसियोंके कानूनकी अवज्ञापर अपने दरवाजे खोल दिये थे, जब जॉन बनियनने चर्च-समर्थित रूढ़ियोंका त्याग किया, जब लैटिमरने अपना हाथ आगमें दे दिया था, जब प्रह्लादने लोहेके दहकते खम्भेको अंकमें भर लिया था, तो पुराने जमानेके इन सत्याग्रहियोंमें से किसीने भी कोई जोशमें आकर ऐसा नहीं किया था। इसके विपरीत यदि उनके विषयमें ऐसा कहना सम्भव हो तो कहा जा सकता है—वे उस समय सामान्य अवसरोंकी अपेक्षा कहीं अधिक शान्त और आश्वस्त थे। जोशका न होना सविनय अवज्ञाकी एक अचूक कसौटी है। इसलिए मैं चुने गये इस इलाकेके समझदार लोगोंसे यह आशा करूँगा कि अब सामूहिक सविनय अवज्ञा रुक गई है, यह सोचकर वे शिथिलता नहीं दिखायेंगे, बल्कि रचनात्मक कार्यक्रमको और भी उत्साह और निष्ठासे जारी रखेंगे।

एक पत्नीकी आस्था

श्रीमती स्टोक्सने श्री एन्ड्रयूजको अपने पत्रमें लिखा है:

> मैं भली-भाँति जानती हूँ कि जेलमें मेरे पति अवश्य प्रसन्न रहते होंगे क्योंकि वे भारतके बहुत-से अन्य सपूतोंके साथ एक पुनीत कार्यके लिए जेलमें कष्ट सह रहे हैं। मुझे पूर्ण विश्वास है कि सर्वशक्तिमान् प्रभु पीड़ितोंकी पुकार सुनेंगे और न्याय करेंगे।

पाठकोंको यह जानकर खुशी होगी कि श्री स्टोक्स जेलमें प्रसन्न और स्वस्थ हैं। लाहौरमें मित्रगण उनसे कभी-कभी मिलते रहते हैं।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ९-३-१९२२

१६. ढीलका उदाहरण

सम्पादक
'यंग इंडिया'
महोदय,

पिछले अंकमें "हमारी ढील"[1] शीर्षकसे आपका जो लेख निकला है, मैं उसके सिलसिलेमें, आपकी अनुमतिसे, कुछ शब्द कहना चाहता हूँ।

कमसे-कम मध्यप्रान्तके अपने निजी अनुभवसे मेरा यह विश्वास है कि स्वयंसेवकोंकी एक बहुत बड़ी संख्या कांग्रेसकी शर्तोंकी पावन्द इसलिए नहीं रहती कि भरती करनेवाले अधिकारी अहमदावाद कांग्रेस द्वारा निर्धारित सिद्धान्तोंकी उपेक्षा करते हैं। यह अत्यन्त खेदकी बात है कि जहाँ देशबन्धु दास, लालाजी और नेहरूजी-जैसे पूजनीय लोग (जो इस समय जेलोंमें हैं) पूरे जोरसे चिल्ला-चिल्लाकर यह कह रहे हैं कि हिन्दुस्तानियोंके लिए खद्दरके सिवा कोई दूसरा कपड़ा पहनना पाप है, वहाँ कितने ही स्थानोंके कांग्रेसी कार्यकर्त्ता मिलकी बनी या विदेशी धोतियोंके बजाय खद्दरकी छोटे पनहेकी धोतियाँ पहननेमें अभीतक लज्जाका अनुभव करते हैं। मुझे यह कहते हुए दुःख होता है कि बहुत-से नेतातक, जो मंचपर भाषण देने आते हैं, अपने वही पुराने विदेशी या मिलके बने वस्त्र पहने होते हैं।

मेरा खयाल है कि इन परिस्थितियोंमें जनताको इस महत्त्वपूर्ण सवाल-पर आपसे सलाह पानेका पूरा-पूरा अधिकार है कि कांग्रेसके आदेशका पालन

१. देखिए खण्ड २२, पृष्ठ ४८८-९०।

न करनेवाले पदाधिकारियों और निर्वाचित प्रतिनिधियोंके मामलेमें (जैसा कि ऊपर कहा गया है) क्या कार्रवाई की जाये।

आपका,
मन्चरशा रुस्तमजी आवारी

हंसापुरी
नागपुर, २९-२-१९२२

इस विषयमें दिल्लीका प्रस्ताव बिलकुल स्पष्ट है और सभी पदाधिकारियोंसे यह अपेक्षा की जाती है कि वे हाथके कते और हाथके बुने खद्दरके सिवा कोई दूसरा कपड़ा नहीं पहनेंगे।

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, ९-३-१९२२

१७. ताण्डव

नमक कर दूना किये जाने तथा जीवनकी दूसरी आवश्यक चीजोंपर भी कर बढ़ानेके प्रस्तावकी चारों ओरसे एक स्वरमें निन्दा की जा रही है। यह किसलिए? इस बातपर भी आश्चर्य प्रकट किया जा रहा है कि इधर जो बासठ करोड़का कमर-तोड़ फौजी खर्च बढ़ाया गया है, उसके लिए कोई सफाई तक नहीं दी गई है। जो बात की ही जानी है उसके लिए सफाई देना मुमकिन नहीं है। राष्ट्रमें ज्यों-ज्यों चेतना बढ़ती जायेगी, त्यों-त्यों फौजोंका खर्च भी बढ़े बिना नहीं रह सकता। फौजकी जरूरत भारतकी रक्षाके लिए नहीं है। असलमें उसकी आवश्यकता तो अंग्रेज शोषकोंको भारतके सिरपर जबरदस्ती बिठा रखनेके लिए है। नग्न सत्य तो यही है। श्री मॉन्टेग्युने बात बिना-किसी लाग-लपेटके लेकिन ईमानदारीके साथ कही है। अपने कार्यकालकी समाप्तिपर 'बंगाल चेम्बर ऑफ कॉमर्स' के सभापतिने भी यही कहा और बम्बईके गवर्नरने भी। वे हमारे साथ व्यापार तो करना चाहते हैं; पर हमारी शर्तोंपर नहीं, अपनी ही शर्तोंपर।

लक्ष्य तो एक ही है। उसे डंकेकी चोट हासिल किया जाये या धोखेकी टट्टी खड़ी करके — इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता। कौंसिलें धोखेकी टट्टियाँ हैं। इनका खर्च हमें ओढ़ना ही पड़ेगा। यह शासन-सुधार योजना हमारी छातीपर भूतकी तरह सवार है। इसने खून चूसनेवाले नमक-करकी तरहके कितने ही दोषोंपर पर्दा डाल रखा है।

अंग्रेज हमसे कहते हैं — "तुम चाहो अथवा न चाहो, हम तो हिन्दुस्तानको छोड़नेवाले नहीं।" और हम भी यह माने बैठे हैं कि यह सब हमारे भलेके लिए ही है। हमारा यह खयाल बन गया है कि अंग्रेजोंके शस्त्र-संरक्षणके बिना हम आपसमें मरे-कटे बिना रह ही नहीं सकते। इस तरह अपने भाइयोंके हाथों प्राण गँवानेके भयसे, हम गुलामोंकी तरह जिन्दा रहना गनीमत मानते हैं।

इन कौंसिलों और सभाओंकी ओटमें छिपी तानाशाहीकी बनिस्बत तो फौजी तानाशाहीका शासन हजार गुना बेहतर है। इनसे शारीरिक कष्ट और खर्चका बोझ दोनों बढ़ते हैं। यदि हमें जान इतनी ही प्यारी है तो यह डींग हाँकनेकी अपेक्षा कि हम धीरे-धीरे आजाद हो रहे हैं यह अधिक अच्छा होगा कि हम असलियतका सामना करें और उन निर्लज्ज तानाशाहोंके सामने घुटने टेक दें। धीरे-धीरे आजादी? ऐसी तो कोई चीज होती ही नहीं; स्वतन्त्रता तो प्रसव-जैसी चीज है। जबतक हम पूरी तरह आजाद नहीं हो जाते तबतक हम गुलाम ही हैं। प्रसव जब होता है तब चुटकी बजाते ही होता है।

कांग्रेसका डर आती हुई आज़ादीके डरके सिवा और है ही क्या? कांग्रेस उनके लिए एक विकट वस्तु बन चुकी है; और इसलिए वैध अथवा अवैध किसी भी प्रकारसे उसका अस्तित्व तो मिटाना ही है। यदि लोगोंके मनमें काफी हदतक आतंक बैठा दिया जाये, तो यह लूट अभी सौ बरस और जारी रखी जा सकेगी। यह दूसरी बात है कि इस बढ़ते हुए बोझके मारे भारत तबतक जीवित ही न रह सके, या लोग ही इस बीच कीट-पतंगोंकी तरह समाप्त कर दिये जायें। नारियल खानेवाला आदमी गिरीके साथ दया-माया नहीं दिखलाता। सारी गिरी निकाल चुकने पर वह नरेलीको फेंक देता है। हम इस कामको हृदयहीन कृत्य नहीं मानते। व्यापारी भी इस बातका खयाल नहीं करता कि मैं इस गरीब खरीदारसे क्या ऐंठ रहा हूँ। हृदयहीनता कैसी; ऐसे मामलोंमें हृदय होता ही नहीं। व्यापारी जितना ऐंठ पाता है, ऐंठ लेता है और फिर अपने काममें लग जाता है। यह तो व्यवसाय है, जब जैसा पट जाये।

कौंसिलोंके सभासदोंको उनका किराया और भत्ता चाहिए, मन्त्रियोंको उनका वेतन चाहिए, वकीलोंको मेहनताना, मुकदमेबाजोंको कुर्कीके आदेश। माता-पिता बच्चोंके लिए हैसियत बनानेवाली शिक्षा और लखपति लोग करोड़पति बननेमें सहायक होनेवाली सुविधाएँ, और बाकीके लोग पौरुषहीन शान्ति चाहते हैं। और ये सबके-सब सरकारके इर्दगिर्द कठपुतली बन मस्त होकर नाच रहे हैं। सभी अपनी सुध-बुध भूले हुए हैं और किसीको उससे मुक्त होनेकी चिन्ता नहीं है। ज्यों-ज्यों उसकी लय बढ़ती है, त्यों-त्यों हर्षोन्माद बढ़ता जाता है। मगर यह रास नहीं, ताण्डव नृत्य है। यहाँ जो स्फूर्ति दिखाई पड़ रही है वह मरणासन्न रोगीके हृदयकी तीव्र धड़कन है।

जबतक यह ताण्डव जारी रहेगा तबतक यह खर्च बढ़े बिना रह ही नहीं सकता। यदि यह वृद्धि असहयोगियोंके मजबूत कंधोंपर भी लाद दी जाये तो मुझे आश्चर्य नहीं होगा। उनके जानने योग्य तो एक ही बात है। यदि वे अपने सिद्धान्तपर दृढ़ रहना चाहते हैं, तो उन्हें इस बढ़े हुए बोझके प्रति उदासीन बने रहना चाहिए। वे इसको केवल एक ही तरीके — अहिंसासे रोक सकते हैं, और जब कभी यह रुकेगा उसका साधन यही होगा। क्योंकि असहयोग अधिकांशतः तो उस संगठित हिंसासे अलग हो जाना है जिसपर सरकार टिकी हुई है। यदि हम सरकारकी हिंसाका मुकाबला करनेके लिए हिंसात्मक संगठन करना चाहें, तो हमें इससे भी अधिक खर्च उठानेके लिए तैयार रहना चाहिए। हम उन तमाम नर्तकोंको यह भले न समझा पायें

कि उनकी नाक कटने ही वाली है, पर हम जनताको तो यह बात समझा ही सकते हैं, जो आज उनमें शरीक है और नामधारी शान्ति पानेके लालचमें अपनी आजादी दे डालनेके लिए तैयार है। और ऐसा करनेका एक ही उपाय है — उसे यह दिखला देना है कि आजादीका एकमात्र साधन अहिंसा है — गुलामों द्वारा विवशतासे अपनाई गई अहिंसा नहीं, बल्कि वीर और आजाद पुरुषोंकी अपनी मर्जीसे स्वीकार की गई अहिंसा।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ९-३-१९२२

१८. यदि मैं पकड़ लिया गया

अफवाह फिर जोर पकड़ रही है कि मेरी गिरफ्तारी होनेवाली[1] है। कहा जाता है कि कुछ अधिकारियोंकी भूलके कारण मुझे जब पकड़ लिया जाना चाहिए था तब, अर्थात् ११ या १२ फरवरीको नहीं पकड़ा गया; और यह भी कहा जाता है कि सरकारके कार्यक्रमपर बारडोलीके निर्णयका कोई असर नहीं पड़ने देना चाहिए था। यह भी कहा जाता है कि लन्दनमें मेरी गिरफ्तारी और निष्कासनके लिए जो हो-हल्ला मचाया जा रहा है, अब सरकारको उसके मुकाबिलेमें खड़े रह सकना सम्भव नहीं बना। मैं खुद भी नहीं समझ पाता कि अगर सरकार व्यक्तिगत अथवा सामूहिक सविनय अवज्ञा आन्दोलनको हमेशाके लिए बन्द करा देना चाहती है, तो वह मुझे गिरफ्तार किये बिना कैसे रह सकती है।

मैंने कार्य-समितिको बारडोलीमें सामूहिक सविनय अवज्ञा बन्द करनेकी सलाह इसलिए दी थी कि वह अवज्ञा सविनय न हो पाती; और आज तमाम प्रान्तीय कार्य-कर्ताओंको व्यक्तिगत सविनय अवज्ञा तक स्थगित करनेकी सलाह इसीलिए दे रहा हूँ कि मैं जानता हूँ कि आज जो परिस्थिति है उसमें अवज्ञा सविनय नहीं बल्कि अप-राधपूर्ण ही होगी। सविनय अवज्ञाके लिए शान्तिमय वातावरणका होना अनिवार्य है। भारतमें आज जगह-जगह हिंसाकी भावना फैली हुई है और संयुक्त प्रान्तकी सरकारको अतिरिक्त पुलिस भरती करनी पड़ी है ताकि कहीं भी चौरीचौरा-काण्डकी पुनरावृत्ति न होने पाये। इन बातोंको देखकर मेरा सिर नीचे झुक जाता है। मैं यह नहीं कहता कि जिनके घटित होनेकी बात कही जा रही है वे सभी बातें हुई ही हैं। पर उन सब प्रमाणोंको न मानना भी असम्भव है जो उस प्रान्तके कुछ हिस्सोंमें हिंसाकी भावना बराबर बढ़ती जानेकी बात सिद्ध करनेके लिए पेश किये जाते हैं। पण्डित हृदयनाथ कुंजरूसे[2] राजनैतिक बातोंमें मेरा मतभेद है। तथापि मैं यह मानता हूँ कि

१. गांधीजी अहमदाबादमें १० मार्चको रातके १० बजे भारतीय दण्ड संहिताकी धारा १२४ के अन्तर्गत गिरफ्तार किये गये थे।

२. डा० हृदयनाथ कुँजरू (जन्म १८८७), १९३६ से सर्वेंट्स ऑफ इंडिया सोसाइटी और १९४८ से इंडिया कौंसिल ऑफ वर्ल्ड एफेयर्सके अध्यक्ष।

वे जान-बूझकर सत्यकी तोड़-मरोड़ करनेवाले आदमी नहीं हैं। मैं उन्हें एक अत्यन्त योग्य सार्वजनिक कार्यकर्त्ता मानता हूँ। वे ऐसे नहीं हैं कि आसानीसे किसीके कहनेमें आ जायें। इसलिए जब खुद वे किसी बातपर अपनी राय जाहिर करते हैं तो मैं उसपर तुरन्त ध्यान देता हूँ। उनके सरकार पक्षीय रुखका उनके निष्कर्षोंपर कुछ-न-कुछ असर तो होगा ही, इतना जानते हुए भी रिपोर्ट ऐसी नहीं समझी जा सकती कि उसपर विचार ही न किया जाये। और न उन चिट्ठी-पत्रियोंकी ही उपेक्षा की जा सकती है जो जमींदारों तथा दूसरे लोगोंकी तरफसे मेरे पास भेजी गई हैं और जिनमें यह कहा गया है कि संयुक्त प्रान्तके लोगोंके विचार हिंसापूर्ण हो रहे हैं तथा वे अज्ञानवश कानूनकी अवहेलना कर रहे हैं। इस समय मेरे सामने बरेलीकी रिपोर्ट है और उसपर वहाँकी कांग्रेसके मन्त्रीके हस्ताक्षर भी हैं। एक ओर जहाँ हाकिमोंने क्रोधावेशमें अपनेको भूलकर पागलोंका-सा बरताव किया है वहाँ हम भी, यदि रिपोर्टकी बातें सच मानी जायें, तो दोषसे मुक्त नहीं हैं। स्वयंसेवकोंका वह जुलूस सविनय-प्रदर्शन नहीं था। खुद हममें ही तीव्र मतभेद था और फिर भी जूलूस निकालनेकी जिद की गई। यद्यपि जो लोग वहाँ एकत्र हुए थे उन्होंने कोई हिंसा-कार्य नहीं किया, तथापि उस जुलूसकी भावना निस्सन्देह हिंसापूर्ण थी। वह अपनी सामर्थ्यका एक पुंसत्वहीन प्रदर्शन था, जिसकी हमारे उद्देश्यकी सिद्धिके लिए कोई आवश्यकता नहीं थी और जिसे सविनय अवज्ञाके समारम्भकी भूमिका भी नहीं कहा जा सकता था। हाँ, इसमें काफी सचाई है कि अधिकारी लोग जुलूसके साथ इससे अच्छी तरह पेश आ सकते थे; उन्हें स्वराज्यके झण्डेसे छेड़-छाड़ नहीं करनी चाहिए थी, उन्हें टाउन हॉलके इस्तेमालपर आपत्ति नहीं करनी चाहिए थी; क्योंकि टाउन हॉलमें कांग्रेसके दफ्तर थे और वह कस्बेकी जनताकी अपनी सम्पत्ति थी और टाउन कौंसिलकी इजाजतसे महीनोंसे वे दफ्तर उसीमें थे। लेकिन हमने तो अधिकारियोंसे यह आशा करना छोड़ दिया है कि वे सामान्य बुद्धि और विवेकका उपयोग करेंगे। बल्कि इसके प्रतिकूल हम तो उनसे विवेकहीनता और हिंसाकी ही आशा रखते हैं और इसीलिए हम उनकी मुखालफतके लिए खड़े हुए हैं। सो हम तो यह जानते ही थे कि वे इससे अच्छा सलूक कर ही नहीं सकते; अतएव हमें इन जुलूसोंके झगड़ेसे दूर ही रहना था। यह कोई आश्चर्यकी बात नहीं है कि संयुक्त प्रान्तकी सरकार तिलका ताड़ बना रही है और अपने कृत्यों द्वारा तथा चौरीचौराके हत्या-काण्ड द्वारा उत्पन्न हुई उत्तेजनाको कम करके गिन रही है। मैं इतना ही कहना चाहता हूँ कि इस बातका हम दावा नहीं कर सकते कि हमने उन्हें किसी तरहका मौका ही नहीं दिया। अतएव सविनय अवज्ञाका स्थगित किया जाना केवल प्रायश्चित्तके रूपमें है। पर यदि वातावरण साफ हो जाये, लोग 'सविनय' शब्दका पूरा-पूरा महत्त्व समझ जायें, और उनकी भावना तथा कार्य दोनों वास्तवमें अहिंसात्मक हो जायें, और यदि मैं देखूं कि तब भी सरकार लोकमतके आगे झुकना नहीं चाहती तो अवश्य स्वयं मैं ही सबसे पहले व्यक्तिगत या सामूहिक सविनय अवज्ञाकी, जैसी कि उस समय आवश्यकता होगी, हिमायत किये बिना न रहूँगा। इस कर्तव्यसे छुट्टी तो तभी मिल सकती है जब लोग अपने जन्मसिद्ध अधिकारको छोड़ देनेके लिए तैयार हों।

अंग्रेज लोग जन्मजात योद्धा हैं; इसलिए जब वे सविनय अवज्ञाके खिलाफ इस तरह आवाज उठाते हैं मानो वह कोई जघन्य अपराध है और उसपर कड़ेसे-कड़ा दण्ड दिया जाना चाहिए, तब मुझे उनकी नेकनीयतीपर सन्देह होने लगता है। वे सशस्त्र विद्रोहका गुणगान करते रहे हैं और उन्होंने अवसर आनेपर उसका सहारा भी लिया है, तब फिर सविनय प्रतिरोधके विचार-मात्रसे उनमें से बहुतेरे लोग आपेसे बाहर क्यों हो जाते हैं? उनकी यह बात तो समझमें आती है कि भारतमें अहिंसामय वातावरण पैदा होना असम्भव-सा है। मैं इसे मानता तो नहीं हूँ, पर मैं ऐसे एतराजकी कद्र जरूर कर सकता हूँ। फिर भी जो बात मेरी समझमें नहीं आती वह यह है कि सविनय अवज्ञाके सिद्धान्तके ही खिलाफ वे इस तरह मोर्चा लेनेपर तुल गये हैं मानो वह कोई अनैतिक बात हो। मुझसे यह आशा करना कि मैं सविनय अवज्ञाका प्रचार करना छोड़ दूँ, मुझसे यह कहनेके समान है कि मैं शान्तिका प्रचार करना छोड़ दूं अर्थात् आत्महत्या कर लूं।

और अब सुन रहा हूँ कि सरकार मेरे 'यंग इंडिया', 'नवजीवन' और 'हिन्दी नवजीवन'— इन तीनों साप्ताहिकोंको खत्म कर देनेकी घातमें है। मैं आशा करता हूँ कि यह अफवाह झूठ निकलेगी। मैं दावेके साथ कहता हूँ कि मेरे इन तीन पत्रोंने लगातार सिवा शान्ति और सद्भावनाके अन्य किसी बातका प्रचार नहीं किया। इस बातका अत्यधिक खयाल रखा जाता है कि सिवा सत्यके, जैसा कि मैं उसको समझ पाता हूँ, दूसरी कोई बात पाठकोंतक न पहुँचाई जाये। जब कभी कोई गलत बात असावधानीसे छप जाती है तो वह फौरन मान ली जाती है और उसमें सुधार कर दिया जाता है। तीनों पत्रोंकी ग्राहक-संख्या प्रतिदिन बढ़ रही है। उनके संचालक स्वेच्छासे काम कर रहे हैं; कुछ लोग तो बिलकुल वेतन नहीं लेते और कुछ केवल अपने गुजारे लायक पैसा ले लेते हैं। जो-कुछ मुनाफा होता है वह पाठकोंको किसी-न-किसी रूपमें लौटा दिया जाता है, या किसी-न-किसी सार्वजनिक रचनात्मक कार्यमें लगा दिया जाता है। मैं ऐसा नहीं कह सकता कि यदि ये तीनों पत्र बन्द हो गये तो मेरे हृदयको व्यथा न होगी। सरकारके लिए तो उनको समाप्त कर देना बायें हाथका खेल है। इनके प्रकाशक और मुद्रक सभी परस्पर मित्र और साथी हैं। हमने आपसमें यह तय कर रखा है कि जिस घड़ी सरकार जमानत माँगे उसी घड़ी ये पत्र बन्द कर दिये जायें। मैं उन्हें इसी धारणापर चला रहा हूँ कि सरकार मेरे कार्योंको चाहे किसी दृष्टिसे देखती हो पर वह कमसे-कम मुझे इस बातका श्रेय तो अवश्य देगी कि इन पत्रोंके द्वारा मैंने अपनी समझके अनुसार शुद्धसे-शुद्ध अहिंसा और सत्य-का ही प्रचार किया है।

इतना होनेपर भी मैं आशा करता हूँ कि चाहे सरकार मुझे गिरफ्तार कर ले या चाहे वह मेरे इन प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष साधनों— तीनों पत्रों —को बन्द कर दे, लोग इससे विचलित न होंगे। सरकारका इस डरसे मुझे गिरफ्तार न करना कि इससे सारे देशमें हिंसक कृत्य होने लग जायेंगे, और उस अवस्थामें भीषण हत्याकाण्ड अवश्य मचेगा, मेरे लिए न तो अभिमानकी बात है, न खुशीकी; बल्कि यह तो लज्जाका विषय है। यदि मेरा कैद हो जाना सर्वव्यापी उपद्रवोंके लिए संकेत बन

जाये तो मेरे अहिंसाके उपदेश निन्दनीय ठहरेंगे और कांग्रेस तथा खिलाफतने अहिंसाकी जो प्रतिज्ञा ली है, उसकी हँसी उड़ जायेगी। निश्चय ही यह इस बातका प्रमाण होगा कि भारत शान्तिपूर्ण विद्रोहके लिए तैयार नहीं है। वह नौकरशाहीकी विजयका दिन होगा और इस बातका लगभग अकाट्य प्रमाण होगा कि नरम दलवाले मित्रोंकी ही बात ठीक है, अर्थात् अहिंसात्मक अवज्ञाके लिए भारत कभी तैयार नहीं किया जा सकता। इसलिए मैं आशा करता हूँ कि कांग्रेस तथा खिलाफतके कार्यकर्त्तागण यह स्पष्ट करनेमें कोई कसर न छोड़ेंगे कि सरकार तथा उसके सहायकोंके दिलमें जो डर बैठा हुआ है वह बिलकुल बेबुनियाद है। मैं विश्वास दिलाता हूँ कि इस आत्म-संयमके द्वारा हम अपने त्रिविध लक्ष्यकी ओर कोसों आगे बढ़ जायेंगे।

अतएव मेरे पकड़े जानेपर न तो हड़तालें हों, न जुलूस निकाले जायें न शोर-गुलवाले प्रदर्शन किये जायें। उस अवस्थामें देशवासियोंके द्वारा पूर्ण शान्ति धारण किये रहनेको मैं अपनी बड़ीसे-बड़ी इज्जत समझूंगा। मैं देखना तो यह चाहता हूँ कि कांग्रेसका रचनात्मक कार्य घड़ीकी तरह नियमित तथा पंजाब एक्सप्रेसकी गतिसे चलता रहे। और मैं यह भी देखनेके लिए उत्सुक हूँ कि जो लोग आजतक पीछे थे वे अब आगे बढ़ रहे हैं और स्वेच्छासे अपने सारे विदेशी कपड़े त्यागकर उनकी होलियाँ जला रहे हैं। ज्यों ही उन्होंने बारडोलीमें निश्चित किये गये सम्पूर्ण रचनात्मक कार्यक्रमको पूरा उतारा त्यों ही मैं तथा दूसरे कैदी-भाई जेलके बाहर दीख पड़ेंगे। इतना ही नहीं देश स्वराज्यका महोत्सव मनायेगा और खिलाफत तथा पंजाबके अन्यायोंका भी प्रतिकार हो जायेगा। वे स्वराज्यके इन चार स्तम्भोंको न भूलें — अहिंसा, हिन्दू-मुसलमान-सिख-पारसी-ईसाई-यहूदी-एकता, छुआछूतका पूर्ण त्याग और इस प्रमाणमें हाथकती तथा हाथबुनी खादी तैयार करना कि विदेशी कपड़ेका पूर्ण बहिष्कार हो सके।

ऐसा भी नहीं कहा जा सकता कि लोगोंके बीचसे मुझे हटा लिये जानेके फल-स्वरूप लोगोंको लाभ न होगा। इससे एक तो लोगोंका यह अन्धविश्वास आमूल नष्ट हो जायेगा कि मुझमें कोई दैवी शक्ति है; दूसरे यह धारणा निराधार सिद्ध हो जायेगी कि लोगोंने असहयोगके कार्यक्रमको महज मेरे प्रभावमें आकर मंजूर किया है, उन्हें खुद इसमें विश्वास नहीं है। तीसरे वर्तमान कार्यक्रमके प्रणेताके गिरफ्तार हो जानेपर भी अपने कार्योंको योग्यतापूर्वक चलाकर वे यह सिद्ध कर देंगे कि हममें स्वराज्यकी क्षमता है। चौथे, अपने स्वार्थकी दृष्टिसे भी मेरे शरीरको आराम और चित्तको शान्ति मिलेगी, जो शायद मुझे अब मिलनी भी चाहिए।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ९-३-१९२२

१९. देशभक्तकी गिरफ्तारी

सामग्रीको छपनेके लिए भेजनेके जरा पहले तार द्वारा खबर मिली कि देशभक्त कोंडा वेंकटप्पैया गिरफ्तार कर लिये गये हैं। वे आन्ध्रके लोगोंमें महानतम और श्रेष्ठ हैं। उनका कसूर यह था कि उन्हें अपने सुख-चैनकी अपेक्षा भारत अधिक प्यारा है। मैं देशभक्त कोंडा वेंकटप्पैया और आन्ध्रके लोगोंको बधाई देता हूँ। यह महान् राष्ट्रसेवक जिस विश्रामका अधिकारी है अब वह उसे मिलनेवाला है। हमारे बीचसे उसके हट जानेपर भी हमारा ध्येय फलता-फूलता रहेगा, क्योंकि सरकार उसके शरीरको कारावासमें डाल सकती है, उसकी आत्माको हमसे विलग नहीं कर सकती।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ९-३-१९२२

२०. विदेशोंमें प्रचार

मैं देखता हूँ कि कार्य-समितिने विदेशोंमें प्रचार करनेका जो काम अपने हाथमें लिया है उसके सम्बन्धमें लोगोंमें बहुत गलतफहमी फैली हुई है। इस सिलसिलेमें कार्य-समितिने जो रिपोर्ट स्वीकार की थी उसे प्रकाशित न करना एक भूल थी। रिपोर्ट इस प्रकार है:

अध्यक्ष, कार्य-समिति
अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी, दिल्ली

महोदय,

गत ३१ जनवरीको सूरतमें कार्य-समितिकी जो बैठक हुई थी उसमें निम्नलिखित प्रस्ताव स्वीकार किया गया था:

"कार्य-समिति अपना दृढ़ विश्वास व्यक्त करती है कि विदेशोंमें भारतकी राजनीतिक परिस्थितिके बारेमें तथ्योंका सही रूपमें पेश किया जाना नितान्त आवश्यक है और निवेदन करती है कि महात्मा गांधी द्वारा विदेशोंमें किये गये उस सारे पत्र-व्यवहारको, जो इस समय कार्यकारी मन्त्रीके पास है, देखा जाये। वह गांधीजीसे यह भी अनुरोध करती है कि वे इस विषयमें एक निश्चित योजना यथाशीघ्र तैयार करें, जिससे उसपर कार्य-समितिकी अगली बैठकमें विचार किया जा सके।"

प्रस्तावपर और मन्त्री द्वारा भेजे गये कागजोंपर विचार करनेके बाद मैं निम्न रिपोर्ट प्रस्तुत करता हूँ:

मेरी रायमें तो वर्तमान अवस्थामें किसी भी दूसरे देशमें भारतकी राजनीतिक परिस्थितिसे सम्बन्धित समाचारोंको सही रूपमें वितरित करनेके लिए कोई अभिकरण (एजेन्सी) स्थापित करना अवांछनीय ही नहीं, बल्कि हानिकर भी सिद्ध हो सकता है। इसके कारण निम्न हैं:

पहला कारण यह है कि इससे जनताका ध्यान बँट जायेगा। वह अपने पैरोंपर खड़े होने, अपने ही बलपर निर्भर रहनेके बजाय यह सोचने लगेगी कि उसके कामका विदेशोंमें क्या प्रभाव पड़ रहा है और दूसरे देश उसे अपने राष्ट्रीय ध्येयकी प्राप्तिमें कितनी सहायता दे सकते हैं। इसका मतलब यह नहीं है कि हम संसारके समर्थनको कुछ गिनते ही नहीं; लेकिन संसारके लोगोंका समर्थन प्राप्त करनेका तरीका यही है कि हम अपने हर कदमके सही होनेका आग्रह रखें और इस बातपर भरोसा रखें कि सत्य अपने प्रचारमें आप ही समर्थ है।

दूसरे, मेरे देखनेमें यह आया है कि जब कोई अभिकरण किसी खास उद्देश्यसे स्थापित किया जाता है तब उसमें कुछ हदतक उसका निष्पक्ष भाव कम हो जाता है और लोग यह खयाल करते हैं कि यह बात तो हेतु-विशेष रखनेवाले लोगोंकी तरफसे आई है। अतएव वे उसको उतना महत्त्व नहीं देते।

तीसरे, कांग्रेस ऐसे अभिकरणोंपर कारगर ढंगसे निगरानी न रख पायेगी और इस बातका बड़ा डर है कि इस आन्दोलनके सम्बन्धमें गलत खबरें और गलत खयालात अधिकृत रूपसे वितरित न होने लगें।

चौथे, इस बातको देखते हुए कि देशके अन्दर काम करनेके लिए विशिष्ट व्यक्तियोंकी बड़ी कमी है, वर्तमान स्थितिमें उनमें से किसी भी व्यक्तिको विदेशोंमें केवल प्रचार करनेके उद्देश्यसे भेजना सम्भव नहीं है।

अतएव मेरी यह राय है कि यदि आवश्यक हो तो 'कांग्रेस पत्रिका' की प्रकाशन व्यवस्था ही ज्यादा अच्छी तरह संगठित कर ली जाये और इस कार्यके लिए एक विशेष सम्पादक रख लिया जाये और संसारके मुख्य समाचार अभिकरणोंको 'कांग्रेस पत्रिका' नियमित रूपसे भेजी जाये। सम्पादकको यह हिदायत दे दी जाये कि वे भारतीय समस्याओंमें दिलचस्पी रखनेवाले समाचार-पत्रों या समाचार अभिकरणोंसे पत्र-व्यवहार करें।

दक्षिण आफ्रिकामें और यहाँ भारतमें पत्र-पत्रिकाओंका सम्पादन करते हुए मुझे जो अनुभव प्राप्त हुआ है उसके आधारपर मेरा यह दृढ़ विश्वास हो गया है कि कांग्रेस जितना अधिक ठोस काम करेगी और देशके लोग जितना अधिक कष्ट-सहन करेंगे, हमारे कामका प्रचार कोई खास प्रयत्न न करनेपर भी उतना ही अधिक होगा। मेरे 'यंग इंडिया' के संचालनके सिलसिलेमें दुनियाके तमाम

हिस्सोंसे मेरा जो पत्र-व्यवहार होता रहता है, उससे यह स्पष्ट होता है कि दुनिया-भरमें भारतके मामलोंमें आज जितनी दिलचस्पी ली जाती है उतनी पहले कभी नहीं ली गई। इससे यह सिद्ध होता है कि हमारा कष्ट-सहन जितना अधिक होगा उनका ध्यान इस ओर उतना ही अधिक आकृष्ट होगा। इसलिए यहाँकी राजनीतिक स्थितिके सम्बन्धमें सच्ची खबरें प्रचारित करनेका सबसे बढ़िया तरीका तो यही है कि कांग्रेसका काम अधिक शुद्ध, अधिक सुसंगठित रूपमें चलाया जाये और कष्ट-सहनकी भावना अधिक विकसित की जाये। इससे लोगोंकी जिज्ञासा ही नहीं बढ़ती; स्थितिकी असलियतको तथा उसकी भीतरी बातोंको समझ लेनेकी उत्कण्ठा भी बढ़ती है।

बारडोली,
२२ फरवरी, १९२२

आपका विश्वस्त,
मो० क० गांधी

मुझे इस सम्बन्धमें जो कागज-पत्र दिये गये थे, तथा उसके पक्ष और विपक्षमें जो-जो दलीलें पेश की गई थीं, मैंने उन सबको पढ़ा और सुना; परन्तु फिर भी मेरी यह राय जहाँकी-तहाँ है कि कमसे-कम आज भारतके बाहर कोई समाचार-अभिकरण बनानेकी आवश्यकता नहीं। हम यह जरूर चाहते हैं कि सारा संसार हमारे पक्षमें हो; परन्तु विदेशोंमें अभिकरणों द्वारा प्रचार-कार्य करते रहनेसे हम यह काम नहीं कर सकते। हम तो सिर्फ उन्हीं लोगोंको सही खबरें भेज दिया करें जो जिज्ञासा रखते हैं। यदि कोई बाहरी मुल्क किसी देश विशेषकी किसी खास हलचलके हालात जाननेके लिए अपने खुदके साधन नहीं रखता, तो मेरी दृष्टिमें यह इस बातका सबूत है कि उसे उसमें कोई दिलचस्पी नहीं है। कोई १५ महीनोंसे हम लन्दनमें बिना किसी अभिकरणके ही काम चला रहे हैं। परन्तु मैं कहता हूँ कि वहाँ १५ महीने पहले हमारी इस विषयमें जो स्थिति थी आज उससे घटकर नहीं है। यहाँ खुद भारतमें हमने जो ठोस काम किया है उसीके फलस्वरूप और उसी हद-तक हमारी स्थिति विदेशोंमें पहलेसे बेहतर है। भारतके मामलोंमें दिलचस्पी लेनेवाले लोगोंकी संख्या आज जितनी कभी नहीं रही इसलिए उनके प्रति हमारा यह कर्त्तव्य है कि हम उनतक सही-सही खबरें पहुँचा दिया करें; बस इससे ज्यादा हमें कुछ नहीं करना है। मेरे सामने इटलीके एक समाचारपत्रके सम्पादकका पत्र है। वे लिखते हैं कि इटलीके लोग भारतके इस आन्दोलनमें गहरी दिलचस्पी लेते हैं, और इसीलिए इटलीके समाचारपत्र भारतके मामलोंका ज्ञान इटलीके लोगोंको कराते हैं। जिसे मैं स्वाभाविक और अपने-आप विकसित होनेवाला आन्दोलन कहता हूँ वह यही है। परन्तु अगर हम इस खबरके बलपर वहाँके लोगोंकी दिलचस्पी बढ़ानेकी दृष्टिसे इटलीमें कोई भारतीय दफ्तर खोलकर बैठ जायें तो यह अतिरेक कहलायेगा और उससे काम बननेके बजाय बिगड़ेगा ही। इसलिए अपनी ही शक्तिके बारेमें यह मानते हुए कि वह अपना प्रभाव स्वयं प्रकट करेगी, अपने हित-साधनकी ओर दृष्टि रखना हमारे लिए अधिक अच्छा होगा।

इसके अलावा, यह असहयोग आन्दोलन स्वावलम्बनकी नींवपर खड़ा है। इसका तो गुर ही यह है — जितनी हमारी शक्ति उतनी हमारी सफलता। हमारी योग्यताके सम्बन्धमें संसार द्वारा दिये गये किसी प्रमाण-पत्रसे काम नहीं चलनेका। सफलता तो अपनी एड़ी-चोटीका पसीना एक करनेपर ही मिलेगी। आन्दोलनकी कितनी ही निन्दा क्यों न की जाये, उससे उसका अन्त तबतक नहीं हो सकता जबतक हम खुद ढुलमुल-यकीन होकर, निन्दासे घबराकर, अपना प्रयत्न छोड़ नहीं बैठते। इसलिए हमें अपने कामपर से ध्यान नहीं हटाना चाहिए। हम तो केवल अपने कामके प्रति सजग रहें और फिर विश्वास रखें कि ऐसा करनेसे संसार हमारा ध्यान अधिक रखेगा। मुझे तो यह बात भी दरअसल अखर रही है कि कुछ नवयुवकोंको उनके कामोंसे हटाकर 'कांग्रेस पत्रिका' के प्रकाशन और वितरण आदिमें लगाना पड़ रहा है। परन्तु हमारे पास तो इस बातका कोई विश्वसनीय लेखा भी नहीं रहता कि सप्ताह प्रति-सप्ताह हमारा काम कितना आगे बढ़ा है। इसलिए यह 'कांग्रेस पत्रिका' भारतमें हमारे कार्यकर्त्ताओंके लिए भी उपयोगी सिद्ध होगी और विदेशोंमें हमारे मित्रोंके लिए तो उपयोगी होगी ही।

कार्य-समिति इस कार्यको शुरू कर दिये जानेके लिए प्रायः अधीर हो उठी है और उसने इस पत्रिकाकी व्यवस्था पूरी तरह मुझपर छोड़ दी है। मैं आशा करता हूँ कि पहली पत्रिका अगले हफ्ते प्रकाशित हो जायेगी, और फिर प्रति सप्ताह प्रकाशित होती रहेगी। पत्रिका 'यंग इंडिया' के प्रत्येक ग्राहकके पास भेजी जायेगी और बराय नाम उनसे कुछ लिया भी जायेगा ताकि उसकी छपाई और कागजका पूरा नहीं तो कुछ खर्च निकल आये। 'यंग इंडिया' की पंजीकृत ग्राहक-संख्या २५,००० से अधिक है और वह दुनियाके प्रायः सभी भागोंमें जाता है। उसकी विनिमय-सूची बहुत बड़ी है। केवल पत्रिका लेनेवालोंके लिए उसका मूल्य बादमें सूचित किया जायेगा। जो तरीका मैंने सुझाया है उससे कांग्रेसके खर्चमें यथासम्भव बचत होगी और साथ ही पत्रिकाका प्रचार भी अधिकसे-अधिक होगा। 'यंग इंडिया' के संचालनमें तो मेरे और मेरे अन्य सहयोगियोंके विचार होते हैं, परन्तु पत्रिकामें किसी व्यक्ति विशेषके विचार न रहेंगे। उसमें खासकर सारे देशमें कांग्रेसकी विविध गति-विधियोंका, उनके विभिन्न विभागोंके अनुसार ब्योरा और कांग्रेसके समर्थक और विरोधी दोनों अखबारोंमें प्रकट मतोंका सारांश रहा करेगा। खिलाफतके लिए अलग स्तम्भ रहेगा, जिसमें गत सप्ताहके खिलाफत-सम्बन्धी कार्योंका विवरण रहा करेगा। ऐसी पत्रिका तभी सफल हो सकती है जब इसके कार्यमें कांग्रेस तथा खिलाफतके तमाम कार्यकर्त्ता सहयोग दें। अतएव जो सज्जन इस कार्यमें दिलचस्पी रखते हों वे अपने सुझाव और समाचार सम्पादक, 'कांग्रेस पत्रिका', मार्फत 'यंग इंडिया' के पतेपर भेजनेकी कृपा करें। इस विषयकी तमाम चिट्ठी-पत्रियोंपर 'कांग्रेस पत्रिकाके लिए' शब्द जरूर लिखे जायें, ताकि 'यंग इंडिया' की और पत्रिकाकी चिट्ठियोंमें गड़बड़ न हो। सबसे पहले मैं चाहता हूँ कि सभी प्रान्तीय कमेटियाँ अपने-अपने प्रान्तोंके सदस्योंकी संख्या, गाँव और जिलेके संगठनोंकी संख्या, राष्ट्रीय अखबारोंके नाम और पते, राष्ट्रीय शिक्षा-संस्थाओंकी संख्या और पिछले छः महीनोंकी उनकी औसत

हाजिरी, पंचायतोंकी तादाद तथा असहयोग आन्दोलन सम्बन्धी तमाम सूचनाएँ लिखकर भेज दें।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ९-३-१९२२

२१. सरकार द्वारा प्रतिवाद

१

अलीगढ़की घटना

सम्पादक

'यंग इंडिया'

प्रिय महोदय,

आपने भारत सरकारके नाम प्रेषित अपने पत्रमें "गैर-कानूनी दमन" की सात मिसालें दी हैं जिनमें से एक अलीगढ़में पुलिस द्वारा स्वयंसेवकोंके साथ किये गये व्यवहारकी है। आपका कहना है कि स्वयंसेवकोंने उसके योग्य कोई अपराध नहीं किया था और न ही कुछ और किया था। मैंने सरकारकी ओरसे इस विषयमें अलीगढ़के कलेक्टरसे पूछताछ की। उन्होंने जवाब दिया कि यह आरोप बिलकुल झूठा है। आपसे मेरी प्रार्थना है कि आप उनके निम्न वक्तव्यको प्रकाशित कर दें:

"यह सच है कि [लाठी] प्रहार हुए और उनके निशान भी उछल आये। लेकिन यह सब गैर-कानूनी भीड़को तितर-बितर करते समय ही किया गया और सो भी असाधारण रूपसे कम। किसी भी घायल व्यक्तिने मुझसे शिकायत नहीं की और यदि लोगोंको वाकई कोई शिकायत होती तो अलीगढ़के असहयोगी भी ऐसी शिकायत करनेके लिए सदा तत्पर रहते हैं।

"पर किसी भी उपद्रवी भीड़की उद्दण्डताकी भावनापर विनम्रतासे काबू नहीं पाया जा सकता। सच तो यह है कि अलीगढ़में अभीतक सख्ती की ही नहीं गई और उपद्रवोंको ज्यादासे-ज्यादा नरमीके साथ शान्त किया गया है। शुरू-शुरूमें जब स्वयंसेवकोंने गड़बड़ी करने और आतंक फैलानेकी कोशिश की थी, तब थोड़ा बल-प्रयोग जरूर करना पड़ा था। तबसे उसके बाद शहरमें किसी तरहकी भी कोई मुठभेड़ हुई हो, सो मुझे नहीं मालूम। यदि यह कहा जा सकता है कि कहीं सद्भावना है तो मैं कहूँगा कि वह यहाँ अलीगढ़में है। पुलिसवाले और यूरोपीय लोग अब शहरमें बेखटके आजादीसे घूम-फिर

सकते हैं। अलीगढ़ दमनका शिकार है या हो चुका है, यह कहना भाषा और तथ्यका उपहास करना है।"

भवदीय,

लखनऊ,
जे० ई० गोन्डगे

१६ फरवरी, १९२२

यह कोई प्रतिवाद नहीं है। यह तो एक माने हुए वल-प्रयोगको न्यायोचित ठहरानेका प्रयास है। हर जालिम अपने गैर-कानूनी व्यवहारको न्यायोचित वताता है। असहयोगी अपनी चोटोंकी शिकायत लेकर कलेक्टरके पास नहीं गये, यह स्वाभाविक ही था। यदि 'प्रहार' करना और चोटोंके 'निशान उछल आना' इस वातका प्रमाण है कि सख्ती नहीं की गई, तो मैं यह जाननेको उत्सुक हूँ कि अलीगढ़में जव सख्ती की जायेगी तव क्या होगा। यदि श्री शेरवानीकी गिरफ्तारी एक वड़ी नरमी थी और श्री ख्वाजाकी गिरफ्तारी और भी वड़ी नरमी तो प्रहार और चोटोंके निशान निश्चय ही सबसे वड़ी नरमीके सूचक हैं।

२

वनारस जेलमें

सम्पादक
'यंग इंडिया'
प्रिय महोदय,

१८ फरवरी, १९२२ के अपने अर्द्ध-सरकारी पत्र संख्या ४०४-सी के सिलसिलेमें, मैं आपका ध्यान वनारसके विष्णुदतिया नामक व्यक्तिके ५ फरवरीके उस तारकी ओर खींचना चाहता हूँ जो महात्मा गांधीके नाम भेजा गया था और जो आपके पत्रमें ९ तारीखको प्रकाशित हुआ है। उसमें कही गई वातोंकी छानवीन कर ली गई है, और मैं आपसे यह प्रार्थना करता हूँ कि आप उस तारका यह स्पष्टीकरण और प्रतिवाद प्रकाशित कर दें। जांचका यह विवरण कुछ लम्वा है। इसके लिए मैं क्षमा चाहता हूँ। तारमें कुछ अनमेल वातें, असंगतियाँ थीं और इससे लोगोंमें वहुत वेचैनी फैल गई है, इसलिए आरोपोंका उत्तर काफी विस्तारसे देना पड़ रहा है। वनारस केन्द्रीय जेलके सुपरिटेंडेंट, मेजर एन० एस० हार्वे द्वारा मेरे पास भेजा गया विवरण मैं उद्धृत करता हूँ :

इस मामलेके सिलसिलेमें तथ्य इस प्रकार हैं। संयुक्त मजिस्ट्रेटने २१ जनवरी, १९२२को भारतीय दण्ड संहिताकी धारा १४३के अन्तर्गत आठ नव-

युवकोंको कठोर कारावासका दण्ड दिया था और 'गैर-राजनीतिक कैदियों' की श्रेणीमें रखा था। चूंकि उस समय जेलमें राजनीतिक कैदी बहुत ज्यादा थे, अतः उनकी देखरेख करना और उन्हें काबूमें रखना बहुत मुश्किल था। जेलर उन आठ कैदियोंको अलग रखनेकी व्यवस्था नहीं कर सका और वे अपने दूसरे संगी-साथियोंके बीच फैल गये और फिर हमारे हाथ ही नहीं लगे इसलिए हम उन्हें सख्त कामपर नहीं लगा सके।

३ फरवरीको संयुक्त मजिस्ट्रेट और मैंने इन 'गैर-राजनीतिक' कैदियोंको दूसरे कैदियोंसे अलग करनेका निश्चय किया। कुछ थोड़ी परेशानीके बाद उनमें से रामनाथ, कमलापति, भगवानदास और सत्यनारायण, चार कैदी पकड़में आ गये। उन्हें नियमित किशोर कैदियोंके अहातेमें भेज दिया गया। इस जिला जेलमें बहुत दिनोंसे किशोर कैदियोंके लिए एक अलग जेल है। इसलिए इन लड़कोंको वहाँ भेजना चलनके मुताबिक ही था। जहाँतक मुझे याद है पिछले सात सालों-में ५० लड़के तो मेरी ही निगरानीमें रह चुके हैं। इस बैरकमें अलग-अलग कोठरियाँ रखनेका उद्देश्य स्पष्ट है। रातमें लड़के हमेशा अलग-अलग कोठरियोंमें बन्द किये जाते हैं। इसलिए इन चारों लड़कोंको अलग-अलग कोठरियोंमें रखना कोई सजा नहीं थी, बल्कि जेलका एक सामान्य नियम था। यह स्पष्ट है कि उनको अपने राजनीतिक साथियोंसे अलग हो जाना अच्छा नहीं लगा; इसलिए ४ फरवरीकी शामको भगवानदासने 'बेहोशी'का स्वाँग रचा। यह बात शामके लगभग ७-३० बजे की है। मैं उस वक्त जेलमें ही था; खबर पाते ही वहाँ गया और लड़केको देखा। बहुत ध्यानसे उसकी परीक्षा की और इस नतीजेपर पहुँचा कि उसे कुछ नहीं हुआ है और उसने जान-बूझकर बेहोशीका ढोंग रच रखा है। यह जरूर है कि दो दिनसे उसने खाना-पीना बन्द कर रखा था; यह बात भी उसकी हालतका एक कारण हो सकती है। उसने शायद यह सोचा हो कि यदि वह झूठमूठ बेहोश हो जायेगा तो उसे अस्पताल भेज दिया जायेगा और उसे वहाँ कुछ पौष्टिक खुराक मिल सकेगी। दरअसल यही हुआ भी। उसे कुछ दूध दिया गया और वह सुबहतक बिलकुल ठीक हो गया।

दूसरे राजनीतिक कैदियोंने ३ से ५ तारीखतक जो भूख हड़ताल की, उसका इस मामलेसे कोई सम्बन्ध नहीं था। वह बाहरसे मिठाई और खाना मँगानेकी इजाजत न देनेपर शुरू की गई थी। साथ ही, वह एक प्रकारका प्रचार था।

२ फरवरीकी रातको कृपलानी[1] और उनके साथी युवकोंने बन्द किये जाते वक्त बहुत ही परेशानी पैदा की। वे अपनी बैरकमें हुल्लड़बाजोंकी तरह

१. आचार्य जीवतराम बी० कृपलानी (जन्म १८८८)।

बरताव करते रहे और जेल-कर्मचारी रातके ११–३० बजेतक, उन्हें गिनने या बन्द करनेमें असमर्थ रहे। उन्होंने अगले दिन सुबह भूख हड़ताल शुरू कर दी और किसी भी जेल-अधिकारीसे बोलने या उसके सवालोंका जवाब देनेसे इनकार कर दिया। जिन कोठरियोंमें इन लड़कोंको बन्द किया गया था वे साफ नहीं हैं, यह कहना बेकारकी बात है। वे निश्चय ही इस जेलके सबसे स्वच्छ और साफ कमरे हैं। इसका प्रमाण यह है कि हाल ही में केन्द्रीय जेलसे जो विशिष्ट कैदी भेजे गये हैं उन्होंने रहनेके लिए इन्हींको पसन्द किया है। वहाँ पानी न होनेकी बात भी सरासर झूठ है। उनको दिनमें इसी अहातेमें एक साथ रखा गया था। वहाँ नगरपालिकाके साफ पानीका एक नल बराबर चलता रहता है और यदि उन्हें रातमें पानीकी जरूरत होती थी तो वहाँ एक वार्डर और दो कैदी-पहरेदार जो बराबर तैनात रहते हैं, उन्हें पानी दे देते थे।

५ फरवरी (रविवार)को राजनीतिक कैदियोंने अपने दोस्तोंसे मुलाकात लेनेसे इनकार कर दिया, क्योंकि उन्होंने कहा कि वे भूख हड़ताल कर रहे हैं। शहरके दो-तीन सौ लोगोंके समूहको यह बता दिया गया कि मित्रगणोंने मिलनेसे इनकार कर दिया है। इसलिए उनसे वापस जानेके लिए कहा। परन्तु वे इस बातपर तैयार नहीं हुए और सदर दरवाजेके सामने कुछ गजकी दूरीपर इकट्ठे होकर चीखने-चिल्लाने और गाने लगे। जेलरको इस बातकी आशंका हुई कि लोग कहीं फाटक तोड़कर भीतर न घुस आयें। इसलिए उसने मुझे फोन किया और मैंने पुलिस सुपरिटेंडेंटको फोन द्वारा उस शोर मचानेवाली उद्दण्ड भीड़को जेलकी हदसे बाहर कर देनेके लिए कहा।

लखनऊ, भवदीय,
२० फरवरी जे० ई० गोन्टगे

'यंग इंडिया' (९-२-१९२२) में[1] छपे जिस तारका यहाँ उल्लेख किया गया है, मैंने उसे दोबारा पढ़ा है। जो तथ्य सरकारकी बदनामीके सबसे बड़े कारण थे वे तो लगता है मान ही लिये गये हैं। अन्तर केवल यह है कि सुपरिटेंडेंटने इन स्वीकृत तथ्योंको कुछ भिन्न रूप दे दिया है; पर निष्पक्ष जांच किये बिना यह निर्णय कौन कर सकता है कि इन दोनों विरोधी विवरणोंमें से कौन-सा ठीक है? जो लोग आचार्य कृपलानीसे परिचित हैं वे उनके और उनके शिष्योंके विरुद्ध लगाये गये हुल्लड़बाजीके आरोपको कभी स्वीकार नहीं करेंगे। जहाँतक गन्दगी और पानीकी कमीका प्रश्न है, मुझे खुशी है कि सुपरिटेंडेंट इन आरोपका प्रतिवाद कर सके हैं।

१. देखिए खण्ड २२, पृष्ठ ३३८।

शोचनीय गलत बयानी

सम्पादक
'यंग इंडिया'
महोदय,

मध्य प्रान्तकी सरकारका ध्यान आपकी उस 'धार्मिक स्वतन्त्रतामें हस्तक्षेप'[१] शीर्षक सम्पादकीय टिप्पणीकी ओर आकर्षित किया गया है, जो आपके पत्रके गत २ फरवरी, १९२२ के अंकमें प्रकाशित हुई थी। सागर जेलके सुपरिंटेंडेंटसे पूछताछ करनेपर पता चला है कि आपकी टिप्पणियाँ जिस सूचनापर आधारित हैं उनमें निर्विवाद साफ दीख पड़नेवाली अनेक गलत बयानियाँ हैं। क्योंकि इन गलत बयानियोंसे जनतामें बड़ी बेचैनी पैदा हो रही है, इसलिए मेरी प्रार्थना है कि आप निम्न प्रतिवादको अपने पत्रके निकट भविष्यके किसी अंकमें प्रमुख स्थानपर छापनेकी कृपा करें:

१. पण्डित अर्जुनलाल सेठी सागर जेलमें १९ मई, १९२१ को लाये गये थे। उन्हें १३ जूनको सुतली बटनेका काम दिया गया, जो उन्होंने २४ सितम्बर तक किया। उसी दिन मलेरिया (न्यूमोनिया नहीं) हो जानेके कारण वे जेलके अस्पतालमें दाखिल किये गये। वे अस्पतालमें कोई एक महीने रहे। वहाँ उनका वजन बीमारीके कारण ११ पौंड घट गया था। इस बीच उनका ७ पौंड वजन तो पूरा हो गया है। अस्पतालसे छुट्टी मिलनेकी घड़ीसे वे सुतली बटनेका [हल्का] तीसरे दर्जेका काम कर रहे हैं। इस तरह मैं पक्के तौरपर कह सकता हूँ कि उनसे बीमारीके दिनोंमें अनाज पीसने या रस्सी बटनेका काम कभी नहीं करवाया गया। यह कहना कि "इस तरह मजबूर किये जानेपर ही उन्होंने माफीनामा दिया, जिसे उन्होंने होशमें आनेके बाद फौरन ही वापस ले लिया" शरारतसे भरा झूठ है और वास्तवमें नितान्त आधारहीन है। हकीकत यह है कि सरकारने प्रान्तीय विधान परिषद्में २ अगस्त, १९२१ को यह आश्वासन दिया था कि राजद्रोहात्मक भाषणों या इसी तरहके अपराधोंके लिए जिन लोगोंपर मुकदमे चलाये जा रहे हैं या जो जेलमें सजा पा रहे हैं, वे यदि कोई माफीनामा देंगे तो उसपर सहानुभूतिके साथ विचार किया जायेगा। इस आश्वासनको ध्यानमें रखते हुए जेलोंके सुपरिंटेंडेंटोंको यह लिखा गया था कि उनके संरक्षणमें जो राजनीतिक कैदी हैं वे उन्हें सरकारके इस विचारसे अवगत कर दें। तदनुसार सितम्वर १९२१ के मध्यमें या उसके आसपास सागर जेलके सुपरिंटेंडेंटने पंडित अर्जुनलाल सेठीको सरकारके इस विचारकी सूचना दी। उन्होंने २ नवम्बर, १९२१ को सुपरिंटेंडेंटके आगे माफी

१. देखिए खण्ड २२, पृष्ठ ३२४-३२५।

माँगनेकी इच्छा जबानी बताई। एक हफ्ते बाद जब जिलेके डिप्टी कमिश्नर जेलमें उनसे मिलने आये तो उन्होंने उनसे भी वही बात कही। डिप्टी कमिश्नर-ने उनसे कहा कि यदि वे सचमुच माफी माँगना चाहते हैं तो लिखित प्रार्थनापत्र दे दें। उक्त कैदीने अगले दिन यानी १० नवम्बर, १९२१को माफीनामा लिख भेजा, जो प्रचलित सरकारी रीतिके अनुसार स्थानीय सरकारको भेज दिया गया। उनके माफीनामेकी बात सबको मालूम थी और आम लोग उनकी सेहतके बारेमें बहुत चिन्तित थे। २१ नवम्बर, १९२१को उनका लड़का उनसे मिला और उसने उनपर माफीनामा वापस लेनेके लिए जोर डाला। वे अपने लड़केके सामने इसके लिए तैयार हो गये। तब सुपरिंटेंडेंटने उनसे कहा कि यदि वे वाकई उसे वापस लेना चाहते हैं तो उसके लिए लिखित प्रार्थनापत्र दें। दो दिन बाद यानी २३ नवम्बर, १९२१को कैदीने अपना माफीनामा वापस लेनेका प्रार्थनापत्र दिया, जो सुपरिंटेंडेंट द्वारा स्थानीय सरकारके पास भेज दिया गया। मैं आपका ध्यान खास तौरपर इस तथ्यकी ओर खींचना चाहता हूँ कि उन्हें अस्पतालसे १७ अक्तूबर, १९२१ को छुट्टी मिल गई थी और उन्होंने अपना माफीनामा १० नवम्बर, १९२१को यानी अस्पतालसे छुट्टी मिलनेके कोई एक महीने बाद दिया था। इस तरह यह साफ हो जाता है कि माफीनामा उन्हें चकमा देकर या कुछ खिलाकर नहीं लिखवाया गया था; बल्कि उसके वापस लिये जानेके लिए उनके मित्रोंको उनपर नैतिक दबाव डालना पड़ा था।

२. यह आरोप कि "उन्हें अंडे और शराब लेनेके लिए बाध्य किया जा रहा है" सचाईसे बिलकुल विपरीत हैं। तथ्य यह है कि कैदीको इनमें से कोई भी चीज नहीं दी जा रही है। उन्होंने सुपरिंटेंडेंटसे यह प्रार्थना की थी कि उन्हें अंडे दिये जायें और इस बारेमें अपने सम्बन्धियोंको लिखा था कि वे इस बातको गुप्त ही रखें ताकि वे जातिच्युत न कर दिये जायें। उन्होंने इसका जिक्र अपने मित्र सागरके लक्ष्मीनारायण और पन्नालालसे भी किया था, जो १६ जनवरी, १९२२को उनसे मिले थे। सुपरिंटेंडेंट कैदीकी अंडोंकी मांग मंजूर नहीं कर सके, क्योंकि अंडे सवर्ण हिन्दुओंके लिए निषिद्ध हैं।

भवदीय,

एन० आर० चान्दोरकर

प्रचाराधिकारी मध्य प्रान्त सरकार

इस अयथार्थ कथनका पता मुझे प्रचाराधिकारीका पत्र मिलनेसे पहले ही लग गया था और पिछले सप्ताहके 'यंग इंडिया' में बदस्तूर उसका उल्लेख[1] किया जा चुका

१. देखिए खण्ड २२, पृष्ठ ४७६ ।

है। मेरी नजरमें अबतक जितने अयथार्थ कथन आये हैं, पण्डित सेठी के प्रति व्यवहारसे सम्बन्धित यह अयथार्थ कथन उनमें प्राय: सबसे निकृष्ट है। मैं आशा करता हूँ कि आगे ऐसी कोई अयथार्थ बात नहीं कही जायेगी। पण्डित अर्जुनलालके प्रति सरकार द्वारा किये गये व्यवहारकी सनसनीखेज खबरके प्रचारमें सहायक बननेका मुझे बहुत खेद है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ९-३-१९२२

२२. सन्देश : जनताको[1]

[अजमेर
९ मार्च, १९२२]

(१) मेरी गिरफ्तारीपर कोई प्रदर्शन या हड़ताल नहीं होनी चाहिए।

(२) सामूहिक सविनय अवज्ञा आन्दोलन शुरू न किया जाये और अहिंसाका पालन दृढ़तासे हो।

(३) अस्पृश्यता और मद्यपानके निवारणपर पूरा ध्यान दिया जाये और खद्दरके इस्तेमालको अधिक व्यापक बनाया जाये।

(४) मेरी गिरफ्तारीके बाद, लोग अपनी आशाओंके फलित होनेके लिए हकीम अजमलखांकी ओर ही निहारें।

[अंग्रेजीसे]

सर्चलाइट, १९-३-१९२२

१. गांधीजी ९ मार्चको अजमेरमें अब्दुल बारीसे मिले थे और उन्हें प्रकाशनके लिए जनताके नाम यह सन्देश दिया था। यह लखनऊसे १५ मार्चको समाचारपत्रोंके लिए भेज दिया गया था। गांधीजी १० मार्चको गिरफ्तार हुए थे।

२३. पत्र : महादेव देसाईको

अजमेर

वृहस्पतिवार [९ मार्च, १९२२]

चि० महादेव,[१]

छोटानी मियाँके[२] बुलावेपर एक दिनके लिए मैं यहाँ आ गया हूँ। आज रातको वापस जाऊँगा। शुएब और परसराम साथ हैं।

तुम्हारा पत्र मिला। मैं नहीं जानता कि दुर्गाने[३] ऐसा कैसे मान लिया कि मुझे दुःख हुआ है। तुमने पत्र लिखा, यह ठीक ही किया। तुम अगर अपने विचार मुझे न बताओ तो मुझे अवश्य दुःख होगा। तुम अपने विचार प्रकट न करो तो मैं उनमें सुधार नहीं कर सकता और तुम्हारे विचारोंके अनुरूप सुधरना चाहूँ तो सुधर भी नहीं सकता। दुर्गा अथवा मथुरादासने अथवा जिस किसीने भी तुमसे कहा है उसने भूल की है। किन्तु इतना सच है कि कैदीको[४] इस तरहकी माथापच्ची करनेका अधिकार नहीं है। उसे उससे दुःखी तो कभी नहीं होना चाहिए। मैं तुम सबको, तुम सब जैसे हो वैसे ही देखना चाहता हूँ। तुम जैसा बनना चाहते हो वैसा नहीं, क्योंकि मैं स्वयं भी तुम सबके सम्मुख वैसा ही दिखना चाहता हूँ जैसा मैं हूँ। मैं जो हूँ उससे अधिक बननेकी मेरी उत्कट इच्छा है लेकिन अगर मैं जो हूँ अपनेको वैसा न दिखाऊँ तो मैं जो बनना चाहता हूँ वह नहीं बन सकता।

अतः इसके लिए तुम्हें क्षमा माँगनेकी कोई जरूरत न थी।

सब कागजोंके मिलने और उनपर मनन करनेके बाद मैं अपने सब विचारोंपर और भी दृढ़ हो गया हूँ। मैंने दिल्लीमें अपनी भाषा बदलकर अपनी समझौतेकी वृत्ति सिद्ध की है। 'यंग इंडिया' में अपने निजी विचारोंको व्यक्त करके अपनी दृढ़ता और स्वतन्त्र वृत्तिको प्रकट कर रहा हूँ। यह बात तुम निश्चयपूर्वक जान लो कि चौरी-चौराकी घटनाने हमें दावानलसे उबारा है और स्वराज्यको कितने ही मील समीप ला खड़ा किया है। पहला स्वराज्य तो [जिसे हम प्राप्त करनेकी चेष्टा कर रहे थे] मृगमरीचिका था। साधन और साध्यके बीच इतना निकट सम्बन्ध है कि दोनोंमें से कौन अधिक महत्त्वपूर्ण है, यह कहना कठिन है; अथवा ऐसा कहना चाहिए कि साधन शरीर है और साध्य आत्मा। साध्य अदृश्य है और साधन दृश्य, इस गम्भीर सत्यको बतानेका अवसर तो हमें अब मिलनेवाला है।

१. महादेव देसाई (१८९२-१९४२)।

२. मियाँ मुहम्मद हाजी जान मुहम्मद छोटानी, बम्बईके एक राष्ट्रीय मुस्लिम नेता जिन्होंने गांधीजीको बम्बईमें होनेवाले मुस्लिम उलेमाओंके सम्मेलनमें आमन्त्रित किया था।

३. महादेव भाईकी पत्नी।

४. उस समय महादेव देसाई इंडिपेंडेंटमें लिखे अपने लेखोंके कारण इलाहाबादके समीप नैनी जेलमें सजा काट रहे थे।

जिस तरह सुधन्वा खौलते हुए तेलके कड़ाहमें आनन्दसे नाचता रहा उसी तरह मैं भी, आसपास जो आग धधक रही है, उसके बीच परम आनन्दका उपभोग कर रहा हूँ। अहिंसाका स्वरूप अब प्रकट हो सकेगा।

तुम्हें जो लिखना हो, सो [मुक्त भावसे] लिखना। तनिक भी क्षोभ न करना। अपने आसपासके वातावरणको शुद्ध करते रहना। मेरी कामना है कि तुम्हारा उर्दूका लेखन अत्यन्त तेजस्वी हो। तुम्हारी जरूरत बाहर बहुत है। तथापि तुम अपनी जेलकी अवधिको पूरा कर सको, मेरी यही कामना है।

बाहरकी दुनियामें क्या होता है इसके लिए तुम अपने-आपको तनिक भी चिन्तामें न डालो। अमेरिकामें अनेक लोग दुःखी हैं, उनके लिए हम क्या कर सकते हैं? इसी तरह तुम भी, जेलके बाहर क्या होता है, इसके बारेमें क्या कर सकते हो?

बापूके आशीर्वाद

मूल गुजराती पत्र (एस० एन० ७९८१) की फोटो-नकलसे।

२४. हजारीबाग जेलमें

[१० मार्च, १९२२ या उसके पूर्व][1]

सम्पादक
'यंग इंडिया'
महोदय

१७-२-२२ को जेल सुपरिटेंडेंट मेजर कुक और स्थानीय केन्द्रीय जेलके जेलर श्री मैक, हाईकोर्टके वकील शाह अबुतोराब वाजी अहमद बी० ए०, बी० एल०को देखने गये थे। वे एक राजनीतिक (असहयोगी) कैदी हैं और बक्सर केन्द्रीय जेलसे यहाँ लाये गये हैं। शाह साहब उस वक्त कुरान शरीफ पढ़ रहे थे। उनसे सुपरिटेंडेंटने खड़े होनेको कहा, लेकिन कुरान शरीफ पढ़नेमें मशगूल होनेसे वे खड़े नहीं हुए और हाथके इशारेसे जरा ठहरनेको कहा। इसपर जेलरने चिल्लाकर अंग्रेजीमें उनसे कुछ कहा और कुरान शरीफको पैरोंसे ठुकराकर, उनको पकड़कर जबरदस्ती खड़ा कर दिया, झकझोरा और कुरान शरीफ लेकर चला गया। इससे जेलके दूसरे राजनीतिक कैदियोंमें बड़ी सनसनी और बेचैनी फैल गई और उन्होंने इसके खिलाफ कुछ विरोध भी प्रदर्शित किया। इन सब घटनाओंकी खबरसे इस शहरके लोगोंमें बहुत भय उत्पन्न हो गया है और उन्हें

१. गांधीजीने यह और इसके बादका शीर्षक १० मार्चको अपनी गिरफ्तारीके पहले ही प्रकाशनके लिए दिया होगा।

गहरी ठेस भी लगी है। यहाँतक कि इस जगहके मुसलमानोंने पिछले शुक्रवारको मस्जिदमें एक सभा भी की और उसमें कुरान शरीफको पैरसे ठुकराकर और धार्मिक स्वाध्यायमें लीन मौलवी साहबके साथ पाशविक व्यवहार करके जेलरने जो धर्मविरोधी कार्य किया है उसके प्रति विरोध प्रकट किया।

१८-२-२२को हजारीबागके डिप्टी मजिस्ट्रेट श्री ए० डब्ल्यू० जोन्स, सुपरिटेंडेंट और जेलरके साथ, जेलके अस्पतालमें गये, और वहाँ उन्होंने उक्त मौलवी साहब, असहयोगी राजनीतिक कैदी बाबू रामनारायणसिंह, बी० एल० और बाबू चित्तरंजन गुहा ठाकुरता और मौ० मुहम्मद फसीउद्दीन नामक कैदियोंसे पूछताछ की। उन सबने इस बातकी पुष्टि की कि जेलरने कुरान शरीफ पैरसे ठुकराई थी। उसके बाद डाक्टर, बाबू और हेडवार्डरसे पूछताछ की गई। उन्होंने कहा कि उन्हें इस बारेमें कुछ मालूम नहीं है। इसके बाद सुपरिटेंडेंटने उक्त मौलवी अबुतोराब, बी० एल०, बाबू चित्तरंजन गुहा ठाकुरता और मुहम्मद फसीउद्दीनको १५-१५ बेंत लगानेका हुक्म दिया। उन लोगोंको बेंते लगानेकी जगह ले जाया गया और उक्त मौलवी अबुतोराब, बी० एल० को टिकटीसे बाँध दिया गया। पर डिप्टी मजिस्ट्रेट श्री वार्डी जोन्सने कुछ देर रुकनेको कहा, क्योंकि उन्होंने अर्दलीसे तहकीकात नहीं की थी। तब अर्दली वार्डर रामसागर रामसे पूछा गया। उसने इस बातकी पुष्टि की कि जेलरने कुरान-शरीफ पैरसे ठुकराई थी। इसपर डिप्टी मजिस्ट्रेटने बेतें लगाना रोक दिया।

२३-२-१९२२को हजारीबागके डिप्टी कमिश्नर केन्द्रीय जेलमें गये और उन्होंने उक्त वार्डरको बर्खास्त कर दिया।

भवदीय,
रामेश्वर प्रसाद
मन्त्री,
जिला कांग्रेस कमेटी

हजारीबाग,
२७-२-१९२२

यदि संवाददाताने जो-कुछ लिखा है वह सही है तो यह इस बातका सूचक है कि लोगोंकी अति महत्त्वपूर्ण धार्मिक भावनाओंतक की शोचनीय अवहेलना की जा रही है।

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, १६-३-१९२२

२५. टिप्पणियाँ

[१० मार्च, १९२२ या उसके पूर्व]

निराशा

सविनय अवज्ञा बन्द होनेसे लोग बहुत निराश हुए दिखाई देते हैं। इसके दो अर्थ हो सकते हैं। एक तो यह कि लोग तत्काल स्वराज्य मिलनेकी जो आशा किये हुए थे उनकी वह आशा भंग हो गई और दूसरा यह कि लोग शान्ति-रक्षाकी आवश्यकताके बारेमें बेखबर थे।

यदि पहला कारण ठीक हो तो इससे यह प्रकट होता है कि लोग स्वराज्यका अर्थ ही नहीं समझे। स्वराज्य तो [हमारे मनकी] एक स्थिति है जिसका हमें स्वयं अनुभव करना है। उसे तो हम अपने बलसे ही प्राप्त करेंगे। यदि यह ठीक हो तो लोगोंके निराश होनेका कोई कारण ही नहीं है। स्वराज्य हमारे प्रयत्नमें ही निहित है। यह अगर एक बार प्रयत्न करनेसे न मिले तो हम दो बार प्रयत्न करें, तीन बार करें और बार-बार करें। हम जैसे-जैसे प्रयत्न करते जायेंगे वैसे-वैसे आगे बढ़ते जायेंगे। हम सवा वर्षसे इस तरह जो प्रयत्न करते आ रहे हैं क्या वह व्यर्थ गया है?

निराशा उस मनुष्यको घेरती है जिसे अपनी दिशा नहीं सूझती। यदि हम जानते हों कि हमें शान्तिके मार्गसे ही स्वराज्य मिलेगा और हमें मालूम हो कि जहाँ हमने शान्ति समझी थी वहाँ तो अशान्ति निकली तो हमें स्पष्ट हो जाना चाहिए कि सविनय अवज्ञाको स्थगित करनेमें ही हमारी प्रगति है। कोई सेना रास्ता साफ मानकर चले और आगे खाई आ जानेपर उसमें छलाँग मारकर कूद पड़े तो इसमें प्रगति है अथवा इसमें कि वह गलत रास्तेको छोड़कर सही रास्ता ढूंढ़े या खाईपर पुल बाँधनेके लिए रुक जाये? इतिहास उस सेनाके बारेमें क्या कहेगा जो रास्तेमें खाई आ पड़नेपर उसके पास खड़ी हो जाये और निराश होकर उसे अपने आँसुओंसे भरने लगे?

असहयोगके बारेमें भ्रम

इस तरह निराश होना असहयोगको न समझनेके बराबर है। जब असहयोग आन्दोलन शुरू किया गया तब स्वराज्यकी नींव रखी गई। सरदारको सलामी देना बन्द करनेवाला गुलाम क्या उसी दिन मुक्त नहीं हो गया? सरदार उसे लातें मारे, गालियाँ दे अथवा फाँसीपर चढ़ाये, इससे क्या? उसने तो सलामी देना बन्द कर ही दिया। उसे अपनी परतन्त्रताका भान हो गया है। अगर सरदार उसकी स्वतन्त्रताको स्वीकार नहीं करता तो इसमें गुलामका क्या जाता है? जैसे-जैसे सरदार उसका विरोध करता है वैसे-वैसे गुलामका बल बढ़ता है क्योंकि सरदारके विरोध करनेसे गुलामकी कसौटी होती है।

जबतक हम अपने इस निश्चयपर दृढ़ हैं कि हमें पंजाबके बारेमें न्याय प्राप्त करना है, हमें खिलाफतके जख्मको भरना है और स्वराज्य लेना है तथा जबतक वह नहीं मिल जाता तबतक हमें असहयोगपर कायम रहना है, तबतक हमारे लिए निराश होनेका कारण ही क्या है?

जब जर्मनीसे युद्ध शुरू हुआ तब अंग्रेजोंने अपने मनमें यह सोचा था कि दो मासमें युद्ध समाप्त हो जायेगा। लॉर्ड कर्जनने बड़े दिनकी दावत बर्लिनमें खानेकी उम्मीद की थी। १९१४ का दिसम्बर मास बीत गया और १९२० के दिसम्बर महीने तक युद्ध चला। किन्तु इससे क्या अंग्रेज लोग हार गये? लीज खोया, नैमूपर खोया और जर्मन सेना फ्रांसमें पेरिसतक जा पहुँची। इससे क्या फ्रांसने पराजय स्वीकार कर ली? योद्धा जबतक युद्ध करता रहता है तबतक वह हारा हुआ माना ही कैसे जा सकता है? इस बीच अनेक व्यूह रचे जाते हैं, अभिमन्युके लिए जैसा बना था वैसे चक्रव्यूह बनाये जाते हैं, अनेक पहाड़ काटे जाते हैं और अनेक खाइयोंपर पुल बनाये जाते हैं। मनुष्यका और राष्ट्रोंका निर्माण इसी तरह होता है। "क्या जो भक्त प्रयत्न करनेपर भी निष्फल होता है उसकी आत्मा नाशको प्राप्त नहीं होती?"[१] अर्जुनके इस प्रश्नके उत्तरमें श्रीकृष्णने अत्यन्त प्रेम-भरे शब्दोंका प्रयोग करके उसे उत्तर दिया है, "प्रयत्नवानकी दुर्गति तो होती ही नहीं है।"[२] "संशयात्माका ही नाश होता है।"[३] यदि हमारा असहयोगमें विश्वास न हो तो उसे आरम्भ करनेके समय ही हम हार चुके।

वह नाटक नहीं था

हमने १९२० में कलकत्तेमें जो युद्ध आरम्भ किया था वह नाटक नहीं था।[४] वह राष्ट्रका अडिग निश्चय था। अहमदाबादके मजदूरोंके जैसी ही एक टेक थी।[५] फिर भले ही तेरह दिन लगें अथवा तेईस; क्या ऐसी प्रतिज्ञा करनेवाला कोई भी मनुष्य ईश्वरसे शर्त लगा सकता है?

'एक वर्ष'की बातका अनर्थ

कुछ लोग कहते हैं, "हम अब अपने बच्चोंको राष्ट्रीय स्कूलोंमें किसलिए भेजें? हमने तो एक वर्षकी आशासे ही अपने बच्चोंको स्कूलोंमें से निकाला था?" अगर बहुत सारे लोग इस विचारके हों तो यह ठीक ही हुआ कि एक वर्षमें हमारा काम पूरा नहीं हुआ अन्यथा उनका और भारतका क्या हाल होता?

यदि हम एक वर्षमें अपने हाथमें सत्ता नहीं ले पाये तो जो स्कूल तब हमें पापरूप लगते थे वे अब हमारे लिए किस न्यायसे अपने बच्चोंको भेजने योग्य

१. **गीता**, अध्याय ६, ३७-३८।

२. **गीता**, अध्याय ६, ४०।

३. **गीता**, अध्याय ४, ४०।

४. सितम्बर १९२० को कलकत्तामें हुए कांग्रेसके विशेष अधिवेशनमें असहयोग आन्दोलनका प्रस्ताव पास किया गया था।

५. फरवरी १९१८ में; देखिए खण्ड १४।

बन गये? अथवा क्या माँ-बापने मेरी बातसे भ्रान्त होकर अपने बच्चोंको स्कूलोंसे निकाला था? यदि ऐसा कहें तो मैं क्षमा माँगता हूँ और उन माँ-बापोंको अवश्य ही यह सलाह देता हूँ कि वे अपने बच्चोंको सरकारी स्कूलोंमें भेजें। मेरे लिए और जो असहयोगके तत्त्वको समझ गये हैं उनके लिए तो एक वर्ष लगे अथवा कई वर्ष लगें, जबतक सरकार पश्चात्ताप करके लोकमतका अनुसरण नहीं करती तबतक भले ही सरकारी स्कूलोंमें सोनेकी मुहरें बँटती हों, वे त्याज्य ही हैं।

द्राविड़ी प्राणायाम

कुछ लोग कहते हैं कि स्कूलोंके लिए विद्यापीठको पैसा देना चाहिए। यदि पैसा देनेका काम विद्यापीठका है तो विद्यापीठ कहाँसे पैसा लायेगा? विद्यापीठ बाहरसे पैसा लाकर तो गुजरातके बच्चोंको नहीं पढ़ायेगा? हम उसे पैसा दें और उससे फिर वापस लें, इसकी अपेक्षा हम स्वयं ही प्रत्येक गाँवसे स्कूल चलाने योग्य पैसा इकट्ठा करके शुद्ध ग्रामीण स्कूल क्यों न चलायें?

यह सहाराका मरुस्थल

मैं तो अवश्य मानता हूँ कि हमारे रास्तेमें यह जो सहाराका मरुस्थल आ पड़ा है, सो ठीक ही हुआ है। हम तपेंगे और तपकर मजबूत बनेंगे। अब हमें अच्छे और बुरेकी पहचान हो जायेगी। अब हम जान जायेंगे कि कौन शूरवीर है और कौन कायर है; यह भी कि इस युद्धमें कौन भली-भाँति सोच-समझकर शामिल हुए है और कौन बिना सोचे-समझे? कौन पात्र है और कौन दर्शक? इस बातकी निःसन्देह हमें आवश्यकता थी।

स्कूल हमारी बहुत बड़ी कसौटी है। जहाँ राष्ट्रीय स्कूल चलते हैं वहाँके लोगोंको उन्हें अपने ही बलपर चलानेकी प्रतिज्ञाका पालन करना उचित है। स्कूलके लिए मकान न मिलें तो वे पेड़ोंके नीचे स्कूल लगायें, अध्यापकोंको वेतन न मिले तो वे अनाजकी भिक्षा माँगें, तपश्चर्या करें और बच्चोंको पढ़ायें। राष्ट्रकी उन्नति इसी तरह होगी।

स्वराज्य धाँधलीसे न मिलेगा

कानूनकी कोरी अवहेलना तो अविनय और धाँधली है। अगर स्वराज्य धाँधलीसे मिला तो क्या ऐसे लोग ही राज्य चलायेंगे? हमारी मान्यता तो यह है कि हम स्वराज्य प्राप्त करेंगे और उसका उपभोग करेंगे। स्वराज्यके कारीगरकी परीक्षा उसकी ध्वंसात्मक कलासे नहीं बल्कि उसके निर्माणके कौशलसे होगी। जो निर्माण करना जानता है उसे ध्वंस करना तो आता ही है। लेकिन प्रत्येक ध्वंस करनेवाला मनुष्य निर्माता नहीं होता। विध्वंसक मजदूर कहा जाता है जब कि निर्माता शिल्पी। हम बारडोलीमें[1] निर्माण करना सीखनेसे पहले ही ध्वंसात्मक काम शुरू करनेवाले थे, इसलिए कृपालु ईश्वरने हमारा हाथ पकड़ लिया और हमें खतरेसे बचा लिया।

१. गांधीजीके प्रस्तावपर २९ जनवरी, १९२२ को बारडोली ताल्लुका सम्मेलनमें सविनय अवज्ञा करनेका प्रस्ताव स्वीकार किया गया था, उन्होंने इसकी सूचना १ फरवरीको वाइसरायको भी दे दी थी; किन्तु बादमें चौरीचौराकी घटनासे गांधीजीने उसको स्थगित रखनेका निर्णय किया।

स्वराज्यके शिल्पी

अब हमें सावधान हो जाना चाहिए। अब हमें शिल्पी बननेका प्रयत्न करना चाहिए। यदि हम निर्माण-कार्य-सम्बन्धी विभागको गौरवान्वित नहीं कर सकते तो हमें सविनय अवज्ञा करनेका अधिकार ही नहीं है।

शान्तिके सम्बन्धमें लापरवाही

मैंने निराशाका दूसरा कारण शान्तिके सम्बन्धमें लापरवाही बताया है। यह तो स्वराज्यके सम्बन्धमें गलतफहमी होनेसे भी अधिक भयंकर है क्योंकि पहले कारणमें तो निदान न जाननेका ही दोष आता है और वैद्यको निदानके सम्बन्धमें शंका हो तो वह हलकी दवा देता जाता है; लेकिन दूसरे कारणमें तो वह दवा तय करनेमें लापरवाही करता है। एक वैद्यने मेरे एक मित्रको मेग्नेशियम सल्फेटकी जगह जस्तेका फूला (सफेदा) दे दिया। उसे दस्तोंके बजाय कै शुरू हो गई और वह अत्यन्त प्रयत्नपूर्वक उचित उपचार करने तथा असह्य कष्ट भोगनेके बाद ही बचाया जा सका। पिसा हुआ संखिया और चीनी दोनों देखनेमें एक समान जान पड़ते हैं। चीनीके बदले संखिया खानेवाले रोगीका क्या हाल होगा? एक मित्रने नमकको चीनी समझकर अपनी चायमें तीन चम्मच डाले। बादमें जब उन्होंने प्यालेको मुँहसे लगाया तब उनकी आकृति किसी हास्य-पत्रिकामें भेजे जाने योग्य थी।

उपर्युक्त उदाहरण मैंने अज्ञानी और अनुभवहीन वैद्योंके दिये हैं। लेकिन जो वैद्य जान-बूझकर इस बातकी परवाह नहीं करता कि वह संखियेकी भस्म दे रहा है अथवा चीनीका चूर्ण, उसके बारेमें क्या कहा जाये? जो लोग यह मानते हैं कि शान्तिसे स्वराज्य नहीं मिलता उनकी बात समझी जा सकती है; लेकिन जो मनुष्य, शान्तिका प्रयोग चला रहा हो उसी समय अशान्तिका प्रयोग करनेकी हदतक, लापरवाह बन जाता है, वह असह्य है। ऐसा लापरवाह मनुष्य न तो स्वराज्यके बारेमें कुछ जानता है और न उसके साधनोंके बारेमें। उसे तो साधन बन्धनरूप ही जान पड़ते हैं। मेरी मान्यता है कि बारडोलीमें सविनय अवज्ञाको स्थगित रखकर हम भयंकर आपत्तिसे बच गये हैं। यदि हमें विश्वास हो कि हम हिन्दुस्तानकी जनतापर कुल मिलाकर शान्तिका कोई प्रभाव नहीं डाल सकते और हिन्दुस्तानके उपद्रवी तत्त्व भी हमारी विनयके वशमें नहीं होंगे तो हमारे लिए समझदारी इसीमें होगी कि हम शान्तिसे स्वराज्य प्राप्त करनेकी बात ही भूल जायें। यदि हम इनपर शान्तिसे काबू न पा सकें तो हमें समझ जाना चाहिए कि हम इस सरकारको शान्तिसे कभी नहीं जीत सकते। यदि वे हमारे प्रेमके वश नहीं होते तो वे अवश्यमेव सरकारकी बन्दूकके वश हो कर उसकी मदद करेंगे अथवा वे स्वयं ही शासक बन जायेंगे। हमारे लिए ये दोनों ही स्थितियाँ त्याज्य हैं।

मैं तो मानता हूँ कि उपद्रवी वर्गोंपर काबू पाना मुश्किल भले हो, परन्तु असम्भव नहीं है। हमें अपने ऊपर श्रद्धा होनी चाहिए। हममें धैर्य होना चाहिए। हममें धार्मिक वृत्ति होनी चाहिए।

यदि हम असहयोगके समस्त अंगोंका विचार करनेमें लग जायें तो हम शान्तिका पाठ खुद-ब-खुद सीख सकते हैं, क्योंकि उन अंगोंमें तीन बड़ी रचनात्मक प्रवृत्तियाँ हैं — खादी, अस्पृश्यता-निवारण और समस्त कौमोंकी एकता। क्या कोई स्वप्नमें भी यह सोच सकता है कि हिन्दू और मुसलमान दोनों शान्तिके महत्त्वको पूरी तरह पहचाने बिना भी सचमुच एकदिल हो सकते हैं? यदि ये दोनों परस्पर एक दूसरेकी सहायताके लिये शान्ति रख सकें तो दोनों मिलकर हिन्दुस्तानके उपद्रवी वर्गोंको भी प्रेमसे जीत सकते हैं। जो यह मानते हैं कि उपद्रवी वर्गोंको प्रेमसे वशमें नहीं किया जा सकता, वे यह भी नहीं मान सकते कि हिन्दुओं और मुसलमानोंमें सच्ची मित्रता हो सकती है। यदि ये दोनों बड़ी कौमें परस्पर एक दूसरेके प्रेमके वशमें नहीं होतीं तो मैं भविष्यवाणी करता हूँ कि एक समय ऐसा आयेगा जब ये दोनों एक दूसरेसे अवश्य ही जी-भरकर लड़ेंगी; और लड़नेके बाद जब इन दोनोंका गर्व दूर हो जायेगा तभी ये दोनों मिलकर किसी तीसरेको हरायेंगी। यदि दोनोंकी लड़ाईमें एक हार गई तो उसके नसीबमें गुलामी ही लिखी है। इस प्रकारके विचारोंसे हमें सारी समस्याओंकी कुंजी हाथ लग जाती है।

हिन्दुओं और मुसलमानोंका इतनी बड़ी संख्यामें हिन्दुस्तानमें मिलना, उनका किसी तीसरी सत्ताका गुलाम बनना और दोनोंका जाग्रत होना — इन सब बातोंमें जो अर्थ निहित है अगर कोई उसे समझना चाहे तो बड़ी आसानीसे समझ सकता है। मैं तो इसमें प्रतिक्षण ईश्वरीय आदेश देखता हूँ। शान्तिमें दोनोंकी जय है और अशान्तिमें दोनोंका क्षय।

खादी-प्रचार

भाई रामजी हंसराज अमरेलीसे पत्र लिखकर बताते हैं कि एक समय ऐसा था जब हाथकते सूतकी खादी नहीं मिलती थी। अब समय ऐसा आ गया है जब खादी तो बहुत है लेकिन उसे पहननेवाला कोई नहीं मिलता और फिर सबसे अधिक दुःखद बात यह है कि सूत कातनेवाली बहनें, पूनियाँ बनानेवाले पिंजारे और हथकता सूत बुननेवाले जुलाहे स्वयं खादी नहीं पहनते।

ऐसी स्थितिके बावजूद हमें स्वराज्य चाहिए; वह कैसे मिल सकता है? काठियावाड़-जैसे प्रदेशमें खादी पहननेवाले न मिलें, यह बात कैसी लगती है? मैं अपनी पकायी हुई रोटी स्वयं न खाकर बेच दूं और बाजारसे रोटी लाकर खाऊँ इससे उलटा न्याय और क्या हो सकता है? क्या स्वयं मुझे अपने कार्यकी कीमत नहीं आंकनी चाहिए?

काठियावाड़के सेवक इस बारेमें क्या कर रहे हैं? क्या उनके लिए केवल यही एक प्रश्न काफी नहीं है कि वे खादी तैयार करें और पहनें? यदि वे अन्य कार्योंको छोड़ दें और यही एक कार्य करें तो सब बातें खुद-ब-खुद ठीक हो जायेंगी। छब्बीस लाखकी आबादी यदि प्रतिवर्ष प्रतिव्यक्ति दस रुपयेकी आय देने योग्य कातने, पींजने और बुननेका काम करे तो भी दो करोड़ साठ लाख रुपयेका काम हुआ। यह काम प्रतिदिन प्रतिव्यक्तिके हिसाबसे दो पैसेसे भी कमका होता है। लेकिन जिस तरह

बूंद-बूंदसे सरोवर भरता है उसी तरह यदि प्रत्येक व्यक्तिकी आमदनीमें दो पैसेकी वृद्धि हो जाये तो उसका क्या परिणाम होगा, यह तो अनुभवसे पता चलेगा। एक पैसेका पोस्टकार्ड, एक रुपयेके नमकपर दो पाईका कर, रेलकी मुसाफिरीमें प्रति मील तीन अथवा चार पाई भाड़ा — इसमें सरकारका डाक-विभाग मुनाफा कमाता है और पोस्टमास्टर जनरलको हजारों रुपये वार्षिक वेतन मिलता है; नमकके करसे करोड़ोंकी आय होती है और रेलसे प्रति मील मिलनेवाली पाइयोंसे रेल-कम्पनी लाखों कमाती है।

यह हिसाब खादीके सम्बन्धमें भी लागू होता है। फर्क केवल इतना है कि सरकार दो-दो पाई कर लेकर हमपर हुकूमत चलाती है। वाइसरायको प्रतिमास २०,००० रुपये वेतन दिया जाता है और रेलकी आयमें से विदेशियोंको काफी बड़ी रकम ब्याजमें मिलती है; किन्तु खादीकी आमदनी गरीबोंके घरमें ही रहेगी और उन्हें तेजस्वी बनायेगी। ऐसे सहज धर्मका थोड़ा भी पालन अनेक दुःखोंका नाश कर सकता है।

मेरी सब लोगोंको सलाह है कि वे जहाँ खादी बहुत जमा हो गई है वहाँ उसको तुरन्त खपानेमें और जहाँ खादीका उत्पादन नहीं होता वहाँ उसका उत्पादन करानेमें जुट जायें। यदि अमरेलीके सब लोग एक एक कुरता बनाने योग्य खादी स्थानीय कार्यालयसे खरीद लें तो भी सारी खादी बिक जायेगी।

खादीका उपयोग क्या कम है? खादीके तौलिये बनते हैं, खादीके खोल, चादरें, बस्ते और थैले बनते हैं; खादीका उपयोग बच्चोंके पालनोंमें होता है, उसकी जाजमें बनती हैं। खादीकी बिक्री नहीं होती, जब मैं यह बात सुनता हूँ तब मुझे घीके बजाय चरबी खरीदनेवाले लोगोंका उदाहरण याद आ जाता है। हिन्दुस्तानमें यदि घीका व्यवहार बन्द हो जाये तभी खादीका व्यवहार भी बन्द हो सकता है। खादीका उपयोग जबतक मुद्राके समान न हो तबतक यह कहा जा सकता है कि हम स्वराज्यका अर्थ नहीं समझे हैं।

कपासके दिन

ये कपासके दिन आ गये हैं। इसलिए एक पाठक स्मरण दिलाते हैं कि प्रत्येक व्यक्तिको, विशेषकर किसानोंको अपनी जरूरतकी कपास अवश्य इकट्ठी कर लेनी चाहिए। दूसरोंको खरीद लेनी चाहिए। प्रति व्यक्ति कमसे-कम चार सेर कपास रखी जानी चाहिए। उसका प्रत्येक व्यक्तिको या तो सूत कात लेना चाहिए अथवा कतवा लेना चाहिए, यह उसके संग्रहका सबसे अच्छा मार्ग है। श्रीमन्त लोग होशियार बहनोंको बुलाकर अपनी पसन्दका महीन और बटदार सूत कतवा सकते हैं। हम इस तरह, अपने ही कतैये और बुनकर रखनेकी प्राचीन प्रथाको फिर आरम्भ कर सकते हैं।

पंच-पंचायत

गुजरातमें पंचों और पंचायतोंका रिवाज अभी चालू नहीं हुआ है। हम पंचों और पंचायतोंकी मार्फत अपने झगड़ोंको तय करानेके फायदोंको भूल गये हैं; मानो

न्याय तभी मिलता हो जब उसे अनजान व्यक्तिकी मार्फत और पैसा खर्च करके पाया जाये? न्याय इस तरह पैसे देकर खरीदा नहीं जाता। जो बेचा जा सके वह न्याय नहीं बल्कि अन्याय है। पंच अथवा पंचायतके सम्मुख धूर्तता नहीं चल सकती, और झूठी गवाही नहीं दी जा सकती। पंच दोनों पक्षोंके झगड़ेका निपटारा करवाता है और उन्हें मिलाता है। अदालतकी मार्फत झगड़े तय करानेमें दुश्मनी बढ़ती है; पंचकी मार्फत तय करानेमें कम होती है। यह बात सच है कि आजकल अच्छे पंचोंके अभावमें लोग अदालतोंमें जानेके लिए उत्सुक रहते हैं और फिर जिन्हें झगड़ा करना ही प्रिय है वे पंचोंके पास जायेंगे ही क्यों? लेकिन यदि प्रत्येक गांवमें लोग प्रयत्न करें तो पंचों और पंचायतोंसे निर्णय प्राप्त करनेके रिवाजका पुनरुद्धार किया जा सकता है।

केसरकी अपवित्रता

मुझे आजतक इस बातकी जानकारी न थी कि जिस केसरका उपयोग पकवानों और पूजामें किया जाता है वह बाहरसे आती है और उसमें चरबी मिली होती है। श्री मूलचन्द उत्तमचन्द पारेख लिखते हैं:[1]

ऐसी दयनीय स्थितिमें पूजा अथवा पकवानोंमें केसरका उपयोग करना तो पुण्यके नामपर पाप बटोरनेके समान है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १२-३-१९२२

२६. पत्र : देवदास गांधीको

साबरमती

[१० मार्च, १९२२ या उसके पूर्व]

चि० देवदास,

तुम अपने वियोगको मेरे लिए दिन-प्रतिदिन अधिक कठिन बनाते जाते हो। तुम्हारा वियोग मुझे, मैं न चाहूँ तब भी, सताता है, तथापि ऐसे समयमें वियोग ही उचित है। मैं तुम्हें जो भी उपदेश देना चाहता था सो दे चुका हूँ। अच्छा यही है कि तुम अब सर्वथा निर्दोष विधिसे जेलमें पहुँच जाओ, अर्थात् अपने बचनेका कुछ भी विचार किये बिना, जो खतरे सामने आयें उनमें कूद पड़ो और कहीं भी कोई उपद्रव हो तो तुम पल-भरके लिए भी अपने शरीरकी चिन्ता किये बिना उसे शान्त करनेमें जुट जाओ। मेरी कामना है और मैं तुम्हें आशीर्वाद देता हूँ कि तुममें ऐसा करनेकी हिम्मत आये।

१. इस पत्रमें, जो यहाँ नहीं दिया गया है, बताया गया था कि केसर मुख्यतः स्पेनसे आती है तथा उसमें रक्त और चरबीका मिश्रण होता है।

रामदास अभी नहीं आया। प्रभुदास आज यकायक विनोबाके लिखनेपर यहाँ आ गया है। छगनलाल भी आ गया है।

बापूके आशीर्वाद

मूल गुजराती पत्र (एस० एन० ७८४८) की फोटो-नकलसे।

२७. तार : कांग्रेस कार्यालय, बम्बईको

अहमदाबाद
१० मार्च, १९२२

मौसम[1] अनुकूल हुआ तो इतवारको बारडोली जाऊँगा।

गांधी

[अंग्रेजीसे]
सेवन मन्थ्स विद महात्मा गांधी

२८. तार : जमनालाल बजाजको

अहमदाबाद
१० मार्च, १९२२

गिरफ्तारीकी अफवाह जोरोंपर; वहाँ जरूरत न हो तो तुम और रामदास यहाँ चले आओ।

गांधी

[अंग्रेजीसे]
सेवन मन्थ्स विद महात्मा गांधी

२९. पत्र : मगनलाल गांधीको

शुक्रवार [१० मार्च, १९२२][2]

चि० मगनलाल,

अभी-अभी अजमेरसे आया हूँ। आज ही मेरे पकड़े जानेकी सम्भावना है। जगन्नाथ अब मुक्त हो गये हैं। उन्हें जलगाँव भेजनेका विचार है। दास्ताने इसी उद्देश्यसे यहाँ आये हैं। यदि एक आदमीको वहाँ भेज दें तो काम चल सकता है।

१. आशय सम्भवतः राजनैतिक मौसमसे है।
२. इस तारीखको गांधीजी अजमेरसे अहमदाबाद पहुँचे थे।

तुम्हें इसमें कुछ कठिनाई न लगे तो मुझे तार देना। यदि मैं गिरफ्तार न हुआ तो रविवारको सवेरे पहुँच जाऊँगा। सुरेन्द्रका पत्र मिल गया है। मैं उसे अलग उत्तर नहीं दे रहा हूँ।

बापूके आशीर्वाद

मूल गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ५९८८)से।
सौजन्य : राधाबहन चौधरी

३०. पत्र : पॉल रिचर्डको[1]

सत्याग्रहाश्रम
साबरमती
१० मार्च, १९२२

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला।

यदि गिरफ्तार न हुआ तो बारडोली जाते हुए इतवारकी सुबह मैं सूरत उतरूँगा। कृपया उस दिन बारडोली जरूर आइए। मैं आपसे लम्बी बातचीत करना चाहूँगा।

आपका वक्तव्य प्रकाशित कर रहा हूँ।[2]

हृदयसे आपका,

श्री पॉल रिचर्ड
भारतीय बँगला
अठवा लाइन्स
सूरत

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ७९८२)की फोटो-नकल तथा (जी० एन० ८६९)से।

१. इस पत्रपर भी पिछले शीर्षककी तरह गांधीजीके हस्ताक्षर नहीं थे और गिरफ्तारीसे पहले १० मार्चकी रातको उन्होंने इसे कृष्णदासको बोलकर लिखा दिया था। १२ मार्चको यह पत्र फ्रान्सीसी लेखक पॉल रिचर्डको भेजा गया था।

२. **'यंग इंडिया'**, १६-३-१९२२ में 'हिज़ सॉरो इज़ माई सॉरो' (उनका दुःख मेरा दुःख है) शीर्षकसे प्रकाशित। यह **यंग इंडिया**, २३-२-१९२२ में पॉल रिचर्डकी लोकमान्य तिलकसे भेंटके सम्बन्धमें प्रकाशित गांधीजीके एक लेखका प्रत्युत्तर था।

३१. पत्र : न० चि० केलकरको

सत्याग्रहाश्रम
साबरमती
१० मार्च, १९२२

प्रिय श्री केलकर,

आपका पत्र मिला।

आप जानते ही हैं कि मेरी गिरफ्तारीके बारेमें अफवाहें जोरोंपर हैं, लेकिन यदि मैं गिरफ्तार न हुआ तो आपकी सूचना पाते ही मैं बम्बई आ जाऊँगा। यदि सरकार मुझे आराम करनेपर मजबूर करती है, जिसका मैं हकदार भी हो गया हूँ, तो मैं जानता हूँ कि आप आन्दोलनको आगे बढ़ानेके लिए जो-कुछ भी कर सकते हैं, करेंगे। यों मैंने 'यंग इंडिया' में अपने लेख "यदि मैं पकड़ लिया गया" में जो-कुछ कहा है, उससे अधिक मुझे कुछ भी नहीं कहना है। मैं कल अजमेरमें था; वहाँ मैंने खिलाफतके बारेमें कुछ सलाह दी थी। उसे मैं शायद लिख भी डालूँ। नहीं तो आप श्री छोटानी और अन्य लोगोंसे जान ही लेंगे।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत न० चि० केलकर
पूना

दफ्तरी अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ७९८४) की फोटो-नकलसे।

३२. पत्र : गोपाल मेननको

सत्याग्रहाश्रम
साबरमती
१० मार्च, १९२२

प्रिय गोपाल मेनन,

मैं तुम्हारी धारणाओंसे पूरी तरह अवगत हूँ।

मैं तुम्हारे नवीन प्रयासकी सफलता चाहता हूँ। काममें अत्यधिक व्यस्त होनेके कारण मैं तो हिन्दुओं और मोपलाओं दोनोंको यही एक सन्देश[1] दे सकता हूँ कि वे अपनी आगेकी जिम्मेदारी समझें, गड़े मुर्दोंको उखाड़नेमें न लगे रहें।[2] तुम अपने

१. यह सन्देश गोपाल मेनन द्वारा कालीकटसे प्रकाशित एक नये पत्र **नवीन केरलम्**के लिए था और समाचारपत्रोंमें प्रकाशित किया गया था।

२. अगस्त १९२१ के मोपला-विद्रोहके लिए देखिए खण्ड, २१ पृष्ठ ४८-५०।

कि मुझे अभी आपकी योजनापर विचार प्रकट करनेकी वात स्थगित रखनी पड़ी है। पर इसका अर्थ यह नहीं है कि मैं किसी लम्बे अरसेतक इसे पड़ा रखूँगा। आपने मुझे उदारतापूर्वक काफी लम्बा समय दिया है; परन्तु मैं आपकी उदारताका दुरुपयोग नहीं करूँगा। यदि मुझे विश्राम मिल गया, जिसका मैं अधिकारी हो चुका हूँ, और 'यंग इंडिया' मेरी गिरफ्तारीके वाद भी निकलता रहा तो मेरी यह इच्छा है कि आप स्वयं उसके स्तम्भोंमें इस विषयकी परिचर्चा शुरू करें।

हृदयसे आपका,

बाबू भगवानदास
सेवाश्रम
सिगरा [बनारस]

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ७९८६)की माइक्रोफिल्मसे।

३४. पत्र : मु० रा० जयकरको[1]

सत्याग्रहाश्रम
साबरमती
१० मार्च, १९२२

प्रिय श्री जयकर,[2]

मेरी हार्दिक कामना है कि आप [शीघ्र ही][3] पूर्णतः स्वस्थ हो जायें।

आपका लम्बा पत्र[4] मिला। उसके लिए धन्यवाद स्वीकार करें। लेकिन मैं जवाबी दलीलें देकर आपको परेशान नहीं करूँगा। जैसा कि आप जानते हैं, मेरे शीघ्र गिरफ्तार हो जानेकी खबर है। पर यदि मैं गिरफ्तार नहीं होता तो मैं आपसे मुलाकातके लिए उत्सुक रहूँगा। मुझे लगता है एक गलतफहमी हो गई है; उसे

१. गांधीजीके निजी सचिव कृष्णदासने पत्रको निम्नलिखित अग्रिम टिप्पणीके साथ भेजा था: "साथ वाला पत्र मुझे महात्मा गांधीने पिछली रातको [१० मार्च, १९२२] अपनी गिरफ्तारीके लगभग डेढ़ घंटे पूर्व लिखाया था। वास्तवमें यह पत्र मैंने आज सवेरे टाइप किया और आपके पास महात्माजीके हस्ताक्षरके विना परन्तु उनके निर्देशानुसार ही भेजा जा रहा है।"

२. मुकुन्दराव रामराव जयकर (१८७३-१९५९); प्रसिद्ध वकील, राजनयिक और महाराष्ट्रके उदार-दलीय नेता।

३. ये शब्द मु० रा० जयकरकी 'दि स्टोरी ऑफ माई लाइफ' भाग १, पृष्ठ ५८५-६ में दिये गये पाठमें हैं।

४. ७ मार्चका। यह गांधीजीके २ मार्च के पत्रके जवावमें दिया गया था। देखिए खण्ड २२। इसमें कुछ विस्तारसे कांग्रेसकी असहयोग योजनापर और विधान परिषदोंमें प्रवेशके प्रश्नपर विचार किया गया था तथा जयकरने गांधीजीसे भेंट करनी चाही थी। देखिए 'द स्टोरी ऑफ माई लाइफ' भाग १, पृष्ठ ५८३-५।

सुधारनेके लिए मैं केवल दो शब्द कहना चाहूँगा। यदि मेरे किसी लेख आदिसे आप इस निष्कर्षपर पहुँचे हैं कि मेरे इस दृष्टिकोणमें कि देशकी आजादीके लिए जेल जाना बहुत कारगर उपाय है, किसी भी तरहका कोई परिवर्तन हो गया है तो मुझे दुःख होगा।

अभीतक मेरा यह विश्वास कायम है कि आत्मत्यागकी, छोटे-बड़े सभी सरकारी कर्मचारियोंपर अनुकूल प्रतिक्रिया हुए बिना नहीं रहेगी। बात यह है कि जेल जानेवालों में सभी तो जैसे चाहिए वैसे नहीं थे। जिनके मनमें हिंसा भरी हुई हो उनकी गिरफ्तारीसे अनुकूल प्रतिक्रियाकी मैं कदापि आशा नहीं रखता। और सविनय अवज्ञाको फिलहाल मुल्तवी करनेके पीछे भी मेरा हेतु यही देखना है कि अहिंसाका वास्तविक वातावरण तैयार कर सकना सम्भव है भी या नहीं। इस तरह मैंने आज जो विचार स्थिर किया है वह इसलिए नहीं किया कि प्रशासकोंमें अधिक सख्ती दीख पड़ी है बल्कि उसका कारण यह दुःखजनक बात है कि लोगोंमें जितनी अहिंसाकी मैंने आशा कर रखी थी, मैं आज उससे बहुत कम पाता हूँ।[1]

हृदयसे आपका,

श्रीयुत मु० रा० जयकर
३९९, ठाकुरद्वार
बम्बई

सेवन मन्थ्स विद महात्मा गांधी

३५. सन्देश : आश्रमवासियोंको

अहमदाबाद
१० मार्च, १९२२

उन्होंने[2] विदा लेते हुए आश्रमवासियोंसे कहा कि जिनमें देशभक्ति है और जिन्हें भारतसे प्यार है, उन सबको सारे भारतमें और सभी समुदायोंमें शान्ति और सद्भावनाका प्रचार करनेमें ही अपनी पूरी शक्ति लगानी चाहिए।

[अंग्रेजीसे]
हिन्दू, १३-३-१९२२

१. जयकरने इसका जवाब १७ मार्चको दिया था। बीमारीके कारण अगले दिन अर्थात् मुकदमेकी सुनवाईके दिन वे आशाके अनुसार गांधीजी से भेंट नहीं कर सके।

२. गांधीजीने।

३६. सन्देश[1]

अहमदाबाद
१० मार्च, १९२२

मुझे आपसे[2] भी बहुत बड़ी आशा है और चाहता हूँ कि आप इस कामको उसी स्फूर्ति और साहसके साथ आगे बढ़ायें जैसे मैं अबतक करता रहा हूँ।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, १७-३-१९२२

३७. मुकदमा और अदालतमें बयान

[अहमदाबाद
११ मार्च, १९२२]

शनिवारकी दोपहरको सर्वश्री गांधी और बैंकरको असिस्टेंट मजिस्ट्रेट श्री ब्राउनके सामने पेश किया गया। शाहीबाग स्थित डिविजनल कमिश्नरके दफ्तरमें अदालत बैठी। सरकारी वकील राव बहादुर गिरधारीलालने अभियोक्ता पक्षकी ओरसे पैरवी की।

पहले गवाह अहमदाबादके पुलिस सुपरिंटेंडेंटने 'यंग इंडिया'में प्रकाशित चार लेखोंके विरुद्ध शिकायत दर्ज करनेके लिए बम्बई सरकारका प्रमाण-पत्र प्रस्तुत किया। ये लेख १५ जून, १९२१को "अराजभक्ति एक सद्गुण" शीर्षक, २९ सितम्बरको "राजभक्तिसे भ्रष्ट करनेका आरोप" शीर्षक, १५ दिसम्बरको "एक उलझन और उसका हल" शीर्षक और २३ फरवरी १९२२को "गर्जन-तर्जन" शीर्षकसे प्रकाशित हुए थे।[3] उन्होंने कहा कि अहमदाबादके जिला मजिस्ट्रेटने ६ तारीखको वारंट जारी किया था और मामला श्री ब्राउनकी अदालतमें भेज दिया गया था। इसी बीच सूरत और अजमेरके पुलिस सुपरिंटेंडेंटके पास भी वारंट भेज दिये गये थे, क्योंकि श्री गांधीके उन स्थानोंमें जानेकी आशा थी। मूल हस्ताक्षरित लेखों तथा जिन अंकोंमें ये लेख प्रकाशित हुए थे, वे अंक भी सबूतके तौरपर पेश किये गये।

दूसरे गवाह बम्बई उच्च न्यायालयमें अपील-विभागके रजिस्ट्रार श्री घरडाने 'यंग इंडिया'के सम्पादककी हैसियतसे श्री गांधी और अहमदाबादके जिला मजिस्ट्रेट

१. साबरमती जेल जानेके ठीक पहले गांधीजीने ये शब्द *हिन्दू*से सम्बन्धित किसी एक व्यक्तिसे कहे, जिन्होंने गांधीजीकी गिरफ्तारीका विवरण *हिन्दू*में दिया।

२. गांधीजीने पहले मौलाना हसरत मोहानीके प्रति अपना पूर्ण विश्वास प्रकट किया था।

३. इन लेखों के लिए देखिए क्रमशः (१) खण्ड २०, पृष्ठ २२१-२२, (२) खण्ड २१, पृष्ठ २३०-३१ तथा (३-४) खण्ड २२, पृष्ठ ३०-३१ और ४८१-८२।

श्री केनडीके बीच हुआ पत्र-व्यवहार प्रस्तुत किया। अहमदाबादके मजिस्ट्रेट श्री चैट-फील्ड अगले गवाह थे। उन्होंने श्री गांधी द्वारा जमा की हुई जमानत और 'यंग इंडिया'के मुद्रककी हैसियतसे श्री शंकरलाल बैंकर द्वारा दर्ज कराये गये घोषणापत्रको प्रमाणित किया।

इसके बाद पुलिसके दो औपचारिक गवाह पेश किये गये।

अभियुक्तोंने गवाहोंसे जिरह करनेसे इनकार कर दिया।

साबरमती सत्याग्रह आश्रमके निवासी और पेशेसे किसान और बुनकर, तिरेपन वर्षीय श्री मो० क० गांधीने कहा:

मैं केवल इतना कहना चाहता हूँ कि जहाँतक सरकारके प्रति राजनीतिक असन्तोषका सवाल है, उपयुक्त समयपर मैं अपराध स्वीकार करूँगा। यह बिलकुल सच है कि मैं 'यंग इंडिया'का सम्पादक हूँ और मेरे सामने जो लेख पढ़े गये हैं वे मेरे ही लिखे हुए हैं, और मालिकों तथा प्रकाशकोंने पत्रकी पूरी नीतिपर नियन्त्रण रखनेकी मुझे अनुमति दे रखी थी। बस इतना ही।

दूसरे अभियुक्त, बम्बईके एक जमींदार श्री शंकरलाल बैंकरने कहा कि उपयुक्त समय आनेपर वे शिकायतमें दर्ज लेखोंको प्रकाशित करनेका अपराध स्वीकार करेंगे।

धारा १२४-कके अधीन तीन अभियोग लगाये गये थे। अभियुक्तोंको सेशन सुपुर्द कर दिया गया। मुकदमेकी सुनवाई १८ तारीखको होगी।

श्री गांधीने अदालतमें मौजूद अपने साथियोंसे कहा कि वे उनके द्वारा सम्पादित पत्रोंका प्रकाशन जारी रखें।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, १३-३-१९२२

३८. भेंट: इन्दुलाल याज्ञिकसे[1]

साबरमती जेल
११ मार्च, १९२२

मेरे साथ बात करते हुए गांधीजीने कहा:

अजमेरमें तो काफी बड़ा काम हुआ है।[2] वहाँ मौलाना अब्दुल बारी साहबने[3] बहुत ही जोशीला भाषण दिया जिससे वहाँ इकट्ठे हुए हजारों मुसलमानोंके मनपर गहरा

१. गुजरातके एक राजनीतिक नेता; वर्षोंतक गांधीजीके साथी; सन् १९२२-२४ में गांधीजीके कारा-वासकी अवधिमें **नवजीवन**के सम्पादक; लोक-सभाके सदस्य।

२. गांधीजीने अजमेरमें ९ मार्चको आयोजित मुस्लिम उलेमाओंके सम्मेलनमें भाग लिया था।

३. १८३८-१९२६; खिलाफत आन्दोलनमें सक्रिय भाग लिया; मुसलमानोंसे गोवध बन्द करनेको कहते थे।

असर हुआ। बारी साहब जरा तैशमें आ गये थे। मैं वहाँ गया तब कई लोगोंने ऐसा समझा था कि अब इन दोनोंके बीच अच्छी ठनेगी और हिन्दू-मुसलमानोंकी एकता भंग हो जायेगी। किन्तु मौलाना साहब तो अत्यन्त निर्मल मनुष्य हैं। मैंने उनसे कहा "आप आज जो भी करेंगे वह नाराजीमें ही किया कहा जायेगा। उससे शायद और पाँच-पच्चीस मुसलमान पागल हो जायें किन्तु उससे कोई लाभ नहीं होगा। मैं भी यह चाहता हूँ कि हम दोनों फाँसीपर चढ़ें किन्तु पूरी तरह निष्कलंक रहकर ही चढ़ें।" मौलाना साहब मेरी बात बराबर समझ गये और अब उनकी ओरसे मुझे कोई चिन्ता नहीं रह गई है। मौलाना हसरत मोहानी भी वहाँ थे और मेरे साथ यहाँ आये हैं। उन्होंने मुझे वचन दिया है कि "वे हिंसाकी जरा भी हिमायत करके कांग्रेसके कार्यके सीधे-सरल रास्तेमें रोड़ा नहीं अटकायेंगे।" अतः मैं निश्चिन्त हूँ।

मैंने सन्देश माँगा तो उन्होंने कहा:

मेरा तो एक ही सन्देश है और वह है खादी। तुम मेरे हाथमें खादी दो और मैं तुम्हारे हाथमें स्वराज्य रख दूँगा। अन्त्यजोंका उद्धार भी इसीमें आता है और हिन्दू-मुसलमानोंकी एकता भी खादीके ही बलपर टिकी रहेगी। शान्तिकी रक्षाका भी वह एक प्रबल साधन है। इसका यह अर्थ नहीं है कि मैं अब धारा सभाओंका या अदालतोंका बहिष्कार नहीं चाहता। किन्तु उनमें जानेवालोंके खिलाफ लोग कोई द्वेष-भाव न रखें इसलिए यह कहता हूँ कि वे धारा सभाके सदस्यों और वकीलोंकी मददसे भी खादीका काम चलायें। नरम दलवालोंको अच्छी तरह खुश रखना, उनके साथ प्रेम और दोस्ती बढ़ाना। उनके मनसे हमारा भय ज्यों ही दूर होगा कि फिर वे हमारे ही हो जायेंगे। अंग्रेजोंके बारेमें भी यही समझना चाहिए।

पण्डित मालवीयजीके विषयमें बात करते हुए गांधीजीने कहा:

वे अब बहुत काम करनेवाले हैं। उन्होंने मुझसे कहा है कि जेल जानेपर तुम देख लेना मैं कितना काम करता हूँ।

. . .चलते हुए मैंने कहा कि आपको तो अच्छा नर्सिंग होम मिल गया। उत्तरमें वे खिलखिलाकर हँस पड़े और बोले:

हाँ, यह तो है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १९-३-१९२२

३९. सन्देश : बम्बईको[1]

सावरमती जेल
११ मार्च, १९२२

मैं नहीं चाहता कि वम्बई अपने मूक मन्त्री[2] और मेरी गिरफ्तारीपर दुःख मनाये; वलिक उसे तो इस वातकी खुशी मनानी चाहिए कि हम लोगोंको आराम मिल रहा है। यों तो मैं चाहूँगा कि असहयोगके सभी कार्यक्रमोंमें लोग स्वतः भाग लेने लगें, पर मैं वम्बईसे तो यही चाहूँगा कि वह अपना सारा ध्यान चरखे और खद्दरपर ही लगाये। वम्बईके धनाढच लोग भारत-भरमें तैयार होनेवाली सारी हाथकती, हाथ-वुनी खादी खरीद सकते हैं। यदि वम्बईकी स्त्रियाँ वास्तवमें अपने हिस्सेका काम करना चाहें तो वे देशके लिए निष्ठापूर्वक प्रतिदिन कुछ समय कताईमें लगा सकती हैं। मैं चाहता हूँ कि कोई भी हमारे पीछे जेल जानेकी वात न सोचे। जवतक पूरी तरहसे अहिंसामय वातावरण नहीं बन जाता, तवतक गिरफ्तार होना अपराधपूर्ण होगा। ऐसे वातावरणकी एक कसौटी यह होगी कि हम अंग्रेजों और नरमदलीय लोगोंको महसूस करा दें कि उनको हमसे कोई खतरा नहीं है। यह तभी हो सकता है जव मतभेदोंके वावजूद हमारी उनके प्रति सद्भावना हो।

मो० क० गांधी

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ८०५९) की फोटो-नकल तथा 'हिन्दू', १४-३-१९२२ से।

४०. पत्र : हकीम अजमल खाँको

सावरमती जेल
१२ मार्च, १९२२

प्रिय हकीमजी,

इस वातका विलकुल ठीक-ठीक पता लगा लेनेके वाद कि जेलके नियमोंके मुताविक मैं एक हवालाती कैदीकी हैसियतसे जितने भी चाहूँ पत्र लिख सकता हूँ, मैं अपनी गिरफ्तारीके बाद यह पहला पत्र लिखने बैठा हूँ। आप यह तो जानते ही होंगे कि श्री शंकरलाल बैंकर मेरे साथ हैं। मुझे इस वातकी खुशी है। सव लोग जानते हैं कि मेरा उनका कितना निकटका सम्बन्ध हो गया है, इसलिए स्वाभाविक ही है कि एक साथ पकड़े जानेसे हम दोनों खुश हों।

१. यह सन्देश सरोजिनी नायडूके जरिये भेजा गया था; वे गांधीजीसे सावरमती जेलमें मिली थीं।
२. शंकरलाल बैंकर।

यह पत्र मैं आपको कांग्रेसकी कार्य-समितिके सभापतिके नाते अर्थात् हिन्दू-मुसलमान दोनोंके और सच पूछिए तो सारे भारतका नेता होनेके नाते लिखा रहा हूँ।

आपको लिखनेका एक कारण यह भी है कि आप मुसलमानोंके एक चोटीके नेता हैं; किन्तु इसका सबसे बड़ा कारण तो यह है कि मैं मित्रके रूपमें आपकी बड़ी इज्जत करता हूँ। मुझे १९१५ से आपसे परिचयका सौभाग्य प्राप्त है। हमारे नित्य प्रति बढ़नेवाले सम्पर्कके फलस्वरूप मैं आपकी मैत्रीको एक निधि मानने लगा हूँ। निष्ठावान मुसलमान रहते हुए भी आपने अपने जीवनके द्वारा यह दिखला दिया कि हिन्दू-मुसलमानोंकी एकता क्या चीज है?

बिना हिन्दू-मुस्लिम एकताके हम अपनी आजादी प्राप्त नहीं कर सकते। यह बात आज हम इतनी अच्छी तरह जानते हैं, जितनी कि इससे पहले कभी नहीं जान पाये थे। और मैं तो यहाँतक कहता हूँ कि बिना इस मित्रताके भारतके मुसलमान खिलाफतकी वह सेवा नहीं कर सकते जो वे करना चाहते हैं। फूटसे तो हम हमेशा गुलाम बने रहेंगे। हिन्दू-मुस्लिम एकताको केवल किसी ऐसी सुविधापूर्ण नीतिके रूपमें नहीं अपनाया जा सकता जिसे अनुपयुक्त पानेपर चाहे जब छोड़ा जा सके। स्वराज्यके प्रति अरुचि उत्पन्न होनेपर ही इस एकताको तिलांजलि दी जा सकती है। हिन्दू-मुस्लिम एकताको हमें ऐसी नीतिके रूपमें ग्रहण कर लेना चाहिए जो किसी भी काल अथवा परिस्थितिमें त्यागी न जा सके। साथ ही ऐसा भी नहीं होना चाहिए कि यह एकता पारसी, ईसाई, यहूदी अथवा बलशाली सिख-जैसी दूसरी अल्पसंख्यक जातियोंके लिए त्रासदायक बन जाये। यदि हम इनमें से किसी एकको भी कुचलनेका विचार करेंगे तो किसी दिन हम आपसमें ही लड़ मरना चाहेंगे।

आपके प्रति मेरे घनिष्ठ होते जानेका खास कारण ही यह है कि मैं जानता हूँ कि आपका हिन्दू-मुस्लिम एकताके व्यापक अर्थमें विश्वास है।

मेरी रायमें तो हम लोग जबतक अहिंसाको दृढ़ व्यवहार-नीतिके रूपमें नहीं स्वीकारेंगे, तबतक हिन्दू-मुस्लिम एकता स्थापित होना अशक्य है। मैं व्यवहार-नीति इसलिए कहता हूँ कि अहिंसा-धर्मको हम हिन्दू-मुस्लिम एकताकी रक्षाके लिए स्वीकार कर रहे हैं। पर इसका मतलब तो यही होता है कि एक खास समयतक नहीं, परन्तु सदाके लिए सगे भाईकी तरह रहनेवाले तीस करोड़ हिन्दू-मुसलमानोंकी एकता सारी दुनियाकी शक्तिके साथ टक्कर ले सकती है और फिर उचित है कि वे अंग्रेज शासकोंसे अपना निपटारा करानेके लिए हिंसाके मार्गको ग्रहण करना केवल कायरताकी बात समझें। आजतक तो हम अपने भोलेपनके कारण उनसे और उनकी बन्दूकोंसे डरते रहे हैं। पर जिस घड़ी हम अपनी एकताका बल समझ लेंगे उसी घड़ी उनसे डरना और डरकर उनपर हाथ उठानेका विचार करना हमें बिलकुल नामर्दी लगने लगेगा। इसीलिए मैं इस बातके लिए आतुर और अधीर हूँ कि मैं अपने देशभाइयोंको जल्दीसे-जल्दी, कमजोरी नहीं बल्कि शक्तिके आधारपर, खुदको अहिंसक माननेके लिए प्रेरित कर सकूँ। पर मैं और आप दोनों जानते हैं कि अभी हम शक्तिशालियोंकी अहिंसाको विकसित नहीं कर पाये हैं। और इसका कारण यही है कि अभी हम हिन्दू-मुस्लिम एकताको व्यवहार-नीति ही मानते रहे हैं — इससे आगे नहीं बढ़े।

आज भी हमारे बीच एक-दूसरेके प्रति बड़ा अविश्वास और फलस्वरूप डर बना हुआ है। पर मैं निराश नहीं हूँ। हमने इस दिशामें जो प्रगति की है वह निस्सन्देह अद्भुत है। एक पूरी पीढ़ीका काम हमने डेढ़ बरसमें कर डाला है। पर अभी बहुत काम करनेकी जरूरत है। क्या जनता और क्या शिक्षित समाज दोमें से किसीको भी अनायास ऐसा अनुभव नहीं हो पाता कि यह एकता हमारे लिए उतनी ही जरूरी है जितनी कि हमारे फेफड़ोंके लिए साँस।

पर मैं समझता हूँ कि उद्देश्यकी पूर्तिके लिए हमें संख्याकी अपेक्षा गुणपर निर्भर करना चाहिए। भारतके हिन्दू-मुसलमानोंकी एकतापर दीवानोंकी तरह विश्वास रखनेवाले यदि थोड़ेसे भी हिन्दू और मुसलमान हों तो उससे सारी जनतामें ऐक्यकी भावना फैलते देर नहीं लगेगी। हममें से कुछ लोगोंको प्रारम्भमें ही यह स्पष्ट रूपसे समझ लेना चाहिए कि मन, वचन और कर्मसे पूर्ण अहिंसाको अपनाये बिना हम अपनी राजनीतिक महत्त्वाकांक्षाओंकी पूर्तिकी दिशामें एक कदम भी आगे नहीं बढ़ सकते। इसलिए मैं आपसे और कार्य-समिति तथा अ० भा० कां० कमेटीके सदस्योंसे सादर अनुरोध करता हूँ कि आप कृपा करके अपने बीच ऐसे कार्यकर्त्ताओंको न रहने दें जो पूरी तरह उक्त सारभूत सत्यको नहीं समझते। कहीं बहुमतके निर्णय-मात्रसे जीवन्त विश्वासका निर्माण सम्भव है?

मेरी दृष्टिमें तो सारे हिन्दुस्तानकी ऐसी एकताका साक्षात् प्रतीक और इसलिए राजनैतिक महत्त्वाकांक्षाकी सिद्धिके लिए अहिंसाको अनिवार्य साधन माननेका साक्षात् प्रतीक भी निस्सन्देह चरखा अर्थात् खादी ही है। केवल वही लोग जो अहिंसावृत्तिके विकास तथा हिन्दू-मुसलमानोंमें चिरस्थायी एकता कायम करनेके कायल होंगे, नियम और निष्ठाके साथ चरखा कातेंगे। व्यापक कताई-बुनाई और खद्दरका उपयोग सच्ची एकता तथा अहिंसाका अकाट्य नहीं तो काफी ठोस सबूत तो होगा ही और साथ ही इससे हमारे आचरणमें भारतके करोड़ों मूक देशवासियोंके प्रति भाईचारेकी भावना दृष्टिगोचर होगी। यदि समूचे भारतवर्षके निवासी नित्यकर्म मानकर चरखा चलाने और सौभाग्य तथा कर्त्तव्यके रूपमें खादी पहननेके सिद्धान्तको अंगीकार कर लें तो देशमें एकता स्थापित करने तथा उसमें नवजीवन संचरित करनेका इससे बढ़कर कोई दूसरा उपाय ही नहीं है।

यह चाहते हुए भी कि जिन लोगोंने अभी अपने खिताब नहीं छोड़े हैं वे खिताब छोड़ दें, वकील वकालत छोड़ दें, विद्यार्थी सरकारी स्कूल-कालेज छोड़ दें, परिषदोंके सदस्य परिषदें छोड़ दें, फौजी और गैर-फौजी सरकारी नौकर अपनी नौकरियाँ छोड़ दें फिर भी राष्ट्रसे विशेष जोर देकर कहना चाहता हूँ कि इस दिशामें अबतक जितना हो चुका है उसीको पक्का करने तक अपने प्रयास सीमित रखें; और देशसे मेरा यह भी आग्रह है कि जिस शासन-तन्त्रको सुधारने या मिटानेका यत्न हम कर रहे हैं उसके साथ सहयोग करनेसे अपना हाथ खींचनेमें और अधिक शक्ति लगायें।

फिर काम करनेवाले लोग तो इने-गिने हैं। अतएव ऐसे समय जब कि ढेर सारे रचनात्मक काम हमारे सामने पड़े हुए हैं, मैं नहीं चाहता कि विध्वंसात्मक कार्यमें हमारे एक भी आदमीका समय जाया हो। पर विध्वंसात्मक प्रचारमें समय और शक्ति

लगानेके खिलाफ सबसे अकाट्य दलील तो यह है कि देशमें आज असहिष्णुताकी भावना इतनी फैल गई है जितनी पहले कभी नहीं फैली थी। असहिष्णुता हिंसाका ही एक रूप है। सहयोगी भाई हमसे अलग हो गये हैं। वे हमसे डरते हैं और कहते हैं कि हम तो वर्तमान नौकरशाहीसे भी बदतर नौकरशाही [के लिए जमीन] तैयार कर रहे हैं। हमें चाहिए कि हम ऐसी चिन्ताका कोई कारण न रहने दें। उनको अपने पक्षमें करनेके लिए हमें अतिरिक्त प्रयास तक करना चाहिए। हमें अंग्रेज भाइयोंको अपनी ओरसे भय-मुक्त कर देना चाहिए। अहिंसाकी प्रतिज्ञा ग्रहण करनेके कारण हम अपने कट्टरसे-कट्टर विरोधीके प्रति भी विनम्रता और सद्भाव रखनेके लिए बाध्य हैं, यह बात जितनी आपको और मुझे स्पष्ट दिखाई देती है उतनी यदि सब लोगोंको दिखाई दे तो मुझे इतने विस्तारके साथ इसकी चर्चा ही न करनी पड़े। यदि देश मेरे बताये रचनात्मक काममें अपना पूरा ध्यान लगा दे तो यह आवश्यक भावना अपने-आप पैदा हो जायेगी।

मैं यह मानकर थोड़े गर्वका अनुभव करता हूँ कि मेरी गिरफ्तारीके बाद अभी बहुत समयतक और किसीके गिरफ्तार होनेकी जरूरत नहीं पड़ेगी। मेरी यह विनम्र धारणा है कि मेरे मनमें किसीके प्रति वैरभाव नहीं है। जिस हदतक मैं अहिंसा-धर्मका पालन करता हूँ उस हदतक स्वयं उसका पालन कितने ही मित्रोंको पसन्द नहीं है। पर हमारा तो यही इरादा था कि केवल वही मनुष्य जेल जायें जो बिलकुल निर्दोष हों। और यदि मैं बिलकुल निर्दोष होनेका दावा कर सकता हूँ तो यह स्पष्ट ही है कि मेरे पीछे किसी भी दूसरेको जेल जानेकी जरूरत नहीं। हाँ, हम इस सरकारके तन्त्रको ठप्प तो जरूर करना चाहते हैं, पर धमकीके द्वारा नहीं बल्कि अपनी निर्दोषताकी अदम्य सामर्थ्यके द्वारा। मनमाने ढंगसे जेलोंको भरना तो मेरी रायमें धमकी ही है। और जबतक यह न मालूम हो जाये कि जो शख्स सबसे अधिक निर्दोष माना जाता है उसका जेल जाना काफी नहीं है, तबतक दूसरे निर्दोष लोगोंको जेल जानेकी कोशिश ही क्यों करनी चाहिए?

मेरे इस कथनका कि अब और लोगोंको जेल नहीं जाना चाहिए, यह अर्थ नहीं है कि जेल जानेसे मुँह चुराया जाये। यदि सरकार खुद ही प्रत्येक अहिंसक असहयोगीको गिरफ्तार कर ले तो मैं इसका स्वागत ही करूँगा। मेरा अभिप्राय सिर्फ इतना ही है कि प्रतिरक्षात्मक अथवा आक्रामक किसी भी प्रकारका सत्याग्रह करके हमें जेल नहीं जाना चाहिए। उसी प्रकार मैं यह आशा करता हूँ कि जो लोग इस समय सजा काट रहे हैं उनके जेलमें रखे जानेसे देशवासी आपा न खोयें। उनका अपनी पूरी मीयाद-तक सजा भोग लेना उनके तथा देश दोनोंके हितमें होगा। शोभा तो इसी बातमें है कि यदि वे मीयाद खत्म होनेके पहले छूटते हैं तो स्वराज्यकी संसदके हाथों छूटें। मुझे इसमें कोई शक ही नहीं है कि खद्दरका सार्वदेशिक रूपसे अपनाया जाना स्वराज्य है।

छुआछूतके विषयमें मैं यहाँ कुछ कहनेकी आवश्यकता नहीं समझता। मुझे निश्चय है कि सभी सदाशयी हिन्दू इसका मिटना जरूरी मानते हैं। छुआछूतको दूर करनेकी बात भी इतनी ही जरूरी है जितनी हिन्दू-मुस्लिम एकता।

950—1,00,000—10-20—(17)—st.

M. M. 60

No. 6

Case No. of the Criminal Register for 19 ,

STATEMENT OF THE ACCUSED.

I state as follows:—

My name is Mohandas

My father's name is Karamchand Gandhi

My age is about 53 years;

I am by caste Hindu Banya

My occupation is farmer and weaver

I am an inhabitant of the Ashram Sabarmati

Q The evidence has been given in your hearing. Do you wish to make any remarks about it.

A I only want to state that when the proper time comes I shall plead "guilty" so far as disaffection towards Government is concerned. It is true that I am the editor of Young India that the articles read in me presence were written by me and that the propriteors and publishers permittd me to control the whole of the policy of the paper. That is all

11/3/22

अदालतमें बयान, ११-३-१९२२

Sunday
12·3·22

My dear Kristodas

The correspondence, reports &c should come to you for disposal.

Unless it is too much for you ~~the papers~~ all articles must finally pass through your hands.

I have several names as Editor ~~Sudalam~~ Satis Babu, Rajagopalachari, you, Swaint Kaka, Venkates

It would be better now if Satis Babu gave you the permission to sign articles.

The room should be entirely at your disposal. You should lock the verandah door from inside. Fix up the whole office there. Hardikar & the bulletin staff should be there for work but under your permission.

Of course you have my blessings. God will give you give you all the strength & wisdom you need.

Bapu

"पत्र : कृष्णदासको", १२–३–१९२२

मैंने आपके सामने ऐसा ही कार्यक्रम रखा है जो मेरी रायमें सर्वोत्तम है और जिसे जल्दीसे-जल्दी पूरा किया जा सकता है। अधीरसे-अधीर खिलाफती भाई भी इससे अच्छा कार्यक्रम तैयार नहीं कर सकते। ईश्वर आपको ऐसा स्वास्थ्य और विवेक प्रदान करे कि आप देशको अपने निश्चित ध्येयतक पहुँचानेमें समर्थ हों।[1]

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

[अं]ग्रेजी पत्र (एस० एन० ७९९१) की फोटो-नकलसे।

४१. पत्र : कृष्णदासको

[साबरमती जेल]
रविवार, १२ मार्च, १९२२

प्रिय क्रिस्टोदास[2],

सभी पत्र और रिपोर्टें आदि तुम्हारे पास भेजी जानी चाहिए। तुम्हीं उनकी व्यवस्था करोगे।

अगर यह काम तुम्हारे लिए बहुत ज्यादा न हो तो सारे लेख भी अन्तिम रूपमें तुम्हारे हाथोंसे ही गुजरने चाहिए।

मेरे पास सम्पादकके लिए कई नाम हैं — सतीशबाबू[3], राजगोपालाचारी[4], तुम, शुएब[5], काका[6] तथा देवदास[7]।

अच्छा होगा कि अब सतीशबाबू तुम्हें लेखोंपर हस्ताक्षर करनेकी अनुमति दे दें।

कमरा पूरी तरह तुम्हारे पास रहना चाहिए। बरामदेका दरवाजा तुम्हें अन्दरसे बन्द करके ताला लगा लेना चाहिए। पूरा दफ्तर वहीं जमाओ। हार्डीकर[8] और 'बुलेटिन' के कर्मचारी यदि वहाँ रहें या काम करें तो तुम्हारी अनुमतिसे।

१. हकीम अजमल खांने इसका उत्तर १७ मार्चको दिया था; देखिए परिशिष्ट १।

२. कृष्णदास, गांधीजी उन्हें इसी नामसे पुकारते थे; **सेवन मन्थ्स विद महात्मा गांधी**के लेखक।

३. सतीशचन्द्र मुखर्जी; कृष्णदासके गुरु; बंगाल नेशनल कालेजके भूतपूर्व प्रिंसिपल तथा कलकत्तेकी **डॉन** पत्रिकाके सम्पादक।

४. चक्रवर्ती राजगोपालाचारी (जन्म १८७९)।

५. शुएब कुरेशी, **न्यू एरा**के सम्पादक।

६. दत्तात्रेय बालकृष्ण कालेलकर (जन्म १८८५); काका साहबके नामसे विख्यात।

७. देवदास गांधी।

८. डा० एन० एस० हार्डीकर, कर्नाटकके कांग्रेसी नेता और हिन्दुस्तानी सेवा-दलके प्रधान।

निश्चय ही मेरे आशीर्वाद तुम्हारे साथ हैं। इस कामके लिए तुम्हें जितनी शक्ति और विवेककी आवश्यकता होगी वह सब तुम्हें ईश्वर देगा।

बापू

[अंग्रेजीसे]
सेवन मन्थ्स विद महात्मा गांधी

४२. पत्र : मौलाना अब्दुल बारीको

साबरमती जेल
[१२ मार्च, १९२२ के पश्चात्]

प्रिय मौलाना साहब,

आजकल तो मैं अपने स्वतन्त्रता-भवनमें मौज कर रहा हूँ। हकीमजी तथा अन्य सज्जन यहीं हैं। आपकी अनुपस्थिति मुझे खल रही है, परन्तु मुझे उसके कारण कोई चिन्ता नहीं है क्योंकि हम लोग अजमेरमें काफी बातचीत कर चुके थे। मुझे मालूम है कि आप निश्चय ही अपने उन सिद्धान्तोंपर जिनके सम्बन्धमें वहाँ हम लोगोंके बीच बातचीत हुई थी, मजबूतीसे डटे रहेंगे। मेरी आपसे हार्दिक विनती है कि आप सार्वजनिक सभाओंमें भाषण न दें। मैं खुद तो बहुत गहराईसे सोचनेपर इस नतीजेपर पहुँचा हूँ कि ऐसी एक ही चीज है जिसे हिन्दू-मुस्लिम एकताका स्पष्ट और प्रभावकारी प्रतीक माना जा सकता है और वह है इन दोनों जातियोंके सामान्य वर्गोंमें चरखेका और हाथके कते सूतसे हाथ-करघेपर बुनी शुद्ध खादीका प्रचार। जब सभी लोग इस सिद्धान्तके कायल हो जायेंगे तभी हममें विचारकी एकता हो सकती है और हमें कामका एक संयुक्त आधार मिल सकता है।

खद्दरका प्रचार तबतक व्यापक नहीं हो सकता जबतक उसे दोनों जातियाँ न अपना लें। इसलिए चरखे और खद्दरके व्यापक प्रचारसे भारतमें जागृति पैदा होगी। उससे यह भी सिद्ध हो जायेगा कि हम लोग अपनी सभी आवश्यकताओंकी पूर्ति करनेकी शक्ति रखते हैं। जबसे यह संघर्ष शुरू हुआ है तभीसे हम विलायती कपड़ेके बहिष्कारकी आवश्यकताका अनुभव कर रहे हैं। मैं नम्रतापूर्वक कहता हूँ कि जब सभी लोग खद्दरका व्यवहार करने लग जायेंगे तब विलायती कपड़ेका बहिष्कार अपने आप हो जायेगा। जहाँतक मेरा सवाल है, मेरे लिए तो चरखा और खद्दर विशेष धार्मिक महत्त्व रखते हैं क्योंकि वे उस भाईचारेकी भावनाके प्रतीक हैं जो दोनों जातियोंके दिलोंमें भूख और रोगसे पीड़ित गरीब लोगोंके प्रति होनी चाहिए। इसी कारण तो आज हमारा संघर्ष राजनीतिक ही नहीं, नैतिक और आर्थिक भी कहा जा सकता है। जबतक हम इस छोटी-सी चीजको हासिल नहीं कर सकते, तबतक मेरा पक्का विचार है कि हमें कामयाबी नहीं मिल सकती। फिर, खद्दरका आन्दोलन उसी हालतमें सफल हो सकता है जब हम स्वराज्य-प्राप्ति तथा खिलाफत सम्बन्धी अन्यायके निराकरणके लिए अहिंसाको अनिवार्य शर्त मान लें। लिहाजा मैं आज देशके सामने

जो एकमात्र प्रभावकारी और सफल कार्यक्रम रख सकता हूँ, वह खद्दरका कार्यक्रम है। जब आपने मुझसे यह कहा था कि आप मेरी गिरफ्तारीके बाद नियमित रूपसे कातने लगेंगे, तब मुझे बहुत खुशी हुई थी। मैं तो सिर्फ यही कहूँगा कि जबतक विलायती कपड़ेका बहिष्कार पूर्णरूपसे और हमेशाके लिए नहीं हो जाता, जबतक पंजाब और खिलाफत सम्बन्धी अन्यायोंका निराकरण नहीं हो जाता और जबतक स्वराज्य हासिल नहीं हो जाता तबतक हरएक मर्द, औरत और बच्चेको अपना मजहबी फर्ज समझकर रोज चरखा चलाना चाहिए। इसलिए आपसे मेरी प्रार्थना है कि आप अपने तमाम असरका इस्तेमाल करके अपने मुसलमान बिरादरानके बीच चरखेका प्रचार करें।

[अंग्रेजीसे]
स्पीचेज ऐंड राइटिंग्स ऑफ एम० के० गांधी

४३. पत्र : सी० एफ० एन्ड्रयूजको

साबरमती जेल
[१३ मार्च [१९२२]

प्रिय चार्ली,

आखिर मुझे शान्ति मिल रही है। वह तो मिलनी ही थी। आज भारतमें सर्वत्र जो शान्ति है वह निश्चय ही अहिंसाकी भारी जीत है।

मैं चाहता हूँ कि तुम 'यंग इंडिया' के स्तरको बनाये रखो। मैंने पहले तुम्हें ऐसा तार देनेका विचार किया था कि तुम 'यंग इंडिया' के सम्पादनका कार्य संभाललो। परन्तु हम दोनोंके बीच जो बातचीत हुई थी वह मुझे याद आ गई और मैंने सोचा कि सम्पादककी जगह नाम तो किसी भारतीयका ही होना चाहिए परन्तु क्या तुम नियमित रूपसे लिखोगे और यथावकाश कभी-कभी साबरमती जाओगे? तुम क्रिस्टोदास तथा शुएबको अवश्य जानते होगे। तुम्हारा दोनोंसे तुरन्त प्रेम हो जायेगा।

आशा है तुम्हारी जो पेटी खो गई है, उसमें ऐसा कुछ अधिक न रहा होगा जिसे तुम स्मरण न कर सको।[1]

सस्नेह,

तुम्हारा,
मोहन

सी० एफ० एन्ड्रयूज
शान्तिनिकेतन
बोलपुर

अंग्रेजी पत्र (जी० एन० २६१०)की फोटो-नकलसे।

१. शायद गांधीजीका आशय यह है कि उस पेटीके खो जानेसे श्री एन्ड्रयूजके जो लेख आदि खो हैं उन्हें वे याद करके फिरसे लिख सकते हैं।

४४. पत्र : उर्मिलादेवीको[1]

सावरमती जेल
१३ मार्च, १९२२

प्रिय बहन,

तुमने तो मेरी बिलकुल ही उपेक्षा कर दी। पर मैं जानता हूँ कि तुमने मेरा समय बचानेके खयालसे ही ऐसा किया है।

मैं चाहता हूँ कि तुम अपना सारा समय बस चरखे और खद्दरमें ही लगाओ। शान्ति, अखिल भारतीय एकता और अछूत कहलानेवाले लोगों समेत समूची जनताके साथ हमारे एकात्मक होनेका यही एकमात्र स्पष्ट प्रतीक है।

इस पत्रको कृपया बासन्तीदेवी और देशबन्धुको दिखला देना। आशा है देशबन्धु नीरोग और स्वस्थ हैं। बन्दी लोग बीमार पड़ना गवारा नहीं कर सकते।

तुम तो जानती ही हो कि शंकरलाल बैंकर मेरे साथ ही हैं।

तुम सभीको प्यार

श्रीमती उर्मिलादेवी,
नारी कर्म मंदिर
कलकत्ता

[अंग्रेजीसे]
स्पीचेज ऐंड राइटिंग्स ऑफ एम० के० गांधी

४५. पत्र : मथुरादास त्रिकमजीको

[सावरमती जेल]
मौनवार, १३ मार्च, १९२२

अव तुमपर भाई शंकरलालका बोझ आ गया है। तुम इसे उठा सकते हो। लेकिन एक शर्त है: तुम्हें कसरत अवश्य करनी चाहिए और हफ्तेमें दो दिन माथेरान अवश्य जाना चाहिए। तुम्हें बीमार अथवा कमजोर नहीं रहना चाहिए।

मेरी शान्तिका पार नहीं है। यह तो घर ही है। अभीतक तो जेल-जैसा कुछ लगता ही नहीं है। लेकिन विश्वास करो, जब मिलनेके लिए आनेवाले लोगोंका आना बन्द हो जायेगा और जब जेलकी कुछ पावन्दियाँ लग जायेंगी तव मैं और भी अधिक शान्तिका उपभोग करूँगा। इसलिए मेरे लिए दुःखी होनेका तो कोई कारण ही नहीं।

१. चितरंजन दासकी बहन।

जो लोग [जेलसे] बाहर हैं उनकी शान्ति उनके कार्यमें निहित है। और वह काम है खादीका प्रचार और उत्पादन। खास बम्बईमें भले ही इसका उत्पादन कम हो; लेकिन वहां चारों ओरसे खादी इकट्ठी की जाये, यह वांछित है।

यदि हम बम्बईके स्थानपर अहमदाबादको खादी इकट्ठी करनेका केन्द्र बना लें तो वहां खर्च कम होनेकी सम्भावना है।

[गुजरातीसे]

बापूनो प्रसादी

४६. पत्र : रेवाशंकर झवेरीको[1]

जेल

मौनवार, १३ मार्च, १९२२

मैं तो परम शान्तिका उपभोग कर रहा हूँ। जब मैं क्रोधको निर्मूल कर चुका, [अपनी भूलोंका] प्रायश्चित्त कर चुका और शुद्ध हो गया, मैं तभी पकड़ा गया। मेरे लिए अथवा भारतके लिए इससे अधिक अच्छी दूसरी बात क्या हो सकती है। आप मेरी तनिक भी चिन्ता न करें. . .[2]

[गुजरातीसे]

बापूनो प्रसादी

४७. भेंट : जेलमें[3]

साबरमती जेल

१४ मार्च, १९२२

अहमदाबादकी मिलोंसे चन्देके रूपमें तिलक स्वराज्य-कोषके लिए लगभग तीन लाख रुपयेका जो चन्दा प्राप्त हुआ है उसके सम्बन्धमें लम्बी बातचीत हुई। श्री गांधीने आग्रह किया कि यह सारीकी-सारी रकम गुजरात प्रान्तीय कांग्रेस कमेटीको यह कहकर दी जाये कि वह इस पूरी रकमको या उसके कुछ अंशको राष्ट्रीय शिक्षापर व्यय करे। . . . यह बातचीत देरतक चली। उसके बाद सर्वसम्मतिसे यह निश्चित किया गया कि कोष-समिति अहमदाबादके मजदूर संघोंको प्रतिवर्ष

१. रेवाशंकर जगजीवन झवेरी, गांधीजीके मित्र और डा० प्राणजीवन मेहताके भाई।

२. साधन-सूत्रमें आगेके शब्द छोड़ दिये गये हैं।

३. अहमदाबादकी मिलों द्वारा संगठित तिलक स्वराज्य-कोष समितिके सदस्य श्री गोरधनदास पटेल और सार्वजनिक कार्योंमें दिलचस्पी लेनेवाले अहमदाबादके प्रमुख नागरिकोंने गांधीजीसे साबरमती जेलमें भेंट की थी। उस समय श्री पटेलने निजी तौरसे गांधीजीसे कुछ प्रश्न किये थे। इस भेंटका यह सार एसोसिएटेड प्रेस द्वारा प्रसारित किया गया था।

उतना रुपया दे जितना प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी मजदूरोंके मदरसोंके लिए मंजूर करे। मजदूर संघ मिल-मालिकोंकी कोष-समितिको खर्चका पूरा ब्योरा भेजते रहेंगे और कोष-समितिसे रकम लेते रहेंगे।

यह मामला तय हो जानेके बाद श्री गोरधनदास पटेलने गांधीजीसे कुछ प्रश्न किये।

प्रश्न: यदि आपको सजा हो जाती है तो क्या इससे असहयोग आन्दोलनको धक्का पहुँचेगा?

उ०: "यदि" शब्द अनुपयुक्त है। दण्ड जितना ही कठोर होगा असहयोग आन्दोलन उतना ही मजबूत होगा। मेरा यह दृढ़ विश्वास है।

यदि आपको सजा हो जानेके बाद सरकार दमनकी कड़ी कार्रवाई करे तो क्या कोई जिला या परगना सामूहिक सविनय अवज्ञा शुरू कर सकता है?

कदापि नहीं। मैं यह निश्चित सलाह देता हूँ कि सरकार दमनकी चाहे जितनी कड़ी कार्रवाई करे लोगोंको किसी भी अवस्थामें किसी भी तरहकी सामूहिक सविनय अवज्ञा न करनी चाहिए।

अब देशका अगला कदम क्या होना चाहिए?

देशका सबसे पहला कर्त्तव्य अहिंसाका पूर्ण रूपसे पालन करना है। लोगोंके विभिन्न वर्गोंमें आपसी दुर्भाव और घृणाकी जड़ें इतनी मजबूत हो गई हैं कि उन्हें नष्ट करनेकी दिशामें निरन्तर प्रयत्न करना निहायत जरूरी है। इस काममें असहयोगियोंको आगे आना चाहिए; क्योंकि वे लोग खासी बड़ी संख्यामें हैं। असहयोगियोंमें सहिष्णुता, सौजन्य और क्षमाशीलताकी बहुत कमी है। मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि विजय-प्राप्तिमें जो विलम्ब हो रहा है उसका एकमात्र कारण यही है। मेरा यह भी दृढ़ मत है कि वांछित शान्ति, सौजन्य और अन्य गुणोंको प्राप्त करनेका अत्यन्त सशक्त शस्त्र चरखा है। इसलिए लोगोंसे मेरा कहना केवल इतना ही है कि वे तुरन्त ही चरखा चलाने और उसके कते सूतसे खद्दर तैयार करनेमें जुट जायें। हम ज्यों ही विलायती कपड़ेका पूरा बहिष्कार कर लेंगे और हाथके कते सूतसे हाथकरघेपर बुने खद्दरका व्यवहार करने लगेंगे त्यों ही स्वराज्य प्राप्त हो जायेगा। उसके परिणामस्वरूप जेलोंके फाटक अपने-आप खुल जायेंगे और मैं तथा मेरे सहयोगी रिहा कर दिये जायेंगे। मैं उत्सुकतासे उस शुभ अवसरकी प्रतीक्षा कर रहा हूँ।

अली-भाइयोंके खिलाफ सर विलियम विन्सेंटने[1] जो विचार व्यक्त किये हैं उनके बारेमें आपकी क्या राय है?

उनमें कोई नई बात तो है नहीं। अली-भाई जिस बातको सत्य मानते हैं उसे उन्होंने स्पष्ट शब्दोंमें कहा है और उनका सबसे बड़ा अपराध यही माना जाता है। मैं भी तो उसी प्रकारके अपराध कर रहा हूँ। मैं इसी कारण इन दोनों भाइयोंको अपना सगा भाई मानता हूँ।

१. वाइसरायकी कार्यकारिणी कौंसिलके सदस्य।

क्या श्री मॉन्टेग्युके इस्तीफेके फलस्वरूप भारतको कुछ नुकसान उठाना पड़ेगा?

मेरा विश्वास है कि नुकसान कदापि नहीं होगा। परन्तु श्री मॉन्टेग्युने जो-कुछ किया है वे निश्चय ही उसके लिए हमारी प्रशंसाके पात्र हैं।

क्या वर्तमान समयमें इंग्लैंड तथा भारतकी राजनैतिक स्थितियोंमें कोई तर्क-सिद्ध सम्बन्ध है?

हाँ, ऐसा सम्बन्ध जरूर है। यदि मैंने भारतके लिए जो कार्यक्रम निर्धारित किया है उसे सफलतापूर्वक निभाया गया तो न सिर्फ इंग्लैंडकी राजनैतिक स्थितिपर ही उसका अच्छा प्रभाव पड़ेगा, बल्कि समस्त संसारकी राजनैतिक स्थितिपर अच्छा प्रभाव पड़ेगा।

पेरिसमें जो सम्मेलन होने जा रहा है, उसके बारेमें आपका क्या खयाल है?

इस समय तो मुझे इस सम्मेलनसे कोई विशेष आशा नहीं है, क्योंकि मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि जबतक भारत चरखेके चमत्कारको पूर्ण रूपसे प्रदर्शित नहीं कर देता तबतक खिलाफतका मसला मुनासिब ढंगसे हल नहीं हो सकता।

आपकी अनुपस्थितिमें यहाँके मिल-मालिकों तथा मिल-मजदूरोंके बीच सौहार्दपूर्ण सम्बन्ध कायम रखनेके सम्बन्धमें आप क्या निर्देश देते हैं?

अनसूयाबहनपर[1] पूरा भरोसा करो।

आप अहमदाबादके निवासियोंके लिए क्या सन्देश देना चाहते हैं?

अहमदाबादके लोगोंको चाहिए कि वे खद्दर अपनायें, आपसमें पूर्ण एकता रखें और वर्तमान आन्दोलनका समर्थन करें।

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे क्रॉनिकल, १८-३-१९२२

४८. पत्र : जमनालाल बजाजको

गुरुवार रात्रि [१६ मार्च, १९२२]

चि० जमनालाल,

जैसे-जैसे मैं सत्यकी शोध करता हूँ, मुझे प्रतीत होता जाता है कि सब-कुछ उसीमें आ जाता है। प्रायः यह प्रतीत होता रहता है कि अहिंसामें वह नहीं है, परन्तु उसमें अहिंसा है। निर्मल अन्तःकरणको जिस समय जो प्रतीत हो वह सत्य है। उस-पर दृढ़ रहनेसे शुद्ध सत्यकी प्राप्ति हो जाती है। इसमें मुझे कहीं धर्म-संकट भी मालूम नहीं होता। लेकिन अहिंसा किसे कहें इसका निर्णय करनेमें प्रायः कठिनाईका अनुभव होता है। जन्तुनाशक पानीका उपयोग भी हिंसा है; पर हमें हिंसामय जगत्में अहिंसामय बनकर रहना है और ऐसा तो सत्यपर दृढ़ रहनेसे ही हो सकता है। इसलिए मैं तो

१. अहमदाबादकी सामाजिक कार्यकर्त्री तथा वहाँके मजदूरोंकी नेता।

सत्यमें से अहिंसाको फलित कर सकता हूँ। सत्यमें से प्रेमकी प्राप्ति होती है। सत्यमें से मृदुता मिलती है। सत्यवादी सत्याग्रहीको एकदम नम्र होना चाहिए। जैसे-जैसे उसका सत्य बढ़ता है वैसे-वैसे वह नम्र बनता जायेगा। प्रतिक्षण मैं इसका अनुभव कर रहा हूँ। इस समय सत्यका मुझे जितना खयाल है, उतना एक वर्ष पहले न था, और इस समय मैं अपनी अल्पताको जितना अनुभव कर रहा हूँ, उतना एक साल पहले नहीं कर पाता था।

मुझे "ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या" के चमत्कारका दिनोंदिन अधिकाधिक दर्शन होता जा रहा है। इसलिए हमें हमेशा धीरज रखना चाहिए। धैर्य-पालनसे हमारे भीतरकी कठोरता समाप्त हो जायेगी। कठोरताके न रहनेपर हममें सहिष्णुता बढ़ेगी। अपने दोष पहाड़ जितने बड़े प्रतीत होंगे, और संसारके राई-जैसे। शरीरकी स्थिति अहंकारके आधारपर ही सम्भव होती है। शरीरका आत्यन्तिक नाश मोक्ष है। जिसके अहंकारका सर्वथा नाश हुआ है वह मूर्तिमन्त सत्य बन जाता है। उसे ब्रह्म कहनेमें भी कोई बाधा नहीं हो सकती। इसीलिए परमेश्वरका प्यारा नाम तो दासानुदास है।

स्त्री, पुत्र, मित्र, परिग्रह सब-कुछ सत्यके अधीन रहना चाहिए। सत्यकी शोध करते हुए इन सबका त्याग करनेको तत्पर रहें तभी सत्याग्रही बना जा सकता है। इस धर्मका पालन अपेक्षाकृत सहज हो जाये, इस हेतु मैं इस प्रवृत्तिमें पड़ा हूँ, और तुम्हारे समान लोगोंको होमनेमें भी नहीं झिझकता। इसका बाह्य स्वरूप हिन्द स्वराज्य है। और हिन्द स्वराज्यका सच्चा स्वरूप तो व्यक्ति-व्यक्तिका स्वराज्य है। अभीतक एक भी ऐसा शुद्ध सत्याग्रही उत्पन्न नहीं हुआ है, इसी कारण यह देर हो रही है। किन्तु इसमें घबरानेकी कोई बात नहीं है। इससे इतना ही सिद्ध होता है कि हमें और भी अधिक प्रयत्न करना चाहिए।

तुम पाँचवें पुत्र तो बने ही हो। किन्तु मैं योग्य पिता बननेका प्रयत्न कर रहा हूँ। दत्तक लेनेवालेका दायित्व कोई साधारण नहीं है। ईश्वर मेरी सहायता करे और मैं इसी जन्ममें उसके योग्य बनूँ।[१]

बापूके आशीर्वाद

मूल गुजराती पत्र (जी० एन० २८४३) की फोटो-नकलसे।

१. पत्रपर जेल अधिकारी की सही और १७ मार्चकी तारीख पड़ी है। गांधीजीने यह पत्र विचाराधीन (अन्डर ट्रायल) कैदीकी हालतमें साबरमती जेलसे लिखा था।

४९. पत्र : सी० एफ० एन्ड्रयूजको[1]

साबरमती जेल
१७ मार्च, १९२२

प्रिय चार्ली,

तुम्हारा पत्र मुझे अभी-अभी मिला। तुम अपना काम छोड़कर यहां नहीं आये, यह ठीक ही किया। गुरुदेवके पास तो तुम जरूर जाना और जबतक उन्हें तुम्हारी आवश्यकता हो उनके पास बने रहना। समय मिलनेपर यदि तुम आश्रम (साबरमती) जाकर कुछ दिन रहो, तो मुझे सचमुच अच्छा लगेगा। मैं यह नहीं चाहता कि तुम जेलमें मुझसे मिलने आओ। मैं यहां बहुत ही मजेमें हूं। जेल-जीवनका मेरा आदर्श, और खासकर सत्याग्रहीकी हैसियतसे तो यही है कि मैं बाहरी संसारसे किसी तरहका सम्बन्ध न रखूं। बाहरी आदमियोंसे मिलनेकी इजाजत होना एक प्रकारकी रियायत है। इन रियायतोंका त्याग करनेसे तो जेल-जीवनका धार्मिक महत्त्व और भी बढ़ जाता है। मुझे जो सज़ा मिलनेवाली है, वह मेरी नजरमें राजनीतिक लाभकी बजाय धार्मिक लाभ ही अधिक है। और अगर इसे लाभ न कहकर त्याग कहा जाये तो मैं चाहता हूं कि वह शुद्धसे-शुद्ध ही हो।

सस्नेह,

तुम्हारा,
मोहन

अंग्रेजी पत्र (जी० एन० १३०७) की फोटो-नकलसे।

१. यह पत्र सी० एफ० एन्ड्रयूजके उस पत्रके उत्तरमें भेजा गया था जिसमें उन्होंने रेलवे हड़तालके कारण अपना काम छोड़कर मुकदमेके फैसलेसे पहले गांधीजीके पास न पहुँच पानेकी अपनी असमर्थतापर खेद प्रकट किया था।

५०. पत्र : एक बालिका-मित्रको[1]

साबरमती जेल
१७ मार्च, १९२२

रानी बिटिया,

मेरा खयाल है कि तुम सब मेरी गिरफ्तारीकी खबर पाकर प्रसन्न हुए होगे। इससे मुझे भी बहुत प्रसन्नता हुई है, क्योंकि गिरफ्तारी उस समय हुई जब मैं बारडोलीकी तपश्चर्या पूरी करके शुद्ध हो चुका था और खादी-उत्पादन अर्थात् सूत कताईके गौरव-पूर्ण कार्यको छोड़कर किसी अन्य प्रयोगपर अपना ध्यान केन्द्रित नहीं कर रहा था। मैं चाहता हूँ कि तुम चरखेके अन्दर छिपे रहस्यको समझो। मानव-समाजके कल्याणकी आन्तरिक भावनाकी बाह्य, दृश्य अभिव्यक्ति केवल चरखा ही है। यदि क्षुधापीड़ित लाखों भारतवासियोंके लिए हमारे दिलोंमें सहानुभूति है, तो हमें अवश्य ही उनके घरोंमें चरखा चलवाना चाहिए। इसलिए हमें चरखेसे सूत कातनेमें विशेषज्ञ बनना चाहिए और लोगोंकी सूत कातनेकी आवश्यकता समझानेके उद्देश्यसे स्वयं नित्य एक धार्मिक कृत्य समझकर चरखा चलाना चाहिए। यदि तुम चरखेके रहस्य और सत्यको समझ गई हो और यदि तुम्हारे दिलमें यह बात बैठ गई है कि चरखा मानवजातिके प्रति प्रेमका प्रतीक है तो तुम किसी अन्य बाहरी प्रवृत्तिमें हाथ न डालोगी। यदि बहुतसे लोग तुम्हारा अनुकरण न करें, तो तुम्हें सूत कातने, रुई धुनने और कपड़े बुननेके लिए अधिक अवकाश मिलेगा।

तुम सब मेरे प्यार लो।

बापू

[अंग्रेजीसे]
स्पीचेज ऐंड राइटिंग्स ऑफ एम० के० गांधी

१. साधन-सूत्रमें पत्र जिसे लिखा गया था उसके नामका कोई उल्लेख नहीं है। अंग्रेजी पत्रमें "माई डियर चाइल्ड" सम्बोधनका प्रयोग हुआ है; इस सम्बोधनका प्रयोग एस्थर मेननको लिखे गये पत्रोंमें प्राप्त होता है। अतः सम्भव है कि यह पत्र भी उन्हें ही लिखा गया हो।

५१. पत्र : महादेव देसाईको

साबरमती जेल
मौनवार [१७ मार्च, १९२२][1]

चि० महादेव,

शायद बहुत दिनोंतक मेरा यह पत्र आखिरी पत्र ही रहे। तुम यही समझना कि तुम वहाँ सेवा कर रहे हो और मेरी सच्ची सेवा यहाँ शुरू हो रही है। मन, वचन और कर्मसे नियमोंके पालनका आग्रह रखूंगा और राग-द्वेष आदिको दूर करनेका भारी प्रयत्न करूँगा। और यदि मैं जेलमें सचमुच अधिक निर्मल होता गया तो उसका प्रभाव बाहर भी पड़े बिना न रहेगा। मेरी शान्तिकी तो आज भी सीमा नहीं रह गई है। पर जब सजा हो जायेगी और लोगोंका आना-जाना बन्द हो जायेगा तब शान्तिकी मात्रा और भी बढ़ जायेगी।

एक सवाल यहाँ उठ सकता है। यदि इस प्रकार अधिक सेवा हो सकती हो तो कहीं जंगलमें जाकर क्यों न बैठ जाना चाहिए? उसका जवाब सीधा है। जंगलमें जाकर बैठना एक प्रकारका मोह है; क्योंकि इसके मूलमें इच्छा है। क्षत्रियके लिए तो वही धर्म है जो अपने-आप सहज प्राप्त हो जाये। जेलमें सहज ही प्राप्त होनेवाली शान्तिसे फायदा हो सकता है। ईश्वरका कैसा चमत्कार है? बारडोलीमें पूरी तरह अपनी शुद्धि की, दिल्लीमें किसी प्रकारका मैल न चढ़ने दिया और फिर उसी बातको लोगोंको पसन्द आने लायक भाषामें प्रकट करके अपनी और अधिक शुद्धि की। क्योंकि दृढ़ताके साथ-साथ उसमें मैंने कोमलताका परिचय दिया। उसके बाद भी 'यंग इंडिया' और 'नवजीवन' द्वारा शुद्धि ही की। 'अहिंसा'[2] और 'ताण्डव'[3] शीर्षक लेख लिखे। इस प्रकार अधिकाधिक शुद्धिके समय, 'वैष्णव जन' गाते हुए गिरफ्तार होनेके लिए चला गया। यदि इसमें अच्छाई नहीं है तो किसमें हो सकती है?

अब तो मैं यह चाह रहा हूँ कि अब कोई जान-बूझकर जेलमें न आये।

अपने शिक्षक ख्वाजा साहब[4] और मित्र जोजेफ[5] तथा अन्य लोगोंके लिए इस पत्रका अनुवाद कर देना।

यह तो सपनेमें भी नहीं सोचा था कि शंकरलाल मेरे साथ पकड़े जायेंगे। परन्तु ईश्वर सब-कुछ कर सकता है।

बापूके आशीर्वाद

मूल गुजराती पत्र (एस० एन० ७९९७) की फोटो-नकलसे।

१. पत्रपर यह तारीख महादेव देसाई द्वारा डाली गई है।

२ व ३. देखिए पृष्ठ २३-२७ और ५७-५९।

४. ख्वाजा अब्दुल मजीद महादेव देसाईके साथ नैनी जेलमें थे और उन्हें उर्दू पढ़ाते थे।

५. मदुराके जॉर्ज जोजेफ, महादेव देसाईके साथ इंडिपेंडेंट पत्रमें काम करते थे और इस समय उन्हींके साथ नैनी जेलमें थे।

५२. पत्र : मणिलाल गांधीको

साबरमती जेल
१७ मार्च, १९२२

चि० मणिलाल[1],

कल सजा दे दी जायेगी। उसके बाद पत्र लिखनेकी मेरी बहुत कम इच्छा होगी।

तुम अपने शरीरकी तरफसे सावधान रहकर कहीं भी अच्छा काम करो तो मुझे सन्तोष ही रहेगा। मेरे जेलमें रहते हुए तुम्हारा यहाँ आना जरूरी नहीं है। अब चूँकि तुमने आई० ओ०[2] को अपना ही बना लिया है, इसलिए उसके अच्छी तरह चल निकलनेपर ही तुम यहाँ आ सकते हो, ऐसा मेरा खयाल है। यहाँसे तुम्हारे पास किसीको भेजना सम्भव दिखाई नहीं पड़ता। अच्छे आदमियोंकी ज्यादातर यहाँ जरूरत है।

जान पड़ता है कि तुमने अभीतक वहाँका हिसाब नहीं भेजा। न भेजा हो तो भेज देना।

इमाम साहबकी[3] पत्नी हाजी साहिबा पोरबन्दर पहुँचते-पहुँचते एकाएक दिलका दौरा होनेसे नहीं रहीं। इमाम साहब दुःखमें डूब गये हैं। कल वे मुझसे मिलकर गये।

अब तुम्हारी अपनी बात। नायडू और रामदास[4], दोनोंका कहना है कि मैं तुम्हारी शादीकी बाबत तुम्हें लिखूँ। उनका खयाल है कि भीतर-ही-भीतर तुम विवाहकी इच्छा करते हो, किन्तु जबतक मैं तुम्हें बन्धन-मुक्त नहीं करता, तुम विवाह नहीं करोगे। मैं तुम्हें अपने बंधनमें मानता ही नहीं। यही ठीक जान पड़ता है कि सभीकी आत्मा अपने-अपने बन्धनमें रहे। हम ही अपने मित्र या शत्रु हैं।

बन्धन तुम्हींने स्वीकार किया है और उससे मुक्ति भी तुम्हीं पा सकते हो।

मेरी ऐसी धारणा है कि हमें जो शान्ति मिल सकती है, वह हमारे अपने द्वारा लगाये गये बन्धनोंके माध्यमसे ही मिल सकती है। यही मानना चाहिए। तुम जबतक विवाहकी बात नहीं सोचते, तबतक तुम स्वयंकृत पापोंसे मुक्त हो। तुम्हारा यह प्रायश्चित्त तुम्हें पवित्र बनाये हुए है। तुम दुनियाके सामने मनुष्यके रूपमें खड़े रह सकते हो। जिस रोज तुम शादी कर लोगे, उसी दिन तुम्हारा तेज घट जायेगा। उसमें तो सुख है ही नहीं, यह मुझसे जान लो। इसमें सन्देह नहीं कि जिस हदतक बा मेरी सुहृद है, उस हदतक मुझे सुख है। किन्तु ऐसा सुख तो मुझे तुम सभी लोगों और उन बहुत-से स्त्री तथा पुरुषोंसे मिल जाता है जो मुझसे स्नेह करते हैं या मेरी सेवा करते हैं। मुझे अधिक सुख तो उन स्त्रियों या पुरुषोंसे होता है जो मुझे

१. गांधीजीके मँझले पुत्र जो उस समय दक्षिण आफ्रिकामें थे।
२. **इंडियन ओपिनियन**, दक्षिण आफ्रिकासे प्रकाशित होनेवाला गांधीजीका साप्ताहिक पत्र।
३. इमाम हसन।
४. गांधीजीके तीसरे पुत्र।

अच्छी तरह समझते हैं। यदि मैं आज भी वाके प्रति मोहित होकर विषय-सुखमें पड़ जाऊँ तो तत्काल गिर जाऊँगा। मेरा काम अधूरा रह जायेगा और एक व्यक्ति द्वारा स्वराज्य प्राप्त करनेकी अपनी शक्ति मैं एक क्षणमें खो बैठूंगा। वाके साथ मेरा आजका सम्बन्ध भाई और बहनका सम्बन्ध है और उसीके कारण मेरी शोभा है।

तुम्हें ऐसा बिलकुल नहीं सोचना चाहिए कि जब मैं भरपूर विलास कर चुका, तब यह विचार मुझे मिला। मैं तो केवल संसारको जिस रूपमें मैंने देखा है, उसी रूपमें तुम्हारे सामने चित्रित कर रहा हूँ। स्त्री-पुरुष संभोगसे अधिक घिनौनी किसी क्रियाकी मैं कल्पना भी नहीं कर सकता। वह सन्तानोत्पत्तिका कारण बन जाती है, यह तो ईश्वरकी लीला है। किन्तु सन्तानोत्पत्ति कोई कर्त्तव्य है अथवा यदि सन्तानोत्पत्ति न हो तो जगत्‌की कोई हानि हो जायेगी, ऐसा मैं बिलकुल नहीं मानता। क्षण-भरके लिए मान लें कि उत्पत्ति-मात्र बन्द हो गई, तो फिर सारा विनाश भी समाप्त हो जायेगा। जन्म-मरणके चक्करसे मुक्त हो जाना ही तो मोक्ष है। यही परम सुख माना गया है और यह बिलकुल उचित ही है।

यह तो मुझे दृष्टिगोचर होता ही रहता है कि शरीरके सारे सुख मलिन हैं। हमने इस मलिनताको ही सुख मान लिया है। ऐसी ही है ईश्वरकी गहन गति। किन्तु इस मोहसे निकल आनेमें ही हमारा पुरुषार्थ है।

यह सब लिख चुकनेके बाद मैं तुम्हें स्वतन्त्र ही मानता हूँ। मैंने मित्र-भावसे सलाह ही दी है। मैंने तुम्हें पिताकी हैसियतसे आज्ञा नहीं दी। मैं आदेश तो इतना ही देता हूँ कि "अच्छे बनो"। किन्तु करना तुम अपने विचारके अनुसार, मेरी इच्छाके अनुसार नहीं। यदि तुम बिना विवाहके नहीं रह सकते तो अवश्य विवाह करनेके विषयमें सोचना।

तुम अपने हृदयके उद्गार विस्तारके साथ लिख भेजो।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च :]

वहाँ मेरे लिखे हुए कागज, चिट्ठियाँ और कतरनें तथा किताबें आदि जो हों, वे सब यहाँ भेज दोगे तो अच्छा रहेगा। ऐसी किताबें भी जो तुम्हें वहाँ उपयोगी लगें, भेज देना।

मूल गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ११११६) से।
सौजन्य : सुशीलाबहन गांधी

५३. पत्र : किशोरलाल मशरूवालाको

साबरमती जेल
शुक्रवार [१७ मार्च, १९२२][1]

भाईश्री किशोरलाल,

तुम्हारी याद हमेशा करता था। मिल सका होता तो अच्छा होता। किन्तु तुम्हारा पत्र भी पर्याप्त है। तुमने मुझसे मिलनेके लिए आनेका विचार छोड़ दिया, यही ठीक है। आनेसे कोई विशेष लाभ न होता और उसके कारण तुम्हारी साधनामें[2] जो बाधा पड़ती, वह एक स्पष्ट नुकसान था।

तुम्हारा प्रयत्न शुद्ध है इसलिए सफल होगा ही। कोई भी शुभ प्रयत्न व्यर्थ तो जाता ही नहीं।

मुझे अभी सजा नहीं हुई है। उसका निर्णय तो सम्भवतः कल होगा। अभी तो कच्ची जेल है। मेरा मन बिलकुल शान्त है। साथमें शंकरलाल बैंकर भी हैं।

मेरे आशीर्वाद तो तुम सबको हैं ही। वहाँसे जानेकी उतावली न करना। किन्तु अन्तरात्मा जिस समय कहे कि चल ही देना चाहिए उस समय जरूर चले जाना।

बापूके आशीर्वाद

[गुजरातीसे]
श्रेयार्थीनी साधना

५४. पत्र : बी० एफ० भरूचाको[3]

[साबरमती जेल
१८ मार्च, १९२२ के पूर्व]

भला मैं आपको पत्र लिखना कैसे भूल सकता हूँ? कृपया मेरे पारसी भाई-बहनोंसे कहिए कि वे इस आन्दोलनके प्रति अपनी आस्था कदापि डिगने न दें। मुझे उनपर जो भरोसा है, मेरे लिए उसे त्यागना असम्भव है। मेरे सामने खादी और चरखा, चरखा और खादी — इसके सिवा कोई कार्यक्रम नहीं है। हाथके सूतका चलन हमारे बीच पैसे-धेलेकी तरह हो जाना चाहिए। इस उद्देश्यकी पूर्तिके लिए

१. गांधीजीको शनिवार, १८ मार्च, १९२२ को सजा सुनाई गई थी। यह उसके एक दिन पहले लिखा गया था।

२. किशोरलाल मशरूवाला चिन्तनके लिए एक झोंपड़ीमें रहने लगे थे।

३. गांधीजीने श्री बी० एफ० भरूचाके नाम यह पत्र मुकदमेकी सुनवाई होनेसे पूर्व १८ मार्चको भेजा था।

हम हाथ-कती और हाथ-बुनी खादीके सिवा कोई दूसरा कपड़ा पहन ही नहीं सकते। जबतक भारत इतना नहीं कर लेता, सविनय अवज्ञा व्यर्थ और स्वराज्य अप्राप्य हो जायेगा तथा खिलाफत व पंजाबके प्रति अन्यायोंका प्रतिकार कराना असम्भव होगा। यदि यह विश्वास आपके हृदयमें बैठ गया है, तो सूत कातते रहें और खद्दरका प्रयोग जारी रखें। कताईमें खूब कुशल बनें।

मोहनदासके वन्देमातरम्

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, ३०-३-१९२२

५५. भेंट : 'मैनचेस्टर गार्जियन' के प्रतिनिधिसे

साबरमती जेल
[१८ मार्च, १९२२ के पूर्व][1]

. . .अब हम दोनोंके बीच असहयोगके विषयमें बातचीत चली। मैंने गांधीजीसे पूछा कि करके पैसेकी घटनाके सम्बन्धमें ईसा मसीहने जो उत्तर दिया था उसको ध्यानमें रखते हुए क्या आपका खयाल यह नहीं है कि असहयोगकी नीति ईसा मसीहके उपदेशोंके प्रतिकूल है?

उन्होंने उत्तर दिया :

चूंकि मैं ईसाई नहीं हूँ इसलिए ईसाई धर्मके सिद्धान्तोंके आधारपर अपने कामोंका औचित्य आँकनेको बाध्य नहीं हूँ। परन्तु वस्तुतः मेरे खयालसे इस मामलेके सम्बन्धमें कहीं भी ऐसा संकेत नहीं मिलता कि ईसा मसीह असहयोगके सिद्धान्तके विरुद्ध थे। मेरे खयालमें तो उनके शब्दोंसे यही प्रकट होता है कि वे उसके पक्षमें थे।

मैंने इसपर आपत्ति करते हुए कहा, "आपकी बात मेरी समझमें नहीं आई।" निश्चय ही इसका अर्थ तो बिलकुल स्पष्ट है। "जो चीजें सीजरकी हैं उन्हें सीजरको दो" इस वाक्यका अर्थ यही तो है कि जो-कुछ सरकारी अधिकारियोंको देय हो वह उनको देना हमारा कर्त्तव्य है। यदि इसका अर्थ यह नहीं है तो और क्या है?

श्री गांधीने कहा :

ईसा मसीह कभी किसी प्रश्नका उत्तर सीधे शब्दोंमें या सीधे-सादे ढंगसे नहीं देते थे; उनके शब्दोंका अभिधार्थ इष्ट नहीं है। उनके उत्तर आशासे अधिक व्यापक होते थे, उनमें बहुत गहराई होती थी, और उनके पीछे कोई व्यापक सिद्धान्त रहता था। प्रस्तुत उत्तरमें भी ऐसी ही बात है। यहाँ उनका आशय यह कदापि नहीं है

१. यह भेंट १८ मार्च, १९२२ से पहले हुई होगी। १८ मार्चको उनके मुकदमेकी सुनवाई हुई थी और उनको सजा सुनाई गई थी; देखिए "ऐतिहासिक मुकदमा", १८-३-१९२२ ।

कि आप कर जरूर अदा करें या न करें। उनके कथनका अभिप्राय इससे कहीं विशेष है। जब वे यह कहते हैं कि "जो चीजें सीजरकी हैं उन्हें वापस सीजरको दे दो" तब वे एक विधिकी व्याख्या करते हैं।

इतना कहकर महात्माजीने अपना हाथ कुछ इस तरह हिलाया मानो वे कुछ अपनी ओरसे कह रहे हैं। उन्होंने कहा :

इसका मतलब तो यही है कि "जो-कुछ सीजरका है वह उसे वापस दे दो अर्थात् मेरा उससे कोई सरोकार नहीं है।" ईसा मसीहने इस घटनामें उसी महान् नियमको प्रतिपादित किया है जिसपर उन्होंने जीवन-भर आचरण किया था और वह था बुराईसे असहयोग करना। जब शैतानने उनसे कहा "मेरे सामने झुको और मुझे पूजो" अर्थात् मुझसे सहयोग करो, तब उन्होंने कहा, "शैतान! मेरी आँखोंके सामनेसे हट जा।" जब ईसाको लोगोंकी उस भीड़ने जो उन्हें घेरे रहती थी, जबरदस्ती ले जाना चाहा और अपना सैनिक शासक बनाना चाहा तब उन्होंने उन लोगोंसे सहयोग करनेसे इनकार कर दिया क्योंकि उनका तरीका बुराईका था और वे चाहते थे कि ईसा मसीह बल-प्रयोगका आश्रय लें। अधिकारियोंके प्रति ईसाका रुख अवज्ञापूर्ण था। जब पिलेटने ईसासे पूछा, क्या आप राजा हैं, तब उन्होंने कहा था, "यह तो तुम कहते हो।" क्या उनके इस व्यवहारसे अधिकारियोंके प्रति अवज्ञा व्यक्त नहीं होती? उन्होंने हैरोदके सम्बन्धमें कहा था — "वह लोमड़ी"। क्या इससे अधिकारियोंके प्रति सहयोग झलकता है? उन्होंने हैरोदके सामने उत्तरमें एक शब्द भी नहीं कहा। संक्षेपमें यही कहा जा सकता है कि उन्होंने हैरोदके साथ सहयोग करनेसे इनकार कर दिया था। उसी प्रकार मैं भी ब्रिटिश सरकारसे सहयोग करनेसे इनकार करता हूँ।

मैंने कहा, "परन्तु इस सदोष संसारमें हमारा यह कर्त्तव्य है कि हम व्यक्तियों तथा संस्थाओंमें जो-कुछ भी अच्छाई हो उससे सहयोग करें।" महात्माजीने कहा :

मैं व्यक्तिके रूपमें लॉर्ड रीडिंगसे अवश्य सहयोग करूँगा। परन्तु मैं वाइसरायके रूपमें उनसे सहयोग नहीं कर सकता क्योंकि वे इस रूपमें एक भ्रष्ट सरकारके अंग है।

मैंने फिर आपत्ति करते हुए कहा : "यदि यह मान भी लें कि सरकारने गलतियाँ की हैं, फिर भी आप निश्चय ही यह नहीं कह सकते कि यह सरकार बिलकुल बुरी है। यदि जहाँ-तहाँ अन्याय हुआ भी हो तो भी यह तो एक मोटा तथ्य है कि उसने ३० करोड़ भारतवासियोंको कानून और व्यवस्थाकी स्थितिमें रखा, है। क्या आप सामान्यतः सभी शासन-तन्त्रोंके खिलाफ हैं? क्या आप इस भूमण्डलपर ऐसा एक भी शासन-तन्त्र बता सकते हैं जो दोषोंसे मुक्त हो और जो आपको सन्तोष दे सके।"

हाँ, हाँ, जरूर! डेन्मार्कके शासन-तन्त्रको ही देखें। मुझे ऐसी सरकारसे सन्तोष मिल सकता है। वह लोगोंका प्रतिनिधित्व करता है। वह किसी पराजित राष्ट्रका शोषण नहीं करता। उसमें कार्य-कुशलता है, उसमें लोग सुसंस्कृत, बुद्धिमान, वीर, सन्तुष्ट और सुखी हैं। उसे दूसरोंको अपने साम्राज्यमें बनाये रखनेके लिए कोई बड़ी सेना और नौसेना नहीं रखनी पड़ती।

मैंने कहा, "परन्तु क्या आपका खयाल है कि साम्राज्योंमें स्वभावतः खराबी ही होती है। निश्चय ही रोम-साम्राज्यसे सभ्यताको लाभ पहुँचा है। जहाँतक हमें मालूम है, ईसा मसीहने उसके खिलाफ कभी एक भी शब्द नहीं कहा।"

गांधीजीने उत्तर दिया:

आप बिलकुल ठीक कहते हैं। परन्तु साम्राज्यवादकी निन्दा करना ईसा मसीह-का काम ही नहीं था। प्रत्येक महान् सुधारकको अपने युगके दोष-विशेषके विरुद्ध संघर्ष करना होता है। ईसा, मुहम्मद, बुद्ध और कुछ हदतक लूथर, सभीको अपने-अपने युगकी बुराइयों और कठिनाइयोंसे जूझना पड़ा था। हमें भी वही करना पड़ रहा है। हमारे जमानेका जबरदस्त शैतान साम्राज्यवाद है।

मैंने पूछा, "इसका मतलब यह हुआ कि आप साम्राज्यको समाप्त करनेपर तुले हैं?"

उन्होंने उत्तर दिया:

मैं इस बातको इस रूपमें नहीं कहना चाहता। मैं तो साम्राज्यका अन्त राष्ट्र-मण्डलकी स्थापनाके द्वारा करना चाहता हूँ। मेरी इच्छा इंग्लैंडसे भारतका पूर्ण सम्बन्ध-विच्छेद करनेकी नहीं है और हमें ऐसी इच्छा करनेका हक भी नहीं है।

"भारत जिस राष्ट्र-मण्डलका अंग होगा आप उसकी क्या व्याख्या करते हैं और उसकी रचना कैसी होगी?"

वह राष्ट्र-मण्डल स्वतन्त्र राष्ट्रोंका बना एक भाईचारा (भ्रातृ-संघ) होगा और उसके सदस्य "प्रेमकी रजत-रज्जुओं" से बँधे होंगे। (मेरा खयाल है कि रजत-रज्जु शब्द लॉर्ड सैलिसबरीके हैं।) साम्राज्यके कई अंगोंमें ऐसा भाईचारा इस समय भी मौजूद है। दक्षिण आफ्रिकाको ही देखें। वहाँ कैसे बढ़िया लोग रहते हैं! आस्ट्रेलियाके लोग भी ऐसे ही बढ़िया हैं। न्यूजीलैंड एक भव्य देश है और उसमें भी बढ़िया लोग रहते हैं। मैं यही चाहता हूँ कि भारत इसी प्रकारके भ्रातृ-संघमें अपनी मर्जीसे शरीक हो और जैसे बराबरीके अधिकार राष्ट्र-मण्डलके दूसरे सदस्योंको मिले हुए हैं वैसे ही भारतीयोंको भी मिलें।

"परन्तु निश्चय ही सरकारने भारतके लिए ठीक ऐसा ही उद्देश्य अपने सामने रखा है और वह यह है कि भारतको उत्तरदायित्व सँभालने योग्य होते ही साम्राज्यके अन्तर्गत स्वशासित राज्य बना दिया जाये। क्या मॉन्टेग्यु सुधारोंका कुल मतलब यही नहीं है?"

गांधीजीने अपना सिर हिलाते हुए कहा:

खेद है, इन सुधारोंमें मेरा विश्वास नहीं है। जब वे शुरू-शुरूमें लागू किये गये थे तब मुझे प्रसन्नता हुई थी और मैंने सोचा था, आखिर इस अँधेरेमें प्रकाशकी एक किरण दीख पड़ी। जिस रन्ध्रसे वह प्रवेश कर रही है वह बहुत छोटा है सही, परन्तु मैं आगे बढ़कर उसका स्वागत करूँगा। मैंने सुधारोंका स्वागत किया और अपने देशवासियोंसे इस बातके लिए बहुत संघर्ष किया कि वे इनपर उचित समयतक

अमल करके देखें। मैंने कहा कि ये सुधार इस बातके चिह्न हैं कि सरकार अपनी पिछली भूलोंके लिए सचमुच दुःखी है। जब महायुद्ध शुरू हुआ तब मैं सैनिकोंकी भरतीके लिए सभाओंमें जगह-जगह जाकर भाषण देता था, क्योंकि मेरा खयाल था कि सरकारने हमें जो देनेका वचन दिया है उसे वह सचमुच देना चाहती है। मैंने सोचा कि यह शुरुआत छोटी जरूर है; परन्तु मैं प्रतीक्षा करूँगा और देखूँगा। मैं इस संकीर्ण द्वारके अन्दर घुस सकनेके लिए कुछ दब जाऊँगा, झुक जाऊँगा। परन्तु बादकी घटनाओंसे मेरे विचार बदल गये। उसके बाद ही पंजाबमें अत्याचार किये गये और खिलाफतका मसला उठा, और अन्तमें सरकारने दमनकी कार्रवाइयाँ कीं; और अब तो मैं इन सुधारोंपर विश्वास ही नहीं कर सकता। ये सुधार एक धोखेकी टट्टी थे; ये हमारे कष्टोंको लम्बे समयतक बनाये रखनेके भ्रामक साधन-मात्र थे। इसीलिए तो मैं इस सरकारको राक्षसी कहता हूँ और उससे किसी भी प्रकार सहयोग करनेके लिए तैयार नहीं हूँ।

असहयोगसे बात चलते-चलते बहुत स्वाभाविक ढंगसे विलायती चीजोंके बहिष्कार तथा महान् खादी आन्दोलनपर होने लगी। इस समय महात्माजीका चेहरा चमक उठा, उनकी आँखें उत्साहसे दमकने लगीं।

गांधीजीने कहा:

मेरी जो भी योजनाएँ हैं, कमजोरियाँ या जिद हैं — आप उन्हें चाहे किसी भी नामसे पुकारें — उनमें खादी मुझे सबसे अधिक प्रिय है।

उन्होंने अपने कन्धेपर पड़े, घरके कते सूतके बने मोटे शालको छूते हुए कहा:

यह पवित्र वस्तु है। आप सोचिए कि खादीका अर्थ क्या है। आम अकाल-पीड़ित क्षेत्रोंमें हजारों, लाखों परिवारोंकी कल्पना करें। जब अकाल पड़ता है तब वे मुसीबतमें फँस जाते हैं; वे लाचार हो जाते हैं। वे अपने घरोंमें कुछ नहीं करते — कुछ कर भी नहीं सकते — वे प्रतीक्षा करते रहते हैं और मर जाते हैं। यदि मैं संकटसे घिरे हुए इन घरोंमें चरखेका प्रवेश करा सकूँ तो उन्हें अपने प्राणोंसे हाथ न धोने पड़ेंगे। तब वे खादी तैयार करके उसकी बिक्रीसे इतना धन कमा सकेंगे जिससे उनके दुर्भिक्षके दिन कट जायें।

गांधीजीने अपने शालपर पुनः स्नेहपूर्वक धीमे-धीमे हाथ फेरते हुए कहा:

यह खुरदरा कपड़ा मुझे जापानके नरमसे-नरम रेशमी कपड़ोंसे भी ज्यादा प्यारा और बढिया लगता है। इसके द्वारा मैं अवश्य ही अपने करोड़ों गरीब और भूखे देशवासियोंके अधिक समीप पहुँचा हूँ। आप जो वस्त्र पहने हुए हैं उन्हें देखें। जब आप यह कपड़ा खरीदते हैं तब आप कारीगरोंको एक या दो आने देते हैं परन्तु छः या सात आने पूंजीपतियोंकी जेबमें डालते हैं। अब आप जरा मेरे कपड़ोंकी ओर ध्यान दें। इस कपड़ेपर मैं जो भी पैसा खर्च करता हूँ वह सीधा गरीबोंको, बुनकरोंको, कतैयोंको और धुनियोंको मिलता है। इसमें से एक पैसा भी अमीरोंके हाथमें नहीं पहुँचता। इस बातकी अनुभूतिसे मुझे स्वर्गीय आनन्दका अनुभव होता है। यदि मैं ऐसा कर सकूँ कि भारतके प्रत्येक घरमें चरखा चलवा सकूँ, तो इस जीवनकी मेरी साध

पूरी हो जायेगी; और अपनी दूसरी योजनाएँ, यदि भगवान्‌की कृपा रही तो, मैं अगले जन्ममें पूरी करूँगा।

महात्माजीकी इस अन्तिम बातका अर्थ मेरी समझमें ठीक-ठीक नहीं आया था, इसलिए मैंने उनसे पूछा, "क्या आपका मतलब यह है कि हम लोग मृत्युके पश्चात् इसी भूतलपर फिर जन्म लेंगे?"

उन्होंने उत्तर दिया :

हाँ, मेरा खयाल है कि अगर हम इतने पवित्र नहीं होते कि स्वर्गमें जा सकें तो हम निःसन्देह यहाँ वापस आते हैं। **(गांधीजीने मुस्कराते हुए आगे कहा)** यह वही सिद्धान्त है जिसके बारेमें हम पहले बातचीत कर रहे थे, अर्थात् "सीजरको वे सब चीजें लौटा दो जो सीजरकी हैं।" आत्मा परमात्मामें पूरी तरह लीन हो इससे पूर्व शरीरने पृथ्वीसे जिन चीजोंको लिया है, उन्हें पृथ्वीको वापस दे देना चाहिए अथवा यह कहें कि आत्माको पृथ्वीकी चीजोंसे सहयोग करनेसे इनकार कर देना चाहिए एवं उसे भौतिक इच्छाओं और झंझटोंसे मुक्त हो जाना चाहिए।

"क्या आपका विश्वास है कि पशु-पक्षियोंमें भी आत्मा होती है?"

निश्चय ही उनमें भी आत्मा होती है। उन्हें भी सीजरकी चीजें सीजरको वापस देना सीख लेना चाहिए। यही कारण है कि हम हिन्दू लोग जीवोंकी हत्या नहीं करते; हम उन्हें अपने भाग्यका निर्माण करनेके लिए स्वतन्त्र छोड़ देते हैं।

"तब तो आपका खयाल यह मालूम होता है कि सर्पों, बिच्छुओं और कनखजूरोंको मारना भी अनुचित है?"

उन्होंने कहा :

हाँ, हमारे आश्रममें तो उनकी हत्या कोई कभी नहीं करता। समस्त मानवोंके प्रति प्रेमकी अनुभूति आत्माके विकासकी एक ऊँची अवस्था है, परन्तु प्रत्येक जीवधारीके प्रति प्रेमकी अनुभूति इससे भी अधिक ऊँची अवस्था है। मैं स्वीकार करता हूँ कि अभी मैं उस स्थितितक नहीं पहुँच पाया हूँ। अभी मैं जब इन जीवधारियोंको अपने समीप आता देखता हूँ तब डर जाता हूँ। यदि हम भयसे सर्वथा मुक्त हो जायें तो मेरा खयाल है कि वे हमें नुकसान नहीं पहुँचायेंगे।

(गांधीजीके एक अनुयायीने मुझे एक घटना सुनाई थी; मैं यहाँ उसका उल्लेख कर दूँ। यह उनके आश्रमकी बात है। एक दिन शामकी प्रार्थनाके वक्त अँधेरेमें एक साँप निकल आया और सीधा गांधीजीके पास जाकर उनके सामने अपना फन उठाकर खड़ा हो गया। आश्रमवासी उसे पकड़ने जा रहे थे परन्तु गांधीजीने उन्हें इशारेसे रोककर कहा कि वे किसी तरहकी हलचल न करें। गांधीजी स्वयं निश्चल बैठे रहे और साँप उनके घुटनोंपर से सरकता हुआ बगीचेमें चला गया।)

महात्मा गांधी अभी उसी विषयकी चर्चा कर रहे थे कि पशुओंसे हमारे सम्बन्ध कैसे हों। उन्होंने कहा :

एक बार मेरी मुलाकात एक अंग्रेजसे हुई थी। वह अंग्रेज पशुओंका शल्यचिकित्सक था और पशुओंसे उसका व्यवहार अद्भुत था। हम दोनों किसीके मकानपर गये

थे। एकाएक एक विशालकाय खूँखार कुत्ता हम लोगोंकी ओर झपटा। वह ऐसा लगता था मानो शेर हो। वह लगभग आदमीकी ऊँचाईतक उछला और हम लोगोंपर टूट पड़ा। मैं डरके मारे सकपका गया, परन्तु वह अंग्रेज कुत्तेके झपटनेके साथ ही उसकी ओर बढ़ा और उसे किसी प्रकारके भयके बिना छातीसे लगा लिया। कुत्तेका क्रोध काफूर हो गया और वह दुम हिलाने लगा। मेरे मनपर इस घटनाका बहुत प्रभाव पड़ा। पशुओंके साथ अनाक्रामक रीतिसे व्यवहार करनेका ठीक तरीका यही है।

"परन्तु क्या आप यह नहीं मानते कि मनुष्योंका जीवन पशुओंके जीवनसे अधिक मूल्यवान है? अब आप अपनी ही बात लें। आप एक ऐसे बड़े आन्दोलनके नेता हैं जिसे आप अपने देशके लिए हितकर समझ रहे हैं। मान लीजिए कि आपका सामना एक मगरसे हो जाता है और उससे आप तभी बच सकते हैं जब आप उसको मारें। तब क्या आप यह न सोचेंगे कि एक नेताकी हैसियतसे आपके कर्त्तव्य और दायित्व मगरकी जानसे अधिक महत्त्वपूर्ण हैं?"

गांधीजीने कहा:

नहीं, मैं तो उस मगरसे यह कहूँगा अथवा मुझे उससे यह कहना चाहिए कि "तेरी जरूरत, मेरी जरूरतसे बड़ी है" और उसका भक्ष्य बन जाऊँगा। आप जानते हैं कि हमारे जीवनका अन्त हमारे शरीरके अवसानके साथ नहीं होता। इस सम्बन्धमें सब-कुछ तो ईश्वर ही जानता है। हममें से कोई भी यह नहीं जानता कि मृत्युके बाद क्या होता है। यदि मैं मगरसे बच जाऊँ तो सम्भव है, दूसरे ही क्षण बिजली गिरे और उससे मैं न बचूँ।

मैंने जोर देकर कहा, "परन्तु मगरकी आत्मा हो, तो भी यह तो मानना ही होगा कि मनुष्यकी आत्मा निःसन्देह उससे भिन्न है। आपको याद होगा, चेस्टरटनने इस सम्बन्धमें क्या कहा है, 'जब कोई मनुष्य सोडेके साथ शराबका अपना छठा जाम पी रहा हो और अपने होश-हवास खो रहा हो तो आप उसके पास जाते हैं उसके कन्धेपर हलके हाथसे थपथपाते और कहते हैं, 'इन्सान बनो।' परन्तु जब कोई मगर छठे धर्म-प्रचारकको निगल रहा हो तब आप उसके पास जाकर उसकी पीठपर थपकी देकर उससे यह तो नहीं कहते, 'मगर बनो।' क्या इससे यह नहीं प्रगट होता कि मनुष्यके सामने एक आदर्श रहता है जिसतक उसे पहुँचना है किन्तु इस प्रकारका आदर्श अन्य किसी जीवधारीके सम्मुख नहीं होता?"

गांधीजीने हँसते हुए कहा:

मनुष्यों और पशुओंकी आत्माओंमें अन्तर है। पशु एक सतत मूर्च्छाकी अवस्थामें रहते हैं। परन्तु मानव जाग्रत हो सकता है और ईश्वरके अस्तित्वका अनुभव कर सकता है। ईश्वर मनुष्योंसे मानो यह कहता है, "चेतो और मेरी अर्चना करो; तुम मेरी ही प्रतिमूर्ति हो।"

मैंने प्रश्न किया, "पशुओंकी आत्मा कहाँसे आती है? क्या आपका खयाल है कि मनुष्यकी आत्मा पशुओंकी आत्मा बन सकती है?"

उन्होंने कहा :

हाँ, मेरा खयाल है कि कुटिल-मति, लालची और क्रूर, निर्दय मनुष्योंकी आत्माएँ इन भयंकर और बुरे जीवोंके शरीरोंमें वास करती हैं।

"आप उन असंख्य जीवों, उन लाखों करोड़ों कीड़े-मकोड़ोंकी ओर नजर डालें — जीवधारियोंके किसी एक ही समूहको लें; क्या इन मच्छरों, मक्खियों और जीवाणुओं — सभीके आत्मा होती है?"

गांधीजीने उत्तर दिया :

हमें परमात्माके कार्यक्षेत्रको सीमित करनेका क्या अधिकार है? क्या इस ब्रह्माण्डमें असंख्य सूर्य और ग्रह नहीं हैं?

अब वहाँसे मेरी रवानगीका वक्त हो चुका था, क्योंकि मुझे दूसरी जगह जाना था। इसलिए मैं उनसे विदा लेनेके लिए उठा। वे बरामदेमें जिस छोटी-सी दरीपर बैठे हुए थे मैं उसके सिरेतक गया और अपने जूते पहनने लगा। (मैं एक प्रकारसे उनका अतिथि था, अतः पूर्वी देशोंकी प्रथाके अनुसार मैंने अपने जूते वहाँ उतार दिये थे।)

मैंने ज्यों ही एक जूता उठाया, त्यों ही मुझे उसमें एक मकड़ी दीख पड़ी। मैंने उस घृणित मकड़ीको झाड़ दिया और कुचल देनेकी भावनाको रोकते हुए उसे दूर भगा दिया। इसके साथ ही मैंने हँसते हुए कहा, "यह देखिए, यह मकड़ी मेरे पास प्रलोभनके रूपमें इस बातकी जाँच करनेके लिए भेजी गई है कि मैंने आपके उपदेशसे लाभ उठाया है या नहीं।"

गांधीजी खिलखिलाकर हँसे — उनकी हँसी ऐसी उन्मुक्त होती है कि उसे सुनकर दूसरे लोग बिना हँसे नहीं रह सकते — और उन्होंने कहा :

हाँ, मकड़ी भी बहुत बड़ी चीज हो सकती है। क्या आपको मुहम्मद साहब और मकड़ीकी बात मालूम है?

मैंने कहा, नहीं, मुझे नहीं मालूम। मुझे सन्देह हो रहा था कि गांधीजीने भूलसे मकड़ीकी बात रॉबर्ट ब्रूसकी बजाय मुहम्मद साहबसे तो नहीं जोड़ दी है।

गांधीजीने कहा :

एक दिन मुहम्मद साहब अपने दुश्मनोंसे भारी खतरा महसूस करके भागे जा रहे थे। जब बचावकी दूसरी सूरत न दिखी तो चट्टानमें एक गुफा-सी बनी देखकर वे उसमें घुस गये। इसके कुछ घंटे बाद उनके दुश्मन उनका पीछा करते हुए वहाँ आये। उनमें से एकने कहा "आओ इस गुफामें देखें, वे यहाँ छिपे हो सकते हैं।" दूसरेने कहा, "नहीं, वे इस गुफामें नहीं हो सकते, क्योंकि देखो न, इसके मुँहपर तो मकड़ीका जाला तना है।" उनके दुश्मन यह नहीं समझे कि मकड़ीने यह जाला अभी

ताना है, और वहाँसे चले गये। इस प्रकार अल्लाहकी मर्जी और मकड़ीकी मददसे मुहम्मद साहब बच गये।[1]

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, १५-८-१९२२

५६. पत्र : जमनालाल बजाजको

साबरमती जेल
१८ मार्च, १९२२

भाई जमनालाल,

केवल आर्थिक दृष्टिसे मैं कह सकता हुँ कि यदि विदेशी सुत और कपड़ोका व्यापार करनेवाले अपना व्यापारको नहिं छोड़ेंगे और जनता विदेशी कपड़ाका मोहको नहि छोड़ेंगे तो मुलककी महा बिमारी भूख हरगीज हट नहीं सकती है। मेरी उमेद है सब वेपारी खद्दर और चरखा प्रचारमें पूरा हिस्सा देंगे।

आपका,
मोहनदास गांधी

मूल पत्र (जी० एन० २१९८ तथा २८४४) की फोटो-नकलसे।

१. संवाददाताने अपना विवरण समाप्त करते हुए लिखा था :

गांधीजी उक्त बात कह ही रहे थे कि उनके मित्र और जेलके साथी श्री शंकरलाल बैंकरने उनका चरखा लाकर उनके सामने रख दिया। मैंने जब गांधीजीसे विदा ली तभी वे अपना यह रोजका काम शुरू करने जा रहे थे। गांधीजी प्रतिदिन एक निश्चित मात्रामें सूत कातते या कपड़ा बुनते हैं और इस कार्यमें उनके अनुयायी (व्यवहारमें नहीं तो सिद्धान्त रूपमें अनुयायी) भी भाग लेते हैं।

जब मैं बरामदेके छोरपर पहुँचा तब मैंने मुड़कर उनकी ओर आखिरी बार देखा। यह सरल-स्वभाव मनुष्य वैसी ही सादी पोशाक पहने हुए था जैसी कि कोई गरीबसे-गरीब कुली पहनता है। वह पाल्थी मारे जमीनपर सीधा बैठा था; सामने चरखा था और वह उससे बड़े इत्मीनानसे वैसे ही सूत कात रहा था जैसे मुहम्मद साहबकी गुफापर मकड़ीने जाला ताना था। मेरे मनमें यह सवाल आया कि यह मनुष्य ईसाई नैतिकतासे सर्वथा शून्य औद्योगिक प्रणालीके खतरेसे भारतके किसानोंकी रक्षा करनेके लिए जाल बुन रहा है; या वह अपने असाधारण मस्तिष्कमें बने महान् मतिभ्रमरूपी जालमें स्वयं फँस गया है और उसमें अपने सैकड़ों-हजारों भावुक और भोले-भाले देशवासियोंको भी फँसा लिया है?

५७. ऐतिहासिक मुकदमा[1]

अहमदाबाद
१८ मार्च, १९२२

शनिवारको दोपहरको शाहीबागके सर्किट हाउसमें श्री गांधी और श्री बैंकरका मुकदमा शुरू हुआ।

राय बहादुर गिरधारीलालके साथ अभियोक्ता पक्षकी ओरसे सर जे० टी० स्ट्रैंगमैन भी थे। अभियुक्तोंकी ओरसे कोई वकील नहीं था। न्यायाधीशने[2] दोपहर १२ बजे आसन ग्रहण किया और बताया कि अभियोग-पत्रमें एक छोटी-सी त्रुटि रह गई है। उन्होंने उस त्रुटिको सुधार दिया है। इसके बाद रजिस्ट्रारने वह संशोधित अभियोग-पत्र पढ़कर सुनाया। अभियोगका आधार 'यंग इंडिया'के २९ सितम्बर और १५ दिसम्बर, १९२१ तथा २३ फरवरी, १९२२ के अंकोंमें छपे हुए तीन लेख थे। फिर ये तीनों आपत्तिजनक लेख पढ़कर सुनाये गये। पहला था "राजभक्तिसे भ्रष्ट करनेका आरोप"[3]; दूसरा था "एक उलझन और उसका हल[4]" और आखिरी था "गर्जन-तर्जन।"[5]

तदुपरान्त न्यायाधीशने कहा, कानूनका तकाजा है कि आरोप केवल पढ़कर ही न सुनाये जायें, बल्कि उनका आशय भी समझा दिया जाये। किन्तु इस मामलेमें उनका आशय ज्यादा खोलकर समझाना जरूरी नहीं है। दोनों अभियुक्तोंपर यही आरोप है कि उन्होंने ब्रिटिश भारतमें कानून द्वारा स्थापित सम्राट्की सरकारके प्रति अनादर या घृणाकी भावना पैदा की या पैदा करनेकी कोशिश की, अथवा अप्रीतिकी भावना भड़काई या भड़कानेकी कोशिश की है। दोनों अभियुक्तोंपर धारा १२४ 'क' के अधीन तीन अपराध लगाये गये हैं। ये आरोप श्री गांधी द्वारा लिखित और श्री बैंकर द्वारा मुद्रित उन तीन लेखोंमें कहे गये शब्दोंके कारण लगाये गये हैं, जो अभी पढ़कर सुनाये गये। "अनादर" और "घृणा" ये दो तो ऐसे शब्द हैं जिनका अर्थ काफी साफ है। "अप्रीति" शब्दकी परिभाषा स्वयं इस धारामें ही की गई है। उसके अनुसार "अप्रीति"में राजद्रोह और राज्यके प्रति विद्वेषकी भावनाएँ शामिल हैं। धारामें प्रयुक्त इस शब्दकी व्याख्या बम्बई उच्च न्यायालयने भी की है, जिसके अनुसार इसका अर्थ राजनीतिक अलगाव या असन्तोष — सरकारके प्रति या वर्तमान

१. यंग इंडियामें प्रकाशित मुकदमेका यह विवरण ट्रायल ऑफ गांधीजी, पृष्ठ १९७-२१२ में उपलब्ध पूरे ब्यौरेसे मिला लिया गया है।

२. न्यायमूर्ति आर० एस० ब्रूमफील्ड।

३. देखिए खण्ड २१, पृष्ठ २३०-३३।

४ व ५. देखिए खण्ड २२, पृष्ठ ३०-३१ तथा ४८१-८२।

सत्ताके प्रति गैर-वफादारीकी भावना — है। आरोप पढ़कर सुना देनेके बाद न्यायाधीशने अभियुक्तोंसे कहा कि अब इनके सम्बन्धमें आप जो-कुछ कहना चाहते हों, कहें। उन्होंने श्री गांधीसे पूछा कि वे अपना अपराध स्वीकार करते हैं या कि मुकदमेकी कार्रवाई की जाये?

श्री गांधी: मैं सभी आरोपोंके सम्बन्धमें अपना अपराध स्वीकार करता हूँ। मैंने यह लक्ष्य किया है कि आरोपोंमें सम्राट्का नाम छोड़ दिया गया है। यह ठीक ही किया गया है।

न्यायाधीश: श्री बैंकर, आप अपना अपराध स्वीकार करते हैं या चाहते हैं कि मुकदमेकी सुनवाई हो?

श्री बैंकर: मैं अपराध स्वीकार करता हूँ।

इसके बाद सर जे० टी० स्ट्रैंगमैनने न्यायाधीशसे अनुरोध किया कि मुकदमेकी कार्रवाई बाजाब्ता की जाये; किन्तु न्यायाधीश उनसे सहमत नहीं हुए। उन्होंने कहा कि मुझे जबसे मालूम हुआ है कि इस मुकदमेकी सुनवाई मुझे ही करनी है, तभीसे मैं इस विषयपर विचार करता रहा हूँ कि यदि अपराध सिद्ध हुआ तो कैसी सजा दी जाये; और आपको तथा श्री गांधीको जो-कुछ भी कहना हो, मैं सब सुननेको तैयार हूँ, फिर भी मैं पूरी ईमानदारीसे ऐसा मानता हूँ कि सभी सबूतोंको दर्ज करने और बाजाब्ता मुकदमेकी पूरी सुनवाई करनेसे परिणाममें कोई अन्तर नहीं पड़ेगा। इसलिए मैं अभियुक्तोंकी अपराध-स्वीकृतिको मंजूर करता हूँ।[1]

श्री गांधी इस फैसलेपर मुस्कराये।

न्यायाधीशने आगे कहा कि अब इसके बाद यही शेष रह जाता है कि मैं सजा सुना दूँ, लेकिन उससे पहले मैं सुनना चाहूँगा कि सर जे० टी० स्ट्रैंगमैनको इसके बारेमें क्या कहना है। वे अभियुक्तोंपर लगाये गये आरोपों और अभियुक्तोंकी अपराध-स्वीकृतिके बारेमें अपनी बात कह सकते हैं।

सर जे० टी० स्ट्रैंगमैन: यह तो मुश्किल होगा। मेरा तो न्यायालयसे यही अनुरोध है कि सारे मामलेपर बाकायदा विचार किया जाये। प्रारम्भिक (कमिटिंग) न्यायाधीशकी अदालतमें जो-कुछ हुआ, वह सब बतानेके बाद ही मैं यह दिखा सकता हूँ कि कई ऐसी चीजें हैं जिनका सजाके सवालपर काफी असर पड़ता है।

न्यायाधीशके यह पूछनेपर कि आप क्या कहना चाहते हैं, वकीलने कहा कि मैं सबसे पहले तो यही कहना चाहता हूँ कि जिन बातोंपर वर्तमान आरोप आधारित हैं वे उस बड़े प्रचार-आन्दोलनके अंग हैं जो खुल्लम-खुल्ला और काफी सुनियोजित ढंगसे सरकारके प्रति अप्रीतिकी भावना फैलाने, शासन-तन्त्रको ठप कर देने तथा सरकारका तख्ता उलट देनेके उद्देश्यसे चलाया जा रहा है। 'यंग इंडिया'में प्रकाशित जो सबसे पहला लेख पेश किया गया वह २५ मई, १९२१ का है। उसमें कहा गया

१. न्यायाधीशकी सम्मतिके पूरे ब्योरेके लिए देखिए ट्रायल ऑफ गांधीजी, पृष्ठ १६७।

मुकदमा और अदालतमें बयान, अहमदाबाद

सौजन्य : चित्रकार रविशंकर म० रावल

कर्नल सी० मैडॉकके साथ

है कि सरकारके प्रति अप्रीतिकी भावना फैलाना असहयोगीका फर्ज है।[1] इसके बाद उन्होंने 'यंग इंडिया' में प्रकाशित श्री गांधीके लेखोंके कुछ अंश पढ़कर सुनाये।

न्यायाधीशने कहा कि फिर भी, मुझे तो यह बात बिलकुल स्पष्ट लगती है कि जब अदालतने एक बार अभियुक्तोंकी अपराध-स्वीकृति मंजूर कर ली तो जिस सामग्रीके आधारपर सजा तय की जानी है, वह है लगाये गये आरोप और उनपर अभियुक्तोंका कथन।

सर जे० टी० स्ट्रैंगमैनने कहा कि सजा देना तो अदालतके हाथकी बात है। अदालतको यह अधिकार है कि वह चाहे तो दण्डके निर्धारणमें उन खास बातों तक ही महदूद न रहे जिनके सम्बन्धमें अपराध सिद्ध हुआ है, बल्कि इस प्रश्नपर ज्यादा व्यापक ढंगसे विचार करे। मैं चाहता हूँ कि अदालत मुझे उन लेखोंका हवाला देकर यह दिखानेकी इजाजत दे कि यदि इस मामलेकी सुनवाई तथ्योंका पता लगानेके लिए की जाती तो उसका परिणाम क्या होता। मैं आपके समक्ष कोई भी विवादग्रस्त बात पेश नहीं करूँगा।

न्यायाधीशने कहा कि मुझे कोई आपत्ति नहीं है। सर जे० टी० स्ट्रैंगमैनने कहा कि मैं यह दिखलाना चाहता हूँ कि ये लेख सन्दर्भ-विहीन चीजें नहीं हैं; बल्कि इनके पीछे बहुत-सी बातें हैं। ये असलमें एक सुसंगठित प्रचार-आन्दोलनके अंग हैं, किन्तु जहाँतक 'यंग इंडिया'का सम्बन्ध है, यह सिलसिला १९२१ से प्रारम्भ हुआ है। इसके बाद वकीलने ८ जून, १९२१ के अंकसे असहयोगीके कर्त्तव्योंपर प्रकाशित एक लेखके[2] कुछ अंश पढ़कर सुनाये, जिसमें कहा गया था कि वर्तमान सरकारके प्रति अप्रीतिकी भावनाका प्रचार करना और देशको सविनय अवज्ञाके लिए तैयार करना असहयोगीका कर्त्तव्य है। उसी अंकमें सविनय अवज्ञापर भी एक लेख था।[3] किसी और अंकमें "अराजभक्ति एक सद्गुण" या ऐसे ही किसी शीर्षकसे एक लेख था।[4] फिर २८ जुलाई, १९२१ के अंकके लेखमें[5] यह कहा गया था कि "हमें इस प्रणालीको नष्ट करना है।" फिर वकीलने ३० सितम्बर, १९२१ के "पंजाबके मुकदमे" शीर्षक लेखका[6] हवाला दिया, जिसमें कहा गया था कि हर सच्चे असहयोगीको 'अप्रीति'का प्रचार करना चाहिए। इन लेखोंका हवाला देनेके बाद वकीलने कहा कि 'यंग इंडिया'में छपे लेखोंके बारेमें मुझे इतना ही बताना था। ये लेख "राजभक्तिसे भ्रष्ट करनेका आरोप" शीर्षक लेखसे पहलेके हैं। इस लेखकी ओर बम्बईके गवर्नरका

१. देखिए खण्ड २०, पृष्ठ १३८-३९।
२. देखिए खण्ड २०, पृष्ठ १७८-१८७।
३. देखिए खण्ड २०, पृष्ठ २३१-३२।
४. देखिए खण्ड २०, पृष्ठ २२१-२२।
५. देखिए खण्ड २०, पृष्ठ ४४९।
६. वस्तुतः यह लेख १ सितम्बर, १९२१ को प्रकाशित हुआ था। देखिए खण्ड २१, पृष्ठ ३४।

ध्यान आकर्षित किया गया था। वकीलने अपनी बात जारी रखते हुए कहा कि अभियुक्त बहुत ही ऊँची शैक्षणिक योग्यताओंसे सम्पन्न है और उसके लेखोंसे स्पष्ट है कि वह एक जाना-माना नेता है। इसलिए इन लेखोंसे बहुत बड़ी हानि होनेकी सम्भावना है। ये लेख किसी ऐरे-गैरेके नहीं, एक सुशिक्षित व्यक्तिके लिखे हैं और अदालतको इस बातपर गौर करना चाहिए कि इन लेखोंमें जिस प्रचार-आन्दोलनकी झलक मिलती है उसका लाजिमी नतीजा क्या होगा। पिछले कुछ महीनोंमें इसके उदाहरण हमारे सामने आये हैं। पिछले नवम्बरमें हुई बम्बईकी घटनाओं और इसके बाद चौरीचौरा काण्डको देखिए। उनमें जान-मालका भारी नुकसान हुआ और बहुतसे लोगोंको बड़ी मुसीबतें उठानी पड़ीं। यह ठीक है कि इन लेखोंमें अहिंसाको इस आन्दोलनका एक अनिवार्य तत्त्व और सिद्धान्तकी चीज बताते हुए उसपर बहुत जोर दिया गया है। पर अहिंसाके उपदेशसे फायदा क्या, जब उन्होंने साथ-ही-साथ सरकारके खिलाफ राजनीतिक द्रोहका भी प्रचार किया या खुले तौरपर लोगोंको सरकारका तख्ता पलटनेके लिए उकसाया? इस प्रश्नका उत्तर चौरीचौरा, मद्रास और बम्बईकी घटनाओंसे मिल जाता है। अदालतको अभियुक्तके लिए सजाका फैसला करते समय इन सभी परिस्थितियोंका खयाल रखना चाहिए, और यह तो अदालत ही तय करेगी कि इन परिस्थितियोंको देखते हुए क्या बहुत सख्त सजा नहीं देनी चाहिए।

दूसरे अभियुक्तका अपराध उतना बड़ा नहीं है। उसने इन लेखोंका प्रकाशन-भर किया है, लेख लिखे नहीं हैं; फिर भी उसका अपराध गम्भीर तो है ही। मुझे बतलाया गया है कि यह अभियुक्त काफी सम्पन्न व्यक्ति है और इसलिए मैं अदालतसे निवेदन करता हूँ कि जेलकी सजाके अलावा उसपर काफी जुर्माना भी किया जाना चाहिए। वकीलने जुर्मानेके बारेमें 'प्रेस ऐक्ट' की धारा १० पढ़कर सुनाई, और कहा कि नये समाचारपत्रका 'डिक्लेरेशन' देते समय कई मामलोंमें एक हजारसे दस हजार रुपयेतक की जमानत भी माँगी है।

न्यायालय: श्री गांधी, क्या आप सजाके सवालके बारेमें कोई बयान देना चाहते हैं?

श्री गांधी: हाँ, न्यायालयकी अनुमतिसे मैं एक लिखित बयान देना चाहता हूँ।

न्यायालय: क्या आप लिखित बयान रेकार्डमें रखनेके लिए मुझे दे सकते हैं?

श्री गांधी: पढ़ चुकनेके बाद मैं तुरन्त यह बयान आपको दे दूंगा।

अपना लिखित बयान पढ़नेके पहले श्री गांधीने कुछ शब्द उस पूरे बयानकी भूमिकाके रूपमें कहे। उन्होंने कहा:

इस बयानको पढ़नेसे पहले मैं यह कहना चाहूँगा कि विद्वान् एडवोकेट-जनरलने मुझ नाचीजके बारेमें जो-कुछ कहा है, मैं उससे पूर्णतया सहमत हूँ। मैं समझता हूँ कि उन्होंने जितनी भी बातें कही हैं, उन सबमें उन्होंने मेरे साथ पूरी तरह न्याय किया है, क्योंकि यह बिलकुल सच है और मेरी इच्छा इस न्यायालयसे इस तथ्यको

छिपानेकी कतई नहीं है कि मौजूदा शासन-व्यवस्थाके प्रति अप्रीतिकी भावनाका प्रचार करनेकी मुझे एक धुन-सवार हो गई है। और विद्वान् एडवोकेट-जनरलका यह कहना भी बिलकुल सही है कि अप्रीतिका प्रचार मैंने 'यंग इंडिया' को हाथमें लेनेके बहुत पहले शुरू कर दिया था। अभी मैं बयान पढ़नेवाला हूँ उसमें इस न्यायालयके सम्मुख यह स्वीकार करना मेरा दुःखद कर्त्तव्य हो जाता है कि एडवोकेट-जनरलने जो समय बताया है, यह प्रचार मैंने उससे भी बहुत पहले शुरू कर दिया था। यह बहुत ही दुःखद कर्त्तव्य है, पर मेरे कन्धोंपर जो जिम्मेदारी है उसे देखते हुए मुझे इसे पूरा करना ही होगा। विद्वान् एडवोकेट-जनरलने बम्बईकी घटनाओं, मद्रासकी घटनाओं और चौरीचौराकी घटनाओंके सिलसिलेमें मेरे सिर जो दोष मढ़ा है, मैं उन सबको स्वीकार करता हूँ। रात-दिन, सोते-जागते मैंने इसपर गम्भीरतासे विचार किया है और इसके बाद इसी निष्कर्षपर पहुँचा हूँ कि चौरीचौराके नृशंस अपराधोंकी या बम्बईके पागलपन-भरे कारनामोंकी जिम्मेदारीसे अपने-आपको अलग रखना मेरे लिए असम्भव है। उनका यह कहना बिलकुल सही है कि एक जिम्मेदार व्यक्तिकी हैसियतसे, जिसे अच्छी शिक्षा मिली है और जिसे इस दुनियाका अच्छा अनुभव है, मुझे अपनी हर कार्रवाईके नतीजोंको जानना चाहिए था। मैं यह जानता था कि मैं आगसे खेल रहा हूँ। फिर भी मैंने खतरा मोल लिया और यदि मुझे छोड़ दिया गया तो मैं फिर वही करूँगा।[1] आज सुबह मुझे ऐसा लगा कि जो-कुछ मैं इस समय कह रहा हूँ यदि वह मैंने नहीं कहा तो मैं अपने कर्त्तव्यसे च्युत हो जाऊँगा।

मैं हिंसासे बचना चाहता था और बचना चाहता हूँ।[2] अहिंसा मेरे जीवनका प्रथम सिद्धान्त है और यही मेरा अन्तिम सिद्धान्त भी है। मुझे दोमें से एक चीज चुननी थी। मैं या तो एक ऐसी व्यवस्थाको स्वीकार कर लेता, जिसने मेरी समझसे देशको अपूरणीय क्षति पहुँचाई है या फिर मैं यह खतरा मोल लेता कि मेरे देशवासी जब मेरे मुँहसे सचाईको समझेंगे तो उनमें रोषका उन्माद उमड़ सकता है। मैं जानता हूँ कि मेरे देशवासी कभी-कभी उन्मत्त हो उठते हैं। मुझे इसका बहुत दुःख है और इसलिए मैं यहाँ किसी हलकी नहीं, बल्कि बड़ीसे-बड़ी सजाको स्वीकार करनेके लिए तैयार हूँ। मैं दयाकी प्रार्थना नहीं कर रहा हूँ, जुर्मको हलका करनेवाली किसी कार्रवाईको अपने बचावके लिए पेश नहीं कर रहा हूँ। अतः कानूनकी दृष्टिसे जो एक सोच-समझकर किया गया अपराध है किन्तु जो मुझे एक नागरिकका सर्वोच्च कर्त्तव्य लगता है, उसके लिए मुझे जो बड़ीसे-बड़ी सजा दी जा सकती है, मैं वही देनेको कहता हूँ और उसे खुशीसे स्वीकार करूँगा। न्यायाधीश महोदय, आपके सामने इस समय जैसा कि मैं अभी अपने बयानमें कहनेवाला हूँ, सिर्फ यही एक रास्ता है कि या तो आप अपने पदसे इस्तीफा दे दें, या फिर यदि आपको यह विश्वास हो कि जिस व्यवस्थाको और जिस कानूनके अमलमें आप सहायता पहुँचा रहे हैं वे लोगोंके लिए अच्छे हैं तो मुझे कड़ीसे-कड़ी सजा दें। ऐसे मत-परिवर्तनकी मुझे आशा नहीं है[3],

१ व २. मुकदमेकी सरकारी रिपोर्टमें ये वाक्य नहीं हैं।

३. मुकदमेकी सरकारी रिपोर्टमें यह वाक्य नहीं है।

लेकिन मेरा पूरा बयान सुनकर आपको शायद इस बातका अन्दाज हो जायेगा कि मेरे भीतर ऐसा क्या-कुछ उमड़ रहा है जिसके कारण एक अच्छा भला आदमी बड़ेसे-बड़ा खतरा मोल लेनेको तैयार हो सकता है।

इसके बाद उन्होंने अपना बयान पढ़कर सुनाया।

बयान

भारतीय जनताके प्रति और इंग्लैंडकी जनताके प्रति भी, जिसे सन्तुष्ट करनेके लिए यह मुकदमा मुख्य रूपसे चलाया गया है, शायद मेरी यह जिम्मेदारी है कि मैं इस चीजपर प्रकाश डालूँ कि एक कट्टर राजभक्त और सहयोगीसे मैं राजनीतिक असन्तोषका हठी प्रचारक और असहयोगी कैसे बन गया। न्यायालयको भी मैं यह बताना चाहता हूँ कि भारतमें कानून द्वारा स्थापित सरकारके प्रति असन्तोष फैलानेके अपराधको मैं क्यों स्वीकार कर रहा हूँ।

मेरे सार्वजनिक जीवनका आरम्भ १८९३ में दक्षिण आफ्रिकामें संकटपूर्ण स्थितिमें हुआ था। उस देशमें ब्रिटिश सत्तासे मेरा पहला सम्पर्क कदापि सुखद नहीं था। मुझे यह पता चला कि एक मनुष्यके नाते और एक भारतीयके नाते मेरे अपने कोई अधिकार ही नहीं हैं। बल्कि ज्यादा सही यही है कि एक मनुष्यके नाते मेरे अधिकार इसलिए नहीं हैं, क्योंकि मैं एक भारतीय हूँ।

लेकिन मैं घबराया नहीं। मैंने अपने मनको समझाया कि भारतीयोंके साथ आज जो दुर्व्यवहार किया जा रहा है, उसका कारण यह नहीं है कि यह शासनतन्त्र बुरा है। वह मूलतः और मुख्यतः तो अच्छा ही है; किन्तु इसपर कुछ मैल जरूर चढ़ गया है। इसलिए मैं स्वेच्छासे और सच्चे दिलसे उस तन्त्रके साथ सहयोग करता रहा हूँ। जहाँ-कहीं उसमें कोई दोष दिखाई दिये, उनकी मैंने खुलकर आलोचना भी की, किन्तु उसका नाश कभी नहीं चाहा। यही कारण है कि जब १८९९में बोअर युद्धके समय साम्राज्यका अस्तित्व खतरेमें पड़ गया, तब मैंने उसे अपनी सेवाएँ अर्पित कीं।[1] मैंने एक आहत सहायक दल खड़ा किया और लेडीस्मिथकी रक्षाके लिए जो अनेक लड़ाइयाँ हुईं, मैंने उन सबमें काम किया।[2] इसी प्रकार १९०६ में जुलू-विद्रोहके समय मैंने एक डोली वाहक दल खड़ा किया और विद्रोहके शान्त होनेतक काम करता रहा।[3] दोनों अवसरोंपर अपनी सेवाओंके लिए मुझे पदक मिले और सरकारी खरीतोंमें भी मेरे कामका खास उल्लेख किया गया। दक्षिण आफ्रिकामें मेरे कामकी सराहनामें लॉर्ड हार्डिंगकी तरफसे मुझे कैसरे-हिन्द स्वर्ण पदक मिला।[4] जब १९१४में इंग्लैंड और जर्मनीके बीच युद्ध छिड़ा तब मैंने लन्दनमें स्वयंसेवकोंका एक आहत सहायक दल खड़ा किया।[5] उस दलमें वहाँ रहनेवाले भारतीय और मुख्यतः विद्यार्थीगण शामिल

१. देखिए खण्ड ३, पृष्ठ १२२-२३।
२. देखिए खण्ड ३, पृष्ठ १४७-५२।
३. देखिए खण्ड ५, पृष्ठ ३८०-८३।
४. देखिए खण्ड १३, पृष्ठ १७३ और १७५।
५. देखिए खण्ड १२, पृष्ठ ५२५-२६।

थे। अधिकारियोंने इस दलके कामको मूल्यवान करार दिया। मैं इतना और कहूँगा कि जब १९१८ में दिल्लीमें युद्ध-परिषद् हुई और लॉर्ड चैम्सफोर्डने वहाँ सैनिक भरतीके लिए विशेष रूपसे अनुरोध किया, तब अपने स्वास्थ्यकी कोई परवाह न करके मैंने खेड़ा जिलेमें सैनिक-भरतीके लिए घोर प्रयत्न किया।[1] और मेरे प्रयत्नोंका फल आना शुरू हुआ था कि लड़ाई बन्द हो गई और इस आशयके आदेश निकाल दिये गये कि अब और रंगरूटोंकी जरूरत नहीं है। साम्राज्यकी सेवाके ये सारे प्रयत्न मैं इसी विश्वाससे प्रेरित होकर कर रहा था कि ऐसी सेवाके जरिये मैं अपने देश-भाइयोंको साम्राज्यमें समानताका दर्जा दिला सकता हूँ।

मेरे विश्वासको पहला आघात रौलट अधिनियमसे लगा, जिसका उद्देश्य जनताको सभी प्रकारकी सच्ची स्वतंत्रतासे वंचित कर देना था। उस अधिनियमके विरुद्ध मुझे कर्तव्यवश एक तीव्र आन्दोलन छेड़ना पड़ा। उसके बाद पंजाबका काण्ड हुआ, जिसका आरंभ जलियाँवाला बागके हत्याकाण्डसे हुआ और अन्त पेटके बल रेंगनेके आदेशोंमें, सार्वजनिक रूपसे लोगोंको कोड़े लगानेमें तथा अन्य अकथनीय अपमानपूर्ण कृत्योंमें हुआ। मैंने यह भी देखा कि भारतीय मुसलमानोंकी टर्कीकी अखण्डता तथा इस्लामके पवित्र स्थानोंकी सुरक्षाके बारेमें प्रधान मन्त्रीने गम्भीरतापूर्वक जो वचन दिये थे उनके पूरे किये जानेकी सम्भावना नहीं बची। अनिष्टके इन लक्षणों और मित्रोंकी गम्भीर चेतावनियोंके बावजूद, मैं १९१९ की अमृतसर कांग्रेसमें सरकारके साथ सहयोग करने तथा मॉन्टेग्यु-चैम्सफोर्ड सुधारोंको अमलमें लानेके लिए लड़ा।[2] तब भी मैं यही आशा कर रहा था कि अन्तमें प्रधान मन्त्री भारतीय मुसलमानोंको दिये गये वचनका पालन करेंगे, पंजाबके जख्मोंका इलाज होगा और ये सुधार अपर्याप्त और असन्तोषजनक होते हुए भी भारतके जीवनमें आशाके एक नये युगके सन्देशवाहक सिद्ध होंगे।

लेकिन सारी आशाओंपर तुषारपात हो गया। शीघ्र ही यह स्पष्ट हो गया कि खिलाफत सम्बन्धी वचनका पालन होनेवाला नहीं है। पंजाबके काण्डपर लीपा-पोती कर दी गई। अधिकांश अपराधियोंको सजा नहीं दी गई, वे जहाँके-तहाँ डटे रहे। कुछको भारतीय खजानेसे पेंशनें मिलती चली गईं। इतना ही नहीं उनमें से कुछको इनाम-अकराम तक दिये गये। मैंने यह भी समझ लिया कि ये सुधार किसी प्रकारके हृदयपरिवर्तनके सूचक नहीं हैं; ये तो भारतको और अधिक लूटने तथा ज्यादा दिनोंतक गुलाम बनाये रखनेकी तरकीब-भर हैं।

मुझे अनिच्छापूर्वक इस निष्कर्षपर पहुँचना पड़ा कि अंग्रेजी हुकूमतने राजनीतिक तथा आर्थिक दोनों दृष्टियोंसे भारतको इतना असहाय बना दिया है जितना वह पहले कभी नहीं था। निःशस्त्र भारत आज यदि किसी आक्रमणकारीका सशस्त्र विरोध करना चाहे तो उसमें ऐसा करनेकी शक्ति ही नहीं है। और उसकी यह लाचारी इस हदतक पहुँच गई है कि हमारे कुछ अच्छेसे-अच्छे लोग भी आज यह मानते हैं कि भारतको औपनिवेशिक स्वराज्य पानेमें ही अभी पीढ़ियाँ लग जायेंगी। वह इतना गरीब हो

१. देखिए खण्ड १४, पृष्ठ ४२२-२६।
२. देखिए खण्ड १६, पृष्ठ ३७४।

गया है कि उसमें अकालका मुकावला करनेकी क्षमता नहीं बची है। अंग्रेजोंके आगमनसे पूर्व भारतके लाखों घरोंमें कताई और बुनाईका काम हुआ करता था और इस तरह खेतीसे होनेवाली अपर्याप्त आयमें कुछ जुड़ जाता था और कमी की पूर्ति हो जाती थी। किन्तु भारतके अस्तित्वके लिए इतने महत्त्वके इस कुटीर उद्योगको अकल्पनीय निष्ठुरतापूर्ण अमानुषिक उपायोंका सहारा लेकर किस तरह नष्ट कर दिया गया, स्वयं अंग्रेज लेखक इसके गवाह हैं। आधा पेट खाकर रहनेवाली भारतकी आम जनता किस तरह धीरे-धीरे मृतप्राय होती जा रही है, शहरमें रहनेवाले इसे क्या जानें? उन्हें इसकी कोई खबर नहीं है कि वे भारतके शोषणकर्त्ता विदेशियोंके घर भरनेके लिए की गई मेहनतके बदलेमें जो-कुछ पाते हैं और जिसके बलपर अपनी समझमें मौज उड़ाते हैं वह उनके मुनाफेके मुकाबलेमें दलाली ही बैठती है और उन्हें इस बातका भी भान नहीं है कि यह सारा मुनाफा और सारी दलाली गरीब जनताका खून चूसकर ही प्राप्त की जाती है। उन्हें यह सूझता ही नहीं कि ब्रिटिश भारतमें कानून द्वारा स्थापित सरकार उस गरीब आम जनताको इस प्रकार चूसनेके लिए ही चलाई जा रही है। किसी भी तरहके वितंडावाद अथवा थोथी आँकड़ेबाजीसे उस साक्ष्यको झुठलाया नहीं जा सकता, जो भारतके लाखों गाँवोंमें करोड़ों अस्थि-पंजर हमारी खुली आँखोंके सामने प्रस्तुत करते हैं। मुझे तो इस बातमें तनिक भी सन्देह नहीं कि यदि हम सबके ऊपर ईश्वर है तो उसके दरबारमें इंग्लैंडवालों को और भारतके शहरी लोगोंको इस घोर अपराधके लिए जवाब देना पड़ेगा। मेरे खयालसे तो मानव-जातिके विरुद्ध किये जा रहे इस अपराध-जैसी इतिहासमें शायद ही कोई मिसाल मिले। इस देशमें कानूनका उपयोग भी विदेशी शोषकोंकी सेवा करनेके लिए ही किया जाता रहा है। पंजाब मार्शल लॉके अन्तर्गत चलाये गये मुकदमोंकी निष्पक्ष जाँचके बाद मेरी यही धारणा बनी है कि कमसे-कम पंचानवे प्रतिशत सजाएँ सर्वथा अन्यायपूर्ण थीं।[1] और भारतमें राजनीतिक मुकदमोंके बारेमें मेरा अनुभव यही कहता है कि हर दस सजायाफ्ता लोगोंमें नौ तो सर्वथा निर्दोष होते हैं। उनका अपराध यही है कि उन्हें अपने देशसे प्रेम है। भारतीय अदालतोंमें सौमें से निन्यानवे मामलोंमें यूरोपीयोंके मुकाबले भारतीयोंके साथ न्याय नहीं किया गया। इसमें कहीं कोई अतिशयोक्ति नहीं है। जिन भारतीयोंका ऐसे मामलोंसे थोड़ा भी सम्बन्ध रहा है, उन सबका अनुभव प्रायः यही रहा है। मेरे विचारसे तो विदेशी शोषकोंके लाभके लिए जाने-अनजाने प्रशासनमें कानूनका दुरुपयोग ही किया गया है।

सबसे बड़ा दुर्भाग्य तो यह है कि अंग्रेज लोग और देशका शासन चलानेमें शरीक उनके भारतीय सहयोगी यह समझते ही नहीं कि वे उपर्युक्त अपराध करनेमें लिप्त हैं। मुझे बखूबी मालूम है कि बहुतसे अंग्रेज और भारतीय अधिकारी ईमानदारीसे यह मानते हैं कि वे जिस शासन-तन्त्रको चला रहे हैं वह दुनियाके सर्वोत्तम तन्त्रोंमें से है और उसके अधीन भारत धीरे-धीरे ही सही किन्तु निश्चित प्रगति कर रहा है। उन्हें नहीं मालूम कि एक ओर आतंककी इस सूक्ष्म किन्तु प्रभावकारी प्रणाली तथा पशुबलके

१. देखिए खण्ड १७, पृष्ठ ३१७-२२।

संगठित प्रदर्शन और दूसरी ओर जनताको प्रतिशोध अथवा आत्मरक्षाकी समस्त शक्तिसे वंचित रखनेका परिणाम यह हुआ है कि भारतके लोग निर्जीव बनकर रहे गये हैं और उन्हें ढोंग तथा पाखण्डकी आदत पड़ गई है। और इस भयंकर आदतके कारण प्रशासकों-का अज्ञान और आत्म-वंचना और भी बढ़ गई है। जिस धारा १२४ 'क' के अधीन सौभाग्यवश मुझपर आरोप लगाया गया है, वह भारतीय नागरिकोंकी स्वतन्त्रताका गला घोटनेके लिए रची गई राजनीतिक धाराओंमें कदाचित सर्वोपरि है। लोगोंके मनमें कानूनके बलपर राजभक्ति उत्पन्न नहीं की जा सकती। न कानूनके सहारे उसका नियमन ही किया जा सकता है। यदि किसीके मनमें किसी व्यक्ति या प्रणालीके प्रति भक्ति नहीं है, तो जबतक वह हिंसाका इरादा न रखता हो अथवा उसे प्रोत्सा-हन या उत्तेजन न देता हो तबतक उसे अपनी अभक्तिको व्यक्त करनेकी पूरी स्वतन्त्रता होनी चाहिए। किन्तु जिस धाराके अधीन श्री बैंकर और मुझपर आरोप लगाये गये हैं, वह धारा तो ऐसी है जिसके अनुसार अप्रीतिकी भावनाका प्रचार करना ही अपराध है। मैंने इसके अधीन चलाये गये कुछ मुकदमोंका अध्ययन किया है और मैं जानता हूँ कि भारतके कुछ बड़ेसे-बड़े लोकप्रिय देशभक्तोंको इसके अनुसार दण्डित किया गया है। इसलिए इस धाराके अधीन मुझपर जो आरोप लगाया गया है, उसे मैं अपना सौभाग्य मानता हूँ। मैंने अपनी अप्रीतिकी भावनाके कारणोंको यथासम्भव कमसे-कम शब्दोंमें पेश करनेकी कोशिश की है। किसी भी अधिकारीके विरुद्ध मेरे मनमें कोई वैर-भाव नहीं है और व्यक्तिके रूपमें सम्राट्के प्रति ऐसा कोई भाव रखनेका तो सवाल ही नहीं उठता। किन्तु जिस सरकारने कुल मिलाकर भारतका इतना अहित किया है जितना कि पहलेके किसी भी तन्त्रने नहीं किया, उसके प्रति अप्रीतिकी भावना रखना मैं एक श्रेयकी बात मानता हूँ। इस अंग्रेजी हुकूमतके अधीन भारत जितना निर्वीर्य हो गया है, उतना पहले कभी नहीं था। और चूंकि मेरी मान्यता ऐसी है, इसलिए इस तन्त्रके प्रति मनमें भक्ति रखना मैं पाप समझता हूँ। अतएव अपने खिलाफ सबूतमें पेश किये गये लेखोंमें मैंने जो-कुछ लिखा है उसे लिखना मैं अपना बहुत बड़ा सौभाग्य मानता हूँ।

असलमें तो मैं यह मानता हूँ कि जिस अस्वाभाविक स्थितिमें आज इंग्लैंड और भारत दोनों आ पहुँचे हैं, उससे बच निकलनेके लिए असहयोगका रास्ता दिखाकर मैंने दोनोंकी सेवा ही की है। मेरी नम्र रायमें बुराईसे असहयोग करना भी उतना ही आवश्यक कर्त्तव्य है जितना आवश्यक कर्त्तव्य अच्छाईसे सहयोग करना है। किन्तु असहयोगके ऐसे प्रयोगोंमें अभीतक बुराई करनेवालों के विरुद्ध जान-बूझकर हिंसाका रास्ता अपनाया जाता रहा है। मैं अपने देश-भाइयोंको यह दिखानेकी कोशिश कर रहा हूँ कि हिंसावृत्तिसे किया गया असहयोग अन्तमें बुराईको बढ़ानेमें ही सहायक होता है; और चूंकि बुराई हिंसासे ही पोषित हो सकती है इसलिए यदि बुराईके साथ सहयोग बन्द करना हो तो हिंसावृत्तिको तिलांजलि देनी चाहिए। अहिंसाका मतलब है, बुराईसे असहयोग करनेके फलस्वरूप मिलनेवाले दण्डको स्वेच्छासे स्वीकार कर लेना। इसलिए जो चीज कानूनकी नजरमें जान-बूझकर किया गया अपराध है, वह मेरी दृष्टिमें

नागरिकके नाते मनुष्यका सर्वोपरि कर्त्तव्य है, और उसके लिए कड़ीसे-कड़ी सजा माँगने और उसे शिरोधार्य करनेके लिए मैं यहाँ खड़ा हूँ। इसलिए न्यायाधीश महोदय, अब आपके सामने यही एक रास्ता है कि जिस कानूनपर अमल करनेका काम आपको सौंपा गया है, उसे यदि आप अन्यायपूर्ण मानते हों और मुझे सचमुच निर्दोष समझते हों तो आप अपना पद त्याग दें और इस प्रकार अन्यायमें शरीक होनेसे बचें। इसके विपरीत यदि आपका यह मत हो कि जिस तन्त्र और जिस कानूनको चलानेमें आप मदद कर रहे हैं वे इस देशकी जनताके लिए हितकर हैं और इसलिए मेरी प्रवृत्तियाँ सार्वजनिक कल्याणके लिए हानिकर हैं तो आप मुझे कड़ीसे-कड़ी सजा दें।[1]

न्यायाधीश: श्री बैंकर, क्या आप सजाके सम्बन्धमें कुछ कहना चाहते हैं?

श्री बैंकर: मैं सिर्फ इतना कहना चाहता हूँ कि इन लेखोंको छापनेका सौभाग्य मुझे ही प्राप्त हुआ था और मैं अपना अपराध स्वीकार करता हूँ। सजाके सम्बन्धमें मुझे कुछ भी नहीं कहना है।

न्यायाधीशने जो निर्णय दिया उसका पूरा पाठ इस प्रकार था:

श्री गांधी, आपने अपना अपराध स्वीकार करके एक तरहसे मेरा कार्य सरल कर दिया है। फिर भी जो शेष रह जाता है, अर्थात् उचित दण्डका निर्णय करना, वह कोई साधारण समस्या नहीं है। इस देशमें किसी भी न्यायाधीशको कठिनसे-कठिन जिस समस्याका सामना करना पड़ सकता है, यह समस्या शायद उतनी ही कठिन है। कानून किसी भी व्यक्तिका लिहाज नहीं करता। फिर भी इस तथ्यकी उपेक्षा नहीं की जा सकती कि मेरे सामने अबतक विचारके लिए जितने लोगोंके मुकदमे आये हैं या भविष्यमें आ सकते हैं, आप उन सबसे भिन्न श्रेणीके व्यक्ति हैं। इस तथ्यकी उपेक्षा नहीं की जा सकती कि अपने लाखों देशवासियोंकी नजरोंमें आप एक महान् देशभक्त और महान् नेता हैं। जो लोग आपसे राजनीतिक मतभेद रखते हैं वे भी आपको उच्च आदर्शवादी और एक ऐसा व्यक्ति मानते हैं जिसका जीवन महान् और यहाँतक कि सन्तों-जैसा है। मुझे आपके बारेमें केवल एक दृष्टिसे विचार करना है। किसी अन्य दृष्टिसे आपके बारेमें निर्णय या आलोचना करना मेरा कर्त्तव्य नहीं है और मैं वैसा करनेकी धृष्टता भी नहीं कर रहा हूँ। मेरा कर्त्तव्य यह है कि मैं आपको एक ऐसा मनुष्य मानकर आपके बारेमें निर्णय दूँ जो कानूनके अधीन है, जो स्वयं यह स्वीकार कर चुका है कि उसने कानूनको तोड़ा है और जिसने वह सब किया है जो एक साधारण मनुष्यकी दृष्टिमें निश्चय ही राज्यके विरुद्ध गम्भीर अपराध है। मैं यह जानता हूँ कि आप हिंसाके विरुद्ध निरन्तर प्रचार करते रहे हैं और मैं यह विश्वास करनेको भी तैयार हूँ कि आपने कई बार हिंसाको रोकनेके लिए बहुत-कुछ किया भी है। लेकिन एक बात मेरी समझमें नहीं आती कि अपने

१. गांधीजी द्वारा हस्ताक्षरित हस्तलिखित बयानकी फोटो-नकल ट्रायल ऑफ गांधीजी, पृष्ठ १६८-९२ में दी गई है।

राजनीतिक उपदेशके स्वरूपको देखते हुए और जिन लोगोंको वह उपदेश दिया गया था उनमें से बहुतोंके स्वभावको देखते हुए, आप यह कैसे मानते रहे कि उसका अनिवार्य परिणाम हिंसा नहीं होगा।

भारतमें ऐसे व्यक्ति इने-गिने ही होंगे जिन्हें इस बातका हार्दिक खेद न हो कि आपने ऐसी स्थिति उत्पन्न कर दी है कि कोई भी सरकार आपको जेलके बाहर नहीं रहने दे सकती। परन्तु स्थिति है यही। मेरी कोशिश यह है कि आप जिस दण्डके अधिकारी हैं और जो-कुछ सार्वजनिक हितके लिए मुझे आवश्यक लगता है, उन दोनोंमें सन्तुलन रखूं। दण्डका निर्णय करनेमें मैं एक ऐसे उदाहरणका अनुसरण करना चाहता हूँ जो बहुत-सी बातोंमें इसी मुकदमेकी तरह था और जिसका फैसला आजसे कोई बारह साल पहले किया गया था। मेरा अभिप्राय बाल गंगाधर तिलकके विरुद्ध इसी धाराके अधीन चलाये गये मुकदमेसे है। उन्हें जो दण्ड दिया गया और जो अन्तमें कायम रहा वह छः सालका साधारण कारावास था। मैं समझता हूँ कि यदि आपको श्री तिलककी श्रेणीमें रखा जाये, अर्थात् आरोपके हर मुद्देपर दो सालका साधारण कारावास और कुल मिलाकर छः सालकी सजा दी जाये, जिसे देना मैं अपना कर्त्तव्य समझता हूँ, तो आप इसे अनुचित नहीं समझेंगे। तो, यह सजा सुनाते हुए मैं यह कहना चाहता हूँ कि यदि भारतमें घटनाक्रम सरकारके लिए यह सम्भव कर दे कि वह इस अवधिको घटा सके और आपको छोड़ सके, तो मुझसे ज्यादा खुशी और किसीको नहीं होगी।

न्यायाधीशने श्री बैंकरसे कहा: मैं मानता हूँ कि आपने जो-कुछ भी किया, वह एक बड़ी हदतक अपने नेताके प्रभावमें आकर किया। इसलिए मैं आपको जो दण्ड देना चाहता हूँ वह है: पहले दो अपराधोंमें से प्रत्येकके लिए छः मासका साधारण कारावास, अर्थात् एक वर्षका साधारण कारावास और तीसरे अपराधके लिए एक हजार रुपया जुर्माना, जिसे अदा न करनेपर छः मासका अतिरिक्त साधारण कारावास भोगना पड़ेगा।

श्री गांधीने कहा:

मैं दो शब्द कहना चाहता हूँ। चूंकि आपने स्वर्गीय लोकमान्य बाल गंगाधर तिलकके मुकदमेकी याद दिलाकर मुझे गौरव प्रदान किया है, इसलिए मैं यह कहना चाहता हूँ कि उनके नामके साथ संयुक्त होना मेरी दृष्टिमें बहुत ही सौभाग्य और सम्मानकी बात है। जहाँतक खुद सजाका सवाल है, निश्चय ही यह मेरी दृष्टिमें हलकीसे-हलकी सजा है और जहाँतक इस मुकदमेकी पूरी कार्यवाहीका सवाल है मैं यह कहे बिना नहीं रह सकता कि इससे अधिक सौजन्यकी आशा नहीं की जा सकती थी।

न्यायाधीशके अदालतसे उठते ही श्री गांधीके मित्र उनके चारों ओर सिमट आये और उनके पैर छूने लगे। बहुत-से स्त्री-पुरुष सिसकियां भर रहे थे। पर श्री गांधी

इस तमाम वक्त मुस्कराते रहे और शान्तचित्त रहे और जो भी उनके पास पहुँचा उसको हिम्मत बँधाते रहे। श्री बैंकर भी मुस्करा रहे थे और इस सबको बड़े ही सहज भावसे देख रहे थे। सारे मित्रोंके विदा हो जानेके बाद, श्री गांधीको अदालतसे बाहर लाकर साबरमती जेल भेज दिया गया। इस प्रकार इस शानदार मुकदमेका पटाक्षेप हुआ।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २३-३-१९२२

५८. सन्देश: देशके नाम[1]

[अहमदाबाद
१८ मार्च, १९२२]

गांधीजीने सजा सुननेके पश्चात् अपने पास खड़े कांग्रेसके महामंत्रीको देशवासियोंके लिए यह सन्देश दिया:

मुझे यह देखकर प्रसन्नता होती है कि छः दिनोंमें देशभरमें स्वर्गकी-सी शान्ति रही है। अगर यह वातावरण इस संघर्षके अन्ततक बना रहा तो संघर्ष अवश्य ही छोटा और प्रकाशप्रद होगा।[2]

अदालतसे विदा होते समय महात्माजीने कहा:

मुझे अब सन्देश देनेकी आवश्यकता नहीं। मेरा सन्देश तो लोग जानते ही हैं। लोगोंसे कहिए कि हरएक हिन्दुस्तानी शान्ति रखे। हर प्रयत्नसे शान्तिकी रक्षा करे। केवल खादी पहने और चरखा काते। लोग यदि मुझे छुड़ाना चाहते हों तो शान्तिके द्वारा ही छुड़ायें। यदि लोग शान्ति छोड़ देंगे तो याद रखिये मैं जेलमें रहना पसन्द करूँगा।

स्पीचेज ऐंड राइटिंग्ज ऑफ एम० के० गांधी
हिन्दी नवजीवन, १९-३-१९२२

१. अदालतसे विदा होनेके पूर्व गांधीजी द्वारा दिये गये दो सन्देश विभिन्न पत्रोंसे प्राप्त हुए हैं। यहाँ उन्हें एक साथ दिया जा रहा है।

२. इस अनुच्छेदका अनुवाद स्पीचेज ऐंड राइटिंग्ज ऑफ एम० के० गांधीमें उपलब्ध पाठसे किया गया है

५९. साबरमती जेलसे अन्यत्र भेजे जानेपर टिप्पणी

साबरमती जेल
[२० मार्च, १९२२][1]

मो० क० गांधीने कहा, मेरी गिरफ्तारीके समयसे आजतक जिस एक बातने मेरे साहस और हौसलेको बनाये रखा वह यह है कि देशने मेरे सन्देशपर अमल किया और किसी प्रकारका हिंसात्मक विस्फोट नहीं हुआ।

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट एब्स्ट्रैक्ट्स

६०. भेंट : चक्रवर्ती राजगोपालाचारीसे[2]

यरवदा जेल
पूना
१ अप्रैल, १९२२

गांधीजीने अपने भोजनके बारेमें पूछे जानेपर कहा: मुझे डबल रोटी और बकरीका दूध दिया जाता है; दूध दिन-भरका एक ही समय दे दिया जाता है। मैंने भोजन तीन बार करनेके बजाय दो बार करना शुरू कर दिया है। फलोंके बारेमें पूछनेपर उन्होंने कहा, मुझे दिनमें २ संतरे दिये जाते हैं। मैंने अपनी रोजकी खुराकमें मुनक्के भी लिखे थे; परन्तु अभी मुझे मुनक्के देनेका आदेश नहीं दिया गया है। . . .

. . .महात्माजीने मुझसे कहा है, वे यह नहीं चाहते कि उनके जेल-जीवनके बारेमें कोई शिकायत की जाये।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, ३-४-१९२२

१. गांधीजी और शंकरलाल बैंकर साबरमती जेलसे २० मार्चको अर्द्ध रात्रिके समय स्पेशल ट्रेनसे यरवदा जेल ले जाये गये थे।

२. यह मुलाकात पूनाके पास यरवदा जेलमें हुई थी। इस अवसरपर देवदास गांधी भी उपस्थित थे। विस्तृत विवरणके लिए देखिए परिशिष्ट २।

६१. बालपोथी

शुक्रवार, चैत्र कृष्ण ३ [१४ अप्रैल, १९२२][1]

शिक्षकोंसे[2]

इस बालपोथीको प्रयोग-रूप समझा जाये।

नरहरि[3], काका[4] और दूसरे शिक्षक इसे पढ़ जायें, और उन्हें पसन्द आनेपर ही आचार्य गिडवानीको[5] तथा बलुभाई[6] और दीवान मास्टरको[7] यह दिखाई जाये। वे पास करें तो अन्तमें आनन्दशंकरभाईके[8] पास भेजी जाये, और वे भी पसन्द करें तो छपाई जाये।

आनन्दानन्द[9], वालजी देसाई[10], छगनलाल, मगनलाल, देवदास, जमनादास वगैरा भले इसे देख जायें। महादेवको भी इसकी नकल भेजी जा सके तो भेजी जाये।

यह तो स्वप्नमें भी न सोचा जाये कि यह मैंने लिखी है, इसलिए इसे छपाना चाहिए। मेरी मेहनतका खयाल भी न किया जाये, क्योंकि मुझे तो इसके लिखनेमें आनन्द ही आया था। जिस ढंगसे टाल्स्टाय फार्म आदिमें मैंने बच्चोंको सिखाया था, उसी ढंगपर इसे लिखा है। वहाँ मैं 'माँ' बना था।

पहले तो तीस पाठ लिखनेका विचार था। लेकिन अधिक विचार करनेपर यह प्रतीत हुआ कि पोथीका छोटा होना ही अच्छा है। फिर चाहे बालक एक वर्षमें दो या तीन पोथियाँ पढ़ें।

नरहरि और काकाको उचित लगे, वैसे फेरफार करनेमें हर्ज नहीं।

१. हकीम अजमलखांके नाम अपने १४ अप्रैल, १९२२ के पत्रमें गांधीजीने इस 'बालपोथी' के लेखनकी समाप्तिका उल्लेख किया है। शिक्षकोंके नाम इस पत्रमें और 'सूचना' में लेखन-तिथि चैत्र कृष्ण ३ दी हुई है। यह तिथि १४ अप्रैल, १९२२ को ही थी। पुस्तक वर्षोंतक अप्रकाशित पड़ी रही और पहली बार नवजीवन ट्रस्ट द्वारा १९५१ में प्रकाशित की गई।

२. गांधीजीने बालपोथीके साथ इसे पत्रके रूपमें भेजा था।

३. नरहरि द्वारकादास परीख।

४. काका कालेलकर।

५. प्रो० आसूदोमल टेकचन्द गिडवानी, इलाहाबादके म्योर सेन्ट्रल कालेजमें प्रोफेसर थे और बादमें गुजरात विद्यापीठके आचार्य रहे।

६ और ७. बलुभाई ठाकोर और जीवनलाल दीवान।

८. आनन्दशंकर बापुभाई ध्रुव (१८६९–१९४२); संस्कृतज्ञ, शिक्षाविद् और विद्वान्, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालयके प्रो-वाइस-चांसलर (१९२०-३७)।

९. स्वामी आनन्द, सन् १९१९ में नवजीवनके प्रथम प्रकाशनके समयसे कई वर्षोंतक नवजीवन मुद्रणालयके व्यवस्थापक रहे।

१०. वालजी गोविन्दजी देसाई, गुजरात कालेज, अहमदाबादमें अंग्रेजीके अध्यापक थे; अपने पदसे इस्तीफा देकर वे गांधीजीके साथ हो गये और गांधीजीकी कई गुजराती पुस्तकोंका अंग्रेजीमें अनुवाद किया।

इस पोथीको छपानेका विचार किया गया है या नहीं, इस सम्बन्धमें अथवा पोथीके विषयमें कुछ लिखना हो तो वह अंग्रेजीमें लिखा जाये। मैं मानता हूँ कि उस दशामें (जेलका) सुपरिंटेंडेंट उसे आने देगा।

अगर छपानेका विचार हो तो इसमें चरखे आदिके चित्र देना ठीक होगा। कागज अच्छा लगाना चाहिए और अक्षर तो बड़े होने ही चाहिए।

हिन्दू धर्मके बारेमें लिखूंगा ही।[1]

मोहनदास गांधी

[पुनश्चः]

मेरे विचारमें इस बालपोथीके लेखकके नाते मेरा नाम प्रकाशित न करना ही ठीक होगा।[2]

सूचना

इस बालपोथीके पीछे कल्पना यह है कि विद्यार्थीने एक साल या इससे कम समय कातना सीखनेमें और बारहखड़ी, देवनागरी और प्राकृत तथा साधारण अंक सीखनेमें बिताया है।

'लघुशंका' और 'अपमान', इन दो शब्दोंको लाचारीसे बालपोथीमें जगह दी है। बालक 'पेशाब'के बदले 'लघुशंका'-जैसे सुन्दर शब्दका प्रयोग करें तो ठीक हो, यह समझकर ही उसे जगह दी है। 'अपमान' से अधिक आसान शब्द न मिलनेसे उसे रहने दिया है।

बारहवें पाठमें जो थोड़े कठिन शब्द आये हैं, वे जान-बूझकर रखे गये हैं।

इस पोथीकी रचनामें धारणा यह रही है कि बालक जो-कुछ सीखें, उसपर अमल करें। ऐसी कोई चीज इसमें नहीं दी है, जिसका उन्हें रोज अनुभव न होता हो।

यह पोथी माता और बालकके बीच संवादके रूपमें लिखी गई है। बेशक इसमें कृत्रिमता है, क्योंकि आज भारतवर्षकी माताएँ बालकको शिक्षा देनेके अपने धर्मका पालन बहुधा नहीं करतीं और उसके लिए तैयार भी नहीं होतीं। इस आशासे कि आगे जाकर कुछ माताएँ तो बालकोंके प्रति अपने धर्मका पालन करेंगी, आदर्शके रूपमें इतनी कृत्रिमताको यहाँ स्थान दिया गया है। कल्पना यह है कि बालपोथी तीनसे छः महीनेमें पूरी हो जाये।

शिक्षकको चाहिए कि वह बालकोंसे हरएक पाठ सुन्दर अक्षरोंमें लिखवा ले।

पाठोंकी रचना यह मानकर की गई है कि शिक्षक इन्हें आधार मानकर अपने उत्साहके अनुसार इनको सजायेगा।

लेखक

चैत्र वदी, ३
शुक्रवार

१. सन् १९२२ में गांधीजी जब जेल गये तो काकासाहबने उनसे जेलमें रहते हुए हिन्दू धर्मकी एक बालपोथी तैयार कर देनेका अनुरोध किया था।

२. देखिए "पत्र: यरवदा जेलके सुपरिंटेंडेंटको", १२-८-१९२२।

पाठ पहला

सवेरा

'बेटा, उठो सवेरा हुआ।'

'मुझे नींद आ रही है, माँ!'

'देखो, बहन उठ गई है; तुम भी उठो, दतौन करो; प्रभुका नाम लो।'

'माँ, कितने बजे होंगे?'

'चार तो बज चुके, पक्षी बोलने लगे हैं; तुम्हें सुनाई नहीं पड़ता?'

'शान्ता दीदी भजन गाने लगी है।'

पाठ दूसरा

दतौन

'बेटा, तुमने दतौन की?'

'तुम्हारे दाँत देखूँ? दाँत तो पीले मालूम होते हैं। तुमने ठीकसे माँजे नहीं। जीभ भी साफ नहीं है। जीभका मैल ठीक तरह उतारा नहीं है।'

'दतौन किस चीजकी थी?'

'बबूलकी।'

'नीमकी क्यों नहीं की?'

'नीमकी कड़वी लगती है।'

'इससे क्या? बादमें अच्छा लगता है।'

'आदत पड़नेपर कड़वापन भी अच्छा लगता है।'

पाठ तीसरा

भजनकी तैयारी

साफ-सुथरे हुए बिना भजनमें जाना ठीक नहीं। आँखमें कीचका होना गन्दगीकी निशानी है। भगवान्का भजन करते समय हमें शरीर और मन साफ रखना चाहिए। प्रार्थनामें पालथी मारकर, हाथ जोड़कर और तनकर बैठना चाहिए; न किसीके साथ बात करनी चाहिए; न किसीके सामने देखना चाहिए। भगवान्को हम नहीं देखते, लेकिन वह तो हमें देखता है।

जब तुम सोते हो तब भी मैं तो जागती रहती हूँ। इस कारण मैं तुम्हें देखती हूँ; तुम मुझे नहीं देखते। इसी तरह हम ईश्वरको चाहे न देखते हों, पर वह हमें क्यों नहीं देख सकता?

पाठ चौथा

भजन

मुझे प्यारा, प्यारा, प्यारा दादा रामजीका नाम;
मुझे दूसरी किसी विद्यासे नहीं कुछ काम।
मुझे प्यारा, प्यारा, प्यारा दादा रामजीका नाम।

पिताजी, वरसाकर मुझपर अपनी ममता और प्रीत,
मेरी पट्टीपर लिखाओ मीठे गोविन्दजीके गीत।
मुझे प्यारा, प्यारा, प्यारा दादा रामजीका नाम।
मुझे सुनना है रामजी, श्री रामजीका गान;
मुझे करना है श्री रामजीका स्मरण और ध्यान।
मुझे प्यारा, प्यारा, प्यारा दादा रामजीका नाम।

कालिदास वसावड़ा

पाठ पांचवां

कसरत

'भजन करनेके वाद तुमने आज कौन-सी कसरत की?'

'आज तो मैंने डण्ड पेले थे, और हम सव एक साथ दौड़े भी थे।'

'दौड़ते समय तुम मुंह वन्द रखते हो न? हमें सांस हमेशा नाकसे ही लेनी चाहिए।'

'क्या कोई दूसरी कसरत भी करते हो?'

'हां कभी वैठक लगाते हैं; कभी कुश्ती लड़ते हैं। हम अपनी कसरतको भी खेल समझते हैं। दूसरे खेलोंमें हम 'आटापाटा' खेलते हैं, लुका-छिपी, कवड्डी, खो-खो, गिल्ली-डण्डा आदि जो भाता है, हम हमेशा खेलते हैं।'

'जैसे सवेरे भजनके वाद कसरत करते हैं, उसी तरह शामको भी कुछ-न-कुछ तो होता ही है।'

पाठ छठा

चरखा

'माधव, तुमने आज कितना काता?'

'मां, आज तो मैंने केवल छः लच्छियां काती हैं।'

'भला इतनी ही क्यों? हमेशा तो तुम कमसे-कम आठ लच्छियां कातते हो।'

'हां, मां, आज मुझे थोड़ा आलस आ गया, और पूनियां भी कुछ खराव रही होंगी, जिससे सूत टूटता था।'

'तुम चरखेपर कितने घंटे वैठे थे?'

'तीन घंटे वैठा था। तुम मुझसे कहोगी कि यह तो कम हुआ। वात भी सच है। मैंने तुमसे कहा है कि आज जी अलसा गया था। वन सका तो कल ही यह एक घंटा पूरा कर दूंगा। मुझे रोज कमसे-कम चार घंटे तो कातना ही है।'

'वेटा, तुम देखोगे कि यह एक घंटा वीते हुए घंटेके जितना काम कभी नहीं देगा। वीता हुआ समय कभी वापस नहीं आता।'

'आलस तो हमारा वैरी है।'

पाठ सातवाँ

कातनेका आनन्द

‘तुम्हें कातना अच्छा लगता है?’

‘जब तकुआ टेढ़ा नहीं होता, माल बराबर बैठती है, पहिया बिना आवाजके घूमता है और तार नहीं टूटता, तब तो कातनेमें मुझे खेलने-जैसा मजा आता है। जब मैं चरखेको खूब चलाता हूँ, तो उसमें से भौंरेकी जैसी मीठी गूँज निकलती है, जो आनन्द देती है।’

‘साथ ही, इस विचारसे भी कातनेमें उत्साह मालूम होता है कि अपने ही काते हुए सूतसे मेरे कपड़े बुने जायेंगे।’

पाठ आठवाँ

स्वच्छता

‘तुम्हारे नाखूनोंमें आज मैं मैल देख रही हूँ। कानोंमें भी मैल भरा है। तुमने आज नहाया तो था न?’

‘हाँ, माँ, नहाये बिना तो मैं कभी रहता नहीं।’

‘क्या सिरपर पानी डाल लेने या नदीमें डुबकी लगा लेनेसे नहानेका मतलब पूरा हो जाता है?’

‘नहानेका मतलब है, शरीरके सब अंगोंको खूब साफ करना। शरीरको भिगोकर मलना चाहिए। कान, बगल वगैरा अंगोंको मलकर मैल छुड़ाना चाहिए। नाखून देखने चाहिए। जिसके नाखूनमें मैल होता है, उसे मैलवाले हाथसे खाना अच्छा कैसे लग सकता है?’

‘शरीरकी तरह ही हमारे कपड़े, बिछौना वगैरा भी साफ होने चाहिए।’

‘सुघड़ता उद्यमकी निशानी है। मैल अहदीपनकी निशानी है।’

पाठ नौवाँ

बुरी आदतें

‘हमारे गांवमें बदबू बहुत आती है। इसका कारण क्या होगा?’

‘बेटा, हमारी कुछ पुरानी कुटेवें ही इसका कारण हैं। लोग दूर जंगलमें जानेके बदले बच्चोंको गलियोंमें टट्टी बैठने देते हैं, और खुद गांवकी हदमें ही बैठ जाते हैं। सवेरेके समय तो बदबूके मारे गांवोंके पाससे निकलना कठिन हो जाता है।’

‘लघुशंका’ तो जहाँ जी चाहा वहीं करनेमें हम हिचकिचाते नहीं। इस तरह हम धरती माताका अपमान करते हैं।’

‘हर गन्दगीको तुरन्त ही जमीनमें गाड़ देना चाहिए।’

‘बिल्ली जमीन खोदकर और उसमें अपना काम करके मैलेको धूलसे ढँक देती है। हरएक मनुष्यको ऐसा ही करना चाहिए।’

पाठ दसवाँ

खेत और वाड़ी

'क्या तुम जानते हो कि हमारे गाँवके खेतोंमें क्या-क्या पैदा होता है?'

'हाँ, माँ, मौसमके अनुसार गेहूँ, चना, बाजरा, अरहर, ज्वार वगैरा अनाज पैदा होते हैं। गाँवके पास कोई वाड़ी नहीं है, यह कमी बहुत खटकती है। पासके गाँवमें तो बहुतसे पेड़ हैं, वहाँ घूमनेमें मजा आता है। वहाँ नीम है, इमली है, कुछ आमके पेड़ हैं। कहीं-कहीं बेरके पेड़ भी हैं।

'उस वाड़ीमें साग-सब्जी भी बहुत होती है। सेम, बैंगन, मेथी, सेंगर, भिण्डी, मूली वगैरा सब होता है।'

'क्या ही अच्छा हो, अगर हमारे गाँवके लोग भी इस तरहके पेड़-पौधे लगायें।'

'हमारा गाँव गरीब है। लोगोंमें एका नहीं है। इसलिए हमारे गाँवके खेतोंमें जो अनाज पैदा होता है, लोग उसीसे सन्तोष मानकर बैठे रहते हैं।'

'माँ जब मैं बड़ा हो जाऊँगा, तब फलोंके पेड़ तो जरूर ही लगाऊँगा।'

'बेटा ईश्वर तुम्हारे मनोरथ पूरे करे।'

पाठ ग्यारहवाँ

घरका काम

'देखो, बेटा, जिस तरह शान्ता दीदी घरके काममें मदद करती है, उसी तरह तुम्हें भी करनी चाहिए।'

'लेकिन माँ शान्ता दीदी तो लड़की है; लड़केका काम है खेलना और पढ़ना।'

शान्ता बोल उठी: 'क्या हमें खेलना और पढ़ना नहीं होता?'

'मैं इनकार कब करता हूँ? लेकिन तुम्हें साथ-साथ घरकाम भी करना होता है।'

माँ बोली: 'तो क्या लड़का घरकाम न करे?'

माधवने चटसे जवाब दिया: 'लड़केको तो बड़ा होनेपर कमाना होता है, इसलिए यह जरूरी है कि वह पढ़नेमें ज्यादा ध्यान दे।'

माँने कहा: 'बेटा, यह विचार ही गलत है। घरका काम करनेसे भी बहुत-कुछ सीखनेको मिलता है। तुम्हें अभी पता नहीं कि अगर तुम घर साफ रखो, रसोईमें मदद करो, कपड़े धोओ, बरतन माँजो, तो उससे तुम्हें कितना सारा सीखनेको मिल सकता है।

'घरके काममें आँखका, हाथका, दिमागका उपयोग कुछ कम नहीं करना पड़ता। लेकिन यह उपयोग सहज ही हो जाता है, इसलिए हमें उसका पता नहीं चलता। इस तरह धीरे-धीरे हमारा विकास होता रहता है और यही हमारी सच्ची पढ़ाई है।'

'साथ ही, अगर तुम घरका काम करते रहो, तो उससे तुम्हारी योग्यता और कुशलता बढ़ती है, शरीर कसजाता है और काम करनेका आदी बनता है और फिर बड़े होनेपर तुम किसीके मुहताज नहीं रहते। मैं तो कहती हूँ कि घरका काम सीखने और करनेकी जितनी जरूरत शान्ता दादीको है, उतनी ही तुम्हें भी है।'

पाठ बारहवाँ

प्रभुकी महिमा

'शान्ता और माधव, क्या तुम भाई-बहन कभी आकाशकी ओर देखते हो?'

शान्ता बोली: 'माँ, तुमने ही तो हमें सूरजका दर्शन करना सिखाया है। आकाशकी ओर देखे बिना सूरजके दर्शन कैसे हो सकते हैं?'

माधवने कहा: 'और क्या तुम यह भूल गईं कि चाँदको छोटा-बड़ा होते तुम ही दिखाती हो? दूजका चाँद बहुत छोटा और पूनोका इतना बड़ा होता है। क्या उसे बिना देखे रहा जा सकता है?'

माँ बोली: 'अच्छी बात है, तो फिर बताओ कि आकाशमें तुम और क्या देखते हो?'

शान्ता: 'ये इतने सारे तारे! इनमें से कुछ मेरे पास हों, तो कितना मजा आये!'

माधव: 'दिनमें और रातमें कितनी ही बार बादल आकर सूरज, चाँद और तारोंको ढँक देते हैं और फिर चले जाते हैं! माँ, कितनी ही बार यह सब देखनेमें बड़ा मजा आता है।'

माँ: 'जानते हो, इन सबको किसने बनाया है? और जिस पृथ्वीपर हम चलते हैं, उसे बनानेवाला कौन है?'

माधव: 'माँ, तुमने ही तो हमें सिखाया है कि इन्हें बनानेवाला ईश्वर है।'

शान्ता: 'और माँ तुम ही तो हमसे वह गीत बार-बार गवाती हो। आओ, हम फिर उसे गायें:

> **"रचा प्रभु तूने यह ब्रह्माण्ड सारा;**
> **प्राणोंसे प्यारा, तू ही सबसे न्यारा — रचा०**
> **तू ही भाई-बन्धु, तू ही जनक-जननी;**
> **सकल जगत्में एक तेरा पसारा — रचा०"**

[गुजरातीसे]

बालपोथी, तथा (एस० एन० ८०८१) से।

६२. पत्र: हकीम अजमलखाँको[1]

यरवदा जेल
१४ अप्रैल, १९२२

प्रिय हकीमजी,

कैदियोंको इस बातकी इजाजत है कि वे तीन महीनेमें एक बार बाहर के लोगोंके साथ मुलाकात कर सकते हैं और एक पत्र लिख सकते हैं तथा एक प्राप्त कर सकते हैं। देवदास और राजगोपालाचारी मुझसे मुलाकात कर चुके हैं, और पत्र आपको लिख रहा हूँ।

आपको याद होगा कि श्री बैंकरको और मुझे १८ मार्चको शनिवारके दिन सजा सुनाई गई थी। सोमवारकी रातको कोई १० बजे हमें यह नोटिस मिला कि हमें किसी अज्ञात स्थानपर ले जाया जायेगा। साढ़े ग्यारह बजे पुलिस सुपरिंटेंडेंट हमें उस स्पेशल ट्रेनपर ले गये जो हमारे लिए साबरमती स्टेशनपर तैयार खड़ी थी। रास्तेके लिए एक टोकरी फल रख दिये गये और सफर-भर हमारा पूरा खयाल रखा गया। साबरमती जेलके डाक्टरने, मेरे स्वास्थ्य और धर्मका खयाल रखते हुए मुझे उसी भोजनकी अनुमति दे दी थी जिसका मैं अभ्यस्त हूँ। श्री बैंकरको चिकित्साकी दृष्टिसे रोटी, दूध और फलोंकी अनुमति भी दे दी गई थी। अतः डिप्टी सुपरिंटेंडेंटने, जो हमें ले जा रहे थे, रास्तेमें श्री बैंकरके लिए गायके और मेरे लिए बकरीके दूधकी व्यवस्था कर दी।

खड़की स्टेशनपर हमें उतार लिया गया। वहाँ जेलकी गाड़ी हमें जेलतक पहुँचानेके लिए तैयार खड़ी थी। यह पत्र जेल पहुँचनेके बाद लिख रहा हूँ।

जो कैदी इस जेलमें रह चुके थे उनसे मैं इस जेलकी बुराइयाँ सुन चुका था इसलिए अपने मार्गमें आनेवाली कठिनाइयोंका सामना करनेको तैयार था। श्री बैंकरसे मैंने कह दिया था कि यदि मुझे कातनेकी इजाजत नहीं मिली तो मुझे अनशन करना पड़ेगा, क्योंकि मैं हिन्दू नववर्ष-दिवसपर व्रत ले चुका था कि बीमारी या सफरके दिन छोड़कर प्रतिदिन कमसे-कम आध घंटे जरूर कातूंगा। मैंने उनसे यह भी कहा कि इसलिए यदि मुझे अनशन करना पड़े तो वे दुःखी न हों और किसी भी अवस्थामें मिथ्या सहानुभूतिके कारण मेरे साथ उसमें शामिल न हों। वे मेरी बात समझ गये थे।

इसलिए जेल पहुँचनेपर शामको कोई साढ़े पाँच बजे जब सुपरिंटेंडेंटने मुझे यह बताया कि हमारे साथ जो चरखा है उसे और हमारे पास जो फल हैं उन्हें जेलमें साथ ले जानेकी इजाजत नहीं दी जा सकती तो इससे हमें कोई आश्चर्य नहीं हुआ। मैंने

१. जेल-अधिकारियोंने इसे रोक लिया था। देखिए अगला शीर्षक।

बताया कि चरखा कातना मेरा व्रत है और हम दोनोंको साबरमती जेलमें प्रतिदिन ऐसा करनेकी अनुमति भी थी। इसपर हमें जवाब मिला कि यरवदा साबरमती नहीं है।

मैंने सुपरिंटेंडेंटको यह भी बताया कि स्वास्थ्यका खयाल रखते हुए हम दोनोंको साबरमती जेलमें बाहर सोनेकी अनुमति मिली हुई थी; लेकिन इस जेलमें इसकी भी आशा नहीं की जा सकती थी।

इस तरह हमपर जो पहली छाप पड़ी वह अच्छी नहीं थी। पर मैं इससे तनिक भी उद्विग्न नहीं हुआ। सोमवारके पूरे दिनके उपवास और फिर मंगलवारके आधे उपवाससे मुझे कोई हानि नहीं हुई। पर मैं जानता हूँ कि श्री बैंकरको यह बात खली। वे रातमें चौंकते और डरते रहते हैं और उनके पास किसीका रहना आवश्यक है। शायद जीवनमें उनका यह पहला कड़वा अनुभव था। मैं तो जेलका पुराना पंछी ठहरा।

अगले दिन सुबह सुपरिंटेंडेंट हमसे पूछताछ करने आये। मैंने देखा कि सुपरिंटेंडेंटके बारेमें मेरा पहला खयाल उचित नहीं था। जाहिर है, पिछली शामको तो वे जल्दीमें थे। हम लोग नियमित समयके बाद जेल पहुँचे थे और उन्हें इस बातका कोई अनुमान नहीं था कि मैं कोई ऐसी माँग पेश कर दूँगा जो उनके लिए निःसन्देह एक विचित्र माँग थी। परन्तु अब यह बात उनकी समझमें आ गई कि चरखा रखनेकी मेरी प्रार्थनाके पीछे उन्हें तंग करनेका खयाल नहीं था, बल्कि वस्तुतः सही कहिए या गलत, मेरे लिए वह एक धार्मिक आवश्यकता थी। उन्होंने यह भी जान लिया कि यह कोई भूख-हड़तालका सवाल नहीं है। उन्होंने हुक्म दे दिया कि हम दोनोंको चरखे वापस दे दिये जायें। वे यह भी समझ गये कि जिस भोजनके लिए हमने कहा था वह हम दोनोंके लिए जरूरी है।

जहाँतक मैं देख पाया हूँ, शारीरिक सुख-सुविधाका इस जेलमें ठीक खयाल रखा जाता है। सुपरिंटेंडेंट और जेलर दोनों मुझे होशियार लगते हैं और उनका बरताव अच्छा है। पहले दिनका अनुभव अब मेरे लिए कोई महत्त्व नहीं रखता। सुपरिंटेंडेंट और जेलरके साथ मेरे सम्बन्ध इतने मैत्रीपूर्ण हैं जितने कि बन्दी और उसके प्रहरियोंमें परस्पर हो सकते हैं।

पर यह चीज भी मेरे आगे स्पष्ट हो गई है कि मानवीय तत्त्वका इस जेल-व्यवस्थामें यदि पूर्ण नहीं तो अधिकतर अभाव है। सुपरिंटेंडेंटने मुझे बताया है कि सभी कैदियोंके साथ इसी तरहका व्यवहार होता है जैसा कि मेरे साथ हो रहा है। यदि ऐसा है तो जीवधारियोंकी हैसियतसे कैदियोंकी शायद ही इससे बेहतर देखभाल की जा सके; पर मानवीय भावनाके लिए जेलके नियमोंमें कोई गुंजाइश नहीं।

अगले दिन सुबह जेल-समितिने जो-कुछ किया वह सुनिए। इस समितिमें कलक्टर, एक पादरी और कुछ अन्य लोग हैं। संयोगकी बात है कि इस समितिकी बैठक हमारे जेलमें दाखिल होनेके अगले ही दिन हुई। सदस्य हमारी जरूरतें जाननेके लिए आये। मैंने इस बातका जिक्र किया कि श्री बैंकरको हौलदिलीकी बीमारी है, उन्हें मेरे साथ रखा जाये तथा उनकी कोठरी खुली रहने दी जाये। इस प्रार्थनाके प्रति कैसी तिरस्कारपूर्ण और हृदयहीन उपेक्षा दिखाई गई, मैं बता नहीं सकता। सदस्योंमें

से जाते-जाते एक बोल उठा, 'वकवास'। उन्हें श्री बैंकरके पिछले जीवन, उनकी स्थिति या उनके लालन-पालनके बारेमें कुछ पता नहीं था। इस सबका पता लगाने और जो मेरी दृष्टिमें एक बहुत ही स्वाभाविक प्रार्थना थी उसका कारण मालूम करनेसे, जैसे उन्हें कोई सरोकार ही नहीं था। श्री बैंकरके लिए भोजनसे भी ज्यादा जरूरी चीज यह थी कि वे रातमें आरामसे सो सकें।

इस भेंटके बाद एक घंटेके अन्दर ही एक वार्डर यह हुक्म लेकर आया कि श्री बैंकरको किसी और जगह रखा जायेगा। मेरी स्थिति उस मांकी तरह हो गई जिससे अचानक उसकी इकलौती सन्तान छिन रही हो। इसे एक शुभ संयोग ही समझना चाहिए कि श्री बैंकर मेरे साथ गिरफ्तार हुए और हम दोनोंपर एक साथ मुकदमा चला। साबरमतीमें मैंने जिला मजिस्ट्रेटको यह लिखा था कि यदि सरकार श्री बैंकरको मुझसे अलग न करे तो मैं उसे एक कृपा मानूंगा और यदि श्री बैंकर मेरे साथ ही रहें तो हमें एक दूसरेका सहारा रहेगा। वे मेरे पास 'गीता' पढ़ते थे और मेरे दुर्बल शरीरकी देखभाल रखते थे। श्री बैंकरकी माताका कुछ महीने पहले ही देहान्त हुआ था। मृत्युके कुछ दिन पहले जब मैं उनसे मिला था तो उन्होंने मुझसे कहा था, मैं अब शान्तिसे मरूँगी, क्योंकि मेरा बेटा आपकी देखरेखमें पूर्णतया सुरक्षित है। उस देवीको इस बातका क्या पता था कि जरूरतके वक्त मैं उसके बेटेकी रक्षा करनेमें बिलकुल असहाय सिद्ध हो जाऊँगा। श्री बैंकर जब मेरे पाससे जाने लगे तो मैंने उन्हें ईश्वरके हाथोंमें सौंप दिया और यह आश्वासन दिया कि ईश्वर उनकी देखभाल और रक्षा करेगा।

उसके बाद उन्हें आध घंटेके लिए मेरे पास आकर धुनाई सिखानेकी इजाजत मिल गई है। उन्हें धुनाई आती है। वे यह काम वार्डरकी उपस्थितिमें करते हैं ताकि जिस मकसदके लिए उन्हें मेरे पास लाया जाता है उसके अलावा हम किसी और विषयपर बातचीत न करें।

इन्स्पेक्टर जनरल और सुपरिटेंडेंटको मैं इस बातके लिए राजी करनेकी कोशिश कर रहा हूँ कि श्री बैंकरको जितनी देर मेरे पास रहनेकी इजाजत है उसमें मुझे उनके साथ 'गीता' पढ़ने दी जाये। यह प्रार्थना अभी विचाराधीन है।

अधिकारियोंके साथ न्याय करनेके लिए यह कहना आवश्यक है कि श्री बैंकरके शारीरिक सुख व आरामका पूरी तरह खयाल रखा जाता है और वे अस्वस्थ तो नहीं दिखते। उनकी हौलदिलीकी बीमारी भी धीरे-धीरे कम हो रही है।

सात पुस्तकें अपने पास रखनेके लिए मुझे अपनी सारी चतुराई काममें लानी पड़ी। इनमें से पांच बिलकुल धार्मिक हैं और बाकी दोमें से एक पुराना शब्दकोश है जो मेरे लिए अमूल्य है और एक उर्दूकी किताब है; वह मुझे मौलाना अबुल कलाम आजादने[1] भेंट की थी। सुपरिटेंडेंटको इस बातके कड़े आदेश थे कि कैदियोंको जेल-पुस्तकालयकी पुस्तकोंके अलावा और कोई पुस्तक न दी जाये। मेरे आगे यह सुझाव रखा गया कि मैं उपरोक्त सातों पुस्तकें जेल-लाइब्रेरीको भेंट कर दूं और फिर उन्हें

१. १८८९–१९५८; सुप्रसिद्ध कांग्रेसी नेता।

इसके साथ यह तथ्य भी जुड़ा हुआ है कि राजनीतिक उद्देश्योंके लिए जेलोंका दुरुपयोग हो रहा है, जिससे राजनीतिक कैदीपर जेलकी दीवारोंके भीतर भी राजनीतिक अत्याचार होता रहता है।

अपने जेल-जीवनकी यह तसवीर मुझे अपनी दिनचर्या बताकर पूरी करनी चाहिए। मेरी कोठरी उम्दा — बिलकुल साफ-सुथरी — और हवादार है। बाहर सोनेकी इजाजत मेरे लिए एक वरदान है, क्योंकि मैं खुलेमें सोनेका आदी हूँ। मैं प्रातःकाल ४ बजे प्रार्थनाके लिए उठ जाता हूँ। आश्रमवासियोंको यह जानकर प्रसन्नता होगी कि मैं सवेरेकी प्रार्थनाके श्लोकोंका बिना नागा पाठ करता हूँ और जो भजन मुझे याद हैं उनमें से एकाध भजन गा भी लेता हूँ। साढ़े छः बजे मैं अपना अध्ययन आरम्भ कर देता हूँ। रोशनी जलानेकी इजाजत नहीं है। इसलिए जैसे ही पढ़ने लायक उजाला होता है मैं काम शुरू कर देता हूँ जो शामको सात बजे जाकर रुकता है, क्योंकि उसके बाद कृत्रिम प्रकाशके बिना लिखा-पढ़ा नहीं जा सकता। आश्रममें होनेवाली शामकी प्रार्थना कर चुकनेके बाद आठ बजे मैं बिस्तरपर लेट जाता हूँ। मेरे अध्ययनमें 'कुरान शरीफ', तुलसीकृत 'रामायण', श्री स्टैंडिंग द्वारा दी गई ईसाई धर्मकी पुस्तकें और उर्दूकी पढ़ाई शामिल है। छः घंटे अध्ययनमें और चार घंटे कताई और धुनाईमें लगाता हूँ। पहले मैं कताईपर तीस मिनट ही लगाता था क्योंकि मेरे पास पूनियाँ बहुत कम थीं। अधिकारियोंने अब कृपापूर्वक मुझे कुछ रुई दे दी है। रुई बेहद गन्दी है। लेकिन धुनाई शुरू करनेवालेको शायद इससे अच्छी ट्रेनिंग मिल जाती है। मैं एक घंटा धुनाईमें और तीन घंटे कताईमें लगाता हूँ। अनसूयाबाईने और अब मगनलाल गांधीने कुछ पूनियाँ भेज दी हैं। मैं चाहूँगा कि वे अब और पूनियाँ न भेजें। उनमें से कोई एक अच्छी साफ रुई भेज सकता है, पर वह भी एक बारमें दो पौंडसे ज्यादा न हो। मैं खुद अपनी पूनियाँ बनाना चाहता हूँ। मेरा खयाल है कि हर कातनेवालेको धुनाई सीखनी चाहिए। पहले सबकके बाद ही मैं धुनाई करने लग गया था। कताईकी तुलनामें धुनाई बहुत आसानीसे सीखी जा सकती है, पर उसे करते रहना कठिन है।

कताई मुझपर हावी होती जा रही है। ऐसा लगता है कि दिन-प्रतिदिन मैं दरिद्रतम व्यक्ति होता जा रहा हूँ और उसी हिसाबसे ईश्वरके अधिक निकट होता जा रहा हूँ। इन चार घंटोंको मैं दिनमें सबसे अधिक कीमती मानता हूँ। अपनी मेहनतका फल सामने नजर आने लगा है। इन चार घंटोंमें एक भी अपवित्र विचार मेरे मनमें नहीं आता। जब मैं 'गीता', 'कुरान शरीफ', 'रामायण' पढ़ता हूँ तो मन इधर-उधर भटकता है। परन्तु चरखा या धुनकी चलाते हुए मन एकाग्र हो जाता है। मैं जानता हूँ कि हरएकके लिए यह बात लागू नहीं होगी और न हो सकती है। मेरे मनमें निर्धन भारतकी आर्थिक मुक्तिके साथ चरखेका ऐसा तादात्म्य स्थापित हो गया है कि मुझपर उसका जादू निराला ही है। कताई-धुनाई और अध्ययन सम्बन्धी मेरी प्रवृत्तियोंके बीच मनमें एक जबरदस्त खींचतान जारी है। इसलिए बहुत सम्भव है कि अपने अगले पत्रमें आपको यह पढ़नेको मिले कि कताई और धुनाईके घंटे बढ़ गये हैं।

कृपया मौलाना अब्दुल बारी साहबसे कहिए कि मैं चाहता हूँ कि वे कताईमें, जिसे अभी-अभी शुरू करनेकी उन्होंने मुझे खबर दी है, मेरे साथ होड़ करें। उनकी मिसालसे बहुतसे लोग इस महान् कार्यको अपना कर्त्तव्य समझकर अपना लेंगे।

आश्रमवासियोंको यह सूचना दी जा सकती है कि मैंने जिस पहली पोथीको लिखनेका वायदा किया था वह पूरी हो गई है। मैं समझता हूँ कि उसे उनके पास भेजनेकी मुझे अनुमति मिल जायेगी।[1] उम्मीद है कि धर्मकी पहली पोथी भी मैं पूरी कर ही लूंगा। मैंने दक्षिण आफ्रिकाके संघर्षका इतिहास लिखनेका भी वायदा किया था।

तीन बारके बजाय मैं यहाँ केवल दो बार भोजन करता हूँ, क्योंकि उसमें सुविधा है। परन्तु मैं काफी खा लेता हूँ। भोजनके मामलेमें सुपरिटेंडेंट हर तरहकी सुविधा दे रहे हैं। पिछले कुछ दिनोंसे उन्होंने मेरे लिए बकरीके दूध और मक्खनकी व्यवस्था कर दी है और एक-दो दिनमें, आशा है, मैं खुद अपनी चपातियाँ बनाने लगूंगा।

मुझे दो बिलकुल नये भारी गर्म कम्बल, नारियलकी चटाई और दो चादरें मिली हुई हैं। अब एक तकिया भी दे दिया गया है। वैसे तो उसकी कोई खास जरूरत नहीं थी। मैं किताबोंका या अपने फाजिल कपड़ोंका तकिया बना लेता था। तकिया मुझे राजगोपालाचारीके साथ हुई बातचीतके फलस्वरूप दिया गया है। नहानेके लिए एकान्त स्थान है और प्रतिदिन नहानेकी इजाजत है। एक और कोठरी है; जब वह किसी और काम न आ रही हो तो मैं वहाँ काम कर सकता हूँ। सफाई वगैराकी व्यवस्था बिलकुल ठीक कर दी गई है।

इसलिए मित्रोंको मेरे बारेमें किसी तरहकी चिन्ता करनेकी जरूरत नहीं है। मैं एक मुक्त पक्षीकी तरह खुश हूँ। और न मैं यही समझता हूँ कि मैं यहाँ बाहरसे कम उपयोगी काम कर रहा हूँ। यहाँ रहना मेरे लिए एक तरहका अनुशासन है। साथी कार्यकर्त्ताओंसे बिछोह होनेकी जरूरत थी ताकि यह जाना जा सके कि हमारा कोई जीवन्त संगठन है या इसका दारमदार केवल एक आदमीपर है और यह चार दिनोंकी चाँदनी-भर है? मेरे मनमें तो कोई संशय नहीं है, इसलिए मुझे यह जाननेकी भी उत्सुकता नहीं है कि बाहर क्या हो रहा है। यदि मेरी प्रार्थना सच्ची है और वह अहंकाररहित हृदयसे निकलती है तो मैं जानता हूँ कि वह निश्चय ही किसी भी प्रपंचसे कहीं अधिक फल प्रदायिनी होगी।

मुझे दासके स्वास्थ्यकी चिन्ता है। उनकी सहधर्मिणीसे मुझे सदा यह शिकायत रहेगी कि वे मुझे उनके स्वास्थ्यके बारेमें नियमित खबर नहीं देतीं। आशा है, मोतीलालजीका दमा अब ठीक हो गया होगा।

श्रीमती गांधीको कृपया समझाइए कि वे मुझसे मुलाकात करनेका विचार न करें। देवदासने, जब वह मुझसे मिलने आया, एक तमाशा-सा खड़ा कर दिया था। उसे जब सुपरिटेंडेंटके दफ्तरमें लाया गया तो वहाँ मेरा खड़ा रहना उसे बर्दाश्त नहीं हुआ।

१. जेल-अधिकारियोंने गांधीजीको इस गुजराती बालपोथीकी पाण्डुलिपि आश्रम भेजनेकी अनुमति नहीं दी थी; देखिए "पत्र : यरवदा जेलके सुपरिटेंडेंटको", १२-८-१९२२।

वह स्वाभिमानी और भावुक लड़का फूट-फूटकर रोने लगा। मैं उसे बड़ी मुश्किलसे चुप करा पाया। उसे यह समझना चाहिए था कि मैं एक कैदी हूँ और इसलिए मुझे सुपरिंटेंडेंटके सामने बैठनेका कोई अधिकार नहीं है। राजगोपालाचारी और देवदासको कुर्सियाँ दी जा सकती थीं और देनी चाहिए थीं; पर निश्चय ही इसमें किसी तरहकी अशिष्टता दिखानेका उद्देश्य नहीं था। मेरा खयाल है कि सुपरिंटेंडेंट आम तौरपर मुलाकातोंके समय उपस्थित नहीं रहता। लेकिन मेरे मामलेमें, जाहिर है, वे कोई खतरा मोल लेना नहीं चाहते थे। मैं नहीं चाहता कि श्रीमती गांधी आयें और फिर वैसा ही कुछ हो, और न मैं यह चाहता हूँ कि कुर्सी देकर मुझपर विशेष कृपा की जाये। मेरी समझमें प्रतिष्ठा मेरे खड़े रहनेमें ही है; अभी हमें कुछ दिनतक उस समयका इन्तजार करना होगा जब अंग्रेज खुद-ब-खुद और सच्चे दिलसे जीवनके हर क्षेत्रमें हमारे प्रति उचित शिष्टतासे पेश आने लगेंगे। लोग मुझसे मिलने आयें इसकी मुझे भी इच्छा नहीं है और मैं चाहूँगा कि मित्र और सम्बन्धी अपने मनको काबूमें रखें।[1] कामकाजकी दृष्टिसे आवश्यक मुलाकातें हमेशा की जा सकती हैं, चाहे परिस्थितियाँ प्रतिकूल हों या अनुकूल।

आशा है कि छोटानी मियाँने जो चरखे दानमें दिये थे वे पंचमहाल, पूर्वी खानदेश और आगरेकी गरीब मुसलमान औरतोंमें बाँट दिये गये होंगे। आगरेसे जिस मिशनरी महिलाने मुझे पत्र लिखा था, उसका नाम मैं भूल गया हूँ। कृस्टोदासको शायद याद हो।

उर्दूकी किताब मैं जल्दी ही खत्म करनेवाला हूँ। उर्दूका एक अच्छा शब्दकोश और कोई एक किताब, जो आप या डा० अन्सारी सुझा सकें, पाकर मुझे बड़ी खुशी होगी।

गुएबसे कृपया यह कह दीजिए कि मैं उनके बारेमें निश्चिन्त हूँ।

आशा है आप अच्छी तरह होंगे। आपसे यह आशा करना कि आप अपनी शक्तिसे अधिक काम नहीं करेंगे, एक असम्भव चीजकी आशा करना है। इसलिए मैं ईश्वरसे केवल यही प्रार्थना कर सकता हूँ कि वह आपको इस तमाम बोझके बावजूद स्वस्थ रखे।

प्रत्येक कार्यकर्त्ताको मेरा स्नेहाभिवादन।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

हस्तलिखित अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ८०११) तथा यंग इंडिया, २८-२-१९२४ से।

१. मित्र और सम्बन्धी तो गांधीजीसे बराबर मिलने आते ही थे; मगनलाल गांधीकी ऐसी ही एक मुलाकातके लिए देखिए परिशिष्ट ३।

६३. पत्र : बम्बई सरकारको

यरवदा जेल
१२ मई, १९२२

प्रेषक, कैदी सं० ८६७७
सेवामें
बम्बई सरकार

कैदीने अपने एक मित्र हकीम अजमलखांके नाम जो पत्र लिखा था उसपर सरकारके आदेशके सम्बन्धमें और उक्त पत्रके लौटाते समय उसके सम्बन्धमें यरवदा जेलके सुपरिन्टेन्डेन्टने उस आदेशके कुछ अंश कैदीको पढ़कर सुनाये, कैदी सं० ८६७७ का निवेदन है कि सुपरिन्टेन्डेन्टसे उक्त आदेशकी एक नकल पानेकी प्रार्थना करनेपर उन्होंने यह कहा कि कैदीको उसकी नकल देनेका अधिकार उन्हें नहीं है।

कैदी उक्त आदेशकी एक नकल प्राप्त करना चाहता है और मित्रोंके पास भेजना चाहता है ताकि वे यह जान सकें कि कैदी किन परिस्थितियोंके कारण मित्रोंको अपनी कुशल-क्षेमका पत्र नहीं भेज सका। कैदीकी प्रार्थना है कि सुपरिन्टेन्डेन्टको उक्त आदेशकी एक नकल कैदीको देनेकी हिदायत दे दी जाये।

आदेशमें, जहांतक कैदीको याद है और वह उसे समझा है, सरकारने कैदीके पत्रको उसमें लिखे पतेपर भेजना इस आधारपर अस्वीकार किया है कि (१) पत्रमें कैदीने अपने अलावा दूसरे कैदियोंका उल्लेख किया है और (२) पत्रसे राजनीतिक विवाद खड़ा हो सकता है।

पहले कारणके बारेमें कैदीका निवेदन है कि पत्रमें ऐसा कोई उल्लेख नहीं है जिसका कैदीकी अपनी दशा और कुशल-क्षेमसे सम्बन्ध न हो।

दूसरे कारणके बारेमें कैदीका निवेदन यह है कि एक सार्वजनिक विवादकी सम्भावना किसी कैदीको हर तीसरे महीने मित्रों और सम्बन्धियोंको अपनी कुशल-क्षेमका एक पत्र भेजनेके अधिकारसे वंचित करनेका कोई न्यायोचित कारण नहीं मानी जा सकती। उक्त आधारकी ध्वनि कैदीकी रायमें बहुत ही खतरनाक है अर्थात् इससे यह ध्वनित हुआ कि भारतीय जेल कोई गुप्त विभाग है। कैदीका कहना यह है कि भारतीय जेल-विभाग एक खुला सरकारी विभाग है, जिसकी आलोचना किसी भी अन्य विभागकी तरह, सर्वसाधारण द्वारा की जा सकती है।

कैदीका कहना यह है कि उसका उक्त पत्र सही अर्थोंमें एक ऐसा पत्र है, जिसमें उसकी अपनी कुशल-क्षेमके बारेमें सूचना है। दूसरे कैदियोंका उल्लेख उस सूचनाकी पूर्तिके लिए आवश्यक था। यदि पत्रमें उसे कोई मिथ्या कथन या अतिरंजना दिखाई जाये तो वह उसे सहर्ष सुधार देगा। लेकिन उस पत्रको, सरकार द्वारा सुझाये गये ढंगसे काट-छांटकर भेजनेका अर्थ तो अपने मित्रोंके सामने अपनी दशाके बारेमें एक गलत तसवीर पेश करना होगा।

इसलिए जो सुधार आवश्यक प्रतीत हो सकते हैं, वह सब करवाकर जबतक सरकार कैदीके पत्रको भेज नहीं देती तबतक कैदीके अपने मित्रोंको अपनी कुशल-क्षेमका पत्र भेजनेके अपने अधिकारका उपयोग करनेकी कोई इच्छा नहीं है, क्योंकि सरकारने उक्त आदेशके अधीन जो प्रतिबन्ध लगाये हैं, उनसे उक्त अधिकार व्यर्थ ही हो जाता है।

मो० क० गांधी
कैदी सं० ८६७७

हस्तलिखित अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ८०१३) तथा यंग इंडिया, २८-२-१९२४से।

६४. पत्र : हकीम अजमलखाँको[1]

यरवदा जेल
१२ मई, १९२२

प्रिय हकीमजी,

१४ अप्रैलको मैंने आपको एक लम्बा पत्र लिखा था, जिसमें मेरे बारेमें सभी बातें आ गई थीं। औरोंके अलावा, उसमें श्रीमती गांधी और देवदासके लिए भी सन्देश थे। सरकारने अभी-अभी यह आदेश दिया है कि जबतक मैं उसके मुख्य अंश न हटा दूं वह पत्र आपके पास नहीं भेजा जायेगा। अपने इस फैसलेके उसने कारण भी बताये हैं। पर चूंकि मुझे उस आदेशकी नकल देनेसे इनकार कर दिया गया है, इसलिए मैं उसे न तो हूबहू आपके पास भेज सकता हूँ और न स्मृतिसे ही उसका आशय व्यक्त कर सकता हूँ।

मैंने सरकारको एक पत्र लिखा है जिसमें उक्त कारणोंके औचित्यपर आपत्ति उठाई है और यह कहा है कि यदि वह मेरे पत्रमें कोई मिथ्या कथन या अतिरंजना दिखाये तो मैं उसे सुधारनेको तैयार हूँ। मैंने उसे यह भी बता दिया है कि यदि मैं अपना पत्र बिना काट-छांट किये नहीं भेज सकता, तो फिर मित्रोंको नियमित पत्र लिखनेकी भी मेरी कोई इच्छा नहीं है; क्योंकि तब उसका कोई मूल्य नहीं रहता। इसलिए यदि सरकारने अपना फैसला नहीं बदला तो जेलसे आपको या अन्य मित्रोंको यह मेरा प्रथम और अन्तिम पत्र होगा।

आशा है आप अच्छी तरह होंगे,

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी
कैदी सं० ८६७७

हकीम अजमलखाँ
दिल्ली

हस्तलिखित अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ८०१२) तथा यंग इंडिया, २८-२-१९२४से।

1. जेल-अधिकारियोंने इस पत्रको भी रोक लिया था।

६५. पत्र : यरवदा जेलके सुपरिंटेंडेंटको

यरवदा जेल
१२ अगस्त, १९२२

सुपरिंटेंडेंट
यरवदा सेंट्रल जेल
महोदय,

कुछ समयसे मेरे तीन मामले विचाराधीन हैं।

(१) गत मईमें मैंने अपने मित्र दिल्लीके हकीम अजमलखाँको अपना नियमित तिमाही पत्र लिखा था। सरकार उसे तबतक भेजनेको तैयार नहीं हुई जबतक कि मैं उसके उन अंशोंको जिनपर उसे आपत्ति है, काट न दूं। चूंकि मैं उन अंशोंका जेलकी अपनी दशासे घनिष्ठ सम्बन्ध मानता हूँ, इसलिए मैंने उन्हें हटाना उचित नहीं समझा। अतः मैंने सरकारको सादर यह सूचना दी कि यदि मैं अपने मित्रोंको अपनी दशाका पूरा विवरण नहीं दे सकता तो मैं उन्हें नियमित पत्र भेज सकनेकी छूट या अधिकारका उपयोग नहीं करना चाहता। साथ ही, मैंने अपने मित्रको एक संक्षिप्त पत्र लिखकर यह बताया कि मैंने उन्हें जो पत्र लिखा था उसे भेजनेकी अनुमति नहीं मिली है, और सरकार जबतक उन पाबन्दियोंको जो उसने लगाई हैं हटा नहीं लेती, मैं अपनी कुशल-क्षेमसे सम्बन्धित कोई पत्र नहीं लिखूंगा। इस दूसरे पत्रको भी सरकारने भेजना स्वीकार नहीं किया और मैंने यह माँग की कि जिस तरह पहला पत्र मुझे लौटा दिया गया है, उसी तरह यह दूसरा पत्र भी लौटा दिया जाये।

(२) कर्नल डेलजीलसे गुजराती भाषाकी एक 'बालपोथी'[1] लिखनेकी अनुमति मिल जाने और यह आश्वासन प्राप्त हो जानेपर कि मैं अपने मित्रोंके पास उसे प्रकाशनार्थ भेजूं तो कोई आपत्ति नहीं होगी, मैंने वह 'बालपोथी' लिखी और कर्नल डेलजीलको दे दी कि वे उसे साथके पत्रमें बताये गये पतेपर भेज दें। सरकारने इस पोथीको उक्त पतेपर भेजना इस कारण अस्वीकार कर दिया कि कैदियोंको उनकी सजाकी मीयादके दौरान पुस्तकें प्रकाशित करनेकी इजाजत नहीं दी जा सकती। मेरी इच्छा यह कदापि नहीं है कि उस पोथीपर प्रकाशक या लेखकके रूपमें मेरा नाम रहे। उसके साथ किसी भी रूपमें मेरा नाम जुड़ा न होनेपर भी, वह पोथी यदि प्रकाशित न की जा सकती हो तो मैं चाहूँगा कि वह मुझे लौटा दी जाये।

(३) सरकारने मुझे स्वयं ही यह सूचना देनेकी कृपा की थी कि मैं पत्रिकाएँ मँगा सकता हूँ। इसलिए मैंने 'टाइम्स ऑफ इंडिया' का साप्ताहिक अंक, कलकत्तेसे निकलनेवाला एक उच्च कोटिका मासिक 'मॉडर्न रिव्यू,' और हिन्दीकी एक पत्रिका 'सरस्वती,' मँगानेकी अनुमति माँगी। इनमें से अन्तिमकी अनुमति दे दी गई है।

१. देखिए "बालपोथी", १४-४-१९२२।

लेकिन बाकी दोके बारेमें अभीतक मुझे किसी फैसलेकी सूचना नहीं मिली है। उसके बारेमें सरकारके फैसलेकी मैं उत्सुकतासे बाट देख रहा हूँ।

आपका आज्ञाकारी,
मो० क० गांधी

हस्तलिखित अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ८०१४) से।

६६. पत्र: जमनालाल बजाजको[1]

[यरवदा जेल]
५ अक्तूबर, १९२२

चि० जमनालाल,

यह पत्र सुपरिटेंडेंटकी अनुमति लेकर भेज रहा हूँ।

कल तो मैं मोहके वशीभूत होकर रामदासके विषयमें अपने विचार बहुत उतावलीमें व्यक्त कर गया। जब हम अलग हुए तो मैं पछताया और मैंने देखा कि अपनेको सावधान समझनेवाला आदमी भी किस तरह मोहमें आकर बिना विचारे बोल जाता है।

कल मैंने पिताका धर्म नहीं निभाया।

मुझे लगता है कि चि० रामदास जबतक अपने जीवनका आदर्श निश्चित नहीं कर लेता और अपनी इच्छानुसार कहीं जम नहीं जाता तबतक उसका शादी करना पाप होगा। उसकी इच्छा है कि वह शादी मेरी मान-प्रतिष्ठाके बलपर नहीं, बल्कि अपने गुणोंके आधारपर करे। हम सब ऐसा ही चाहते हैं। इसलिए रामदासको कोई धन्धा चुन लेना चाहिए। उसीपर लड़कीके माँ-बाप भी विचार करेंगे और लड़की खुद भी समझ सकेगी कि मुझे कहाँ जाना है। इसलिए हम सबका और अब आप लोगोंका, जो बाहर हैं, पहला काम यह है कि रामदासको कहीं ठिकानेसे लग जानेमें मदद दें।

उसे पढ़नेका लोभ हो तो वह शौकसे पढ़े। जब उसका बूढ़ा बाप ही अभी बालकोंकी तरह अभ्यास कर रहा है तो उसकी तो जवानी अभी शुरू ही हो रही है। अगर उसे व्यापारमें लगना हो तो लग जाये, और अगर आश्रममें या राष्ट्रीय शालामें उसका मन लगे तो वैसा करे। हरिलालके साथ रहना हो तो उसके साथ

१. यह पत्र गुजराती और अंग्रेजी दोनों भाषाओंमें उपलब्ध है। अंग्रेजीमें लिखा पत्र भी गांधीजीके स्वाक्षरोंमें है। किन्तु अनुवाद गुजराती पत्रसे ही किया जा रहा है, क्योंकि गांधीजी जमनालालजीको गुजराती अथवा हिन्दीमें ही पत्र लिखा करते थे। अंग्रेजी मसविदा, स्पष्टतः जेल-अधिकारियोंकी सुविधाके लिए तैयार किया गया होगा।

रहे। मेरी तो सलाह यह है कि वह किसी काममें लग जाये और एक वर्षका अनुभव प्राप्त करनेके बाद ही सगाईका विचार करे।

धनी माँ-बापकी लड़की शीलवती हो तो भी जबतक वह अपनी इच्छासे गरीबी पसन्द न करे तबतक रामदासको उससे शादी नहीं करनी चाहिए। यदि करता है तो यह खुदको दुःखी बनाने जैसा होगा और साथ ही लड़की तथा उसके माँ-बापको भी। सही और निरापद रास्ता तो मुझे यही लगता है कि किसी गरीबसे-गरीब परिवारकी कोई गुणवती लड़की ढूँढ़ी जाये। इसमें समय भी लगे तो कोई परवाह नहीं।

बाके प्रति मैं गलत मोहमें पड़ गया था। मैं समझता हूँ कि उसके प्रति [इस बातमें] कठोर रहना ही मेरा धर्म है। माँ-बापको अपने स्वार्थकी खातिर अपनी सन्तानकी प्रवृत्ति और इच्छामें रुकावट नहीं डालनी चाहिए। लेकिन कल तो मैंने उल्टे घड़ी-भर बाकी हाँमें-हाँ भरी। मेरी सलाह है कि बाको कड़वा घूंट पीकर रामदासका वियोग भी सन्तोषके साथ बरदाश्त कर लेना चाहिए। रामदास राजगोपालाचारी-जैसे चरित्रवान् व्यक्तिके पास जाये और वहाँ सुखी रहे, इसके लिए बाको आशीर्वाद देना चाहिए। इसीमें बाका परम श्रेय है। उसका पुत्र सद्‌गुणी है, इसीमें वह सन्तोष माने। रामदासको उनका साहचर्य प्राप्त हो, यही उचित है।

तुम अपनी इच्छासे मेरे दूसरे देवदास बने हो। अब सोचो तुमने कितनी बड़ी जिम्मेदारी ओढ़ी है। अब सभी लड़कोंकी इच्छाएँ तुम्हींको पूरी करनी पड़ेंगी। ईश्वर तुम्हारी सहायता करे। मैं तो तुम्हारे प्रेमका योग्य पात्र बननेकी कोशिश करता ही रहता हूँ।

अब तुम्हारी धार्मिक समस्याके बारेमें। जो अपवित्र विचारोंसे मुक्त हो गया, उसे मोक्ष प्राप्त हो गया समझो। मनसे अपवित्र विचारोंका सर्वथा नाश बड़ी तपश्चर्यासे सम्भव होता है। उसका एक ही उपाय है। मनमें जैसे ही कोई अपवित्र विचार आये, उसके मुकाबले पवित्र विचार लाकर खड़ा कर दो। यह ईश्वरकी कृपासे ही सम्भव है। यह कृपा तभी प्राप्त होगी जब चौबीसों घंटे ईश्वरका नाम जपते रहोगे और यह समझ लोगे कि वह अन्तर्यामी है। भले ही [आरम्भमें] रामनाम जीभपर हो और मनमें दूसरे विचार आते रहें, किन्तु रामनाम इतने प्रयत्नपूर्वक लेना चाहिए कि जो जीभपर है, अन्तमें वही हृदयमें प्रथम स्थान प्राप्त कर ले। इसके सिवा मन चाहे जितने हाथ-पैर मारे किन्तु एक भी इन्द्रियको उसके वशमें नहीं होने देना चाहिए। जो लोग इन्द्रियोंको मन जहाँ चाहता है वहाँ जाने देते हैं, उनका नाश ही हो जाता है। किन्तु यदि आदमी इन्द्रियोंको बलात् ही सही अपने काबूमें रखे तो वह किसी-न-किसी दिन अपवित्र विचारोंपर भी काबू पा ही लेगा। मैं तो जानता हूँ कि यदि आज भी मैं अपने मनके अनुसार इन्द्रियोंको चलने दूं तो आज ही मेरा नाश हो जाये। अपवित्र विचार आनेसे विचलित नहीं होना चाहिए। प्रयत्नका सारा क्षेत्र हमारे लिए खुला पड़ा है। परिणाम ईश्वरके हाथमें है, इसलिए उसकी चिन्ता नहीं करनी चाहिए। जब मनमें अपवित्र विचार आये तो समझो कि तुम जानकीबाईके साथ बेवफाई कर रहे हो। और कोई भी साधु पति अपनी पत्नीके साथ बेवफाई नहीं कर सकता। तुम साधु पुरुष हो। सामान्य उपाय जानते ही हो। अल्पाहार ही

करो। मनको सिर्फ अपने मालिककी अधीनता स्वीकार करने दो। आँखोंमें मालिन्य आने लगे तो उनको उसी दम बन्द करो, मानो उन्हें फोड़ डालोगे। बराबर पवित्र पुस्तकोंको ही पाठ करो। ईश्वर तुम्हारी सब प्रकारसे रक्षा करे।

शुभेच्छु,
बापूके आशीर्वाद

[गुजरातीसे]
पांचवें पुत्रको बापूके आशीर्वाद

९७. पत्र : यरवदा जेलके सुपरिंटेंडेंटको[1]

यरवदा जेल
१४ अक्तूबर, १९२२

सुपरिंटेंडेंट
यरवदा सेन्ट्रल जेल
महोदय,

सरकारने मुझे 'मॉडर्न रिव्यू' मँगानेकी अनुमति नहीं दी, उस सिलसिलेमें मेरा यह निवेदन है कि पिछले सप्ताह तिमाही मुलाकातमें मेरी पत्नीके साथ जो मित्रगण आये थे, उन्होंने मुझे बताया था कि सरकारने यह घोषणा की है कि कैदी पत्रिकाएँ मँगा सकते हैं। यदि यह सूचना सही है तो मैं पुनः प्रार्थना करता हूँ कि मुझे मद्राससे प्रकाशित व श्री नटेसन द्वारा सम्पादित मासिक पत्रिका 'इंडियन रिव्यू' मँगानेकी इजाजत दी जाये।

आपका आज्ञाकारी,
मो० क० गांधी

[पुनश्च :]

('इंडियन रिव्यू'की अनुमति नहीं दी गई। — मो० क० गांधी)

अंग्रेजी मसविदे (एस० एन० ८०१५) की फोटो-नकल तथा यंग इंडिया, ६-३-१९२४ से।

1. पत्र यंग इंडियाने गांधीजीके जेलसे किये गये पत्र-व्यवहारकी दूसरी किस्तके रूपमें, टिप्पणीके साथ प्रकाशित किया गया था।

६८. पत्र : यरवदा जेलके सुपरिटेंडेंटको

यरवदा जेल
२० दिसम्बर, १९२२

सुपरिटेंडेंट
यरवदा सेन्ट्रल जेल
महोदय,

आपने मुझे कृपापूर्वक यह बताया था कि जिन लोगोंने हालमें मुझसे मिलनेकी अनुमति माँगी थी, उनमें से पण्डित मोतीलाल नेहरू और हकीम अजमलखाँ तथा श्री मगनलाल गांधीको अनुमति नहीं दी गई।

श्री मगनलाल गांधी मेरे बहुत ही निकटके सम्बन्धी हैं। उन्हें मेरी ओरसे मुख्तियारीके अधिकार प्राप्त हैं। वे मेरे कृषि तथा बुनाई और कताई-सम्बन्धी प्रयोगोंकी देख-रेख करते हैं, और दलितवर्गोंसे सम्बन्धित मेरे कार्यके घनिष्ठ सम्पर्कमें हैं।

पण्डितजी और हकीमजी, राजनीतिक सहकर्मी होनेके अलावा, मेरे निजी मित्र भी हैं, जिन्हें मेरे स्वास्थ्य आदिकी चिन्ता रहती है।

यदि आप कृपा करके सरकारसे यह पता लगायें कि पण्डित मोतीलाल नेहरू, हकीम अजमलखाँ और श्री मगनलाल गांधीको अनुमति न देनेके क्या कारण हैं तो मैं आपका आभारी होऊँगा।

कैदियोंसे मुलाकातके सम्बन्धमें जेलके जो नियम हैं, उनके अनुसार तो उपर्युक्त तीनों सज्जन अपने कैदी मित्रोंसे मुलाकात करनेके अधिकारी जान पड़ते हैं।

यदि सम्भव हो तो मैं यह भी जानना चाहूँगा कि लोगोंके मुझसे मुलाकात करनेके सम्बन्धमें सरकारकी इच्छा क्या है। मैं किनसे मिल सकता हूँ और किनसे नहीं? अनुमति लेकर आये मुलाकातियोंसे मैं उन गैर-राजनीतिक विषयों या गति-विधियोंके बारेमें, जिनसे मेरा सम्बन्ध है, कोई जानकारी प्राप्त कर सकता हूँ या नहीं?

आपका आज्ञाकारी,
मो० क० गांधी
कैदी सं० ८६७७

अंग्रेजी मसविदे (एस० एन० ८०१६)की फोटो-नकल तथा यंग इंडिया, ६-३-१९२४ से।

६९. पत्र : यरवदा जेलके सुपरिंटेंडेंटको

यरवदा जेल
२० दिसम्बर, १९२२

सुपरिंटेंडेंट
यरवदा सेन्ट्रल जेल
महोदय,

आपने मुझे यह बतानेकी कृपा की है कि इंस्पेक्टर-जनरलने मुझे गुजरातीकी दो मासिक पत्रिकाओं, 'वसन्त' और 'समालोचक' के उपयोगकी अनुमति देना अस्वीकार कर दिया है और इसका कोई कारण नहीं बताया है।

कैदियों द्वारा पत्रिकाओंके उपयोगके सम्बन्धमें सरकारका जो आदेश है, उसे देखते हुए उपर्युक्त फैसला आश्चर्यजनक लगता है। सरकारी आदेश, जैसा कि मैंने उसे समझा है, यह है कि कैदी ऐसी पत्रिकाएँ मँगा सकते हैं, जिनमें मौजूदा राजनीतिक समाचार न हों। 'समालोचक' से मैं बहुत परिचित नहीं हूँ, पर 'वसन्त' से हूँ। वह एक उच्च कोटिका गुजराती साहित्यिक मासिक है, जिसके सम्पादक सुप्रसिद्ध समाज-सुधारक राव बहादुर रमणभाई हैं और उसमें अधिकतर ऐसे लोगोंकी रचनाएँ रहती हैं जो किसी-न-किसी तरह सरकारसे सम्बद्ध हैं। मैंने उसमें कभी राजनीतिक समस्याओं-की चर्चा और राजनीतिक समाचार नहीं पाये। यह हो सकता है कि इन पत्रिकाओंकी अनुमति न देनेके अन्य कारण इंस्पेक्टर-जनरलके पास रहे हों, या 'वसन्त' और 'समालोचक' ये दोनों पत्रिकाएँ अब राजनीतिक हो गई हों। इसलिए क्या आप कृपा करके इंस्पेक्टर-जनरलसे उनके इस फैसलेके कारणोंका पता लगायेंगे? मैं यह भी निवेदन करना चाहता हूँ कि यदि वह फैसला बदला नहीं गया तो मैं गुजराती साहित्यसे सम्पर्क रखनेके अवसरसे वंचित हो जाऊँगा।

आपका आज्ञाकारी,
मो० क० गांधी

अंग्रेजी मसविदे (एस० एन० ८०१७) की फोटो-नकल तथा **यंग इंडिया**, ६-३-१९२४ से।

७०. जेल डायरी, १९२२[1]

२१ अप्रैल[2], शुक्रवार

आजतक[3] निम्नलिखित पुस्तकें पढ़ चुका हूँ।

1. 'मास्टर ऐंड हिज टीचिंग'
2. 'सिटी ऑफ गॉड'
3. 'क्रिश्चियनिटी इन प्रैक्टिस'
4. 'लाईट एन अननोन हिमालयज'
5. 'सत्याग्रह और असहयोग'
6. 'कुरान'
7. 'दि वे टु बिगिन लाइफ'
8. 'ट्रिप टु दि मून'
9. 'दि इंडियन एडमिनिस्ट्रेशन' (ठाकोर)
10. 'रामायण' तुलसीदास

कलसे मैंने रोटियाँ पकानी शुरू कर दी हैं।

२२ अप्रैल, शनिवार

'नेचुरल हिस्ट्री ऑफ बर्ड्स' समाप्त की।

१. गुजरातीमें लिखित यह डायरी गांधीजीके यरवदा सेन्ट्रल जेलमें व्यतीत मार्च १९२२ से जनवरी १९२४ तकके जेल-जीवनका विवरण है। मूल डायरी एक छोटे आकारकी कापीपर तारीख व दिन आदिके अनुसार पेन्सिलसे और स्याहीसे लिखी गई थी। सभी दिनोंका ब्योरा इसमें नहीं है, स्थान-स्थानपर कुछ दिनोंको छोड़ दिया गया है। गांधीजीने इस बीच जो पुस्तकें पढ़ीं उनके नामोंको, जो उन्होंने गुजराती लिपिमें दिये हैं, सामान्यतः यंग इंडिया अथवा अन्य उपलब्ध जानकारीके आधारपर जाँच लिया गया है। मूल डायरीमें गांधीजीके हस्ताक्षरोंमें अंग्रेजी और अन्य भारतीय भाषाओंकी पुस्तकोंकी एक सूची है, जिन्हें निश्चय ही गांधीजीने जेलमें पढ़ा था। इस सूचीको यहाँ जेल डायरी, १९२३ के साथ अन्तमें दिया जा रहा है। जेल डायरी, १९२३ भी उस वर्षके अन्तिम शीर्षकके रूपमें दी जा रही है।

२. डायरीमें कहीं-कहीं अंग्रेजी तारीखोंके साथ-साथ विक्रम संवत्‌की तिथियाँ भी दी गई हैं। यहाँ हम मूलमें दी गई अंग्रेजी तारीखें ही दे रहे हैं।

३. गांधीजी २१ मार्च, १९२२ को यरवदा सेन्ट्रल जेल ले जाये गये थे। अपने कारावासके दिनोंमें उन्होंने धर्म, साहित्य, समाज-विज्ञान और भौतिक विज्ञान सम्बन्धी लगभग १५० पुस्तकें पढ़ीं। अप्रैल १९२४ से अक्तूबर १९२४ तक यंग इंडियामें धारावाहिक रूपसे प्रकाशित माई जेल एक्सपीरिएन्सेज शीर्षक लेखमालामें गांधीजीने इन पुस्तकोंमें से कुछका विशद विवेचन किया है। यह लेखमाला नवजीवनमें भी प्रकाशित हुई थी।

आज सुपरिंटेंडेंटने[1] सभी राजनीतिक कैदियोंको मिलनेके लिए बुलाया। मेरी देशपाण्डेसे[2] बातचीत हुई।

२३ अप्रैल, रविवार

'दि यंग क्रूसेडर' समाप्त की।
आजसे नीबू और चीनी खाना छोड़ा।

२६ अप्रैल, बुधवार

कल (ए हिस्ट्री ऑफ स्कॉटलैंड) स्कॉटलैंडका इतिहास, प्रथम भाग समाप्त किया।
रेवरेंड लॉरेन्सने 'बाइबिल व्यू ऑफ दि वर्ल्ड' पुस्तक भेजी है।

२९ अप्रैल, शनिवार

रेवरेंड लॉरेन्स द्वारा भेजी पुस्तक समाप्त की।
मार्टिअर्स[3] (शहीदों) सम्बन्धी पुस्तकको ऊपर-ऊपरसे देख गया।

१ मई, सोमवार

स्कॉटलैंडका इतिहास (ए हिस्ट्री ऑफ स्कॉटलैंड), दूसरा भाग समाप्त किया। आज मुझे एक साथ दस सेर आटा दिया गया।

५ मई, शुक्रवार

फेरर द्वारा लिखित पुस्तक 'सीकर्स आफ्टर गॉड' समाप्त की। कलसे सन्तरे खाना बन्द किया।

६ मई, शनिवार

'स्कॉटलैंडका इतिहास' समाप्त किया। आज एक सरकारी पत्र मिला जिसमें बताया गया है कि हकीमजीको लिखा मेरा पत्र[4] उन्हें नहीं भेजा जा सकता।
'मिस्र कुमारी' समाप्त की।

१२ मई, शुक्रवार

'स्टोरीज फ्रॉम दि हिस्ट्री ऑफ रोम' समाप्त की। आज सुपरिन्टेन्डेटने हकीमजीको लिखे मेरे पत्रको न भेजनेसे सम्बन्धित सरकारी निषेधाज्ञाकी नकल देनेसे इनकार कर दिया। इसलिए मैंने एक पत्र[5] सरकारको और एक[6] हकीमजीको लिखा। हकीमजीके पत्रमें केवल इतना ही लिखा कि आपके पास मेरा पत्र

१. कर्नल डेलजील।

२. गंगाधरराव बालकृष्ण देशपाण्डे, कर्नाटकके कांग्रेसी नेता।

३. सम्भवतः "जेल डायरी, १९२३" के अन्तमें दी गई सूचीमें उल्लिखित "**लाइव्ज ऑफ फादर्स ऐण्ड मार्टिअर्स**" नामक पुस्तक।

४. देखिए "पत्र: हकीम अजमलखाँको", १४-४-१९२२।

५. देखिए "पत्र: बम्बई सरकारको", १२-५-१९२२।

६. देखिए "पत्र: हकीम अजमलखाँको", १२-५-१९२२।

जैसा कि मैंने लिखा वैसा नहीं भेजा जा सकता, इसलिए मैंने आपको अपना तिमाही पत्र[1] भेजनेका विचार त्याग दिया है।

१५ मई, सोमवार

बैंकर[2] आज इस वॉर्डमें लाये गये। सुपरिन्टेन्डेंटको एक व्यक्तिगत पत्र लिखा कि मेरी नारंगियोंमें फिरसे वृद्धि करना मुझे अच्छा नहीं लगा तथा उनसे कहा कि वे नारंगी, रोटी तथा अतिरिक्त दूध देना बन्द कर दें।

१६ मई, मंगलवार

श्री ग्रिफिथकी[3] ओरसे उनके हेड क्लर्क, श्री जैकब मुझसे मिलने और बातचीत करने आये। सुपरिटेंटेंटने नारंगियोंकी संख्या कम करनेसे मना कर दिया और बताया कि मुझे तो आपको नौ नारंगी देनेके आदेश हैं।

"जो द्वेष, उपहास और गालियोंको पसन्द करनेके कारण सत्यसे पीछे हट जाते हैं वे गुलाम हैं। दो या तीन आदमियोंके साथमें भी जो सत्यकी हिमायत करनेका साहस न करें वही गुलाम हैं।

— लावेल

('टॉम ब्राउन्स स्कूल डेज' से)

१७ मई, बुधवार

'टॉम ब्राउन्स स्कूल डेज' समाप्त की। उसके बहुतसे भाग बड़े सुन्दर हैं।

"ईसाके पवित्र भोजनकी क्रिया करनेका अर्थ यह नहीं कि जो तंगीमें हो उसे केवल कुछ दे दिया जाये; उसका अर्थ यह है कि हमारे पास जो हो उसमें से उसे हिस्सा दिया जाये। दाताकी भावनाके बिना दान व्यर्थ है। दानके साथ जो अपना तन-मन भी देता है वह तीन आदमियोंका पोषण करता है — अपना, भूखे पड़ोसीका और मेरा।"

— लावेल

२० मई, शनिवार

बेकनकी 'दि विजडम ऑफ दि ऐंशेन्टस्' समाप्त की। बुधवारसे रोटी खाना छोड़ दिया। चार [कच्चा] सेर दूध, दो औंस मुनक्का, चार नारंगी और दो नीबू लेनेका प्रयोग कर रहा हूँ।
हाजीको कल कालकोठरीमें भेज दिया गया।

२८ मई, रविवार

मुगल वंशतक 'हिन्दुस्तानका इतिहास' पढ़ा। मॉरिसका व्याकरण देख गया।

१. गांधीजीको जेलसे साल-भरमें केवल चार पत्र लिखनेकी इजाजत थी।
२. शंकरलाल बैंकर।
३. पुलिस सुपरिंटेंडेंट।

२९ मई, सोमवार

'चन्द्रकान्त, भाग–२' तथा पतंजलिका 'योगदर्शन' समाप्त किया।
लगभग चार सप्ताह बीत गये।
वाल्मीकि 'रामायणका' गुजराती अनुवाद पढ़ना शुरू किया।

३१ मई, बुधवार

किपलिंगकी 'फाइव नेशन्स' समाप्त की।

४ जून, रविवार

एडवर्ड बैलमीकी 'इक्वलिटी' समाप्त की।

६ जून, मंगलवार

सुपरिंटेंडेंटने आकर खबर दी कि सरकारने 'बालपोथी'[1] छापनेकी इजाजत[2] देनेसे इनकार कर दिया है। सूचीकी[3] पुस्तकें मँगानेको दे दी हैं।

७ जून, बुधवार

डेविसकी 'सेंट पॉल इन ग्रीस' समाप्त की।

९ जून, शुक्रवार

डा० जेकिल एण्ड मि० हाइड' समाप्त की।

१४ जून, बुधवार

लॉर्ड रोजबरीकी 'पिट' समाप्त की।

सत्य	असत्य
सोना	पीतल
चाँदी	जस्ता
प्रकाश	अन्धकार
स्वर्ग	नरक
आकाश	पाताल
दिवस	रात्रि
हीरा	कंकर
सती	वेश्या
ब्रह्मचर्य	व्यभिचार
खुदा	शैतान
अहुरमज्द	अहरमन

१. देखिए 'बालपोथी', १४-४-१९२२।
२. देखिए "पत्र: यरवदा सेन्ट्रल जेलके सुपरिंटेंडेंटको", १२-८-१९२२।
३. सम्भवतः जेल डायरी, १९२३ के अन्तमें दी गई सूची।

ब्रह्म	भ्रममें पड़ा जीव
सजीव	निर्जीव
पुंसत्व	नपुंसकत्व
वीरता	कायरता
राम	रावण
मोक्ष	बन्धन
अमृत	हलाहल
जीवन	मृत्यु
सत्	असत्
अस्तित्व	अनस्तित्व
सत्य एक है	असत्य अनेक
सत्य सरल रेखा है	असत्य वक्र रेखा है
समकोण	?[1]
सागर	सहारा मरुस्थल
संयम	स्वच्छंदता
प्रेम	वैर

१७ जून, शनिवार

किपलिंगकी 'सेकन्ड जंगल बुक' समाप्त की।

२१ जून, बुधवार

'फॉस्ट' समाप्त किया।

२४ जून, शनिवार

जॉन हॉवर्डकी जीवनी समाप्त की। पाँच [कच्चा] सेर मुनक्कोंकी एक पेटी कल आई।

२५ जून, रविवार

वाल्मीकि 'रामायण' समाप्त की। 'शान्तिपर्व'[2], भाग-१ पढ़ना शुरू किया।

२८ जून, बुधवार

जूल्स वर्नकी 'ड्रॉप्ड फ्रॉम दि क्लाउड्स' समाप्त की।

१ जुलाई, शनिवार

इर्विंग कृत कोलम्बसकी जीवनी समाप्त की। अनसूयाबहन, कानजी और धीरजलाल शंकरलालसे मिलने आये। बा, हरिलाल, रामदास, मगनलाल मथुरादास और मनु[3] मुझसे मिलने आये।

१. मूलमें यहां कुछ नहीं दिया गया।
२. 'महाभारत' के १८ पर्वोंमें से एक।
३. हरिलाल गांधीकी कन्या।

५ जुलाई, बुधवार

कल वार्नर एक सन्दूक और कुछ पुस्तकें दे गया।
गिरधर कृत 'रामायण' और 'क्रूसेड्स' पढ़ना शुरू किया।
विल्बरफोर्सकी 'फाइव एम्पायर्स' समाप्त की।

१० जुलाई, सोमवार

'लेज ऑफ एन्शेन्ट रोम' समाप्त की।

१२ जुलाई, बुधवार

आज साढ़े पांच [कच्चा] सेर मुनक्के और आये।

१३ जुलाई, गुरुवार

'क्रूसेड्स' समाप्त की। गिबनका 'रोम' पढ़ना शुरू किया।

१६ जुलाई, रविवार

'शान्तिपर्व' भाग-१ समाप्त किया। भाग-२ पढ़ना शुरू किया।

१८ जुलाई, मंगलवार

उर्दूकी पहली पुस्तक समाप्त की।

२२ जुलाई, शनिवार

गिरधरकृत 'रामायण' समाप्त की। "श्रीमद्‌भागवत' पढ़ना शुरू किया।

२३ जुलाई, रविवार

झवेरी द्वारा लिखित 'कृष्णचरित्र' पढ़ना शुरू किया।

२९ जुलाई, शनिवार

कृष्णलाल झवेरी कृत 'कृष्णचरित्र' समाप्त किया।

४ अगस्त, शुक्रवार

वैद्यकृत 'कृष्णचरित्र' समाप्त किया।

७ अगस्त, सोमवार

गिबन [कृत 'रोम'] का पहला भाग समाप्त किया तथा दूसरा भाग शुरू किया।

१० अगस्त, गुरुवार

तिलककी 'गीता', 'शान्तिपर्व' भाग-२', 'भागवत, भाग – १' समाप्त की।
'भागवत्, भाग–२' पढ़ना शुरू किया।

२२ अगस्त, मंगलवार

कल राजनीतिक कैदियोंको वार्ड बदलकर यूरोपीय कैदियोंके वार्डमें ले जाया गया। आज उन्हें फिर पहलेवाले वार्डमें ही लाया गया।

२४ अगस्त, गुरुवार

'आदिपर्व', समाप्त किया।

२७ अगस्त, रविवार

'भागवत' का दूसरा भाग समाप्त किया। शुक्रवारको 'सभापर्व' शुरू किया। 'सरस्वतीचन्द्र' शुरू किया।

२८ अगस्त, सोमवार

'मनुस्मृति' समाप्त की। 'ईशोपनिषद्' शुरू किया।

३० अगस्त, बुधवार

'सभापर्व' समाप्त किया; 'वनपर्व' शुरू किया।

१ सितम्बर, शुक्रवार

गिबन, भाग–२ समाप्त किया। 'ईशोपनिषद्' समाप्त किया।

२ सितम्बर, शनिवार

गिबन, भाग – ३ शुरू किया।

३ सितम्बर, रविवार

'सरस्वतीचन्द्र, भाग – १' समाप्त किया। भाग – २ शुरू किया।

६ सितम्बर, बुधवार

'सरस्वतीचन्द्र, भाग – २' समाप्त किया। भाग – ३ शुरू किया।

९ सितम्बर, शनिवार

'सरस्वतीचन्द्र, भाग – ३' समाप्त किया। भाग – ४ शुरू किया।

१३ सितम्बर, बुधवार

मेजर जोन्सकी[1] सहमतिसे आज ३ बजेसे मंगलवार ३ बजेतकका मौन लिया है। इसमें निम्न अपवाद रहेंगे :

१. किसी अन्यको अथवा मुझे दुःख हो।
२. कोई स्नेही बाहरसे मिलने आये।
३. इस बीच यदि मुझे धारवाड़के अपने मित्रोंके वार्डमें ले जाया गया।
४. श्री हेवर्ड[2]-जैसा कोई अधिकारी आये।
५. मेजर जोन्स [कोई] बात करना चाहें।

आज . . . के लिए खाटें आईं।

१. इन्होंने कर्नल डेल्जीलकी जगह, जब वे इन्स्पेक्टर-जनरल ऑफ प्रिज़न्सके रूपमें कार्य कर रहे थे, यरवदा सेन्ट्रल जेलके सुपरिंटेंडेंटका कार्यभार सँभाला था।

२. सर मॉरिस हेवर्ड, बम्बई प्रदेशके तत्कालीन गृह-सदस्य।

२० सितम्बर, बुधवार

मौन कल समाप्त किया। मौनमें परमानन्द प्राप्त हुआ। 'सरस्वतीचन्द्र, भाग–४' आज समाप्त किया। 'कबीरका काव्य' समाप्त किया। जेकब बोहमन पढ़ना शुरू किया। शंकरलाल [ब]को माफी मांगते हुए पत्र लिखा। फिर दोबारा मौनव्रत लिया जो मंगलवारको सायंकाल ३ बजे समाप्त होगा।

२३ सितम्बर, शनिवार

बोहमनकी 'सुपरसेन्स्युल लाइफ' समाप्त की।

'तेरी अपनी श्रवणेन्द्रियादि और तेरी इच्छा ही प्रभुके श्रवण और दर्शनमें तेरे लिए बाधक होती है।'
'यदि तू प्राणियोंपर अपने आंतरिक स्वभावकी गहराईसे नहीं, केवल बाहरसे ही राज्य करता है, तो तेरा शासन और तेरी शक्ति पाशविकवृत्तिकी है।'
'तू वस्तु-मात्र जैसा है और ऐसी एक भी वस्तु नहीं जो तेरे जैसी न हो।'
'यदि तुझे वस्तु-मात्र जैसा बनना हो तो तुझे तमाम वस्तुओंका त्याग करना चाहिए।'
'तेरे हाथ और तेरी बुद्धि भले ही काममें लगे रहें, परन्तु तेरा हृदय तो ईश्वरमें ही तल्लीन रहना चाहिए।'
'स्वर्गका अर्थ है हमारी इच्छाशक्तिको भगवान्‌के प्रेमकी प्राप्तिमें नियोजित करना।'
'नरकका अर्थ है भगवान्‌का कोप मोल लेना।'

'सुपरसेन्सुअल लाइफ': बोहमन

'प्रो क्रिस्टो एट एक्लेशिया' शुरू की।

२४ सितम्बर, रविवार

'कठवल्ली उपनिषद्' समाप्त किया।

२५ सितम्बर, सोमवार

'प्रो क्रिस्टो एट एक्लेशिया' समाप्त की। 'सत्यार्थप्रकाश' पढ़ना शुरू किया। 'वनपर्व' समाप्त किया।

२६ सितम्बर, मंगलवार

'विराटपर्व' और 'गैलिलियन' पढ़ना शुरू किया।

२७ सितम्बर, बुधवार

'ज्ञानेश्वरी' पढ़ना शुरू किया।

३० सितम्बर, शनिवार

'विराटपर्व' तथा 'गिबन', भाग–३' समाप्त किया।

१ अक्तूबर, रविवार

'गिबन', भाग–४' तथा 'उद्योगपर्व' शुरू किया।

३ अक्तूबर, मंगलवार

'गैलिलियन' समाप्त की।

६ अक्तूबर, शुक्रवार

बा, जमनालालजी, रामदास, पुंजाभाई तथा किशोरलाल बुधवारको मिलने आये। रामदासके विषयमें कल जमनालालजीको एक पत्र[1] लिखा। आज सुपरिंटेंडेंटको गनी[2] और अखबारोंके[3] सम्बन्धमें पत्र[4] लिखा। 'फाइलो क्रिस्टस' तथा उर्दूकी चौथी[5] पुस्तक पढ़नी शुरू की।

१५ अक्तूबर, रविवार

'उद्योगपर्व' समाप्त किया।

१६ अक्तूबर, सोमवार

'भीष्मपर्व' शुरू किया।

१८ अक्तूबर, बुधवार

'सत्यार्थप्रकाश' समाप्त किया।

२२ अक्तूबर, रविवार

'भीष्मपर्व' और 'फाइलो क्रिस्टस' समाप्त किया।

२३ अक्तूबर, सोमवार

'गिबन' समाप्त किया। 'द्रोणपर्व' तथा 'प्रेम मित्र' पढ़ना शुरू किया। 'ज्ञानेश्वरी' समाप्त की।

२४ अक्तूबर, मंगलवार

'प्रेम मित्र' समाप्त किया।

२५ अक्तूबर, बुधवार

'षड्दर्शन समुच्चय' तथा 'दि गोस्पेल एन्ड दि प्लॉउ' पढ़ना शुरू किया। नाथुराम शर्मा कृत 'गीता'की टीका पढ़नी शुरू की।

१. देखिए "पत्र: जमनालाल बजाजको", ५-१०-१९२२।

२. अब्दुल गनी, यरवदा जेलमें गांधीजीके एक साथी कैदी।

३. राजनैतिक कैदियोंको अखबार और पत्रिकाएँ मँगानेकी मनाई कर दी गई थी। गांधीजीने **टाइम्स ऑफ इंडिया वीकली, इंडियन सोशल रिफॉर्मर, सर्वेंट ऑफ इंडिया, मॉडर्न रिव्यू, इंडियन रिव्यू** आदि पत्रोंमें से कोई एक पत्र मँगानेकी प्रार्थना की थी।

४. उपलब्ध नहीं।

५. यह दूसरी होनी चाहिए।

२८ अक्तूबर, शनिवार

'दि गोस्पेल एन्ड दि प्लॉउ' समाप्त की।

६ नवम्बर, सोमवार

'द्रोणपर्व' समाप्त किया।

७ नवम्बर, मंगलवार

'कर्णपर्व' शुरू किया। शंकरलाल कल बीमार हो गए। उलटी आदि हुई।

११ नवम्बर, शनिवार

'कर्णपर्व' समाप्त किया।

१२ नवम्बर, रविवार

'शल्यपर्व' पढ़ना शुरू किया।

१७ नवम्बर, शुक्रवार

'शल्यपर्व' समाप्त किया। प्रयोगके तौरपर आजसे नारंगी छोड़ दी। 'अनुशासनपर्व' पढ़ना शुरू किया।

२२ नवम्बर, बुधवार

'षड्दर्शन समुच्चय' समाप्त किया।

२७ नवम्बर, सोमवार

तीसरी उर्दू रीडर समाप्त की। चौथी शुरू की।

२८ नवम्बर, मंगलवार

'अनुशासनपर्व' समाप्त किया। 'आश्वमेधिक पर्व' पढ़ना शुरू किया।

२ दिसम्बर, शनिवार

'आश्वमेधिक' समाप्त किया। 'आश्रमवासिक' पढ़ना शुरू किया।

४ दिसम्बर, सोमवार

'महाभारत' समाप्त किया। राजचन्द्र कविकी रचनाओंका अध्ययन शुरू किया। 'महाभारत' २५ वीं जूनको शुरू किया था।

५ दिसम्बर, मंगलवार

कल पेटमें तीव्र दर्द हुआ इसलिए आज अरंडीका तेल लिया और नारंगी खाना शुरू किया। लगभग एक महीने बाद किशमिश लेना शुरू किया।

६ दिसम्बर, बुधवार

जे० ब्रायरलीकी 'अवरसेल्वज ऐन्ड दि यूनिवर्स' पढ़ना शुरू किया।

९ दिसम्बर, शनिवार

शुक्रवारसे किशमिश और नारंगी खाना छोड़ दिया।

'किसीके भी प्रति दुर्भाव रखना, किसीके बारेमें बुरा बोलना या बुरा सोचना या बुरा व्यवहार करना, ये सब समान रूपसे निषिद्ध हैं।'

—जे० बी० की 'अवरसेल्वज एन्ड दि यूनिवर्स' पुस्तकसे।

१५ दिसम्बर, शुक्रवार

जे० बी० की 'अवरसेल्वज ऐन्ड दि यूनिवर्स' समाप्त की।

१६ दिसम्बर, शनिवार

लिमन एबॉटकी 'व्हाट क्रिश्चियनिटी मीन्स टु मी' पढ़ना शुरू किया। बा आज आनेवाली थी परन्तु नहीं आई।

२१ दिसम्बर

मगनलाल आदि [के मिलने आने] पर बन्दिश लगानेके सम्बन्धमें कल मेजरको एक पत्र[1] लिखा। आज वार्नरको दिया।

२५ दिसम्बर

'व्हाट क्रिश्चियनिटी मीन्स टु मी' समाप्त की। अनसूयाबहनकी भेजी किशमिश और अंजीर खाये।

मूल गुजराती प्रति (एस० एन० ८०३९ एम)से।

७१. भेंट : जेलमें

[२७ जनवरी, १९२३][2]

महात्मा गांधीका स्वास्थ्य बहुत अच्छा है। हमने जेलमें सुना था कि उनके स्वास्थ्य बिगड़ने और उन्हें विषाद रोग होनेकी कहानियाँ विदेशोंमें फैल रही हैं। उन्हें यह सुनकर पीड़ा हुई।

उन्होंने कहा, विषाद रोगका हो जाना तो मेरे लिए लज्जाकी बात होगी।[3] जिस सत्याग्रहीको जेल जानेपर उदासी आ घेरे, उसे जेल जानेकी या जेल जानेके लिए कोई कदम उठानेकी कतई जरूरत नहीं है। यदि उसे अपने देशकी स्वतन्त्रता सबसे अधिक प्यारी है तो उसे जेलको अपना घर समझना चाहिए। उन्होंने आगे

१. यह मोतीलाल नेहरू, हकीम अजमलखाँ तथा मगनलालको गांधीजीसे मिलनेकी अनुमति देनेके सम्बन्धमें जेल सुपरिंटेंडेंट मेजर जोन्सको लिखा गया था। देखिए "पत्र : यरवदा जेलके सुपरिंटेंडेंटको", २०-१२-१९२२।

२. कस्तूरबा गांधी, गांधीजीसे जेलमें २७ जनवरी, १९२३ को मिली थीं।

३. १-२-१९२३ के **यंग इंडिया**में छपे एक संक्षिप्त समाचारमें कहा गया था : "... उन्होंने उत्तर दिया, जो मनुष्य मुझे जानता है वह इस बातकी कल्पना भी नहीं कर सकता कि मुझे कभी विषाद रोग भी हो सकता है। मुझे आश्चर्य है कि ऐसी अफवाहोंपर कोई जरा भी विश्वास कैसे कर सकता है।"

कहा, यदि मैं कभी बीमार पड़ा तो उसका कारण जेल अधिकारियोंकी असावधानी नहीं मेरी अपनी लापरवाही, शरीरकी सहज दुर्बलता अथवा जलवायु होगी। अपने स्वास्थ्यको ठीक रखनेकी जितनी सावधानी रखनी चाहिए, उतनी मैं रखता हूँ।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १९–४–१९२३

७२. पत्र : यरवदा जेलके सुपरिंटेंडेंटको

यरवदा सेन्ट्रल जेल
४ फरवरी, १९२३

सुपरिंटेंडेंट
यरवदा सेन्ट्रल जेल
महोदय,

आपने कल मुझे यह बतानेकी कृपा की थी कि इंस्पेक्टर-जनरलने मेरे २० दिसम्बरके पत्रका जवाब दे दिया है और उसमें यह कहा है कि मुलाकात सम्बन्धी जेलके विनियमोंके अनुसार मित्रों और रिश्तेदारोंकी मुलाकातोंके विषयमें आपको पूरा अख्तियार है।

इस जवाबसे मुझे आश्चर्य हुआ है। मेरी पत्नी तथा श्रीमती वसुमती धीमतराम पिछले मासकी २७ तारीखको मुझसे मिली थीं। उन्होंने इस सम्बन्धमें मुझे जो-कुछ बताया था, यह उत्तर उससे मेल नहीं खाता।

मेरी पत्नीने बताया कि कोई २० रोजसे ज्यादा इन्तजार करनेपर उन्हें मुझसे मुलाकातके लिए अपनी दरख्वास्तका जवाब मिला। मेरी बीमारीकी अफवाह सुनकर वे इस आशासे पूना आईं कि उन्हें मुझसे मिलनेकी इजाजत मिल जायेगी। फलतः पिछले सप्ताह श्रीमती वसुमती धीमतराम, श्री मगनलाल गांधी, उनकी लड़की राधा, जिसकी उम्र कोई १४ सालकी होगी, और प्रभुदास, श्री छगनलाल गांधीका कोई १८ वरसका लड़का, जो अपने पिताके स्थानपर आया था क्योंकि उसके पिता बीमार पड़ जानेके कारण नहीं आ सके थे, किन्तु उनका नाम प्रार्थियोंमें था। इन सबके साथ जेलके फाटकपर आकर मेरी पत्नीने अन्दर जानेकी इजाजत चाही। आपने उनको उत्तर दिया, "मुझे कोई अख्तियार नहीं है, मैं आपको इजाजत नहीं दे सकता। मैं सरकारके जवाबकी राह देख रहा हूँ। आपकी दरख्वास्त वहाँ भेज दी है।" श्री मगनलाल भाईके आग्रह करनेपर आपने इन्स्पेक्टर-जनरलको टेलीफोन करना कुबूल किया। मालूम होता है कि वे भी मुलाकातकी इजाजत न दे सके और मेरी पत्नी तथा उनके साथियोंको निराश होकर वापस लौट जाना पड़ा।

मेरी पत्नीने कहा कि २७ जनवरीको आपने उन्हें टेलीफोन द्वारा खबर दी कि सरकारका जवाब मिल गया है, कि वह तथा दूसरे तीन शख्स जिनके नाम पहली

दरखास्तमें दर्ज हैं, मिल सकते हैं। इसके अनुसार दोनों बच्चे, राधा और प्रभुदास, वंचित रह गये।

यदि इस विषयमें सब बातें आपपर ही छोड़ दी गई थीं तो पूर्वोक्त सारी बातोंपर फिरसे विचार करनेकी जरूरत है। मुझे यकीन है कि मैंने अपनी पत्नीके आशयको गलत नहीं समझा है।

इसके अलावा यदि आप ही के बसकी बात होती तो राधा और प्रभुदास वंचित न किये गये होते।

इसलिए यदि आप मेरी पत्नीके कथन और सरकारी जवाबके अन्तरको समझा सकें तथा मुझे निम्नलिखित बातोंके बारेमें सूचित कर सकें तो मैं आपका बड़ा कृतज्ञ होऊँगा :

(१) पिछले साल पं० मोतीलाल नेहरू, हकीम अजमलखाँ साहब और श्री मगनलाल गांधीको किस बिनापर नहीं मिलने दिया गया था ?

(२) भविष्यमें किन-किन लोगोंको मुझसे मिलने दिया जायेगा और किनसे नहीं ?

(३) इन मुलाकातोंमें मैं राजनीतिसे सम्बन्ध न रखनेवाले उन विषयों तथा गति-विधियोंके बारेमें सुन सकता हूँ या नहीं, जिन्हें मैंने शुरू किया था और जिनका संचालन अब मेरे विभिन्न प्रतिनिधि कर रहे हैं।

यह तो मैं नहीं कहूँगा कि अपमान इरादतन किया गया है फिर भी मुझे यह जरूर महसूस हुआ कि उनके साथ किया गया बरताव अपमानजनक तो था। ऐसी दुःखद घटनाकी पुनरावृत्ति नहीं होनी चाहिए।

आपका आज्ञाकारी,

अंग्रेजी मसविदे (एस० एन० ८०१८) की फोटो-नकल तथा **यंग इंडिया,** ६-३-१९२४ से।

७३. पत्र : मेजर जोन्सको

१० फरवरी [१९२३]

प्रिय मेजर जोन्स,

मैं आपको यह पत्र निजी तौरपर लिख रहा हूँ; क्योंकि एक तो इसमें भावनाओंका पुट है और दूसरे कैदीकी हैसियतसे मैं ऐसा पत्र लिखनेका अधिकारी नहीं हूँ। आप अपने पदके कारण जाब्तेकी कार्रवाई करनेपर मजबूर हों तो खुशीसे आप वैसा कर सकते हैं।

मैंने कल सुबह चीखने और चिल्लानेकी आवाज सुनी और पासके कुछ लोगोंने चिल्लाकर कहा कि उधर कोड़े लगाये जा रहे हैं।[1] मैं सोचमें पड़ गया। मैंने थोड़ी

१. शंकरलाल बैंकरने **यंग इंडिया,** १९-४-१९२३ में प्रकाशित अपने वक्तव्यमें इस घटनाका उल्लेख किया है।

ही देरके बाद देखा कि टाटके कपड़े पहने हुए चार या पाँच युवक ले जाये जा रहे हैं। उनकी पीठ खुली थी। वे बहुत धीरे-धीरे चल रहे थे। उनकी कमर झुकी हुई थीं। मैंने देखा कि उन्हें बहुत दर्द हो रहा था। उन्होंने मुझे प्रणाम किया। मैंने भी जवाबमें नमस्कार किया। मैंने अन्दाज लगाया कि हो न हो इन्हींको कोड़े लगाये गये हैं। उसी दिन बादमें मैंने एक प्रतिष्ठित पुरुषको बेड़ियाँ तथा टाटके कपड़े पहने हुए गुजरते देखा। उन्होंने भी मुझे प्रणाम किया। मैं सामान्यतया ऐसा नहीं करता, फिर भी मैंने पूछा, आप कौन हैं? उन्होंने जवाबमें कहा, मैं मूलशीपेटाका हूँ। मैंने पूछा, क्या आप जानते हैं, कोड़े किनको लगाये गये थे? उन्होंने कहा, हाँ, मैं उन सबको जानता हूँ, क्योंकि वे सब मूलशीपेटाके ही लोग हैं।

मेरा पत्र लिखनेका उद्देश्य यह जानना है कि क्या मैं उन लोगोंसे मिल सकता हूँ, जो काम करनेसे इनकार कर रहे हैं?[1] यदि मुझे मालूम हुआ कि वे मूर्खतावश या बिना सोचे-समझे ऐसा कर रहे हैं तो सम्भव है कि मैं उन्हें अपनी स्थितिपर फिर विचार करनेके लिए राजी कर सकूँ। सत्याग्रहमें तो विहित है कि हर कैदी जेलके तमाम उचित कानूनोंका पालन करे और जो काम दिया जाये उसे अवश्य करे। सच पूछा जाये तो सत्याग्रहीके जेलके अन्दर आते ही उसका प्रतिरोध समाप्त हो जाता है। असाधारण कारण होनेपर जैसे — जान-बूझकर अपमान किये जानेपर उसका फिर उपयोग किया जा सकता है। यदि ये लोग अपनेको सत्याग्रही कहते हैं तो मैं चाहूँगा कि मैं उन्हें ये सब बातें समझा दूं।

मैं जानता हूँ कि आम तौरपर किसी कैदीको जेलके प्रशासनमें मदद करने या दखल देनेका हक नहीं है। मैं केवल साधारण मनुष्यताके नामपर इस सुझावका अनुकूल उत्तर पानेकी आशा रखता हूँ। मुझे भरोसा है कि यदि थोड़ी भी गुंजाइश हुई तो आप कोड़ेका दण्ड न दिये जानेके बारेमें पूरी कोशिश करेंगे। मैंने अत्यन्त नम्र भावसे एक सम्भावनाकी ओर इशारा किया है, आशा करता हूँ कि आपका हृदय मेरे सुझावको उचित[2] मानेगा और आप उसपर अमल करनेकी कृपा करेंगे।

आपका सच्चा,
मो० क० गांधी

अंग्रेजी मसविदे (एस० एन० ८०१९) की फोटो-नकल तथा **यंग इंडिया,** ६-३-१९२४ से।

१. उन्हें अनाज पीसनेका काम दिया गया था, लेकिन उन्होंने उसे राजनीतिक बंदियोंके योग्य काम नहीं माना।

२. मेजर जोन्सने जवाबमें गांधीजीको धन्यवाद देते हुए लिखा कि सुझावको स्वीकार करना सम्भव नहीं है।

७४. पत्र: यरवदा जेलके सुपरिंटेंडेंटको

यरवदा जेल
१२ फरवरी, १९२३

सुपरिंटेंडेंट
यरवदा सेन्ट्रल जेल
महोदय,

मुझे अभी-अभी यह खबर मिली है कि मूलशीपेटाके कुछ आदमियोंसे वातचीत करनेके कारण भाई जयरामदासको[1] सजा दी गई है।[2] मैं यह पत्र उस सजाके विरुद्ध शिकायत करनेके लिए नहीं, बल्कि इसलिए लिख रहा हूँ कि उतनी ही अथवा उससे भी अधिक सजा मुझे दी जाये। इस माँगमें भावना खिन्नताकी नहीं, बल्कि कहना चाहिए धर्म-मूलक है। क्योंकि नियम भंगका उनकी अपेक्षा मैं अधिक अपराधी हूँ। मैंने ही उनसे कहा था कि यदि उन्हें मूलशीपेटावाला कोई कैदी दिखे तो वे उससे कहें कि यदि वह सत्याग्रही होनेका दावा करता है तो काम करनेसे इनकार न करे। भाई जयरामदास मेरे इस अनुरोधको अस्वीकार नहीं कर सके। मैंने उनसे यह भी कहा था कि आपके आज वहाँ पहुँचनेपर वे आपको सारी वात सुना दें। हम दोनोंके वीच जो-कुछ हुआ वह मैं आपको कल वता देता। कल इसलिए कि सोमवार मेरा मौन-दिवस होनेके कारण आप आज मुझसे मिलने नहीं आयेंगे। मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि यदि मुझे सजा होगी तो मैं उसका उलटा अर्थ नहीं लगाऊँगा। यदि मैं छूट जाऊँ और मुझसे कम अपराध करनेवाले को, यदि वह वस्तुतः अपराधी है, सजा दी जाये तो मुझे दुःख होगा।[3]

आपका आज्ञाकारी,
मो० क० गांधी

अंग्रेजी मसविदे (एस० एन० ८०२०) की फोटो-नकल तथा *यंग इंडिया*, ६-३-१९२४ से।

१. जयरामदास दौलतराम (जन्म १८९२); सिन्ध प्रान्तीय कांग्रेस कमेटीके तत्कालीन मंत्री, बादमें खाद्य एवं कृषि मन्त्री भारत सरकार; असमके राज्यपाल।

२. जयरामदासजीने अपनी वैरकसे मूलशीपेटाके कैदियोंकी वैरकमें जाकर यह समझानेकी कोशिश की थी कि जेलके अनुशासनके रूपमें जो भी काम उन्हें सौंपा जाये वे उसे करें। जब वार्डरने इसकी सूचना उच्च अधिकारियोंको दी तो उन्हें नहानेके कुछ मिनटोंको छोड़कर शेष समय अपनी कोठरीमें ही बन्द रहनेका हुक्म दिया गया।

३. *यंग इंडिया*, ६-३-१९२४ में यह पत्र छापते हुए गांधीजीने निम्नलिखित टिप्पणी दी थी:

उपर्युक्त पत्रके उत्तरमें सुपरिंटेंडेंट मेरी कोठरीमें आये और उन्होंने मुझसे कहा कि उनके मनमें जयरामदासके प्रति जरा भी रोष नहीं है। उन्होंने (श्री जयरामदासने) जो-कुछ किया है वह तो खुले

७५. पत्र: यरवदा जेलके सुपरिंटेंडेंटको

यरवदा सेन्ट्रल जेल
१२ फरवरी, १९२३

सुपरिंटेंडेंट
यरवदा सेन्ट्रल जेल
महोदय,

मुझे मालूम हुआ है कि मूलशीपेटाके कुछ कैदियोंको कोड़े लगाये गये हैं; क्योंकि कहा जाता है, उन्होंने काम करनेसे इनकार किया और जान-बूझकर कम काम किया।

यदि ये कैदी सत्याग्रही होनेका दावा करते हैं तो जबतक जेलके नियम अपमानजनक अथवा अनुचित न हों तबतक वे सब नियमोंका पालन करनेके लिए बाध्य हैं। उन्हें जो काम सौंपा गया हो उसे यथाशक्ति अवश्य किया जाना चाहिए। इसलिए यदि उन्होंने काम करनेसे इनकार किया है अथवा वे अपनी शारीरिक शक्तिके अनुसार काम नहीं करते, तो वे जेलके नियमोंको भंग करनेके अलावा अपने आचार-नियमोंको भी तोड़ रहे हैं।

मुझे विश्वास है कि जबतक किसी और ढंगसे काम लिया जा सकता हो, जेलके अधिकारी उन्हें कोड़े नहीं लगाना चाहते। वे यह भी चाहेंगे कि कैदी सजाके डरके बजाय विवेकके सामने झुकें। मेरा खयाल है कि वे लोग मेरा कहना मान लेंगे। इसलिए मैं प्रार्थना करता हूँ कि मूलशीपेटाके जो लोग जान-बूझकर जेलके नियम भंग करते हैं उन सबसे आपके सामने मुलाकात करनेकी मुझे अनुमति दी जाये, ताकि यदि वे सत्याग्रही होनेका दावा करते हों तो मैं उन्हें सत्याग्रहीका धर्म समझा सकूँ।

तौरपर ही किया है, परन्तु नियमका जो भंग हुआ उसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती थी। उन्होंने कहा कि मुझे दूसरे कैदियोंको उकसानेके अपराधमें सजा नहीं दी जा सकती, क्योंकि सत्याग्रहियोंके साथ बातचीत करनेके लिए मैं हदके उस पार नहीं गया। सत्याग्रहियोंसे भाई जयरामदासकी बातचीतके फलस्वरूप एक विषम स्थिति टल गई। इस घटनाके बारेमें जयरामदास दौलतराम कहते हैं कि "मेरे जरिये गांधीजीके हस्तक्षेपके परिणामस्वरूप मूलशीपेटाके कैदियोंपर सही प्रतिक्रिया हुई और जो काम उन्हें दिया गया उसे उन्होंने किया। कामसे लगातार इनकार करनेपर अधिकारियोंका इरादा उन्हें कोड़ोंकी सजा देनेका था। इससे बात और भी बढ़ती और मेरा खयाल है कि गांधीजीको और भी सक्रिय रूपसे हस्तक्षेप करना पड़ता तथा मामला और भी बिगड़ जाता।"

मैं जानता हूँ कि आम तौरपर कैदियोंको जेलके प्रबन्धमें मदद करने या दखल देनेकी इजाजत नहीं है। परन्तु मुझे आशा है कि उपर्युक्त मामलेमें प्रशासनिक पद्धतिकी अपेक्षा मनुष्यताके विचारको प्रधानता दी जायेगी।[1]

आपका आज्ञाकारी,
मो० क० गांधी

अंग्रेजी मसविदे (एस० एन० ८०२१) की फोटो-नकल तथा यंग इंडिया, ६-३-१९२४ से।

७६. पत्र : यरवदा जेलके सुपरिंटेंडेंटको

यरवदा सेन्ट्रल जेल
२३ फरवरी, १९२३

सुपरिंटेंडेंट
यरवदा सेन्ट्रल जेल
[महोदय,]

आपने कृपा करके आज मुझे बताया कि आपको सरकारसे मेरे इस मासको ४ तारीखके पत्रका उत्तर मिल गया है। मेरी पत्नीको जो असुविधा हुई थी उसके लिए सरकारने खेद प्रकट किया है; और मेरे पत्रके अन्य अंशोंके जवाबमें सरकारने बताया है कि सरकार एक कैदीके साथ जेलके सामान्य विनियमोंपर चर्चा नहीं कर सकती। मैं सरकार द्वारा, मेरी पत्नीकी असुविधापर अफसोस जाहिर करनेकी भावनाकी कद्र करता हूँ।

सरकारके उत्तरके दूसरे अंशके बारेमें निवेदन है कि मैं इस बातको भली-भाँति जानता हूँ कि एक कैदीके नाते जेलके सामान्य विनियमोंके बारेमें मुझे चर्चा करनेका अधिकार नहीं है। यदि सरकार मेरा ४ तारीखका पत्र दुबारा पढ़े तो मालूम हो जायेगा कि मैंने उक्त विनियमोंपर सामान्य चर्चाकी माँग नहीं की है, बल्कि कतिपय विनियमोंके बारेमें यह जानना चाहा है कि उनका व्यावहारिक रूप क्या होगा और सो भी उसी हदतक जहाँतक उनका मेरे रहन-सहन और सुख-सुविधासे सम्बन्ध है। मेरा खयाल है कि किसी भी कैदीको ऐसी जानकारी माँगने और प्राप्त करनेका हक है। यदि मुझे भविष्यमें अपनी पत्नी या मित्रोंसे मुलाकात करनी हो, तो मुझे यह बात बता देनी चाहिए कि मैं किससे भेंट कर सकता हूँ और किससे नहीं; ताकि निराशासे बचा जा सके और अपमानकी सम्भावनाको भी टाला जा सके।

मैं अपनी स्थिति स्पष्ट करना चाहता हूँ। सौभाग्यसे मेरे ऐसे बहुतसे मित्र हैं, जो मुझे अपने सम्बन्धियोंके समान प्रिय हैं। और मेरी देखरेखमें पलनेवाले कुछ ऐसे बच्चे भी हैं, जो मेरे अपने बच्चों-जैसे ही हैं। फिर मेरे ऐसे सहयोगी भी हैं

१. सरकारने गांधीजीका सुझाव नहीं माना। देखिए पिछले शीर्षककी अन्तिम पाद-टिप्पणी।

जो मेरे साथ ही निवास करते हैं और मेरी विभिन्न अराजनीतिक प्रवृत्तियों और प्रयोगोंमें मदद देते हैं। इसलिए यदि मैं समय-समयपर अपने इन मित्रों, साथियों और बच्चोंसे मुलाकात नहीं कर सकता, तो मैं अपनी अत्यन्त प्रिय भावनाओंको ठेस पहुँचाए बिना अपनी पत्नीसे भी मुलाकात नहीं कर सकता। मैं अपनी पत्नीसे केवल इसलिए मुलाकात नहीं करता कि वे मेरी पत्नी हैं, बल्कि खास तौरपर इसलिए करता हूँ कि वे मेरी गति-विधियोंमें मेरी सहयोगिनी हैं।

यदि मुझे, जिनसे मैं मिलना चाहता हूँ उनसे अपनी अराजनीतिक प्रवृत्तियोंके बारेमें बातचीत नहीं करने दी जाती तो उनसे मिलनेमें मुझे कोई दिलचस्पी नहीं है।

इसके अलावा यह बात जाननेकी मेरी इच्छा स्वाभाविक ही है कि पण्डित मोतीलाल नेहरू, हकीम अजमलखाँ तथा श्री मगनलाल गांधीको मिलनेकी इजाजत क्यों नहीं दी गई। हाँ, यदि उन्होंने कोई अभद्र व्यवहार किया होता अथवा वे कोई राजनीतिक चर्चा करनेके लिए मुझसे मुलाकात करना चाहते हों तो मैं इसका कारण समझ सकता था। परन्तु यदि इनकार किसी अनुल्लेखनीय राजनीतिक कारणसे किया गया हो, तो मैं कमसे-कम इतना तो कर सकता हूँ कि अपनी पत्नीसे मिलनेका लोभ भी छोड़ दूं। प्रतिष्ठा और स्वाभिमानके विषयमें मेरे अपने कुछ विचार हैं, मैं चाहूँगा कि यदि हो सके तो सरकार उन्हें भी समझ ले और उनकी कद्र करे।

राजनीतिक सन्देश भेजनेकी बात तो दूर रही, मुझे किसीसे राजनीतिक चर्चा तक करनेकी इच्छा नहीं है, इन मुलाकातोंके समय सरकार चाहे जिसे तैनात कर सकती है; और सरकार यदि जरूरी समझे तो उसका कोई प्रतिनिधि शीघ्रलिपिमें विवरण लिखता जा सकता है। परन्तु जेलके विनियमोंके सिवा किन्हीं और कारणोंसे यदि मुझसे मेरे मित्रों और सम्बन्धियोंको मिलने नहीं दिया जाता तो उसके प्रति मेरे सचेत रहनेकी इच्छा उचित ही मानी जायगी। मैंने आज अपनी स्थिति निःसंकोच भावसे पूरी तरह बता दी है। इस पत्र-व्यवहारका आरम्भ गत दिसम्बर मासकी २० तारीखको हुआ था; इसलिए मेरा आग्रह है कि सरकार इस पत्रका जल्दी, सीधा-सादा और कपटरहित उत्तर दे।

आपका आज्ञाकारी,
मो० क० गांधी
नं० ८२७

अंग्रेजी पत्र (एस० एन० ८०२२) की फोटो-नकल तथा *यंग इंडिया*, ६-३-१९२४ से।

७७. पत्र : यरवदा जेलके सुपरिटेंडेंटको

यरवदा सेन्ट्रल जेल
२३ फरवरी, १९२३

सुपरिटेंडेंट
यरवदा सेन्ट्रल जेल
महोदय,

आपने मुझे यह सूचित करनेकी कृपा की है कि पिछले मासकी ४ तारीखके मेरे पत्रके उत्तरमें इन्स्पेक्टर-जनरलने 'वसन्त' और 'समालोचक' पत्रिकाओंके उपयोगकी मंजूरी देनेमें असमर्थता प्रकट की है। क्या निर्णय लिया जायेगा सो तो मैं पहलेसे ही जानता था। यदि इन्स्पेक्टर-जनरल कृपया उक्त पत्र फिरसे पढ़कर देखें, तो वे समझ जायेंगे कि मैं निर्णयसे अवगत था। और पत्र लिखनेका कारण, अस्वीकृतिका कारण जानना-भर था। मैंने अपने पत्रमें यह पूछनेका साहस किया है कि इन पत्रिकाओंके उपयोगकी मनाही क्या इसलिए की गई है कि उनमें वर्तमान राजनीतिक समाचार होते हैं अथवा इसका कोई अन्य कारण है। मैं अपनी प्रार्थनाको दोहराना चाहता हूँ और आशा करता हूँ कि आप तुरन्त उत्तर देकर मुझे अनुगृहीत करेंगे।

आपका आज्ञाकारी,
मो० क० गांधी

अंग्रेजी मसविदे (एस० एन० ८०२३) की फोटो-नकल तथा **यंग इंडिया**, ६-३-१९२४ से।

७८. पत्र : यरवदा जेलके सुपरिटेंडेंटको

यरवदा सेन्ट्रल जेल
२५ मार्च, १९२३

सुपरिटेंडेंट
यरवदा सेन्ट्रल जेल
महोदय,

आपने यह सूचित करनेकी मेहरबानी की है कि मेरे २३ तारीखके पत्रके उत्तरमें इन्स्पेक्टर-जनरलने कहा है कि 'वसन्त' और 'समालोचक' के बारेमें निर्णय योग्य अधिकारीके द्वारा दिया गया है; और मुलाकात सम्बन्धी कुछ प्रार्थनापत्रोंके

बारेमें मैंने जो पूछताछ की थी उसके उत्तरमें उन्होंने मुझे सरकारके पत्रका अन्तिम अंश पढ़ लेनेको लिखा है।

इन्स्पेक्टर-जनरलने जिस तत्परतासे जवाब दिया, उसके लिए उन्हें बधाई है। किन्तु उन्होंने जो रुख अपना रखा है उसपर मुझे बड़ा अफसोस होता है। पत्रिकाओंके बारेमें निर्णय देनेके उनके अधिकारपर मैंने कभी शंका नहीं उठाई। उन्होंने सरकारके पत्रका जो अनुच्छेद मुझसे पढ़नेके लिए कहा है, उससे मुझे तनिक भी सन्तोष नहीं हुआ। उसमें कहा गया है कि सुपरिटेंडेंट कैदियोंसे जेलके सामान्य विनियमोंके बारेमें चर्चा नहीं कर सकता। मैंने इन्स्पेक्टर-जनरलसे अपने प्रति ऐसी किसी चर्चाकी प्रार्थना नहीं की। मैंने तो केवल उनके निर्णयके कारण जानने चाहे हैं। मैं उन्हें याद दिलाता हूँ कि जब वे स्वयं सुपरिटेंडेंट थे और मेरी तरफसे उन्होंने सरकार से 'मॉडर्न रिव्यू' की माँग की थी, तब सरकारने उसे अस्वीकृत करनेके कारण दिये थे। मैं कहना चाहता हूँ कि यह मामला उस मामलेसे तनिक भी भिन्न नहीं है।

इसके सिवा इन्स्पेक्टर-जनरलकी मेरे साथ जो बातें हुई हैं, उनसे वे जान गये हैं कि पत्रिकाओंके उपयोगकी मनाहीको मैं न्यायाधीश द्वारा दी गई सजाके अतिरिक्त एक सजा मानता हूँ। मुझे इसमें कोई शक नहीं है कि हम लोगोंको हर मामलेमें समर्थ अधिकारियों द्वारा दी जानेवाली सजाओंका कारण जाननेका हक है।

मैं इन्स्पेक्टर-जनरलकी शानको ध्यानमें रखते हुए निवेदन करना चाहता हूँ कि सरकार कैदियोंके प्रति जैसी उपेक्षाकी दर्पपूर्ण मनोवृत्ति अपना सकती है, वैसी मनोवृत्ति वे नहीं अपना सकते। जिन दिनों वे सुपरिटेंडेंट थे उन दिनों उन्होंने मुझपर यह छाप छोड़ी थी कि जेलके किसी भी सुपरिटेंडेंटका जेलके अनुशासनका निश्चित रूपसे पालन कराते हुए यह भी कर्त्तव्य है कि वह उसी दृढ़ताके साथ कैदियोंके स्वत्वोंकी रक्षा भी करे। फलस्वरूप मैं मानने लगा था कि जेलका सुपरिटेंडेंट अपनी देखभालमें रखे गये कैदियोंका वास्तवमें अभिभावक है। यदि यह बात सही हो तो मैं मान लेता हूँ कि इन्स्पेक्टर-जनरल कैदियोंके बड़े अभिभावक हैं और इसलिए कैदी उनसे यह आशा रखते हैं कि यदि सरकार उनके उचित अधिकारोंकी उपेक्षा या अवहेलना करे, तो वे सरकारपर जोर डालकर उन्हें उनके उचित अधिकार दिलायें और कैदी उनसे यह भी अपेक्षा रखता है कि वे उसकी उचित पूछताछको टालनेके बजाय उसको यथा सम्भव युक्ति-संगत रूपसे सन्तुष्ट करनेका प्रयत्न करें।

इस पत्र-व्यवहारको चलाते जानेका मुझे खेद है। परन्तु सही हो या गलत मेरी यह मान्यता है कि कैदीके नाते मेरे भी कुछ अधिकार हैं, उदाहरणार्थ, शुद्ध जल, वायु, आहार और वस्त्र प्राप्त करनेका अधिकार। इसी प्रकार मैं जिस मानसिक भोजनका आदी हूँ उसे पानेका भी मेरा हक है। मैं कोई मेहरबानी नहीं चाहता, और यदि इन्स्पेक्टर-जनरलको यह खयाल हो कि मुझे कोई भी चीज या सुविधा मेहरबानीके तौरपर दी गई है तो मैं चाहता हूँ कि वह वापस ले ली जाये। परन्तु पत्रिकाएँ पानेके अधिकारको मैं उपयुक्त भोजन पानेके बराबर महत्त्वपूर्ण मानता हूँ। इसलिए मैं उनसे नम्रतापूर्वक कहना चाहता हूँ कि उनके निर्णयके कारण जाननेके

लिए मैंने जो प्रार्थनापत्र दिया है उसकी वे वैसी अवहेलना न करें जैसी कि दुर्भाग्यवश उनके अबतक के पत्रोंसे प्रकट होती रही है।[1]

आपका आज्ञाकारी,
मो० क० गांधी

अंग्रेजी मसविदे (एस० एन० ८०२४) की फोटो-नकल तथा *यंग इंडिया*, ६-३-१९२४ से।

७९. पत्र : यरवदा जेलके सुपरिंटेंडेंटको

यरवदा सेन्ट्रल जेल
१६ अप्रैल, १९२३

सुपरिंटेंडेंट
यरवदा सेन्ट्रल जेल
महोदय,

मेरा सबसे छोटा लड़का[2] आज मुझसे मुलाकात करने आया है। इसलिए यदि सम्भव हो तो मैं गत २३ फरवरीके अपने उस पत्रका सरकारी उत्तर देखना चाहूँगा जो कि मैंने अपनी मुलाकातसे सम्बन्धित विनियमोंके बारेमें भेजा था। उस उत्तरसे मैं यह मालूम कर सकूँगा कि मैं अपने उक्त पत्रके अनुसार अपने पुत्रसे भेंट कर सकता हूँ या नहीं। क्योंकि आप जानते हैं, आज मेरा मौनवार है। मौन दोपहरको २ बजे छूटता है।[3]

आपका आज्ञाकारी,
मो० क० गांधी

अंग्रेजी पत्र (एस० एन० ८०२५) की फोटो-नकल तथा **यंग इंडिया**, ६-३-१९२४ से।

१. यह पत्र गांधीजीकी निम्नलिखित टिप्पणीके साथ प्रकाशित हुआ था : "इन्स्पेक्टर-जनरल कर्नल डेलजीलने अन्तमें उत्तर देनेकी कृपा की कि निर्णय ऊपरके अधिकारियोंकी तरफसे दिया गया था।"

२. देवदास गांधी।

३. इस पत्रके सिलसिलेमें मुलाकातोंके बारेमें सरकारकी नीतिपर गांधीजीकी टिप्पणियोंके लिए देखिए "पत्र-व्यवहारपर टिप्पणी", ६-३-१९२४।

८०. पत्र : यरवदा जेलके सुपरिटेंडेंटको

१६ अप्रैल, १९२३

सुपरिटेंडेंट
यरवदा सेन्ट्रल जेल
महोदय,

छः महीनेसे भी अधिक समय पूर्व मेरे लिए यहाँ 'लाइफ ऐंड टीचिंग्स ऑफ बुद्ध' नामकी पुस्तक भेजी गई थी। गत जनवरीके लगभग अन्तमें मेरी पत्नी मेरे लिए एक धार्मिक मासिक पत्रिका लाई थी। यह मासिक पत्रिका आपके कार्यालयमें दे दी गई थी। पिछले चार महीनेसे यहाँ हिन्दीका एक पाक्षिक पत्र भेजा जा रहा है, जिसमें, हिन्दी, तमिल और तेलुगूके पाठ होते हैं। इस पत्रके चार अंक मुझे दिये जा चुके हैं।

सरकारने 'सरस्वती' नामकी हिन्दी मासिक पत्रिका देनेकी भी स्वीकृति दी है। किन्तु मेरे यहाँ आनेके बाद मुझे इसके पहले तीन अंक ही मिले हैं। उसके बादके अंक मुझे नहीं दिये गये। पिछली भेंटके समय मैंने अपनी पत्नीसे कहा था कि मुझे कुछ किताबें चाहिए। मुझे उनका पार्सल कबका मिल जाना चाहिए था।

क्या आप मुझे बतानेकी कृपा करेंगे :

(क) 'लाइफ ऐंड टीचिंग्स ऑफ बुद्ध' नामक पुस्तकका क्या हुआ ?
(ख) मेरी पत्नी जो धार्मिक मासिक पत्र लाई थी, उसका क्या हुआ ?
(ग) हिन्दी, तमिल और तेलुगू पाक्षिक पत्रके शेष अंक आपको मिले हैं या नहीं। यदि मिले हैं तो क्या मैं उन्हें प्राप्त कर सकता हूँ ?
(घ) क्या 'सरस्वती' आई है ? यदि नहीं आई है तो क्या सत्याग्रह आश्रम, साबरमतीके व्यवस्थापकको पत्र लिखकर यह कहा जा सकता है कि इस पत्रिकाके पिछले जूनके बादके अंक, जो यहाँ नहीं आये, वे भिजवा दिये जायें ?
(ङ) मेरी पत्नी द्वारा भेजा हुआ जो पार्सल आनेवाला था, क्या वह आ चुका है ?
(च) क्या कुछ दूसरी पुस्तकें अथवा मासिक पत्रिकाएँ ऐसी हैं जो आपको मिली तो हैं किन्तु मुझे नहीं दी गईं ?

मैं चाहता हूँ कि मेरे लिए यहाँ भेजी गई पुस्तकों अथवा पत्रिकाओंमें से कोई पुस्तक या पत्रिका गुम न हो जाये। इसलिए यदि उनमें से मुझे कुछ न भी दी जानी हों तो मैं चाहूँगा कि ऐसी निषिद्ध पुस्तकों और पत्रिकाओंके नाम

वता दिये जायें और मुझे यह आश्वासन दे दिया जाये कि वे मेरी ओरसे आपके कार्यालयमें सुरक्षित हैं।

आपका,

अंग्रेजी मसविदे (एस० एन० ८०२६)की फोटो-नकलसे।

८१. पत्र : यरवदा जेलके सुपरिंटेंडेंटको

२६ अप्रैल, १९२३

सुपरिंटेंडेंट
यरवदा सेन्ट्रल जेल
महोदय,

गत सप्ताह सोमवारको मेरा सबसे छोटा लड़का देवदास गांधी अनुमति लेकर मुझसे मिलने आया था। उसने मुझे बताया कि उसने पण्डित जवाहरलाल नेहरू, श्री महादेव देसाई और अपनी ओरसे मुझसे भेंटकी अनुमति माँगी थी। किन्तु यह अनुमति केवल उसीको दी गई। सरकारने आपको लिखे मेरे गत २३ फरवरीके पत्रका जो उत्तर दिया है उसके बारेमें आपने कृपया मुझे सूचित कर दिया है। इन दोनोंको मिलाकर मैंने कुछ हदतक यह तो समझ ही लिया है कि जो लोग मुझसे मिलना चाहें, उनके सम्बन्धमें सरकारका क्या रुख है। इस मामलेमें यथासम्भव निराशासे बचनेके लिए मैंने अपने लड़केसे कहा कि न हुआ तो कुछ समयके लिए बाहरसे मित्रों द्वारा भेंटकी अनुमति माँगे जानेकी अपेक्षा मैं स्वयं भेंटकी आवश्यक अनुमति पानेके लिए लिखूँगा। इसलिए सरकारके उक्त उत्तरके अनुसार मैं नीचे लिखे किन्हीं भी पाँच व्यक्तियोंको भेंटकी अनुमति देनेकी प्रार्थना करता हूँ। उन्हें लक्ष्मी दूदाभाईके साथ मुझसे भेंटकी सुविधा दी जाये। मैंने इस सात वर्षकी दलित वर्गीय कन्याका पालन-पोषण किया है और उसे गोद लिया है। दूसरे नाम इस प्रकार हैं:

(१) मेरे भतीजे श्री छगनलाल गांधी, जो मुझसे पिछली जनवरीमें मिलनेवाले थे किन्तु बीमारीके कारण नहीं मिल सके।

(२) श्री जमनादास गांधी, संख्या (१) के भाई।

(३) श्री नारणदास गांधी, संख्या (१) के भाई।

(३क) मेरा लड़का रामदास गांधी।

(४) राधा मगनलाल गांधी, संख्या (१) की भतीजी, एक १४ वर्षकी लड़की।

(४क) रुखी म० गांधी, संख्या (४) की छोटी बहन।

(५) मोती लक्ष्मीदास, लगभग १५ वर्षकी एक लड़की।

(६) लक्ष्मी लक्ष्मीदास, संख्या [५की बहन], तेरह वर्षकी एक लड़की।

(७) अमीना बावजीर, १५ वर्षकी एक लड़की।

(८) कृष्णदास छगनलाल गांधी, संख्या (१) का पुत्र, आयु लगभग १२ वर्ष।
(९) श्रीमती गांधी।

ये सब मेरे साथ सत्याग्रह आश्रममें रहते हैं। इनमें से संख्या ५, ६ और ७ को छोड़कर शेष मेरे सम्बन्धी हैं।

मैं ५ से अधिक नाम इसलिए दे रहा हूँ कि लक्ष्मीके साथ ५ व्यक्तियोंका आना निश्चित हो जाये। सादर निवेदन है कि मुझे इसका उत्तर जल्दी दे दिया जाये, क्योंकि मैं श्री छगनलाल गांधी, उनकी पत्नी और मोती नामक लड़कीसे मिलनेके लिए उत्सुक हूँ। ये सभी कुछ समयसे बीमार हैं।

आपका आज्ञाकारी

अंग्रेजी मसविदे (एस० एन० ८०२७) की फोटो-नकलसे।

८२. पत्र: यरवदा जेलके सुपरिंटेंडेंटको

यरवदा सेन्ट्रल जेल
१ मई, १९२३

सुपरिंटेंडेंट
यरवदा सेन्ट्रल जेल
महोदय,

आपने मुझे वह विनियम दिखानेकी कृपा की है जिसके अनुसार कुछ सादी सजा-वाले कैदी विशेष वर्गमें रखे गये हैं और बताया है कि मैं भी उसीमें रखा गया हूँ। मेरा खयाल है कि यहाँ सर्वश्री कौजलगी, जयरामदास और भणसाली[1] जैसे सख्त सजा प्राप्त कैदी हैं, जिनका अपराध मेरे ही जितना है और जिनका दर्जा बाहर शायद मुझसे भी ऊँचा रहा है तथा अवश्य ही जिन्होंने बरसोंतक मेरी अपेक्षा अधिक आरामकी जिन्दगी बसर की है। इसलिए जब ऐसे कैदियोंको विशेष वर्गके बाहर रखा गया है, तब मैं लाभ उठानेकी इच्छा रखते हुए भी उक्त कुछ विनियमोंका उपभोग नहीं कर सकता। इसलिए यदि इस विशेष वर्गसे मेरा नाम निकाल दिया जाये तो मुझे बड़ी खुशी होगी।

भवदीय,
मो० क० गांधी
नं० ८२७

अंग्रेजी मसविदे (एस० एन० ८०२८) की फोटो-नकल तथा **यंग इंडिया**, ६-३-१९२४ से।

१. जयकृष्ण भणसाली; मार्च १९२२ में गांधीजीकी गिरफ्तारीके बाद **यंग इंडियाके** मुद्रक; उसके बाद शीघ्र ही गिरफ्तार और यरवदा जेलमें गांधीजीके साथ बन्दी।

८३. पत्र : यरवदा जेलके सुपरिंटेंडेंटको

यरवदा सेन्ट्रल जेल
२८ जून, १९२३

सुपरिंटेंडेंट
यरवदा सेन्ट्रल जेल
महोदय,

आज सुबह मैंने सुना कि मूलशीपेटाके छः कैदियोंको कम काम करनेपर कोड़े लगाये गये हैं। कुछ दिन पहले मैंने ऐसे ही एक कैदीको इसी अपराधपर कोड़े लगाये जानेकी बात सुनी थी। आजके समाचारसे मुझे अत्यन्त क्षोभ हुआ है, और मैं महसूस करता हूँ कि इस सम्बन्धमें मुझे कुछ करना ही चाहिए। परन्तु मैं जल्दबाजीसे भरा हुआ कोई कदम नहीं उठाना चाहता। आपके प्रति मेरा कर्त्तव्य है कि कुछ भी करनेसे पहले मैं उन लोगोंको दी गई सजाके बारेमें सच्ची हकीकत भी मालूम कर लूं। यह पत्र इसीलिए है।

मैं जानता हूँ कि कैदीके नाते मुझे आपसे इस प्रकारकी हकीकत जाननेका कोई अधिकार नहीं है, परन्तु मनुष्यके नाते और एक जनसेवककी हैसियतसे मैं यह पूछनेकी धृष्टता कर रहा हूँ।

आपका आज्ञाकारी,
मो० क० गांधी
नं० ८२७

अंग्रेजी मसविदे (एस० एन० ८०२९) की फोटो-नकल तथा **यंग इंडिया**, ६-३-१९२४ से।

८४. पत्र : यरवदा जेलके सुपरिंटेंडेंटको

यरवदा सेन्ट्रल जेल
२९ जून, १९२३

सुपरिंटेंडेंट
यरवदा सेन्ट्रल जेल
महोदय,

मैंने मूलशीपेटाके कुछ कैदियोंको कोड़े लगाये जानेके सम्बन्धमें कल जो पत्र लिखा था उसके उत्तरमें सजाके कारणका पूरा ब्योरा देनेके लिए मैं आपको तथा इन्स्पेक्टर-जनरलको धन्यवाद देता हूँ।

आपको याद होगा कि कुछ महीने पहले जब इसी तरहकी सजा कुछ दूसरे मूलशीपेटाके कैदियोंको दी गई थी तो मैंने सरकारसे अनुरोध किया था कि मुझे उन

तमाम कैदियोंसे मिलने दिया जाये जिससे मैं उन्हें जेलका अनुशासन माननेके लिए प्रेरित कर सकूँ। सरकारने सुझावके लिए धन्यवाद तो दिया; पर उसे स्वीकार नहीं किया। मैंने अपनी प्रार्थनापर आगे जोर नहीं दिया; क्योंकि मैं इतनी आशा तो लगा ही बैठा था कि अब ऐसे कैदियोंको कोड़े लगानेकी नौबत नहीं आयेगी। लेकिन मेरी आशा पूरी नहीं हुई और तबसे अनेक बार कोड़े लगाये जा चुके हैं।

मुझे विश्वास है कि यदि मैं उन कैदियोंसे मिल पाऊँ तो मैं उनको यह समझा सकूँगा कि उनके कैद होनेका वास्तविक अर्थ क्या है; और बता सकूँगा कि उन्हें न तो कामसे जी चुराना चाहिए, न हुक्म उदूली और गुस्ताखी करनी चाहिए — जैसा कि कहा जाता है, उन्होंने की है। मेरा यह भी अनुरोध है कि उनके पास मेरे रहनेकी व्यवस्था कर दी जाये जिससे मैं समय-समयपर उन्हें समझा-बुझा सकूँ। यदि यह सम्भव न हो तो मेरा सादर निवेदन है कि जितनी बार उनसे मिलना जरूरी हो उतनी बार मिलनेकी मुझे इजाजत दी जाये।

मैं जानता हूँ कि एक कैदीकी हैसियतसे मैं न तो ऐसी इजाजत माँग सकता हूँ और न उसे पानेका मुझे हक है; परन्तु मैं आपसे विनयपूर्वक एक मनुष्यके नाते एक मानवीय उद्देश्यकी पूर्तिके लिए यह प्रार्थना कर रहा हूँ। मुझे विश्वास है कि यदि किसी सूरतसे कोड़े लगानेकी सजा टाली जा सके तो सरकार यह सजा हरगिज नहीं देना चाहेगी; खास तौरपर उन लोगोंको जो सही या गलत तौरपर, अपनी अन्तरात्माकी प्रेरणासे स्वयं जेल आये हैं। जब मैं ऐसा कहता हूँ कि इस प्रकारके दण्डसे मेरे हृदयको बड़ी ही व्यथा होती है तो सरकार उसे उचित ही समझेगी — विशेषकर जब मुझे विश्वास है कि मेरे उनके साथ रख दिये जानेपर ऐसे अवसरोंको टाला जा सकता है। आशा है कि सरकार मेरे इस कथनकी कद्र करेगी।

मैंने जिस भावनासे पत्र लिखा है, भरोसा है कि सरकार उसी भावनाके अनुरूप उत्तर देगी और सेवा सम्बन्धी मेरे प्रस्तावको ठुकराकर मुझे अत्यन्त विषम परिस्थितिमें नहीं ला पटकेगी। क्योंकि उस अवस्थामें मुझे कुछ-न-कुछ करनेपर मजबूर होना पड़ेगा जिसके फलस्वरूप, मेरी इच्छा न होते हुए भी, सरकार उलझनमें पड़ जा सकती है।[1] जबतक मैं जेलमें हूँ तबतक मैं यह नहीं चाहता कि मेरे किसी भी कामसे, जिसे मैं सम्भवतः टाल सकता हूँ, सरकारको उलझन हो।

यह देखते हुए कि इस मामलेको लेकर कुछ कैदी अनशन कर रहे हैं, प्रार्थना है कि उत्तर यथासम्भव शीघ्र दिया जाये।

आपका आज्ञाकारी,
मो० क० गांधी
नं. ८२७

अंग्रेजी मसविदे (एस० एन० ८०३०) की फोटो-नकल तथा **यंग इंडिया**, ६-३-१९२३ से।

१. गांधीजीका आशय उपवास शुरू करनेसे है; देखिए अगला शीर्षक।

८५. पत्र : यरवदा जेलके सुपरिंटेंडेंटको

यरवदा सेन्ट्रल जेल
९ जुलाई, १९२३

सुपरिंटेंडेंट
यरवदा सेन्ट्रल जेल
महोदय,

आपको याद होगा कि अभी हाल ही में मुलशीपेटाके कुछ कैदियोंको कोड़े लगाये गये थे और मैंने उनके बारेमें आपको गत मासकी २९ तारीखको एक पत्र लिखा था। इस दण्डके विरोधमें मुलशीपेटाके कुछ कैदी तभीसे अनशन कर रहे हैं। इनमें से कुछने कमजोर हो जानेके कारण अनशन छोड़ दिया है।

मैंने यह आशा की थी कि सरकार मेरी प्रार्थनाके कारण न सही उनके अनशनको ध्यानमें रखकर ही मेरे पत्रमें सुझाये गये प्रस्तावका उत्तर जल्दी ही दे देगी। इस बातको दस दिन हो गये हैं; किन्तु अभीतक सरकारसे कोई उत्तर नहीं मिला है।

ज्यों-ज्यों समय बीतता जाता है, त्यों-त्यों मेरा मानसिक उद्वेग बढ़ता जाता है। मैंने अपने मनको बार-बार समझानेका प्रयत्न किया है कि मैं आखिरकार एक कैदी ही हूँ, इसलिए मुझे यह नहीं सोचना चाहिए कि दूसरे कैदियोंके साथ कैसा व्यवहार किया जा रहा है। किन्तु मैं स्वीकार करता हूँ कि मैं इसमें असफल हो गया हूँ। मैं यह नहीं भूल सकता कि मैं एक मनुष्य अथवा सार्वजनिक कार्यकर्त्ता और सुधारक भी हूँ। सही कहिए या गलत, मैं यह अनुभव करता हूँ कि यदि मैं अनशनकारियोंसे मिल सकूं तो उनका अनशन, जिसे आप अनुचित मानते हैं, और मैं भी ऐसा ही विश्वास करता हूँ, समाप्त हो जायेगा। यदि इस जेलमें उपवास करनेवाला व्यक्ति अजनबी न होकर मेरा भाई हो और फिर मुझसे यह आशा की जाये कि मैं उसके अनशनके प्रति उसी प्रकार उदासीन रहूँ जिस प्रकार कि कैदियोंसे अपने साथियोंके प्रति रहनेकी अपेक्षा रखी जाती है तो यह आश्चर्यकी बात होगी। मैं इन अनशनकारी कैदियोंके बारेमें ठीक वैसा ही अनुभव करता हूँ जैसा कि मैं अपने सगे भाईके बारेमें करता। यद्यपि ऐसा कहना यहाँ असंगत होगा, फिर भी मैं बता देता हूँ कि इनमें से दो मेरे सुपरिचित हैं और अपने-अपने क्षेत्रके समाजमें उन्हें काफी ऊँचा स्थान प्राप्त है।

यह स्थिति मेरे लिए लगभग असह्य हो गई है। इसलिए यदि आज शामतक मेरे प्रस्तावका कोई सन्तोषप्रद उत्तर नहीं आता तो मैं किसी अन्य कारणसे नहीं बल्कि विशुद्ध रूपसे अपनी आत्माको सान्त्वना देनेकी खातिर कलसे अनशन आरम्भ कर दूंगा। मैं पानी या नमक लेता रहूँगा। इस समस्याका कोई सन्तोषप्रद समाधान होने तक, अर्थात् इन कैदियोंका अनशन समाप्त होने और मेरे पिछले मासकी २९ तारीखके पत्रमें दिये गये प्रस्तावपर पूरी तरह अमल किये जाने तक मैं अनशन जारी रखूंगा।

मैं जानता हूँ कि मेरे इस निर्णयसे आपको दुःख होगा। आप मुझपर असाधारण रूपसे कृपालु रहे हैं और मेरा बहुत अधिक खयाल करते रहे हैं। मैं यह भी जानता हूँ कि इससे सम्भवतः सरकारको भी कुछ परेशानी हो। किन्तु मुझे आशा है कि आप और सरकार दोनों ही इसमें मेरी नैतिक कठिनाईका विचार करेंगे।

सरकार मेरे प्रस्तावको मानकर चाहे जब इस दुर्भाग्यपूर्ण स्थितिका अन्त कर सकती है।

मेरा अनशन इसलिए नहीं होगा कि मूलशीपेटाके कैदी अनशन कर रहे हैं, बल्कि यह इसलिए होगा कि वर्तमान अनशनको समाप्त कराने और जिन घटनाओंका परिणाम यह अनशन है उनकी पुनरावृत्ति रोकनेमें सहायता देनेके लिए मुझपर प्रतिबन्ध लगाया गया है; और जब कि मैं यह विश्वास करता हूँ कि मैं इस कार्यमें सहायता कर सकता हूँ।

मैं जेलकी व्यवस्थामें कोई हस्तक्षेप नहीं करना चाहता। किन्तु मेरी विनम्र सम्मतिमें जहाँ मानवताका प्रश्न आता है वहाँ जेलके प्रशासकोंकी प्रतिष्ठाका प्रश्न गौण हो जाता है। मेरा अनुमान है कि यदि एक भी कैदीके ऐच्छिक सहयोगसे मानवताका हित सधता है तो कोई भी सभ्य सरकार उसे सहर्ष स्वीकार कर लेगी।

आपका आज्ञाकारी,

अंग्रेजी मसविदे (एस० एन० ८०३१) की फोटो-नकलसे।

८६. पत्र : एफ० सी० ग्रिफिथको

यरवदा सेन्ट्रल जेल
१७ जुलाई, १९२३

प्रिय श्री ग्रिफिथ,

मेरे सन्देशका आपने जो उत्तर दिया है कल सुपरिंटेंडेंटने उससे मुझे अवगत किया।

मैं उसका जवाब दे रहा हूँ।

आपने गत सप्ताहकी भेंटके समय मुझे बताया था कि परमश्रेष्ठ मुझे मूलशी-पेटाके अनशन करनेवाले सत्याग्रहियोंसे मिलनेकी अनुमति देनेके लिए तैयार हैं और अधिकारियोंके साथ मारपीट करनेवालों को छोड़कर अन्य सत्याग्रही कैदियोंको बेंत न लगानेके उचित निर्देश भी देना चाहते हैं, किन्तु लगता है, वे सरकार द्वारा स्वीकृति दे देनेके बाद भी मेरे इसी मासकी ९ तारीखके पत्रके कारण मेरे प्रस्तावोंपर विचार तक नहीं करना चाहते। उनका खयाल है कि मैंने अपने इस पत्रमें अनशनकी बात कही है, वह एक धमकी है। मैंने पिछले गुरुवारकी बातचीतमें आपसे जो-कुछ कहा था उसे मैं यहाँ फिर दुहराता हूँ। सरकारको धमकी देनेकी मेरी इच्छा कदापि नहीं थी। जैसा मैं उक्त पत्रमें पहले ही बता चुका हूँ कि मेरा अपेक्षित अनशन मेरे

लिए एक विशुद्ध नैतिक कदम है। अनशनकारियोंसे भेंट करनेकी अनुमति न मिलनेकी अवस्थामें एक कैदीकी हैसियतसे मेरा यह कर्त्तव्य था कि मैं अपनी अनशन करनेकी इच्छाके बारेमें सुपरिटेंडेंटको सूचित कर दूं। मैं यह जानता था कि मेरे अनशनसे सरकारको, जिसका मेरे शरीरपर नियन्त्रण है, परेशानी हो सकती है; किन्तु मुझे अनुभव हुआ कि मेरा अपने इस स्पष्ट कर्त्तव्यका त्याग करना अपनी अन्तरात्मापर बलात्कार करना होगा। और यदि सरकारने मानवीयताका स्पष्ट मार्ग ग्रहण न किया तो सम्भव है मेरी इच्छा न होते हुए भी सरकारको मेरे अनशनके कारण परेशानी उठानी पड़े। फिर भी अपने उक्त पत्र और तबसे लेकर अबतक तथा उससे पहले इस अनशनके सम्बन्धमें की गई अपनी सारी कार्रवाईका मैंने जो अर्थ लगाया है उसपर जोर देनेके लिए मैंने आपसे यह कहा था कि मैं इस बातको स्वीकार किये बिना कि मैंने वह पत्र सरकारको कोई धमकी देनेके इरादेसे लिखा था, मैं उसे रद करने तथा परमश्रेष्ठके इस आश्वासनपर विश्वास करनेके लिए तैयार हूँ कि यदि उनको मेरे अनशन करनेके विचारकी बात मालूम न होती तो वे मेरी प्रार्थनाको उसके औचित्यके आधारपर भी स्वीकार कर लेते। अपने पत्रके सम्बन्धमें दिया गया मेरा स्पष्टीकरण स्वीकार करने और उन अनशनकारी दो सत्याग्रहियोंसे, जिनके नाम मैंने आपको बताये हैं, मुझे मिलनेकी अनुमति देनेका आपको अधिकार दिया गया है, इसके लिए मैं आभारी हूँ।

आशा है बेंतकी सजाके सम्बन्धमें निर्देश दे दिये गये होंगे।

यदि इसमें कोई बात छूट गई हो या कोई भूल रह गई हो तो आप कृपा करके मुझे बतानेमें संकोच न करें।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजी मसविदे (एस० एन० ८०३२) की फोटो-नकलसे।

८७. पत्र : एफ० सी० ग्रिफिथको

यरवदा सेन्ट्रल जेल
२४ जुलाई, १९२३

प्रिय श्री ग्रिफिथ,

इस मासकी १२ तारीखको मुझसे मिलनेपर आपने यह बताया था कि परमश्रेष्ठ गवर्नरको मेरे इस मासकी ९ तारीखके पत्रमें धमकीका आभास मिला है। मुझे इसपर आश्चर्य हुआ है। मैंने उस समय आपसे जो-कुछ कहा था, मैं अब भी उसे दुहराना चाहूँगा कि उस पत्रके द्वारा सरकारको किसी प्रकारकी धमकी देनेका मेरा कोई इरादा नहीं था और यदि इस आश्वासनके बावजूद परमश्रेष्ठको उस पत्रमें अब भी धमकी दी गई जान पड़ती है तो मान लिया जाये कि मैंने उस पत्रको बिलकुल रद कर दिया है या वापस ले लिया है।

यह जानकर कि परमश्रेष्ठ मेरी प्रार्थनाको उसके औचित्यके आधारपर स्वीकार कर सकते हैं, मुझे दरअसल और भी ज्यादा खुशी होती है। आपने मुझे बताया कि परमश्रेष्ठने हमारी बातचीतके प्रायः तुरन्त बाद ही आगे बेंत न लगानेकी आज्ञा दे दी थी। इसके लिए कृपया उन्हें मेरी ओरसे धन्यवाद दे दें। मुझे यह देखकर खुशी होती है कि उस आज्ञाका क्षेत्र, जितना मैं चाहता था वस्तुतः उससे भी कहीं अधिक विस्तृत है।[1]

आपका सच्चा,
मो० क० गां०

एफ० सी० ग्रिफिथ, सी० एस० के०, ओ० बी० ई०

अंग्रेजी मसविदे (एस० एन० ८०३३) की फोटो-नकलसे।

८८. पत्र : यरवदा जेलके सुपरिंटेंडेंटको

यरवदा सेन्ट्रल जेल
१४ अगस्त, १९२३

सुपरिंटेंडेंट
यरवदा सेन्ट्रल जेल
महोदय,

कल गवर्नर महोदय[2] और मेरे बीच हुई बातचीतके सन्दर्भमें मैं यह निवेदन करना चाहता हूँ :

मैं मानता हूँ कि सरकार द्वारा बनाये गये विशेष वर्ग विनियमोंके विषयमें मुझे सदैव यह लगा है कि सरकारने सच्चे हृदयसे किसी ऐसे वर्गके उपबन्धकी आवश्यकताको स्वीकार नहीं किया है; बल्कि अनिच्छापूर्वक और कुछ लोकमतके दबावमें महज कागजी रियायत दी है। कल जब परमश्रेष्ठ कृपापूर्वक मेरे पास पूछताछके लिए आये तब यदि उन्होंने मुझे अपने मनकी सभी बातें कहनेके लिए न कहा होता तो मैं किसी विवादास्पद विषयको न छेड़ता और न उसपर चर्चा करता। किन्तु मेरे विशेष वर्गसे सम्बन्धित प्रश्नका उल्लेख करनेपर परमश्रेष्ठने जो-कुछ कहा, मैं उसके लिए बिलकुल तैयार नहीं था। सरकारकी नीयतके सम्बन्धमें मुझे जो सन्देह है उसे यदि सम्भव हो तो मैं मनसे निकाल देना चाहता हूँ। और अब यह जाननेके बाद कि

१. उक्त पत्रमें २५ तारीखको संशोधन करके उसके स्थानपर यह रखा गया :
"मुझे यह कहनेकी शायद ही जरूरत हो कि परमश्रेष्ठको मेरे पत्रमें कोई धमकी दिखाई दी इसका मुझे खेद है।"

२. आशय गवर्नर सर जॉर्ज लॉयड्से है जो १३ अगस्तको जेलका निरीक्षण करने आये थे।

परमश्रेष्ठने ही स्वयं इन विनियमोंको तैयार किया है, मेरी यह इच्छा और भी तीव्र हो गई है।

परमश्रेष्ठने कल जिस विश्वाससे कहा उसके बावजूद मैं यह अनुभव करता हूँ कि कड़ी सजाके भागी विशिष्ट कैदियोंको विशेष वर्गमें रखनेमें कोई कानूनी रुकावट नहीं है। यदि ऐसी कोई कानूनी रुकावट है तो मैं उस कानूनको देखना चाहूँगा।

मैं आदरपूर्वक यह भी बताना चाहता हूँ कि परमश्रेष्ठके मनमें यह गलत धारणा घर कर गई है कि सजाओंमें फेरफार सिर्फ अदालतें ही कर सकती हैं। यद्यपि मैं इस जेलमें थोड़े ही दिनसे हूँ फिर भी मैंने देखा है कि प्रशासनिक आदेशके अन्तर्गत कितने ही कैदी वक्तसे पहले छोड़ दिये गये हैं। मैंने जो मुद्दा उठाया था सो केवल यही था कि यदि इस प्रकार कड़ी सजा पाये हुए कैदियोंको विशेष वर्गमें रखनेमें कोई तकनीकी और कानूनी कठिनाई हो तो उनकी कड़ी सजा [प्रशासनिक आदेशसे] सादी सजामें बदल दी जाये।

इन मुद्दोंके उल्लेखके द्वारा मेरा उद्देश्य यह खयाल पैदा करना नहीं है कि मुझे ऐसे किसी खास कैदीकी कड़ी सजाके बारेमें शिकायत है; या कि कड़ी सजा पाये हुए कुछ कैदियोंका खास खयाल करके मैं उन्हें विशेष वर्गमें ही रखवाना चाहता हूँ।

किन्तु मैं आदरपूर्वक यह जरूर कहना चाहता हूँ कि (१) मेरे उठाये हुए मुद्दोंके बारेमें मुझे जानकारी दी जाये जिससे मेरा उपर्युक्त सन्देह दूर हो जाये और (२) नहीं तो न्यायकी दृष्टिसे, कड़ी सजा पानेवाले उन कैदियोंको भी विशेष वर्गमें सम्मिलित किया जाये जिन्हें अच्छे रहन-सहनकी आदत है और जिनका खयाल करके विशेष वर्ग विनियम बनाये गये हैं; या मेरा नाम और मेरे दोनों साथियोंके नाम विशेष वर्गसे निकाल दिये जायें।

हमारी हार्दिक इच्छा है कि जिन लोगोंको हम अपने ही समान सुख-सुविधाके योग्य समझते हैं, उन्हें छोड़कर केवल हमपर ही अनुग्रह न किया जाये। मुझे विश्वास है कि परमश्रेष्ठ हमारी इस इच्छाको समझेंगे। इस सम्बन्धमें मैं परमश्रेष्ठसे प्रार्थना करता हूँ कि वे इसी विषयपर लिखे मेरे गत मईकी पहली तारीखके पत्रको[1] मँगाकर पढ़ें।

मुझे यह कहनेकी शायद ही जरूरत है कि यह पत्र मैंने एक कैदीकी हैसियतसे हरगिज नहीं लिखा है, बल्कि परमश्रेष्ठने कल मेरे साथ जो कृपापूर्ण और मैत्रीपूर्ण बातचीत की थी यह उसीके सिलसिलेमें है।

आपका विश्वस्त,
मो० क० गांधी

अंग्रेजी मसविदे (एस० एन० ८०३४) की फोटो-नकलसे।

१. देखिए "पत्र: यरवदा जेलके सुपरिंटेंडेंटको", १-५-१९२३।

८९. पत्र : बम्बईके गवर्नरको[1]

यरवदा सेन्ट्रल जेल
१५ अगस्त, १९२३[1]

परमश्रेष्ठ गवर्नर
बम्बई

महोदय,

आशा है परमश्रेष्ठ पिछले सोमवारको हमारे बीच हुई बातचीतके उल्लेखके लिए मुझे क्षमा करेंगे। विनियम बनाने और सजा घटानेकी सरकारकी सत्ताके विषयमें आपने मुझसे जो कहा था, उसपर मैं जितना ही अधिक विचार करता हूँ, उतना ही अधिक मुझे महसूस होता है कि इसमें आप गलतीपर हैं। मैं स्वीकार करता हूँ कि विशेष वर्ग विनियमोंके बनानेमें मुझे तो उनके आवश्यक होनेकी हार्दिक स्वीकृतिके बजाय सदा यही दिखाई दिया है कि लोकमतके दबावके आगे अनिच्छापूर्वक कुछ रियायतें दे दी गई हैं; इसलिए ये रियायतें केवल कागजी होकर रह जाती हैं। यदि आपकी यह बात सही हो कि कानून आपको कठोर कारावास प्राप्त कैदियोंको विशेष वर्गमें रखने अथवा किसी कैदीकी सजा घटानेकी कोई सत्ता नहीं देता, तो मुझे सरकारकी कार्रवाईके बारेमें अपना विचार बदल देना चाहिए और उसकी नीयतके सम्बन्धमें अपनी शंकाओंको मनसे हटा देना चाहिए। और चूँकि आप कहते हैं कि वे विवादास्पद विनियम स्वयं आपने ही तैयार किये हैं, इसलिए इस मामलेमें मुझे अपना विचार बदल डालनेका अतिरिक्त कारण उपस्थित हो जाता है। मेरा आपके बारेमें हमेशा यही विचार रहा है कि आप कोई काम कभी किसी कमजोरीमें आकर अथवा अपनी इच्छाके विरुद्ध लोकमतके सामने झुकनेका दिखावा करनेके लिए कदापि नहीं करते। इसलिए यदि आप यह कहें कि आपने सख्त कैदवालोंको विशेष वर्गके विनियमोंके लाभसे केवल इसलिए वंचित रखा कि कानूनसे आपके हाथ बँधे हुए थे, तो मुझे सन्तोष हो जायेगा।

परन्तु यदि आपके कानून अधिकारी आपके विचारके प्रतिकूल यह कहें कि कानून आपके इस काममें बाधक नहीं है तो मुझे आशा है कि आप नीचे लिखी दो बातोंमें से एक तो करेंगे ही :

(१) या तो मुझे और मेरे उन साथियोंको, जिनके नाम मैंने आपको दिये हैं, विशेष वर्गसे अलग कर दीजिए; अथवा (२) इसी तर्कके अनुसार जो हमारे जैसे ही जीवनके आदी हैं उन सख्त कैदकी सजावाले कैदियोंको भी विशेष वर्गमें रखिए।

१. यंग इंडियामें १५ जुलाई, १९२३ है, जो स्पष्टतः भूल है।

मैं परमश्रेष्ठसे प्रार्थना करता हूँ कि आप इस पत्रके साथ सुपरिंटेंडेंटको लिखा गया मेरा १ मईका पत्र भी मँगवाकर पढ़नेकी अनुकम्पा करें।'

आपका विश्वस्त सेवक,
मो० क० गांधी

अंग्रेजी मसविदे (एस० एन० ८०३५)की फोटो-नकल तथा *यंग इंडिया*, ६-३-१९२४ से।

९०. पत्र : यरवदा जेलके सुपरिंटेंडेंटको

यरवदा सेन्ट्रल जेल
६ सितम्बर, १९२३

सुपरिंटेंडेंट
यरवदा सेन्ट्रल जेल
महोदय,

मुझसे मिलनेकी इच्छा रखनेवाले कुछ सज्जनोंके नाम सरकारके पास भेजे गये थे।[२] उनके बारेमें आपने मुझे सूचना दी है कि सरकारने मुझसे मुलाकात कर सकनेवाले व्यक्तियोंकी संख्या घटाकर दो कर देनेका निश्चय किया है, और जो नाम भेजे गये हैं उनमें से केवल श्री नारणदास और देवदास गांधीको ही इस बारकी तिमाहीमें मुझसे मिलनेकी अनुमति मिल सकती है।

सरकारने अबतक मुझे पाँच मुलाकातियोंसे मिलनेकी इजाजत दे रखी थी इसलिए इस निर्णयसे मैं अवश्य ही आश्चर्यमें पड़ गया हूँ। परन्तु मैं इस दृष्टिसे इस निश्चयका स्वागत करता हूँ कि सरकारने मेरे ही खण्डमें रखे गये श्री याज्ञिकको[३] यह सुविधा देनेसे इनकार कर दिया था। यदि सौजन्यके विपरीत न जान पड़ता तो मैं स्वयं इन विशेष सुविधाओंको छोड़ देता; किन्तु यह मुझे बादमें मालूम पड़ा कि वे केवल मुझे ही दी जा रही हैं।

किन्तु अनुमतिको केवल सर्व श्री नारणदास और देवदास गांधीतक सीमित करनेकी बात अलग है। यदि इसका यह अर्थ है कि भविष्यमें निकटके सम्बन्धियोंमें से भी मैं केवल उन्हींसे मिल सकता हूँ जिन्हें सरकार स्वीकृत करे, तो हर तीसरे महीने दो बार मुलाकात करनेके इस साधारण अधिकारको छोड़ देना मेरा कर्त्तव्य हो जाता है। मेरा खयाल था कि मैं किस तरहके लोगोंसे मिल सकता हूँ इस बातका फैसला अन्तिम रूपसे हो चुका है। इस विषयमें किये गये पत्र-व्यवहारकी दलीलोंको दुहराकर

१. *यंग इंडियामें* पत्र-व्यवहार प्रकाशित करते समय गांधीजीने बादमें जो टिप्पणी दी उसके लिए देखिए "जेलके विनियमोंपर टिप्पणी", ६-३-१९२४।

२. देखिए "पत्र : यरवदा जेलके सुपरिंटेंडेंटको", २६-४-१९२३।

३. इन्दुलाल याज्ञिक।

सरकारको कष्ट देनेकी मेरी कोई इच्छा नहीं है। मैं इतना ही कहना चाहता हूँ कि सरकारको जिन तीन मित्रोंके नाम दिये गये थे, वे उस वर्गमें आते हैं जिन्हें पत्र-व्यवहारके वाद मिलनेकी स्वीकृति दे दी गई थी। और यदि मैं इन मित्रोंसे, जिन्हें मैं अपने कुटुम्बियोंके समान ही मानता हूँ, न मिल सकूँ तो सभी व्यक्तियोंसे न मिलना ही मेरे लिए एकमात्र रास्ता है।

आपने जो निर्णय मेरे पास भेजा है, मैं देखता हूँ कि सरकारको उसपर पहुँचनेमें एक पखवाड़ेसे भी अधिक लग गया। क्या मैं इस पत्रके सम्बन्धमें शीघ्र ही कोई उत्तर पानेकी आशा कर सकता हूँ, ताकि न तो वे लोग जो मुझसे मिलनेके लिए उत्सुक हैं, अनावश्यक रूपसे असमंजसमें पड़े रहें और न स्वयं मैं ही।

आपका विश्वस्त,
मो० क० गांधी
सं० ८२७

अंग्रेजी मसविदे (एस० एन० ८०३६)की फोटो-नकल तथा **यंग इंडिया**, ६-३-१९२४ से।

९१. सन्देश: मुहम्मद अलीको[1]

[यरवदा जेल,
१० सितम्बर, १९२३]

जेलमें होनेके कारण मैं आपको कोई सन्देश नहीं भेज सकता। लोगोंका जेलसे सन्देश भेजना मैंने हमेशा नापसन्द किया है। किन्तु अपने प्रति आपके प्रेमको देखकर मैं गद्गद हो गया हूँ। किन्तु मेरा आपसे यह कहना है कि मेरे प्रति आपका जो प्रेम है उसे देशके प्रति अपनी निष्ठासे कम महत्त्व दें। मेरे विचार तो सर्वविदित हैं। मैं जेलमें आनेसे पहले उन्हें व्यक्त कर चुका हूँ, और तवसे उनमें कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि यदि आपका मुझसे मतभेद हो जाये तो भी आपके और मेरे सम्बन्धोंकी मिठास रत्ती-भर कम नहीं होगी।

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, ४-१०-१९२३

१. ऐसा लगता है कि गांधीजीने व्यक्तिगत रूपसे यह सन्देश देवदास गांधीको उस समय दिया था जब वे यरवदा जेलमें गांधीजीसे मिलने आये थे। देवदासने उसे महादेव देसाईको दिया और महादेव देसाईने वादमें इसे ४-१०-१९२३ के **यंग इंडियामें** 'दिल्ली कांग्रेस' लेखमें उद्धृत किया। महादेव देसाईका कहना है कि १३ सितम्बरको मुहम्मद अलीने देवदाससे पूछा, "क्या बापूने मेरे लिए कुछ कहा है?" इसपर देवदासने मुहम्मद अलीको यह सन्देश दिया जिसका उल्लेख उन्होंने विनोद करते हुए अपने भाषणमें 'वेतारके तारका' सन्देश कहकर किया। किन्तु मुहम्मद अलीने वम्बई कांग्रेसमें १२ सितम्बरको अध्यक्षके रूपमें परिषद्-प्रवेश सम्बन्धी प्रस्तावका समर्थन करते हुए इस सन्देशको भिन्न रूपमें उद्धृत

९२. पत्र: यरवदा जेलके सुपरिटेंडेंटको

यरवदा सेन्ट्रल जेल
१२ नवम्बर, १९२३

सुपरिटेंडेंट
यरवदा सेन्ट्रल जेल
महोदय,

मेरे साथी अब्दुल गनीसे आपके यह कहनेपर कि जेलके नियमोंके अनुसार उन्हें अधिकृत मात्रासे अधिक मूल्यकी खुराक लेनेकी अनुमति नहीं दी जा सकती, मैंने आपको बताया था कि आपके पूर्ववर्ती सुपरिटेंडेंटने मेरे सब साथियोंको और मुझे आवश्यकताके अनुसार खुराक दिये जानेकी अनुमति दे रखी थी। मैंने आपको यह भी बताया था कि जो सुविधा श्री अब्दुल गनीको नहीं मिल सकती, उसका उपयोग करना मुझे ठीक नहीं लगता। इसलिए मेरी खुराक भी कम करके विनियमोंके अनुसार श्री अब्दुल गनीको दी जानेवाली खुराकके बराबर कर दी जाये। आपने कृपापूर्वक कहा था कि फिलहाल यही क्रम चलने दीजिए और यह भी कहा था कि इंस्पेक्टर-जनरल जल्दी ही आनेवाले हैं तब उनसे इस बारेमें बात कर देखिएगा। अब मुझे प्रतीक्षा करते हुए १० दिनसे अधिक हो गये हैं। मैं महसूस करता हूँ कि यदि मुझे अपने मनकी शान्ति बनाये रखनी है, तो अब और राह नहीं देखी जा सकती। इन्स्पेक्टर-जनरलसे चर्चा करनेके लिए मेरे पास कुछ है भी नहीं। श्री अब्दुल गनीके सम्बन्धमें किये गये आपके निर्णयके विरुद्ध मुझे उनसे कोई भी शिकायत नहीं करनी है। मेरे साथीकी सहायता करनेकी इच्छा होते हुए भी आपको ऐसा करनेका अधिकार नहीं है, यह बात मैं समझता हूँ। मेरा यह भी इरादा नहीं है कि जेलके खुराक सम्बन्धी विनियमोंमें मैं कोई परिवर्तन करानेकी कोशिश करूँ। मैं केवल यह

किया। उन्होंने उसका अर्थ यह निकाला कि उसके अनुसार कांग्रेसके असहयोग सम्बन्धी कार्यक्रममें फेरफार किया जा सकता है। १७-९-१९२३ के **हिन्दू**में यह सन्देश सार-रूपमें इस प्रकार छपा था: "मैं नहीं चाहता कि आप मेरे कार्यक्रमपर कायम रहें। मैं समूचे कार्यक्रमके पक्षमें हूँ। किन्तु यदि देशकी अवस्थाको देखते हुए आप बहिष्कार सम्बन्धी कार्यक्रमकी एक या दो बातोंको देशके प्रति अपने प्रेमके नामपर रद करना, या बदलना या उनमें कुछ जोड़ना उचित समझें तो मैं आपको आदेश देता हूँ कि आप मेरे कार्यक्रमके उन भागोंको छोड़ दें अथवा उनमें वैसा फेरफार कर लें।" किन्तु गांधीजीने ऐसा कोई सन्देश भेजा था, इसका कोई प्रमाण नहीं है। इसके विपरीत महादेव देसाईने **यंग इंडिया**के 'दिल्ली कांग्रेस' लेखमें, चक्रवर्ती राजगोपालाचारीने २०-९-१९२३ के **यंग इंडिया**की अपनी 'टिप्पणियों'में, पण्डित सुन्दरलालने अपने १-११-१९२३ के **यंग इंडिया**में लिखे गये 'हमारा तात्कालिक कर्त्तव्य' लेखमें, और अन्तमें श्री वी० एस० श्रीनिवास शास्त्रीने समाचारपत्रोंको दिये गये अपने वक्तव्यमें, जो १७-१-१९२४ के **यंग इंडिया**में उद्धृत किया गया है, इसका खण्डन किया था

चाहता हूँ कि मुझे जो विशेष सुविधाएँ मिली हैं, मैं उन्हें छोड़ दूं। आपने इस ओर संकेत करनेकी मेहरबानी की है कि शायद आपके पूर्ववर्ती सुपरिंटेंडेंटने मेरे आहारके वर्तमान अनुपातको स्वास्थ्यके लिए आवश्यक समझा हो। किन्तु मैं जानता हूँ कि वस्तुतः यह बात नहीं है; क्योंकि मेरा आहार तो जबसे मैं जेलमें आया हूँ तबसे लगभग यही रहा है। अधिक सही बात तो यह है कि अबतक मेरे साथियोंको और मुझे, जैसा कि मैं पहले कह चुका हूँ, मूल्यका विचार किये बिना अपने भोजनको इच्छानुसार व्यवस्थित कर लेनेकी अनुमति थी।

इसलिए मैं अगले बुधवारसे सन्तरे और किशमिश लेना बन्द करना चाहता हूँ। उसके बाद भी मेरी खुराक अधिकृत मूल्यसे अधिककी ही बैठेगी। मुझे नहीं मालूम कि दो सेर बकरीके दूधकी भी मुझे जरूरत है या नहीं; परन्तु जबतक आप खुराकको अधिकृत मूल्यतक घटा ले जानेमें मेरी सहायता नहीं करते, तबतक मैं चार पौंड दूध अनिच्छापूर्वक लेता रहूँगा और नीबू भी, मगर दोसे अधिक नहीं।

आपको यह विश्वास दिलानेकी जरूरत नहीं है कि अपनी खुराकमें कमी करनेका यह विचार किसी खिन्नताके कारण नहीं है। श्री अब्दुल गनीके बारेमें आपके निर्णयके साथ मेरी पूरी सहमति है। खुराकमें यह परिवर्तन मैं केवल अपने चित्तकी शान्तिके लिए करना चाहता हूँ; और इसमें आपकी सहानुभूति और सहमतिका इच्छुक हूँ।

आपका आज्ञाकारी,

मो० क० गांधी

सं० ८२७

अंग्रेजी मसविदे (एस० एन० ८०३८)की फोटो-नकल तथा **यंग इंडिया**, ६-३-१९२४ से।

९३. पत्र : इन्दुलाल याज्ञिकको

१२ नवम्बर, १९२३

भाईश्री इन्दुलाल,

इसे[1] ध्यानपूर्वक पढ़ जायें और अब्दुल गनीको भी पढ़ा दें। भाषा आदिके सम्बन्धमें कुछ सुझाव देना चाहें तो दें। मुझे नारंगी और किशमिश छोड़नेके अतिरिक्त अन्य कोई चारा ही दिखाई नहीं देता। मुझे ऐसा बिलकुल नहीं लगता कि इनको लेनेकी जरूरत है। मान लें कि कुछ सेर वजन कम ही हो गया, लेकिन आत्मसन्तोष-के आगे उसकी कुछ भी कीमत नहीं। मैं देखता हूँ कि मैं अपने स्वभावके अनुसार इससे भिन्न कुछ कर ही नहीं सकता। मैंने ज० की बहुत प्रतीक्षा की है।

मोहनदास

हस्तलिखित गुजराती मसविदे (एस० एन० ८०३८) से।

१. यह सम्भवतः पिछले शीर्षकका मसविदा था।

९४. जेल डायरी, १९२३

३ जनवरी, बुधवार

'स्टेप्स टु क्रिश्चियनिटी' कल समाप्त की। ट्राइनकी 'माई फिलॉसफी ऐंड रिलीजन' पढ़ना शुरू किया। आज मेजरने[1] मुझे इस बातका एक नोटिस दिया कि मेरा नाम बैरिस्टरोंकी सूची (इनर टेम्पल)से हटा दिया गया है।

७ जनवरी, रविवार

'माई फिलॉसफी ऐंड रिलीजन' कल समाप्त की तथा रवीन्द्रनाथ रचित 'साधना' पढ़ना शुरू किया। 'उपनिषद् [प्रकाश]', पढ़ना शुरू किया।

१४ जनवरी, रविवार

'साधना' कल समाप्त की।

४ फरवरी, रविवार

राजचन्द्रभाईकी रचनाएँ समाप्त कीं। सटीक 'ईशोपनिषद्' समाप्त किया। 'केनोपनिषद्' पढ़ रहा हूँ। उर्दूकी तीसरी पुस्तक दूसरी बार समाप्त की। 'ऑटो-सजेशन' समाप्त की। २७ जनवरीको बा मुझसे मिलने आई। २८ तारीखको शंकरलालको व्रतसे मुक्त किया।

५ फरवरी, सोमवार

'हेल्प्स टु बाइबिल स्टडीज' समाप्त की। मैक्समूलरका उपनिषदोंका अनुवाद तथा वेल्स-लिखित इतिहास पढ़ना शुरू किया।

२२ फरवरी, गुरुवार

मैक्समूलरका उपनिषदोंका अनुवाद समाप्त किया। 'उपनिषद्-प्रकाश, भाग-३' समाप्त किया, चौथा भाग तथा वेल्सका इतिहास पढ़ रहा हूँ।

२५ फरवरी, रविवार

'उपनिषद् [प्रकाश], भाग ४' समाप्त किया। भाग ५, 'कठवल्ली [उपनिषद्]' पढ़ना शुरू किया।

२ मार्च, शुक्रवार

२८ जनवरीको वेल्सके इतिहासका दूसरा भाग समाप्त किया। कल 'बाइबिल' पढ़ना शुरू किया। विष्णु-पूजाकी पुस्तिका समाप्त की। आज वेल्सके इतिहासका पहला भाग पढ़ना शुरू किया।

१. मेजर डब्ल्यू० जोन्स; नोटिसके लिए देखिए परिशिष्ट ४

११ मार्च, रविवार

बुधवारको आँखकी गुहेरीपर कास्टिक लगाया। गुरुवारको 'उपनिषद [प्रकाश]', भाग-५ समाप्त किया और भाग-६ पढ़ना शुरू किया। उस दिन चरखा नहीं चला सका। उर्दूकी चौथी पुस्तक समाप्त की तथा पाँचवीं शुरू की।

१६ मार्च, शुक्रवार

कल वेल्सके इतिहासका पहला भाग समाप्त किया। आज भगवानदासका 'साइन्स ऑफ पीस' देख गया।

१९ मार्च, सोमवार

किपलिंगकी 'बैरक-रूम बैलेड्स' समाप्त की। शनिवारसे गेडीजकी 'एवोल्यूशन ऑफ सिटीज' पढ़ रहा हूँ। वैदिक धर्म सम्बन्धी पुस्तिका समाप्त की।

२१ मार्च, बुधवार

कल गेडीजकी 'एवोल्यूशन ऑफ सिटीज' समाप्त की। आज रामानुजका जीवन-वृत्तान्त पढ़ना शुरू किया। आज दस [कच्चा] सेर किशमिश मिलीं।

२२ मार्च, गुरुवार

रामानुजाचार्यका जीवन-वृत्तान्त समाप्त किया; सिख इतिहास पढ़ना शुरू किया।

२६ मार्च, सोमवार

कल मिर्जाकी 'इस्लाम नीति' पढ़ना शुरू किया।

३१ मार्च, शनिवार

कल सिख-इतिहास और मिर्जाकी 'इस्लाम नीति' समाप्त की तथा बेंजामिन किडकी 'सोशल एवोल्यूशन' पढ़ना शुरू किया। आज बूलरका 'मनुस्मृति' का अनुवाद पढ़ना शुरू किया।

४ अप्रैल, बुधवार

कल किडकी 'सोशल एवोल्यूशन' समाप्त की। आज बूलरकी 'मनुस्मृति'की प्रस्तावना समाप्त की। गोकुलचन्दकी 'सिखोंका उत्थान' [राइज ऑफ दि सिख पावर] पढ़ना शुरू किया।

९ अप्रैल, सोमवार

कल गोकुलचन्दकी 'सिखोंका उत्थान' तथा कविकी[1] 'कबीरके पद' समाप्त की। आज जेम्सकी 'अवर हेलेनिक हेरीटेज' पढ़ना शुरू किया। दादा चानजी की 'अवेस्ता' तथा पुराणी[2] द्वारा किये गये अरविन्दके 'गीता निष्कर्ष' का अनुवाद पढ़ना शुरू किया।

१. रवीन्द्रनाथ ठाकुर।

२. अम्बालाल पुराणी, गुजरातके सुप्रसिद्ध वक्ता और लेखक, श्री अरविन्द आश्रमके अन्तेवासी।

१७ अप्रैल, मंगलवार

जेम्सकी 'अवर हेलेनिक हेरिटेज' समाप्त की। कल देवदास मिलने आया था। शंकरलाल आज रिहा कर दिये गये।

१९ अप्रैल, गुरुवार

जब शाहजहाँके क्रोधसे बचनेके लिए सूफी मुल्ला शाहको भाग जानेकी सलाह दी गई तो उन्होंने कहा :

मैं कोई पाखण्डी नहीं हूँ जो भागकर अपनी जान बचाऊँ। मैं एक सत्यवक्ता हूँ। मृत्यु और जीवन मेरे लिए समान हैं। मैं तो चाहूँगा कि अगले जन्ममें भी मैं अपने खूनसे सूलीको रँगूँ। मैं अमर और अनश्वर हूँ; मृत्यु मुझसे भय खाती है, क्योंकि मेरे ज्ञानने मृत्युको जीत लिया है। मैं उस धामका निवासी हूँ जहाँ सब रँग मिटकर एक हो जाते हैं।

मन्सूरी हलाजने कहा है :

बँधे हुए व्यक्तिके हाथ काट देना आसान है परन्तु मुझ भगवान्से जोड़नेवाले बन्धनको काटना बड़ा ही कठिन काम है।

—क्लॉड फील्ड रचित 'मिस्टिक ऍंड सेन्ट्स ऑफ इस्लाम'।

आज पाँच [कच्चा] सेर किशमिश प्राप्त हुई।

२६ अप्रैल, गुरुवार

'उपनिषद् प्रकाश', भाग ७-१० (कठोपनिषद्) समाप्त किया। 'प्रश्नोपनिषद्' से प्रारम्भ होनेवाले ११वें भागको आज पढ़ना शुरू किया। शनिवारको उर्दू रीडर–१ का दूसरा वाचन समाप्त किया। शनिवारको पेटमें जोरका दर्द हुआ। सोमवारको शान्त हुआ। मेजरने मेरी भली-भाँति देखभाल की। बहुत तकलीफ हुई। कष्टके बावजूद शनिवारको कार्य और अध्ययन नियमित रूपसे चलता रहा। रविवारसे मंगलवारतक सब काम बन्द रहे। दर्दके कारण मौन नहीं रखा। मैं समझता हूँ दर्दका कारण यह था कि शनिवारको सवेरे मैंने अण्डीका जो तेल लिया, उसका असर होनेसे पहले ही सदाकी तरह ७ बजे दूध-रोटी खा ली। ऐसा मैंने पहले भी किया है। परन्तु तब उससे कुछ नहीं हुआ था, पर इस बार दर्द हो गया। इससे मैं दो परिणाम निकालता हूँ। एक तो यह कि दर्द धीरे-धीरे जड़ पकड़ रहा है तथा दूसरा यह कि जुलाबका असर होनेसे पहले कुछ भी खानेका प्रयोग मेरे लिए ठीक नहीं है। ये परिणाम सुखद और दुःखद दोनों ही हैं। ईश्वर सब प्रकारसे मेरी परीक्षा ले रहा है—अपनी पुस्तकमें उसने क्या लिख रखा है वह मुझे नहीं देखने देता। उसकी बुद्धिमानीका पार नहीं।

२८ अप्रैल, शनिवार

कल दादा चानजीका 'अवेस्ता' पूरा किया। तथा स्पेन्सरकी 'एलीमेन्ट्स ऑफ सोशियोलॉजी' पढ़ना शुरू किया। आज मैकॉलिफका 'सिख धर्मका इतिहास' पढ़ना शुरू किया।

९ मई, बुधवार

पिछले शनिवारको कर्नल मैडॉकने[1] मेरी जाँच-पड़ताल करके बताया कि सम्भवतः मुझे पेचिशकी शुरुआत है। रविवारसे मेजरने मुझे ऐमेटीनका इन्जेक्शन देना शुरू किया। मंजर अलीको आये एक सप्ताह हो गया है। आज खबर मिली है कि इन्दुलाल[2] भी यहीं आ रहे हैं। आज मेजरने मुझे एन्ड्रयूजका पत्र दिया।

कल 'गीता निष्कर्ष' समाप्त किया।

१६ मई, बुधवार

कल इन्दुलाल आये। कर्नल मैडॉक मुझे एक बार फिर देख गये।

आज हरवर्ट स्पेन्सरकी 'सोशियोलॉजी' समाप्त की। शिवराम फेरवानीकी 'सोशल ऐफीशिएन्सी' देख गया।

१९ मई, शनिवार

कल मुझे यूरोपीयोंकी जेलमें ले जाया गया। कल बा, राधा, मणि, लक्ष्मी (छोटी) और जमनालाल मुझसे मिलने आये। कल वाडियाकी 'मैसेज ऑफ मुहम्मद' समाप्त की तथा 'मैसेज ऑफ क्राइस्ट' पढ़ना शुरू किया। 'प्रश्नोपनिषद्' समाप्त किया।

२० मई, रविवार

'मुण्डकोपनिषद्' पढ़ना शुरू किया।

२१ मई, सोमवार

हसनकी 'सेन्ट्स ऑफ इस्लाम' समाप्त की। मोल्टनकी 'अर्ली जोरोस्ट्रियनिज्म' पढ़ना शुरू किया।

२७ मई, रविवार

कल काकाका 'हिमालय-प्रवास' और 'सिख धर्मका इतिहास, भाग-३' समाप्त किया तथा चौथा भाग पढ़ना शुरू किया। चन्द्रशंकरका 'सीताहरण' पढ़ना शुरू किया। रॉल्फ एल्विनकी 'वार्स ऐंड शैंडोज' पढ़ गया।

३१ मई, गुरुवार

मंगलवारको, छोड़े हुए चरखेको तेरह दिन बाद फिर हाथमें लिया। कल चन्द्रशंकरका 'सीताहरण' समाप्त किया। आज मोल्टनकी 'अर्ली जोरोस्ट्रियनिज्म' समाप्त की।

१. सैसून अस्पताल, पूनाके मुख्य चिकित्सक, जिन्होंने बादमें १२ जनवरी, १९२४ को गांधीजीका अपेन्डिक्सका ऑपरेशन किया।

२. इन्दुलाल याज्ञिक।

१ जून, शुक्रवार

किशोरलालकी 'बुद्ध और महावीर' समाप्त की।
'सिख धर्मका इतिहास, भाग-५' समाप्त किया।

३ जून, रविवार

किशोरलालकी 'राम और कृष्ण' समाप्त की।
'सिख धर्मका इतिहास, भाग-६' समाप्त किया।

६ जून, बुधवार

अरविन्दकी[1] कारावासकी कहानी तथा 'मुण्डकोपनिषद्' समाप्त किये।

१६ जून, शनिवार

कल 'मैन ऐंड सुपरमैन' समाप्त की। आज 'भाग्यनो वारस' समाप्त की।
'मार्कण्डेय पुराण'का अंग्रेजी अनुवाद पढ़ना शुरू किया।

३० जून, शनिवार

इस सप्ताहके आरम्भमें काका और नरहरिका 'पूर्वरंग' समाप्त किया तथा पुरातत्त्व मन्दिरमें दिये गये भाषणोंको पढ़ना शुरू किया। कल उर्दूमें हजरतके जीवनका एक किस्सा समाप्त किया तथा पैगम्बरके साथियोंका वृत्तान्त [उस्वा-ए-सहावा] पढ़ना शुरू किया।
कल डेलजील और मेजरसे मूलशीपेटाके कैदियोंको कोड़े मारनेके सम्बन्धमें चर्चा की।

२ जुलाई, सोमवार

कल 'मार्कण्डेय पुराण' समाप्त किया तथा 'माण्डूक्योपनिषद्', अंक १५-१६ और 'गौडपादाचार्यकी कारिका', अंक १७ पढ़ना शुरू किया।
आज बकलकी 'इंग्लैंडकी सभ्यतासे सम्बन्धित पहली पुस्तक' (हिस्ट्री आफ सिविलाइजेशन) पढ़नी शुरू की।

७ जुलाई, शनिवार

पुरातत्त्व मन्दिरकी व्याख्यानमाला[2] समाप्त की तथा 'जया-जयन्त' पढ़ना शुरू किया। सोमवारकी रातको अत्यधिक कष्ट भोगा। दोष मेरा ही था। अनसूयाबहन द्वारा भेजे अंजीरोंमें से मैं आवश्यकतासे अधिक खा गया। ईश्वरकी कृपाका अन्त नहीं है। किये गये पापके तात्कालिक दण्डसे ज्यादा अच्छा और क्या हो सकता है?

१. अरविन्द घोष (१८७२-१९५०); रहस्यवादी, कवि और दार्शनिक; १९१० से पाण्डिचेरीमें रहते थे, जहाँ उन्होंने एक आश्रम स्थापित किया।
२. अगली प्रविष्टिसे पता चलता है कि यह ९ जुलाईको समाप्त की थी।

१० जुलाई, मंगलवार

कल पुरातत्त्व मन्दिर व्याख्यानमाला समाप्त की तथा रवीन्द्रनाथकी 'प्राचीन साहित्य' पढ़नी शुरू की। कल ही आजसे उपवास शुरू करनेके सम्बन्धमें सुपरिंटेंडेंटको पत्र[1] लिखा। इसपर वे मुझसे मिलने आये और उपवास स्थगित करनेको कहा। आज सवेरे वे फिर आये और ४८ घंटेके लिए उपवास स्थगित करनेको कहा। मैंने उनका कहना मान लिया। आज दो बजे श्री ग्रिफिथ आये और दो घंटे बात करके चले गये।

१२ जुलाई, गुरुवार

श्री ग्रिफिथ कल फिर आये और गवर्नरका[2] सन्देश लाये। कल 'प्राचीन साहित्य' समाप्त की। 'युगधर्म' पढ़ना शुरू किया। दास्ताने और देवसे[3] सुपरिंटेंडेंट और श्री ग्रिफिथके सामने मुलाकात की। नैतिक मुद्देपर चर्चा करनेके बाद उन्होंने उपवास समाप्त करनेके अपने निश्चयकी घोषणा कर दी।

१३ जुलाई, शुक्रवार

छगनलाल,[4] काशी[5] तथा अन्य लोग आनेवाले थे परन्तु नहीं आये।

२२ जुलाई, रविवार

पिछले सोमवारको बा, छगनलाल, अमीना, रामदास और मनु मुझसे मिल गये। इस सप्ताह काउन्टेस टॉल्स्टॉयकी जीवनी तथा बकलका [इतिहास,] भाग-१ समाप्त किया। दूसरा भाग तथा 'कालापानीनी कथा' पढ़ रहा हूँ। मंगलवारको दास्ताने तथा अन्य [कैदियों]के विषयमें भी श्री ग्रिफिथको पत्र[6] लिखा।

३० जुलाई, सोमवार

पिछले सप्ताह 'कालापानीनी कथा' समाप्त की। 'सम्पत्तिशास्त्र, भाग-१' समाप्त किया। भाग-२ पढ़ रहा हूँ। कल 'जूनो करार'[7] समाप्त किया। 'नवो करार'[8] आज पढ़ना शुरू किया।

८ अगस्त, बुधवार

बकल कृत इतिहास, भाग-२ तथा 'गीतगोविन्द' समाप्त किया।

१. देखिए "पत्र: यरवदा जेलके सुपरिंटेंडेंटको", ९-७-१९२३।

२. सर जॉर्ज लॉयड, बम्बईके गवर्नर।

३. मूलशीपेटाके कैदियोंके नेता जो कुछ कैदियोंको कोड़े मारनेकी सजाके विरोधमें ३० जूनसे उपवासपर थे।

४. छगनलाल गांधी, गांधीजीके भतीजे।

५. छगनलाल गांधीकी पत्नी।

६. देखिए "पत्र: ग्रिफिथको", १७-७-१९२३।

७ व ८. क्रमशः ओल्ड टेस्टामेन्ट और न्यू टेस्टामेन्टके गुजराती अनुवाद।

१२ अगस्त, रविवार

'उपनिषद् [प्रकाश]' का अन्तिम भाग समाप्त किया तथा उसके साथ ही 'ऐतरेय' और 'तैत्तिरीय उपनिषद्' समाप्त हो गये। 'छान्दोग्य उपनिषद्' पढ़ना शुरू किया। गुरुवारको प्रो० जेम्सकी 'व्हॅराइटीज ऑफ रिलीजस ऐक्स-पीरियेन्स' पढ़ना शुरू किया। 'सम्पत्तिशास्त्र' समाप्त किया।

१५ अगस्त, बुधवार

गवर्नर सोमवारको आ गये। विशेष वर्गके सम्बन्धमें आज एक पत्र[1] लिखा। 'उस्वा-ए-सहाबा' आज समाप्त की। [रोमके] इतिहासकी कहानियाँ पढ़ रहा हूँ।

१९ अगस्त, रविवार

बकलके इतिहासका भाग-३ समाप्त किया। हॉपकिन्सकी 'ओरिजिन ऐंड ऐवो-ल्यूशन ऑफ रिलीजन' पढ़ना शुरू किया।

२३ अगस्त, गुरुवार

हॉपकिन्सकी पुस्तक समाप्त की। लैंकीकी 'यूरोपियन मॉरल्स' पढ़ना शुरू किया।

२६ अगस्त, रविवार

जेम्सकी 'व्हॅराइटीज ऑफ रिलीजस ऐक्सपीरियेन्स' समाप्त की। विनोबाके 'महाराष्ट्र-धर्म' का पहला अंक चार दिन पहले समाप्त किया तथा दूसरा समाप्त होनेवाला है। कल सुपरिंटेंडेंटने बताया कि कच्चा दूध पीनेवाले को फलोंकी जरूरत नहीं इसलिए उसने मंजर अलीको फल देनेसे इनकार कर दिया। उसने यह भी कहा कि मेरे लिए भी सचमुच उनकी जरूरत नहीं है इसलिए मैंने नारंगी, नीबू आदि मँगाना बन्द कर दिया। आज मंजर अलीके खानेमें से केले खाये तथा दूध कच्चा ही पिया।

२८ अगस्त, मंगलवार

आज 'गीता शब्दकोश'[2] लिखना समाप्त किया। कल होम्सकी 'फ्रीडम ऐंड ग्रोथ' पढ़ना शुरू किया। आजसे केवल कच्चे दूधपर रहना शुरू किया। ईश्वर मेरी सहायता करे।

३१ अगस्त, शुक्रवार

आज होम्सकी 'फ्रीडम ऐंड ग्रोथ' समाप्त की। हेकलकी 'ऐवोल्यूशन ऑफ मैन' पढ़ना शुरू किया। आज मेजरने आँखकी गुहेरीपर कास्टिक लगाया।

२ सितम्बर, रविवार

कल 'बाइबिल' समाप्त की। आज जीससका चित्रमय वृत्तान्त पढ़ना शुरू किया। पिछले सप्ताहमें तीन सेर वजन घट गया।

१. देखिए "पत्र: बम्बईके गवर्नरको", १५-७-१९२३।

२. गांधीजीने बादमें उसमें संशोधन किया था; इसे नवजीवन प्रकाशनने 'गीता पदार्थ-कोष' के नामसे १९३६ में प्रकाशित किया।

९ सितम्बर, रविवार

जीससका चित्रमय वृत्तान्त और कविकी[1] 'मुक्तधारा' तथा 'डूबतुं वहाण' समाप्त किये। एक रतल वजन बढ़ा और अब १०१ हो गया है।

१६ सितम्बर, रविवार

सोमवारको देवदास, नारणदास,[2] केशु[3] तथा कचो[4] मुझसे मिलने आये।[5] आज मौलाना शिबलीका पैगम्बरकी जीवनी, भाग-१ समाप्त किया।
डा० मुहम्मद अलीकी 'कुरान' की प्रस्तावना समाप्त की।

२८ सितम्बर, शुक्रवार

इस सप्ताहमें विवेकानन्दका 'राजयोग' तथा चंपकराय जैनकी 'धर्मोनी एकता' समाप्त की। आज पैगम्बरकी जीवनी (मौलाना शिबली रचित) समाप्त की।

३० सितम्बर, रविवार

कल निकल्सन रचित 'मिस्टिक्स ऑफ इस्लाम' पढ़ना शुरू किया और आज समाप्त कर दिया। आज 'गीता-कोश'की पक्की पाण्डुलिपि तैयार करनी शुरू की। कल 'सहाबा इकराम, भाग-२' पढ़ना शुरू किया तथा उर्दू वाचनमाला भाग-५के अवशिष्ट भागको पढ़ना शुरू किया। पॉल कैरसकी 'गोस्पॅल ऑफ बुद्ध' पढ़ना शुरू किया। आज मेजर जोन्स आखिरी नमस्कार करने आये।

७ अक्तूबर, रविवार

इस सप्ताह पॉल कैरसकी 'गोस्पॅल ऑफ बुद्ध' समाप्त की। बुद्धपर राइस डेविड्सके हिवर्ट भाषण पढ़ रहा हूँ। आज अमीर अलीकी 'स्पिरिट ऑफ इस्लाम' पढ़ना शुरू किया। 'गीता-कोश'की पक्की पाण्डुलिपि तैयार करनेका काम आज चल रहा है। आज जमनालालजीसे फलोंकी टोकरी प्राप्त हुई। 'छान्दोग्योपनिषद्' समाप्त हो गया। 'बृहदारण्यक' उपनिषद् पढ़ना शुरू किया।

१४ अक्तूबर, रविवार

बुधवारको बा, अवन्तिकाबाई, जमनालालजी तथा सबटीबाई मिलने आये।
[राइस] डेविड्सके बुद्ध सम्बन्धी हिवर्ट भाषण पूरे किये।
सर ऑलिवर लॉजकी 'मॉडर्न प्राबलम्स' पढ़ रहा हूँ।

१. रवीन्द्रनाथ ठाकुर।
२. नारणदास गांधी।
३. केशवलाल, मगनलाल गांधीके पुत्र।
४. कृष्णदास।
५. इसका संक्षिप्त विवरण **यंग इंडिया**में प्रकाशित हुआ था। देखिए परिशिष्ट ५।

२१ अक्तूबर, रविवार

सर ऑलिवर लॉजकी 'मॉडर्न प्रावलम्स' समाप्त की।
'पुरातत्व'का वर्तमान अंक पढ़ना शुरू किया।

२५ अक्तूबर, गुरुवार

आज मंजर अलीको प्रयाग ले जाया गया। मंगलवारको अमीर अलीकी पुस्तक समाप्त की। कल वाशिंगटन इर्विंगकी 'मुहम्मद' पढ़ना शुरू किया।
आज 'स्याद्‌वादमंजरी' पढ़ना शुरू किया।

२६ अक्तूबर, शुक्रवार

अब्दुल गनीको आज इस वार्डमें लाया गया।

४ नवम्बर, रविवार

बुधवारसे अब्दुल गनीने कातना शुरू किया। इर्विंगकी 'मुहम्मद' समाप्त की। अमीर अलीका 'हिस्ट्री ऑफ द सेरेसन्स' पढ़ना शुरू किया।

११ नवम्बर, रविवार

मंगलवारको 'वृहदारण्यक' उपनिषद् समाप्त किया। गुरुवारको गीजोकी 'हिस्ट्री ऑफ सिविलिजेशन इन यूरोप' पढ़ना शुरू किया। आज 'सहावा', भाग-२ समाप्त की। कलसे मौलाना शिवलीकी लिखी हुई उमरकी जीवनी शुरू करूँगा।

१२ नवम्बर, सोमवार

आज सुपरिंटेंडेंटको पत्र[1] लिखा कि बुधवारसे मुझे नारंगी और किशमिश छोड़ने पड़ेंगे, क्योंकि अब्दुल गनीको मैं उनकी मर्जीके मुताबिक खुराक नहीं दे सकता।

१८ नवम्बर, रविवार

पिछले बुधवारसे नारंगी और किशमिश खाना छोड़ दिया। आज वजन तो तीन रतल कम हो गया है परन्तु ताकतमें किसी प्रकारकी कमी अनुभव नहीं होती है।

२४ नवम्बर, शनिवार

आज अमीर अलीका अरबोंका इतिहास (हिस्ट्री ऑफ द सेरेसन्स) तथा 'भगवद्-गीता'के शब्दकोशकी स्वच्छ पाण्डुलिपि समाप्त की। कल गीजोकृत यूरोपीय सभ्यताका इतिहास ('हिस्ट्री ऑफ सिविलिजेशन इन यूरोप') समाप्त किया। आज गीजोका 'हिस्ट्री ऑफ सिविलिजेशन इन फ्रांस, भाग-२' पढ़ना शुरू किया।

२६ नवम्बर, सोमवार

कल मोटलेकी 'राइज ऑफ द डच रिपब्लिक' पढ़ना शुरू किया? आज 'दक्षिण आफ्रिकाके सत्याग्रहका इतिहास' लिखना शुरू किया। रीसकी 'आत्मकथा' समाप्त की तथा राजम् अय्यरकी वेदान्त-विषयक पुस्तक पढ़नी शुरू की।

१. देखिए "पत्र: यरवदा जेलके सुपरिंटेंडेंटको", १२-११-१९२३।

९ दिसम्बर, रविवार

आज मोटलेका पहला भाग समाप्त किया तथा दूसरा पढ़ना शुरू किया।
राजम् अय्यरका 'वेदान्त-भ्रमण' बुधवारको समाप्त किया।
बुधवारको गीजोका 'हिस्ट्री ऑफ सिविलिजेशन इन फ्रांस, भाग-२' समाप्त किया तथा तीसरा भाग पढ़ना शुरू किया।
आज 'स्याद्वादमंजरी' समाप्त की। 'उत्तराध्ययन सूत्र' पढ़ना शुरू किया।
फल न खानेका प्रयोग चल रहा है। मंगलवारसे दूधके साथ थोड़ी रोटी खानी शुरू की। दो रतल वजन बढ़ गया है आज ९९ रतल हो गया है।

१५ दिसम्बर, शनिवार

गीजो समाप्त किया तथा 'रोज़ीक्रुशियन मिस्ट्रीज' पढ़ना शुरु किया।

१६ दिसम्बर, रविवार

आज मोटलेका दूसरा भाग समाप्त किया तथा तीसरा पढ़ना शुरू किया।

२३ दिसम्बर, रविवार

मंगलवारको मथुरादास और रामदास मिलने आये।
बुधवारको रमाबाई रानडे[1] आई।
सुपरिंटेंडेंटके कहनेपर मिलने आनेके लिए हरिलालको[2] पत्र लिखा।
मंगलवारकी शामसे फिरसे फल खाने शुरू कर दिये। पिछले रविवारको मेरा वजन कम होकर ९६ रतल ही रह गया था, इससे सुपरिंटेंडेंट भी घबड़ा गया। गुरुवारसे शहद लेना शुरू कर दिया तथा रोटीकी मात्रा बढ़ाकर आठ औंस कर दी।
आज वजन ९९ रतल हो गया।
बुधवारको 'रोज़ीक्रुशियन मिस्ट्रीज' समाप्त की तथा प्लेटो पढ़ना शुरू किया।
आज हजरत उमरकी जीवनी समाप्त की तथा मौलाना शिवलीका 'अल-कलाम' तथा वुडरुफका[3] 'शाक्त और शक्ति' पढ़ना शुरू किया। मोटले समाप्त किया।

३० दिसम्बर, रविवार

'उत्तराध्ययन सूत्र' समाप्त किया। 'भगवतीसूत्र' पढ़ना शुरू किया।
वुडरुफका 'शाक्त और शक्ति' समाप्त की।
गुरुवारको प्लेटोके संवादका पहला भाग समाप्त किया तथा दूसरा पढ़ना शुरू किया।

गुजराती प्रति (एस० एन० ८०३९) से।

१. रमाबाई रानडे, जस्टिस महादेव गोविन्द रानडेकी पत्नी।
२. यह उपलब्ध नहीं है।
३. सर जॉन वुडरुफ, कलकत्ता हाईकोर्टके मुख्य न्यायाधीश, तन्त्र-साहित्यपर उनकी रचनाएँ प्रसिद्ध हैं।

पुस्तकोंकी सूची[1]

* १५७. नैचुरल हिस्ट्री
* १५८. विजडम ऑफ दि ऐन्शेन्ट्स
* १५९. नैचुरल फीनर्स ऑफ इंडिया
* १७८. स्टोरीज फ्रॉम दि हिस्ट्री ऑफ रोम
२३-४-१९२२ की डायरी देखना
* २०५. द यंग क्रूसेडर
* २१२. लाइव्ज ऑफ फादर्स ऐंड मार्टिनर्स
* २१५. ग्रान्ट फ्रॉम द क्लाउड्ज
२६४. आइवनहो
२८२. ओल्ड क्यूरिऑसिटी शॉप
* २९५. द फाइव एम्पायर्स
३०५. वेस्टवर्ड हो
३३६. टॉम ब्राउन्स स्कूल डेज
* ३५६. सीकर्स आफ्टर गॉड
इक्वालिटी — बेलामी
* ४१. द फाइव नेशन्स : किपलिंग
* ४९. डाक्टर जेकिल ऐंड मिस्टर हाइड
१०. द सेकंड जंगल बुक
* १०७. जे हॉवर्ड
१०९. सेटायर्स ऐंड इपीसल्ज ऑफ होरेस
* १११. गेटेज फाउस्ट
११६. ट्रॉपिकल ऐग्रिकल्चर
* १२५. लेज ऑफ ऐन्शेन्ट रोम
१२९. ग्राइमर ऑफ मराठी लेंग्वेज
* १३२. नैचुरल हिस्ट्री ऑफ बर्ड्ज्
१४४. इनॉक आर्डन
* १४८. हिस्टॉरिकल इंग्लिश ग्रामर
१४९. ओलिवर ट्विस्ट
१५१. स्काट्ज पोएटिकल वर्क्स
* १५२. लाइफ ऐंड वायजेज ऑफ कोलम्बस
मुक्तिविवेक[2] — विद्यारण्य स्वामीकी पुस्तकका भाषान्तर
कान्ता[3]

१. इस सूचीमें पुस्तकोंको चिह्नित क्यों किया गया है यह स्पष्ट नहीं है; किन्तु संख्याएँ सम्भवतः जेल-पुस्तकालयकी पुस्तक-सूचीकी हैं।

२. व ३. ये दोनों पुस्तकें संस्कृतकी हैं तथा इनके बादकी सब गुजरातीकी हैं।

मालतीमाधव
सिद्धान्तसार
पंचशती
गुलाबसिंह
श्रीवृत्तिप्रभाकर
चतुःसूत्री
भोजप्रबन्ध
विक्रमचरित्र
अनुभव-प्रदीपिका
वस्तुपाल-चरित्र
योगबिन्दु
कुमारपाल-चरित्र
विवादताण्डव

[गुजरातीसे]

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ८०३९) से।

९५. भेंट : वी० एस० श्रीनिवास शास्त्रीसे

[सैसून अस्पताल
पूना
१२ जनवरी, १९२४]

. . . कमरेमें घुसनेपर हमने परस्पर अभिवादन किया और मैंने पूछा कि आपरेशनके बारेमें उनका क्या खयाल है। उन्होंने दृढ़तापूर्वक उत्तर दिया कि डाक्टरोंने निश्चित रूपसे एक फैसला कर लिया है और मैं उसीको माननेको तैयार हूँ। दूसरे प्रश्नके उत्तरमें उन्होंने कहा, जो डाक्टर मेरी देखरेख कर रहे हैं, मुझे उनपर पूरा भरोसा है। उन्होंने मेरे प्रति बहुत दयालुता और सावधानी दिखाई है। उन्होंने यह भी कहा, यदि इस बातको लेकर कोई आन्दोलन उठ खड़ा हो तो लोगोंसे कह दिया जाये कि मुझे अधिकारियोंसे कोई भी शिकायत नहीं है और जहाँतक मेरे शरीरकी देखभालका सम्बन्ध है, उनके व्यवहारमें कोई त्रुटि नहीं है। इसके बाद मैंने पूछा, क्या श्रीमती गांधीको आपकी इस हालतकी खबर दे दी गई है? उन्होंने कहा, उन्हें [श्रीमती गांधीको] इस नये निर्णयकी बात मालूम नहीं है; किन्तु वे यह जानती हैं कि पिछले कुछ दिनोंसे मेरी तबीयत ठीक नहीं है। मैं उनके पत्रकी प्रतीक्षा कर रहा हूँ। फिर उन्होंने मेरी पत्नी और भारत सेवक समाज (सर्वेंट्स ऑफ इंडिया सोसाइटी) के सदस्यों अर्थात् सर्वश्री देवधर, जोशी, पटवर्धन और कुंजरूकी कुशल-क्षेम पूछी।

उन्होंने पूछा:

आप जो इतनी वार विदेश हो आये हैं, इससे क्या आपके स्वास्थ्यमें कुछ सुधार हुआ है?

इसके वाद डाक्टर फाटकने गांधीजीको उस वक्तव्यका मसविदा पढ़कर सुनाया जिसपर अपने आपरेशनकी मंजूरी देनेके लिए उन्हें हस्ताक्षर करने थे। गांधीजीने उसे एक वार सुना और फिर चश्मा लगाकर उसे स्वयं पढ़ा। तव उन्होंने कहा, मैं इसके शब्दोंमें थोड़ा परिवर्तन करना चाहूँगा। फिर कर्नल मैडॉकसे, जो उस समय कमरेमें ही थे, पूछा, आपका क्या खयाल है? कर्नल मैडॉकने कहा, इसके लिए उपयुक्त भाषा क्या हो, यह तो ठीक-ठीक आप ही जानते हैं। इस सम्वन्धमें मेरी सलाह अधिक महत्त्वकी न होगी।

इसके वाद गांधीजीने एक लम्वा वक्तव्य लिखवाया जो मैंने पेंसिलसे लिख लिया।[1]

जव यह पूरा हो गया तव मैंने उसे उन्हें पढ़कर सुनाया। तव उन्होंने कर्नल मैडॉकको अपने पास वुलाया और मैंने उनके कहनेसे उसे फिर पढ़कर सुनाया। कर्नल मैडॉक पूर्णतः सन्तुष्ट थे और वोले: "निःसन्देह उपयुक्त भाषामें कहना आपको ही आता है।" तव गांधीजी उस कागजपर हस्ताक्षर करनेके लिए सीधे होकर वैठ गये और उन्होंने उसपर पेन्सिलसे हस्ताक्षर कर दिये। हस्ताक्षर करते समय उनका हाथ वहुत कांपा और मैंने देखा कि उन्होंने गांधी शव्दमें अंग्रेजी अक्षर 'आई' पर विन्दु भी नहीं लगाया है। उन्होंने अन्तमें डाक्टरसे कहा:

देखिए, मेरा हाथ कैसा काँपता है। इसे भी आप ही ठीक करेंगे।

कर्नल मैडॉकने उत्तर दिया, "जी हाँ, हम आपको खूब तगड़ा वना देंगे।"

चूंकि आपरेशनका कमरा तैयार किया जा रहा था डाक्टर चले गये और मैं महात्माजीके पास लगभग अकेला रह गया। एक-दो विलकुल व्यक्तिगत वातोंके वाद मैंने उनसे पूछा कि क्या वे कोई खास वात कहना चाहते हैं। जव उन्होंने इसका उत्तर दिया तो मैंने देखा कि वे कुछ कहनेके लिए उत्सुक ही थे।

मैं नहीं चाहता कि आपरेशनके वाद मेरी रिहाईके लिए कोई आन्दोलन किया जाये। यदि किया ही जाता है तो वह उचित ढंगसे किया जाना चाहिए। सरकारसे मेरा झगड़ा तो चल ही रहा है और वह तवतक चलता रहेगा जवतक उसका मूल कारण मौजूद है। निःसन्देह रिहाईके वारेमें कोई शर्तें नहीं मानी जा सकती। यदि सरकारका खयाल हो कि वह मुझे काफी अरसेतक जेलमें रख चुकी है तो वह मुझे छोड़ सकती है। और अगर वह यह खयाल करे कि मैं निरपराध हूँ और मेरा हेतु अच्छा रहा है तो मेरी रिहाई [उनके लिए] सम्मानजनक होगी। यद्यपि सरकारसे मेरा सख्त झगड़ा है, फिर भी मुझे अंग्रेजोंसे प्रेम है और कितने ही अंग्रेज मेरे मित्र हैं।

१. गांधीजीने आपरेशन सम्वन्धी यह वक्तव्य कर्नल मैडॉकके नाम पत्रके रूपमें लिखवाया था। देखिए अगला शीर्षक।

शायद वह मुझे छोड़ ही दे। किन्तु हमारा आन्दोलन झूठे मुद्दोंको लेकर नहीं किया जाना चाहिए। जो भी आन्दोलन हो, ठीक अहिंसात्मक ढंगका हो। शायद मैं अपनी बात बहुत अच्छी तरह नहीं कह पाया हूँ, किन्तु यदि आप इसे अपने अनोखे ढंगसे लिख लेंगे तो ठीक रहेगा।

इसके बाद मैंने उनसे कार्यकर्ताओं, अनुयायियों अथवा देशके लिए कोई सन्देश देनेका फिर अनुरोध किया। इस सम्बन्धमें उनकी दृढ़ता आश्चर्यजनक थी। उन्होंने कहा, मैं सरकारका कैदी हूँ और मुझे कैदियोंके सदाचार सम्बन्धी नियमका पूरी सचाईसे पालन करना चाहिए। मैं तो नागरिककी हैसियतसे मृतवत् हूँ। मुझे बाहरकी घटनाओंका कोई ज्ञान नहीं है और मैं जनतासे किसी तरहका सम्पर्क रखनेका अधिकारी नहीं हूँ। मुझे कोई सन्देश नहीं देना है।

"तब कुछ दिन पहले श्री मुहम्मद अलीने आपका सन्देश कैसे दिया था?" ये शब्द मेरे मुँहसे निकलते ही मुझे खेद हुआ; किन्तु अब क्या हो सकता था।

स्पष्ट ही उन्हें मेरे प्रश्नसे आश्चर्य हुआ और वे बोल उठे:

श्री मुहम्मद अलीने मेरा सन्देश दिया?[1]

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, १४-१-१९२४

९६. पत्र: कर्नल मैडॉकको[2]

सैसून अस्पताल
पूना
पौने दस बजे रात, १२ जनवरी, १९२४[3]

प्रिय कर्नल मैडॉक,

मुझे मालूम है कि पिछले छः महीनोंमें मेरी बीमारी किस-किस दौरसे गुजरी है सो आप जानते हैं। आपकी मुझपर असाधारण कृपा रही है। आप, प्रधान सर्जन और चिकित्सासे सम्बन्धित अन्य सज्जनोंका यह मत है कि मेरे लिए जिस आपरेशनको आपने जरूरी बताया है उसमें विलम्ब करना बहुत खतरनाक है। आपने मुझे कृपापूर्वक यह भी बताया है कि सरकारने मेरे विशेष चिकित्सक मित्रोंको बुलानेकी

१. देखिए "सन्देश: मुहम्मद अलीको", १०-९-१९२३। इसी समय नर्सके आ जानेसे भेंट समाप्त हो गई और गांधीजीको आपरेशनके कमरेमें ले जाया गया।

२. यह पत्र श्री वी० एस० श्रीनिवास शास्त्रीको बोलकर लिखाया गया था और उन्होंने इसे पेंसिलसे लिखा था। यह २०-१-१९२४ के *हिन्दू* और २५-१-१९२४ के *सर्चलाइट*में भी छपा था।

३. साधन-सूत्रमें तारीख १९ जनवरी दी गई है जो स्पष्ट भूल है। गांधीजीका अपेन्डिक्सका आपरेशन १२ जनवरीको किया गया था।

अनुमति दे दी है; इसलिए मैंने डाक्टर दलाल और डाक्टर जीवराज मेहताके नाम सुझाये थे। आपने उनको बुलानेका भरसक प्रयत्न किया; किन्तु फिर भी उनमें से कोई उपस्थित नहीं हो सका। मेरा आपमें पूरा विश्वास है और बीमारीकी गम्भीरताको देखते हुए मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि अविलम्ब आपरेशन कर दिया जाये।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ८१२१) की फोटो-नकलसे।

९७. सन्देश : देशके नाम[1]

१४ जनवरी, १९२४

जब मेरा स्वास्थ्य बहुत नाजुक दौरसे गुजर रहा था, उस समय मेरे देशवासियोंने मेरे प्रति जिस उत्कट प्रेमका परिचय दिया उसका मेरे मनपर बड़ा असर हुआ। अब चिन्ताकी कोई बात नहीं रह गई है क्योंकि यहाँ[2] जो लोग चिकित्साके लिए जिम्मेदार हैं, वे अधिकसे-अधिक सावधानी बरत रहे हैं।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १७-१-१९२४

९८. भेंट : 'बॉम्बे क्रॉनिकल' के प्रतिनिधिसे

पूना

१९ जनवरी, १९२४

जेल-अधिकारियोंको दोष देना ठीक नहीं है। हमारी लड़ाई प्रामाणिकताके साथ चलाई जानी चाहिए। अपेन्डिक्सके रोगका निदान कठिन होता है। कर्नल मरे-जैसे सज्जन मैंने कम ही देखे हैं। वे मुझपर बहुत कृपालु रहे हैं। वे प्रामाणिक, सहानुभूतिशील और नेक व्यक्ति हैं। उनके बारेमें मेरी राय बहुत ऊँची है।

[अंग्रेजीसे]

सर्चलाइट, २७-१-१९२४

१. पूनामें गांधीजीके आपरेशनकी खबर सुनकर देशके कोने-कोनेसे उनके स्वास्थ्यके बारेमें पूछताछ की जा रही थी; उस सबका उत्तर गांधीजीने डा० फाटकके नाम भेजा। यह उत्तर सबसे पहले १५-१-१९२४ के **बॉम्बे क्रॉनिकल**में प्रकाशित हुआ। **यंग इंडिया**ने एक संक्षिप्त सम्पादकीय टिप्पणीके साथ "राष्ट्रका सन्ताप" शीर्षकसे इसे पुनः प्रकाशित किया था।

२. ससून अस्पताल, पूना।

९९. भेंट : दिलीपकुमार रायसे[1]

२ फरवरी, १९२४

. . . हमारी बातचीत संगीतको लेकर होती रही। महात्माजीने प्रसंगवश मुझसे कहा, यद्यपि मैं संगीतके विशेषज्ञ अथवा पारखीके रूपमें संगीतको समझनेका गर्व नहीं कर सकता फिर भी मैं सचमुच संगीतका प्रेमी हूँ। उन्होंने कहा :

मुझे संगीतसे इतना प्रेम है कि एक वार जब मैं दक्षिण आफ्रिकाके एक अस्पतालमें था और ऊपरके ओंठमें लगी चोटसे पीड़ित था तब मेरे एक मित्रकी पुत्रीने मेरे कहने पर 'लीड काइंडली लाइट' गीत गाकर सुनाया और मुझे उसे सुनकर बड़ी सान्त्वना मिली थी।

मैंने उनसे पूछा, मीराबाईके गीत बहुत सुन्दर हैं। क्या आपने उनका कोई गीत सुना है? उन्होंने कहा :

हाँ, मैंने मीराके कई गीत सुने हैं। वे गीत बहुत सुन्दर हैं। इसका कारण यह है कि वे मीराके हृदयसे निकले हैं और गीत रचनेकी इच्छासे या लोगोंको खुश करनेकी इच्छासे नहीं लिखे गये हैं।

मैं उनकी इच्छानुसार उसी दिन शामको उनके पास गया। गानेके बाद मैंने देखा कि उनपर संगीतका प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ा है। मेरा खयाल है कि अस्पतालके सामान्य प्रकाशमें भी उनकी आँखें चमक उठी थीं।

मैंने थोड़ा रुककर कहा, "मैं यह अनुभव करता हूँ कि हमारे स्कूलों और कालेजोंमें हमारे सुन्दर संगीतकी बहुत उपेक्षा की गई है।" महात्माजीने उत्तर दिया :

हाँ, उपेक्षा की गई है; मैं तो यह हमेशासे कहता आया हूँ।

श्रीयुत महादेव देसाई हमारी बातचीतके समय बराबर वहाँ मौजूद थे। उन्होंने इस बातका समर्थन किया। "मुझे आपकी यह बात सुनकर बहुत प्रसन्नता हुई है। क्योंकि अबतक मेरा यह खयाल रहा है कि आप संगीत-जैसी समस्त कलाओंके विरोधी हैं।"

मैं और संगीतके विरुद्ध! मेरे बारेमें इतनी भ्रान्तियाँ फैली हुई हैं कि अब उन्हें फैलानेवालोंसे पार पाना मेरे लिए प्रायः असम्भव हो गया है। फलतः जब मैं अपने मित्रोंके सम्मुख स्वयं कलाकार होनेका कोई दावा करता हूँ तो वे मेरी बातपर मुस्कुरा उठते हैं।

१. बँगलाके प्रसिद्ध नाटककार द्विजेन्द्रलाल रायके पुत्र और श्रीअरविन्द आश्रम, पाण्डिचेरीके सदस्य। गांधीजीसे उनकी यह भेंट सैसून अस्पतालमें हुई थी। इस भेंटका जो अंश यहाँ दिया गया है उसका विवरण ७-२-१९२४ के *हिन्दू*में भी प्रकाशित हुआ था। वही विवरण बादको रायकी *अमंग दी ग्रेट* नामक पुस्तकमें प्रकाशित हुआ था।

"मुझे इस बातको सुनकर बहुत प्रसन्नता हुई, क्योंकि मुझे यह बताया गया है कि आपके जीवन-दर्शनमें, जो पूर्ण वैराग्यका दर्शन है, संगीत-जैसी कलाओंको मुश्किलसे ही कोई स्थान मिल सकता है।" महात्माजीने जोर देकर कहा:

मेरा कहना यह है कि वैराग्य जीवनकी सबसे बड़ी कला है।

"किन्तु इस समय कलासे मेरा मतलब कुछ भिन्न प्रकारकी क्रियासे है जैसे संगीत अथवा चित्रकारी अथवा मूर्तिकला। मेरा खयाल यह था कि आप उसके समर्थक होनेके बजाय कुछ विरोधी ही होंगे।" महात्माजीने कहा:

मैं संगीत-जैसी कलाओंका विरोधी कदापि नहीं हूँ। मैं तो संगीतके बिना भारतके धार्मिक जीवनके विकासकी कल्पना भी नहीं कर सकता। मैं तो कहता हूँ कि मैं संगीतका और दूसरी कलाओंका प्रेमी हूँ। अन्तर केवल इतना ही है कि कलाओंका जो महत्त्व माना जाता है उससे, कलाओंको जो महत्त्व मैं देता हूँ, वह कुछ भिन्न है। आजकल जिसे कलाके नामसे पुकारा जाता है निःसन्देह मैं उसका विरोधी हूँ। उदाहरणके लिए यह माना जाता है कि कलाको समझनेके लिए उसके शास्त्रका अच्छा ज्ञान होना चाहिए; किन्तु मैं तो उस कलाको कला नहीं कहता। यदि आप सत्याग्रह आश्रममें जायें तो आप देखेंगे कि वहाँकी दीवारें चित्रोंसे रहित हैं। मेरे मित्रोंको इसपर आपत्ति है। मैं मानता हूँ कि मेरे आश्रमकी दीवारोंपर चित्र आदि नहीं हैं। किन्तु इसका कारण यह है कि मैं दीवारोंको आड़-बचावकी चीज मानता हूँ, यह नहीं कि मैं कला-मात्रका ही विरोधी हूँ। क्या मैंने अनेक बार तारिकाओंसे भरे आकाशके दिव्य मण्डपको एकटक घंटों नहीं निहारा है? मैं तो ऐसे किसी चित्रकी कल्पना ही नहीं कर सकता जो मनको तृप्ति देनेमें तारों-जड़े आकाशसे बढ़कर हो। उसके सौन्दर्यको देखकर मैं अचरजमें पड़ जाता हूँ, आत्म-विभोर हो उठता हूँ और रोमांचकारी आनन्दके सागरमें निमग्न हो जाता हूँ। कहाँ ईश्वरकी यह आश्चर्यजनक रहस्यमयी रचना और कहाँ आदमीकी बनाई तसवीर!

मैंने कहा: "मैं आपके इस कथनसे सहमत हूँ कि प्रकृति महान् कलाकार है। आज कलाके नामपर सर्वत्र जो विकृति दिखाई पड़ रही है और जिसे दुर्भाग्यवश लोग प्रायः कला ही मान बैठते हैं उसके सम्बन्धमें आपके तिरस्कारपूर्ण शब्दोंसे मैं सहमत हूँ। और उन कलाकारोंसे भी मेरा मतभेद है जो कलाको जीवनसे भी बड़ी माना करते हैं।"

यह बिलकुल ठीक है। सब कलाएँ एक तरफ, जीवन एक तरफ — यही है और यही सदा रहेगा। मैं तो इससे भी आगे जाता हूँ। मैं कहता हूँ कि जो सर्वोत्तम जीवन जीता है वही सबसे बड़ा कलाकार है। क्योंकि जिस कलाके पीछे उदात्त जीवन न हो वह कला कैसी? कला मूल्यवान तभी है जब वह जीवनको ऊपर उठाये। मुझे तीव्र आपत्ति तभी होती है जब लोग यह कहने लगते हैं कि कला ही सब-कुछ है और कलाकी वेदीपर जीवनकी बलि दे दी जाये तो भी कोई बात नहीं। ऐसेमें मैं यही सोच लेता हूँ कि मेरे कला-मूल्य लोगोंके कला-मूल्यसे भिन्न हैं। किन्तु मेरी इसी बातपर लोग मुझे समस्त कलाओंका विरोधी मानने लगते हैं।

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे क्रॉनिकल, ५-२-१९२४

१००. भेंट : 'युग धर्म'[1] के प्रतिनिधिसे

[५ फरवरी, १९२४ के पूर्व]

डाक्टर सुमन्तने[2] महात्माजीसे पूछा, आप जैसा संयमी मनुष्य रोग-ग्रस्त क्यों हो जाता है? महात्माजीने उत्तर दिया :

यद्यपि मैं बहुत बरसोंसे खानपानमें संयम रखता आया हूँ किन्तु अभीतक जितना संयम होना चाहिए उतना नहीं हो पाया है?

फिर उन्होंने कहा :

निश्चय ही मेरे शरीरको अधिक भोजनकी आवश्यकता नहीं है। वास्तवमें बात ऐसी है कि जो मनुष्य मानसिक कार्य करता है और जिसे बहुत एकाग्रचित्त होकर काम करना होता है उसे बहुत कम भोजनकी आवश्यकता होती है। मिताहार करनेसे कदाचित् मेरा वजन कम हो जाता, किन्तु स्वास्थ्यमें सुधार ही होता।

महात्माजीने यह मत प्रकट किया कि जो लोग मानसिक कार्य करनेके अभ्यस्त हैं उनको भोजनमें दालकी कोई जरूरत नहीं है। अन्त्यजोंकी दशा सुधारनेके बारेमें उन्होंने कहा कि हमें गाँवोंमें डेरा जमाकर बैठ जानेकी जरूरत है। गुजरातके कार्यकर्त्ताओंमें निराशा छा जानेकी बात मैं बिलकुल नहीं मानता।

महात्माजीने आगे चलकर कहा :

मैं केवल सत्यकी खोज करते-करते राजनीतिमें आ गया हूँ। जब मैं जेल गया था तो मैंने पूरे छः सालका कार्यक्रम बनाया था। मैंने इन्दुलालको दक्षिण आफ्रिकाके सम्बन्धमें थोड़ा-सा लिखा दिया है, किन्तु मुझे अपने 'गीता' सम्बन्धी विचार अभी लिखाने हैं। मैं यह भी बताना चाहता हूँ कि 'महाभारत' का संक्षेप कैसे किया जाये। अपनी आत्मकथा लिखनेका भी मेरा विचार है। मुझे अभी बहुत-कुछ काम करना है।

जब डा० सुमन्तने इंग्लैंडकी नई मजदूर सरकारकी आलोचना करते हुए यह कहा कि अब भी ऐसे लोग मौजूद हैं जो मजदूर सरकारसे लड्डू मिलनेकी आशा करते हैं; तब महात्माजीने कुछ गम्भीर वाणीमें उत्तर दिया :

लोग बाहरसे सहायताकी आशा नहीं छोड़ते। स्वराज्य कौन दे सकता है? वह तो हमें ही लेना है। दलित-वर्गों और हिन्दू-मुस्लिम एकताकी समस्याओंको हल करनेके

१. उस समय अहमदाबादसे प्रकाशित होनेवाला एक गुजराती पत्र।

२. *युग धर्म*के सम्पादक। यह भेंट सैसून अस्पतालमें हुई थी।

सम्बन्धमें मजदूर सरकार हमें क्या सहायता दे सकती है? आपका भविष्य आपके हाथोंमें है। बाहरसे मिलनेवाले लड्डू पत्थर ही साबित होंगे।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, १८-२-१९२४

१०१. ड्र पियर्सनके प्रश्नोंके उत्तर[1]

[५ फरवरी, १९२४के पश्चात्][2]

श्री गांधी पूनाकी पहाड़ी जलवायुमें [आपरेशनके बाद] पुनः स्वस्थ होनेके लिए विश्राम कर रहे हैं। यह स्थान यरवदा जेलसे कुछ ही मीलकी दूरीपर स्थित है। यरवदा जेलमें दो वर्ष कैद रहनेके बाद उनका स्वास्थ्य बिगड़ गया था और इसलिए ब्रिटिश सरकारने उन्हें बिना शर्त रिहा कर दिया था।

यह वक्तव्य रिहाईके बाद उनका सबसे पहला वक्तव्य है:

मैं पूर्ण स्वास्थ्य-लाभ करते ही स्वराज्य-प्राप्तिके लिए अपना कार्य फिर आरम्भ कर दूंगा।

आप कौन-सा मार्ग ग्रहण करेंगे? उन्होंने शान्त भावसे उत्तर दिया:

मेरा अब भी यह विश्वास है कि भारतके लिए ब्रिटिश साम्राज्यके भीतर रहना सम्भव है। अहिंसामें मेरा दृढ़ विश्वास ज्यों-का-त्यों है। मैं मानता हूँ कि यदि भारत अहिंसाका पूर्ण पालन करेगा तो उससे अंग्रेज जातिके सर्वाधिक उदात्त भाव जाग्रत होंगे। अहिंसासे स्वराज्य-प्राप्तिकी मेरी आशाका आधार मनुष्य-मात्रके अन्तस्तलमें रहनेवाली भलमनसाहतमें मेरा अटूट विश्वास है।

मैंने हमेशा ही यह माना है कि भारतका अंग्रेजोंसे कोई झगड़ा नहीं है। ईसाने स्क्राइब और फैरीसियोंकी[3] दुष्टताकी निन्दा तो की थी किन्तु उन्हें उनसे घृणा नहीं थी। इसी प्रकार हमें भी अंग्रेजोंसे घृणा करनेकी आवश्यकता नहीं है, यद्यपि हम उनकी स्थापित की हुई शासन-प्रणालीसे घृणा करते हैं। उन्होंने भारतमें ऐसी शासन-प्रणालीकी स्थापना की है जिसका आधार बल-प्रयोग है। इस शासन-प्रणालीमें

१. ड्र पियर्सनने २६ मार्च, १९२४को न्यूयार्कसे देवदास गांधीको एक पत्र लिखा था। उससे प्रकट होता है कि प्रश्नोंके उत्तर देवदासने उन्हें समुद्री तारसे भेजे थे और उन्होंने उस संक्षिप्त तारको थोड़ा विस्तार देकर, जिस तारीखको वह भारतसे भेजा गया था उसी दिन, पत्रोंमें प्रकाशनार्थ भेज दिया था। यह विवरण अमेरिकाके ५० पत्रोंके अतिरिक्त आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड, जापान, चीन और कनाडाके पत्रोंमें भी छपा था।

ड्र पियर्सनने इससे पूर्व भी गांधीजीसे जेलमें भेंटके लिए सर लायड् जार्ज से इजाजत माँगी थी, जो नहीं मिली। इस सम्बन्धमें वे गवर्नरसे मिले भी थे। उनकी भेंटके विवरणके लिए देखिए परिशिष्ट ६।

२. ऐसा प्रतीत होता है कि गांधीजीने इन प्रश्नोंके उत्तर ५ फरवरी, १९२४को जेलसे छूटनेपर ही दिये होंगे।

३. ईसाके समयकी दो यहूदी जातियाँ।

तो वे अपने किलों और अपनी तोपोंकी बदौलत ही अपने-आपको सुरक्षित समझ पाते हैं। इसके विपरीत हम भारतीय लोग यह आशा करते हैं कि हम अपने आचरणसे हर अंग्रेजको यह दिखा देंगे कि वह मशीनगनके आश्रयमें बैठकर अपने-आपको जितना सुरक्षित मानता है, उतना ही सुरक्षित वह भारतके सुदूरतम प्रदेशमें भी है।

स्वराज्यसे आपका अभिप्राय क्या है?

जैसे कनाडा, दक्षिण आफ्रिका और आस्ट्रेलिया साम्राज्यमें पूरी हिस्सेदारीका उपभोग करते हैं वैसे ही भारत साम्राज्यके दूसरे समस्त भागोंके साथ पूरी साझेदारीका उपभोग करे। जबतक हमें समस्त अंग्रेजी उपनिवेशोंमें जाति, वर्ण अथवा धर्मका भेदभाव किये बिना, सम्राट्के समस्त प्रजाजनोंके पूर्ण नागरिकताके अधिकार नहीं मिल जाते तबतक हमें कदापि सन्तोष न होगा।

मैंने श्री गांधीसे पूछा कि क्या कौंसिलोंके बहिष्कारमें उनका विश्वास अब भी है?

हाँ, मैं अब भी विश्वास करता हूँ कि जबतक ब्रिटेनका हृदय परिवर्तन नहीं होता और वह हमारे साथ न्यायोचित व्यवहार नहीं करता तबतक हमें कौंसिलोंमें भाग नहीं लेना चाहिए। किन्तु राष्ट्रवादी दल इस सम्बन्धमें जो-कुछ कर रहा है उस-पर मैं तबतक कोई मत प्रकट नहीं करना चाहता जबतक उसके नेताओंसे बातचीत न कर लूँ। मैंने उनसे बातचीत आरम्भ भी कर दी है।

जब मैंने श्री गांधीसे यह पूछा कि क्या जेलमें उनके राजनीति और धर्म-सम्बन्धी विचार बदल गये हैं, उन्होंने उत्तर दिया:

उनमें कोई परिवर्तन नहीं हुआ है, बल्कि उक्त विचार दो वर्षके एकान्तवास और आत्मनिरीक्षणके फलस्वरूप पुष्ट ही हुए हैं। मैं राजनीतिमें धर्मको दाखिल करके अपने मित्रोंके सहयोगसे प्रयोग करता आ रहा हूँ और मुझे विश्वास हो गया है कि इन दोनोंको एक दूसरेसे विलग नहीं किया जा सकता। मैं स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि धर्मसे मेरा आशय क्या है। यद्यपि मैं हिन्दू धर्मकी सबसे ज्यादा कद्र करता हूँ किन्तु धर्मसे मेरा अभिप्राय हिन्दू धर्मसे नहीं है, बल्कि उस धर्मसे है जो उससे भी बढ़कर है अर्थात् वह है मूलभूत सत्य, जो संसारके समस्त धर्मोंका आधार-स्वरूप है और यह धर्म है — सत्यके लिए, आत्माभिव्यक्तिके लिए संघर्ष। मैं इसे सत्यबल कहता हूँ। यह धर्म मनुष्यके स्वभावका स्थायी तत्त्व है और यह अपने-आपको खोजनेका और अपने सिरजनहारको जाननेका सतत उद्योग करता रहता है। इसीका नाम धर्म है।

मैं विश्वास करता हूँ कि राजनीतिको धर्मसे अलग नहीं किया जा सकता। अहिंसा-त्मक असहयोग — इन दो शब्दोंमें मेरी राजनीति व्यक्त की जा सकती है। और असहयोगकी जड़ें संसारके सभी धर्मोंमें समाई हुई हैं। ईसाने स्क्राइब और फैरीसियोंके साथ सहयोग करनेसे इनकार कर दिया था। बुद्धने निर्भयतापूर्वक अपने युगके घमण्डी पुजारियोंके साथ सहयोग करनेसे इनकार कर दिया था। मुहम्मद, कनफ्यूशियस और हमारे अधिकतर महान् धर्म-शिक्षक असहयोगी हुए हैं। मैं तो केवल विनम्र भावसे उन्हींके पद-चिह्नोंपर चलनेका प्रयास कर रहा हूँ।

असहयोगका दूसरा नाम आत्मत्यागका प्रशिक्षण है। संसारके महान् धर्म-शिक्षकोंने इसका आचरण किया था। शक्ति शारीरिक सामर्थ्यसे उत्पन्न नहीं होती। वह तो अजेय संकल्पसे उद्भूत होती है: मैंने भारतके सम्मुख आत्मत्यागके प्राचीन धर्म अर्थात् अपने अन्तरकी आवाजको सुननेकी बात रखनी चाही है।

अहिंसासे मेरा आशय कायरता नहीं है। मेरा निश्चित मत है कि यदि विकल्प केवल कायरता और हिंसाके बीच हो तो हिंसा चुनी जानी चाहिए; तथापि मैं क्षमाशीलताको वीरका भूषण मानता हूँ। भारतको अहिंसापर चलनेकी सलाह देनेका मेरा कारण यह नहीं है कि वह निर्बल है बल्कि यह है कि उसे अपनी शक्ति और अपने सामर्थ्यका भान है। जिन ऋषियोंने अहिंसा धर्मकी खोज की थी वे न्यूटनसे अधिक प्रतिभासम्पन्न थे। वे शस्त्रोंका प्रयोग करना जानते हुए भी उनकी व्यर्थता जान गये थे और इसी कारण उन्होंने त्रस्त संसारको यह शिक्षा दी थी कि उसे मुक्ति हिंसासे नहीं, अहिंसासे मिल सकती है।

इसलिए मैं अमेरिकी लोगोंसे आदरपूर्वक निवेदन करता हूँ कि वे भारतके राष्ट्रीय आन्दोलनका सावधानीसे अध्ययन करें। मुझे विश्वास है कि इसमें उन्हें युद्धका कारगर विकल्प मिल जायेगा।

जेल जानेसे पूर्व श्री गांधी आधुनिक सभ्यताके अति तीव्र आलोचक थे; अतः मैंने पूछा कि क्या आपके तत्सम्बन्धी विचारोंमें कोई परिवर्तन हुआ है।

उन्होंने कहा:

उनमें कोई परिवर्तन नहीं हुआ। आधुनिक सभ्यताके सम्बन्धमें मेरा मत यह है कि वह भौतिकवादकी पूजा है और फल यह हुआ है कि शक्तिशाली शक्तिहीनोंका शोषण कर रहे हैं। लोगोंने अमेरिकाकी सम्पन्नताको मापदण्ड बना रखा है। अन्य सभी राष्ट्र उसीके जैसा होना चाहते हैं। इस बीच नैतिक विकासकी गति अवरुद्ध हो गई है और प्रगतिका मापदण्ड रुपये-आने-पाई ही हो गया है।

लोग कहते हैं कि हमारे इस देशमें कभी देवतागण निवास करते थे; किन्तु जिस देशको कारखानोंकी चिमनियोंके धुएँने कुरूप बना रखा हो, जिसकी सड़कोंपर तीव्रगति इंजिन तथा ऐसे लोगोंसे भरी मोटर गाड़ियाँ दौड़ती रहती हों, जो प्रायः न तो अपने लक्ष्यको जानते हैं, न उसे जानना चाहते हैं और उनमें भेड़-बकरियोंकी तरह भरे जानेपर भी नहीं चेतते। भला ऐसे देशमें आज देवताओंके निवासकी कल्पना करना कैसे सम्भव है? ये कल कारखाने तो स्त्री-पुरुषों और बालकोंकी लाशोंपर कथित सभ्यताका निर्माण करनेके लिए खड़े किये गये हैं।

अमेरिकाके सर्वोच्च न्यायालयने अभी हालमें भारतीयोंपर रोक लगाई है कि वे अमेरिकाके नागरिक नहीं बन सकते। इस सम्बन्धमें प्रश्न किये जानेपर श्री गांधीने कहा कि अमेरिकाके सर्वोच्च न्यायालयका यह निर्णय खेदजनक है। मेरे खयालसे इसका कारण यह है कि अमेरिकाको भारतीय सभ्यता और उसके विकासकी सम्भावनाओंके बारेमें कुछ मालूम नहीं है।

अन्तमें जब श्री गांधीको यह बताया गया कि आज समस्त भारत उनकी पूजा 'सन्त' के रूपमें करता है, हजारों भारतीय बच्चोंका नाम 'गांधीदास' रखा जा रहा है और लाखों लोग अपने घरोंमें गांधीजीके चित्र रखकर उनपर नित्य फूलोंकी ताजी मालाएँ चढ़ाते हैं, तो उन्होंने केवल इतना ही कहा:

मेरे खयालसे 'सन्त' शब्दका प्रयोग वर्तमान युगमें निषिद्ध माना जाना चाहिए। मनचाहे ढंगसे, हर किसीके लिए इस पवित्र शब्दका प्रयोग सर्वथा अनुचित है — और मेरे लिए तो और भी अनुचित है। मैं तो केवल एक विनीत सत्यशोधक हूँ।[1]

अंग्रेजी समाचारपत्रकी कतरन (एस० एन० ८९५६)से।

१०२. सन्देश: गुजरात विद्यापीठको

[६ फरवरी, १९२४ या उसके पूर्व][2]

जेलसे मुक्ति प्रसन्नताका विषय नहीं है; उससे तो हमें और भी अधिक विनम्र बनना चाहिए। आप लोगोंको पहलेसे अधिक उत्तरदायित्व सँभालना होगा; इसलिए आपको उसकी तैयारी करनी चाहिए और इतना मजबूत बन जाना चाहिए कि समय आनेपर आप उसे वहन कर सकें।

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे क्रॉनिकल, ९-२-१९२४

१०३. तार: लाला लाजपतरायको[3]

[पूना
६ फरवरी, १९२४ या उसके पश्चात्]

धन्यवाद: जबतक बीमार हैं कष्ट न दूंगा। पत्र लिख रहा हूँ।[4]

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ८२६४) की फोटो-नकलसे।

१. देखिए खण्ड १७, पृष्ठ ४४०-४४।

२. सन्देश एन्ड्रयूजकी मार्फत बुधवारको प्राप्त हुआ था। ९-२-१९२४से पूर्व बुधवार ६ फरवरीको पड़ा था। गांधीजीकी रिहाईपर एन्ड्रयूजके बयानके लिए देखिए परिशिष्ट ७।

३. यह लाला लाजपतरायके ६ फरवरी, १९२४के तारके उत्तरमें भेजा गया था, जो इस प्रकार था: "आज प्रातः लाहौर वापस, तबीयत ठीक नहीं, प्रकाशम्का तार कि आप मुझे पूना बुला रहे हैं। तार द्वारा इच्छा सूचित करें।"

४. देखिए "पत्र: लाला लाजपतरायको", ८-२-१९२४।

१०४. 'भेंट : बॉम्बे क्रॉनिकल' के प्रतिनिधिसे

[पूना
७ फरवरी, १९२४ के पूर्व][1]

महात्मा गांधीने 'बॉम्बे क्रॉनिकल' के संयुक्त सम्पादक श्री एस० ए० ब्रेलवीसे एक भेंटमें कहा कि रिहाईके बाद अब मैं देशवासियोंके लिए अपने मनमें सन्देशकी एक रूपरेखा बना रहा हूँ। सन्देश एक पत्रके रूपमें होगा और वह पत्र कांग्रेसके सभापति मौलाना मुहम्मद अलीके नाम होगा। सजा मिल जानेके बाद भी मैं अपने देशवासियोंको पत्रके जरिये सन्देश भेजना चाहता था। वह पत्र तत्कालीन कांग्रेस-सभापति हकीम अजमलखाँके नाम लिखा गया था। परन्तु वह उनतक न पहुँच सका क्योंकि बम्बई सरकारने मुझसे उसके कुछ अंशोंको बदलने और सुधारनेके लिए कहा और जिसके लिए मैं राजी नहीं हुआ। मैं उस पत्रको भी शीघ्र ही प्रकाशित करूँगा।

महात्मा गांधीने कहा, मुझे यह जानकर दुःख हुआ कि मुझे रिहा करनेके निश्चयका आधार मेरा दुर्बल स्वास्थ्य माना गया। मैं तो यह विश्वास करना चाहता हूँ कि मेरी रिहाईसे मेरे और मेरे कार्योंके प्रति सरकारके रुखमें परिवर्तन व्यक्त होता है और वह अनुभव करती है कि मेरे अहिंसाके उपदेशोंमें हिंसा नहीं छिपी है जैसा कि मेरे बहके हुए समालोचकोंने प्रचारित किया है। इस बातके किसी भी संकेतका मैं हृदयसे स्वागत करूँगा कि सरकारकी समझमें यह बात आ गई है कि असहयोग आन्दोलनका मूल तत्त्व अहिंसा है।

[अंग्रेजीसे]
हिन्दू, ८-२-१९२४

१. इसमें मुहम्मद अलीको लिखे गये जिस पत्रका उल्लेख है वह ७ फरवरीको लिखा गया था। देखिए अगला शीर्षक।

१०५. पत्र : मुहम्मद अलीको[1]

सैसून अस्पताल
पूना
७ फरवरी, १९२४

प्यारे दोस्त और भाई,

आपके कांग्रेस अध्यक्ष होनेके नाते मैं आपको कुछ शब्द लिख रहा हूँ। मैं जानता हूँ कि मेरी इस अचानक रिहाईके सम्बन्धमें मेरे देशभाई मुझसे कुछ सुननेकी आशा रखते हैं। मुझे खेद है कि सरकारने मुझे बीमारीके कारण अवधिसे पहले छोड़ दिया है। ऐसी रिहाई मेरी प्रसन्नताका कारण नहीं बन सकती क्योंकि मैं मानता हूँ कि कोई कैदी बीमारीके आधारपर रिहा नहीं किया जा सकता।

बीमारीके दिनोंमें जेल और अस्पतालके अधिकारियोंने मेरी पूरी देखभाल की है, यदि यह बात मैं आपसे और आपके द्वारा सर्वसाधारणसे न कहूँ तो यह अकृतज्ञता होगी। यरवदा जेलके सुपरिंटेंडेंट कर्नल मरेको ज्यों ही मेरी बीमारीके जरा भी गम्भीर होनेका शक हुआ, त्यों ही उन्होंने कर्नल मैडॉकको अपनी मददके लिए बुलाया और इसमें सन्देह नहीं कि मेरे लिए जल्दीसे-जल्दी अच्छेसे-अच्छे इलाजकी व्यवस्था की गई। मुझे डेविड अस्पताल और सैसून अस्पतालमें जल्दीसे-जल्दी पहुँचाया गया। कर्नल मैडॉक तथा उनके अमलेने बड़ी चिन्ता और ममताके साथ मेरी शुश्रूषा की है। मैं उन नर्सोंका उल्लेख करना भी कैसे भूल सकता हूँ जिन्होंने मेरी स्नेहपूर्ण परिचर्या की है। यद्यपि अब अस्पतालमें रहना न रहना मेरी मर्जीकी बात है पर मैं जानता हूँ कि इससे अच्छा इलाज दूसरी जगह नहीं हो सकता। मैंने कर्नल मैडॉककी कृपापूर्ण अनुमतिसे यह तय किया है कि जबतक घाव बिलकुल अच्छा न हो जाये और फिर किसी इलाजकी जरूरत न रहे, तबतक मैं उन्हींकी देखरेखमें रहूँ।

इससे जनता आसानीसे यह समझ सकती है कि अभी कुछ समयतक मैं सक्रिय कार्यके सर्वथा अयोग्य रहूँगा। जो लोग यह चाहते हैं कि मैं शीघ्र ही सार्वजनिक कार्यक्षेत्रमें उत्तर पड़ूँ, यदि वे मुझसे मिलने आनेकी अपनी स्वाभाविक इच्छाको रोके रहें तो यह जल्दी सम्भव हो सकेगा। मैं अभी इस योग्य नहीं हूँ कि बहुतसे लोगोंसे मिल-जुल सकूँ और शायद कुछ सप्ताहोंतक यही हाल रहेगा। मित्रगण, आज अपना जितना समय राष्ट्रीय कार्यों और खासकर चरखा कातनेमें लगा रहे हैं, यदि वे उससे अधिक समय लगाने लगें तो मैं उनके प्रेमको अधिक मूल्यवान मानूँगा।

अपनी इस रिहाईसे मुझे कोई राहत नहीं मिली। तब तो मैं जिम्मेदारियोंसे मुक्त था; उन दिनों मेरा सिर्फ इतना ही काम था कि मैं अपनेको जेल-जीवनके अनुशासनमें रखूँ और अधिक कार्यक्षम बनूँ। पर ऐसी जिम्मेदारियोंके खयाल मुझे घेरे

१. यह पत्र ८-२-१९२४ के **बॉम्बे क्रॉनिकल** और **हिन्दू**में भी प्रकाशित किया गया था।

हुए हैं जिन्हें उठानेमें मैं इस समय असमर्थ हूँ। मेरे पास बधाईके तौरपर तार आ रहे हैं। मेरे प्रति मेरे देश-भाइयोंके प्रेमके जो बहुतसे सबूत मिलते रहे हैं इनसे उनकी संख्यामें इजाफा हो गया है। इनसे मुझे स्वभावतः खुशी और तसल्ली तो होती है, पर कितने ही तार ऐसे भी आये हैं जिनसे यह जाहिर होता है कि देश मेरी सेवाओंसे बड़े-बड़े परिणामोंकी आशा लगाये बैठा है और यह बात मुझे विकल बनाये हुए है। यह खयाल कि मैं अपने सामने पड़े हुए कामोंको निभानेमें बिलकुल असमर्थ हूँ, मेरे गर्वको चूर-चूर कर देता है।

यद्यपि मैं देशकी मौजूदा हालतके बारेमें बहुत कम जानता हूँ, फिर भी मेरे पास यह समझ सकनेके लिए पर्याप्त जानकारी है कि देशकी समस्याएँ बारडोलीके प्रस्तावोंके समय जितनी जटिल थीं, आज उससे भी अधिक जटिल हो गई हैं। यह बिलकुल स्पष्ट है कि हिन्दू, मुसलमान, सिख, पारसी, ईसाई तथा दूसरी जातियोंकी एकताके बिना स्वराज्यकी बात करना ही व्यर्थ है। जिस एकताको मैं १९२२ में गलती-से देशमें लगभग पूर्णतः स्थापित समझता था, देखता हूँ कि जहाँतक हिन्दू-मुसलमानोंका ताल्लुक है, उसमें बड़ा व्यवधान उपस्थित हो गया है। परस्पर विश्वासकी जगह अविश्वासने ले ली है। यदि हमें आजादी हासिल करनी है तो विभिन्न जातियोंको मित्रताके अटूट बन्धनमें बाँधना ही होगा। मेरी रिहाईपर राष्ट्र जिस सद्भावनाका प्रदर्शन कर रहा है, क्या वह विभिन्न जातियोंकी पक्की एकताके रूपमें परिणत हो सकेगी? किसी भी उपचार, या विश्रामकी अपेक्षा मैं इस तरह कहीं जल्दी स्वास्थ्य लाभ कर सकूँगा। जब जेलमें मैंने सुना कि कुछ स्थानोंमें हिन्दुओं और मुसलमानोंके बीच तनातनीकी हालत है तब मेरे मनमें उदासी छा गई। मुझे डाक्टरोंने आराम करनेकी सलाह दी है। किन्तु जबतक आपसी फूटका घुन मेरे मनको खा रहा है तबतक डाक्टरोंके बताये हुए विश्रामसे मुझे आराम नहीं मिलनेका। जो लोग मेरे प्रति प्रेम-भाव रखते हैं उन सबसे मेरा अनुरोध है कि वे इस प्रेमका उपयोग उस एकताको बढ़ानेमें करें जो हम सबको प्रिय है। मैं जानता हूँ कि यह काम कठिन है किन्तु हमारे अन्दर ईश्वरके प्रति जीवन्त श्रद्धा हो तो कोई भी काम कठिन नहीं। आइए, हम अपनी कमजोरियोंको समझें और ईश्वरकी शरणमें जायें, वह अवश्य मदद करेगा। कमजोरीसे डर और डरसे अविश्वास पैदा होता है। आइए, हम दोनों डरको अपने दिलसे निकाल दें। मैं जानता हूँ कि यदि हममें से एक भी अपने डरको दूर कर दे तो हमारे लड़ाई-झगड़े बन्द हो जायें। मैं तो यहाँतक कहता हूँ कि आपके कार्य-कालका महत्त्व केवल इस बातसे आँका जायेगा कि आप एकताके लिए क्या कर सके हैं। मैं जानता हूँ कि हम एक-दूसरेसे भाईकी तरह प्रेम करते हैं। इसलिए मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि मेरी चिन्ताओंमें हाथ बँटाइए और मेरी मदद कीजिए, जिससे मैं अपनी बीमारीके दिन हलके मनसे बिता सकूँ।

यदि हम सिर्फ देशकी बढ़ती हुई दरिद्रताका चित्र अपनी आँखोंके सामने ला सकें और यह समझें कि चरखा ही इस रोगकी एकमात्र दवा है तो वही एक काम हमें लड़नेके लिए फुरसत नहीं मिलने देगा। मुझे पिछले दो वर्षोंके दौरान गहराईके साथ सोचनेके लिए काफी समय और एकान्त मिला है। उसने मेरे विश्वासको

बारडोली कार्यक्रमकी क्षमतामें और इसलिए भिन्न-भिन्न जातियोंकी एकता, चरखे, अस्पृश्यता-निवारण और स्वराज्यके लिए कायिक, वाचिक, मानसिक अहिंसाकी अनिवार्यतामें और भी अधिक दृढ़ बना दिया है। यदि हम ईमानदारीके साथ इस कार्यक्रमको पूरा-पूरा चलायें तो हमें सविनय अवज्ञाका सहारा लेनेकी जरा भी आवश्यकता नहीं है और मेरा खयाल है कि उसकी कभी आवश्यकता भी नहीं होगी। तथापि मैं यह जरूर कहूँगा कि एकान्तमें प्रार्थनापूर्वक चिन्तन और मनन करनेपर भी सविनय अवज्ञाकी क्षमता तथा उसके औचित्यपर मेरा विश्वास जरा भी कम नहीं हुआ है। मैं इस बातको पहलेसे भी अधिक दृढ़ताके साथ मानता हूँ कि जब किसी व्यक्ति या राष्ट्रकी आत्मापर ही आघात हो रहा हो तब सविनय अवज्ञा करना उसका अधिकार और कर्त्तव्य है। मुझे इस बातका विश्वास हो चुका है कि युद्धकी अपेक्षा सविनय अवज्ञामें कम खतरा है। युद्धके अन्तमें जहाँ विजेता और विजित — दोनोंको हानि पहुँचती है वहाँ सविनय अवज्ञा दोनोंका मंगल करती है।

आप मुझसे इस बातकी उम्मीद नहीं रखेंगे कि मैं यहाँ कांग्रेसियोंके विधान परिषदों तथा सभाओंमें प्रवेशके जटिल प्रश्नपर अपनी राय जाहिर करूँ। यद्यपि मैंने परिषदों, अदालतों और सरकारी शिक्षालयोंके बहिष्कारके सम्बन्धमें अपनी राय किसी भी रूपमें नहीं बदली है, तथापि दिल्लीमें जो परिवर्तन किये गये उनके सम्बन्धमें राय कायम करने योग्य सामग्री अभी मेरे पास नहीं है और इसपर तबतक अपनी राय जाहिर करनेका मेरा इरादा नहीं है जबतक कि मुझे उन प्रसिद्ध देश-भाइयोंसे इस प्रश्नपर विचार करनेका अवसर नहीं मिलता, जिन्होंने देशहितके खयालसे विधान सभाओंके बहिष्कारको हटा लेना जरूरी माना है।

अन्तमें, मैं आपकी मार्फत बधाई भेजनेवाले तमाम सज्जनोंको धन्यवाद देता हूँ। हर शख्सको अलहदा उत्तर देना मेरे लिए असम्भव है। कितने ही पत्र नरम दलके अपने मित्रोंकी ओरसे भी मुझे मिले हैं, यह देखकर मुझे बड़ी खुशी हुई। मेरा उनसे कोई झगड़ा नहीं है और न असहयोगियोंका ही हो सकता है। नरम दलवाले भी देशके हितैषी हैं और प्रामाणिक रूपसे अपनी मान्यताओंके अनुसार देशकी सेवा करते हैं। यदि हम समझते हों कि वे गलतीपर हैं तो हम मित्र-भाव और धीरजके साथ उनसे दलील करके ही उन्हें अपने पक्षमें लानेकी आशा कर सकते हैं, उन्हें गालियाँ देकर हरगिज नहीं। वस्तुतः हम अंग्रेजोंको भी अपना मित्र समझना चाहते हैं, उन्हें अपना शत्रु समझकर उनके सम्बन्धमें कोई गलत खयाल नहीं बनाना चाहते। यदि आज ब्रिटिश सरकारके साथ हमारी लड़ाई चल रही है तो वह उनके खिलाफ नहीं बल्कि उनकी शासन प्रणालीके खिलाफ है। मुझे मालूम है कि हममें से बहुतोंने इस बातको नहीं समझा है और हमेशा इस भेदको ध्यानमें नहीं रखा है; और जिस हदतक हमने इसमें गफलत की है उस हदतक खुद अपना ही नुकसान किया है।

आपका सच्चा मित्र और भाई,

मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १४-२-१९२४

१०६. पत्र : प्राणजीवन मेहताको

सैसून अस्पताल
पूना
माघ सुदी २ [७ फरवरी, १९२४][1]

भाईश्री प्राणजीवन,

मेरा मन तो हमेशा आपकी ही यादमें लीन रहा। जेलमें शायद ही कोई दिन ऐसा गया होगा कि जब आपकी याद न आई हो। सरकारसे पत्रोंके सम्बन्धमें विवाद हो जानेके कारण मैंने पत्र लिखना बन्द ही कर दिया था। इसलिए आपको अपवाद मानकर कैसे पत्र लिखता? मुझे रिहा हुए आज तीसरा दिन है। आज हाथमें कुछ शक्ति आई है, इसलिए यह पहला पत्र आपको ही लिख रहा हूँ।

इस समय तो हम दोनों ही बीमार हैं, इसलिए कौन किसका समाचार पूछे? मेरी तबीयत सुधरती जा रही है। अभी घाव है। इस समय डाक्टर ऐसा मानते हैं कि इस घावको भरनेमें लगभग आठ दिन लगेंगे। मुझे ऐसा लगता है कि यह महीना तो यहीं निकलेगा; उसके बाद मैं क्या करूँगा यह बात तभी सोचूंगा।

रेवाशंकरभाई और आपसे मिलकर आनेवाले दूसरे लोगोंने बताया है कि आपका स्वास्थ्य पहलेसे अच्छा है। यदि आप हाथसे पत्र लिखते हों तो हाथसे लिख दें, अन्यथा किसी दूसरेसे लिखा दें। मैं स्वस्थ होनेपर आपको देखना तो चाहता ही हूँ। क्या आपकी स्थिति ऐसी है कि आप मुझसे मिलनेके लिए आ सकें?

मोहनदासके वन्देमातरम्

मूल गुजराती पत्र (जी० एन० १३१) की फोटो-नकलसे।

१०७. पत्र : लाला लाजपतरायको

सैसून अस्पताल
८ फरवरी, [१९२४][2]

प्रिय लालाजी,

मैंने आपको पत्र लिखनेका वचन दिया था; पर अबतक मैं उसका पालन न कर सका। मेरा हाथ अभी कमजोर है। मैं पत्र लिखवाना चाहता था; पर जब मैं लिखवानेको तैयार हुआ तब सहायक लोग नजदीक नहीं थे।

१. यह पत्र ५ फरवरीको गांधीजीकी रिहाईके बाद तीसरे दिन लिखा गया था।

२. इस पत्रका एक भाग, जो सम्भवतः अंग्रेजीमें लिखा गया था, १२-२-१९२४ के हिन्दूमें प्रकाशित हुआ था।

मुझे याद नहीं पड़ता कि मैंने श्री प्रकाशम्से यह कहा हो कि आप मुझसे पूना आकर मिल जायें। पर हाँ, मैं जितनी जल्दी हो सके आपसे मिलकर हिन्दू-मुसलमान-एकता, हिन्दू-सिख-एकता, धारासभा, अन्त्यज आदि सवालोंपर खूब बातें करना चाहता हूँ। पर यह तो तभी हो सकता है जब आप बिलकुल चंगे हो जायें और मेरी तबीयत इस लायक हो जाये कि देरतक बातचीत करनेकी मेहनत बरदाश्त कर सकूँ। यदि आपका स्वास्थ्य ठीक न हो, अथवा रेल द्वारा इतनी लम्बी यात्रा करनेसे तबीयत खराब हो जानेका अन्देशा हो तो मैं आपको यहाँ आनेका कष्ट दे ही कैसे सकता हूँ। और मैं चाहता हूँ कि जब आप आयें तब पूरे ३ दिनकी फुरसतसे आयें। शायद हमें जुदा-जुदा हिस्सोंमें बातें करनी पड़ें। मैं तो शायद अगले बुधवारतक बातें करनेके लायक हो जाऊँ—पर यदि घावमें कुछ और टाँके छिप रहे हों या कोई और चीज भर रही हो तो परमात्मा जाने।

आपका,
मो० क० गांधी

हिन्दी नवजीवन, १७-२-१९२४

१०८. तार: लाला लाजपतरायको[1]

पूना
१२ फरवरी, १९२४

धन्यवाद। मुझे अठारह बहुत अनुकूल होगी।

गांधी

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ८३२५) की फोटो-नकलसे।

१. लाला लाजपतरायने गांधीजीको १२ फरवरी, १९२४ को यह तार भेजा था: "धन्यवाद। चौदहको चलकर अठारहको पहुँच सकता हूँ, क्या चाहते हैं तार दें।" देखिए "पत्र: लाला लाजपतरायको", ८-२-१९२४। लाला लाजपतरायने भी तारसे १७ फरवरीको पूना पहुँचकर १८ को गांधीजीसे मिलनेकी सूचना दे दी थी। (एस० एन० ८३२६)।

१०९. पत्र : मुहम्मद याकूबको

[१२ फरवरी, १९२४][1]

महात्मा गांधीने श्री मुहम्मद याकूबको एक पत्र लिखा है। उन्होंने इस पत्रमें उनसे प्रार्थना की है, आप असेम्बलीमें[2] मुझे नोबेल शान्ति पुरस्कार देनेकी सिफारिश-का प्रस्ताव प्रस्तुत न करें, क्योंकि मेरे विश्व-शान्तिके निमित्त किये गये प्रयत्न मेरे लेखे पुरस्कार ही हैं। यदि यूरोप मेरे अहिंसाके सिद्धान्तको कोई मान्यता देता है तो मैं उसका स्वागत करूँगा। किन्तु यदि यह पुरस्कार अपने-आप नहीं दिया जाता बल्कि बाहरी सिफारिशसे दिया जाता है तो उससे ऐसी मान्यताका मूल्य नहीं रह जायेगा। इसके अतिरिक्त मेरा नाम मेरे देशके किसी दूसरे मनुष्यके मुकाबलेमें प्रस्तुत करनेका विचार मुझे जरा भी पसन्द नहीं।[3]

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, १४-२-१९२४

११०. पत्र : नरहरि परीखको

पूना

बुधवार [१३ फरवरी, १९२४][4]

भाईश्री नरहरि,

तुम्हारा चित्त शान्त है, यह समाचार मुझे आज महादेवभाईने दिया। तार करनेका लोभ बहुत बार होता है किन्तु मैं अपने मनको रोक लेता हूँ। मैं अधीर नहीं बनना चाहता। तुम और मैं — हम सब ईश्वरके अधीन हैं। हमें तो जो-कुछ करनेके लिए हमारी अन्तरात्मा कहे, वह काम कर डालना चाहिए। इसके बाद परि-णाम क्या होगा, इसकी चिन्ता हम क्यों करें? मैं यह जानना चाहता हूँ कि मणिबहन[5]

१. मुहम्मद याकूबके १७ फरवरीके पत्रमें इसी तारीखका उल्लेख है।

२. केन्द्रीय विधान सभा, दिल्ली; मुहम्मद याकूब उसके सदस्य थे।

३. मुहम्मद याकूबने गांधीजीकी इस इच्छाको ध्यानमें रखना स्वीकार करते हुए उत्तरमें उन्हें लिखा था: "आपने पत्रमें जो-कुछ लिखा है वह इतनी ऊँची चीज है कि मैं उसे असेम्बलीके रेकार्डमें सम्मिलित कराना चाहता हूँ।" (एस० एन० ८३३५)।

४. श्री परीखने उपवास किया उसके बाद बुधवार इसी तारीखको पड़ता था।

५. परीखकी पत्नी।

तनिक भी घबराती तो नहीं है; और वह तुम्हारी तपश्चर्या [उपवास]का[1] रहस्य समझती है या नहीं।

बापूके आशीर्वाद

मूल गुजराती पत्र (एस० एन० ९०४४) की फोटो-नकलसे।

१११. दक्षिण आफ्रिकामें भारत विरोधी आन्दोलन[2]

[पूना
१४ फरवरी, १९२४]

एक तो दक्षिण आफ्रिकामें इन दिनों एशियावासियोंके खिलाफ आन्दोलन चल रहा है दूसरे संघीय संसद (यूनियन पार्लियामेंट)में वर्ग क्षेत्र विधेयक (क्लास एरिया बिल) विशेष रूपसे विचारके लिए रखा गया है, इसलिए इस सम्बन्धमें अपनी राय जनताके सामने रखना मैं अपना कर्त्तव्य मानता हूँ, क्योंकि मुझसे ऐसी आशा की जाती है कि मैं वहाँकी स्थितिको समझता हूँ।

दक्षिण आफ्रिकाके यूरोपीयोंका एशियावासियोंके खिलाफ आन्दोलन करना कोई नई बात नहीं है। यह आन्दोलन लगभग उतना ही पुराना है जितना कि गैर-गिरमिटिया भारतीयोंका दक्षिण-आफ्रिकामें पहले-पहल जाकर बसना और इसका मुख्य कारण है फुटकर गोरे व्यवसायियोंकी व्यापार-सम्बन्धी डाह। दुनियाके दूसरे हिस्सोंकी तरह दक्षिण आफ्रिकामें भी स्वार्थग्रस्त लोग यदि लगातार अपनी बात कहते रहें तो बिना कठिनाईके उन लोगोंकी सहायता प्राप्त कर लेते हैं जिनका उसमें उनके बराबर स्वार्थ तो नहीं होता, परन्तु फिर भी जो स्वयं विचार करनेका माद्दा नहीं रखते। मुझे याद है, मौजूदा आन्दोलन १९२१ में शुरू हुआ था[3] और यह वर्ग क्षेत्र विधेयक (क्लास एरिया बिल) निःसन्देह उसी आन्दोलनका एक फल है।

इस विधेयकके स्वरूप और प्रभावपर कुछ लिखनेके पहले इस बातकी ओर ध्यान दिलाना जरूरी है कि यह १९१४ में दक्षिण आफ्रिकी संघ सरकार तथा भारतीयोंके बीच हुए समझौतेके खिलाफ है।[4] किन्तु इस समझौतेमें भारत सरकार और साम्राज्य सरकारका भी उतना ही हिस्सा है जितना कि संघ सरकार और भारतीय समाजका; क्योंकि यह समझौता भारत सरकार और साम्राज्य सरकारकी जानकारीमें तथा उनकी रजामन्दीसे किया गया था। भारत सरकारने तो बाकायदा सर बेंजामिन रॉबर्टसनको अपना प्रतिनिधि बनाकर भेजा था ताकि वे आयोगके काम-काजपर

१. देखिए "पत्र: नरहरि परीखको", २१-२-१९२४।
२. यह वक्तव्य प्रायः सभी समाचार पत्रोंमें प्रकाशित हुआ था।
३. देखिए खण्ड १९, पृष्ठ ५३५-३६।
४. देखिए खण्ड १२, पृष्ठ ४३९-४२।

नजर रखें। इस आयोगको संघ सरकारने कहनेको तो भारतीयोंकी स्थितिकी जाँच करनेके लिए नियुक्त किया था, किन्तु वास्तवमें उसका उद्देश्य बातचीत द्वारा समझौता करना था। समझौतेकी मुख्य शर्तें भारत सरकारके प्रतिनिधि सर बेंजामिन रावर्ट्सनके भारत लौटनेके पहले ही तय हो गई थीं।

उस समझौतेके अनुसार संघ सरकार भविष्यमें एशियावासियोंके खिलाफ कोई कानून नहीं पास कर सकती। उस समय यह बताया गया था कि भारतीयोंकी कानूनी हालत धीरे-धीरे सुधारी जायेगी और एशियावासियोंके खिलाफ जो कानून उस समय विद्यमान थे उन्हें भविष्यमें रद्द कर दिया जायेगा। पर बात इसकी ठीक उलटी हुई। सर्वसाधारणको याद रहे कि इस समझौतेकी भावनाको तोड़नेका पहला प्रयत्न उस समय हुआ जब कि ट्रान्सवालमें मौजूदा कानूनको अमलमें लानेकी कोशिश की गई, जो कि भारतीयोंके खिलाफ था और जो समझौतेके समय जैसा चलन था उसके भी प्रतिकूल था। यह वर्ग क्षेत्र विधेयक (क्लास एरिया बिल) तो भारतीयोंकी आजादीको और भी कम कर देता है।

इस समझौतेके अन्य छिपे हुए और चाहे जो अर्थ हों, पर इस बातमें कोई विवाद नहीं हो सकता कि १९१४के निपटारेके[1] अनुसार संघ सरकार भारतीयोंकी आजादीपर भविष्यमें प्रतिबन्ध न लगानेके लिए वचनबद्ध है। दक्षिण आफ्रिकाके गवर्नर-जनरलके नाम भेजे हिदायतनामेके अनुसार महामहिम सम्राट्को नामंजूरीका अधिकार अवश्य है पर यदि साम्राज्य सरकार सौंपे गये कामके प्रति ईमानदार रहना चाहती है तो उनका फर्ज है कि वह हर हालतमें मेरे द्वारा उल्लिखित समझौतेकी शर्तोंके पालन करनेपर जोर दे।

भारतमें रहनेवाले हम लोग संघ सरकारकी कठिनाइयोंको भी नजर-अन्दाज न करें, क्योंकि वह तो दक्षिण आफ्रिकाके यूरोपीयोंकी मर्जीपर ही टिकी है। और उनकी मर्जीका अर्थ है उनके चुने हुए प्रतिनिधियोंकी राय, जिनमें भारतीय और वहाँके मूल निवासी होते ही नहीं। उन्हें इस प्रकार अवांछित रूपसे वंचित रखनेका यह दोष दक्षिण आफ्रिकाके संविधानमें शुरूसे ही है। यही दोष उन अधिकांश स्वराज्य-प्राप्त उपनिवेशोंके संविधानमें भी है, जिनमें भारतीय या वहाँके मूल निवासी बसते हैं। चूँकि साम्राज्य सरकारने इस दोषको रहने दिया है इसलिए वह इस बातके लिए बाध्य है कि उससे निकलनेवाले बुरे नतीजोंको रोके। दक्षिण आफ्रिका और केनियाकी परिस्थितिसे अभी कुछ ही दिनोंमें यह बात साफ हो जायेगी कि साम्राज्य प्रणालीमें नैतिकताकी कीमत कितनी है। लोकमतके दबावसे सम्भवतः दोनों जगहोंका कष्ट अस्थायी रूपसे दूर हो जाये किन्तु वह अस्थायी ही होगा। जबतक इंग्लैंड या भारतमें कोई अकल्पित क्रान्तिकारी परिवर्तन नहीं होता तबतक इस दुःखान्त नाटकका आखिरी अंक आगेको ही टलता चला जायेगा।

अब स्वयं विधेयकके सम्बन्धमें सुनिए। नेटाल नगरपालिका मताधिकार विधेयक सिर्फ नेटालपर ही लगाया जानेवाला था। खुशीकी बात है कि उसे संघके गवर्नर-

१. देखिए खण्ड २१, पृष्ठ ४३६।

जनरलने अपने विशेष अधिकारका प्रयोग करके नामंजूर कर दिया है। लेकिन यह वर्ग क्षेत्र विधेयक (क्लास एरिया बिल) तो तमाम गरीब प्रान्तोंपर लगाया जानेवाला है। यह सरकारको इस बातके लिए समर्थ बना देता है कि वह वहाँ बसे हुए तमाम भारतीयोंको अलग बसा दे और दूसरे एशियावासियोंको भी अलग बसाकर उनका व्यापार क्षेत्र भी अलग कर दे। इस तरह दूसरे रूपमें यह १८८५में भूतपूर्व ट्रान्सवाल सरकार द्वारा तजवीज की गई बस्ती प्रणाली[1] है।

अब मैं संक्षेपमें यह बताता हूँ कि इस तरह अलग रखे जानेका क्या अर्थ हो सकता है? प्रिटोरियामें, जहाँसे १८८५के कानूनके होते हुए भी अभीतक किसी भारतीयको हटनेपर मजबूर नहीं किया गया है, भारतीय बस्ती कस्बेसे बहुत दूर है; और अंग्रेज, डच या नीग्रो कोई खरीदार वहाँतक नहीं जा सकता। ऐसी बस्तियोंमें व्यापार आपसमें ही है। ऐसी हालतमें अलगावपर पूरी तरह अमलका अर्थ है बिना क्षतिपूर्तिके उनको अपने देश चले जानेपर मजबूर करना। यह सच है कि विधेयक कुछ अंशोंमें मौजूदा हकोंकी रक्षाका आभास अवश्य देता है। पर भारतीय वाशिन्दोंके लिए ऐसे संरक्षणकी कुछ कीमत नहीं है। किस तरह अमलके वक्त ये संरक्षण लगभग निरर्थक हुए हैं, मैं इस बातके कितने ही उदाहरण अपने दक्षिण आफ्रिकाके अनुभवोंसे दे सकता हूँ, लेकिन मैं इस लेखको और बढ़ाना नहीं चाहता।

अन्तमें यह बात याद रखनी चाहिए कि जब दक्षिण आफ्रिकाके लिए भारतीय प्रवासपर कोई प्रतिबन्ध नहीं था, तब यूरोपीयोंने यह डर प्रकट किया था कि लाखों भारतीय आ-आकर दक्षिण आफ्रिकापर छा जायेंगे। उस समय दक्षिण आफ्रिकाके तमाम राजनीतिज्ञ कहा करते थे कि कुछ भारतीयोंको तो दक्षिण आफ्रिका आसानीसे हजम कर सकेगा और उनके साथ बरताव भी उदारतापूर्ण किया जा सकेगा, लेकिन यूरोपीय लोग तबतक दम नहीं ले सकते जबतक कि उनके दक्षिण आफ्रिकापर छा जानेकी सम्भावना बनी हुई है। पर अब चूँकि १८९७से यह छा जानेकी सम्भावना दूर हो गई है, उन्हें अलग हटा देनेका शोर मचाया जा रहा है। यदि यह बात घटित हो गई तो अगला कदम यह होगा कि उनका निष्कासन अनिवार्य बना दिया जायेगा। यदि अलग बसाये गये भारतीय अपनी खुशीसे नहीं चले जाते तो होगा यह कि दक्षिण आफ्रिकाके यूरोपीय प्रवासी साम्राज्यके न्यासियोंको जितना अधिक नरम पायेंगे उतना ही अधिक एशियाइयोंके खिलाफ अपनी माँगोंको तेज करते जायेंगे।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २१-२-१९२५

१. दक्षिण आफ्रिकामें भारतीयोंको कुछ निश्चित क्षेत्रोंमें रहनेपर बाध्य किया जाता था। इन क्षेत्रोंको बस्ती (लोकेशन) कहा जाता था। देखिए खण्ड २, पृष्ठ १९।

११२. तार: लाला लाजपतरायको[1]

[पूना
१५ फरवरी, १९२४ या उसके पश्चात्]

खेद है आपको फिर ज्वर हो आया। आशा है जल्दी निरोग होंगे। आनेकी जल्दी नहीं। पूना आरामके लिए आयें।

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ८३३३)की फोटो-नकलसे।

११३. तार: चित्तरंजन दासको[1]

[पूना
१९ फरवरी, १९२४ या उसके पश्चात्]

उल्लिखित मित्रोंसे भेंट करके प्रसन्नता होगी। भेंट होनेतक समझौतेके बारेमें चुप रहूँगा।

गांधी

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ८३५३) की फोटो-नकलसे।

११४. पत्र: नरहरि परीखको

गुरुवार [२१ फरवरी, १९२४][1]

भाईश्री नरहरि,

आपका उपवास समाप्त हो गया यह जानकर मुझे प्रसन्नता हुई। जिस समय यह पत्र लिख रहा हूँ उस समय भाई लक्ष्मीदास, रामजी और गंगाबहन पास बैठे हैं। उपवासका नशा हमें मजबूत रखता है किन्तु उसके बाद उसके उतारकी अवस्था

१. यह लाला लाजपतरायके १५ फरवरी, १९२४ के इस तारके उत्तरमें भेजा गया था: "कल बुखार आ गया। रवाना न हो सका। फिर तार दूँगा।"

२. यह चित्तरंजन दासके १९ फरवरी १९२४ के इस तारके उत्तरमें दिया गया था, "मोतीलाल और मैं साथ-साथ आ रहे हैं। उनको तारीख तय करनेके बारेमें तार दिया है। इच्छा है हिन्दू-मुस्लिम समझौतेके बारेमें मेरी बात सुनकर सलाह दें। सुझाव है मोतीलाल, मैं, लाजपत और मालवीय आपकी उपस्थितिमें बात करें।"

३. गांधीजीने इससे पहला पत्र १३ फरवरीको, जब परीखका उपवास चल रहा था, लिखा था। स्पष्ट है कि यह गुरुवार उसके बाद आनेवाले सप्ताहका है।

कठिन होती है। आप खाने-पीनेमें सावधानी तो रखना ही। अभी तो तरल आहार ही लें। रोटी और अन्य ठोस भोजन धीरे-धीरे आरम्भ करें। मुझे यह विश्वास है ही कि आप लोगोंसे व्यवहार करनेमें धीरजसे काम लेंगे। फिर भी पहले कठिनाइयाँ आयी हैं इसलिए फिर चेतावनी देता हूँ। उपवास समाप्त होनेपर मन चंचल हो जाता है, इसलिए उसे वशमें रखनेमें कठिनाई होती है। अधिक, आनेपर।

बापूके आशीर्वाद

मूल गुजराती पत्र (एस० एन० ९०४५)की फोटो-नकलसे।

११५. तार: डा० सत्यपालको[1]

[२३ फरवरी, १९२४ या उसके पश्चात्]

डा० सत्यपाल[2]

खबरसे परेशान। बीमारीके कारण पूरी जाँच करनेमें लाचार और इसके बिना सलाह देनेमें असमर्थ होनेसे और भी ज्यादा परेशान।

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ९९१६) की फोटो-नकलसे।

११६. तार: मुहम्मद अलीको[3]

[पूना
२४ फरवरी, १९२४ या उसके पश्चात्]

समितिके मार्गदर्शनके लिए पर्याप्त जानकारी अथवा योग्यता नहीं।

गांधी

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ८३७१) की फोटो-नकलसे।

१. यह डा० सत्यपालके २३ फरवरी, १९२४ को प्राप्त निम्न तारके उत्तरमें भेजा गया था: "जैतोंमें स्थिति गम्भीर। जत्थेपर गोलियाँ। किचलू और गिडवानी गिरफ्तार। कई मरे। बहुतसे घायल। ठीक संख्या अज्ञात। संवाददाताओंको अनुमति नहीं दी गई। कांग्रेस कमेटी द्वारा घायल सहायता-दल प्रेषित। उन्हें काम नहीं करने दिया गया। कार्य-समितिका दूसरा जत्था भेजनेका प्रस्ताव स्वीकृत। नाभाके प्रधान प्रशासकको तार भेजा कि पीड़ितोंकी सहायतार्थ दलको जाने दें। शिरोमणि समितिको यथासम्भव सहायताका आश्वासन। तार द्वारा निर्देश दें।" इसी तारीखको एक पत्र भी भेजा गया था; देखिए परिशिष्ट ८।

२. पंजाबके कांग्रेस-नेता। वे १० अप्रैल, १९१९ को निर्वासित किये गये थे।

३. यह मुहम्मद अलीके २४ फरवरी, १९२४ के इस तारके उत्तरमें भेजा गया था: "आवश्यक समझें तो हालमें उत्पन्न स्थितिपर दिल्लीमें २६ को होनेवाली कार्य-समितिको तारसे सन्देश तथा आदेश दें।" (एस० एन० ८३७१)।

११७. खुली चिट्ठी : अकालियोंके नाम[1]

[पूना
२५ फरवरी, १९२४]

प्रिय देशबन्धुओ,

मुझे यह जानकर अत्यन्त दुःख हुआ है कि नाभाके प्रशासकके हुक्मसे एक अकाली जत्थेपर गोलियाँ चलाई गई, जिसमें बहुतसे लोग मारे गये और घायल इससे भी अधिक हुए।[2] अपने पास आये तारोंके जवाबमें हमदर्दी प्रदर्शित करनेके अतिरिक्त मैं और कुछ कहना या करना नहीं चाहता था। क्योंकि कर्नल मैडॉकने मेरी बीमारीमें मेरे साथ हर तरहसे सहानुभूति दिखाई है और मैं देशकी परिस्थितिसे जानकारी रखनेके लिए जो थोड़ा-बहुत परिश्रम करता हूँ वह उनकी इच्छाके विरुद्ध है। अभी जीरासे मुझे निम्नलिखित तार मिला है — "स्वास्थ्यका खयाल किये विना तुरन्त आकर अकाली जत्था रोकें"। इसलिए इस दुःखद घटनापर कुछ कहे विना मुझसे नहीं रहा जा सकता। तार भेजनेवालेको मैं नहीं जानता। पर अगर मेरी हालत जाने लायक होती तो मैं जरूर पहुँच जाता। मेरा घाव अभी भरा नहीं है इसलिए ऐसी यात्रा करना मेरे लिए शारीरिक दृष्टिसे असम्भव है। इसलिए उसके अलावा मुझसे जो वन सकता है, वह कर रहा हूँ। मुझे अकाली सिखोंको इस वातका विश्वास दिलानेकी शायद ही जरूरत होगी कि जो वीर मारे गये हैं और जो बहुतसे घायल हुए हैं उनके बारेमें मेरी हमदर्दी है। मेरे सामने इस समय पूरा ब्योरा नहीं है। इसलिए मैं यह नहीं कह सकता कि गंगसरके गुरुद्वारेमें दर्शन करनेके लिए जत्थाबन्द लोगोंका जैतोंसे कूच करके जाना उचित था या अनुचित। परन्तु अकाली सिखोंसे मेरा यह कहना है कि वे उन नेताओंसे सलाह-मशविरा किये विना, जो सिख नहीं हैं, पर जिनकी सलाहसे वे अबतक काम करते आये हैं, आगे कोई जत्था न भेजें। इस वातकी राह देख लेना भी उचित है कि यह दुःखद घटना क्या रंग लाती है। मुझे एक ऐसा भी तार मिला है जिसमें कहा गया है कि जत्था अन्ततक पूर्णरूपसे अहिंसक बना रहा। आप आरम्भसे ही यह दावा करते रहे हैं कि आपका आन्दोलन पूरी तरह अहिंसात्मक और धार्मिक है। मैं चाहूँगा कि हममें से हर व्यक्ति अहिंसाके सभी अभिप्रायोंको समझ ले।

१. यह प्रायः सभी पत्रोंमें प्रकाशित किया गया था।

२. २१ फरवरी, १९२४ को जैतोंमें सिखोंके एक जलूसपर गोली चलाई गई। जलूसमें ५०० अकालियोंका एक जत्था भी शामिल था जो अमृतसरसे ३ हफ्ते चलकर १९२१ की ननकाना घटनाकी वार्षिक तिथि मनाने आया था। हताहतोंकी संख्या अधिकृत अनुमानसे २१ मृत और ३३ घायल थी। देखिए **इंडिया इन १९२३-२४**।

मैं इस बातसे अनभिज्ञ नहीं हूँ कि अहिंसाको आप अपना मूल सिद्धान्त नहीं मानते। और इसीलिए आपको इस बातकी दूनी सावधानी रखनी होगी कि आपके आन्दोलनमें विचार अथवा वाणीके द्वारा भी हिंसाका प्रवेश न हो। मैंने २५ सालसे अधिक समयसे राजनीतिक क्षेत्रमें अहिंसासे काम लिया है। इसलिए मुझे यह बात दिनके प्रकाशके सदृश स्पष्ट दिखाई देती है कि हम जिस आन्दोलनमें व्यस्त हैं उससे सम्बन्धित अपने विचार, वाणी और व्यवहारमें खूब सावधान रहें। अत्यन्त नम्रता और दृढ़ सत्यपरायणताके बिना अहिंसा असम्भव है और जब कि ऐसी अहिंसा उन आन्दोलनोंमें भी सफल हुई है जो धार्मिक नहीं कहे जा सकते, तो फिर आप लोगोंके लिए, जो कि शुद्ध धार्मिक आन्दोलनका संचालन कर रहे हैं, उसका पालन सचमुच बायें हाथका खेल होना चाहिए।

कारावासके पहले अहिंसाके सम्बन्धमें मैं जो-कुछ कहा करता था उसे दोहरानेकी मुझे जरूरत मालूम होती है; क्योंकि इन पिछले वर्षोंकी घटनाओंका जो थोड़ा-बहुत अध्ययन मैं कर पाया हूँ, उससे मालूम होता है कि हम अहिंसात्मक आन्दोलनके संचालनका दावा तो करते हैं पर जिस प्रकार हमने प्रारम्भिक वर्षोंमें अहिंसाका पालन नहीं किया था उसी प्रकार इन दो वर्षोंमें भी हमने विचार और वाणी द्वारा अहिंसाका पूरा-पूरा पालन नहीं किया है। मुझे खेदके साथ कहना पड़ता है कि मेरे पकड़े जानेके तीन महीने पहले मैंने अपने बारेमें 'यंग इंडिया' में जो-कुछ लिखा था वह मुझे आज उन दिनोंसे भी अधिक यथार्थ मालूम होता है।

इस बातमें मुझे जरा भी सन्देह नहीं कि यदि हमने इन ५ वर्षोंमें, मेरे अर्थके अनुसार अहिंसाका पालन किया होता तो हम अपनी मंजिलपर पहुँच चुके होते। यही नहीं हमें आज हिन्दू-मुसलमानोंमें झगड़े और मतभेद भी नहीं दिखाई देते। इसलिए जब मैं आपका ध्यान गुरुद्वारा सम्बन्धी आपके इस विशिष्ट संघर्षमें अहिंसाकी आवश्यकताकी ओर खींचता हूँ, तब उससे मेरा यह अभिप्राय समझा जाये कि अहिंसाके अनिवार्य तत्त्वोंके प्रति आपने दूसरी जातियोंकी अपेक्षा अधिक लापरवाही दिखाई है।

आपको थोड़ा सावधान कर देना इसलिए और ज्यादा जरूरी है कि आप लोगोंने कभी हिम्मत नहीं हारी। अपने खास ध्येयको प्राप्त करनेमें आप सतत प्रयत्नशील रहे हैं इसलिए मैं चाहता हूँ कि आप अपने दिलको टटोलिए। यदि आपको यह मालूम हो कि हम अपने अहिंसाव्रतके प्रति सच्चे नहीं रहे तो आप भी कुछ समयके लिए आन्दोलन बन्द कर दें और उसे फिरसे आरम्भ करनेसे पहले आवश्यक रूपसे शुद्ध हो जायें। मुझे सन्देह नहीं है कि आप सफल-मनोरथ होंगे।

मैं हूँ आपका मित्र और सेवक,

मो० क० गांधी

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १००५५)की फोटो-नकल तथा यंग इंडिया, २८-२-१९२४ से।

११८. तार: दासको[1]

[पूना
२५ फरवरी, १९२४ या उसके पश्चात्]

आना असम्भव। घाव भरा नहीं। कृपया तार द्वारा स्थिति बतायें।

गांधी

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ८३७६) की फोटो-नकलसे।

११९. जेलके अनुभव[2]

पूना
२६ फरवरी, १९२४

अपने कारावासके दिनोंमें सरकारी अधिकारियोंके साथ मेरा जो पत्र-व्यवहार हुआ था, उसके महत्त्वपूर्ण भागको अपने जेलके अनुभवोंके रूपमें प्रकाशित करनेकी मेरी इच्छा थी। यदि स्वास्थ्य ठीक रहा और अनुकूल समय मिला तो मेरा इरादा इन अनुभवोंको लिख डालनेका है। परन्तु अभी कुछ समयतक तो यह सम्भव नहीं है। इस बीच मित्रोंने मुझपर जोर दिया कि पत्र-व्यवहार अविलम्ब प्रकाशित कर दिया जाना चाहिए। उनकी दलील मुझे ठीक लगती है और इसलिए 'यंग इंडिया' के पाठकोंके सामने मैं इस सप्ताह उस पत्र-व्यवहारका एक अंश प्रस्तुत कर रहा हूँ। हकीमजीके पत्रमें[3] जो बात मैंने उठाई थी वह बात बादके अनुभवोंके बावजूद आज भी ज्यादातर तो ज्योंकी-त्यों कायम है। परन्तु जेलके अधिकारियोंके साथ न्याय करते हुए मुझे यह कहना होगा कि मेरी शारीरिक सुख-सुविधाके मामलेमें मुझे उत्तरोत्तर अधिक सुविधाएँ मिलती गईं। श्री बैंकरको भी पुनः मेरे पास भेज दिया गया था, जिससे मुझे बहुत खुशी हुई थी। हकीमजीको लिखे गये पहले पत्रमें जिस सीमा-रेखाकी बात

१. यह २५ फरवरी, १९२४ के जीरासे प्राप्त इस तारके उत्तरमें भेजा गया था: "स्वास्थ्यकी दशा न देखें तुरन्त आयें। अकाली जत्था।" तार किसने दिया, इसका ठीक-ठीक पता नहीं चलता। किन्तु ये दास शायद अकाली आन्दोलनसे सम्बन्धित कोई सज्जन हों। देखिए "वक्तव्य: समाचार पत्रोंको अकालियोंके नाम खुली चिट्ठीपर", २८-२-१९२४।

२. गांधीजीने जेलमें रहते हुए अप्रैल १९२२ से लेकर यरवदा जेलके अधिकारियोंसे जो पत्र-व्यवहार किया, यह लेख उसकी प्रस्तावनाके रूपमें लिखा गया था। फरवरी, १९२४ में अपनी रिहाईके बाद उन्होंने इसे **यंग इंडियामें** प्रकाशित किया।

३. देखिए "पत्र: हकीम अजमलखाँको", १४-४-१९२२।

कही गई है वह समाप्त कर दी गई थी और हम दोनों सारे अहातेमें आजादीसे घूम-फिर सकते थे। भाई बैंकरके छूट जानेके बाद बिना मेरे कहे ही तत्कालीन समयके सुपरिंटेंडेंट मेजर जोन्सने श्री मंजर अली सोख्ताको साथीके रूपमें मेरे पास भेजनेकी सरकारसे अनुमति ले ली। यह मुझे बहुत ही अच्छा लगा। क्योंकि श्री मंजर अली सोख्ता बहुत अच्छे साथी होनेके अलावा मेरे लिए एक आदर्श उर्दू शिक्षक भी थे। थोड़े ही समय बाद श्री इन्दुलाल याज्ञिक आ गये और हमारे आनन्दमें वृद्धि हो गई। उसके बाद मेजर जोन्सने हम तीनोंको यूरोपीय वार्डमें भेज दिया। वहाँ रहनेकी जगह बेहतर थी और हमारी कोठरियोंके सामने एक छोटा-सा बगीचा भी था। भाई मंजर अलीके छूटनेके बाद मेजर जोन्सके स्थानपर सुपरिंटेंडेंट कर्नल मरे आये। उन्होंने श्री अब्दुल गनीको मेरे साथीके तौरपर रखनेकी इजाजत ले ली। श्री गनीने इन्दुलाल याज्ञिकको और मुझे आनन्द तो दिया ही, साथ ही भाई मंजर अली सोख्ताका उर्दू सिखानेका काम भी ले लिया और मेरी उर्दू लिखावट सुधारनेके लिए खूब परिश्रम किया; यहाँतक कि यदि मेरी बीमारी बाधक न हुई होती तो मुझे उर्दू अच्छी-खासी आ गई होती। इसलिए जहाँतक मेरी शारीरिक सुख-सुविधाका सम्बन्ध है सरकार और जेलके अधिकारी दोनोंने मुझे आराम देनेके लिए वह सब-कुछ किया था, जिसकी कि उनसे आशा की जा सकती थी और मेरी दृढ़ मान्यता है कि समय-समयपर मुझे जो बीमारियाँ हुईं उनके लिए सरकार या जेलके अधिकारी, किसीको भी कोई दोष नहीं दिया जा सकता। मुझे अपनी खुराक पसन्द करनेकी छूट थी और मेजर जोन्स और कर्नल मरे दोनों तथा साथ ही मेजर जोन्ससे पहलेके कर्नल डेलजील भी खुराक सम्बन्धी मेरे तमाम आग्रहोंका पूरा खयाल रखते थे। यूरोपीय जेलर भी मेरा बहुत ध्यान रखते थे और सौजन्यपूर्ण व्यवहार करते थे। मुझे ऐसा एक भी प्रसंग याद नहीं आता जिसमें यह कहा जा सके कि उन्होंने मेरे कार्योंमें अनुचित रूपसे दखल दिया हो। जब जेलके साधारण नियमके अनुसार मेरी तलाशी ली जाती और मैं यह तलाशी खुशीसे लेने देता था, तब भी वे सौजन्य बरतते और यहाँ तक कि मुझसे क्षमा-याचना भी करते। मनुष्यके रूपमें मेजर जोन्स और कर्नल मरे दोनोंके प्रति मेरा बड़ा आदर है। उन्होंने मुझे कभी यह महसूस नहीं होने दिया कि मैं कैदी हूँ।

जेलके अधिकारी वर्गकी मेहरबानीके बारेमें मैंने जो-कुछ कहा है यदि उसे छोड़ दें, तो मैं सरकारकी राजनीतिक कैदियोंके प्रति हृदयहीन नीतिके बारेमें हकीमजीके पत्रमें प्रकट किये गये अपने मतमें परिवर्तन नहीं कर सकता। मैंने उस पत्रमें जो-जो बातें कही हैं वे सब बादमें सही साबित हुई हैं। अपने जेलके अनुभवोंको मेरे लिख डालने तक पाठकको इस कथनके प्रमाणके लिए रुकना पड़ेगा। इस समय तो मेरा उद्देश्य इतना ही है कि इस पत्र-व्यवहारका यह अर्थ कदापि न निकाला जा सके कि मैं अपनी शारीरिक सुख-सुविधाके मामलेमें जेलके अधिकारियों अथवा इसीलिए सरकारको किसी प्रकारसे दोषी ठहराना चाहता हूँ।

जिन कैदी पहरेदारोंके सुपुर्द हमें किया गया था, उनके प्रति गहरी कृतज्ञता प्रकट किये बिना मुझे यह टिप्पणी समाप्त नहीं करनी चाहिए। वे चौकसी करनेकी बजाय मुझे और मेरे साथियोंको भी हर तरहकी मदद देते थे। कोठरियाँ साफ करने

आदि मेहनतके काम वे हमें नहीं करने देते थे। अपने अनुभवोंमें मुझे उनके बारेमें अधिक कहना पड़ेगा, फिर भी गंगप्पाके नामका उल्लेख किये बिना मैं नहीं रह सकता। वह मेरे लिए एक अति कुशल नर्सका काम देता था। वह मेरे बारेमें हर तरहकी सावधानी रखता था और उसमें मेरी प्रत्येक जरूरतको पहलेसे ही जान लेनेकी क्षमता थी। रातको किसी भी समय वह मेरी सेवा करनेके लिए तत्पर रहता था। अपने प्रेमपूर्ण स्वभाव, पूरी ईमानदारी और साधारणतया जेलके अनुशासन और नियमोंके पालन इत्यादि गुणोंके कारण वह मेरी प्रशंसाका पात्र बन गया था। इतना उदात्त चरित्र प्रकट करनेकी क्षमता रखनेवाले व्यक्तिको समाज किस प्रकार दण्ड दे सकता है और सरकार उसे किस प्रकार कैदमें रख सकती है, इसपर मुझे अचम्भा होता है। गंगप्पा निरक्षर है। वह राजनीतिक कैदी नहीं है। उसे हत्या अथवा ऐसे ही किसी अपराधके लिए सजा हुई थी। परन्तु इस विषयको मैं फिलहाल छोड़ता हूँ। इसपर विचार करना मुझे भविष्यके लिए स्थगित करना होगा। मैंने गंगप्पाका जो उल्लेख किया है सो केवल उस-जैसे अपने कैदी साथियोंके प्रति प्रशंसाके दो शब्द कहनेके लिए ही किया है।

मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, २८-२-१९२४

१२०. वक्तव्य : समाचारपत्रोंको अकालियोंके नाम खुली चिट्ठीपर

[पूना
२८ फरवरी, १९२४]

मैंने २८ फरवरीके 'बॉम्बे क्रॉनिकल' में प्रकाशित जैतोंकी दुःखद घटनाके बारेमें कुछ पंक्तियाँ अभी-अभी पढ़ीं। उनमें कहा गया है कि मेरी अकालियोंके नाम लिखी गई खुली चिट्ठी गलत जानकारीपर आधारित है और लोगोंको सन्देह है कि यह गलत जानकारी बहुत करके लाला लाजपतरायने दी है। लालाजीके साथ न्यायकी दृष्टि-से मैं कहना चाहता हूँ कि लालाजीके मुझसे मिलनेके पहले ही मैं इस दुःखद घटनाके सम्बन्धमें सब-कुछ पढ़ चुका था। मुझे तार द्वारा पंजाब आनेका निमन्त्रण मिला। मैंने यह तार लालाजीको दिखानेके पहले ही अपनी यह राय बना ली थी और क्या कहना है यह सोच लिया था। जो सोचा था, वक्तव्य उसीके अनुसार दिया गया। जीरासे मुझे तार मिला कि आप आकर अकाली जत्थेको रोकें। मैं वहाँ किसीको नहीं जानता था और चाहता जरूर था कि मेरी सलाह यथासम्भव शीघ्र ही अकाली सिखोंतक पहुँच जाये। इसलिए मैंने वह खुली चिट्ठी भेजी। वह केवल समाचार-पत्रोंसे उपलब्ध जानकारी तथा अपनी रिहाईके बाद मैंने देशमें मन, वचन, और कर्मसे

अहिंसाके पालन करनेकी जो स्थिति देखी उसपर आधारित थी। लालाजीने मेरा पत्र देखा अवश्य था; बल्कि उन्हींके आग्रहसे मैंने उस पत्रमें से बहुत-से अंश निकाल दिये थे। ये अंश कहीं अधिक सख्त थे और अगर लालाजी जोर न देते तो मैं इन अंशोंको पत्रमें बना रहने देता। लालाजीने यह भी सलाह दी थी कि पत्र इस वाक्य पर खत्म कर दिया जाये कि गैरसिख नेताओंकी सलाह लिये बिना वे दूसरा जत्था न भेजें, लेकिन चूँकि मैंने अहिंसाके अभिप्रायोंके सम्बन्धमें सामान्य उल्लेख कर देना बहुत जरूरी समझा, इसलिए मुझे लालाजीकी यह सलाह विनम्र भावसे अस्वीकार करनी पड़ी और मैंने अहिंसासे सम्बन्धित अंशोंको जैसाका-तैसा रहने दिया।

मो० क० गांधी

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ५२१२) की फोटो-नकल तथा हिन्दू २९-२-१९२४ से।

१२१. भेंट: सिन्धी शिष्टमण्डलसे

पूना
२८ फरवरी, १९२४

सिन्धका एक शिष्टमण्डल आज सवेरे महात्मा गांधीसे मिला जिसमें श्री जयरामदास दौलतराम, काजी अब्दुल रहमान, सेठ ईश्वरदास और श्री आर० के० सिधवा शामिल थे। शिष्टमण्डलने उनसे स्वास्थ्य-सुधारकी दृष्टिसे कराची चलनेकी प्रार्थना की। महात्माजी बिस्तरपर लेटे हुए थे और उन्होंने शिष्टमण्डलसे प्रसन्न मुद्रामें बातें कीं।

श्री सिधवाने शिष्ट-मण्डलके प्रवक्ताकी हैसियतसे कहा: "कराचीके समुद्र-तटपर आपका स्वास्थ्य बहुत जल्दी सुधर जायेगा। वहाँका मौसम बहुत अच्छा है।"

महात्माजीने उत्तर दिया:

स्वास्थ्य-लाभके लिए कराची जा सकना मुझे पसन्द तो आता, क्योंकि मैं जानता हूँ क्लिफ्टन बहुत अच्छी जगह है। किन्तु मैं किसी ऐसे केन्द्रीय स्थानमें रहना चाहता हूँ जहाँ दूर-दूरसे आनेवाले मित्रोंको मुझसे मिलनेमें असुविधा न हो। इसी कारण मैंने समुद्रके समीप, अन्धेरीमें[1] रहनेका निर्णय किया है।

श्री सिधवा: आपके स्वास्थ्यका ध्यान प्रमुख बात है। जो लोग आपसे मिलना चाहते हैं वे तो हजारों मील दूरसे भी आ सकते हैं। इसलिए आप कराची चलें। लोगोंकी और बातोंकी बजाय आपके स्वास्थ्यकी चिन्ता अधिक है।

यह सच है कि मित्र मुझसे मिलनेके लिए बहुत दूरसे भी आ सकते हैं; किन्तु मैं उनको कष्ट नहीं देना चाहता। मुझे श्रीलंकासे भी बुलावा मिला है। मैं कभी

१. बम्बईका उपनगर।

श्रीलंका गया नहीं हूँ; किन्तु लोग कहते हैं कि वह सुन्दर और सुहावनी जगह है। फिर भी इन आगन्तुकोंकी सुविधाका खयाल करके मैंने बम्बईके पास रहनेका ही निश्चय किया है, जिनसे मुझे अकसर सलाह करनी पड़ती है। मैंने एक बार दादाभाई नौरोजीके मकानमें रहनेका निर्णय किया था; और मनमें इस बातकी खुशी थी कि मैंने जिनसे राजनीति सीखी है, मैं उन्हींके मकानमें रहूँगा।

[अंग्रेजीसे]

अमृतबाजार पत्रिका, ४-३-१९२४

१२२. पत्र: ग० न० कानिटकरको

पूना
२९ फरवरी, १९२४

प्रिय कानिटकर,

आप तो 'सूत न कपास जुलाहेसे लट्ठम्-लट्ठ' वाली बात कर रहे हैं। मुझे कोई अन्दाज नहीं है कि आत्मकथाका लिखना कब शुरू होगा। यदि वह कभी प्रकाशित हुई, तो जहाँतक मेरा सम्बन्ध है, आपको उसके अनुवादका अधिकार होगा। परन्तु बात ऐसी है कि अन्तिम निर्णय तो काका या आनन्दस्वामीके[1] ही हाथमें है। इसलिए यदि आप पहलेसे ही सावधानी बरतना चाहें तो कृपया इनमें से किसीको या दोनोंको लिख दीजिए।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

गजानन न० कानिटकर
प्रबन्धक न्यासी, एस० आर० पाठशाला
चिंचवड़

मूल अंग्रेजी पत्र (सी० डब्ल्यू० ९५६) से।
सौजन्य: ग० न० कानिटकर

१. काका कालेलकर और आनन्दस्वामी यंग इंडिया और नवजीवनसे सम्बन्धित थे।

१२३. पत्र : डी० वी० गोखलेको

सैसून अस्पताल
पूना
२९ फरवरी, १९२४

प्रिय श्री गोखले[1],

मुसलमान न्यासियों और सम्बन्धित हिन्दुओंके झगड़ेको सुलझानेका मैं जो थोड़ा-बहुत प्रयत्न कर रहा हूँ उसका उल्लेख 'केसरी' के एक अनुच्छेदमें देखकर मुझे दुःख हुआ। मैं चाहता हूँ कि यदि हो सके तो आइन्दा आप इस सम्बन्धमें मेरे कामका उल्लेख न करें। मुझे लगता है कि ऐसे प्रचारसे सुलह करानेके सम्बन्धमें मेरी उपयोगिता घट जाती है।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

श्री डी० वी० गोखले
पूना

अंग्रेजी पत्र (जी० एन० ५२१३) की फोटो-नकलसे।

१२४. सन्देश : पूनाकी सभाको[2]

पूना
१ मार्च, १९२४

मैं इस सभाकी पूर्ण सफलताकी कामना करता हूँ। यदि हमने पर्याप्त शक्ति जुटा ली होती, तो हम बहुत पहले ही श्री हॉर्निमैनकी वापसी करानेमें समर्थ हो गये होते। सरकारने दोहरा अन्याय किया है, पहले उन्हें निर्वासित करके और दूसरे उन्हें वापस आनेकी इजाजत न देकर। लेकिन यह अन्याय वह इसीलिए कर पाई है कि हम कमजोर हैं।

[अंग्रेजीसे]
हिन्दू, ३-३-१९२४

1. मराठाके सम्पादक।
2. यह सभा प्रोफेसर र० पु० परांजपेकी अध्यक्षतामें ब्रिटिश सरकार द्वारा बी० जी० हॉर्निमैनको भारत भेजनेसे इनकार करनेके विरोधमें की गई थी। हॉर्निमैन १९१९ में निर्वासित किये गये थे। देखिए खण्ड १५। सभामें गांधीजीका सन्देश सी० एफ० एन्ड्रयूजने पढ़कर सुनाया था।

१२५. वक्तव्य: अकाली आन्दोलनके सम्बन्धमें

[पूना]
४ मार्च, १९२४

मौजूदा अकाली आन्दोलनके स्वरूप और फलितार्थों तथा उद्देश्य प्राप्तिके लिए अपनाये जानेवाले तरीकोंके बारेमें यदि मैं पूरी तरह आश्वस्त हो जाऊँ तो मैं तन-मनसे आन्दोलनमें भाग लेने और यदि आन्दोलनके मार्गदर्शनके लिए जरूरी हो तो पंजाबमें जमकर बैठनेके लिए भी तैयार हूँ। मैं जिन बातोंके बारेमें आश्वासन चाहता हूँ वे ये हैं:

१. अकालियोंकी शक्ति।

२. (क) एक स्पष्ट ज्ञापन-पत्र जिसमें अपनी कमसे-कम माँगकी घोषणा कर दी जाये। मुझे मालूम हुआ है कि यह माँग गंगसर गुरुद्वारेमें अखण्ड पाठकी है। सिख खुले तौरपर और सच्चे दिलसे घोषणा करें कि अखण्ड पाठ आन्दोलनका कोई राजनीतिक उद्देश्य नहीं है और वे उसके द्वारा नाभाके महाराजको[1] फिर गद्दी दिलानेका प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष किसी भी ढंगका आन्दोलन नहीं करना चाहते। महाराजको फिर गद्दी दिलानेके सिलसिलेमें अकाली जो आन्दोलन करना चाहते हैं वह स्वतन्त्र आधारपर चलाया जायेगा और वह सर्वथा एक अलग आन्दोलन होगा।

(ख) गुरुद्वारा नियन्त्रण आन्दोलनके अन्तर्गत विवादास्पद गुरुद्वारोंके नियन्त्रण या अधिकारके मामले पंचोंके सुपुर्द किये जाने चाहिए। जहाँतक ऐतिहासिक गुरुद्वारोंका सवाल है यह माना जायेगा कि ऐसे सभी गुरुद्वारे शि० गु० प्र० समितिके[2] नियन्त्रणमें ही रहने चाहिए। किन्तु वास्तवमें कोई गुरुद्वारा ऐतिहासिक है या नहीं, इस बातका फैसला पंचोंपर छोड़ दिया जायेगा और इसे सिद्ध करनेकी जिम्मेदारी शि० गु० प्र० समितिकी होगी।

अन्य सभी गुरुद्वारोंके सम्बन्धमें विवादास्पद तथ्य पंच फैसलेसे तय होंगे।

ऐसे गुरुद्वारोंपर जिस पक्षका कब्जा हो वह यदि शि० गु० प्र० समितिको नियन्त्रण सौंपनेसे या विवादास्पद विषयको पंच-फैसलेके लिए देनेसे इनकार करे तो अकालियोंको इस बातकी आजादी होगी कि वे अहिंसाका सही अर्थोंमें पूरा पालन करते हुए सीधी कार्रवाई करें।

१. १९२३ के आरम्भमें नाभाके महाराज द्वारा गद्दी छोड़ देनेपर भारत सरकारने राज्यका प्रशासन अपने हाथमें ले लिया था। महाराजाने गद्दी पड़ोसी राज्य पटियालाके साथ हुए झगड़ेके कारण छोड़ी थी। शि० गु० प्र० समितिका कहना था कि महाराजाने ऐसा इच्छापूर्वक नहीं किया और उसकी यह माँग थी कि महाराजाको फिर गद्दीपर बिठाया जाये। देखिए **इंडिया इन १९२३-२४**।

२. शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक समिति; सिखोंके धार्मिक मामलोंकी देखभाल करनेवाली अधिकृत संस्था।

३. अहिंसा-पालनके विषयमें पूरा आश्वासन — अर्थात् प्रकाशनके लिए एक दस्तावेज तैयार किया जाये जिसपर सभी प्रमुख नेताओंके हस्ताक्षर हों या फिर वह दस्तावेज शि० गु० प्र० समितिकी ओरसे हो, और उसमें उन सब तरीकोंका ऐसा विवरण हो जिससे अहिंसाके सभी फलितार्थ स्पष्ट हो जायें। 'अहिंसा' शब्दसे मेरा आशय यह नहीं है कि उक्त दस्तावेजमें अहिंसाको सिखोंका सर्वोच्च धर्म-सिद्धान्त मानना होगा। मैं जानता हूँ कि ऐसा नहीं है। लेकिन मैं यह मान लेता हूँ कि जहाँतक इस गुरुद्वारा आन्दोलनका सम्बन्ध है उनकी कार्य-प्रणाली अहिंसात्मक होगी, यानी अकाली उन सभी लोगोंके प्रति मनसा, वाचा कर्मणा अहिंसात्मक रहेंगे, जो इस आन्दोलनके विरोधी माने जाते हों — फिर चाहे वे अंग्रेज या कोई अन्य सरकारी अधिकारी हों या जनताके किसी भी वर्ग या सम्प्रदायके लोग। मैं सत्यके पूर्ण पालनको अहिंसाकी किसी भी योजनाका, चाहे वह स्थायी हो या अस्थायी और चाहे वह गिने-चुने लोगोंके लिए और किसी स्थानविशेषके लिए हो, अभिन्न अंग मानता हूँ। इसलिए प्रचलित अर्थमें यहाँ कूटनीतिकी गुंजाइश नहीं है और सामान्यतया प्रचलित इस विचारका भी पूर्ण निषेध है कि विरोधियोंके सम्बन्धमें छलपूर्ण तरीके बरते जा सकते हैं। इससे स्पष्ट है कि इसमें कोई गोपनीयता नहीं रहेगी।

४. यह आन्दोलन न तो हिन्दू विरोधी है और न किसी अन्य जाति या धर्मका विरोधी।

५. शि० गु० प्र० समितिकी सिख राज्य स्थापित करनेकी कोई इच्छा नहीं है और वस्तुतः समिति केवल एक धार्मिक संस्था है; और इस रूपमें उसका कोई धर्म निरपेक्ष उद्देश्य या इरादा नहीं हो सकता।

नाभाके महाराजको पुनः गद्दीपर बिठानेके सम्बन्धमें :

मेरी रायमें सच्चाई चाहे कुछ भी हो, महाराजने अपने लेखों द्वारा अपने शुभ-चिन्तकोंके लिए यह लगभग असम्भव कर दिया है कि वे उनको फिर गद्दी दिलानेका कोई प्रभावशाली आन्दोलन कर सकें। फिर भी यदि वे इस आशयका एक सार्वजनिक वक्तव्य दें कि ये सभी लेख उनसे लगभग जबरदस्ती लिखाये गये हैं और वे स्वयं इस बातके लिए तैयार और उत्सुक हैं कि उनके विरुद्ध सारे तथ्य प्रकाशित किये जायें; और यदि वे आन्दोलनके सभी परिणामोंको भुगतनेके लिए अर्थात् अधिकारोंसे, सालाना राज्याधिकार वृत्ति आदिसे वंचित होनेके लिए भी तैयार हैं और दबावके सम्बन्धमें उनके सभी आरोप साबित किये जा सकते हैं तो एक प्रभावकारी आन्दोलन चलाया जा सकता है और वह सफल भी हो सकता है।

कुछ भी हो जब महाराज उक्त प्रकारकी घोषणा कर दें तो आन्दोलन पूरे भारतमें किया जाना चाहिए। अकालियोंको तो केवल धर्म-परिपालनमें मदद देनी चाहिए।

मो० क० गांधी

अंग्रेजी प्रति (जी० एन० ३७६६ और ३७६७) की फोटो-नकलसे।

१२६. पत्र : सिख मित्रोंको

[पूना]
४ मार्च, १९२४

प्रिय मित्रो,

आपके जानेके बाद मुझे पण्डित मोतीलालजीसे मालूम हुआ कि अकालियोंके मुकदमेके मामलेमें शि०गु०प्र०स [मिति] वास्तवमें अभियुक्तोंका बचाव कर रही है। मुझे यह भी मालूम हुआ है कि अकालियोंने स्वर्ण मन्दिरके अहातेमें बने हुए एक हिन्दू मन्दिरको नष्ट कर दिया है और धर्मको इसका कारण बताया है। मैं चाहता हूँ कि आप अपने पत्रमें, जिसको लिखनेका आपने वादा किया है, इन सब प्रश्नोंकी चर्चा करेंगे।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजी पत्र (जी० एन० ३७६७) की फोटो-नकलसे।

१२७. पत्र : मुहम्मद अलीको

ससून अस्पताल
पूना
५ मार्च, १९२४

प्यारे दोस्त और भाई,

आपके दुःखमें मेरी पूरी सहानुभूति आपके साथ है। अमीनाकी बीमारीका दुःखद ब्योरा हयातने मुझे लिखा है।[1] मैंने अखबारमें भी पढ़ा था कि आप सिन्धके खिलाफत सम्मेलनमें भाग नहीं ले सके। इसी बातसे जाहिर होता है कि वह कितनी बीमार है। ईश्वर हमारी परीक्षा कई तरहसे लेता है। वह जानना चाहता है कि उसका बन्दा जिन तकलीफोंसे बचा रहना चाहता है, वे अगर आ ही पड़ें तो उस समय उसका क्या आचरण होगा। मैं जानता हूँ कि परिणाम चाहे कुछ भी हो, आप इस परीक्षामें खरे उतरेंगे। अमीनाको मेरी ओरसे ढाढ़स बँधायें और कहें कि जिनका भगवान्में विश्वास है, उन्हें भगवान् चाहे धरतीपर रखे चाहे उठा ले, दोनों स्थितियोंमें उनका कल्याण है। मैं जानता हूँ कि आपकी बहादुर बीवी इस संकटकी घड़ीमें वही करेंगी जिसकी उनसे आशा की जाती है।

१. अलीगढ़ राष्ट्रीय विश्वविद्यालयके एच० एम० हयातने २८ फरवरीको गांधीजीको पत्र लिखा था। मुहम्मद अलीकी बेटी अमीनाका स्वर्गवास इसके एक महीने बाद हुआ था।

मैंने टर्कीकी विधान सभामें स्वीकृत खिलाफत प्रस्तावके[1] सम्बन्धमें रायटरका विवरण पढ़ा है। मैं जानता हूँ कि इस फैसलेसे आपको गहरी वेदना और चिन्ता होगी, विशेष रूपसे इस समय जब आपका अधिकतर समय पारिवारिक दुःखमें बीत रहा है। किन्तु मैंने हमेशा ही ऐसा माना है कि यद्यपि हर चीजका भविष्य ईश्वरके हाथमें है, फिर भी इस्लामका भविष्य भारतके मुसलमानोंके हाथमें है।

सदैव आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
अमृतबाजार पत्रिका, ११-३-१९२४

१२८. पत्र : हैदराबादके निजामको[2]

पूना
५ मार्च, १९२४

श्रीमन्,

मुझे आपका पहली तारीखका वह पत्र[3] मिला जो आपके द्वारा बरार प्रान्तके मामलेमें परमश्रेष्ठ वाइसरायको लिखे गये पत्रके सम्बन्धमें है। सर अली इमामने मेहरबानी करके आपके पत्रकी नकलके साथ अपने गश्ती पत्रकी[4] एक प्रति भी भेजी है। लेकिन मैं बीमारीके कारण उस जरूरी कागजको पढ़ नहीं सका हूँ। अभी मैं सिर्फ उन्हीं मामलोंको देख रहा हूँ जिनमें हमेशा मेरी विशेष दिलचस्पी रही है

१. इसमें खलीफाकी पदच्युति और खिलाफतके उन्मूलनका समर्थन किया गया था। अंकाराके लिए भारतीय मुसलमानोंके शिष्टमण्डल और खलीफाको पारपत्र नहीं दिये गये थे।

२. लगता है यह पत्र निजामके पास नहीं पहुँच पाया था; देखिए "पत्र : हैदराबादके निजामको", ५-४-१९२४।

३. इसमें निजामने अन्य बातोंके अलावा यह भी लिखा था कि मैंने वाइसरायको एक सरकारी पत्र लिखा है जिसमें भारत सरकारसे माँग की है "कि वह बरार प्रान्त मुझे वापस दे दे. . .मैंने बरार प्रान्तके निवासियोंसे वादा किया है कि यदि बरार हैदराबाद राज्यके अभिन्न अंगके रूपमें मेरी सरकारकी अधीनतामें आ जायेगा तो मैं उनको स्वायत्त शासन दे दूँगा।. . .मैं यह पत्र आपसे यह पूछनेके लिए लिख रहा हूँ कि सामान्य तौरपर मानव-जातिकी आकांक्षाओंके प्रति सहानुभूतिके व्यापक सिद्धान्तके आधारपर और उसकी दशा सुधारनेकी इच्छासे क्या आप मुझे मेरी मौजूदा कोशिशमें जो मदद दे सकते हैं, देंगे।" (एस० एन० ८४२४)

४. इसमें सर अली इमामने, जो निजामकी ओरसे उनके वकीलके रूपमें इंग्लैंड गये थे, लिखा था: "यदि हमारे देशके एक छोटे प्रान्तको भी सच्चा और ठीक स्वायत्त शासन प्राप्त हो जाता है तो पूरे भारतमें सभी राजनैतिक दल जिस लक्ष्यसे प्रेरित होकर काम कर रहे हैं, उसकी प्राप्तिका आरम्भ हो जायेगा।. . .इस प्रश्नका एक दूसरा पहलू भी है; इससे पहले किये गये एक बड़े अन्यायका निराकरण भी सम्भव होगा. . .।" (एस० एन० ८४२७)

और जिनमें मेरे देशके लोग मुझसे मार्गदर्शनकी अपेक्षा करते हैं। इसलिए मेरा आपसे निवेदन है कि आप फिलहाल बरारके सवालपर ध्यान न दे सकनेके लिए मुझे क्षमा करें।

आपका विश्वस्त मित्र,
मो० क० गांधी

अंग्रेजी पत्र (एस० एन० ८४२८)की फोटो-नकलसे।

१२९. पत्र-व्यवहारपर टिप्पणी[1]

इस पत्र-व्यवहारके परिणामस्वरूप सरकारने आखिरकार उल्लिखित भेंटोंके निषेधका कारण बता दिया। वह कहती है कि इन भेंटोंका निषेध जनहितकी दृष्टिसे किया गया था। परन्तु यदि मैं भविष्यमें विशेष व्यक्ति या व्यक्तियोंसे मिलना चाहूँगा तो सुपरिटेंडेंटका कर्त्तव्य होगा कि वह सम्बन्धित नाम सरकारके पास भेज दे। मैं यह भी कह दूँ कि मुझसे मिलनेके इच्छुक उन सभी लोगोंके नाम मेरे छूटनेकी घड़ी तक मुझे सरकारके पास भेजने पड़ते थे। सरकारी वक्तव्यके बावजूद मेरे मामलेमें और उन लोगोंके मामलोंमें, जो मेरे साथ उसी अहातेमें थे, सुपरिटेंडेंटको भेंट की अनुमति देनेका कोई अधिकार नहीं था; जब कि उसे अन्य सभी कैदियोंके मामलोंमें यह अधिकार प्राप्त था।

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, ६-३-१९२४

१३०. जेल-दशापर टिप्पणी[2]

कुछ कारणोंसे, जिनकी चर्चा मैं इस समय नहीं करना चाहता, मैं इस विषयमें अधिक पत्र-व्यवहार प्रकाशित करनेमें असमर्थ हूँ। किन्तु मैं यह कहना जरूर चाहता हूँ कि मुझे दो प्रमुख भूख-हड़तालियोंसे जेल सुपरिटेंडेंट और जेलोंके इंस्पेक्टर जनरलकी मौजूदगीमें मिलनेकी इजाजत दे दी गई थी। इसका परिणाम यह हुआ कि श्री दास्ताने और श्री देव दोनों कैदियोंने मेरे द्वारा पेश किया गया नैतिक तर्क पसन्द किया और अपना लम्बा उपवास तत्काल समाप्त कर दिया। सरकारने कोड़े मारनेके कारणों और सम्बन्धित परिस्थितियोंकी जांच करनेके बाद निर्देश दे दिया कि जेल अधिकारियोंपर कैदियोंके हमला करने या इसी तरहके अन्य आचरणको छोड़-

१. यह "पत्र: यरवदा जेलके सुपरिटेंडेंटको" शीर्षकसे १६-४-१९२३ को प्रकाशित हुआ था। गांधीजी द्वारा जेल-अधिकारियोंको भेजे गये अन्य पत्र तिथि-क्रमसे दिये गये हैं।

२. यह "पत्र: यरवदा जेलके सुपरिटेंडेंटको," २९-६-१९२३ शीर्षकसे प्रकाशित किया गया था।

कर पहलेसे सरकारकी इजाजत लिये विना जेल सुपरिटेंडेंट कोड़े नहीं लगवायेगा। मैंने देखा है कि तत्कालीन सुपरिटेंडेंट मेजर हिट्ववर्थ जोन्सके आचरणके सम्बन्धमें अतिरंजित खबरें प्रकाशित की गई थीं और उन्हें एक निर्दयी सुपरिटेंडेंट तथा उनके आचरणको अमानवीय आचरण बताया गया था। मेरी रायमें कोड़े लगानेकी उक्त सजा देना केवल इस बातका सूचक है कि सुपरिटेंडेंटने स्थितिको न समझकर गलत निर्णय किया; और कुछ नहीं। मेजर जोन्स बहुत बार जल्दबाजी कर जाते थे; परन्तु जहांतक मुझे मालूम है उन्होंने हृदयहीनताका परिचय कभी नहीं दिया, बल्कि मैंने जितना भी उन्हें देखा और जिन कैदियोंके सम्पर्कमें मैं आया उनसे यही मालूम हुआ कि वे एक बहुत ही सहानुभूतिपूर्ण सुपरिटेंडेंट थे; वे हमेशा कैदियोंकी बात सुननेको तैयार रहते थे और जो भी अधीनस्थ कर्मचारी किसी भी तरहसे उनके साथ बुरा बरताव करते, उनके विरुद्ध कड़ी कार्रवाईके लिए तैयार रहते थे। वे अपनी गलती सदा मान लेते थे। यह गुण एक अधिकारीमें दुर्लभ गुण है। साथ ही वे अनुशासन-प्रिय थे और एक जल्दबाज अनुशासनप्रिय व्यक्तिसे बहुधा गलती हो सकती है। सत्याग्रहियोंको कोड़े लगानेकी दोनों घटनाएँ ऐसी ही गलतियां थीं। वहां विवेक-दोष था, हृदय-दोष नहीं। सच तो यह है कि अन्धाधुन्ध कोड़े लगानेका अधिकार जेल सुपरि-टेंडेंटको दिया ही नहीं जाना चाहिए। वह अधिकार विलम्बसे वापस लिया गया। जेल प्रशासन और कोड़े लगानेकी इन घटनाओंकी विस्तृत चर्चा हम किसी अगले अंकमें करेंगे।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ६-३-१९२४

१३१. जेलके विनियमोंपर टिप्पणी[1]

गवर्नर महोदयने अपने जेल-निरीक्षणके दौरान मुझसे आग्रहपूर्वक जानना चाहा था कि मुझे विशेष वर्गके विषयमें कुछ कहना तो नहीं है; यह पत्र उसी सिलसिलेमें लिखा गया था। मैंने उनसे जो कहा उसका आशय यह था कि मेरी रायमें विशेष वर्ग विनियम दिखावा-मात्र है और सिर्फ जनताके दिलपर यह छाप डालनेके लिए बनाया गया था कि राजनैतिक बन्दियोंको उनके सामान्य जीवन-स्तरके अनुकूल आवश्यक सुविधाएँ देनेका कुछ प्रबन्ध किया गया है। किन्तु गवर्नरने मुझसे अत्यन्त निश्चयपूर्वक कहा कि कानूनन उन्हें ऐसा कोई भी अधिकार प्राप्त नहीं है जिससे वे सख्त सजा पाये हुए कैदियोंको इस विशेष वर्गके अन्तर्गत ला सकें। और जब मैंने यह जानना चाहा कि उनको इस कानूनकी पूरी जानकारी है या नहीं तो उन्होंने कहा कि उन्हें इसका ठीक ज्ञान होना ही चाहिए, क्योंकि वे विनियम स्वयं उन्होंने

१. यंग इंडियामें अपना १५-८-१९२३ का "पत्र: बम्बईके गवर्नरको" प्रकाशित करते हुए गांधीजीने यह टिप्पणी दी थी।

ही बनाये थे। मुझे इस गवर्नरकी उद्यमशीलतापर आश्चर्य हुआ जो विनियम बनानेके समान छोटे-छोटे कामोंपर भी ध्यान देता है। सामान्यतः ऐसे काम कानूनी अधिकारियोंपर छोड़ दिये जाते हैं। यद्यपि प्रयोगमें न आनेसे मेरा कानून-सम्बन्धी ज्ञान कुण्ठित हो गया है, फिर भी गवर्नरने जिस अधिकारपूर्ण ढंगसे बात की उसके बावजूद मैं इस बातसे सहमत नहीं हो सका कि कानूनमें सरकारको केवल सादी सजा पाये हुए कैदियोंके वर्गीकरणका अधिकार दिया गया है, सख्त सजा पाये हुए कैदियोंके वर्गीकरणका नहीं; और सरकारको सजाएँ घटानेका भी कोई विशेषाधिकार नहीं दिया गया है। इसीलिए उक्त पत्र लिखा गया था। इसका जवाब यह मिला कि कानूनके बारेमें गवर्नर महोदयका खयाल गलत था और सरकारको इसके लिए जरूरी अधिकार प्राप्त हैं। परन्तु यह बात मालूम हो जानेपर भी उन्होंने विनियमोंमें इस तरहका कोई फेरफार करनेमें अपनी असमर्थता दिखाई जिसके अनुसार वह सभी राजनैतिक कैदियोंपर, चाहे वे सादा कैदकी सजा पाये हुए हों या सख्त कैदकी, लागू किया जा सके। इसलिए मुझे यह कहते हुए खेद होता है कि मेरा यह सन्देह कि विशेष-वर्ग विनियम केवल दिखावा-मात्र है, पक्का हो गया।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ६-३-१९२४

१३२. यरवदा जेलके सुपरिंटेंडेंटको लिखे पत्रपर टिप्पणी[1]

पाठकोंको सावधान रहना है कि वे इस पत्रका ऐसा कोई अर्थ न निकाल लें जो लेखकके मनमें था ही नहीं। पत्रमें उल्लिखित घटनाकी काफी चर्चा रही है और उसे लेकर काफी अटकल बाजियाँ हुई हैं। पत्र प्रकाशित करनेका मंशा उसे स्पष्ट करना ही है। कहा गया है कि मेरी हालत फलोंका त्याग कर देनेके कारण ही ज्यादा बिगड़ गई थी, इसलिए यह स्पष्ट कर देना जरूरी है कि मैंने फलोंका त्याग श्री अब्दुल गनीकी प्रार्थनाको सुपरिंटेंडेंट द्वारा अस्वीकार किये जानेके विरोधमें कदापि नहीं किया था। इसके अलावा विशेष वर्ग विनियमोंके अनुसार श्री अब्दुल गनीको यह अधिकार प्राप्त था कि वे फल या खानेकी दूसरी चीजें मँगाना चाहें तो मँगा सकते हैं। परन्तु श्री गनी, याज्ञिक और मैं इस निष्कर्षपर पहुँचे थे कि बाहरसे खानेकी चीजें मँगाना हमारे लिए ठीक नहीं होगा। इसलिए मेरे फलोंके त्यागका जो परिणाम हुआ उसके लिए अधिकारियोंको किसी तरह दोषी नहीं ठहराया जा सकता। सुपरिंटेंडेंट और जेलोंके इन्स्पेक्टर जनरलने भी मुझसे आग्रह किया था कि मैं अपने फैसलेपर अमल न करूँ। उन्होंने मुझे सावधान किया था कि फल न लेनेसे स्वास्थ्य काफी बिगड़ सकता है, लेकिन अपने मनकी शान्तिके विचारसे मैंने यह जोखिम उठाना स्वीकार किया। और उस सारी गम्भीर बीमारीके बाद भी, जो मुझे भोगनी पड़ी है, मुझे

१. यह टिप्पणी "पत्र: यरवदा जेलके सुपरिंटेंडेंटको", १२-११-१९२३ के साथ प्रकाशित की गई थी।

अपने इस निर्णयके लिए खेद नहीं है। अपने भोजनमें परिवर्तनकी माँग करनेके लिए पाठक किसी भी रूपमें श्री अब्दुल गनीको भी दोष न दें। उन्होंने मुझसे अच्छी तरह सलाह-मशविरा करनेके बाद यह माँग की थी और मैं यह नहीं जानता था कि विनियमोंके अनुसार सुपरिटेंडेंटको परिवर्तित भोजन देनेकी छूट नहीं है, इसलिए मैंने भोजनमें परिवर्तन करनेके विचारका अनुमोदन किया था। ऐसा सोचनेकी भूल मुझसे हुई क्योंकि जैसा पत्रमें कहा गया है, श्री याज्ञिक तथा अन्य साथी कैदियोंको पूर्ववर्ती सुपरिटेंडेंटने समय-समयपर अपने भोजनमें परिवर्तनकी अनुमति दे दी थी। जब श्री अब्दुल गनीकी माँग ना मंजूर किये जानेपर मैंने फल छोड़नेका फैसला किया तो उन्होंने मुझे रोकनेकी पूरी कोशिश की; परन्तु मेरा इस प्रयोगको तबतक छोड़ना सम्भव नहीं था जबतक मुझे यह बात बिलकुल स्पष्ट मालूम न हो जाती कि मेरे स्वास्थ्यके लिए फल जरूरी हैं या नहीं।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ६-३-१९२४

१३३. सन्देश : दिल्ली प्रान्तीय राजनैतिक सम्मेलनको[1]

[पूना
७ मार्च, १९२४ या उसके पूर्व]

आपके इस सम्मेलनके सामने इस समय सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण कार्य हिन्दू-मुस्लिम एकता स्थापित करनेका है। यदि यह सुननेको मिले कि सम्मेलनके हिन्दू और मुसलमान सदस्योंने ईश्वरको साक्षी मानकर निश्चय किया है कि वे कभी एक दूसरेपर अविश्वास नहीं करेंगे वरन् एक दूसरेके लिए प्राण देनेको तैयार रहेंगे, तो इस समाचारसे मेरे व्यथित हृदयको सान्त्वना मिलेगी। ईश्वर आप सबका उचित मार्गदर्शन करे।

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १०३६६) की माइक्रोफिलमसे।

१. चौथा दिल्ली प्रान्तीय राजनैतिक सम्मेलन ७ और ८ मार्च, १९२४को श्री आसफ अलीकी अध्यक्षतामें मेरठमें हुआ था।

१३४. पत्र : महादेव देसाईको

[८ मार्च, १९२४के पूर्व][1]

भाईश्री महादेव,

कृष्णदासके नाम लिखे गये तुम्हारे पत्रको पढ़कर मुझसे पत्र लिखे विना नहीं रहा गया; तुम्हारी शिकायत शब्दशः सच्ची है। तुमने जो प्रश्न उठाये हैं वे मेरे मनमें भी उठे थे, किन्तु शरीर अशक्त था इसलिए मैं कुछ अधिक नहीं कर सका। अन्तिम समय तैयारी करनेसे मैं स्वभावतः कोई निर्देश भी नहीं दे सका। मुझे लाल और हरी रेखाओंके सम्बन्धमें तुम्हें निर्देश देनेकी आवश्यकता थी। यही वात संख्याओंके सम्बन्धमें भी है। संख्याएँ दो वार वदली गईं, इसलिए तुमने ८,६२२ और ८२७ दो संख्याएँ देखी होंगी। संख्या ८,६२२ है अथवा कोई दूसरी है यह मैं भूल गया हूँ।

देवदास मेहनती है, किन्तु पत्र लिखनेमें सुस्त है। मैं ऐसा मानता हूँ कि जिसकी लिखावट अच्छी नहीं होता वह पत्र लिखनेमें सुस्ती करता ही है। प्यारेलाल अपने विचारोंमें खोया रहता है और उसमें उत्साहका अभाव है। कृष्णदास अभी नया जैसा है और घवराहटमें उससे जल्दी करनेका कोई काम नहीं कराया जा सकता। इस स्थितिमें तुम्हें वहाँकी हालतके सम्बन्धमें जो असन्तोष हो उसे सहना ही होगा।

मैं मोतीलालजीसे हुई अपनी वातचीतका सार तो तुम्हें वता ही दूँ। वे अपने कौंसिल-प्रवेश सम्वन्धी विचारपर दृढ़ रहे, किन्तु मुझे अपने इस विचारके पक्षमें नहीं कर सके। मैं भी उन्हें अपने विचारसे सहमत नहीं कर सका। वे, हकीमजी और अन्य लोग इस महीनेके अन्तिम सप्ताहमें मुझसे मिलनेके लिए यहाँ फिर आयेंगे।[2] इस समय यहाँ सिख नेता सलाह करनेके लिए आये हुए हैं। मेरी उनसे वातचीत हो रही है। जव यह वातचीत समाप्त हो जायेगी तव मैं तुम्हें उसके परिणामकी सूचना दूँगा। एण्ड्रयूज तो यहीं हैं। जयरामदास, राजगोपालाचारी और शंकरलाल भी यहीं हैं। जयरामदासको आये हुए तो दस दिन हो रहे हैं। मैं शायद शनिवारको जुहू जाऊँगा, किन्तु यह अभी पक्का नहीं है। यह घावकी स्थितिपर निर्भर है। मेरे पत्रोंका कोई अंश अखवारमें मत छापना। जहाँतक मेरा खयाल है मैं तुम्हें सप्ताहमें एक वार तो पत्र लिखूँगा ही।

अव 'यंग इंडिया'में छापनेके लिए जेल-अनुभव सम्वन्धी पत्र तो नहीं रहे। कह नहीं सकता कि अपने [जेलके] अनुभव अव कव लिख सकूँगा।

१. यह पत्र १० मार्च, १९२४ को महादेव देसाईको प्राप्त हुआ था। गांधीजी ११ मार्चको वम्वई पहुँचे थे; इसके पहले शनिवार ८ मार्चको पड़ा था; अतः यह पत्र ८ मार्चके पूर्व लिखा गया होगा।

२. ये लोग गांधीजीसे दुवारा २९ मार्चको मिले थे। मोतीलाल नेहरू और अन्य स्वराज्यवादी नेताओंसे गांधीजीकी वातचीत कई दिनतक चली थी।

मणि कैसी है? उससे कहें कि यदि वह बीमार ही रहेगी तो मुझे उसे पत्र लिखनेका कष्ट उठाना ही पड़ेगा। यदि वह मुझे इस कष्टसे बचाना चाहती है तो उसे तुरन्त स्वस्थ हो जाना चाहिए।

बापूके आशीर्वाद

मूल गुजराती पत्र (एस० एन० ८४४३)की फोटो-नकलसे।

१३५. पत्र : मगनलाल गांधीको

शनिवार [८ मार्च, १९२४][1]

चि० मगनलाल,

तुम्हारे पत्रका एक अंश मुझे चिन्तित करता है। तुमने लिखा है कि चोरोंके उपद्रवोंके कारण तुम्हें रातको अर्ध-जाग्रत रहना पड़ता है। यह स्थिति कबतक चल सकती है? यदि कोई अच्छा चौकीदार न मिले तो हमें आपसमें ही बारी बाँधकर पहरा देना चाहिए। किन्तु इससे भी जरूरी बात तो यह है कि हम गहने सर्वथा त्याग दें। आश्रममें अथवा शालामें किसीके पास एक रत्ती भी सोना अथवा थोड़ी-सी भी चाँदी नहीं रहनी चाहिए। हनुमन्त रावका[2] पत्र दो-तीन दिन पहले आया था; उसे पढ़कर मैं चकित रह गया। उनकी पत्नीके ऊपर जो बीती वह तुम्हें मालूम है क्या? इसके साथ मैं पत्र भेजता हूँ, उसे पढ़ लेना। यदि ऐसी ही घटना आश्रममें भी हो तो कोई आश्चर्यकी बात नहीं। कानोंके गहनोंकी तो कोई जरूरत ही नहीं है। हाथमें पहननेके लिए बहुत सुन्दर शंखके चूड़े मिलते हैं। अन्य प्रकारका परिग्रह भी जहाँतक हो सके कम कर देना चाहिए और निर्भय होकर रहना चाहिए। यदि चोर इनकी भी चोरी करें, तो इसकी परवाह नहीं करनी चाहिए। आसपासके गाँवोंके लोगोंसे भी इस सम्बन्धमें कहना चाहिए। ऐसा तो तुमने किया ही है। उनको फिर कहनेकी जरूरत जान पड़े तो कहना। पहरा देना, परिग्रह कम करना और गाँवोंकी मार्फत चोरोंसे चोरी न करनेको कहना — ये तीनों उपाय एक साथ काममें लाये जाने चाहिए।

जुहूमें राधाकी[3] तबीयतका समाचार देना। मेरा विचार यह है कि यदि जुहूकी जलवायु अनुकूल लगे और राधा यात्राका कष्ट सह सके तो उसे वहाँ बुला लूँ। रामदासका मन बहुत अव्यवस्थित है। वह बहुत दुःखी है। उसे अपना आश्रय देना। दुःखकी चर्चा किये बिना उससे सहानुभूति दिखाना। सुरेन्द्रको अथवा जिस किसीको अवकाश हो उसे उसके साथ रहनेके लिए कहना। यदि वह कार्यवश वहाँ न आये तो

१. गांधीजी जुहू मंगलवार ११ मार्चको पहुँचे थे। उससे पहले शनिवार ८ मार्चको था।
२. मैसूरके कांग्रेसी नेता।
३. मगनलालकी पुत्री।

उसे बुला लेना। यह तो मैंने एक सुझावके रूपमें कहा; स्थितिको देखते हुए जो-कुछ हो सके वह करना।

मैं सम्भवतः मंगलवारको जुहू पहुँचूंगा। अभी घावसे कुछ रक्त बहता है।

बापूके आशीर्वाद

मूल गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ६०४२)से।
सौजन्य: राधाबहन चौधरी।

१३६. पत्र: मगनलाल गांधीको

[८ मार्च, १९२४के पश्चात्][1]

चि० मगनलाल,

१. यदि तुमने कुत्तोंके सम्बन्धमें 'महाजन'[2]को अभीतक पत्र न लिखा हो, तो लिख देना।
२. चोरियाँ रोकनेके सम्बन्धमें चौकीदारोंसे सलाह करना।
३. आसपासके गाँवोंमें किसीको भेजनेके सम्बन्धमें विचार करना।
४. जैसे प्रार्थनामें आना अनिवार्य है वैसे ही १०-४५ बजे भोजनके लिए आना अनिवार्य मानना।

बापू

मूल गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ६०४३)से।
सौजन्य: राधाबहन चौधरी

१३७. अकालियोंको सलाह[3]

[९ मार्च, १९२४][4]

१. मेरी रायमें पूरे अकाली आन्दोलनकी सफल समाप्तिके लिए यह बात नितान्त आवश्यक है कि अकाली अपनी न्यूनतम माँगकी साफ-साफ घोषणा कर दें। ऐसा करनेपर ही सब लोगोंकी और सहानुभूति प्राप्त होगी। और सो भी तब जब

१. गांधीजीने मगनलालको ८ मार्च, १९२४को लिखे गये पत्रमें कुछ मुद्दे उठाये थे। यह पत्र सम्भवतः उनकी याद दिलानेके लिए उसके बाद कभी लिखा गया था।

२. पिंजरापोलके व्यवस्थापक।

३. सरदार मंगलसिंहके नेतृत्वमें एक शिष्ट मण्डलने पूनामें गांधीजीसे एक सप्ताहतक बातचीत की थी।

४. साधन-सूत्रके अन्तिम अनुच्छेदपर यही तारीख पड़ी है। वास्तवमें यह अनुच्छेद अगले शीर्षकमें आया है। जान पड़ता है दोनों शीर्षक एक ही दिन लिखे गये थे।

उनकी ये कमसे-कम माँगें न्यायोचित और विवेकसम्मत हों — इस अर्थमें कि वह साधारण बुद्धिवाले, धर्म-भीरु लोगोंको ठीक जँचें। इसलिए ऐसा कह देना काफी नहीं है कि अमुक माँग धार्मिक माँग है। किसी भी धार्मिक माँगका बुद्धिको जँचना आवश्यक है।

अहिंसात्मक आन्दोलनमें जो न्यूनतम माँग है वही अधिकतम भी है; जैसे दुर्जय कठिनाइयाँ सामने आनेपर भी न्यूनतम माँगमें कमी नहीं की जा सकती, ठीक उसी प्रकार अनुकूल वातारण पाकर उसमें कुछ वृद्धि भी नहीं की जा सकती।

यह निष्कर्ष इस तथ्यसे निकलता है कि अहिंसामें सत्यका समावेश होता है और सत्यमें अवसरवादिताकी गुंजाइश नहीं होती।

२. इसलिए शि० गु० प्र० समितिके लिए गुरुद्वारा आन्दोलनके सभी फलितार्थोंको स्पष्ट कर देना आवश्यक है, अर्थात् उसे बता देना चाहिए कि वह किन गुरुद्वारोंको ऐतिहासिक मानती है अथवा कौनसे गुरुद्वारे आन्दोलनके अन्तर्गत आते हैं, जिनपर अधिकार किये बिना एक सच्चा धर्मनिष्ठ अकाली चैनसे नहीं बैठ सकता। दूसरी बात यह है कि इस समय गंगसर गुरुद्वारेमें अखण्ड पाठका जो आन्दोलन[1] चल रहा है उसका ठीक अभिप्राय क्या है?

तीसरी बात यह है कि नाभाके महाराजसे जबरदस्ती राज्य-त्याग करवाने अथवा उनके स्वयं गद्दी छोड़नेके सम्बन्धमें आन्दोलनका असली स्वरूप क्या है।

३. मेरी रायमें गुरुद्वारोंके सिलसिलेमें स्वत्व-सम्बन्धी विवादकी प्रक्रिया इस प्रकार होनी चाहिए: (१) वह मौजूदा अदालतोंमें ले जाये बिना या उनके हस्तक्षेपके बिना निष्पक्ष गैर-सरकारी पंच द्वारा तय कराया जाये, (२) जहाँ विपक्षी दल तर्क या पंच-निर्णयके प्रस्तावको स्वीकार करनेसे इनकार कर दे वहाँ सत्याग्रह द्वारा; अर्थात् शि० गु० प्र० समिति द्वारा अपने स्वामित्वके अधिकारका अहिंसात्मक ढंगसे आग्रह रखना। यह तरीका आदिसे अन्ततक पूर्णतया अहिंसात्मक रहे इसके लिए इतना ही काफी नहीं है कि इसमें सक्रिय हिंसा न हो, बल्कि यह जरूरी है कि इसमें शक्तिका तनिक भी प्रदर्शन न किया जाये।

इसका अर्थ है कि शि० गु० प्र० समितिके स्वत्वका दावा करनेके लिए बहुतसे लोगोंको नियुक्त नहीं किया जा सकता; बल्कि एक या ज्यादासे-ज्यादा दो आदमी जिनकी सचाई, आत्मिक शक्ति और नम्रता असंदिग्ध हो, इस स्वत्वका दावा करनेके लिए चुने जा सकते हैं। हो सकता है कि इसके परिणाम-स्वरूप इन नेताओंको अपनी बलि देनी पड़े। मेरी दृढ़ धारणा है कि उसी क्षणसे समितिका स्वत्व सुनिश्चित हो जायेगा, लेकिन ऐसा भी हो सकता है कि उनका बलिदान कुछ दिनोंके लिए टल जाये और इस बीच सम्भव है, उन्हें छोटे-मोटे कष्ट, भयंकर मार-पीट या कैद आदि भुगतनी पड़े। उस हालतमें और ऐसे हर मामलेमें जबतक वास्तविक नियन्त्रण नहीं

१. जैतोंके निकट गंगसर गुरुद्वारेमें अक्तूबर १९२३ से अखण्ड पाठ चल रहा था। वहाँ प्रतिदिन २५ सिखोंका एक जत्था ग्रंथ साहबका पाठ करनेके लिए भेजा जाता था जिसे तुरन्त गिरफ्तार कर लिया जाता था।

प्राप्त होता तवतक समितिका अधिकार जतानेके लिए भक्तोंकी कतार इकहरी या दोहरी, गुरुद्वारा जाती ही रहे। मेरा इस वातकी ओर इंगित करना आवश्यक नहीं है कि यदि मौजूदा अधिकारी पंचसे निर्णय करवाना स्वीकार कर ले तो समितिको चाहिए कि वह उक्त प्रस्ताव स्वीकार करनेके लिए हमेशा तैयार रहे। उस सूरतमें सत्याग्रह द्वारा स्वत्व जाहिर करनेकी वात ही नहीं वचती। यह तो कहनेकी जरूरत ही नहीं कि ऐसी हालतमें यदि कुछ भक्त लोग समितिके उद्देश्यकी पूर्तिका प्रयत्न करते हुए जेल भेज दिये गये हों, तो वे पंच-निर्णयके प्रस्तावकी स्वीकृतिके साथ-ही-साथ रिहा कर दिये जायें।

नाभा

नाभा राज्यके सम्बन्धमें स्थिति जैसी मुझे मालूम हुई है और जैसी शि० गु० प्र० समिति द्वारा भेजे गये अकाली मित्रोंने वताई है, वह इस प्रकार है:

१. शि० गु० प्र० समितिका विचार है कि महाराजको गद्दी त्यागनेके लिए मजवूर किया गया है। ऐसा करनेका कोई औचित्य नहीं है और समिति यह सिद्ध कर सकती है कि वाइसरायने अस्पष्ट रूपसे जिन आरोपोंका उल्लेख किया है, उनके कारण या किन्हीं अन्य ऐसे आरोपोंके कारण जिनसे ऐसे अत्युग्र दण्डका औचित्य सिद्ध होता है, महाराज पदत्यागके लिए मजवूर नहीं किये गये हैं, वरन् कई मौकोंपर दिखाई गई अपनी लोक-सेवाकी भावना और अकालियोंके हितके प्रति अपनी सक्रिय सहानुभूतिके कारण वे गद्दीका त्याग करनेके लिए मजवूर किये गये हैं। समिति एक ऐसे योग्य अधिकारी द्वारा मामलेकी पूरी और निष्पक्ष जाँचकी माँग करती है, जिसके सामने शि० गु० प्र० समितिको सवूत देनेका अधिकार हो और जिसके निष्कर्षोंसे समितिका समाधान हो जायेगा। कहा गया है कि सरकारने कुछ ऐसे आरोपोंको जो उसकी रायमें वहुत ही अपयशजनक थे, दवा दिया और इसका लिहाज करते हुए महाराजने स्वेच्छापूर्वक पदत्याग कर दिया था। यदि इस कथनके प्रमाणस्वरूप महाराजके खुदके लिखे कागज प्रस्तुत किये जा सकते हों तो समितिके पास स्वभावतः आगे कुछ कहनेको न होगा। और यह कथन सरकारके किसी प्रच्छन्न दवावके विना, महाराजका हालमें लिखा होना चाहिए। समिति फिलहाल कोई सीधी कार्रवाई नहीं कर सकती। साथ ही यह कहना मुनासिव ही है कि यदि पूरा न्याय प्राप्त करनेके उद्देश्यसे निष्पक्ष जाँच करानेके सभी प्रयत्न असफल हो जायें, और इसके वाद जव समिति अपनी जानकारीके अनुसार जितने भी तथ्य हैं वे जनताके सामने पेश कर चुके और जनता उनपर विचार कर ले तथा जनमत पूरी तरह तैयार हो जाये तो समिति इसे अपने सम्मान और प्रतिष्ठाका सवाल मानकर, अनिच्छापूर्वक, पर सीधी कार्रवाई करनेके लिए मजवूर हो जायेगी। फिर भी समिति नाभाके सम्वन्धमें अपनी स्थिति स्पष्ट करनेके लिए जो भी ज्ञापन निकालेगी उसमें सीधी कार्रवाईका कोई उल्लेख नहीं किया जायेगा।

उपर्युक्त स्थितिमें मुझे कुछ भी आपत्तिजनक प्रतीत नहीं होता और मैं इसका हार्दिक अनुमोदन करता हूँ।

शहीदी जत्था

जो जत्था इस समय जैतों जा रहा है यदि मैं उसकी रवानगीसे पहले अकाली मित्रोंसे मिल लेता, तो उन्हें जो-कुछ कहना था उस सबको सुन लेनेके बाद भी मैं अपनी इसी सलाहपर कायम रहता कि स्थितिको तोले और उसपर पूरी तरह सोच-विचार किये बिना जत्थेको भेजना नहीं चाहिए। उक्त सज्जनोंको मुझसे मिलने आनेमें जो देर हुई उसका दोष मैं किसीपर डालना नहीं चाहता और यदि किसीको दोष देना ही हो तो वह मुझको ही दिया जाना चाहिए, क्योंकि मैंने अपने सन्देशका पूरा पाठ एसोसिएटेड प्रेसके प्रतिनिधिको देनेके साथ-साथ उसे तार द्वारा शि० गु० प्र० समितिको भेजनेकी सावधानी नहीं बरती। मैं इस गलतफहमीमें था कि निजी तारोंसे अखबारोंके तार पहले भेजे जाते हैं। इसलिए एसोसिएटेड प्रेसका तार समितिके पास जल्दी पहुँचेगा। मैं सार्वजनि धन बचानेकी चिन्तामें एक गलती कर बैठा। यदि मैं पंजाब जा सकता और स्थितिको अपनी आँखोंसे देख सकता तो जत्थेके अपने गन्तव्य स्थानके समीप पहुँच जानेपर भी मैं उसे वापस बुला लेनेकी सलाह देनेमें न झिझकता, ताकि हम स्थितिको तोल सकें और ऐसे कदम उठा सकें जो मेरे विचारानुसार आगे सीधी कार्रवाई करनेसे पहले उठाने जरूरी हैं। परन्तु मैं बीमारीकी हालतमें बिस्तरेमें पड़ा-पड़ा वापसीकी सलाह देनेकी जिम्मेदारी नहीं ले सकता। मैं यह भार उन मित्रोंपर भी नहीं डाल सकता जो गुरुद्वारेके मामलेमें मुझसे बातचीत करने आये हैं। इसलिए ऐसी परिस्थितिमें मेरा खयाल है कि जत्थेको अपने गन्तव्य स्थानकी तरफ बढ़ने देना ही उचित होगा। मुझे मालूम हुआ है कि प्रशंसकोंकी भीड़ या अन्य लोगोंको जत्थेके पीछे न आने देने या उसके साथ-साथ न चलने देनेकी पूरी सतर्कता बरती गई है। मुझे यह भी मालूम हुआ है कि जत्थेको गम्भीरसे-गम्भीर उत्तेजनाके बावजूद पूरी तरह अहिंसात्मक रुख अपनाने और कायम रखनेकी कड़ी हिदायतें दे दी गई हैं। यह सब तो ठीक ही हुआ।

लेकिन मुझे यह भी मालूम हुआ है कि जत्थेमें शामिल लोगोंको यह निर्देश दिया गया है कि यदि राज्यकी सीमासे निकल जानेका आदेश मिले तो वे उसका उल्लंघन करें और यह निर्देश भी दिया गया है कि वे राज्यके सैनिकोंके सामने एक दूसरेका हाथ पकड़कर ठोस दीवारकी तरह खड़े हो जायें और उनपर जो गोलियाँ चलाई जायें उन्हें अदम्य साहस और निष्ठासे अपने ऊपर झेलें। इसके पीछे विचार यह है कि अब छोटे-मोटे कष्टोंको न सहा जाये और बलात् निर्वासनकी यातनाको बढ़ाया न जाये, बल्कि जत्थेका प्रत्येक सदस्य किसी प्रकारका प्रतिरोध किये बिना अपनी जगहपर शान्त भावसे प्राण त्यागकर इस यातनाका अन्त करे। यह योजना बहुत ही ऊँची और साहसपूर्ण भावनासे बनाई गई है। योजना बनानेवालों और जिनपर इसके कार्यान्वित किये जानेका दायित्व है उन दोनोंकी बहादुरीपर शंका नहीं की जा सकती और यदि नाभाके अधिकारी जत्थेपर तबतक गोलियाँ बरसानेकी मूर्खता करें जबतक कि उसका एक-एक सदस्य अपनी जगहपर ढेर न हो जाये, तो इससे निश्चय ही सारी मानव-जाति चकित हो जायेगी, संसार रोमांचित हो उठेगा

और इस अतुलनीय वीरताकी सर्वत्र प्रशंसा होगी। लेकिन मुझे खेदपूर्वक कहना पड़ेगा कि इतिहास इसे अहिंसापूर्ण कार्य नहीं मान सकता। यह प्रस्तावित कार्रवाई सविनय अवज्ञा कही जा सकती है; परन्तु वास्तवमें यह सविनय अवज्ञा होगी नहीं, क्योंकि सविनय अवज्ञा उन आदेशोंका पूरी तरह पालन करना है, जो एक सत्याग्रहीको उन प्राथमिक आदेशोंके उल्लंघनके दण्डस्वरूप दिये जाते हैं और जिनका पालन वह अपनी अन्तरात्माके विरुद्ध मानता है। परन्तु अवज्ञा सविनय तभी कही जा सकती है जब छोटे या बड़े सभी आदेशोंका पालन पूरी तरह किया जाये जबकि बड़े दण्डोंको आमन्त्रित करनेके लिए छोटे आदेशोंकी अवहेलना सविनय नहीं बल्कि उदण्डतापूर्ण है; और इसलिए हिंसापूर्ण है। सत्याग्रहीका इस बातमें जीवन्त विश्वास होना चाहिए कि कष्ट-सहन और धैर्यकी भावनासे अन्तमें सफलता प्राप्त होकर ही रहेगी। इसलिए असीम धैर्य तो उसका विशिष्ट चिह्न माना ही जायेगा।

अब हम यह सिद्धान्त इस प्रस्तावित कदमपर लागू करके देखें। गोलियाँ बरसानेके लिए प्रेरित करनेके उद्देश्यसे निर्वासन या कारावासके आदेशको न माननेका अर्थ मध्यवर्ती दण्डों, तिल-तिल कष्टों और लम्बे संघर्षकी सम्भावनाओंसे बचनेकी कोशिश करना है। ऐसी कोशिशकी सविनय अवज्ञामें गुंजाइश नहीं है; इससे तो विरोधियोंको यह बहाना मिल जायेगा कि वे अहिंसात्मक नहीं हैं। स्वाभाविक कार्यविधि यह होगी कि निर्वासनकी आज्ञाका, जब उसके साथ शरीर-बलका प्रयोग भी हो, फिर चाहे वह कितना ही कम क्यों न हो, पालन किया जाये। इसलिए यदि कोई कम उम्र युवक भी जिसे उचित अधिकार प्राप्त हो, निर्वासनकी आज्ञापर अमल करानेके लिए आये तो ५०० लोग नम्रतापूर्वक और प्रसन्नतापूर्वक उस छोटे निर्वासन अधिकारीके साथ राज्यसे निकल जानेके लिए कर्त्तव्यबद्ध होंगे और सम्भव है कि वे ५०० लोग अपनी वीरतापूर्ण सहनशीलतासे उसे अपना मित्र बना लें। ये ५०० लोग एक बार सीमासे बाहर कर दिये जानेपर वापस लौटनेके और उसी तरहके बरताव या उससे भी बुरे बरतावके हकदार हैं। नम्रतापूर्वक कष्ट-सहन करनेके पीछे ऐसा विचार है कि उससे अन्तमें कठोरसे-कठोर हृदय भी पिघले बिना नहीं रहेगा। इसके अतिरिक्त इससे अवज्ञामें सक्रिय या निष्क्रिय हिंसाका लेश भी नहीं बच रहता।

मैं इस प्रस्तावित कदमका और भी विश्लेषण करना चाहता हूँ। पूरे जत्थेके लोग एक दूसरेका हाथ पकड़कर खड़े हों, इसका अर्थ यदि निष्क्रिय हिंसा नहीं है तो और क्या? यह स्पष्ट है कि ऐसी मजबूत पंक्तिको एक आदमी नहीं तोड़ सकता, जब कि अहिंसाके सिद्धान्तमें यह बात पहले ही मान ली गई है कि प्रतिपक्षीका हिंसापूर्ण कदम २०,००० अहिंसक मनुष्योंको भी पीछे हटानेके लिए काफी हो सकता है।

इसलिए यदि समिति अहिंसाके सभी फलितार्थोंको स्वीकार करती है, तो मेरी यह निश्चित राय है कि अधिकारियोंसे टक्कर होनेपर जत्थेको कार्य करनेके जो निर्देश दिये जा चुके हैं उनमें मैंने जो-कुछ ऊपर कहा है उसके अनुसार फेरफार कर दिया जाये। उस हालतमें इन दो बातोंमें से कोई एक बात हो सकती है, ये ५०० लोग या तो निर्वासित कर दिये जायेंगे या गिरफ्तार हो जायेंगे। लेकिन दोनों ही हालतोंमें

हमारी ओरसे कार्रवाई अवश्य ही पूरी तरह नम्रतायुक्त रहेगी। मैं इस तरीकेको अपनानेमें होनेवाली कठिनाइयोंको जानता हूँ। अधिकारी हमें थकानेके लिए अपनी छल-छद्म भरी चालें निरन्तर जारी रख सकते हैं। लेकिन यदि हमारा यह दावा हो कि हम समष्टिरूपमें थककर बैठनेवाले लोग नहीं हैं तो यह कठिनाई जाती रहती है। चूँकि अहिंसा ईश्वरमें अडिग विश्वास और शुद्ध अच्छाईके आग्रहपर निर्भर करती है, अतः उसमें पराजित होने या थकनेकी कोई बात ही नहीं होती। जिस योजनाका सुझाव मैंने दिया है, यदि वह अपनाई जाये तो कितने ही लोग किसी भी समय राज्यमें जा सकते हैं। इसे कार्यरूप देनेपर हम देखेंगे कि कोई भी सत्ता ऐसे दृढ़ निश्चयी लोगोंके साथ अधिक समयतक हरगिज खिलवाड़ नहीं कर सकती। जो जत्था जा रहा है उसके बारेमें अभी इतना ही काफी है। वर्तमान पैंतरेबाजी समाप्त हो जानेपर मैं पूरी स्थितिपर पुनर्विचार करनेकी राय दूंगा। जहाँतक मैं जानता हूँ अखण्ड पाठ आन्दोलनका उद्देश्य यह है कि सिख समाजके इस स्थानपर अखण्ड पाठ करनेके अधिकारपर जोर दिया जाये जो ...[1] को रोका गया था और उस हक्को कायम रखनेके लिए जितनी बार भी समाज जरूरी समझे अखण्ड पाठ करे। अधिकारी कहते हैं कि उनका उद्देश्य अखण्ड पाठको रोकना नहीं है; किन्तु वे उसकी आड़में बाहरसे बहुत बड़ी संख्यामें ऐसे सिखोंको इकट्ठा नहीं होने देंगे, जो महाराजा नाभाके बारेमें खुला या गुप्त प्रचार करें और इस तरह राज्यमें उत्तेजना पैदा करें और उसे कायम रखें। इस आपत्तिका जवाब देनेके लिए मैं समितिको सलाह देना चाहता हूँ कि वह यथासम्भव स्पष्ट शब्दोंमें यह घोषणा करे कि जत्था भेजनेका उद्देश्य केवल उपर्युक्त अधिकारका उपयोग करना है और अखण्ड पाठकी आड़में नाभा राज्यमें राजनैतिक प्रचार करनेकी उसकी कोई इच्छा नहीं है; किन्तु साथ ही समिति महाराजा नाभाके हकोंपर जोर न देने और नाभाके सवालपर आन्दोलन न करनेके लिए किसी भी प्रकार बँधी हुई नहीं है। लेकिन वह आन्दोलन उसके अपने औचित्यके आधारपर चलाया जायेगा और अखण्ड पाठके मामलेसे उसका कोई सरोकार नहीं होगा। उस हालतमें समिति २५ लोगोंका जत्था भेजना स्वीकार कर लेगी; किन्तु यह हरगिज नहीं मानेगी कि शासनको जत्थेके लोगोंकी संख्या सीमित करनेका कोई अधिकार है। यह केवल उसका स्वेच्छापूर्वक किया गया काम होगा और सन्देह दूर करनेके खयालसे ही किया जायेगा।

परन्तु यदि मेरी राय मानी जाये तो फिलहाल कोई जत्था नहीं भेजा जाना चाहिए बल्कि किसी अन्य व्यक्ति द्वारा राज्यके अधिकारियोंसे इस दृष्टिसे बातचीत की जानी चाहिए कि गलतफहमी दूर हो और बातचीतका बन्द रास्ता खुले।[2] यदि तदनुसार फिलहाल ५०० का जत्था भेजना मुल्तवी कर दिया जाये और ऊपर

१. साधन-सूत्रमें तारीख नहीं दी गई। यह तारीख २१ फरवरी, १९२४ हो सकती है। देखिए "खुली चिट्ठी : अकालियोंके नाम", २५-२-१९२४।

२. साधन-सूत्रमें इस अनुच्छेदके साथ दो पाद-टिप्पणियाँ हैं : १. 'सत्य और अहिंसा', और २. 'पण्डित मालवीयसे निवेदन'।

बताये गये ढंगसे घोषणा कर दी जाये तो उससे किसी अन्य व्यक्तिके लिए अधिकारियोंसे गतिरोध दूर करनेकी दृष्टिसे बातचीत करनेका रास्ता खुल जायेगा।

गुरुद्वारा सुधार आन्दोलन

गुरुद्वारा आन्दोलनके सम्बन्धमें मुझसे यह पूछा गया है कि पूर्वोक्त टिप्पणियोंमें संक्षेपमें बताई गई सीधी कार्रवाईसे पहले कौन-सा क्या तरीका अपनाया जाना चाहिए। पहली बात तो यह है कि गुरुद्वारोंके प्रबन्धकी अवस्था उदाहरणार्थ उनमें रहनेवालों का विवरण आदि पूरी तरह और सार्वजनिक रूपसे बता दिया जाये, अथवा समितिको[1] स्थिति स्पष्ट करते हुए अधिकारियोंको नोटिस दे दिया जाये और उनसे समितिके अधिकार क्षेत्र और नियन्त्रणको मान लेनेके लिए कहा जाये और उन्हें यह भी सूचना दी जाये कि यदि वे समितिके आधिपत्यपर आपत्ति करना चाहते हैं तो समिति मामलेपर पंच-निर्णयके लिए तैयार है। समितिकी ओरसे पंच या पंचोंके नाम नोटिस दिये जाने चाहिए और यदि अधिकारी नोटिसकी उपेक्षाको या पंच-निर्णयके सुझावको माननेसे इनकार करें तो समिति सीधी कार्रवाई करनेके लिए स्वतन्त्र होगी।

शि० गु० प्र० समितिके अधिकारमें जो गुरुद्वारे पहलेसे ही हैं उनके सम्बन्धमें सत्य और न्यायकी दृष्टिसे मुझे पूरा विश्वास है कि यदि अधिकारच्युत व्यक्तियोंको शि० गु० प्र० समितिके अधिकारपर कोई आपत्ति है तो समितिको मामलेपर फिर विचार करनेके लिए और उसपर पंच-निर्णय स्वीकार करनेके लिए तैयार हो जाना चाहिए। लेकिन मैं मानता हूँ कि अभी फिलहाल जब कि सरकार समितिको हानि पहुँचानेकी और हर तरहसे उसकी कार्रवाईमें दखल देनेकी पूरी कोशिश कर रही है ऐसी कोई सार्वजनिक घोषणा करना समितिके हितोंके लिए घातक और बाधक होगा। जो गुरुद्वारे ऐतिहासिक बताये जाते हैं उनके सम्बन्धमें जहाँतक मैं सोच सकता हूँ समितिसे सिर्फ यही करनेकी आशा की जा सकती है कि वह उनकी ऐतिहासिक प्राचीनता सिद्ध कर दे। और यदि इस सम्बन्धमें पंचोंका समाधान हो जाये तो उनपर समितिका अधिकार बना रहना चाहिए तथा अन्य किसी भी बातको लेकर किसी सबूतकी जरूरत नहीं समझी जानी चाहिए।[2]

मो० क० गांधी

अंग्रेजी प्रति (जी० एन० ३७६९)की फोटो-नकलसे।

१. शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक समिति।

२. साधन-सूत्रमें इसके आगे एक अनुच्छेद है जो जी० एन० ३७६८ का अंश है। देखिए अगला शीर्षक।

१३८. भेंट: एसोसिएटेड प्रेसके प्रतिनिधिसे[1]

पूना
[९ मार्च, १९२४][2]

अकाली शिष्टमण्डलसे मेरी लम्बी और सौजन्यपूर्ण बातचीत हुई। बातचीतके दौरान मैंने उन्हें कई विचाराधीन विषयोंपर अपनी राय दी। जिन विषयोंपर हमारी बातचीत हुई या मैंने उन्हें जो राय दी उन सबको प्रकट कर देनेकी जनता मुझसे आशा न करे। इतना मैं अवश्य कह सकता हूँ कि अकाली मित्रोंने मुझे बताया कि शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक समितिने मेरे पत्रके प्रति उदासीनता नहीं दिखाई है और उन्होंने मुझे विश्वास दिलाया कि वर्तमान परिस्थितियोंमें जितना ध्यान दिया जा सकता था उसने उतना ध्यान दिया है। दुर्भाग्यसे समितिने मेरा पत्र अखबारोंमें इतनी देरसे देखा कि उसने इस विषयमें जो-कुछ किया है उससे अधिक करना सम्भव नहीं है।[3] मेरे मित्रोंने मुझे बताया कि पंजाबमें सामान्यतः यह भ्रम फैला हुआ है कि ननकानाकी दुःखद घटनाके बाद मैंने राय दी थी कि गुरुद्वारा आन्दोलन जबतक स्वराज्य प्राप्त न हो तबतक स्थगित कर दिया जाना चाहिए और मेरे हालके पत्रमें वही राय फिर दुहराई गई है। मुझे यह सुनकर आश्चर्य हुआ है। उक्त राय मैंने कभी व्यक्त नहीं की। इसकी सत्यता उस समयके लेखों और भाषणोंसे अच्छी तरहसे सिद्ध की जा सकती है; मेरे हालके पत्रमें[4] भी यह राय नहीं दी गई थी कि जो शहीदी जत्था रवाना होनेवाला है उसे बिलकुल रोक दिया जाये, बल्कि यह राय दी गई है कि जबतक गैर-सिख मित्रोंसे परामर्श न कर लिया जाये और पूरा आत्मनिरीक्षण और चिन्तन न कर लिया जाये तबतक उसका भेजना स्थगित कर दिया जाये।

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे क्रॉनिकल, ११-३-१९२४

१. गांधीजीने यह वक्तव्य एसोसिएटेड प्रसके प्रतिनिधिको दिया था जो अकालियोंके कार्योंके सम्बन्धमें उनके और सरदार मंगलसिंहके नेतृत्वमें आये हुए शिष्टमण्डलके बीच हफ्ते-भरकी बातचीतका परिणाम जाननेके लिए उनसे मिला था।

२. इस शीर्षकके कुछ हिस्से जी० एन० ३७६८ और जी० एन० ३७६९ में उपलब्ध हैं जहाँ यह तारीख दी हुई है।

३. इसके आगेका भाग ९ मार्चके हस्तलिखित व हस्ताक्षरित मसविदे (जी० एन० ३७६८) में उपलब्ध है।

४. देखिए "खुली चिट्ठी: अकालियोंके नाम", २५-२-१९२४

१३९. तार : कोण्डा वेंकटप्पैयाको

[१० मार्च, १९२४ के पूर्व][1]

हरिजनोंके लिए एक मन्दिर खुलवानेके उद्देश्यसे नेलोरमें श्रीरामुलुका[2] मेरी सलाहसे अनशन। स्वास्थ्य ठीक हो तो स्वयं जायें या किसीको भेजें। जो उचित हो करें। मुझे परस्पर विरोधी तार[3] मिले हैं। पूनाके पतेपर तार दें।

अंग्रेजी प्रति (११७ ए)की फोटो-नकलसे।

१४०. सन्देश : खादी-प्रदर्शनीको[4]

१० मार्च, १९२४

शुद्ध खादीकी प्रदर्शनियां खादीके प्रचारमें बहुत उपयोगी सिद्ध होती हैं, इस सम्बन्धमें अब शंकाका अवकाश नहीं रहा। किन्तु हमें अब भी खादीकी प्रदर्शनियाँ करनी पड़ती हैं यह कैसी विचित्र बात है। यदि कोई हमें देशमें उत्पन्न गेहूँ और बाजरेका प्रचार करनेके लिए उनकी प्रदर्शनी करनेकी बात कहे तो हम उसे मूर्ख मानेंगे। क्या खादीकी उपयोगिता गेहूँ और बाजरेकी अपेक्षा कुछ कम है? यदि हम गेहूँ और बाजरेकी बजाय स्कॉटलैंडकी जई मँगवाकर नहीं खाते तो मैंचेस्टर अथवा जापानसे कपड़ा मँगाकर और पहनकर खादीका अनादर क्यों करते हैं? यह बात प्रत्येक देशभक्त और धर्मभक्तके लिए विचारणीय है। और जबतक हम विदेशी कपड़ेपर निर्भर रहेंगे तबतक हम अवश्य ही विदेशी राज्यके अधीन रहेंगे। मुझे आश्चर्य है कि हम ऐसा सीधा हिसाब छोड़कर पेचीदा हिसाब क्यों करते हैं? जबतक हम हाथकते सूतकी और हाथबुनी खादीको पहननेके सहज और सीधे राजमार्गपर चलना

१. स्पष्ट है कि तार पूनासे १० मार्चके पहले भेजा गया था। गांधीजी उस दिन बम्बई रवाना हुए थे।

२. पोट्टी श्री रामुलु नायडू, साबरमती आश्रमके सदस्य। उन्होंने मूलापेटमें वेणुगोपाल स्वामीके मन्दिरमें हरिजनोंका प्रवेश करानेके लिए ७ मार्चको अपना अनशन शुरू किया था। उन्होंने सन् १९५२ में आन्ध्र-राज्यकी स्थापनाके लिए आमरण अनशन किया।

३. इससे पहले एक अखबारी खबरमें श्रीरामुलुकी हालत कमजोर बताई गई थी और कहा गया था कि मन्दिरके प्रबन्धक न्यासीने उन्हें अपने साथी न्यासियोंसे मन्दिरको हरिजनोंके लिए खोलनेका अनुरोध करनेका आश्वासन देकर अनशन तोड़नेका अनुरोध किया है।

४. यह सन्देश मांडवी, बम्बईमें हुई खादी-प्रदर्शनीके उद्घाटनके बाद कस्तूरबा गांधीने पढ़कर सुनाया था।

नहीं सीखेंगे तबतक हमें खादीकी प्रदर्शनियोंकी व्यवस्था तो करनी ही पड़ेगी। इसलिए मैं मांडवीकी प्रदर्शनीकी पूरी सफलता चाहता हूँ।

[गुजरातीसे]

गुजराती, १६-३-१९२४

१४१. भाषण: पूनाके विदाई समारोहमें[1]

१० मार्च, १९२४

मेरे इस भाषणसे कर्नल मैडॉकके निर्देशकी सादर अवज्ञा होती है। किन्तु यदि मैं यहाँ भाषण न दूं तो यह आपके प्रति अन्याय होगा। सरकारने कर्नल मैडॉकको यरवदा जेलमें मेरी बीमारीकी जाँच करनेके लिए भेजा था; तभी से वे मेरे मित्र बन गये हैं। मैं अपना आपरेशन करानेके लिए तैयार नहीं था; किन्तु कर्नल मैडॉकने मेरे ऊपर ऐसा प्रभाव डाला कि मैं उनपर पूरा विश्वास करनेके लिए बाध्य हो गया। मुझे उनकी कुशलतामें पूरी आस्था है। मैं इतना निष्णात नहीं हूँ कि उन्हें कोई प्रमाणपत्र दूं, किन्तु सच्ची बात यही है। मुझे उनसे यह आशा है कि वे जहाँ भी जायेंगे वहाँ अपने अवकाशका समय मानव-जातिकी सेवामें व्यतीत करेंगे।

अहिंसात्मक असहयोगका अर्थ है सभी मानवोंके प्रति सद्भाव और सहानुभूति। यदि मैं किसी मनुष्यको अपने सम्बन्धमें यह कहते सुनूं कि किसी व्यक्ति विशेषके प्रति मेरा दुर्भाव है तो मुझे उसकी बात सुनकर दुःख होगा और मैं मर जाऊँगा तब भी अपने मनमें उसका दुःख लेकर जाऊँगा। जिन लोगोंने मेरी सहायता की है मैं उन सबका आभार मानता हूँ। आप सबने मुझे स्वदेशी वस्त्र पहननेका विश्वास दिलाया है, इससे मुझे बहुत प्रसन्नता होती है। स्वदेशीका अर्थ किसीके प्रति दुर्भाव रखना कदापि नहीं होता। कर्नल मैडॉक और उनकी पत्नी जहाँ कहीं भी रहें, प्रसन्न रहें और वे दीर्घायु हों, ऐसी मेरी प्रभुसे प्रार्थना है।

[गुजरातीसे]

गुजराती, १६-३-१९२४

१. बी० जे० मेडीकल स्कूलके छात्र, कर्नल मैडॉक और अस्पतालके अन्य कर्मचारी गांधीजो को विदाई देनेके लिए इकट्ठे हुए थे। गांधीजीने उन्हींके सम्मुख यह भाषण दिया था।

१४२. तार: घनश्याम जेठानन्दको[1]

[१० मार्च, १९२४ या उसके पश्चात्]

कृपया स्वर्गीय श्री भुरगीके[2] परिवारके प्रति मेरी ओरसे सादर समवेदना व्यक्त करें। उनकी मृत्युसे भारतका एक सच्चा देशभक्त चला गया।

गांधी

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ८४६६) की फोटो-नकलसे।

१४३. घनश्यामदास बिड़लाको लिखे पत्रका अंश[3]

[११ मार्च, १९२४ के पश्चात्][4]

शरीरको अच्छा करो। तब तो मैं काफी काम ले लुंगा और कुछ दुंगा।

कमसे-कम पन्दरह दिन दूधकी आवश्यकता लगे तो अवश्य पीओ। फल खाओ रोटी नुकसान करेगी। दही अवश्य लेना।

उच्चार तो खराब है लेकिन इसका ख्याल मत करो। हमारी भाषा इंग्रेजी नहि है। फ्रेंचके उच्चार बहोत खराब है उसकी कोई इंग्रेज शिकायत नहि करता है।

मूल पत्र (सी० डब्ल्यू० ५९९१) से।
सौजन्य: घ० दा० बिड़ला

१. घनश्याम जेठानन्दने १० मार्च, १९२४ को जयरामदास दौलतरामके नाम तार द्वारा भुरगीके निधनकी सूचना दी थी।

२. सिन्धके एक प्रसिद्ध राष्ट्रवादी मुसलमान नेता गुलाम मुहम्मद भुरगी।

३. घनश्यामदास बिड़ला, प्रसिद्ध उद्योगपति जिन्होंने गांधीजी की समाज-कल्याण सम्बन्धी योजनाओंमें समय-समयपर आर्थिक सहायता दी।

४. इस पत्रकी सही तारीख ज्ञात नहीं है। यह पत्रांश जिस क्रममें मिला है उसके आधारपर माना जा सकता है कि यह जुहूसे लिखा गया होगा।

१४४. भेंट: 'स्टेंड्स रिव्यू'के प्रतिनिधिसे

[११ मार्च, १९२४के पश्चात्][1]

गांधी एक नारंगी खा रहे थे और उनके पास ही उनकी सेवाके लिए एक भारतीय नर्स उपस्थित थी। मैंने उनसे अनुरोध किया कि बातचीतके लिए इसकी जरूरत नहीं है कि वे अपना खाना रोक दें। लोगोंका आना-जाना लगातार जारी था किन्तु यह सब बिलकुल चुपचाप हो रहा था। ये गांधी-भक्त भारतीय अपने पूज्य नेताको देखनेके लिए काफी असुविधा और खर्च उठाकर दूर-दूरसे यहाँ अन्धेरी आये थे। वे प्रणाम करते थे और चले जाते थे। कुछ लोग दूर खड़े होकर ध्यानपूर्वक हमारी बातचीतका एक-एक शब्द सुन रहे थे। उनकी आँखोंकी चमकसे प्रकट होता था कि वे अपने नेताकी हरएक बातसे पूरी तरह सहमत हैं। हालाँकि श्रोताओंकी संख्या बढ़कर ५० तक पहुँच गई थी किन्तु हमारी बातचीतमें इससे कोई बाधा नहीं पड़ी। इस बीचमें किसीने खाँसा तक नहीं। भारतीय स्वभावसे वाचाल होता है। उनकी यह शान्ति इस बातका प्रमाण थी कि अपने पूज्य नेताकी उपस्थितिमें उसके प्रति अपने आदर-भावके कारण वे कितने शान्त रहते हैं।

मैंने कहा, "श्री गांधी, मैं आपसे दस सवाल पूछूंगा। आप अपनी इच्छाके अनुसार जिनका उत्तर देना चाहें दें और न देना चाहें तो न दें। मेरा पहला प्रश्न यह है कि आप अपने प्रचारमें सूत कातनेपर इतना जोर क्यों देते हैं? क्या इसका कारण यह है कि आप मानते हैं कि भारतकी आर्थिक पराधीनता उसकी राजनीतिक पराधीनताको मजबूत बनाती है?" गांधीने एकदम कहा:

बिलकुल यही बात है। जब भारतीय अपनी कपास खुद कातते और बुनते थे तब वे खुशहाल थे और सुखी थे। जिस दिनसे उन्होंने अपनी कपास लंकाशायरको बेचनी और लंकाशायरसे कपड़ा खरीदना शुरू किया उसी दिनसे वे लगातार गरीब और बेकार होते गये। आज यह हालत है कि भारतीय जनताका ८५ प्रतिशत सालमें चार महीने बेकारीमें बिताता है। इस विदेशी कपड़ेने हमारे देशको बेकारों और भिखारियोंका देश बना दिया है। चरखा गाँवोंको न केवल उनकी समृद्धि देगा बल्कि उनमें आशा और स्वाभिमानकी भावनाका संचार भी करेगा। पिछले पचास वर्षोंसे भारतीय जनता लगातार निराश होती चली आई है। चरखा उनके लिए उस नये जीवनका प्रतीक है जो निराशाके इस अन्धकारसे उनका उद्धार करेगा।

आपके देशकी जनताको प्राथमिक शिक्षाकी बहुत ज्यादा आवश्यकता है। लेकिन आप तो कताईको उससे भी ज्यादा महत्त्व देते हैं?

१. इस भेंटकी ठीक तारीख उपलब्ध नहीं है। भेंट जुहूमें हुई थी जहाँ गांधीजी आपरेशनके बाद स्वास्थ्य-लाभके लिए विश्राम कर रहे थे। गांधीजी जुहू ११ मार्च, १९२४को पहुँचे थे।

मैं अपने देशको भुखमरीसे बचानेके लिए तबतक क्यों ठहरूँ जबतक कि यूरोपीय अर्थमें उन्हें शिक्षा देनेकी व्यवस्था नहीं हो जाती। क्या आप जानते हैं कि हमारी पैंतीस करोड़की आबादीका कमसे-कम एक तिहाई आधा-पेट खाकर अपने दिन गुजारता है। उन्हें शिक्षासे पहले रोटी चाहिए। इसके सिवा यह सवाल भी तो है कि पश्चिमी शिक्षासे भारतीयोंका सचमुच कोई लाभ होगा या नहीं। भूतकालमें हम इस शिक्षाके बिना भी सुखी और समृद्ध थे। किन्तु आज हम अंग्रेजी सभ्यताके इन सारे वरदानोंके बीच, जिनका उन्हें बड़ा अभिमान है, गरीब और दुर्दशाग्रस्त हैं। नहीं, शिक्षाके अभावके कारण मुझे अपना चरखेका सन्देश उन तक पहुँचानेमें कोई कठिनाई महसूस नहीं होती। हमारे अशिक्षित ग्रामीण चरखेका स्वागत ऐसे उत्साहसे करते हैं मानो वह स्वर्गसे आई आशाकी किरण हो। हमारे विचारके प्रसारमें जो चीज बाधक है, वह शिक्षाका अभाव नहीं, चरखेकी तालीम पाये हुए शिक्षकोंकी कमी है।

मैंने श्री गांधीसे पूछा: क्या आप समझते हैं कि भारतीय जनता होमरूलके लिए तैयार है?

स्वराज्यके अन्तर्गत होमरूलका मैं जो अर्थ करता हूँ, उसके लिए तो वह निश्चय ही तैयार है। लेकिन स्वराज्य हमें कोई "दे" नहीं सकता, अंग्रेज लोग भी नहीं दे सकते। स्वराज्य तो हम अपने-आपको खुद ही दे सकते हैं। आस्ट्रेलिया या कैनेडाके संविधानके ढंगका होमरूल हमारा स्वराज्य नहीं है; अलबत्ता, हमारी मौजूदा गुलामीकी दशासे वह बहुत बेहतर होगा। यदि ब्रिटेन हमें पूर्ण स्वतन्त्रता नहीं देना चाहता तो मैं होमरूलका ही स्वागत करूँगा और इसे स्वीकार करूँगा। भारत उस आधारपर ब्रिटिश राष्ट्र-मण्डलमें प्रवेश करनेकी योग्यता अवश्य रखता है।

भारतकी मौजूदा राजनैतिक व्यवस्थाके समर्थकोंकी इस मान्यताका आपके पास क्या जवाब है कि जातियों और धर्मों आदिके ऐसे मतभेदोंके कारण जिन्हें दूर करना किसी भी प्रकार सम्भव नहीं है, भारत अपना शासन आप चलानेमें सफल नहीं हो सकता?

गांधीजी मुस्कराये और बोले:

बेशक हमारे यहाँ भेद तो हैं। किसी भी राष्ट्रमें ऐसे भेद होते ही हैं। ब्रिटेनके संयुक्त राज्यका जन्म भी गुलाबोंके युद्धों (वार्स ऑफ रोज़ेज) के भीतरसे ही हुआ था। शायद हम लोग भी आपसमें लड़ेंगे। किन्तु एक दूसरेका सिर फोड़नेके इस खेलसे जब हम ऊब जायेंगे तब हमें इस सत्यका दर्शन अवश्य होगा कि प्रजातियों और धार्मिक भेदोंके बावजूद हम भी उसी प्रकार मिलकर रह सकते हैं जिस प्रकार इंग्लैंडमें स्काटलैंड और वेल्सके निवासी रह रहे हैं। जब लोगोंमें जागृति आयेगी, पराधीनताके जुएसे जब उनका उद्धार हो जायेगा तब इस देशमें प्रचलित वे सारी बुराइयाँ, जिन्हें कि हम स्वीकार करते हैं, दूर हो जायेंगी; यहाँतक कि अस्पृश्यताकी वह विघातक कुप्रथा भी दूर हो जायेगी।

क्या होमरूल मिलनेपर आप भारतीय जनताको सार्वजनिक मताधिकार देंगे?

लगभग ऐसा ही होगा। मेरा मतलब यह है कि मताधिकारके इच्छुक हरएक नागरिकको मताधिकार दिया जायेगा। मेरी रायमें जबतक मतदान अनिवार्य नहीं किया

जाता तबतक मतदानके योग्य नागरिकोंके अनिवार्य पंजीकरणका कोई उपयोग नहीं है। और जिन लोगोंको मतदानके लिए कह-सुनकर ले जाना पड़े, उनके मतोंका मूल्य सन्दिग्ध ही कहा जायेगा। इसलिए मेरा विचार यह है कि देशमें जहाँ-तहाँ लोगोंके नाम पंजीकृत करनेके लिए कुछ केन्द्र खोल दिये जायें जहाँ कि मताधिकारके इच्छुक लोग कुछ मामूली शुल्क देकर अपना नाम दर्ज करा सकें। यह शुल्क इतना ही होना चाहिए जितनेसे कि मतदान-संग्रहके लिए की जानेवाली व्यवस्था स्वावलम्बी हो जाये। मेरा विश्वास है कि इस तरह हम किसी भी सवालपर जनताकी रायका पता लगा सकेंगे।

क्या भारत-जैसे देशमें इस बातका डर नहीं है कि ब्रिटिश शासनके अंकुशसे मुक्त होनेपर बंगालियों, ब्राह्मणों आदिका अल्पसंख्यक बुद्धि-प्रधान वर्ग सरकारकी बाग-डोर हथिया लेगा और उससे अपना स्वार्थ साधेगा तथा अपने अज्ञानी देशभाइयोंको और भी बदतर गुलामीकी हालतमें ढकेल देगा? आप तो जानते ही हैं कि भारतके इतिहासमें ऐसी घटनाओंका होना अज्ञात नहीं है।

किन्तु आप ऐसा क्यों सोचते हैं कि वैसा आज भी हो सकता है? जनतापर गुलामी लाद सकनेके लिए इन सत्ताधारियोंके पास कौन-सी शक्ति होगी? उनके पास कोई सेना तो होगी नहीं। इस समय अंग्रेज जिस दुर्भेद्य स्थितिमें हैं, ऐसी दुर्भेद्यताका कोई भी साधन उनके पास नहीं होगा। मैं तो यह मानता हूँ कि यदि भारतीयोंके किसी वर्गने जनतापर गुलामी लादनेकी कोशिश की तो जनता उसके टुकड़े-टुकड़े कर देगी।

श्री गांधी, स्वराज्यकी प्राप्तिके लिए कताईके सिवाय आप अपने देशभाइयोंसे और क्या करनेको कहते हैं?

हमें सबसे पहले उन विदेशियोंके सहानुभूति-शून्य आधिपत्यको समाप्त करना है जो यहाँ केवल हमारा धन लूटनेके लालचसे आते हैं। व्यक्तियोंके रूपमें अंग्रेजोंके खिलाफ मुझे कोई शिकायत नहीं है। कोई भी विदेशी सत्ता हमारे साथ अच्छेसे-अच्छा जैसा व्यवहार करती, वे भी शायद उतना ही अच्छा व्यवहार करते हैं। बेशक, हरएक विदेशी शासनसे लोगोंको कुछ छोटी-मोटी परेशानियाँ तो होती ही हैं और ऐसी परेशानियाँ अंग्रेजी शासनसे भी होती हैं। किन्तु अंग्रेजोंके खिलाफ हमारी सबसे बड़ी शिकायत यह है कि उन्होंने भारतको लगातार अधिकाधिक गरीब बनाया है। यदि भारतमें रहनेवाले अंग्रेज इस देशके वैसे ही वफादार और उपयोगी नागरिक बन जायें जैसे कि वे आस्ट्रेलिया या दक्षिण आफ्रिकामें बन गये हैं तो मैं अपने भाइयोंकी तरह उनका स्वागत करूँगा। लेकिन वे तो यहाँ केवल इस देशकी जनताका शोषण करनेके लिए, इस भूमिकी धन-सम्पत्तिका अपहरण करनेके लिए ही आते हैं। सौ वर्षव्यापी इस अविरत शोषणके बाद अब हमारी शक्ति निःशेषप्रायः हो गई है। अब या तो हमें इस शोषणको एकदम बन्द करना चाहिए या फिर हमारी अतीतकालीन महानताके और हमारी संस्कृतिके अवशिष्ट चिह्न भी लुप्त हो जायेंगे। यही कारण है कि मैं उनसे चले जानेको कहता हूँ। मुझे निश्चय है कि असहयोगके द्वारा हिंसाका आश्रय लिये बिना ही, हम उन्हें यहाँसे चले जानेके लिए बाध्य कर सकते हैं। अंग्रेज शासक कानून बना सकते हैं किन्तु

वे हमें उनका पालन करनेके लिए विवश नहीं कर सकते। वे कर लगा सकते हैं किन्तु उन करोंको चुकानेके लिए वे चन्द लोगोंको ही बाध्य कर सकते हैं। असहयोग और अहिंसा बन्दूकोंसे कहीं अधिक शक्तिशाली हथियार हैं।

फिर भी बन्दूकोंका अपना उपयोग तो है ही। श्री गांधी, आपके पास बन्दूकें नहीं हैं, इसलिए आप उनकी कीमत कम आंक सकते हैं। यदि आपके पास हथियार होते तो क्या अंग्रेजोंको इस देशसे निकालनेके लिए आप उनका उपयोग उचित मानते?

मुझे तो इसकी कल्पना ही अशुभ मालूम होती है। पिछले महायुद्धमें यूरोपके छोटे-छोटे राष्ट्रोंने जो नर-संहार और विनाश किया उसकी बात सोचिए और फिर कल्पना कीजिए कि ३० करोड़ भारतीय यदि हथियार उठा लें तो उसके कितने भयंकर परिणाम होंगे। इसके सिवा, बलके प्रयोगसे तो कभी कोई समस्या हल नहीं होती। बलके प्रयोगसे यूरोपमें जो समझौता हुआ है उससे उत्पन्न उसकी वर्तमान दुरवस्थाका विचार कीजिए। हमें अपने अत्याचारियोंके खिलाफ भी बलका प्रयोग नहीं करना चाहिए; किन्तु अपने ऊपर अत्याचार करनेमें उन्हें सहायता देनेसे इनकार कर देना हमारा कर्त्तव्य है। यही कारण है कि जबतक अंग्रेज लोग हमारे साथ सहयोग करनेको राजी नहीं हो जाते तबतक हमें उनके साथ सहयोग नहीं करना चाहिए।

श्री गांधी, आपने तो काफी पढ़ा है और दुनिया भी घूमी है; आपको यह तो स्वीकार करना ही चाहिए कि यदि यहां अंग्रेजोंका नहीं, किसी अन्य देशका शासन होता तो भारतको ज्यादा बुरा व्यवहार सहना पड़ता और यह कि इंग्लैंडने नाराज होनेके अनेक अवसरोंके बावजूद काफी धीरज और संयमसे काम लिया है। आप अंग्रेजोंसे और क्या करनेकी आशा रखते हैं?

हमारी सारी मांगोंको संक्षेपमें एक शब्दमें व्यक्त किया जा सकता है — यहांसे चले जाइए। और यदि आप अब भी यहांसे पूरी तरह चले जानेके लिए तैयार न हों तो हमें कमसे-कम स्वशासनकी उतनी सत्ता तो दीजिए जितनी आपके स्वशासी उपनिवेशोंको प्राप्त है। हममें इतनी समझ तो है कि जहां रोटीका टुकड़ा भी न मिल रहा हो वहां आधी लेनेके लिए ही प्रस्तुत हो जायें। किन्तु यदि हमें ब्रिटिश राष्ट्र-परिवारमें शामिल होना है तो हम चाहते हैं कि हमारी बात न केवल हमारे आन्तरिक मामलोंकी व्यवस्थामें चलनी चाहिए बल्कि हमारी जनसंख्याके प्रमाणमें वह सारे साम्राज्यके मामलोंके सम्बन्धमें भी सुनी जानी चाहिए। दूसरे शब्दोंमें, हम उस हालतमें यह आशा करेंगे कि साम्राज्यके हितोंका केन्द्र, साम्राज्यके सबसे अधिक आबादीवाले अंगकी हैसियतसे तब भारत ही होगा। साम्राज्यके जिस सदस्यको यह परिवर्तन नापसन्द हो उसके पास तब इस परिस्थितिका यही इलाज होगा कि वह ब्रिटिश राष्ट्रोंके इस परिवारसे निकल जाये।

दुनियाका प्रचुर अनुभव रखनेवाले आदमीके नाते आप यह तो जानते ही हैं कि महज आपके कहनेसे तो अंग्रेज लोग भारतमें अपने उन बृहत् आर्थिक और राजनीतिक हितोंका त्याग शायद ही करेंगे जिनके निर्माणमें उन्होंने इतना परिश्रम और बलिदान किया है। अतः आप यह बताइए कि अपने इन उद्देश्योंकी व्यावहारिक पूर्तिकी आपके

मनमें क्या तसवीर है? क्या आपका यह खयाल है कि आपके अपने प्रयत्न या बाहरी दबावसे अन्तमें आपको मुक्तिकी प्राप्ति हो जायेगी?

हमारे अपने प्रयत्न किसी भी विदेशी शासनको खत्म करनेके लिए काफी हैं और मुझे निश्चय है कि वे उसे खत्म करेंगे। यदि मेरे सभी देशवासी असहयोग और अहिंसाका मर्म समझ लें और उसपर आचरण करें तो हमें कल ही स्वराज्य मिल जाये। तब वह मानो हमारी गोदमें आकाशसे अनायास आ टपकेगा। लेकिन भारतवासी भी दूसरे मनुष्योंकी तरह दुर्बल हैं, अतः हमें प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। किन्तु हमारा सन्देश देशके सुदूरवर्त्ती गाँवोंमें भी पहुँच रहा है और लोग उसे समझ रहे हैं और वहाँ उन मिट्टीकी झोंपड़ियोंमें गुनगुनानेवाला हरएक चरखा हमें अपनी अनिवार्य मुक्तिकी दिशामें आगे लिये जा रहा है।

एक सवाल और करता हूँ: आस्ट्रेलियाने वहाँ एशियाइयोंके प्रवेशपर व्यवहारतः जो रोक लगा रखी है उसके बारेमें आपका क्या विचार है?

मैं वैसे आस्ट्रेलियाका प्रशंसक हूँ लेकिन उसकी यह अदूरदर्शितापूर्ण नीति मेरी समझमें नहीं आई। वह आर्थिक, नैतिक और राजनीतिक सभी दृष्टियोंसे अवांछनीय है। लेकिन मुझे स्वीकार करना चाहिए कि मैंने आस्ट्रेलियाकी समस्याओंका विशेष अध्ययन नहीं किया है। मैं भारतकी समस्याओंको लेकर इतना व्यस्त रहता हूँ कि दूसरी बातोंके लिए समय ही नहीं रहता। इसलिए इस विषयपर, जिसका मैंने अध्ययन नहीं किया है, अपना यह वैयक्तिक और अनधिकृत मत प्रकट करनेसे ज्यादा मैं कुछ नहीं कहना चाहता।

[अंग्रेजीसे]

सर्चलाइट, २७-६-१९२४

१४५. पत्र: श्रीमती मैडॉकको

पोस्ट अन्धेरी
१४ मार्च, १९२४

प्रिय श्रीमती मैडॉक[1],

मैं अपने वादेके अनुसार अपनी प्रवृत्तियोंका संक्षिप्त व्योरा यहाँ दे रहा हूँ:

(१) हिन्दुओंमें से अस्पृश्यताके अभिशापको निकालना।

(२) हाथ-कताई और हाथ-बुनाईका प्रचार और हाथके कते और बुने कपड़ेके प्रयोगकी और समस्त विदेशी वस्त्रोंके और भारतीय मिलोंमें बुने हुए कपड़ेके बहिष्कारकी भी वकालत करना।

१. कर्नल सी० मैडॉककी पत्नी।

(३) सादा जीवनकी और इसलिए उत्तेजक पेयों और दवाओंके त्यागकी हिमायत करना।

(४) सरकारी मददके बिना चलनेवाले राष्ट्रीय स्कूलोंकी स्थापना। इसका उद्देश्य असहयोग आन्दोलनके एक अंगके रूपमें विद्यार्थियोंको सरकारी संस्थाओंसे हटाने और राष्ट्रीय समस्याओंके अनुरूप ऐसी शिक्षाका श्रीगणेश करना है जिसमें औद्योगिक प्रशिक्षण शामिल हो।

(५) हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, पारसी और यहूदियों आदिमें एकता स्थापित करना।

मैं इन प्रवृत्तियोंको दो संस्थाओंके माध्यमसे चलाता हूँ। पहली संस्था अहमदाबादके समीप एक आश्रम है जिसकी स्थापना १९१६[1] में की गई थी। यहाँ उन सभी लोगोंको शरीक होनेके लिए आमन्त्रित किया जाता है जो इन आदर्शोंको अमलमें लाना चाहते हों। उनका खर्च ऊपर बताई गई प्रवृत्तियोंमें दिलचस्पी रखनेवाले धनाढ्य मित्रोंके व्यक्तिगत दानसे पूरा किया जाता है। इस समय उसमें स्त्री-पुरुष दोनों मिलाकर लगभग १०० सदस्य हैं। इनमें कई तथाकथित अछूत परिवार भी शामिल हैं। वहाँ आश्रमसे सम्बद्ध धुनने, कातने और बुननेका स्कूल और सामान्य पुस्तकीय ज्ञान देनेवाला स्कूल है। वहाँ साधारण कृषि-कार्य भी किया जाता है; उसमें अपने उपयोगके लायक कपास स्वयं उपजानेकी कोशिश की जा रही है।

दूसरी संस्था राष्ट्रीय कांग्रेस है। यह एक विशाल राजनैतिक संस्था है जिसका संविधान बहुत ही सीधा-सादा, किन्तु मेरी रायमें परिपूर्ण है। ऊपर जो कार्यक्रम मैंने लिखा है इसने उसे लगभग पूरा ही अपना लिया है। भारतके हर हिस्सेमें इसकी शाखाएँ हैं और हजारों लोग इसके सदस्य हैं। ये लोग प्रतिवर्ष अपने प्रतिनिधि चुनते हैं। चार आने चन्दा देनेसे और कांग्रेसके सिद्धान्तोंको स्वीकार करनेसे कोई भी वयस्क स्त्री-पुरुष कांग्रेसकी सदस्यताका और प्रतिनिधियोंके चुनावमें मत देनेका अधिकारी हो जाता है। स्वभावतः कांग्रेसका कार्यक्रम ऊपर बताई गई प्रवृत्तियोंसे अधिक है और चूँकि कांग्रेस एक प्रतिनिधि संस्था है, इसलिए उसका कार्यक्रम लचीला है; वह स्थायी नहीं है, कांग्रेस उसे साल-दर-साल बदल सकती है। उसका उद्देश्य शान्तिपूर्ण और वैध उपायों द्वारा स्वराज्य अर्थात् स्वायत्त-शासन प्राप्त करना है। पिछले चार वर्षोंसे वह सरकारसे अहिंसात्मक असहयोग करके अपना लक्ष्य प्राप्त करनेकी कोशिश कर रही है।

मेरा अपना विचार यह है कि मैं भारतीय अर्थात् प्राचीन संस्कृतिको आधुनिक अर्थात् पश्चिमी सभ्यताके, जो भारतपर थोपी जा रही है, प्रहारसे नष्ट होनेसे बचानेका प्रयत्न करूँ और उसमें अपनी पूरी शक्ति लगा दूँ। प्राचीन संस्कृतिका सार पूर्ण अहिंसाके आचरणमें आ जाता है। इसका प्रेरक सूत्र सबकी, जिसमें समस्त जीव आ जाते हैं, भलाई करना है, जब कि पश्चिमी संस्कृति डंकेकी चोट हिंसापर आधारित

१. यह उल्लेख अहमदाबादके पास स्थित कोचरब सत्याग्रह आश्रमका है जिसकी स्थापना २० मई, १९१५ को की गई थी, न कि १९१६ में; जो १९१७ में प्लेग शुरू होनेपर साबरमती ले जाया गया।

है। इसलिए उसमें सभी प्राणियोंका खयाल नहीं रखा जाता और उसमें प्रगति करते हुए मानव-जीवनका बड़े पैमानेपर विनाश करनेमें भी संकोच नहीं किया गया है। उसका सिद्धान्त जिसकी लाठी उसकी भैंस है। वह संस्कृति तत्त्वतः व्यक्तिवादी है। इसका यह अर्थ नहीं कि भारतीयोंको पश्चिमसे कुछ भी सीखनेको नहीं रहता, क्योंकि यद्यपि पश्चिममें जिसकी लाठी उसकी भैंसके सिद्धान्तको स्वीकार कर लिया गया है, फिर भी वहाँ मानवीयताका सर्वथा लोप नहीं हुआ है। एक झूठे आदर्शको सही मानकर उसका अन्धाधुन्ध अनुसरण करते रहनेसे पश्चिममें अनेक लोगोंकी आँखें खुल गई हैं और उन्होंने यह समझ लिया है कि उनका वह आदर्श मिथ्या है। मैं यह चाहता हूँ कि भारत प्राचीन परम्पराको आँख बन्द करके मानते चले जानेकी बजाय इस तरहकी लगनका सत्यकी खोजके हितार्थ अनुकरण करे। लेकिन भारत जबतक स्वतन्त्र नहीं हो जाता और जबतक यह नहीं समझ लेता कि विश्वमें उसकी संस्कृतिका स्थान बहुत महत्त्वपूर्ण है, और चाहे कुछ भी हो जाये उसे उसकी रक्षा अवश्य करनी है तबतक बिना किसी हानिकी आशंकाके वह ऐसे अनुकरणमें भी नहीं पड़ सकता। भारतमें अंग्रेजों द्वारा पश्चिमी सभ्यताके लाये जानेका परिणाम हुआ है — ब्रिटेनके तथाकथित लाभके लिए भारतकी सम्पत्तिकी लूट। इससे हजारों लोग भुखमरीकी दशामें पहुँच गये हैं और एक राष्ट्रका-राष्ट्र लगभग पुंसत्व खो बैठा है।

पूर्वोक्त कार्यक्रम आसन्न विनाशको पश्चिमी तरीकोंसे नहीं, वरन् भारतीय तरीकोंसे अर्थात् बिलकुल नीचेसे आन्तरिक सुधार और आत्मशुद्धि करके रोकनेका एक प्रयत्न है। अस्पृश्यताके अभिशापको दूर करना उस पापका प्रायश्चित्त करना है जो हिन्दुओंने अपने ही धर्मके लोगोंके पाँचवें हिस्सेको हीन बनाकर किया है। उत्तेजक पेयों और द्रव्योंके अभिशापको मिटानेसे न केवल राष्ट्र शुद्ध होता है, वरन् यह एक अनैतिक शासन प्रणालीको लगभग २५ करोड़ रुपये देनेवाले राजस्वके एक अनैतिक साधनसे वंचित करता है। हाथ-कताई और बुनाईके पुनरुद्धारसे भारतकी हजारों झोपड़ियोंमें फिर एक पूरक उद्योग स्थान पा जायेगा, और प्राचीन भारतीय कलाका पुनरुत्थान होगा, पतनकारी दरिद्रता दूर होगी और अकालकी सम्भावनासे अपने-आप निश्चिन्तता प्राप्त हो जायेगी। साथ ही इससे ब्रिटेन भारतीयोंके शोषणके सबसे प्रबल प्रलोभनसे मुक्त हो जायेगा, क्योंकि यदि भारत विदेशी वस्त्र और विदेशी मशीनोंका आयात किये बिना अपना काम चला सके तो उसके और ब्रिटेनके बीचके सम्बन्ध स्वाभाविक और लगभग आदर्श बन जायेंगे। तब वे स्वेच्छापूर्ण साझेदारी-का रूप ले लेंगे। जिसका परिणाम पारस्परिक और मोटे तौरपर समस्त मानव-जातिका लाभ होगा। भारतके विभिन्न धर्मावलम्बियोंमें एकता होनेसे ब्रिटेन फूट डालकर शासन करनेकी अनैतिक नीतिपर आचरण करनेसे बाज आयेगा और यदि शोषण और पतनका प्रतिरोध करनेमें सफलता मिल जायेगी तो सम्भव है इस उदाहरणका संसारमें अनुकरण होने लगे।

इस कार्यक्रमपर अमल करनेमें निस्सन्देह त्रुटियाँ हुई हैं और हमारे अनुमान गलत साबित हुए हैं। खेदजनक घटनाएँ भी हुई हैं, लेकिन मैं दृढ़तापूर्वक कहता हूँ कि

अबतक कोई भी आन्दोलन ऐसा नहीं हुआ जिसमें करोड़ों लोगोंने भाग लिया हो और फिर भी इतनी कम खून-खराबी या जनताके सर्व-साधारण जीवनक्रममें इतनी कम बाधा पड़ी हो।[1]

मैं नहीं जानता कि आप जो-कुछ चाहती थीं वह मैं लिख पाया हूँ या नहीं। मैंने सब बातें यथासम्भव संक्षिप्त रूपमें देनेकी कोशिश की है।

कृपया कर्नल मैडॉकको बतायें कि मैंने अस्पतालसे दुःखी मनसे विदा ली थी। उन्होंने मेरी जो प्रेमपूर्ण देखभाल और सेवा की उसे मैं हमेशा याद रखूंगा। उन्होंने मुझे जो चित्र उपहारमें दिया है वह मुझे पसन्द है। मेरी हार्दिक कामना है कि आपकी समुद्र-यात्रा और देशमें आपका निवास सुखद हो। जब भी आपको ध्यान आ जाये और लिखनेका समय हो तो मैं आपकी या आपके पतिकी लिखी एकाध पंक्तिको भी बहुमूल्य मानूंगा। मैं जिस जगह रखा गया हूँ वह बहुत ही सुन्दर है। समुद्र मेरे सामने लहरा रहा है। बँगलेके चारों ओर नारियलके पेड़ हैं। रातको मौसम बहुत ठंडा रहता है और बहुधा सारे दिन हलकी ठंडी हवा बहती रहती है। श्री एन्ड्रयूज और मैं जुहू के सुरम्य रेतीले किनारेपर लगभग आध घंटा टहलने जाते हैं। मेरा खयाल है कि मेरी कमजोरी रोज-ब-रोज कम होती चली जायेगी।

समादरपूर्वक,

हृदयसे आपका,

[पुनश्च :]

मेरा स्थायी पता साबरमती, अहमदाबाद है।

श्रीमती मैडॉक
पूना

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ८४८८) की फोटो-नकलसे।

१४६. वक्तव्य : पोट्टी श्रीरामुलुके अनशनपर

बम्बई
१५ मार्च, १९२४

श्री श्रीरामुलु एक अपरिचित और गरीब कांग्रेसी हैं, जो मानव-जातिके सेवक हैं और नेलौरमें काम कर रहे हैं। वे उस स्थानके हरिजनोंके लिए अकेले ही उद्योग करते रहे हैं। एक समय था जब नेलौरसे अस्पृश्यता-निवारण तथा अन्य प्रकारके सामाजिक कार्यके सम्बन्धमें बड़ी आशा रखी जाती थी। नेलौरके पास एक आश्रम बनाया गया

१. सी० एफ० एन्ड्रयूजने इस पत्रका यह अंश अपने इस वक्तव्यके साथ २४ अप्रैल, १९२४ के **मैनचेस्टर गार्जियन**में भेजा था कि इंग्लैंडमें अभी इस सत्यको नहीं समझा गया है कि श्री गांधीका उद्देश्य केवल संशोधित कौंसिलोंमें प्रवेशसे इनकार करना नहीं, वरन् कहीं ज्यादा बुनियादी क्रान्ति करना है।

था; परन्तु विभिन्न कारणोंसे कार्यकी गति रुक गई। यद्यपि वे बहुत वृद्ध हो गये हैं, फिर भी देशभक्त कोंडा वेंकटप्पैया इन कार्योंके प्राण थे और अब भी हैं; इसी जगह श्री श्रीरामुलु चुपचाप अध्यवसायपूर्वक अस्पृश्यताके मूलोच्छेदके लिए काम कर रहे हैं।

वे हरिजनोंके लिए एक मन्दिर खुलवानेकी कोशिश कर रहे हैं। उन्होंने कुछ दिन पूर्व मुझसे पूछा था कि इस मन्दिरको खुलवानेके पक्षमें लोकमत जगानेके लिए यदि अन्य सब प्रयत्न व्यर्थ हो जायें तो क्या वे अनशन कर सकते हैं और मैंने इसपर उन्हें अपनी सहमति भेज दी थी।

अब वहाँ हलचल मची हुई है। परन्तु कुछ लोगोंने मुझसे कहा है कि मैं श्री श्रीरामुलुसे अपना अनशन मुल्तवी करनेके लिए कहूँ ताकि इस विषयकी कानूनी कठिनाइयाँ दूर की जा सकें; मुझे कानूनी कठिनाइयोंके बारेमें कुछ मालूम नहीं। मैं उन्हें यह राय नहीं दे पाया हूँ।

चूँकि मैं चाहता हूँ कि आडम्बरसे दूर रहकर मानव-जातिकी सेवा करनेवाला एक व्यक्ति जनताकी जानकारी और समर्थनके अभावमें मर न जाये, इसलिए यदि समस्त भारतके नहीं तो दक्षिणके पत्रकारोंके हितकी दृष्टिसे जरूरी है कि वे मामलेकी सचाईका पता लगायें और मैं जो-कुछ कहता हूँ, यदि वह तथ्योंसे प्रमाणित हो जाये, तो उसे जनताके सामने प्रकट करके विरोधी पक्षको शर्मिन्दा करें ताकि वह उचित कदम उठायें और इस कार्यकर्त्ताके अमूल्य प्राणोंकी रक्षा हो।

अंग्रेजी प्रति (११७ ए) की फोटो-नकलसे।

१४७. पत्र: इर्विन बैंकटेको

पोस्ट अन्धेरी
१५ मार्च, १९२४

प्रिय मित्र,

आपका ८ फरवरीका पत्र[1] पाकर सचमच बड़ी खुशी हुई।

यह सोचकर मुझे खुशी होती है कि मैं अपने देशमें जो एक मामूली-सा काम कर रहा हूँ उसे यूरोपके लोग और खासकर वे लोग समझते और सराहते हैं जो मेरे ही देशवासियोंकी भाँति अत्याचार सह रहे हैं . . . यद्यपि मेरा कार्य-क्षेत्र भारततक ही

१. इर्विन बैंकटेके गांधीजीको लिखे इस पत्रका आशय था कि भारतसे दूर दूसरे देशोंके लोग भी उनके कार्यमें विश्वास रखते हैं। गांधीजी मानव-समाजके लिए जो-कुछ कर रहे हैं, यद्यपि यूरोप और अमेरिकाके लोगोंको उसकी स्पष्ट अनुभूति नहीं हो रही है, फिर भी अब सारा संसार उनके माध्यमसे भारतके इस सन्देशको सुनने लगा है। उन्होंने यह भी लिखा था कि वे वर्षोंसे भारतीय धर्म और दर्शनका अध्ययन कर रहे हैं और रवीन्द्रनाथ ठाकुरके इस कथनसे सहमत हैं कि हमारे युगकी सबसे बड़ी घटना पूव और पश्चिमका मिलन है। सत्य एक और अविच्छिन्न है। उपनिषद्, बुद्ध या ईसाके सत्य अलग-अलग नहीं हो सकते और गांधीजी समस्त सत्योंके समन्वयकी साकार मूर्ति हैं। (एस० एन० ८३०३)

सीमित है, तथापि मैं आपके इस विचारसे सहमत हूँ कि भारतमें अहिंसाके सिद्धान्तपर आधारित जो साधन अपनाये जा रहे हैं वे समान परिस्थितियोंमें समूचे संसारके लिए व्यवहार्य हैं और यदि हम अहिंसक उपायोंसे सच्ची स्वतन्त्रता प्राप्त करके दिखा दें तो शेष संसारको जीवनके प्रत्येक क्षेत्रमें अहिंसाकी अपराजेयतापर विश्वास करनेमें कोई कठिनाई नहीं होगी।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

श्री इर्विन वैंकटे
बुडापेस्ट (हंगरी)

अंग्रेजी पत्र (जी० एन० २८३१) की फोटो-नकल तथा एस० एन० ८४९३ से।

१४८. पत्र : ए० ए० वॉयसेको

पोस्ट अन्धेरी
१५ मार्च, १९२४

प्रिय श्री वॉयसे,

आपके १४ फरवरीके पत्रके लिए धन्यवाद।

आपको यह जानकर खुशी होगी कि घाव पूरी तरहसे भर गया है, और मैं अब समुद्रके किनारे एक विश्रामगृहमें स्वास्थ्य-लाभ कर रहा हूँ। आपने जो पत्र[1] लिखनेका वायदा किया है मैं उसकी प्रतीक्षा करूँगा। अगर आप मेरे इस पत्रके प्राप्त होनेके बाद पत्र लिखें तो बेहतर होगा कि आप उसे मेरे स्थायी पते अर्थात् साबरमती, अहमदाबादके पतेपर भेजें।

आपके अनुग्रहपूर्ण विचारोंके लिए साभार,

हृदयसे आपका,

श्री ए० ए० वॉयसे
सेंट इसीडोर
प्रेस नाइस (फ्रान्स)

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ८४९४) की फोटो-नकलसे।

१. इस पत्रमें वॉयसेने भारतमें उनके कार्यको सच्चे रूपमें विश्वव्यापी और समस्त मानवताके हितका कार्य बताया था और कहा था कि "आपके ऊपर ईश्वरका वरदहस्त है और आप बड़े सौभाग्यशाली हैं।" (एस० एन० ८३२९)

१४९. पत्र : एच० एस० एल० पोलकको

पोस्ट अन्धेरी
१५ मार्च, १९२४

प्रिय हेनरी,

तुम्हारा पत्र मिला। साथमें केनियाके सम्बन्धमें लिखी तुम्हारी टिप्पणी और समाचारपत्रकी कतरनें[1] भी मिलीं। सामान्य काम-काज करनेकी पर्याप्त शक्ति आते ही मैं तुम्हारी टिप्पणी पढ़ूँगा। इस समय मुझमें जो थोड़ी-बहुत शक्ति है, उसे मैं सिर्फ उन्हीं बातोंपर लगाता हूँ जिनपर मुझे अपने विचार अविलम्ब व्यक्त करने चाहिए। आशा है, पूनासे भेजा मेरा पत्र[2] मिल गया होगा। फिलहाल मैं अन्धेरीके समीप श्री नरोत्तमके[3] बँगलेमें रह रहा हूँ। यह बँगला अत्यन्त रमणीय स्थानपर है। सामने समुद्र है और उसकी लहरें इसकी दीवारोंसे टकराती रहती हैं।

श्री एन्ड्रयूज मेरे साथ रह रहे हैं। उन्हें कविगुरुने खास तौरसे मेरी देख-भाल करने और मन बहलानेके लिए भेजा है। मुझे रोज ३० मिनट टहलनेकी इजाजत है। मैं शामको टहलता हूँ।

तुम सबको स्नेह।

हृदयसे तुम्हारा,

श्री हेनरी एस० एल० पोलक
४७-४८, डेन्स इन हाउस
२०५ स्ट्रैंड
लन्दन, डब्ल्यू० सी० २

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ८४९५) की फोटो-नकलसे।

१ और २. उपलब्ध नहीं है।
३. नरोत्तम मोरारजी, सिन्धिया स्टीम नेवीगेशन कम्पनीके एजेन्ट।

१५०. पत्र : अल्फ्रेड सी० मेयरको

पोस्ट अन्धेरी
१५ मार्च, १९२४

प्रिय मित्र,

आपका २-२-१९२४ का पत्र मिला।

मद्रासमें इस समय एस० गणेशन् नामक पुस्तक-विक्रेताओंकी एक बहुत बड़ी फर्म है। ये लोग मेरे लेखोंका एक संकलन[1] बेचते हैं, जिसमें 'यंग इंडिया' नामक साप्ताहिकमें प्रकाशित मेरे अधिकांश लेख आ गये हैं। इस पत्रका सम्पादन भी मैं ही करता हूँ। मेरे बारेमें आप जो भी जानकारी प्राप्त करना चाहेंगे, सम्भवतः वह सब आपको इस संकलनमें मिल जायेगी।

हृदयसे आपका,

श्री अल्फ्रेड सी० मेयर
१८१, वाइन एवेन्यू
हाईलैंड पार्क
इलिनोस, अमेरिका

अंग्रेजी पत्र (एस० एन० ८४९६) की फ़ोटो-नकलसे।

१५१. पत्र : वि० के० सालवेकरको

पोस्ट अन्धेरी
१५ मार्च, १९२४

प्रिय श्री सालवेकर,[2]

आपने लिखा है कि मैं चाहूँ तो आपके नासिक-स्थित बँगलेका उपयोग कर सकता हूँ। इस सौजन्यके लिए धन्यवाद। मैं जानता हूँ कि नासिककी आबोहवा बहुत स्वास्थ्यप्रद है, लेकिन इस समय मैं अन्धेरीके समीप समुद्र-तटपर एक सुरम्य विश्राम-गृहमें स्वास्थ्य-लाभ कर रहा हूँ। अगर यह स्थान मुझे अनुकूल नहीं बैठा और मुझे

१. तात्पर्य गांधीजी द्वारा १९१९-१९२२ और १९२२-१९२४ में **यंग इंडियामें** लिखे लेखोंके संग्रहोंसे है।

२. विश्वनाथ केशव सालवेकर, बम्बईके सरदार गृह नामक एक होटलके मालिक; गांधीजीसे इनका परिचय लोकमान्य तिलकने करवाया था, जो यदा-कदा उस होटलमें आकर ठहरा करते थे।

किसी खुश्क जगहपर जानेकी सलाह दी गई तो मैं आपके कृपापूर्ण प्रस्तावका ध्यान रखूंगा।

हृदयसे आपका,

श्री वि० के० सालवेकर
हत्तीखाना रोड
नासिक सिटी

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ८५०१) की फोटो-नकलसे।

१५२. पत्र: एस० ई० स्टोक्सको

पोस्ट अन्धेरी
१५ मार्च, १९२४

प्रिय मित्र,

आपका ७ तारीखका पत्र मिला।

जैसा कि आपने समाचारपत्रोंमें पढ़ा होगा, मैं अब समुद्र-तटपर एक विश्राम-गृहमें चला आया हूँ। यह स्थान, जहाँ हम सब रह रहे हैं, बहुत ही सुन्दर है। यह समुद्रके ठीक सामने है और हमें निरन्तर लहरोंका संगीत सुनाई देता रहता है। जाने क्यों, मैं यह महसूस करता हूँ कि मुझे कौंसिल-प्रवेश आदि प्रश्नोंपर अपने विचार यथाशीघ्र व्यक्त कर देने चाहिए। मैं समझता हूँ कि इसके लिए आवश्यक मानसिक श्रम करने लायक पर्याप्त शक्ति मुझमें है। हकीमजी और अन्य मित्रोंसे मिलना तो मैं पहले ही तय कर चुका हूँ। मैं शारीरिक श्रमसे बचनेका यथासम्भव प्रयास कर रहा हूँ, और मैं नहीं समझता कि मैं इस समय जितना मानसिक श्रम कर रहा हूँ, उससे मुझे कोई नुकसान होगा।[1]

एक अपरिचित मित्रने मुझे लिखा है कि आपने उनसे मुझे कुछ पहाड़ी शहद भेजनेके लिए कहा था। उन्होंने कृपा करके मुझे ५ पौंड शहद भेज भी दिया। शहद सचमुच बहुत अच्छा था। बादमें मुझे पता चला कि मोहनलाल पडण्याने[2] आपको मेरे लिए शहद भेजनेको लिखा था। मैं जानता हूँ कि आप मुझपर बहुत मेहरबान रहे हैं। फिर भी मोहनलाल पण्ड्याको आपको कष्ट नहीं देना चाहिए था। मुझे उस समय महाबलेश्वरसे अच्छा शहद मिल रहा था। बीमारीके दौरान मुझे उन

१. स्टोक्सने आग्रह किया था कि देशके हितका खयाल रखते हुए उन्हें विश्राम करना चाहिए। गांधीजीने उन्हें पहले लिखा था कि "कोई भी अन्तिम निर्णय करनेसे पूर्व मेरा यह कर्त्तव्य है कि मैं उन लोगोंका दृष्टिकोण पूरी तरह समझ लूँ जो कौंसिल-प्रवेशकी हिमायत करते हैं।" यह पत्र उपलब्ध नहीं है।

२. खेड़ा जिलेके एक कार्यकर्ता।

लोगोंसे, जिन्हें मैं जानता हूँ और उन लोगोंसे भी जिनसे मुझे मिलनेका सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ, इतना अधिक स्नेह प्राप्त हुआ है कि मुझे लगता है मेरा बीमार पड़ना लगभग ठीक ही हुआ।

हम दोनोंकी ओरसे आप दोनोंको स्नेह,

सदैव आपका,

[पुनश्च :]

आपका पत्र अभीतक मेरे पास नहीं पहुँचा है।

श्री एन० ई० स्टोक्स
हारमनी हॉल
कोटगढ़
शिमला हिल्स

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ८४९७) की फोटो-नकलसे।

१५३. पत्र : फ्रेजर अलसिन्सको

पोस्ट अन्धेरी
१५ मार्च, १९२४

प्रिय मित्र,

आपका १० फरवरीका पत्र मिला।[1]

मैं एक अलग कागजपर अपने हस्ताक्षर भेज रहा हूँ। मुझे दुःख है कि मैं अपने हस्ताक्षर स्याहीसे करके नहीं भेज पा रहा हूँ, क्योंकि मेरा हाथ अभीतक बहुत काँपता है और मैं मजबूतीके साथ कलम पकड़कर नहीं लिख सकता।

हृदयसे आपका,

श्री फ्रेजर अलसिन्स
द हिल स्कूल
पॉट्सटाउन
पेन्सिल्वेनिया, अमेरिका

अंग्रेजी पत्र (एस० एन० ८४९८) की फोटो-नकलसे।

१. अलसिन्सने लिखा था कि वे विख्यात व्यक्तियोंके हस्ताक्षर इकट्ठे कर रहे हैं और अपने उक्त संग्रहमें गांधीजीके हस्ताक्षरोंको रखना भी वे बड़े गौरवकी बात मानेंगे।

१५४. पत्र : एस० ए० ब्रेलवीको

पोस्ट अन्धेरी
१५ मार्च, १९२४

प्रिय श्री ब्रेलवी,

आपका पत्र मिला, साथमें प्रोफेसर के० टी० शाह[1]कृत उपन्यासकी रूपरेखा भी। समय मिलते ही मैं इसे पढ़ जाऊँगा और आपको लिख भेजूंगा कि मुझे पूरी पाण्डुलिपिकी जरूरत है या नहीं।

हृदयसे आपका,

श्री एस० ए० ब्रेलवी
'बॉम्बे क्रॉनिकल' ऑफिस
फोर्ट
बम्बई

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ८५०४) की फोटो-नकल से।

१५५. पत्र : महेन्द्र प्रतापको[2]

पोस्ट अन्धेरी
१५ मार्च, १९२४

प्रिय मित्र,

आपका पत्र पाकर बहुत प्रसन्नता हुई। मैं जब प्रेम विद्यालय गया था, तब मेरा खयाल है, भाई कोतवालने आपके सम्बन्धमें मुझसे बातचीत की थी। यद्यपि यह सच है कि हमें प्रकृतिमें अच्छी और बुरी दोनों तरहकी शक्तियाँ पूरे जोरोंपर काम करती दिखाई देती हैं, किन्तु मेरा निश्चित विश्वास है कि इस शाश्वत द्वन्द्वसे ऊपर उठना तथा चित्तकी समवृत्ति प्राप्त करना मनुष्यका अपना विशिष्ट अधिकार है। और इसे प्राप्त करनेका एकमात्र उपाय है सत्यबल, दूसरे शब्दोंमें प्रेमबल अथवा आत्मिक बलपर पूर्णतया आचरण करना। मैं यह बात तर्क द्वारा सिद्ध करके बताऊँ,

१. अर्थशास्त्री और लेखक, भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस द्वारा स्थापित राष्ट्रीय आयोजना समितिके मन्त्री। उन्होंने गांधीजीको मुख्य पात्र बनाकर असहयोग आन्दोलनके बारेमें अंग्रेजीमें एक ऐतिहासिक उपन्यास लिखा था।

२. सुप्रसिद्ध क्रान्तिकारी।

इसकी अपेक्षा तो आप मुझसे नहीं ही करेंगे। इस सम्बन्धमें मैं केवल अपने दीर्घ-कालीन अनुभवसे उत्पन्न दृढ़ विश्वासको ही आपके सामने रख सकता हूँ। इस सुदीर्घ अनुभवके दौरान मुझे स्मरण नहीं आता कि मेरे सामने एक भी ऐसा अवसर आया हो, जब किसी समस्याके समाधानके लिए सत्यबलका सहारा लेनेपर मुझे पूरी सफलता न मिली हो। निःसन्देह इसके लिए धैर्य, विनम्रता और इसी तरहके अन्य गुणोंका विकास करना जरूरी होता है।

हृदयसे आपका,

श्री एम० प्रताप
बाग बाबर
काबुल

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ८४९१) की फोटो-नकल से।

१५६. पत्र : अब्बास तैयबजीको[1]

पोस्ट अन्धेरी
१५ मार्च, १९२४

मेरे जिगरी दोस्त,

"खुश रहो, मस्त रहो, गमको धरो ताक पै दोस्त!" किसी बातकी फिक्र क्यों करें? आपकी चिट्ठी[2] तो आँसू ढालती नजर आ रही है। यों कुछ न होनेसे यह भी बेहतर है। आप चाहते हैं कि मैं किसी तरकीबसे आपका रंज काफूर कर दूं। और आप मेरा हौसला बढ़ानेके लिए जंजीबारके अपने अजीज़की शानदार मिसाल भी पेश करते हैं। मगर एक फर्क है; उनके सामने था आबनूसी रंगका एक छोकरा जो हकीकतमें छोकरा ही था जब कि मेरा पाला पड़ा है एक गोरे-सफेद दाढ़ीवाले जईफ लड़केसे। एपेंडिसाइटिसका ऑपरेशन करा लेना इसके मुकाबिले एक आसान काम था। मैं आपके सामने कलका लड़का ठहरा — भला मैं ऐसे नाजुक कामको कैसे अन्जाम दे सकूंगा। बहरहाल जब मिलेंगे तब इसकी कोशिश की जायेगी। शायद आपको खबर नहीं है कि मैं इन दिनों हाथमें बाकायदा अफगानी सोटा लिये रहता हूँ इसलिए जरा बचे रहिएगा। मेरे साथ टिकनेकी इजाज़त सिर्फ मरीजोंको ही मिलती है। चूंकि आप मैलनकोलियाके[3] मरीज हैं इसलिए आपको इजाज़त दी जाती है कि आप अपनी सहूलियतके मुताबिक जब चाहें तब तशरीफ लायें। अलबत्ता ऊपर कोई कमरा

१. अब्बास तैयबजी (१८५३-१९३६); एक समय बड़ौदा उच्च न्यायालयके न्यायाधीश; गुजरातके राष्ट्रवादी मुसलमान। वे पंजाबके उपद्रवोंकी जांचके लिए कांग्रेस द्वारा नियुक्त समितिके सदस्य भी थे।

२. १३ मार्चका पत्र।

३. मैलनकोलिया, विषाद रोग।

खाली नहीं है इसलिए अगर तनहाई दरकार है तो जनावको नीचेका कोई कोना दे दिया जायेगा। लेकिन अफसोस, काठियावाड़से देवचन्द पारेखने जो खवर अभी-अभी दी है उसके मुताविक गुजरातका तानाशाह वल्लभभाई आपको काठियावाड़ रवाना कर रहा है।

मेरी तवीयत सुधरती जा रही है। रोज कुछ-न-कुछ काम भी कर ही गुजरता हूँ। मगर अभी ज्यादा मेहनत नहीं कर सकता।

वेगम साहिवा कैसी हैं? लड़कियाँ कहाँ हैं? वे क्या कर रही हैं? देवदासने वताया कि फातिमाकी शादी हो चुकी है। किससे हुई? दोनों खुश तो हैं? वे कहाँ रह रहे हैं? दामाद क्या करता है? वात यह है कि आपके परिवारके सभी लोगोंमें मुझे दिलचस्पी है, क्योंकि एक अरसेसे मैं उसका एक सदस्य ही वन गया हूँ। इस घरेलू चिट्ठीको दूसरेसे लिखवा रहा हूँ इसका खयाल न कीजिएगा। जितना चाहता हूँ उतना नहीं लिख पाता; हाथ काँपता है। चूँकि मेरा मन काफी लम्वी चिट्ठी लिखनेका था और न लिखने और वोलकर लिखवानेके वीच फैसला करना जरूरी हो गया, और मैंने लिखवाना ही मुनासिव समझा।

सवको प्यार और आपको प्यारके अलावा 'भुर्र'[1]

आपका,
मो० क० गां०

श्री अव्वास तैयवजी
वड़ौदा कैम्प

अंग्रेजी पत्र (एस० एन० ९५९५) की फोटो-नकलसे।

१५७. पत्र: जवाहरलाल नेहरूको

पोस्ट अन्धेरी
१५ मार्च, १९२४

प्रिय जवाहरलाल,

तुम्हारा पत्र[2] मिला। पणिक्करके सम्वन्धमें तुम्हारा और मुहम्मद अलीका, दोनों तार पहले ही मिल गये थे। तुम्हारे पत्रसे मैं कुछ परेशानीमें पड़ गया हूँ। नियुक्तियाँ और वेतन-निर्धारण आदिके वारेमें कोई निश्चित मत वनानेका न मेरा इरादा कभी

१. गांधीजी तथा तैयबजी एक-दूसरेका स्वागत इसी अनोखे ढंगसे किया करते थे।

२. प्रतीत होता है कि गांधीजीने १२ मार्चको पंडित जवाहरलाल नेहरूको तार दिया था। उक्त तार उपलब्ध नहीं है। श्री नेहरूने १३ मार्चको इसका उत्तर दिया। उन्होंने लिखा था: "श्री पणिक्कर प्रसिद्ध व्यक्ति हैं। मैं कई वर्षोंसे उन्हें जानता हूँ। कोकोनाडामें कुछ समयके लिए मैं उनसे मिला भी हूँ। मुझे विश्वास है कि अमृतसरमें उनकी उपस्थिति उपयोगी सिद्ध होगी। उनमें एक कमी अवश्य है कि

रहा है और न इस समय है। चूँकि मैं जोजेफके इस विचारसे सहमत था कि पत्नी जब इतने कष्टमें है तब उनका उसके पास रहना जरूरी है और चूँकि जो सिख भाई मुझसे मिलने आये, वे इस बातके लिए बहुत उत्सुक जान पड़े कि गिडवानीके स्थानपर कोई अच्छा व्यक्ति मिल जाये, ऐसा व्यक्ति जो उनके पत्र 'ऑनवर्ड' का सम्पादन-भार भी सँभाल ले, इसलिए मैं उसकी तलाशमें था। वे सुन्दरम्को लेना चाहते थे, जो 'इंडिपेंडेंट' में काम करते थे; और उन्होंने कहा कि वे प्रचार-कार्य और सम्पादन दोनों कर सकते हैं। जब मैं अन्धेरीके निकट स्थित विश्राम-गृहमें आया तो यहीं पणिक्करसे मेरी मुलाकात हो गई। श्री पणिक्करको 'इंडियन डेली मेल' ने अपने यहाँ नौकरी करनेको आमन्त्रित किया था। वे श्री एन्ड्रयूजसे इसी सम्बन्धमें सलाह-मशविरा करने आये थे। वे इस नौकरीको स्वीकार करनेमें हिचकिचा रहे थे, क्योंकि 'मेल' का राजनीतिक दृष्टिकोण उनके विचारोंसे भिन्न था। तब मुझे प्रचार-कार्यका ध्यान आया और मैंने उनसे पूछा कि क्या वे इस भारको सँभाल सकेंगे। चूँकि मैं उन्हें अच्छी तरहसे नहीं जानता था, मैंने श्री एन्ड्रयूजसे भी सलाह की, और जब श्री पणिक्करने यह कहा कि अगर नेहरूजीको जरूरत है तो मैं अमृतसर जा सकता हूँ। और चूँकि श्री एन्ड्रयूजकी राय थी कि वे श्री गिडवानीके स्थानपर योग्य ठहरेंगे, मैंने तुम्हें तार कर दिया। लेकिन मेरी यह इच्छा नहीं थी कि तुम सिर्फ इसलिए अपने निर्णयमें कोई रद्दोबदल करो कि तार मैंने भेजा है। यदि मैं स्वस्थ होता और सभी तथ्योंकी जानकारी पा सकता तो मैं उम्मीदवारोंके चुनावके सम्बन्धमें, बेशक, अपनी सलाह और विचार व्यक्त करता। लेकिन इस समय तो मैं उन चन्द बातोंके अलावा, जो अत्यन्त आवश्यक हैं, और किसी भी बातमें अपनी शक्ति नहीं लगाना चाहता।

जहाँतक वेतनका सवाल है, स्थिति यह थी। पणिक्कर 'स्वराज्य' कार्यालयमें ७०० रुपये माहवारपर नियुक्त हुए थे, लेकिन चूँकि पत्र आत्मनिर्भर नहीं है, वे लोग इन्हें कुछ महीनोंका वेतन नहीं दे पाये हैं। श्री पणिक्करने नौकरी छोड़ दी, क्योंकि

वे हिन्दुस्तानी नहीं जानते, लेकिन उनकी अन्य अनेक योग्यताएँ इस कमीको बखूबी पूरा कर देंगी। प्रचार-कार्यके लिए वे अत्यन्त उपयोगी व्यक्ति साबित होंगे। भाषा-सम्बन्धी कठिनाईके कारण, शायद वे सिखों और हिन्दुओंको एक-दूसरेके समीप लानेमें बहुत अधिक सहायक नहीं होंगे। लेकिन कुल मिलाकर श्री पणिक्कर अमृतसरके लिए एक उपलब्धि ही होंगे। जहाँतक नौकरीकी शर्तें तय करनेकी बात है, आप जो-कुछ भी उचित समझेंगे वह निःसन्देह, सब लोगोंको मान्य होगा। जहाँतक कार्य-समितिकी विधिवत् बैठककी बात है, वह २१ अप्रैलतक न हो सकेगी। आपके तारमें नौकरीकी जिन शर्तोंके सुझाव हैं वे कुछ हदतक पेचीदा हैं। लेकिन यह तो आपके तय करनेकी बात है। मुझे यह जानकर खुशी हुई कि श्री पणिक्कर अमृतसरमें लम्बे समयतक रहनेका इरादा रखते हैं। वैसे मेरा निजी खयाल यह है कि वहाँ उन्हें ज्यादा अर्सेतक रहना आवश्यक न होगा। बहुत सम्भव है कि गिडवानी शीघ्र ही रिहा हो जायें और यह भी उतना ही सम्भव है कि गिडवानीका उत्तराधिकारी [श्री पणिक्कर] भी जल्दी ही गिरफ्तार कर लिया जाये। निःसन्देह श्री पणिक्कर अकारण ही कोई ऐसा काम नहीं करेंगे जिससे उन्हें जेल जाना पड़े, लेकिन श्री गिडवानीने भी तो ऐसा नहीं किया था।"

इस सवालपर श्री श्रीनिवास आयंगारसे उनका समझौता नहीं हो पाया। उन्हें मद्रासमें ९०० रुपयेका एक कर्ज चुकाना है। उन्हें ३०० रुपये माहवारकी जरूरत है। इसलिए मैंने सोचा उन्हें ९०० रुपये पेशगी दे दिये जायें तो वे अपना कर्ज चुकाकर अमृतसरके लिए रवाना हो जायेंगे। अमृतसरमें अपना खर्च चलानेके लिए तो उन्हें फिर भी पैसोंकी जरूरत होगी ही। इसके लिए उन्हें ऋणके रूपमें १०० रुपया प्रतिमास दिया जाना चाहिए। इस तरह तीन महीने नौकरी करनेके बाद वे कांग्रेसके ३०० रुपयेके कर्जदार होंगे। फिर यह रकम १०० रुपये प्रतिमासके हिसाबसे उनके वेतनसे ली जा सकती है। इसका अर्थ यह हुआ कि उन्हें जो कर्ज मिलेगा उसे चुकानेके लिए उन्हें छः महीनेतक काम करना होगा। लेकिन अब मैं परेशानीमें पड़ गया हूँ, क्योंकि तुम्हारे पत्रसे पता चलता है कि इतने अर्सेके लिए शायद उनकी सेवाओंकी जरूरत नहीं पड़ेगी। मैं कांग्रेसपर व्यर्थका खर्च लादनेका निमित्त नहीं बनना चाहूँगा। इसलिए मैं सारी स्थिति श्री पणिक्करके सम्मुख रख देना चाहता हूँ। वे शायद इस बातपर सहमत हो जायेंगे कि अगर उनकी नौकरी छः महीनेसे पहले ही खत्म हो गई तो वे कर्जकी बकाया रकम अदा करनेके लिए जिम्मेदार होंगे। वे इस समय यहाँ नहीं हैं, अन्यथा मैं तुम्हें अधिक निश्चित पत्र भेजता।

मेरा खयाल है, मुमकिन हुआ तो तुम नहीं चाहोगे कि मैं नौकरीकी बाबत पणिक्करके साथ तय हुई बात तोड़ दूँ, इसीलिए उस बातको बरकरार रखकर मैं उन्हें कल अमृतसर भेज रहा हूँ। तुम्हारे सबसे आखिरी तारके मुताबिक वे सीधे अमृतसर जायेंगे। मैं श्री पणिक्करको जो रकम दूँगा, तुम खजांचीसे वह रकम फिर मुझे वापस देनेको कह देना।

निश्चय ही अगर मेरा इरादा तुमसे अपने विचारोंके अनुसार काम करानेका हो तो मैं तुमसे हर नियुक्तिके बारेमें दो बातोंको ध्यानमें रखकर फिरसे विचार करनेके लिए कहूँगा: (१) क्या कांग्रेसको कांग्रेससे बाहरके कार्यपर पैसा खर्च करना चाहिए? (२) कांग्रेसको अपने सेवकोंको अधिकसे-अधिक कितना वेतन देना चाहिए?

यह तो हुई काम-काजकी बात। मेरा घाव पूरी तरह भर गया है, लेकिन चीरेकी जगह अभी नरम है और उसके बारेमें देखभाल और सावधानी रखना जरूरी है। अभी जो मैं समुद्र-तटपर आराम ले रहा हूँ; आशा है वह अनुकूल पड़ेगा। इसलिए सामान्यतया यहाँ तीन महीने रहनेका इरादा करता हूँ। इस अवधिमें मुझसे जितना हो सकेगा उतना ही लिखनेका काम करूँगा और कौंसिल-प्रवेश आदिके सम्बन्धमें नेताओंसे सलाह-मशविरा करता रहूँगा। इस महीनेके अन्ततक (तुम्हारे) पिताजी, हकीमजी और अन्य लोगोंके यहाँ आनेकी आशा है। मेरे साथ सलाह-मशविरा करनेके लिए जब भी तुम्हारी इच्छा हो तुम निःसंकोच यहाँ आ जाया करो। चाहे जो हो, मुझे उम्मीद है कि तुम अगले महीनेकी २० तारीखके आसपास तो मुझसे मिलने आओगे ही, क्योंकि मुझे मालूम हुआ है कि इस तारीखको कांग्रेस कार्य समितिकी बैठक होनेवाली है। मुझे विश्वास है, तुम स्वस्थ हो और अपने स्वास्थ्यका पूरा ध्यान रख रहे हो।

पण्डितजीने इस पत्रको पढ़ लिया है और तुम जब भी चाहोगे, वे नौकरीसे मुक्त होने तथा कर्जकी बाकी रकम चुकानेके लिए तैयार रहेंगे।

हृदयसे तुम्हारा,

पण्डित जवाहरलाल नेहरू

अंग्रेजी पत्र (एस० एन० ८५०३) की फोटो-नकलसे।

१५८. पत्र : ए० ए० पॉलको

पोस्ट अन्धेरी
१५ मार्च, १९२४

प्रिय श्री पॉल,

आपका ८ तारीखका पत्र मिला, साथमें श्री एटकिनके पत्रकी प्रति भी। मेरा खयाल है कि हम दोनों एक-दूसरेसे परिचित हैं। अगर ये वही एटकिन हैं जिन्हें मैं जानता हूँ, तो फिर वे मेरे विचारोंको भली-भाँति जानते हैं। फिर भी अगर कोई उपयोग हो तो मैं अपने विचार संक्षेपमें लिखे दे रहा हूँ।

दक्षिण आफ्रिकाके भारतीय समाजमें सब प्रान्तोंके लोग हैं। उनमें हिन्दू, इस्लाम, ईसाई और पारसी सभी धर्मोंके लोग हैं। बहुतसे ऐसे भारतीय भी हैं जिनका जन्म दक्षिण आफ्रिकामें ही हुआ है। ये ईसाई हैं और उन्होंने उच्च शिक्षा प्राप्त की है। इसलिए स्वभावतया वे अपने आत्म-सम्मानके प्रति अधिक सजग हैं। दक्षिण आफ्रिकाका प्रतिबन्धकारी विधान उनपर भी लागू होता है, हालांकि दक्षिण आफ्रिका उनका घर है और उनमें से अधिकांश लोग सोचते हैं कि उनका कभी भारत जाना होगा ही नहीं। लोगोंको यहाँ इस बातका भी पता नहीं है कि इन नवयुवकों और नवयुवतियोंने — चाहे गलत हो या ठीक — यूरोपीय रीति-रिवाजों, तौर-तरीकों और पहनावे आदिको अपना लिया है। लेकिन ईसाई धर्म अपनाना, उच्च शिक्षा प्राप्त करना और उनका यूरोपीय रंगमें रँग जाना, इनमेंसे कोई भी चीज उन्हें प्रतिबन्धोंके अभिशापसे नहीं बचा सकी है। मैं इनकी चर्चा इस खयालसे नहीं कर रहा हूँ कि उनके साथ विशेष अथवा अन्य भारतीयोंसे अलग ढंगका व्यवहार किया जाना चाहिए (वे स्वयं ऐसे किसी भी भेद-भावका विरोध करेंगे)। इसकी चर्चा मैं इस तथ्यको समझानेके लिए कर रहा हूँ कि दक्षिण आफ्रिकामें प्रतिबन्धकारी विधान मुख्य रूपसे जातिगत भेद-भावपर आधारित है। आर्थिक पहलू तो गौण स्थान रखता है। भारतीयोंकी माँग अत्यन्त सीधी-सादी और उचित है। भारतीयोंके भावी प्रवासके सम्बन्धमें लगाये गये प्रशासनिक प्रतिबन्धोंको उन्होंने स्वेच्छासे स्वीकार कर लिया है और वस्तुतः किसी भी ऐसे भारतीयको, जो पहले कभी दक्षिण आफ्रिकामें न रहा हो और जिसने दक्षिण आफ्रिकाको लगभग अपना घर न बना लिया हो, आने

नहीं दिया जाता। अपने अधिकारोंके इस स्वैच्छिक त्यागके बदले वहाँके भारतीय अधिवासी समताका व्यवहार चाहते हैं। दक्षिण आफ्रिकाके विचारशील यूरोपीयोंने इस माँगको हमेशासे बहुत ही उचित माना है और १९१४ में दक्षिण आफ्रिकाकी सरकार और भारतीय समाजमें एक समझौता भी हुआ था, जिसमें साम्राज्य सरकार और भारतीय सरकार दोनों शरीक थीं। समझौतेके अनुसार यह तय पाया गया था कि अब भविष्यमें कोई प्रतिबन्धकारी विधान पास नहीं किया जायेगा और अधिवासी भारतीयोंकी स्थितिमें निरन्तर अधिकाधिक सुधार किया जाता रहेगा।[1] इसलिए दक्षिण आफ्रिकाके वर्तमान भारतीय विरोधी प्रचारके सम्बन्धमें स्थानीय भारतीय समाजको दोहरी शिकायत है। दक्षिण आफ्रिकामें रहनेवाले यूरोपीय लोगोंका बहुत बड़ा हिस्सा नाम-मात्रको ईसाई है। मेरा यह सौभाग्य है कि मैं कह सकता हूँ, उनमें से बहुतसे लोग और खासकर मिशनरी लोग मेरे पक्के मित्र हैं। होना तो यह चाहिए कि सच्चे ईसाई सत्य और न्यायका पक्ष लेकर उठ खड़े हों लेकिन दुर्भाग्यकी बात यह है कि उनमें से कुछ अच्छेसे-अच्छे लोग भी इस बातपर बहुत ज्यादा ध्यान देते हैं कि अमुक काम करनेमें उनका हित है या नहीं। वे सोचते हैं लोगोंमें प्रचलित पूर्व-ग्रहोंके बावजूद सत्यका पक्ष लेकर उठेंगे तो इससे सेवाके लिए उनकी उपयोगिताको नुकसान पहुँचेगा। मैं इस विचारसे हमेशा असहमत रहा हूँ, और विस्तृत अनुभवोंके आधारपर मेरा विनम्र मत तो यही बन पाया है कि ऐसा रुख अपनाना शैतानके आगे, बिलकुल अनजाने ही क्यों न हो, झुकना है।

मुझे आपको यह विश्वास दिलानेकी जरूरत नहीं कि श्री एटकिनके पत्रको बिलकुल गोपनीय रखा जायेगा; और इसी कारण मैं आपको जो पत्र भेज रहा हूँ उसका भी कहीं उपयोग नहीं करूँगा।

आपका,

श्री ए० ए० पॉल
महामन्त्री
द स्टूडेंट्स क्रिश्चियन एसोसिएशन ऑफ इंडिया, बर्मा ऐंड सीलोन
६, मिलर रोड, किलपॉक
मद्रास

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ८५००) तथा ९९२७ की फोटो-नकलसे।

१. देखिए खण्ड १२, पृष्ठ ३२४।

१५९. तार: पूर्व आफ्रिकी भारतीय कांग्रेसको[1]

[१५ मार्च, १९२४को या उसके पश्चात्]

कांग्रेस
मोम्बासा

[यह जानकर] प्रसन्नता हुई कि समाज कष्ट-सहनका कार्यक्रम लेकर आगे बढ़ रहा है। वह जारी रहा तो आपकी सफलता निश्चित है। खेद है किसीको नहीं भेज सकता। एन्ड्रयूज भी सहमत।[2]

गांधी

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ९९२६) की फोटो-नकलसे।

१६०. तार: सरोजिनी नायडूको[3]

[१६ मार्च, १९२४ के पूर्व][4]

कृपया जनरल स्मट्स और अन्य जिम्मेदार यूरोपीयोंसे कहें कि वहाँके भारतीयोंने अपने विरुद्ध चल रहे स्वार्थपूर्ण आन्दोलनके दौरान जिस अनुपम आत्म-संयमका परिचय दिया है, वर्ग क्षेत्र विधेयक (क्लास एरिया बिल)[5] उसका उचित पुरस्कार नहीं माना जा सकता। यूरोपीय लोग याद रखें कि भारतीयोंके भावी प्रवास-सम्बन्धी प्रशासनिक प्रतिबन्धको वहाँ भारतीयोंने स्वेच्छासे

१. यह तार पूर्व आफ्रिकी भारतीय कांग्रेसके १५ मार्चके तारके उत्तरमें दिया गया था। तारमें कहा गया था: "कर-बन्दी चल रही है। सरकार द्वारा निर्दयतापूर्वक गिरफ्तारियाँ, सम्पत्तिकी कुर्की। कृपया चार कार्यकर्ताओंको भेजें। एन्ड्रयूज, वल्लभभाई, महादेवभाई और देवदासका भेजा जाना अच्छा रहेगा। आप ठीक होनेके बाद केनिया आयें।"

२. तारके मसविदेके अन्तमें गांधीजी ने लिखा था: "एन्ड्रयूज इस तारको पढ़ लें और यदि उन्हें ठीक लगे तो कल आगे भेज दें।"

३. सरोजिनी नायडू (१८७९-१९४९); कवयित्री, सामाजिक कार्यकर्त्री, कांग्रेसकी प्रथम महिला अध्यक्षा, १९२५; वे इस समय दक्षिण आफ्रिकामें थीं।

४. १६-३-१९२४ के गुजरातीके अंकमें इस तारका अनुवाद दिया गया है।

५. विधेयक यद्यपि खास तौरसे भारतीयोंको लक्ष्य करके नहीं बनाया गया था, फिर भी इसमें ऐसी व्यवस्थाएँ थीं जिनका उपयोग शहरी इलाकोंमें एशियाइयोंके अनिवार्य पृथक्करणके लिए पूरी तरह किया जा सकता था, और "इससे अनेक भारतीय व्यापारी पूरी तरह बरबाद हो जा सकते थे . . .।" १९२४ में दक्षिण आफ्रिकी विधान सभाके अचानक भंग हो जानेके फलस्वरूप यह विधेयक उस साल पास नहीं हो पाया।

मान लिया था। संघ सरकारने गोखलेको कोई और निर्योग्यता लादनेवाला कानून पास न करनेका जो आश्वासन[१] दिया था उसकी याद उसे दिलायें। १९१४के[२] समझौतेकी याद भी दिलायें। तबसे स्थानीय भारतीयोंने ऐसा कुछ भी नहीं किया जिसके लिए उनके साथ ऐसा व्यवहार किया जाये जैसा सरकार करने जा रही है। वर्ग-क्षेत्र विधेयकको स्वीकार करना अपने राजनीतिक और नागरिक जीवनसे हाथ धो लेना है। मुझे विश्वास है कि आपका प्रभावशाली वक्तृत्व विरोधी पक्षको निरस्त्र कर देगा और आपकी उपस्थितिके फलस्वरूप आपके देशभाइयोंके कष्ट कुछ कम हो सकेंगे।

अंग्रेजी समाचारपत्रकी कतरन (एस० एन० ८५३५) की माइक्रोफिल्मसे।

१६१. पत्र : जे० पी० भंसालीको

पोस्ट अन्धेरी
१६ मार्च, १९२४

प्रिय भंसाली,

आपका पत्र पाकर मुझे कितनी प्रसन्नता हुई, क्या बताऊँ! मैं पत्रका अधिकांश पढ़ गया हूँ। आपने पत्रके साथ जो कतरनें भेजी हैं, उन्हें मैं अभीतक नहीं पढ़ पाया हूँ। मैं अपने जेलके अनुभव लिखना चाहता हूँ। आपकी टिप्पणियाँ[३] बड़े कामकी सिद्ध होंगी। मैं संशोधन-परिवर्धन या यह आवश्यक न हो तो सहमति-मात्रके लिए उन्हें जयरामदासके पास भेजनेका इरादा कर रहा हूँ। आप सब लोगोंसे बिलकुल अलग रहनेके कारण कुछ बातोंमें मेरा कथन एकांगी होगा ही। इसलिए आपकी टिप्पणियाँ, जैसा कि मैंने कहा है, कामकी सिद्ध होंगी।

मैं स्वीकार करता हूँ कि पहले मेरे मनमें ऐसा कोई खयाल नहीं था कि अपने अनुभव लिखते समय मैं आपसे अथवा जयरामदाससे सलाह लूँगा। मेरे मस्तिष्कमें कोई भी बात ठोस रूप ग्रहण नहीं कर पाई है; क्योंकि मेरा मस्तिष्क इस समय ऐसी बातोंमें ही लगा हुआ है, जिनके बारेमें मुझे अपनी राय देनी ही चाहिए। बहरहाल, आपका पत्र बहुत उपयुक्त समयपर आया है। आपने अपने विषयमें कुछ भी नहीं कहा। कृपया अपने बारेमें भी एक पंक्ति अवश्य लिखें। शायद ही कोई दिन ऐसा

१. १९१२ में उनकी दक्षिण आफ्रिका यात्राके समय; देखिए खण्ड ११।

२. यह समझौता २२ जनवरी, १९१४ को गांधीजी और जनरल स्मट्सके बीच हुआ था। इसमें सरकारने भारतीयोंके सम्बन्धमें कोई कानून बनानेसे पहले भारतीयोंसे परामर्श करनेके सिद्धान्तको स्वीकार किया था। देखिए खण्ड १२, पृष्ठ ३२४-३३।

३. ये उपलब्ध नहीं हैं। तथापि सम्भव है कि ये टिप्पणियाँ भंसालीके जेलके अपने अनुभवोंसे सम्बन्धित हों। देखिए अगला शीर्षक भी।

जाता होगा, जब मैं आपको याद नहीं करता। आश्रमसे आनेवाले हर व्यक्तिसे मैं आपके बारेमें पूछताछ करता रहा हूँ।

आपका,

श्रीयुत जे० पी० भंसाली
सत्याग्रह आश्रम
साबरमती

अंग्रेजी प्रति (एस०एन० ८५०६) की फोटो-नकलसे।

१६२. पत्र : जयरामदास दौलतरामको

पोस्ट अन्धेरी
१६ मार्च, १९२४

प्रिय जयरामदास,

आपकी टिप्पणियाँ भंसालीने मुझे भेजी हैं। मैं चाहूँगा कि इन्हें पढ़कर इनमें संशोधन या परिवर्धन कर दो, या अगर ठीक लगती हों तो वैसा कहो। इससे मुझे जेलके अपने अनुभवोंका चित्र पूरा करनेमें मदद मिलेगी और इस तरह मैं लोगोंके सामने केवल अच्छा पक्ष ही प्रस्तुत करनेके दोषसे बच सकूँगा। जब पत्र लिखो तो लिखना कि तुम्हारा स्वास्थ्य कैसा चल रहा है। डॉ० चोइथरामके स्वास्थ्यका पूरा हाल लिखना। उनके स्वास्थ्यमें बहुत जल्द सुधार होना चाहिए।

हृदयसे तुम्हारा,

श्रीयुत जयरामदास दौलतराम
हैदराबाद (सिंध)

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ८५०७) की फोटो-नकलसे।

१६३. पत्र : ए० डी० स्कीन कैटलिंगको

पोस्ट अन्धेरी
१६ मार्च, १९२४

प्रिय श्री कैटलिंग,

श्री पणिक्करकी मार्फत भेजी आपकी पर्चीके लिए धन्यवाद।

बुधवारको आपने जो समय बताया है, उस समय आपसे और श्री अय्यरसे मिलकर मुझे बहुत प्रसन्नता होगी।

हृदयसे आपका,

श्री ए० डी० स्कीन कैटलिंग
मेसर्स रायटर लिमिटेड
बम्बई

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ८५०९) की फोटो-नकलसे।

१६४. पत्र : डी० हनुमन्तरावको

पोस्ट अन्धेरी
१६ मार्च, १९२४

प्रिय हनुमन्तराव,

तुम्हारा पत्र मिला। पत्र लम्बा होते हुए भी रंजक है। आइन्दा तुम्हें अपने लम्बे पत्रोंके लिए क्षमा माँगनेकी कोई जरूरत नहीं है, तुम कभी बेकारकी बातें नहीं लिखते। हममें से एकान्त और अरक्षित स्थानोंमें रहनेवाले उन लोगोंके लिए जो अपनी रक्षाके लिए शस्त्र-बलपर नहीं बल्कि ईश्वरकी अनुकम्पापर ही विश्वास करते हैं, एकमात्र रास्ता यही है कि वे अपने पास जहाँतक बन पड़े मूल्यवान चीजें यथासम्भव कम रखें, चाहे वे पैसोंके रूपमें हों अथवा अन्य किसी रूपमें। हमें चाहिए कि आसपासके उजड्ड लोगोंके साथ भी मैत्री भाव बनाये रखें। साबरमतीमें ऐसा ही प्रयास चल रहा है।

भारतके विभिन्न प्रान्तोंमें साबरमती-जैसे ही आश्रमोंकी स्थापनाके तुम्हारे सुझावको मैं पसन्द करता हूँ। मैं वैसा करना तो जरूर चाहूँगा, लेकिन चाहने-भरसे तो उनकी स्थापना नहीं की जा सकती। उसके लिए हमें ठीक ढंगके आदमियोंकी जरूरत है और मेरी नजरमें ऐसे लोग हैं नहीं। तुमने एक आश्रमकी स्थापना की है और उसे चलानेकी कठिनाइयोंको भी तुम समझते हो। तुम जानते हो, हमारा दूसरा आश्रम वर्धामें है, जिसका संचालन विनोबा करते हैं। विनोबासे तो तुम परिचित ही हो। उसकी

स्थापना ही इसलिए हो पाई कि हमें विनोवा-जैसा व्यक्ति मिल गया था। एक और आश्रम अन्धेरीके समीप है, क्योंकि केशवराव देशपाण्डे-जैसा व्यक्ति हमें मिल गया है। चारों ही अपना अस्तित्व बनाये रखनेके लिए हाथ-पैर मार रहे हैं। ऐसे आश्रम प्राणियों या वनस्पतिकी तरह अनुकूल परिस्थितियाँ और समय पाकर अपने-आप अंकुरित और पल्लवित होते हैं। तुम्हारे सुझावकी मुख्य वात मुझे पसन्द आई; यानी मुझे सावरमती आश्रममें वने रहकर उसको सर्वांगपूर्ण वनानेकी कोशिश करनी चाहिए। मैं इसे अत्यधिक पसन्द करूँगा। वाह्य राजनैतिक गति-विधियोंमें मैं अपने मनसे नहीं कूदा हूँ — ये तो मेरे सिर आ पड़ी हैं; इसलिए अपनी इच्छासे मैं इन्हें त्याग भी नहीं सकता। यदि ईश्वरकी मर्जी हुई कि मैं आश्रममें रहकर उसका विकास करूँ, तो वह उसके लिए मेरा रास्ता साफ कर देगा। यदि आश्रम वास्तवमें कोई चेतन वस्तु है, तो मेरा विश्वास है कि मैं सावरमतीमें रहूँ या न रहूँ, उसकी प्रगति होती रहेगी। वहरहाल अगर ऐसी संस्था केवल एक व्यक्तिके इस संसारमें वने रहनेपर निर्भर करती हो, तो वह उस व्यक्तिके साथ ही नष्ट होकर रहेगी; और अगर उसे स्थायी रूप ग्रहण करना है तो उसे अपने अस्तित्वके लिए अपनी आत्म-निर्भरता और अपनी ही भीतरी जीवन-शक्तिका भरोसा करना पड़ेगा। और हमें ऐसी संस्थाओंकी सफलता तथा प्रगतिके सम्वन्धमें भी अधीर नहीं होना चाहिए। हमारे लिए इतना ही पर्याप्त है कि हम अपनी वुद्धिके अनुसार काम करें और वाकी सव उसपर छोड़ दें जो इस सृष्टिका सूत्रधार है। तुमने सयानी लड़कियोंको तवतक अपने आश्रममें न रखनेका फैसला किया है जवतक कि ऐसी महिला कार्यकर्त्रियाँ पर्याप्त संख्यामें नहीं मिल जातीं, जो किसी औरकी मददके विना अपना काम चला सकें और सयानी लड़कियोंके लिए रक्षा-कवच वन सकें। मेरा खयाल है कि इस गम्भीर उत्तरदायित्वको अपने कन्धोंपर न लेकर तुमने ठीक ही किया है। मैं उम्मीद करता हूँ, आगे चलकर स्वयं तुम्हारी पत्नी इस योग्य वन जायेगी।

और अव प्राकृतिक चिकित्साके सम्वन्धमें। मैं जानता हूँ कि सावरमतीमें जहाँ-तक भोजन और औषध-सम्वन्धी सहायताका प्रश्न है, जितने भी परिवर्तन किये गये हैं, सभी दुर्वलताके द्योतक हैं। शुरुआत मेरी पहली गम्भीर वीमारीके साथ हुई थी। इस वीमारीने मुझे वुरी तरह झकझोर दिया और मैं अपना आत्मविश्वास खो वैठा। इसके विपरीत कोचरवमें मैंने एक साथ दो रोगियोंकी निःशंक भावसे देखभाल की थी, जिनमें से एक भयंकर चेचकसे पीड़ित था और दूसरा मोतीझरासे। डाक्टरोंने मुझे ऐसा करनेसे वहुत रोका, किन्तु प्रकृतिकी निरोधक क्षमतामें विश्वास रखते हुए मैं यह काम करता ही रहा। सावरमतीमें अपनी वीमारीके वाद तो मुझसे छोटी-छोटी वीमारियोंका भी उपचार करते नहीं वना। मेरा सिद्धान्त यह है कि जो व्यक्ति खुद ही वीमारीका शिकार हो जाता है वह दूसरोंको राह दिखानेके अयोग्य है। मैंने दूध और घीके विना काम चलानेकी कोशिश दुराग्रहकी सीमातक की; लेकिन मैं असफल रहा। यदि मैं वीमारीकी चपेटमें न आया होता, तो मैं अपने प्रयोगोंको जारी रखता, लेकिन मैं घवरा गया। ओषधियोंके सम्वन्धमें भी मुझे खेदके साथ यही वात कवूल करनी चाहिए। जो व्यक्ति अन्य लोगोंको इन चीजोंसे दूर रहनेकी सलाह देता है उसे चाहिए कि वह उसीके समान कोई दूसरा कारगर उपाय प्रस्तुत कर

सके। मैं खुद ही टूट चुका था, इसलिए मैंने, जैसा चल रहा था, चलने दिया। प्राकृतिक उपचारकी ऐसी परिसमाप्ति मेरे जीवनकी एक दुखद घटना है। यह नहीं कि मेरी इसपर से श्रद्धा ही उठ गई है बल्कि मैं अपना आत्मविश्वास ही खो बैठा हूँ। उस विश्वासको पुनः पानेमें मेरे सहायक बनो। तुमने देख लिया होगा कि मगनलालको मेरी सूक्ष्मसे-सूक्ष्म बातकी कितनी अच्छी पकड़ है। उसने मुझसे कुछ जिक्र किये बिना शिवभाईको तुम्हारे पास भेज दिया है; क्योंकि हमारी दुर्बलताका मेरे ही जितना भान उसे भी है। इसलिए हम लोग ध्यानपूर्वक तुम्हारी प्रगतिको देखते रहेंगे और वह होगा अत्यधिक सहानुभूतिके साथ। मुझे उम्मीद है कि इस सम्बन्धमें जब भी तुम्हारे मनमें बताने योग्य कोई बात उठे, तुम उसे मुझे निस्संकोच लिख भेजोगे।

हृदयसे तुम्हारा,

श्रीयुत डी० हनुमन्तराव
सत्याग्रह आश्रम
पल्लेपादु (नेलौर जिला)

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ८५०८)की माइक्रोफिल्म तथा सी० डब्ल्यू० ५११३ से।

१६५. पत्र: सरदार मंगलसिंहको

पोस्ट अन्धेरी
१६ मार्च, १९२४

प्रिय सरदार मंगलसिंह,

यह पत्र आपको श्री पणिक्करका परिचय देनेके लिए लिख रहा हूँ। वे प्रोफेसर गिडवानीकी जगह काम करेंगे। श्री पणिक्कर ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटीके एम० ए० हैं और वे प्रथम श्रेणीमें ऑनर्सके साथ उत्तीर्ण हुए थे। वे अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालयमें प्राध्यापक थे; और फिर मेरी गिरफ्तारीके बाद असहयोगमें शामिल हो गये थे। उन्होंने श्री प्रकाशम्के साथ कुछ समयतक 'स्वराज्य' कार्यालयमें भी काम किया है। अगर आप चाहें तो वे 'ऑनवर्ड'का भी सम्पादन कर देंगे। मैंने श्री पणिक्करको, हमारे बीच जो बातचीत हुई थी, उसके सारसे अवगत करा दिया है। मेरा विश्वास है कि श्री पणिक्करने अहिंसाके सिद्धान्तके अनिवार्य तत्त्वोंको हृदयंगम कर लिया है। मैंने उन्हें बता दिया है कि उन्हें जनताके सामने शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक समितिके आन्दोलनसे सम्बन्धित समस्त घटनाओंका यथातथ्य और निष्पक्ष निरूपण करना होगा। इस सम्बन्धमें समय-समयपर जो परिस्थितियाँ उत्पन्न होंगी, उनके बारेमें उनका रवैया सहानुभूतिपूर्ण तो होगा ही, लेकिन मैंने उन्हें बतला दिया है कि इसके साथ ही अगर कहीं कोई दोष नजर आये तो उसको भी छिपाना नहीं है। मैंने उनसे यह भी कहा है कि दोषोंको न छिपाकर ही उद्देश्यको सफल

बनानेकी दिशामें सर्वोत्तम सेवा होगी। वे समय-समयपर कांग्रेस कमेटीको जो रिपोर्ट भेजेंगे उसे वे मन्त्रीको भेजनेसे पहले शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक समितिके प्रधानको तो दिखा ही लिया करेंगे।

आप श्री पणिक्करके रहने और सामान्य सुख-सुविधाकी व्यवस्था करनेकी कृपा करें। कृपया आप उन्हें श्रीमती गिडवानी और श्रीमती किचलूसे भी मिला दें।

उम्मीद है कि सब काम सुचारु रूपसे चल रहा होगा। आपके साथ जो मित्र आये थे, उन्हें मेरा स्मरण दिलाइए। आशा करता हूँ, आप यथासमय मुझे पत्र लिखगे। कहना न होगा कि यह बात सुनकर मुझे कितनी खुशी हुई है कि जब जत्थेके लोगोंको गिरफ्तार किया जाने लगा तो उन्होंने चूं तक नहीं की और बहुत ही शोभनीय ढंगसे[1] गिरफ्तार हो गये।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

सरदार मंगलसिंह
अमृतसर

अंग्रेजी पत्र (एस० एन० ९९२९) की फोटो-नकलसे।

१६६. तार: शुक्लको[2]

[१६ मार्च, १९२४ को या उसके पश्चात्]

जत्थे द्वारा शोभनीय और शान्तिपूर्ण ढंगसे आत्मसमर्पण करनेके लिए समाजको बधाई। एन्ड्रयूज भी बधाई देते हैं। पणिक्कर मंगलवारको वहाँ पहुँच रहे हैं। कृपया मिलें।

गांधी

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ९९२८) की फोटो-नकलसे।

१. १७ मार्च, १९२४ को सरदार मंगलसिंहने आम जनताके दिलोंमें फैली हुई गलतफहमीको दूर करनेके लिए गांधीजी को सविस्तार पत्र द्वारा सूचित किया कि जत्थेको पहले यह निर्देश दिया गया था कि अपनी जगह दृढ़तासे बैठे रहो और स्वेच्छासे अपने-आपको गिरफ्तार मत होने दो। किन्तु इसकी जगह बादमें उनसे "खुशी-खुशी आत्म-समर्पण" करनेके लिए कहा गया और जत्थेके ५०० लोगोंने ऐसा ही किया। उन्होंने "जत्थेके अद्भुत आचरण, अदम्य उत्साह और असाधारण संयमका" भी वर्णन किया और गांधीजी से अनुरोध किया कि वे इसपर कुछ पंक्तियाँ लिखें।

२. यह तार अकाली सहायक ब्यूरोके श्री शुक्ल द्वारा १५ मार्चको दिये गये तारके उत्तरमें भेजा गया था, जो गांधीजी को १६ मार्च, १९२४ को मिला था। उसमें कहा गया था: "दूसरे शहीदी जत्थेने गिरफ्तारीका आदेश पाकर सराहनीय ढंगसे अपनेको गिरफ्तार करा दिया। अमृतसरके सरकारी पोस्टरमें उनके शान्तिपूर्ण व्यवहारको स्वीकार किया गया है।"

१६७. मूल आपत्ति

अन्धेरी
१७ मार्च, १९२४

लाहौरमें मैंने अपने डाक्टर (अब सर) जोजेफ न्यूननको[1] एक आलेख दिया था। उसपर मैंने लाहौर, १ फरवरी, १९२० लिखकर अपने दस्तखत किये थे। यह आलेख विदेशोंमें भारतीयोंकी स्थितिपर लिखे गये २२ नवम्बर, १९२३ के एक विस्तृत लेखमें उद्धृत किया गया है। चूँकि ब्रिटिश गियानामें भारतीयोंको बसानेकी एक तजवीजकी ताईदमें इसका उपयोग किया गया है और लिखा गया है कि जहाँ-तक हमें मालूम है इससे ब्रिटिश गियानाके प्रति महात्मा गांधीका आज भी क्या रुख है, यह अभिव्यक्त होता है। मुझे अपनी स्थिति साफ कर देनी चाहिए। मैंने फरवरी १९२० में जो वक्तव्य दिया था उसे नीचे दे रहा हूँ:

लाहौर
१ फरवरी, १९२०

मैं आरम्भमें ही यह बिलकुल साफ कर देना चाहता हूँ कि ऐसी कोई कारवाई करनेका मेरा इरादा नहीं है जिसका अर्थ यह निकले कि मैं आगे बढ़कर भारतीयोंको भारत छोड़नेके लिए उत्साहित करता हूँ। मैं भारतीयोंके प्रवासी बन जानेके खिलाफ हूँ। साथ ही मैं यह भी जानता हूँ कि इस सम्बन्धमें बहुतसे लोगोंका भिन्न मत है। इसलिए मैं यह भी नहीं चाहता कि कानूनके द्वारा अथवा प्रशासनिक कार्यवाही करके भारतीयोंको भारतमें रहनेपर ही मजबूर किया जाये। स्वदेश तथा विदेशोंमें उनके साथ स्वतन्त्र नागरिक-जैसा बरताव किया जाना चाहिए और उनके बारेमें जो भ्रान्तियाँ फैलाई जाती हैं, उनसे उनकी रक्षा की जानी चाहिए। मैं नहीं जानता कि साम्राज्य प्रतिरक्षा विनियम (डिफेंस आफ दी रैल्म रेगुलेशन)के अतिरिक्त और कोई ऐसा कानून है या नहीं जिसके द्वारा उन्हें भारतके बाहर जानेसे रोका जा सके। और उसकी मीयाद भी लड़ाई खत्म होनेके छः महीने बाद पूरी हो जायेगी। (इस विनियमके अनुसार लड़ाई खत्म होनेके छः महीने बादतक खास अथवा साधारण अनुमति-पत्रके बिना कोई भी अप्रशिक्षित मजदूर विदेश नहीं जा सकता)।

यदि एक बार मुझे यकीन दिला दिया जाये कि ब्रिटिश गियानामें भारतीयोंको राजनीतिक, स्वायत्त शासन सम्बन्धी कानूनी, व्यापारिक तथा औद्योगिक क्षेत्रोंमें समान अधिकार प्राप्त हैं और उनके साथ न केवल सरकार तथा

१. ब्रिटिश गियानाके महान्यायवादी।

आम लोग उचित व्यवहार करते हैं बल्कि समुचित व्यवहारके जारी रखे जानेका आश्वासन भी दिया जा रहा है तो मैं ऐसी किसी तजवीजकी मुखालफत नहीं करूँगा जिसके जरिये भारतीय किसान-परिवार ब्रिटिश गियानामें बसनेके लिए बेरोक-टोक भेजे जानेवाले हों।

यह तो ठीक है कि ब्रिटिश गियानाका संविधान उदार है और भारतीय वहाँकी धारा सभा तथा नगरपालिकाओंके सदस्य हो सकते हैं और वे होते भी हैं। यह भी सच है कि दूसरी जातियोंके साथ उन्हें समान हक हासिल हैं और वहाँ उन्हें बसनेके लिए जमीन लेनेका अवसर भी प्राप्त है। इसलिए मैं इस तजवीजको आजमाइश कर देखनेके पक्षमें हूँ, किन्तु छः महीनेके अन्तमें श्री एन्ड्रयूज या भारतीय लोकप्रिय नेताओंका कोई प्रतिनिधि इस तजवीजके अमलपर रिपोर्ट पेश करे। ब्रिटिश गियानाके शिष्टमण्डलने इस बातको स्वीकार किया है कि भारत सरकार द्वारा नियुक्त किसी निरीक्षक अधिकारीके अतिरिक्त जनताका कोई प्रतिनिधि भी अपनी स्वतन्त्र रिपोर्ट दे सकता है; और उसने उसका सारा खर्च देना भी कबूल किया है।

मैं यह मानता हूँ कि भारत सरकारके जरिये उपनिवेश कार्यालय तथा ब्रिटिश गियानाकी सरकार भारतीयों और भारतीय नेताओंको समान व्यवहार जारी रखनेके सभी आवश्यक आश्वासन दे सकती है।[1]

इस वक्तव्यका उपयोग किसी भी तजवीजकी ताईदमें करना शायद ही उचित हो। इसका उपयोग तो केवल इस बातमें हो सकता है कि श्री सी० एफ० एन्ड्रयूज या उन्हींकी श्रेणीके किसी व्यक्तिके निरीक्षणमें, जिसे कि उन्हींके समान प्रवासी भारतीयोंकी स्थितिका ज्ञान हो, प्रयोगके तौरपर एक जहाज भेज दिया जाये। किन्तु मैं स्वीकार करता हूँ कि यदि भारतीयोंकी दृष्टिसे यह प्रयोग सफल साबित हो तो पूर्वोक्त वक्तव्यके अनुसार उचित संरक्षण मिलनेपर भारतवासियोंको वहाँ बसानेकी किसी तजवीजकी मैं मुखालफत न करनेको बाध्य हूँगा। पर यह बात सबको भलीभाँति मालूम है कि फरवरी १९२० के बाद अंग्रेजी शासन प्रणालीसे सम्बन्धित मेरे विचारोंमें आमूल परिवर्तन हो गया है। जब मैंने यह वक्तव्य दिया था तब अनेक कड़वे और प्रतिकूल अनुभवोंके होते हुए भी, इस शासन-प्रथासे मेरा विश्वास पूरी तरह उठा नहीं था। पर आज मेरा उस प्रणालीके अन्तर्गत अधिकारी या समर्थकके रूपमें काम करनेवाले लोगोंके मौखिक या लिखित वादोंपर विश्वास नहीं रह गया है। दक्षिण आफ्रिका, पूर्व आफ्रिका और फीजीके प्रवासी भारतीयोंका इतिहास उनके प्रति वचन-भंगका इतिहास है। जब-जब भारतीयों और यूरोपीयोंके स्वार्थोंमें विरोध उत्पन्न हुआ तब-तब साम्राज्य सरकार और भारत सरकारने अपने कर्त्तव्यकी निन्दनीय अवहेलना की है। भारतीय निवासियोंके पहलेसे चले आ रहे हकोंकी बलि देनेके लिए पूर्व आफ्रिकाके मुट्ठीभर यूरोपीय ब्रिटिश सरकारको मजबूर करनेमें प्रायः

१. गांधीजीने इस प्रश्नके सम्बन्धमें सन् १९२० में विस्तारसे कहा था; देखिए खण्ड १७, पृष्ठ ६-८ और ९-१२।

सफल हो गये हैं। दक्षिण आफ्रिकामें भारतीय प्रवासियोंका भविष्य डाँवाडोल स्थितिमें है। फीजीमें भारतवासियोंकी हालत दाँतोंके बीच जीभके समान है। और इस बातका क्या भरोसा कि यदि परीक्षणका समय आया तो ब्रिटिश गियाना ही इसका अपवाद ठहरेगा। भारतीय इस उपनिवेशमें यूरोपीयोंके साथ प्रतिस्पर्धामें सफल हुए नहीं कि उसी क्षण लिखित अथवा मौखिक सारे वचनोंका लोप हुआ। ब्रिटिश साम्राज्य प्रणाली-के प्रति अब मेरे हृदयमें इतना अविश्वास भर गया है कि मैं ब्रिटिश गियानामें भारतीयोंको भेजनेकी किसी भी तजवीजको मंजूर नहीं कर सकता — भले ही वह तजवीज कागजपर कितनी ही मनमोहक क्यों न दिखाई दे और वचनोंके ठीक-ठीक पालन करनेका कितना ही आश्वासन क्यों न दिया जाये। ऐसी किसी भी तजवीजसे भारतीय प्रवासियोंको होनेवाला लाभ अवास्तविक ही होगा। इसलिए मैं ब्रिटिश गियानामें भारतीयोंको बसानेकी वर्तमान तजवीजको मंजूर करनेमें असमर्थ हूँ। उपर्युक्त मूल आपत्तिके कारण मुझे ब्रिटिश गियानाके शिष्टमण्डलोंसे मिले बिना ही अपनी राय प्रकट करनेमें संकोच नहीं है। यदि इस तजवीजके गुण-दोषोंके सम्बन्धमें मुझे अपनी राय देनी होती तो सामान्य शिष्टाचारके नाते उसके खिलाफ राय देनेके पहले ब्रिटिश गियानाके शिष्टमण्डलोंसे मिलकर उनका दृष्टिकोण जान लेना मेरा कर्त्तव्य हो जाता। परन्तु जबतक भारत आजाद नहीं हो जाता और जबतक भारतमें ऐसी सरकारकी स्थापना नहीं हो जाती जो पूर्ण रूपसे जनताके प्रति जिम्मेदार हो और जो प्रवासी भारतीयोंको अन्यायसे बचानेकी पूरी क्षमता रखती हो, तबतक किसी आदर्श योजनासे भी प्रवासी भारतीयोंको लाभ नहीं पहुँच सकता।

मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, २०-३-१९२४

१६८. पत्र : ए० डब्ल्यू० बेकरको[1]

पोस्ट अन्धेरी
१८ मार्च, १९२४

प्रिय श्री बेकर,

'द की टु हैपीनेस' (सुखकी कुंजी) के साथ आपका पत्र पाकर मुझे खुशी हुई। 'किसी बातकी चिन्ता न करो' का तो मुझे हमेशा सहारा रहा है। यदि मैंने अपनी सारी चिन्ताएँ ईश्वरको समर्पित न कर दी होतीं तो मैं अबतक पागल हो गया होता। आपके पत्रके दूसरे हिस्सेके बारेमें फिलहाल तो इतना ही कहा जा सकता है कि ईश्वर जिस पथपर चलनेकी मुझे प्रेरणा देता है मैं उसीपर चलनेकी कोशिश करता हूँ। मेरे अज्ञानके सिवाय अन्य कोई वस्तु मुझे उस पथसे डिगा

१. दादा अब्दुल्ला सेठके एटर्नी, जिनसे गांधीजी १८९३ में प्रिटोरियामें मिले थे। देखिए खण्ड १, पृष्ठ ८३।

नहीं सकती। मुझे अपना कोई स्वार्थ-साधन नहीं करना है, और न मेरी ऐसी कोई सांसारिक महत्त्वाकांक्षा है जिसकी पूर्ति करनी हो। ईश्वरका साक्षात्कार ही मेरे जीवनका एकमात्र उद्देश्य है, और मैं दुनियाको जितना ही अधिक देखता हूँ तथा उसके बारेमें जितने अधिक अनुभव होते जाते हैं, उतना ही मैं महसूस करता हूँ कि इस प्रेरणाको ग्रहण करनेका तरीका जुदा-जुदा हुआ करता है। ठीक उसी प्रकार जैसे सूर्य तो एक ही है फिर भी हम उसे भूमध्य रेखाके प्रदेशों, समशीतोष्ण प्रदेशों तथा शीत प्रदेशोंसे विभिन्न रूपोंमें देखते हैं। किन्तु मैं आपसे तर्क नहीं कर रहा हूँ। मेरी जो गहरी धारणा बन गई है, उसे ही मैंने व्यक्त किया है।

जिन मित्रोंसे मुझे वहाँ परिचय प्राप्त करनेका सौभाग्य मिला था, कृपया उन्हें मेरी याद दिलायें।

हृदयसे आपका,

श्री ए० डब्ल्यू० बेकर
हिल्क्रेस्ट
पोस्ट ऑफिस नार्थ रैंड
ट्रान्सवाल

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ८५२८) तथा सी० डब्ल्यू० ५१२८ से।

१६९. पत्र : बाबू हरदयाल नागको

पोस्ट अन्धेरी
१८ मार्च, १९२४

प्रिय श्री नाग[1],

आपका ९ तारीखका पत्र मिला।

आपने मेरे स्वास्थ्यके बारेमें पूछा है, इसके लिए धन्यवाद। मैं बराबर प्रगति कर रहा हूँ और स्वयं पत्र-व्यवहार करने योग्य हो गया हूँ। इसलिए कृपा करके जो-कुछ लिखना चाहते हों जरूर लिखें।

हृदयसे आपका,

बाबू हरदयाल नाग
चाँदपुर
जिला — त्रिपुरा (बंगाल)

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ८५१९) की फोटो-नकल तथा सी० डब्ल्यू० ५१२२ से।

१. बंगाल प्रान्तीय कांग्रेस कमेटीके अध्यक्ष।

१७०. पत्र: डाक्टर मु० अ० अन्सारीको[1]

पोस्ट अन्धेरी
१८ मार्च, १९२४

प्रिय डा० अन्सारी[2],

सान्त्वनाका आपका तार पाकर बड़ी राहत मिली। बड़े भाई बिस्तरपर पड़े नहीं रह सकते। ढेरों काम पड़ा है और उसे करनेवाले हम लोग बहुत ही कम है। कृपया मरीजकी दिन-प्रतिदिनकी प्रगतिके बारेमें मुझे सूचित करते रहें।

कृपया बेगम अन्सारी, डा० अब्दुर्रहमान और अन्य मित्रोंको मेरी याद दिलायें।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजी पत्र (एस० एन० ८५२१)की फोटो-नकलसे।

१७१. पत्र: शौकत अलीको

१८ मार्च, १९२४

प्रिय मित्र तथा बड़े भाई,

आपको मीयादी बुखार या किसी भी बुखारका होना ठीक नहीं। हमारे बीच बीमारी मेरी ही किस्मतमें रहे। लेकिन मैं आपको लम्बा पत्र देकर परेशान नहीं करूँगा। ईश्वर आपको शीघ्र ही स्वस्थ करे।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजी पत्र (एस० एन० ८५२०) की फोटो-नकलसे।

१. यह पत्र १८ मार्चके डा० मु० अ० अन्सारीके उस तारके जवाबमें लिखा गया था जो कि उन्होंने शौकत अलीकी बीमारीके सम्बन्धमें भेजा था। तार इस प्रकार था: "खूनकी जाँचसे बुखार मीयादी निकला। बुखार १०१ और १०४ डिग्रीके बीच रहता है। कोई अन्य दोष नहीं है, कोई चिन्ता नहीं।" (एस० एन० ८५१७)। गांधीजीने शौकत अलीको भी लिखा था; देखिए अगला शीर्षक।

२. डा० मुख्तार अहमद अन्सारी (१८८०-१९३६); राष्ट्रवादी मुस्लिम नेता; अध्यक्ष मुस्लिम लीग, १९२०; अध्यक्ष भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस, १९२७-२८।

१७२. पत्र : एन० के० वेहरेको

पोस्ट अन्धेरी
१८ मार्च, १९२४

प्रिय श्री वेहरे,

कांदिवलीमें हुए दलित वर्ग सम्मेलनमें पास किये गये प्रस्ताव मिल गये। यह कार्य आपकी तरह मुझे भी प्रिय है। निशाखातिर रहिए, जितना बनेगा करूँगा।

हृदयसे आपका,

श्री एन० के० वेहरे
मार्डन स्कूल
वर्धा

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ८५२२) की फोटो-नकल तथा सी० डब्ल्यू० ५१२१ से।

१७३. पत्र : मोतीलाल नेहरूको

अन्धेरी
१८ मार्च, १९२४

प्रिय मोतीलालजी[1],

वित्त विधेयककी[2] अस्वीकृतिके बारेमें आपका तार मिला। मैं इससे प्रसन्न हुआ हूँ क्योंकि इस विजयसे आप प्रसन्न हुए हैं। किन्तु मैं इसे लेकर बहुत खुशी दिखानेसे रहा; और मैं इस विजयसे चकित भी नहीं हुआ हूँ। उचित अनुशासन और कौशलका उपयोग करनेपर इसका सध जाना असम्भव नहीं था और मैंने आपकी जबरदस्त व्यवहार-कुशलता, कायल कर देनेवाली वाग्मिता और धमकियोंके सामने आपके धैर्यपर कभी भी सन्देह नहीं किया। मैं आपसे पूरी तरह सहमत हूँ कि यदि आपके पास संगठनके लिए और समय होता और आपको देशका अधिक समर्थन प्राप्त होता तो आप प्रान्तीय तथा केन्द्रीय विधान सभामें बाजी मार ले जाते। फिर भी मैं एक बात अपने मनको समझा नहीं पा रहा हूँ; उसके बारेमें मैंने लालाजीसे[3] थोड़ी बात

१. पण्डित मोतीलाल नेहरू (१८६१-१९३१); वकील और राजनीतिज्ञ; भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके दो बार अध्यक्ष।

२. १७ मार्चको मदनमोहन मालवीयके एक प्रस्तावपर, केन्द्रीय विधान सभाने वित्त विधेयकपर विचार करनेके लिए लाये गये एक प्रस्तावको ५७के विरुद्ध ६० मतोंसे ठुकरा दिया था। १८ मार्चको मोतीलाल नेहरूने तारमें लिखा था कि "वाइसरायकी सिफारिशसे आज फिर वित्त विधेयक लाया गया। विधान सभाने बिना मत लिये अनुमति देनेसे इनकार कर दिया।"

३. लाला लाजपतराय।

की थी। तबसे मैं बराबर उसी दिशामें सोचता रहा हूँ। एक बार तो यह भी मनमें आया कि मैं अपने विचार व्यक्त करते हुए एक लम्बा-सा पत्र लिखवा भेजूँ। किन्तु मैंने लिखवाया नहीं। इसके तीन कारण रहे। एक तो मुझे इसीमें सन्देह था कि यह उचित होगा या नहीं। दूसरे आपकी व्यस्तताको मैं जानता हूँ; इसलिए लम्बा पत्र न लिखना ठीक जान पड़ा और तीसरे यह कि मैं अपने रोजमर्राके आवश्यक कार्योंके लिए अपनी शक्ति सुरक्षित रखना चाहता था। यदि आप मूल कार्यक्रमको पूरा करनेमें सफल हो गये तो फिर हम जल्दी ही मिलेंगे।

मुझे आशा है कि आप तमाम बड़े-बड़े आश्चर्यजनक कामोंको करते हुए भी स्वस्थ होंगे।

हृदयसे आपका,

[पुनश्च :]

आपका दूसरा तार मुझे अभी मिला है। मैं कितना चाहता हूँ कि मेरे विचार आपके विचारोंसे मिल सकते और मैं आपकी खुशीमें पूरी तरह हिस्सा बँटा सकता।

पण्डित मोतीलाल नेहरू
२५, वेस्टर्न होस्टल
दिल्ली

टाइप की हुई दफ्तरी अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ८५२५) की फोटो-नकल तथा सी० डब्ल्यू० ५११८ से।

१७४. पत्र : फ्रांसिस लो को[1]

पोस्ट अन्धेरी
१८ मार्च, १९२४

प्रिय श्री लो,

मुझे आपका १७ तारीखका पत्र मिला।

अगले बृहस्पतिवारको सुबह ९ बजे आपके प्रतिनिधिसे मिलकर मुझे खुशी होगी।

हृदयसे आपका,

श्री फ्रांसिस लो
'ईवनिंग न्यूज ऑफ इंडिया'
टाइम्स बिल्डिंग
बम्बई

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ८५२४) की फोटो-नकल तथा सी० डब्ल्यू० ५१२३ से।

१. तत्कालीन सहायक सम्पादक फ्रांसिस लो ने सुझाव दिया था कि गांधीजीके स्वास्थ्यको देखते हुए भेंट लम्बी न हो; उनपर बोझ न पड़े बल्कि विवरणका आधार प्रतिनिधिपर पड़े हुए प्रभावको ही बनाया जाना चाहिए। रिपोर्टके लिए देखिए "भेंट : टाइम्स ऑफ इंडियाके प्रतिनिधिसे", २०-३-१९२४।

१७५. पत्र : फ्रैंक पी० स्मिथको[1]

पोस्ट अन्धेरी
१८ मार्च, १९२४

प्रिय मित्र,

आपके ५ फरवरीके पत्र तथा आपकी प्रशस्तिके लिए धन्यवाद।

हृदयसे आपका,

श्री फ्रैंक पी० स्मिथ
सर्वश्री थॉम्पसन और स्मिथ
लॉयर्स
सापुल्पा, ओकला
यू० एस० ए०

अंग्रेजी प्रति (सी० डब्ल्यू० ५११९) से।

१७६. पत्र : हॉवर्ड एस० रॉसको

पोस्ट अन्धेरी
१८ मार्च, १९२४

प्रिय मित्र,

आपके १५ फरवरीके पत्रके[2] लिए धन्यवाद।

१. ऑक्लेहोमा, संयुक्त राज्य अमेरिकाके वकीलोंकी एक फर्मके सदस्य फ्रैंक स्मिथने लिखा था: "संसारके सभी राजनीतिज्ञोंको में ईसाई दृष्टिकोणसे देखकर और उनमें आपको सर्वोपरि मानकर आपका अभिनन्दन करता हूँ। ईश्वरके ज्ञानमय होनेका महान् सिद्धान्त जो प्रत्येक स्थानपर अपनी पूर्ण शक्तिके साथ अपने अनन्त उद्देश्योंकी ओर आगे बढ़ता जा रहा है, यह बतायेगा कि मेरी आपके प्रति कितनी श्रद्धा है। आपकी ही सर्वप्रथम नीति है जो भौतिकताकी अपेक्षा आध्यात्मिकताको और शारीरिक बलकी अपेक्षा प्रेमको तरजीह देती है। चिरस्थायी विश्वशान्तिके आपके दृष्टान्तका हम भली-भाँति अनुसरण कर सकते हैं।" (एस० एन० ८२३४)।

२. इस पत्रमें उस योजनाका उल्लेख है जिसके अन्तर्गत 'रिजल्ट यूनिट' को 'वर्क यूनिट' में परिवर्तित कर दिया गया था। पत्रका दावा था कि श्रमिकोंसे सम्बन्धित सारी अशान्तिका यही कारण है। रॉसने आन्दोलनके मुखपत्र इक्विटिस्टकी एक प्रति भी गांधीजी को भेजी थी। (एस० एन० ८३३६)

अपने वर्तमान स्वास्थ्यको देखते हुए मैं उन्हीं बातोंपर ध्यान दे पाता हूँ जिन्हें जानता हूँ और जिनपर ध्यान देना अनिवार्य होता है।

हृदयसे आपका,

श्री हॉवर्ड एस० रॉस
सर्वश्री मोन्टी, ड्यूरनल्यु, रॉस और ऐंगर्स
बैरिस्टर तथा सॉलिसिटर्स
वर्सेल्स बिल्डिंग्स
९०, सेंट जेम्स स्ट्रीट
मॉन्ट्रियल (कैनेडा)

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ८५२३) की फोटो-नकल तथा सी० डब्ल्यू० ५१२० से।

१७७. पत्र : के० पी० केशव मेननको

पोस्ट अन्धेरी
१९ मार्च, १९२४

प्रिय केशव मेनन,

आपका पत्र[1] मिला।

मैं जानता हूँ कि भारतमें आपकी तरफ दलित-वर्गोकी हालत सर्वाधिक बुरी है। जैसा कि आप कहते हैं, वे केवल अछूत ही नहीं हैं बल्कि उन्हें कुछ विशेष सड़कोंपर चल सकनेकी इजाजत तक नहीं है। उनकी दशा सचमुच शोचनीय है। फिर यदि अभी-तक हमें स्वराज्य नहीं मिला तो इसमें आश्चर्यकी क्या बात है। अपने इन देशभाइयों-के आम सड़कोंका उपयोग करनेके अधिकारका समर्थन करनेके लिए प्रान्तीय कमेटी एक जुलूसका आयोजन कर रही है, जिसमें वे शरीक होंगे और जुलूस मनाहीवाली सड़कोंसे गुजरेगा।[2] यह सत्याग्रहकी एक किस्म है। इस स्थितिमें मुझे इसकी शर्तोंपर ध्यान दिलानेकी जरूरत नहीं है। यदि हममें से कोई व्यक्ति उनकी प्रगतिका विरोध करे तो जरा भी बल-प्रयोग नहीं होना चाहिए। आपको विनम्रतापूर्वक आत्मसमर्पण कर देना चाहिए और यदि मार पड़े तो उसे भी सह लेना चाहिए। जुलूसमें भाग लेनेवाले हर व्यक्तिको इन शर्तोंसे अवगत कराना चाहिए और उन्हें पूरा करनेके लिए

१. केशव मेननने १२ मार्चके अपने पत्रमें गांधीजीको सूचना दी थी कि इजावा, तय्या और पुलया लोगोंका एक जुलूस मन्दिरके चारों ओरकी निषिद्ध सार्वजनिक सड़कोंपर यथासम्भव अत्यन्त अनुशासनपूर्ण ढंगसे निकाला जायेगा; देखिए परिशिष्ट ९।

२. एक समाचारपत्रमें रिपोर्ट थी कि "यदि अधिकारीगण निषिद्ध व्यक्तियोंको मन्दिरकी सड़कसे गुजरनेकी मनाही करें तो वाइकोममें सत्याग्रह शुरू करनेकी तैयारी जोरोंसे हो रही है।" आगे क्या कदम उठाये जायें, यह निर्णय करनेके लिए अस्पृश्यता समितिकी बैठक २८ मार्चको होगी।

उसे तैयार रहना चाहिए। केवल तय शुदा थोड़े लोग जुलूसमें भाग लें। शर्तोंका उल्लंघन बिलकुल नहीं होना चाहिए और यदि आपको लगे कि जुलूसके लोग शर्तोंका पालन नहीं करेंगे तो जुलूसको मुल्तवी करनेसे नहीं झिझकना चाहिए। मेरी समझमें हमने सुधार-विरोधियोंके बीच काफी प्रचार नहीं किया, इसलिए अधिक सावधानी बरतनेकी जरूरत है। मैं जानता हूँ कि समस्या बहुत कठिन है। बिस्तरपर बीमार पड़े-पड़े सलाह देना काफी आसान है। इसलिए सावधान कर देनेके बाद मैं प्रस्तावित आयोजनमें आपके लिए पूरी सफलताकी कामना करनेसे अधिक और क्या कर सकता हूँ।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत के० पी० केशव मेनन
कालीकट

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १०२६२) की फोटो-नकल तथा सी० डब्ल्यू० ५१२४ से।

१७८. पत्र : डी० आर० मजलीको

१९ मार्च, १९२४

प्रिय मजली,

मेरा हाथ अब उतना नहीं काँपता। तुम्हारा पोस्टकार्ड पाकर कितना आनन्द मिला। जब कभी लिख सको जरूर लिखो। मुझे पूरा विश्वास है कि शीघ्र ही तुम्हारा मन शान्त हो जायेगा। जब कभी आनेकी अनुमति मिले और आने लायक हो जाओ, तो यहाँ आनेमें संकोच न करना।

हृदयसे तुम्हारा
मो० क० गांधी

डी० आर० मजली
बेलगाँव

अंग्रेजी पत्र (एस० एन० ८५३०) से।

१७९. पत्र : सी० विजयराघवाचार्यको[1]

पोस्ट अन्धेरी
१९ मार्च, १९२४

प्रिय मित्र,

आज मैं आपकी भेंटके ब्योरेको[2] शुरूसे आखिरतक पढ़ पाया हूँ।

आपने कुछ ऐसे विषय छुए हैं जिनमें से कुछपर मैं तबतक मौन रहनेके लिए वचनबद्ध हूँ, जबतक कि परिषद्में प्रवेशकी जोरदार वकालत करनेवाले नेताओंसे मिल नहीं लेता।

पिछली कांग्रेस[3] सफल रही या नहीं, यह एक ऐसा प्रश्न है जिसपर मैं कुछ नहीं कह सकता, क्योंकि मैं वहाँ नहीं था। इस प्रश्नपर आपकी टिप्पणी बहुत दिलचस्प है।

लगता है, आप सोचते हैं कि कांग्रेसने अस्पृश्यता और सामान्य राष्ट्रीय शिक्षाकी दिशामें बहुत कम काम किया है। मैं इस विचारसे असहमति व्यक्त करता हूँ। कांग्रेसी हिन्दुओंके लगातार प्रचारके कारण अस्पृश्यता-निवारण निकट भविष्यमें सम्भव हो गया है। निःसन्देह, अब भी बहुत-कुछ करना बाकी है। जो अन्धविश्वास अपनी प्राचीनताके कारण अनुपयुक्त रूपसे पवित्र माने जाने लगे हैं उन्हें जड़से उखाड़ना आसान काम नहीं है। लेकिन यह बाधा हटती जा रही है।

मैं आपके इस मन्तव्यका हृदयसे अनुमोदन करता हूँ कि सभी अल्पसंख्यकोंको प्रेरित करके देश-सेवामें लगाना हिन्दुओंका कर्त्तव्य है।

अच्छा होता कि अस्पृश्यताके विरुद्ध आपकी घोषणा और भी सुनिश्चित तथा कठोर होती। उसके मूलकी खोजसे मुझे कोई प्रयोजन नहीं। अवश्य ही मुझे इसमें सन्देह नहीं है कि पापको बराबर बनाये रखनेके लिए उच्चतर वर्ण पूर्ण रूपसे उत्तरदायी हैं। आपने कुछ अवसरोंपर स्त्रियों तथा अन्य लोगोंको न छूनेकी प्रथाको दलितवर्गों और उनके वंशजोंकी उस अस्पृश्यताके सदृश बताया है जो प्रत्येक परिस्थितिमें स्थायी रहती है; यह उचित नहीं है। इन वर्गोंकी दशा सुधारनेके लिए आपने जो उपाय सुझाये हैं, उनसे भी मैं प्रभावित नहीं हुआ।

आप कहते हैं कि अदालतों और सरकारी स्कूलोंका बहिष्कार समाप्त कर देना चाहिए। इस सुझावके औचित्यपर मुझे सन्देह है। यद्यपि उसका इस समय कोई मूल्य नहीं, तथापि इसी कारण वह कम महत्त्वपूर्ण नहीं हो जाता। इन दोनों ही

१. सी० विजयराघवाचार्य (१८५२-१९४३); एक प्रमुख वकील और कांग्रेसी। १९२० में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके नागपुर अधिवेशनके अध्यक्ष।

२. यह हिन्दू और टाइम्स ऑफ इंडियामें प्रकाशित हुआ था। विजयराघवाचार्यने गांधीजी को एक नकल भेजी थी जो उपलब्ध नहीं है।

३. कोकोनाडा अधिवेशन, १९२३।

संस्थाओंने अपनी प्रतिष्ठा खो दी है। जरूरत इस बातकी है कि बहिष्कार न करनेवाले लोगों अर्थात् अब भी वकालत करनेवाले लोगों और अब भी सरकारी स्कूलोंमें पढ़नेवाले छात्रोंके प्रति यदि जरा-सा भी कटुताका भाव हो तो उसे दूर किया जाना चाहिए। यदि हम उनके प्रति कटुतापूर्ण विद्वेष नहीं रखते वरन् उन्हें स्वतन्त्र निर्णयका हक देते हैं या उनकी दुर्बलताके लिए उनके प्रति सहानुभूति रखते हैं तो हम इस प्रकार दोनोंको ही अपनी ओर कर लेंगे। मुझे विश्वास है कि यदि हम कहीं अच्छी तरह या पूरी तरह सफल नहीं हुए हैं, तो उसका प्रमुख कारण हमारी असमर्थता या अपने व्यक्तिगत आचरणमें सम्पूर्ण रूपसे अहिंसापर अमल करनेकी हमारी अनिच्छा रही है।

स्वराज्यके बादकी स्थितिके बारेमें आपने जो सुझाव दिया है उसपर मैं कुछ नहीं कहना चाहता। इसलिए कि आखिर जिन उपायोंसे स्वराज्य मिलेगा वही काफी हदतक स्वराज्यके बाद हमारा कार्यक्रम निश्चित करेंगे।

आप ऐसा सोचते जान पड़ते हैं कि आनेवाले वर्षोंमें शायद एक शताब्दीतक या हमेशाके लिए हमें निश्चित रूपसे इंग्लैंडके साथ साझेदारी रखनी पड़ेगी और यह अपनी मर्जीसे नहीं, मजबूरन। इसीलिए जाहिर है कि आप ब्रिटिश सम्बन्धोंके बिना स्वराज्यके बारेमें सोच ही नहीं सकते। मेरी रायमें यदि हमारे अस्तित्वके लिए ब्रिटिश सम्बन्ध आवश्यक हैं, तो फिर हम चाहे जितनी स्वतन्त्रता पा जायें, उसे पूर्ण स्वराज्य नहीं कहा जा सकता, क्योंकि मेरी नम्र रायमें, पूर्ण स्वराज्यका अर्थ है कि कारण उपस्थित होनेपर हम यह सम्बन्ध तोड़नेमें समर्थ हों। मेरे लिए ऐसी साझेदारीका कोई अर्थ नहीं जिसमें एक पक्ष इतना कमजोर हो कि उसे तोड़ ही न सके। आपके तर्कसे तो यह भी अर्थ निकलता है कि स्वराज्य केवल ब्रिटिश संसदसे मिलेगा। आप मेरे विचार जानते हैं। मेरी स्वराज्यकी परिभाषा यह है कि हमें उसे प्राप्त करना है और इसलिए हमें उसके लिए तैयार होना है। चाहे व्यक्ति हो या राष्ट्र यह स्वतन्त्रताकी शाश्वत शर्त है। इसके अलावा यदि स्वराज्य केवल ब्रिटिश संसदसे दानके रूपमें मिलना है तो मेरी रायमें परिषदोंमें प्रवेशके विरुद्ध सारा तर्क व्यर्थ हो जाता है।

आशा है आपका स्वास्थ्य ठीक होगा। मेरा स्वास्थ्य धीरे-धीरे लेकिन बराबर सुधरता जा रहा है।[1]

हृदयसे आपका,

श्रीयुत सी० विजयराघवाचार्य
आराम
सेलम

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ८५२६) की फोटो-नकल तथा सी० डब्ल्यू० ५१२५ से।

१. विजयराघवाचार्यने इस पत्रका उत्तर २३ मार्चको दिया था। देखिए "पत्र: सी० विजयराघवाचार्यको", २८-३-१९२४; तथा परिशिष्ट १० भी।

१८०. पत्र : एस० ई० स्टोक्सको

पोस्ट अन्धेरी
१९ मार्च, १९२४

प्रिय मित्र,

रजिस्ट्रीसे भेजा बंडल[1] रविवारको मिल गया था और चूँकि कल अस्पतालमें भरती होनेके बाद मेरे मौनका पहला सोमवार था, मैं दोनों ही चीजें पढ़ गया। स्मरण-पत्र आपकी इच्छानुसार मैं ऊपर भेजे दे रहा हूँ। दोनों उपयोगी हैं और जानकारी देते हैं। उन्होंने मेरे सामने एक ऐसे व्यक्तिकी मनोभावना रखी जिसकी निष्पक्षताके बारेमें मुझे कोई सन्देह नहीं और जिसके विचारोंकी मैं कद्र करता हूँ। यदि कहीं मैं आपके दिये हुए तथ्यों और असहयोग सम्बन्धी विचारोंको स्वीकार कर सकता तो फिर मुझे आपसे सहमत होनेमें कोई बाधा नहीं रहती। मैं आपकी इस रायका पूरी तरह अनुमोदन करता हूँ कि यदि परिषद्में कोई प्रवेश करता है तो उसका प्रवेश वहाँके काममें केवल रुकावट डालनेके लिए नहीं होना चाहिए। इसके विपरीत हमें सरकार द्वारा दी गई प्रत्येक अच्छी वस्तुसे लाभ उठाना चाहिए और उनमें जो बुराई हो उसे सुधारनेकी अपनी तरफसे पूरी कोशिश करनी चाहिए। आपका तर्क स्वीकार करूँ तो फिर मुझे आपके इस विचारका भी अनुमोदन करना चाहिए कि वकीलों और अदालतों-परसे भी निषेधाज्ञा हटा ली जानी चाहिए। परन्तु मेरा खयाल है कि शायद हम दोनोंमें अहिंसात्मक असहयोगकी व्याख्या और उसके निहितार्थके बारेमें मौलिक मतभेद हैं और इसीलिए जेलसे बाहर आनेपर आपको चारों ओर परिस्थिति निराशाजनक नजर आई, क्योंकि आपने महसूस किया और देखा कि कांग्रेसकी सब गति-विधियाँ कुण्ठित हो गई हैं। किन्तु मैं ऐसी हालतमें इस कुण्ठाको दूर करनेके अन्य उपाय न सोचता। मैं इसे देशके सार्वजनिक जीवनके विकासमें एक जरूरी अवस्था मानता। मैं इसे एक दुर्लभ अवसर मानता और अपने प्रयत्नोंको द्विगुणित करता तथा इससे मुझे कार्यक्रममें अपने विश्वासकी परीक्षा करनेकी और भी अधिक दुर्लभ, विशेष सुविधा उपलब्ध होती। आपने अपने व्यक्तिगत अनुभव बताये हैं और स्वभावतः निष्कर्ष निकाला है कि कार्यक्रमके सम्बन्धमें कुछ गलती हुई जिससे कि यह कार्य जिसका कि आपने और आपके सहयोगियोंने धैर्यपूर्वक निर्माण किया था एक क्षणमें प्रायः विनष्ट हो गया। लेकिन वकीलोंमें एक कहावत है कि विशेष परिस्थितियोंमें जो किया गया हो उसे कानूनकी प्रतिष्ठा देना अनुचित है। यदि इसका ठीक अर्थ लें तो यह एक ठोस सत्य है। धार्मिक दृष्टिकोणसे इसकी व्याख्या की जाये तो इसका अर्थ होगा कि कुछ विशेष परिस्थितियोंमें धार्मिक सत्यसे अलग हटना भले ही लाभप्रद मालूम पड़े, किन्तु उन्हें सत्यपर से विश्वास खो देनेका कोई आधार नहीं माना जा

१. इनमें दो 'स्मरणपत्र' थे जो परिषद्में प्रवेशके मामलेको अधिक पूर्ण रूपसे प्रस्तुत करते थे।

सकता। यदि मेरे मनमें आप जैसी बात उठती तो मैं सोचता "इस प्रकार कियेधरे-पर पानी फेरकर लोगोंने सच्ची वस्तु प्राप्त करनेके लिए बलिदान ही किया है।" यह सच्ची वस्तु क्या है? साधारण जनताके लिए सच्ची वस्तु प्राप्त करनेका अर्थ शक्तिके प्रति अन्धविश्वाससे अपनेको मुक्त करना है। युगोंसे उसे अपने हर काम तथा अपनी रक्षाके लिए सरकारका मुंह ताकना सिखाया गया है। सरकार उसके लाभका साधन बननेकी बजाय उनसे अलग और ऊँची एक ऐसी चीज बन गई है जो चाहे दुष्ट हो चाहे सदय, जनताको उसे देवताकी तरह मानना होता है। मेरी कल्पनाके अनुसार असहयोगका मतलब उस सरकारके साथ सहयोग न करना है, जिसके विषयमें उक्त विचार रूढ़ हो गये हैं। उसका मतलब लोगोंको यह महसूस करनेकी तालीम देना है कि सरकार उनकी बनाई हुई है; वे सरकारके बनाये हुए नहीं हैं। इसलिए सरकारके माध्यमसे हम अबतक जो तथाकथित लाभ पाते रहे हैं यदि हमें [असहयोगके कारण] उनमें से अनेकका परित्याग करना पड़े तो यह आश्चर्यकी बात नहीं होगी। यदि हमारा असहयोग अहिंसात्मक न होता तो हम सरकारको उसीके साधनों अर्थात् शस्त्रोंकी शक्तिसे उसी प्रकार परास्त करनेकी कोशिश करते, जिस प्रकार इतिहासमें सभी राष्ट्रोंने की है। ऐसे संघर्षमें सरकार रूपी मशीनके एक-एक पुर्जेका उपयोग न करना एक भूल होगी। हिंसापूर्ण संघर्षमें लोग आत्म-बलिदानकी आशा भले न करें किन्तु वे उसके लिए तैयार होते हैं। अगर उनके पास सरकारसे अच्छे शस्त्र हैं, तो वे बिना किसी आत्म-बलिदानके उसे परास्त कर देते हैं। किन्तु अहिंसात्मक संघर्षमें शस्त्रोंका सहारा नहीं लिया जाता और उसमें तात्कालिक आत्म-बलिदान अनिवार्य होता है। अपने इस संघर्षमें भी हम अमली तौरपर सितम्बर १९२०[1] से आत्म-बलिदान करते रहे हैं। वकील, अध्यापक, विद्यार्थी, व्यापारी हर वर्गके लोग, जिन्होंने अहिंसा-त्मक असहयोगका आशय समझा है, सभीने अपनी योग्यता और कल्पनाके अनुसार कुर्बानियाँ की हैं। मैं ऐसे लोगोंको जानता हूँ जिन्होंने आर्थिक हानिको इसलिए स्वीकार कर लिया कि उन्हें अदालतमें जाना स्वीकार नहीं था। सरकारी अधिकारियोंको गर्व और आनन्दसे यह कहते भी सुना गया है कि जो लोग उनके साथ सहयोग करनेके कारण पहले लाभ उठाते थे अब असहयोग करके नुकसान उठा रहे हैं। परन्तु जिन्होंने संघर्षको पूरी तरह समझकर नुकसान उठाया, उन्होंने उसे लाभ ही माना है। मेरा दृढ़ विश्वास है कि वर्तमान शासन-प्रणाली और प्रशासकोंकी वर्तमान मनोवृत्तिके रहते, तबतक परिषदोंमें जाना सम्भव नहीं है जबतक कि आप उस अत्यन्त निकृष्ट प्रकारकी हिंसामें भाग नहीं लेते, जिसपर भारत सरकार डटी है। फिर संसारकी अन्य सरकारोंके इतिहासको लीजिए। उदाहरणके तौरपर मैं मिस्रकी सरकारको लेता हूँ। वहाँके लोग जो-कुछ चाहते हैं, वे उसे लगभग हासिल कर चुके हैं। उन्होंने अबतक संसारमें अपनाये गये सामान्य उपायोंका सहारा लिया। मिस्रके लोगोंको शस्त्रोंका उपयोग करनेका अभ्यास था और इसलिए उनके लिए परिषदों तथा सम्पूर्ण प्रशास-निक ढाँचेका उपयोग कर देखनेका मार्ग खुला था। क्योंकि उसमें असफल होनेपर

१. देखिए खण्ड १८।

शस्त्रबलसे वे अपनी स्थितिकी रक्षा करनेमें समर्थ थे और अवसर आनेपर उसका उपयोग करना चाहते थे। जहाँतक मैं जानता हूँ भारत-जैसी हालत संसारमें दूसरी जगह नहीं है। सामूहिक रूपसे लोग शस्त्र उठानेमें न तो समर्थ हैं और न वे वैसा करना चाहते हैं। यदि आप परिषदोंमें जायें और वहाँ सरकारके हाथों अपने उद्देश्यमें पराजित हो जायें तो फिर आपको विद्रोह करनेके लिए तैयार रहना चाहिए। किन्तु भारतमें सशस्त्र विद्रोह सफलतापूर्वक नहीं किया जा सकता। वर्तमान पार्षदोंमें भी ऐसे लोग नहीं हैं जो लोगोंको सशस्त्र विद्रोहकी तालीम दे सकते हों। मैं विद्रोहकी जगह दूसरा कोई उपाय खोजना चाहता था। वह उपाय सविनय अवज्ञा है। इन परिषदोंमें जनता तो क्या पार्षद भी सविनय अवज्ञा करना नहीं सीख सकते। वे 'जैसेको तैसा' की नीतिमें विश्वास करते हैं और सरकारी पक्षके वितण्डावाद, टालमटोल यहाँतक कि धोखाधड़ीका भी जवाब वितण्डावाद, टालमटोल और धोखाधड़ीसे ही देते हैं। उनका प्रकट उद्देश्य सरकारको परेशानीमें डालना है। सरकारके हृदयमें भय पैदा करना उनका उपाय है। असहयोगियोंका प्रकट उद्देश्य सरकारको परेशानीमें डालना कदापि नहीं है और वे हमेशा हृदयको छूना चाहते हैं और इसलिए प्रेम और विश्वास ही उनका साधन हो सकता है।

स्पष्ट ही आप कुछ इस तरह विचार करते जान पड़ते हैं कि आत्मा और धर्मकी प्रेरणासे किया गया असहयोग परिषदोंमें विशुद्ध राजनीतिक असहयोगके साथ-साथ चल सकता है। मेरी समझमें ये दोनों एक दूसरेके दुश्मन हैं। धर्मप्रेरित असहयोगमें मेरा इतना अडिग विश्वास है कि यदि मुझे यह लगे कि इससे भारतकी जरूरतें पूरी नहीं होंगी और जनताकी भी उसके प्रति अनुकूल प्रतिक्रिया नहीं होती, तो मैं अकेला ही असहयोग करनेमें सन्तोष मानूँगा और मनमें यह आशा रखूँगा कि अमोघ होनेके कारण वह अन्ततोगत्वा जनताका रुख बदल देगा। वास्तवमें जबतक अहिंसाको जीवनका सहज और सर्वोपरि नियम नहीं मान लिया जाता तबतक अन्य किसी उपायसे मुझे संसारके त्राणकी सूरत नजर नहीं आती। आज तो समाजका अन्तिम आधार शरीर-बल है। और यह हिंसा है। मेरा प्रयत्न बलकी पूजासे मुक्त होना है; मेरे लेखे स्वतन्त्रता इससे कम कुछ भी नहीं है। और मेरा विश्वास है कि यदि कोई एक देश इस सिद्धान्तको विस्तृत एवं व्यावहारिक रूपमें पूरी तरह आत्मसात् करने योग्य है तो वह भारत है। अपने इस विश्वासके कारण मेरे पास अपने देशकी जरूरतें पूरी करनेके लिए कोई दूसरा उपाय नहीं है।

मेरा खयाल है कि मैं जितना-कुछ कहना चाहता था, उससे ज्यादा कह चुका हूँ। मैंने जो कहा है उसे और भी परिपूर्ण रूपमें कहा जा सकता है, किन्तु कथनकी मेरी छोटी-मोटी त्रुटियोंको आप निस्सन्देह स्वयं सुधार सकते हैं। परिषद्-प्रवेश और इसी तरहके मामलोंपर अपनी राय व्यक्त करनेके लिए मैं प्रायः आतुर हूँ और आपका स्मरणपत्र पढ़नेके बाद और भी ज्यादा आतुर हो गया हूँ। लेकिन मैंने मोतीलालजी, हकीमजी और अन्य मित्रोंसे वायदा किया है कि जबतक मैं उनसे मिलकर सभी बातोंपर बातचीत नहीं कर लेता तबतक मैं अपने विचार सार्वजनिक रूपसे व्यक्त नहीं करूँगा। जब मैं इस प्रश्नपर अपने मनके सभी विचार

व्यक्त करनेके लिए आजाद रहूँगा और यदि आपको अपने लेखनसे समय मिलेगा तब आप उस रूपरेखाके विकासको देखेंगे जो मैंने ऊपर खींची है।[1]

सप्रेम,

हृदयसे आपका,

श्री एस० ई० स्टोक्स
कोटगढ़
शिमला हिल्स

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ८५२७) की फोटो-नकलसे।

१८१. वक्तव्य : अफीम-सम्बन्धी नीतिपर

श्री सी० एफ० एन्ड्र्यूजने भारत सरकारकी अफीम-सम्बन्धी नीतिके बारेमें 'यंग इंडिया' में लिखे गये अपने लेखोंमें से एक अनुच्छेद मुझे दिखाया है। उसमें उन्होंने मई १९२३ में हुए जेनेवा सम्मेलनमें सरकारके प्रतिनिधि श्री कैम्बेलके कथनको उद्धृत किया है।[2] इसमें श्री कैम्बेलने यह कहा बताते हैं कि "प्रारम्भसे ही भारतने अफीमके प्रश्नपर पूरी नेकनीयती बरती है, और उसके अत्यन्त तीव्र विरोधियोंने, यहाँ-तक कि श्री गांधीने भी, इस विषयमें उसकी कभी कोई भर्त्सना नहीं की है।" श्री एन्ड्र्यूजने मुझे जो वक्तव्य दिखाया है, वह उस समय लिखा गया था, जब मैं यरवदा जेलमें था। श्री एन्ड्र्यूजने बताया कि वे चूंकि आफ्रिकाके सम्बन्धमें मेरे विचार जानते थे, इसलिए उन्होंने मेरे विरुद्ध श्री कैम्बेलके अभियोगका प्रतिवाद करनेमें संकोच नहीं किया। किन्तु विषयके महत्त्वको देखते हुए उनकी इच्छा है कि भारत सरकारकी अफीम-सम्बन्धी नीतिके विषयमें मैं अपनी स्थिति स्पष्ट कर दूं, और वह इस प्रकार है। मैं स्वीकार करता हूँ कि अफीमके प्रश्नपर मेरा अध्ययन बिलकुल सतही है। किन्तु १९२१ में मद्यपानके विरुद्ध बड़े उत्साहसे ही नहीं, वरन् बड़ी उग्रतासे जो आन्दोलन प्रारम्भ किया गया था, वह केवल मद्यपानके अभिशापके विरुद्ध ही नहीं, सभी मादक द्रव्योंके विरुद्ध था। यह सच है कि उसमें अफीमका अलगसे उल्लेख नहीं किया गया था और कदाचित् असमके अतिरिक्त और कहीं भी अफीमके अड्डोंपर धरना ही दिया गया था, किन्तु जो मद्य-विरोधी आन्दोलनके इतिहासके बारेमें थोड़ा-बहुत भी जानते हैं, उन्हें मालूम है कि सभी प्रकारके मादक द्रव्योंके विरुद्ध, जिनमें चाय तक शामिल थी, अविरत प्रचार किया गया था। असमकी मेरी यात्रामें, असमके असहयोगी नेता

१. इसका उत्तर स्टोक्सने २५ मार्चको दिया था; देखिए (एस० एन० ८५८१)।

२. सम्मेलनमें भारतीय प्रतिनिधिने राष्ट्र-संघ द्वारा केवल औषधि निर्माणके लिए कितनी अफीमकी जरूरत है इस सम्बन्धमें जाँच करने और अपनी रिपोर्ट देनेके लिए एक जाँच-मण्डलकी नियुक्ति करनेके प्रस्तावका विरोध किया था।

श्री फूकनने मुझसे कहा था कि वह अभियान असमियोंके लिए वरदान बनकर आया है, क्योंकि भारतके किसी भी अन्य भागकी अपेक्षा असमकी जनसंख्याका एक बहुत बड़ा भाग विविध रूपोंमें अफीमके व्यसनसे ग्रस्त है। श्री फूकनने कहा, इस आन्दोलनसे व्यापक सुधार हुआ है, और हजारोंने अफीमको कभी भी न छूनेकी प्रतिज्ञा ले ली है। मैं समझता था कि सरकारकी शराब-सम्बन्धी नीतिकी जो मैं बारम्बार घोर निन्दा करता आया हूँ उसके अन्तर्गत मादक पेयों और द्रव्योंके सम्बन्धमें उसकी समूची नीतिकी निन्दा भी आ जाती है और इसलिए अफीम, गाँजा आदिकी अलगसे निन्दा करनेकी आवश्यकता नहीं है। जो सेना बाहरी आक्रमणोंको रोकनेके लिए नहीं, बल्कि ब्रिटेनकी खातिर किये जानेवाले भारतके शोषणसे उत्पन्न असन्तोषको दबानेके लिए रखी गई है, यदि उस सेनाका अनिष्टकारी एवम् बढ़ता हुआ खर्च देशपर न पड़ता, तो अनैतिक साधनोंसे की गई ऐसी आमदनीकी कोई आवश्यकता न होती। जब श्री कैम्बेल यह कहते हैं कि भारत (यानी भारत सरकार) ने अफीमके प्रश्नपर पूरी नेकनीयती बरती है, तब वे आमदनी बढ़ानेके लिए ही चीनपर हथियारोंके जोरसे अफीम लादे जानेकी बात स्पष्टत: भूल जाते हैं।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २०-३-१९२४

१८२. पत्र : आर० एन० माण्डलिकको

पोस्ट अन्धेरी
२० मार्च, १९२४

प्रिय श्री माण्डलिक,

आपका पत्र[1] मिला।

मैंने 'नवाकाल' नहीं देखा है। इसलिए मुझे अपनी कोई राय जाहिर नहीं करनी चाहिए। श्री खाडिलकरके लिए मेरे मनमें बड़ा आदर है। इसलिए उन्होंने जो-कुछ लिखा है उसे जाने बिना और यदि उसे जाननेपर उससे सन्तोष न हो तो उसके बारेमें उनसे मिले बिना, उसपर मैं कोई राय नहीं दे सकता। इसलिए आपने जो प्रश्न उठाया है उसपर फिलहाल कोई राय न देनेके लिए आप कृपया मुझे क्षमा

१. १९ मार्चको माण्डलिकने लिखा था कि खाडिलकरने **नवाकाल**में यह सुझाव दिया है कि यदि वाइसरायने विधान सभा द्वारा अस्वीकृत वित्त विधेयकको जारी किया तो मोतीलाल नेहरू और अन्य स्वराज्यवादी नेताओंको गांधीजीके नेतृत्वमें मार्चके अन्ततक असहयोग आन्दोलनके लिए तैयार रहना चाहिए। उन्होंने गांधीजीसे पूछा था कि क्या सचमुच ऐसी बात है और क्या वे इस विचारसे सहमत हैं और विश्वास करते हैं कि ऐसा आन्दोलन सफल होगा?

करेंगे। आपने 'नवाकाल' के जिस अंकका उल्लेख किया है, कृपया उसकी एक प्रति[1] निशान लगाकर मुझे भेज दें।

हृदयसे आपका,

श्री आर० एन० माण्डलिक
'लोकमान्य' आफिस
२०७, रास्तीबाई बिल्डिंग, गिरगांव
बम्बई – ४

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ८५४४) की फोटो-नकल तथा सी० डब्ल्यू० ५१२९ से।

१८३. पत्र : सरदार मंगलसिंहको

पोस्ट अन्धेरी
२० मार्च, १९२४

प्रिय सरदार मंगलसिंह,

आपका पत्र पाकर खुशी हुई।

आशा है मेरा बधाईका तार[2] समयपर मिल गया होगा। अभीतक तो मैं सार्वजनिक रूपमें कुछ कहनेसे विरत रहा हूँ, क्योंकि मैं नहीं जानता कि मेरे वहाँके मित्र मुझसे इस मामलेमें क्या अपेक्षा रखते हैं। किन्तु आपका पत्र मिलनेपर मैं उसका प्रयोग करना चाहता था ताकि जत्थेके[3] शानदार बरतावका उचित उल्लेख कर सकूँ। लेकिन इस आशंकासे कि आप मेरे इस कथनको ठीक मानेंगे या नहीं, मैंने एक स्वतन्त्र सन्देश[4] लिखा है जिसकी एक नकल मैं इस पत्रके साथ भेज रहा हूँ। कृपया मुझे आगेकी प्रगतिसे सूचित करते रहें।

कृपया अन्य मित्रोंको मेरी याद दिलायें।

हृदयसे आपका,

सरदार मंगलसिंह
"अकाली-ते-परदेशी"
अमृतसर

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ८५४१) की फोटो-नकल तथा सी० डब्ल्यू० ५१२७ से।

१. ऐसा लगता है कि समाचारपत्रकी एक प्रति बादमें गांधीजी को भेजी गई थी। देखिए "पत्र: आर० एन० माण्डलिकको", २८-३-१९२४।

२. देखिए "तार: शुक्लको", १६-३-१९२४को या उसके पश्चात्।

३. आशय अकालियोंके उस दूसरे शहीदी जत्थेसे है जो मार्चके मध्यतक जैतोंके पासवाले गंगसर गुरुद्वारे पहुँचा था और जिसने शान्त रहकर अपनेको गिरफ्तार होने दिया था।

४. उपलब्ध नहीं है।

१८४. पत्र : राजबहादुरको

पोस्ट अन्धेरी
२० मार्च, १९२४

प्रिय तरुण मित्र,

तुम्हारा पत्र मिला।

तुमने अपने पिताकी आज्ञाका पालन नहीं किया यह निश्चित ही अशिष्टता हुई। उन्होंने तुम्हें जो करनेको कहा था वह अपने-आपमें शुद्ध था और यदि तुम्हारी अन्तरात्माने उसे शुद्ध कहनेकी अनुमति न दी हो तो भी वह निश्चय ही अशुद्ध नहीं था। किन्तु तुम्हारे यह स्वीकार करनेपर कि तुमने भूल की है, पिताने तुम्हें जो दण्ड दिया वह आज्ञोल्लंघनके अनुपातमें बहुत ही अधिक हुआ। पिताका अपने बच्चेके बुरे कामके कारण स्वयं अपनेको किसी चीजसे वंचित करना एक तरहका दण्ड ही है। तुमने मेरे प्रति कोई अपराध नहीं किया, इसलिए मेरे क्षमा करनेका प्रश्न नहीं उठता। फिर भी तुमने अपने पिताको नरम बनने और अपनी शपथ वापस लेनेके लिए अभि-प्रेरित किया, इसके लिए मैं तुम्हें अपनी तरफसे हजार बार माफ करता हूँ। यह पत्र उन्हें दिखाओ और मुझे लिखो कि उन्होंने तुम्हारा दिया हुआ या छुआ हुआ भोजन लेना शुरू कर दिया अथवा नहीं।

हृदयसे तुम्हारा,

श्रीयुत राजबहादुर
कक्षा ८, सेक्शन बी
सनातन धर्म हाईस्कूल
इटावा नगर

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ८५४६) की फोटो-नकल तथा सी० डब्ल्यू० ५१३१ से।

१८५. पत्र: के० जी० रेखडेको

पोस्ट अन्धेरी
२० मार्च, १९२४

प्रिय श्री रेखडे,

आपका १८ तारीखका पत्र मिला।

मैं सलाह दूंगा कि आप विनोबासे मिलें। वे वर्धामें सत्याग्रहाश्रम चला रहे हैं। शायद आप उनसे मिल भी चुके हों। जिस दिशामें आप मदद चाहते हैं, उसके लिए विनोबासे अधिक उपयुक्त कोई अन्य व्यक्ति मुझे दिखाई नहीं देता। वे एक अनुशासनप्रिय व्यक्ति हैं। अनुशासन बहुत कठोर हो सकता है, परन्तु मैं मानता हूँ कि अनुशासन जरूरी और लाभदायक होता है।

जिन आर्थिक कठिनाइयोंसे आप गुजर रहे हैं, उनके सम्बन्धमें मेरी सहानुभूति आपके साथ है, किन्तु उनका कोई बड़ा महत्त्व नहीं है। मैं आपका मार्गदर्शन करनेमें असमर्थ हूँ।

हृदयसे आपका,

श्री के० जी० रेखडे
वकील
वर्धा

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ८५४७) की फोटो-नकल तथा सी० डब्ल्यू० ५१२८ से।

१८६. पत्र: शरीफ देवजी कानजीको

जूहू
२० मार्च, १९२४

प्रिय शरीफ देवजी कानजी,

आपने 'केसरी' में प्रकाशित एक लेखके उस अंशकी ओर मेरा ध्यान आकर्षित किया जिसका आशय यह निकलता है कि पूनाके पास प्रस्तावित मदरसेके मामलेमें उसके न्यासियों और सम्बद्ध हिन्दुओंके बीच मेरे द्वारा मध्यस्थता करनेके बावजूद आप सरकारतक पहुँच गये। इस बातको पढ़कर मुझे दुःख हुआ; इसलिए मुझे यह कहनेमें कोई संकोच नहीं है कि जहांतक मैं जानता हूँ, आपने ऐसा कुछ नहीं किया है जिससे कि मध्यस्थताको ठेस लगे और यह तो निश्चित ही है कि मध्यस्थताकी अवहेलना करके आप सरकारतक नहीं पहुँचे। मुझे यह भी याद है कि

अपनी एक बातचीतके दौरान मैंने आपको बताया था कि मुझमें प्रभावशाली मध्यस्थता कर सकनेकी क्षमता बहुत ही कम है और यदि यह कारण न हो तो भी, स्वास्थ्यके कारण मैं मध्यस्थता नहीं कर सकता। मैं तो बस इतना ही कर सकता हूँ और यदि सम्भव हुआ तो आगे भी करना चाहूँगा कि मैत्रीपूर्ण सलाह देता रहूँ। इसलिए मैंने आपको बताया था कि न्यायके हित सुरक्षित रखनेके लिए आपके पास जो भी उपाय हों उन्हें उपयोगमें लानेमें शिथिल नहीं होना चाहिए। ऐसा मैंने इस आशासे कहा था कि मैं अन्तमें एक पूर्ण समझौता करा सकूँगा। मैंने आपको यह भी बताया था कि समझौतेके लिए बातचीत करनेमें मुझे इसलिए रुकावट पड़ी कि मैं सम्बद्ध पक्षोंको बहुत अच्छी तरह नहीं जानता था। इसीलिए विवादके बारेमें कुछ भी नहीं कह सका। आप इस पत्रका जैसा चाहें उपयोग करें।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

श्री नसीक देवजी कानजी

अंग्रेजी पत्र (एस० एन० ८५४८) की फोटो-नकलसे।

१८७. पत्र : एन० एस० फड़केको

पोस्ट अन्धेरी
२० मार्च, १९२४

प्रिय श्री फड़के,

आपका पत्र मिला।

आत्मसंयमपर लिखित जिस लेखका[1] आपने उल्लेख किया है, वह मैंने यह मानकर नहीं लिखा था कि भारतकी आबादी जरूरतसे ज्यादा हो गई है, वरन् इस विश्वाससे लिखा था कि हर मामलेमें आत्मसंयम रखना अच्छा है, विशेषकर ऐसे समय जब कि हम गुलामीकी स्थितिमें हैं। मैं कृत्रिम उपायों द्वारा सन्तति निग्रहके सर्वथा विरुद्ध हूँ, और मेरे लिए यह मुमकिन नहीं कि मैं आपको या आपके सहयोगियोंको एक ऐसा संघ बनानेके लिए बधाई दे सकूँ जिसकी कार्यवाहियोंसे यदि वे सफल हुईं तो लोगोंको केवल अत्यधिक नैतिक हानि ही पहुँचेगी। अच्छा होता कि मैं आपको और आपके सहयोगियोंको संघ भंग करने और किसी अन्य उत्कृष्टतर उद्देश्यमें अपनी शक्ति लगानेके लिए राजी कर पाता। आप कृपया इस प्रकार निर्णयात्मक ढंगसे अपनी राय जाहिर करनेके लिए मुझे क्षमा करेंगे। यह मैं कुछ-कुछ

१. अनुमानतः यह उस लेखका उल्लेख है जो १३-१०-१९२० के यंग इंडियामें 'इनकान्फीडेंस' शीर्षकसे प्रकाशित हुआ था; देखिए खण्ड १८, पृष्ठ ३६७–७१।

जानता हूँ कि इंग्लैंड और फ्रांसमें इस प्रकारकी कार्यवाहियाँ होती हैं, फिर भी मैंने ऐसा करनेमें संकोच नहीं किया।

हृदयसे आपका,

श्री एन० एस० फड़के
अवैतनिक मन्त्री
बम्बई सन्तति-निग्रह संघ
गिरगांव
बम्बई

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ८५३८) की फोटो-नकल तथा सी० डब्ल्यू० ५१३० से।

१८८. पत्र : अब्बास तैयबजीको

पोस्ट अन्धेरी
२० मार्च, १९२४

प्रिय मित्र,

आशा है आपके पत्रके जवाबमें लिखा मेरा पत्र[1] आपको मिल गया होगा। अब मुझे आपका दूसरा पत्र मिला है जिसका जवाब देना पहले पत्रसे भी ज्यादा कठिन है, क्योंकि यह कामकाजी पत्र है।[2]

पूर्ण स्वास्थ्य लाभ करनेसे पहले मुझे कोई कार्यक्रम नहीं बनाना चाहिए। इस सम्बन्धमें बहुत-कुछ तो इस बातपर निर्भर करता है कि उस समय मैं कैसा महसूस करूँगा और देशमें क्या स्थिति होगी। स्वास्थ्य लाभ कर लेनेपर मुझे पहलेके किसी भी कार्यक्रमके बोझसे सर्वथा मुक्त रहना चाहिए और सामान्य उद्देश्यके हितकी दृष्टिसे भी यह उचित है। क्या आप इससे सहमत नहीं हैं? मुझे सर प्रभाशंकर पट्टणीपर[3] प्रभाव डालनेकी कोशिश भी नहीं करनी चाहिए। ऐसा करना मेरे लिए अपने क्षेत्रसे बाहर जाना होगा और आखिरकार एक ऐसी परिषद्से क्या लाभ जिसके लिए एक अजनबीसे हस्तक्षेप कराकर अनुमति प्राप्त की जाये; परिषद्के उद्देश्योंके प्रति मुझे एक अजनबी ही समझना चाहिए। यह कहना कि सभा करनेके लिए राज्यके मुखियासे अनुमति लेनेकी जरूरत नहीं, उचित नहीं है। यह कहना भी ठीक नहीं कि सामान्यतया सभाएँ बिना अनुमतिके की जाती हैं क्योंकि इसका यह अर्थ नहीं है कि सम्बद्ध राज्यके मुखियाने दखल देनेका अपना हक छोड़ दिया है, या संयोजकोंको सभा करनेका पूर्ण अधिकार मिल गया है। इसलिए प्रस्तावित सभाके संयोजकोंसे मैं

१. देखिए "पत्र : अब्बास तैयबजीको", १५-३-१९२४।
२. इसमें एक राजनैतिक सभाके लिए दान इकट्ठा करनेके सम्बन्धमें विस्तारसे लिखा गया था।
३. सर प्रभाशंकर दलपतराम पट्टणी (१८६२-१९३७); भावनगर रियासतके दीवान

जोर देकर यही कहूँगा कि उन्हें औपचारिक ढंगसे और विनयपूर्वक अनुमति लेनी चाहिए। यदि अनुमति नहीं दी जाती तो उस फैसलेके विरुद्ध एक आन्दोलन चलानेका उचित आधार प्राप्त हो सकता है। आप यह प्रमाणपत्रको क्यों नहीं दिखाना चाहते? वे आपको काफी अच्छी तरह जानते हैं, वे अनुकूल निर्णय प्राप्त कर लेंगे।

मुझे आशा है कि आप जो चाहते हैं उसे पानेमें सफल होंगे।

मैं इस बातसे सहमत हूँ कि प्रान्तीय कमेटी जब कभी यह समझे कि काठियावाड़के शिक्षा संस्थाओंको सहायताकी आवश्यकता है तब उसे उनकी सहायता करनी चाहिए।

देवचन्दभाईको मेरे पास आनेसे रोककर, आपने ठीक किया है। मैंने उन्हें सन्देश भेजा था कि वे जब भी आयें, उनका स्वागत है और यदि वे आते ही हैं तो मैं उन्हें निश्चयपूर्वक समझाऊँगा कि क्यों सुधार अवश्य होनेके लिए और नहीं टालना चाहिए।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजी पत्र (एस० एन० ९५९६)की फोटो-नकलसे।

१८९. भेंट: 'टाइम्स ऑफ इंडिया'के प्रतिनिधिसे

जुहू
२० मार्च, १९२४

श्री गांधीने प्रश्न किये जानेपर बड़ी खुशीसे अपनी दैनिकचर्याके बारेमें कुछ बातें बताईं। वे नियमपूर्वक नित्य प्रातः ४ बजे उठ जाते हैं। सामूहिक प्रार्थना और भजनके बाद, जिसमें घरके सभी लोग भाग लेते हैं, कुछ देर धार्मिक साहित्यका पाठ होता है और इसके बाद वे थोड़ी देरके लिए फिर सो जाते हैं। ६ बजे वे दूधका नाश्ता लेते हैं — श्री गांधीने आँखोंमें मुस्कराहट भरकर बताया कि वे भोजन सम्बन्धी कर्नल मैडॉकके निर्देशोंका ईमानदारीसे पालन कर रहे हैं — और बादमें अपने पुराने डाक्टरकी सलाहके ही अनुसार बरामदेमें टहलते हैं और अपने घावको धूप दिखाते हैं। इसके तुरन्त बाद वे अंग्रेजी और गुजराती पत्र-व्यवहारमें लग जाते हैं। अंग्रेजी पत्र लिखानेके लिए आशुलिपिकोंकी व्यवस्था कर दी गई है, जिससे उनका काम काफी सरल हो गया है। दोपहरतक का उनका समय पत्र-व्यवहार, राजनीतिक समस्याओंके अध्ययन और उन विशिष्ट राजनीतिक और अन्य मित्रोंसे मिलनेमें जाता है जिनसे मिलनेका समय पहलेसे निश्चित हो चुकता है। तीसरे पहरके लगभग वे स्नान करते हैं और चार बजे काफी बड़ी संख्यामें आनेवाले मुलाकातियोंसे मिलनेके लिए तैयार हो जाते हैं।

सन्ध्या समय लगभग ६ वजे श्री एन्ड्रयूज उन्हें समुद्रके किनारे टहलानेके लिए ले जाते हैं। टहलनेका यह वक्त अब बढ़ाकर करीब ४० मिनट कर दिया गया है। दिन-भरका सारा काम रातको आठ वजेतक समाप्त हो जाता है जिसके बाद श्री गांधी सामान्यतया सोने चले जाते हैं। उन्होंने बताया:

ज्यों ही मैं थकान महसूस किये बिना बैठने लायक हो जाऊँगा, कताई शुरू कर दूंगा।

"आपका नई लेबर सरकारके बारेमें क्या खयाल है?" यह पहला राजनीतिक प्रश्न था जो हमारे प्रतिनिधिने श्री गांधीसे पूछा। स्पष्ट ही उनकी निगाहमें यह कोई महत्त्वपूर्ण बात नहीं थी।

उसकी स्थिति डाँवाँडोल है। इसे अनेक दलोंकी सदिच्छापर निर्भर करना पड़ेगा, और यदि वह टिकी रहना चाहती है तो जरूरी है कि वह अपने कसकर काम लेनेवाले मतदाताओंको तुष्ट करे और देशके लिए अपने विशेष कार्यक्रमको पूरा करे। अपने इस कार्यक्रमको पास करानेके लिए सदनके बहुमतका समर्थन प्राप्त करनेकी कोशिशमें वह भारत या दक्षिण आफ्रिका और केनियाके भारतीयोंसे सम्बन्धित साम्राज्यीय नीतिके बारेमें अपने सिद्धान्तोंकी बलि देनेमें नहीं हिचकेगी, इसमें मुझे कोई सन्देह नहीं है; और यह देखते हुए कि वह [लेबर सरकार] कितनी कमजोर है, मुझे तनिक भी आश्चर्य नहीं होगा कि जहाँतक भारतीय नीतिका सवाल है, वह अपनेसे पहलेवाली सरकारोंसे भी बुरी सिद्ध हो।

श्री गांधीने कहा कि लेबर सरकारके आ जानेसे मेरे मनमें किसी प्रकारकी परेशानी नहीं है क्योंकि भारतको स्वयं अपनी ही शक्ति और साधनोंपर भरोसा रखना है।

जब भारत अदम्य शक्ति प्राप्त कर लेगा तो इसमें कोई सन्देह नहीं है कि लेबर, कंजरवेटिव या लिबरल, कोई भी सरकार उसकी माँगके औचित्यको स्वीकार करेगी।

कौंसिल-प्रवेश और मध्य प्रान्त तथा असेम्बलीकी हालकी घटनाओंके विषयमें श्री गांधीने स्पष्ट रूपसे कहा कि मैं इनके बारेमें कुछ भी नहीं कह सकता। उन्होंने बताया कि स्वराजी नेता मुझसे मिलनेके लिए इस माहके अन्तमें दिल्लीसे आ रहे हैं और जबतक मैं उनके साथ सारी स्थितिपर बातचीत नहीं कर लेता तबतक उनके कार्योंके बारेमें कोई राय नहीं दे सकता। बातचीतके बाद मैं अपनी नीति निर्धारित करनेकी स्थितिमें हो जाऊँगा।

उपनिवेश समितिके बारेमें जो केनियाकी समस्याके सिलसिलेमें जांच करनेके लिए हाल ही में जहाजसे रवाना हुई थी, प्रश्न किये जानेपर श्री गांधीने कहा कि अगर बहुत ज्यादा प्रतिबन्धसे उसके हाथ बँधे हुए न हों तो यह समिति बहुत-कुछ कर ले जायेगी। उन्होंने आगे कहा:

समिति अपने निष्कर्षोंपर अमल करा लेने लायक ताकतवर है या नहीं सो कहना कठिन है। एक असहयोगीके रूपमें मेरे विचार कुछ भी क्यों न हों लेकिन

इस समितिमें श्री शास्त्री, सर तेजबहादुर सप्रू और श्री एन्ड्रचूजके न होनेकी बाबत मेरा ध्यान गये बिना नहीं रह सकता; क्योंकि इन्होंने ही इस समस्याका अध्ययन किया है और ये ही उसके हर पहलूको समझते हैं। श्री एन्ड्रचूज तो इसके विशेषज्ञ ही हैं। यह कहना ही पड़ेगा कि इन लोगोंका शामिल न किया जाना बहुत खटकनेवाली बात है और इससे मुझे तो यह अन्देशा हो रहा है कि इसके निष्कर्ष किसी कामके होंगे भी या नहीं।

दक्षिण आफ्रिकी सरकारने वर्ग क्षेत्र विधेयकके प्रभावसे केप कालोनीको अलग रखनेका जो निर्णय किया था उसका श्री गांधीने एक दिलचस्प कारण बताया। उन्होंने कहा:

यह तो मुख्यतः उन आबादीकी स्वार्थपरताका एक दृष्टान्त-मात्र है। केपमें लगभग सभी घरेलू कामोंके लिए मलय औरतें लगाई जाती हैं। यदि पृथक्करण अधिनियम लागू हो गया तो उसका असर इन औरतोंके आने-जानेपर पड़ेगा; अर्थात् गोरी आबादीके अधिकांश लोगोंको घरेलू नौकरोंसे वंचित हो जाना पड़ेगा और इससे उन्हें जबरदस्त असुविधा होगी। चूंकि केपकी भारतीय आबादी थोड़ी है — कुल मिलाकर करीब १०,००० — इसलिए वहांके लोगोंने मान लिया है कि पृथक्करणसे उत्पन्न होनेवाली कठिनाइयां ऐसी नहीं हैं कि उनकी कोई बड़ी चिन्ता की जाये।

बातचीतके दौरान श्री गांधीने कर्नल मैडॉककी प्रशंसा करते हुए कहा, "ये मेरे लिए डाक्टर ही नहीं, मेरे मित्र भी हैं।" उन्होंने श्री एन्ड्रयूजकी भी प्रशंसा की। श्री एन्ड्रयूज "चार्ली भाई" के नामसे जाने जाते हैं और जुहूमें श्री गांधीके दाहिने हाथ हैं; वे लगातार सुबहसे शामतक लेखादि लिखते रहते हैं।

"मुझे आशा है कि जब भारत स्वराज्य प्राप्त कर लेगा तब आप हम गरीब ईमानदार यूरोपीय पत्रकारोंको अपने-अपने देश लौट जानेको नहीं कहेंगे," हमारे प्रतिनिधिने हँसते हुए कहा। गांधीजी हाथ मिलाते हुए उत्तरमें मुस्करा दिये, और बोले:

इसका तो खयालतक आना कठिन है।

[अंग्रेजीसे]

टाइम्स ऑफ इंडिया, २१-३-१९२४

१९०. पत्र : डी० वी० गोखलेको

पोस्ट अन्धेरी
२१ मार्च, १९२४

प्रिय श्री गोखले,

श्री शरीफ देवजी कानजीने मुझे 'केसरी' का एक अंश दिखाया था, जिसमें उनपर आरोप लगाया गया था कि मेरी मध्यस्थताकी परवाह न करते हुए वे सरकारके पास जा पहुँचे। उस अंशको देखकर मुझे दुःख हुआ। मैंने उन्हें एक पत्र[1] लिखा है, जिसे शायद वे प्रकाशित करेंगे तब आप उसे देखेंगे। यह भी मेरी नजरमें आया है कि इसे लेकर समाचारपत्रोंमें एक आन्दोलन ही शुरू हो गया है। मुझे हैरानी है कि यह सब करनेकी क्या जरूरत थी। क्या पंच-निर्णयकी सब आशाएँ खत्म हो गई हैं? श्री शरीफ देवजी कानजीने मुझे बताया कि वे और उनके साथके न्यासी पंच-निर्णयके लिए तैयार हैं। यदि आप किसी भी प्रकार ऐसा कर सकते हों तो मैं चाहूँगा कि आप यह आन्दोलन बन्द करा दें और सम्बद्ध पक्षोंको पंच-निर्णय स्वीकार करनेके लिए राजी करें। मैंने सोचा, आप श्री केलकरके लौट आनेके इन्तजारमें हैं। मेरा खयाल है कि वे महीनेके अन्ततक वापस आ जायेंगे। मैं आप लोगोंसे धैर्य रखनेकी प्रार्थना करता हूँ।

हृदयसे आपका,

श्री डी० वी० गोखले
सम्पादक, 'मराठा'
पूना

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ८५५३) की फोटो-नकल तथा सी० डब्ल्यू० ५१३४ से।

१९१. पत्र : सेवकराम करमचन्दको

पोस्ट अन्धेरी
२१ मार्च, १९२४

प्रिय श्री सेवकराम,

आपका पत्र[2] मिला।

मैं तो यह समझता हूँ कि ईश्वरका नाम लेना और ईश्वरका काम करना, ये दोनों साथ-ही-साथ चलते हैं। इन दोनोंमें से किसीको कम या किसीको ज्यादा महत्त्व-

१. देखिए "पत्र : शरीफ देवजी कानजीको", २०-३-१९२४।

२. सेवकरामने १७ मार्चके अपने पत्रमें कहा था कि गुरु नानकके मतानुसार मुक्तिके लिए दो चीजें आवश्यक हैं — प्रार्थना और गुरु। वे इस सम्बन्धमें गांधीजीके विचार जानना चाहते थे और यह भी कि क्या उनके कोई गुरु हैं।

पूर्ण माननेका सवाल नहीं उठता, क्योंकि दोनोंको एक-दूसरेसे जुदा नहीं किया जा सकता। तोतेकी तरह ईश्वरके नामका जाप करना तो बिलकुल ही बेकार है; और अगर कोई सेवा या काम यह सोचे-समझे बिना किया जाये कि वह ईश्वरके नामपर और ईश्वरके लिए किया जा रहा है, तो उसका भी कोई महत्व नहीं रह जाता। हमें कभी-कभी कुछ समय केवल अपने इष्ट-देवके नामका जाप करनेमें ही लगाना पड़ता है; और जब हम ऐसा करते हैं तो उसका मतलब सिर्फ इतना ही होता है कि उस तरहसे हम अपने-आपको पूरे तौरसे ईश्वरके हाथों सौंप देनेके लिए तैयार करते हैं, अर्थात् हम अपने-आपको ईश्वरकी खातिर और उसीके नामपर सेवा करनेके लिए तैयार करते हैं और जब हम हर तरहसे उसके योग्य बन जाते हैं, तब उस भावनासे लगातार सेवा करते रहना अपने-आपमें ईश्वरके नामके जापके बराबर हो जाता है। फिर भी अधिकांश लोगोंके लिए प्रार्थनाका एक निश्चित समय अलग रखना बहुत ही जरूरी है। जहाँतक मैं समझता हूँ, इसीलिए सभी धर्मोंके शास्त्रोंने, और भारतीय धर्मशास्त्रोंने तो निश्चय ही, गुरुको बिलकुल अनिवार्य बतलाया है। पर अगर हमको सच्चा और ठीक गुरु न मिले, तो झूठमूठका गुरु बना लेना बेकार ही नहीं, नुकसानदेह भी होता है। मेरा तो खयाल है कि दसवें गुरुने इसी वजहसे 'ग्रन्थ साहबको' ही आखिरी गुरुके पदपर बैठा दिया था।

मेरा कोई भी आध्यात्मिक गुरु नहीं है, लेकिन मैं चूँकि इस परम्परामें विश्वास करता हूँ, इसलिए मैं पिछले तीस वर्षोंसे अपने लिए एक सच्चे गुरुकी तलाशमें हूँ। मैं तलाश कर रहा हूँ — यही बात मुझे सबसे अधिक सान्त्वना देती है।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत सेवकराम करमचन्द
गुरु संगत
हीराबाद
हैदराबाद (सिन्ध)

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ८५५४) तथा सी० डब्ल्यू० ५१३५ से।

१९२. पत्र : एम० रेनरको

पोस्ट अन्धेरी
२१ मार्च, १९२४

प्रिय श्री रेनर,

आपका २० तारीखका पत्र[1] मिला।

मुझे प्रसन्नता होगी यदि आप २६ तारीखकी शामको ५ बजे यहाँ पधारें।

हृदयसे आपका,

श्री एम० रेनर,
कमरा २३, ग्रैंड होटल,
बैलार्ड एस्टेट
बम्बई

अंग्रेजी पत्र (एस० एन० ८५५१) की फोटो-नकल तथा सी० डब्ल्यू० ५१३३ से।

१९३. पत्र : जॉर्ज जोजेफको

पोस्ट अन्धेरी
२१ मार्च, १९२४

प्रिय जोजेफ,

देवदासके नाम लिखा तुम्हारा पत्र पढ़ा। आशा है, श्रीमती जोजेफकी तबीयत अब काफी ठीक हो गई होगी। मैं यह पत्र असलमें तुम्हें यह बतलानेके लिए लिख रहा हूँ कि मैं शायद अगले महीनेसे 'यंग इंडिया'के सम्पादनका काम अपने ऊपर ले लूंगा।[2] इसमें मुझे कुछ झिझक भी हो रही है, लेकिन लगता है कि अब और ज्यादा दिनोंतक इस कर्त्तव्यसे जी चुराना मुमकिन नहीं है। मैं जानना चाहूँगा कि आगे-के कुछ दिनोंके दौरान तुम क्या करनेकी सोच रहे हो। कहनेकी जरूरत नहीं कि मैंने तुमको पूनामें जो भरोसा दिलाया था, मैं उसपर कायम हूँ। अगर तुम्हारे पास समय हो तो मैं चाहूँगा कि तुम मुझे हर हफ्ते सोचा-समझा हुआ, तथ्योंसे भरपूर और अपनी बढ़ियासे-बढ़िया शैलीमें लिखा हुआ एक लेख भेज दिया करो। किन्तु वह

१. रेनरने अपने-आपको आस्ट्रेलियासे आया एक दर्शनार्थी बतलाया था और कहा था कि उनको गांधीजीके कार्य और व्यक्तित्वमें गहरी दिलचस्पी है और गांधीजीके सिद्धान्तोंके बारेमें बहुत-कुछ सुन चुकनेके बाद अब वे उन सिद्धान्तोंको स्पष्टताके साथ समझना चाहते हैं।

२. गांधीजीने ३ अप्रैल, १९२४ के अंकसे सम्पादनका कार्यभार सँभाला था।

लेख जल्दीमें घसीटा हुआ नहीं होना चाहिए। तुम्हें उसके लिए आसपासकी जगहोंमें काफी मेहनत करनी चाहिए। मुझे तो सबसे ज्यादा खुशी इसी बातसे होगी कि तुम उसमें अपने जिलेमें चलनेवाले चरखेके काम, अस्पृश्यता-निवारण आन्दोलन, राष्ट्रीय शिक्षा आदिके बारेमें आँकड़े पेश करो। ऐसा लेख तुम साबरमतीके जरिए न भेजकर सीधा मेरे पास भेज दिया करो।

तुम्हारा,

श्रीयुत जॉर्ज जोजेफ,
चेंगानूर (त्रावणकोर)

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ८५५२) की फोटो-नकल तथा सी० डब्ल्यू० ५१३६ से।

१९४. पत्र : लाला लाजपतरायको

पोस्ट अन्धेरी
२१ मार्च, १९२४

प्रिय लालाजी,

आपने एन्ड्रयूजको जो पत्र लिखा है, वह उन्होंने मुझे दिखा दिया है। मैंने आपके नाम गौरीशंकर मिश्रका पत्र भी देख लिया है। आप यहाँ २७ तारीखको आ ही रहे हैं इसलिए अभी इस पत्रमें कुछ लिखनेकी जरूरत नहीं है। हम लोग मिलनेपर खास तौरसे गौरीशंकर मिश्रके मामले और दूसरे वकीलोंके उसी तरहके मामलोंके बारेमें बात करेंगे। अगर आप मेरी राय जानना चाहें तो मुझे इसमें जरा भी शक नहीं है कि स्वास्थ्य और शक्ति-लाभके लिए आपका स्विट्जरलैंड जाना बिलकुल उचित है। आप न चन्दा इकट्ठा कर सकते हैं और न कोई दूसरा ऐसा मेहनत-तलब काम कर सकते हैं, जिसके लिए आप खासतौरसे उपयुक्त हैं। फिर यहाँ बीमार पड़े रहनेसे फायदा ही क्या? आप वहाँ मौज-मजेके लिए तो जा नहीं रहे हैं, आप तो एक मकसद लेकर जा रहे हैं — अर्थात् इसलिए कि आप वापस आकर पहलेकी तरह अपना काम ज्यादा कारगर ढंगसे कर सकें। अपने फर्जसे भागना तो तब कहा जाता जब आप दुनियाके सैर-सपाटेके लिए जाते या किसी करोड़पतिकी तरह नुमाइशों और तमाशे देखने जाते। इसलिए मैं चाहता हूँ कि आप अपने मनमें आये हुए इस अवसादको दूर कर दें और देशकी सेवाका काम मानकर स्विट्जरलैंड जायें।

हृदयसे आपका,

लाला लाजपतराय
लाहौर

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ८५५५) की फोटो-नकल तथा सी० डब्ल्यू० ५१३७ से।

१९५. पत्र : च० राजगोपालाचारीको

पोस्ट अन्धेरी
२१ मार्च, १९२४

प्रिय राजगोपालाचारी,

आशा है, आपका वजन अभी बढ़ता ही जा रहा होगा, बुखार अब नहीं आता होगा और स्वास्थ्यमें धीरे-धीरे सुधार हो रहा होगा।

अगले महीनेसे मैं 'यंग इंडिया' और 'नवजीवन' का काम सँभाल रहा हूँ। मुझे लगता है कि अब इसे और ज्यादा नहीं टाला जा सकता; पर मेरा खयाल है कि अब मैं पहलेकी तरह स्वयं ही लगभग सारी सामग्री नहीं जुटा पाऊँगा। इसलिए आप इस बातकी गाँठ बाँध लीजिए कि आपको हर हफ्ते कुछ-न-कुछ सामग्री भेजनी ही है। खद्दरके मामलेमें आप विशेषज्ञता प्राप्त कर रहे हैं। इसलिए यदि आप हर हफ्ते खद्दरके विषयमें ही लिखें तो भी मुझे कोई आपत्ति नहीं होगी, लेकिन हर हफ्ते इसके बारेमें एक नये ढंगसे, नये-नये तथ्य पेश करते हुए लिखिएगा। पर मैं यह भी नहीं चाहता कि आप इसी एक विषयसे अपनेको बाँध लें। आप किसी भी ऐसे विषयको ले सकते हैं, जिसमें आप समझते हों कि पाठक दिलचस्पी लेंगे। जैसा मैंने सोचा था, उस हिसाबसे अबतक मुझे कौंसिलोंमें प्रवेश और हिन्दू-मुसलमान-एकताकी समस्यापर अपने विचारोंको लिखित रूप दे देना चाहिए था, लेकिन अफसोस है कि मैं अभीतक ऐसा नहीं कर पाया हूँ। यदि आप 'यंग इंडिया' के स्तम्भोंमें इन विचारोंको देखें, तो कृपया मुझे दोष मत दीजिएगा। मैं चाहता हूँ कि पहले महीनेके दौरान आप यहीं रहते, जिससे कि आप प्रकाशनसे पहले सारी सामग्री देख लेते, पर परिस्थितियाँ जैसी हैं उनको देखते हुए हमें वही करना चाहिए, जो सबसे अच्छा हो। और फिर मैं गलतियाँ करनेसे बच न पाऊँ, तो उसकी भी कोई ज्यादा अहमियत नहीं है; क्योंकि मैं जानता हूँ कि अपनी गलतियोंको मानने और उनको ठीक कर लेनेकी हिम्मत और बुद्धि मेरे पास है। इसमें शक नहीं कि इसका एक दूसरा पहलू भी है। लोग उससे गुमराह हो सकते हैं और इतने कि उनको ठीक रास्तेपर लानेकी गुंजाइश ही न रहे। लेकिन क्या यह प्रक्रिया भी प्रशिक्षणमें शामिल नहीं है?

किसी-न-किसीने आपको बतलाया ही होगा कि गोलिकेरे[1] मेरे पास आ गया है और उससे मुझे बड़ी सहायता मिलती है। वह ज्यादासे-ज्यादा अगले तीन महीने तक मेरे काममें सहायता देगा। इसी दौरान कृष्टोदास[2] और प्यारेलाल[3] शार्टहैण्डका

१. गांधीजी के स्टेनोग्राफर।

२. कृष्णदासने सात महीनेतक गांधीजी के सचिवके रूपमें काम किया था।

३. प्यारेलाल नय्यर, गांधीजीके एक सचिव, जो १९४२ में महादेव देसाईकी मृत्युके पश्चात् गांधीजी के मुख्य सचिव बन गये थे।

इतना अभ्यास कर लेंगे कि मेरा काम कर सकें। जो भी हो, मेरे साबरमती आश्रम चले जानेपर या यात्राएँ शुरू करनेपर मगजका भार इतना ज्यादा नहीं रह जायेगा। मैं चाहता हूँ सोच-विचारकर दिलचस्पीपूर्वक जितना भी लेखन-कार्य मुझे करना है, स्वास्थ्यके लिए आरामकी इस अवधिमें ही मैं उसका अधिकांश पूरा कर लूँ।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत च० राजगोपालाचारी,
एक्सटेन्शन,
सेलम

अंग्रेजी पत्र (एस० एन० ८५५६) की फोटो-नकल तथा सी० डब्ल्यू० ५१३२ से।

१९६. भेंट : 'लिवरपूल पोस्ट' और 'मर्क्युरी' के प्रतिनिधिसे

[२१ मार्च, १९२४

आज मैंने गांधीके साथ घन्टे-भरसे कुछ अधिक समयतक बातचीत की। उनका पुत्र और सी० एफ० एन्ड्र्यूज दोनों बरामदेसे बाहर बराबर इधर-उधर घूमते रहे। सी० एफ० एन्ड्र्यूज अंग्रेज हैं, जो आफ्रिकी भारतीयोंकी मांगोंके समर्थक रहे हैं और उनकी लम्बी दाढ़ी, भारतीय वेश-भूषा तथा नंगे पैर साफ बता रहे थे कि उस व्यक्तिने स्वेच्छासे अपनी जातिका परित्याग कर दिया है। गांधीके पास बहुतसे स्वराज्यवादी लोग बराबर आते-जाते रहते हैं। इस व्यस्तताके बावजूद उनसे मिलने-पर मेरे मनपर यही छाप पड़ी कि लम्बे कालके कारावास और बीमारीने उनकी सौजन्यपूर्ण आत्माको और अधिक निखार दिया है, अधिक विनयपूर्ण बना दिया है। गांधीने बार-बार अपने उस विचित्रसे सिद्धान्तकी विफलता स्वीकार की जिसके बलपर वे भारतको एक ऐसा राष्ट्र बना देनेकी आशा सँजोये थे जो इस भौतिकता-वादी संसारके लिए अभूतपूर्व हो। उन्होंने आशा सँजो रखी थी कि भारतको इस सिद्धान्तके द्वारा वे एक ऐसा सादगी-पसन्द अहिंसात्मक राष्ट्र बना देंगे जो अपने गुणके बलपर एशियाके अवसरवादी राष्ट्रोंके बीच भी अपनी स्वतन्त्रता बरकरार रख सकेगा। इस गुणको उन्होंने "आत्म-बल" की संज्ञा दी है।

विधानसभामें सरकारी अनुदानकी मांगोंको बहुमतसे ठुकरानेके बाद अब लोग गांधीको भारत-भरमें सविनय अवज्ञा आन्दोलन चलानेके लिए सहमत करना चाहते हैं। इस आन्दोलनका मतलब है सभी प्रकारके करोंकी अदायगीके विरुद्ध प्रचार करना। सभी जानते हैं कि गांधीने शुरूमें ही इन सरकारी कौंसिलोंमें शामिल होनेका विरोध किया था और सरकारी काममें बाधा डालनकी स्वराज्यवादियोंकी योजनाका समर्थन नहीं किया था। लेकिन स्वराज्यवादियोंकी सफलताने देशमें उथल पुथल मचा दी है

और अन्य राजनीतिज्ञोंसे कहीं पहले स्वराज्य-आन्दोलन खड़ा करनेवाले इस नेताको अब अपने कारावास-कालमें उन अन्य राजनीतिज्ञों द्वारा प्राप्त की गई प्रतिष्ठाके आगे सिर झुकाना पड़ेगा।

सविनय अवज्ञाके अस्त्रके प्रयोगकी सलाह सदा ही दी जा सकती है, जब सरकारें लोकतन्त्रपर आधारित न हों; और इस अस्त्रका प्रयोग सिर्फ उसी अवस्थामें व्यावहारिक है जब जनताके हृदयमें अहिंसाकी भावना पूरी तौरपर घर कर ले।

गांधीने कहा:

यदि स्वराज्य दे दिया जाये तो अब भारत इसके लिए तैयार है, पर अभी भारत स्वयं बल-प्रयोगके जरिये अथवा अनुशासित अहिंसाके बलपर स्वराज्य हासिल करनेमें समर्थ नहीं है। बल-प्रयोगका तो मैं स्वयं विरोधी हूँ।

इसके बाद गांधीने स्वराज्यकी परिभाषा की:

स्वराज्यका अर्थ है संसदीय शासन-व्यवस्था; लेकिन मेरा आशय यह नहीं कि वह पाश्चात्य देशों-जैसी संसदीय व्यवस्था होगी, जहाँ व्यक्तिगत स्वार्थोंका ही बोलबाला है। स्वराज्यका अर्थ यह भी है कि भारत अपनी प्राचीन जीवन-पद्धतिकी ओर लौटे। वर्षोंतक मेरे इस विचारकी खिल्ली उड़ाई गई है, पर अब भी मेरा यही विश्वास है कि यदि घर-घरमें चरखा चलने लगे तो वह ब्रिटिश फैक्टरियोंको उखाड़ सकता है। और यदि यह सही है तो फिर ब्रिटिश अधिराज्यका मूल आधार — ब्रिटिश पूंजी — हमसे किसी भी किस्मका मुआवजा पानेकी आशा कैसे कर सकता है? मैं खुद तो विदेशी आयातपर करोंके रूपमें कोई प्रतिबन्ध लगानेमें विश्वास नहीं करता।

ब्रिटिश अदालतों, स्कूलों और कौंसिलोंके विख्यात त्रिमुखी बहिष्कारके बारेमें गांधी निराश थे। उन्होंने बतलाया कि अब वे आयरलैंडके सिनफेन दलवालोंके न्यायाधिकरणों-जैसी पंचायतें या मध्यस्थ अदालतें खड़ी करनेकी कोशिश करेंगे, जो मुकदमोंके फैसले ब्रिटिश न्याय-व्यवस्थाका सहारा लिए बिना ही कर दिया करेंगी। स्कूलोंके सिलसिलेमें गांधी सिर्फ यह चाहते हैं कि गैर-सरकारी शिक्षण-संस्थानोंको ऐसा बनाया जाये कि लोग उनकी ओर आकर्षित हों। मैंने पूछा कि सरकारी स्कूलोंके मुकाबले राष्ट्रीय शालाओंके पाठ्यक्रममें क्या विशेषता है। उन्होंने उत्तर दिया कि ये स्कूल विचार-स्वातन्त्र्यकी शिक्षा देते हैं, जब कि सरकारी स्कूल सिर्फ वही नपे-तुले कायदे कानून विद्यार्थियोंके दिमागमें बैठानेकी कोशिश करते हैं जो देशके लोगोंको वर्तमान शासनके अन्तर्गत सेवाके उपयुक्त बनानेके लिए जरूरी जान पड़ते हैं। गांधीने बिलकुल स्पष्ट कहा कि पाश्चात्य नमूनेके स्कूल भारतीयोंको बिलकुल मशीन-जैसा बना देते हैं। उन्होंने यह भी कहा कि ब्रिटिश मालके बहिष्कारके परिणामस्वरूप ब्रिटिश शासकोंको भारत छोड़कर चले जाना पड़ेगा; लेकिन उन्होंने यह भी स्वीकार किया कि अभी इसका समय नहीं आया है।

यह पूछनेपर कि क्या वे शीघ्र ही स्वराज्य-प्राप्तिकी आशा करते हैं; गांधीने इसका नकारात्मक उत्तर ही दिया। उन्होंने लन्दन विश्वविद्यालयमें अपने विद्यार्थी-कालके

इंग्लैंडवासके अनुभवके आधारपर कहा कि 'लेबर पार्टी' को ज्यादा फिक्र तो इंग्लैंडके निर्वाचकोंकी होगी, भारतके बारेमें तो वह सबसे बादमें सोचेगी। लेकिन विधानसभाके कार्यमें बाधाएँ पैदा करनेकी स्वराज्यवादियोंकी वर्तमान नीतिकी सम्भावनाओंके बारेमें उन्होंने चुप्पी साध ली — एक अमंगलसूचक चुप्पी। उन्होंने कहा कि वे ब्रिटिश जनताको बुरा नहीं मानते और यह आशा व्यक्त की कि वे कभी-न-कभी एक सम्मानप्रद समझौतेपर राजी हो ही जायेंगे और साथमें यह भी कहा कि उनकी यह आशा सबल कारणोंपर आधारित है।

सेनाके प्रश्नपर अपना विचार बताते हुए उन्होंने कहा कि भारतकी वर्तमान सैनिक शक्तिको घटाकर एक-चौथाई कर दिया जायेगा और साथ ही रेलवेकी व्यवस्था-में भी आमूल परिवर्तन कर देंगे, क्योंकि वर्तमान व्यवस्था सामरिक महत्वकी दृष्टिमें रखकर ही की गई है।

गांधीसे पूछा गया, "क्या आपको किसी भी देशसे आक्रमणका भय नहीं है?"

गांधीका उत्तर था:

हमें अफगानोंसे डर है। लेकिन एक बार हिन्दू-मुसलमानोंकी एकता स्थापित हो जानेपर अफगानिस्तानका अमीर अपने मुसलमान भाइयोंपर हमला नहीं करेगा। अगर रूस हमारे ऊपर हमला करेगा तो हमें उम्मीद है कि यूरोपकी सैनिक शक्तियाँ रूसको ताकतवर न बनने देनेकी दृष्टिसे हमारी मददको आयेंगी और हमें उसका स्वागत करना चाहिए। रूसके वर्तमान शासकोंके बारेमें मेरी मान्यता है कि वे जैसे ऊपरसे दिखते हैं, मैं उनको वैसा ही मानता हूँ। बलके प्रयोगसे जो चीज खड़ी की जाती है उसका अन्त भी बल-प्रयोगसे ही होता है।

मैंने उनसे पूछा: "क्या भारतीय जनता आपके अहिंसाके उपदेशोंको समझती है, जब कि आप उनसे यह भी कहते हैं कि ब्रिटिश शासकोंने उनके साथ अन्याय किया है?" गांधीका उत्तर था:

जी, हाँ समझती है; लेकिन भारतके अलावा अन्य किसी भी देशमें यह सम्भव नहीं होगा। आप पाश्चात्य देशोंके लोग इसे नहीं समझ सकते, पर भारतीय जनताका मानस ऐसा ही है।

मेरे यह पूछनेपर कि क्या पाश्चात्य सभ्यताकी 'बुराइयों' के सम्बन्धमें उनके रुखमें कोई तबदीली हुई है, गांधीने उत्तर दिया कि वे रेलवेकी व्यवस्थाको हटायेंगे नहीं, क्योंकि वह अब अच्छी तरह जम चुकी है। उन्होंने कृषिके आधुनिक औजारोंके अपनाये जानेका समर्थन किया, इसलिए कि भारतीय कृषकोंको सहायताकी जरूरत है। ब्रिटिश फैक्टरियोंके बारेमें उन्होंने आशा व्यक्त की कि चरखेके कारण वे अपने आप ठप हो जायेंगी।

मैंने गांधीसे पूछा कि कमाल पाशा द्वारा खलीफाके अपदस्थ किये जानेके बारेमें आपका क्या खयाल है। गांधीने उत्तर दिया कि उससे हिन्दू-मुसलमान एकतामें कोई बाधा नहीं पड़ेगी, हालाँकि उन्होंने स्वीकार किया कि एकता अब उतनी

मजबूत नहीं रही है, जितनी कि पहले थी। उनके विचारसे ब्रिटिश शासकोंके विरुद्ध संघर्षका दारोमदार इसी एकतापर है।

हेजाजके शाहसे काम नहीं चलेगा। सभी मुसलमानोंका खयाल है कि वह ब्रिटेनका प्रतिनिधि है।

गांधीने स्पष्ट कहा कि अंग्रेजोंने भारतमें आनेके बाद देशके लोगोंको सैनिक दृष्टिसे 'पौरुषहीन' बना दिया गया है और यह भारतके लिए एक बहुत बड़ी कठिनाई है।

मैं जिस चीजको खत्म करना चाहता हूँ, वह है भारतीयोंके दिलोंमें पैठा हुआ गोरी चमड़ीका जबरदस्त डर। मैं जब बच्चा था तब यह डर आजसे कहीं अधिक व्यापक था।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, १४-४-१९२४

१९७. भाषण : बम्बईके विद्यार्थियों और अध्यापकोंके समक्ष[1]

[२१ मार्च, १९२४]

कहनेकी जरूरत नहीं कि आज आप सब लोगोंसे मिलकर मुझे बड़ी खुशी हुई है। आपने मुझे जो चन्द चीजें भेंट दी हैं, उनके लिए मैं आपको धन्यवाद देता हूँ। इनमें कमसे-कम दो चीजें ऐसी हैं, जिनका आजकल मेरे लिए एक विशेष अर्थ है। आपने धुनाईके लिए एक चटाई दी है और कुछ पूनियाँ भी तैयार करके मुझे दी हैं। ये मुझे कताई और धुनाईका काम तुरन्त ही हाथमें लेनेकी याद दिलाती हैं। मैं जब भी इस काममें अपनेको लगाता हूँ, मुझे लगने लगता है कि स्वराज्य निकट आता जा रहा है। इसलिए मेरा आपसे अनुरोध है कि आप ईश्वरसे प्रार्थना करें, मैं जल्द ही पूरी तौरपर चंगा हो जाऊँ, जिससे कि मैं यथासम्भव शीघ्र ही इस कामको उठानेमें समर्थ हो सकूं। मैं चाहता हूँ कि आप भी चरखा चलानेमें समय दें। मुझे विश्वास है कि आप लोग भी यही महसूस करेंगे कि चरखा स्वराज्यको निकट लाता है। यदि हम अपनी सारी शक्ति रचनात्मक कार्यक्रममें लगायें, तो हम जो-कुछ चाहते हैं वह-सब हमें निश्चय ही मिल जायेगा। आपने ललितजीके स्वरमें कविवर नरसी मेहताका सुन्दर गीत ध्यानसे सुना होगा। मैं चाहता हूँ कि आप लोग ऐसे धार्मिक गीतोंका वास्तविक अर्थ समझें, और ऐसी कविताओंके उच्चादर्शोंको अपने आचरणमें उतारनेकी पूरी-पूरी चेष्टा करें। लेकिन मैं आपको आगाह कर दूं कि इन सुन्दर गीतोंमें कहे गये आदर्शोंपर चलना इन्हें रचनेवालोंतक के लिए काफी कठिन पड़ता है।

मुझे याद है कि मैं जब पहली बार आपके स्कूलमें आया था, तब मैंने आपसे कहा था कि आप लोगोंको संगीत विद्यामें अभी बहुत-कुछ सीखना है। आज फिर

१. बम्बई राष्ट्रीय शालाके विद्यार्थियों और अध्यापकोंका एक दल गांधीजीसे जुहूमें मिला था। उन्होंने गांधीजी को एक मानपत्र और दस्तकारीकी अपनी तैयार की हुई कुछ वस्तुएँ भेंट की थीं।

मैंने आपमें से कुछ विद्यार्थियोंका गायन सुना, लेकिन मुझे खेदके साथ कहना पड़ता है कि आप अभी इतनी तरक्की नहीं कर पाये हैं कि मैं आपको कोई प्रमाणपत्र दे सकूँ। फिर भी मुझे आशा है कि मैं पूर्ण स्वास्थ्य-लाभ करनेपर जब अगली बार आपके स्कूलमें आऊँगा तबतक आप इसमें पास होने लायक योग्यता प्राप्त कर लेंगे, हालाँकि इस कलामें सिद्धहस्त बनना आपके लिए शायद तबतक भी सम्भव न हो।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, २६-३-१९२४

१९८. सन्देश : दक्षिण आफ्रिकी यूरोपीयोंके नाम

[२२ मार्च, १९२४ के पूर्व][1]

यदि आप हमपर इसी तरह अत्याचार करते रहेंगे तो हम आपके साम्राज्यसे अलग हो जायेंगे और हमारे अलग होनेपर फिर आपका साम्राज्य कहाँ रहेगा?

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, २६-३-१९२४

१९९. पत्र : द्विजेन्द्रनाथ ठाकुरको

अन्धेरी
२२ मार्च, १९२४

प्रिय बड़ोदादा,

'गीता' के सम्बन्धमें अपने निबन्धोंकी दो प्रतियाँ भेजकर आपने बड़ी कृपा की। एक प्रतिपर आपका स्नेहांकन देखकर मैं कृतज्ञतासे भर गया। मैं उसे एक बहुमूल्य उपहारकी भाँति सहेजकर रखूँगा और 'गीता' के सन्देशकी आपकी व्याख्याको यथाशीघ्र पढ़ने-समझनेका प्रयास करूँगा।

श्री एन्ड्रयूजसे आपके कृपापूर्ण सन्देश बराबर मिलते रहते हैं। उनकी उपस्थितिसे मेरे चित्तको बड़ी शान्ति मिलती है। आपकी बड़ी कृपा है कि आपने उनको मेरे पास आनेकी अनुमति दी।

अत्यधिक आदर सहित,

आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजी पत्र (एस० एन० ८५६४) की फोटो-नकलसे।

१. सरोजिनी नायडूने केप टाउनमें २२ मार्चको एक सभामें अपने भाषणके दौरान यह सन्देश उद्धृत किया था।

२००. पत्र : आर० पिगॉट और ए० एम० वार्डको

पोस्ट अन्धेरी
२२ मार्च, १९२४

प्रिय कुमारी पिगॉट और कुमारी वार्ड,

आपका दिनांक १६ का पत्र[1] मिला।

मुझे यह लिखते हुए बड़ी शर्म महसूस हो रही है कि आपने जिसका हवाला दिया है, उस मुलाकातकी बात मैं बिलकुल भूल गया हूँ। फिर भी मैं आपका पत्र अपने एक सिन्ध-निवासी मित्रके पास भेज रहा हूँ। मुझे पूरा विश्वास है कि यदि सम्भव होगा तो वे आपकी सहायता अवश्य करेंगे। यदि मैंने आपको सम्बोधित करनेमें कोई गलती कर दी हो, तो मुझे क्षमा करनेकी कृपा कीजिए। मैंने आपका पत्र श्री एन्ड्रयूजको दिखा दिया है। उन्हें बहुत अच्छी तरह याद है कि आपसे मुलाकात हुई थी, लेकिन वे आपके सम्बन्धमें कोई जानकारी मुझे नहीं दे सके।

हृदयसे आपका,

कुमारी आर० पिगॉट और कुमारी ए० एम० वार्ड
हैदराबाद (सिन्ध)

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ८५६२) की फोटो-नकल तथा सी० डब्ल्यू० ५१४० से।

२०१. पत्र : जयरामदास दौलतरामको

पोस्ट अन्धेरी
२२ मार्च, १९२४

प्रिय श्री जयरामदास,

मैं इसके साथ सिन्धसे आया हुआ एक पत्र नत्थी कर रहा हूँ। तुम शायद इन महिलाओंको जानते होगे। तुम स्वयं ही पत्रसे जान लोगे कि इन महिलाओंने मुझसे अनुरोध किया है कि मैं उनके कार्यकी ओर उन लोगोंका ध्यान आकर्षित करूँ जो काफी आर्थिक सहायता दे सकते हैं। मैं तुम्हें इस श्रेणीमें नहीं रखता, लेकिन मैंने यह पत्र तुम्हारे पास यह सोचकर भेजना तय किया कि यदि यह कार्य सचमुच ऐसा हो जिसमें सहायता दी जानी चाहिए, तो कमसे-कम हमारी ओरसे तो उसकी उपेक्षा न हो। इसलिए मुझे लिख भेजो कि यह कार्य सचमुच है क्या और इसके बारेमें

१. यह पत्र उपलब्ध नहीं है।

तुम्हारी क्या राय है। मैं नहीं चाहता कि तुम इस विषयको पुस्तकाकार करनेके लिए कोई विशेष प्रयत्न करो। इसमें जल्दीकी कोई बात नहीं। मैं जानता हूँ कि सच्चे कार्यकर्त्ताओंका एक-एक मिनट बड़ा कीमती होता है और उसे स्वयंको अपने सामनेके फौरी कामके अलावा और किसी काममें नहीं लगाना चाहिए।

लालाजी २७ तारीखको अन्धेरी पहुँच रहे हैं।

खेद है कि मैं अभीतक कौंसिलोंमें प्रवेश और हिन्दू-मुस्लिम एकताके बारेमें अपने वक्तव्यका मसविदा तैयार नहीं कर पाया हूँ। इसलिए लगता है कि तुम शायद उसे प्रकाशनसे पहले नहीं देख पाओगे। पहले मुझे ऐसी आशा थी, लेकिन अब तुम शायद उसे प्रकाशित रूपमें ही देख पाओगे।

स्नेहाधीन,

सहपत्र :
श्री जयरामदास दौलतराम
हैदराबाद (सिन्ध)

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ८५६०) की फोटो-नकल तथा सी० डब्ल्यू० ५१३९ से।

२०२. पत्र : च० राजगोपालाचारीको

अन्धेरी
शनिवार, २२ मार्च, १९२४

प्रिय राजगोपालाचारी,

यह कागज हाथका बना है। मुझे बताया गया है कि यह मेरे लिए खास-तौरपर तैयार किया गया और छापा गया है। मैं आज पहली बार इसका इस्ते-माल कर रहा हूँ। इस समय सुबहके साढ़े तीन बज चुके हैं। रात बारह बजेके बाद मुझे लगभग नींद आई ही नहीं। इसमें आपका भी कुछ हाथ है। कल रात मैंने आपके पुत्रके साथ गपशप की थी। मैं उससे यों ही पूछ बैठा कि वह आपको और आप उसको अंग्रेजीमें पत्र लिखते हैं या तमिलमें। उसने जब मुझे बतलाया कि पत्र-व्यवहार अंग्रेजीमें होता है, तो मेरे हृदयको बड़ी चोट पहुँची। इसके बाद हम लोग तमिल भाषाकी सम्भावनाओंके बारेमें विचार करते रहे। युवा रामास्वामीका मत था कि उच्च कोटिके और वैज्ञानिक विचारोंके लिए तमिल उपयुक्त नहीं है। तभीसे मैंने सोचना शुरू किया और अभीतक उसीमें उलझा हूँ। आपसे ही मुझे सबसे ज्यादा उम्मीद है। फिर यह इतनी जबरदस्त त्रुटि क्यों रह गई है? मुझे यह त्रुटि जबरदस्त ही लगती है। यदि नमक अपना खारापन छोड़ दे तो क्या होगा? यदि तमिलनाडके अच्छेसे-अच्छे सपूत ही तमिलकी उपेक्षा करने लगें, तो तमिलभाषी जनता क्या करेगी? तब फिर बेचारा रामास्वामी आम जनताके बीच क्या काम कर पायेगा?

आप इस सम्बन्धमें मुझे अपने तर्क बतलाइए, या फिर वचन दीजिए कि अबसे आप इस नौजवानको अपनी सुन्दर तमिलमें ही लिखा करेंगे। 'हिन्दू' पत्रके लोगोंने शार्टहैंड जाननेवाले की सेवाएँ प्रस्तुत करनेका प्रस्ताव रखकर बड़ी कृपा की है।

हार्दिक प्रेम सहित,

आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजी पत्र (एस० एन० ८५६६)की फोटो-नकलसे।

२०३. पत्र : श्रीमती एमा हार्करको

पोस्ट अन्धेरी
२२ मार्च, १९२४

प्रिय श्रीमती हार्कर,

आपका पत्र मिला।[1] उसके व्यथापूर्ण स्वरसे हृदय दुःखी हुआ। प्रगति हो रही है। क्या आप अगले मंगलवारकी शामको ५ बजे आ सकेंगी?

हृदयसे आपका,

श्रीमती ई० हार्कर
सी० ३, दातुभाई मैन्शन्स
मेयो रोड
बम्बई

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ८५६३) की फोटो-नकल तथा सी० डब्ल्यू ५१३८ से।

२०४. पत्र : रोमां रोलांको

अन्धेरी
२२ मार्च, १९२४

प्रिय मित्र,

मैं आपके स्नेहपूर्ण पत्रके लिए कृतज्ञ हूँ। यदि आपसे निबन्धमें यत्र-तत्र थोड़ी-सी भूलें हो भी गई तो क्या हुआ? आश्चर्य तो इस बातका है कि भूलें बहुत ही कम हुई हैं और आपने एक दूरस्थ तथा भिन्न वातावरणमें रहकर भी मेरे विचारोंका

१. श्रीमती एमा हार्करका पत्र इस प्रकार था: "मैं कुछ बड़े ही संकट और दुःखपूर्ण दौरसे गुजर रही हूँ और मेरा अनुरोध है, आप मेरे लिए ईश्वरसे प्रार्थना करें। मैं जानती हूँ कि आपके दर्शनोंसे मुझे सान्त्वना मिलेगी।" (एस० एन० ८५४९)

इतना सही अर्थ लिया है। इससे एक बार फिर यही साबित होता है कि मानव-प्रकृति भिन्न-भिन्न वातावरणोंमें विकसित होनेपर भी मूलतः एक ही है।'

आदर सहित,

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

[पुनश्च :]

कृपया पेन्सिलसे लिखनेके लिए क्षमा करें। अभी मेरा हाथ इतना काँपता है कि मैं कलमसे नहीं लिख पाता।

मो० क० गांधी

श्री रोमां रोलां

अंग्रेजी पत्र (एस० एन० ८५६५) की फोटो-नकलसे।

२०५. वक्तव्य : समाचारपत्रोंको[2]

बम्बई
२३ मार्च, १९२४

केप टाउनसे दक्षिण आफ्रिकी भारतीय कांग्रेसके महामन्त्री, श्री पत्तरके हस्ताक्षरसे निम्नलिखित तार आया है :

> दक्षिण आफ्रिकी भारतीय समाजका निवेदन है कि संघ सरकार जोरदार विरोधके बावजूद अपने वचनोंका उल्लंघन करके वर्ग क्षेत्र विधेयक पास करानेपर तुली हुई है। विधेयकका कोई भी औचित्य नहीं है। विदेशियों, यूरोपीय आफ्रिकियों, मलय लोगों और वतनी लोगोंको विमुक्ति दी जा रही है। विधेयक केवल भारतीयोंपर लागू होगा। केप टाउनमें यूरोपीय

१. रोमां रोलांने २४ फरवरीको महादेव देसाईके नाम अपने पत्रमें भी यही लिखा था : "यदि मैंने अनजाने ही इस छोटी-सी पुस्तकमें, जो मैंने महात्माजीको समर्पित की है, थोड़ी-सी भूलें कर दी हों तो वे मुझे उस अत्यधिक प्रेम और श्रद्धाका विचार करके क्षमा कर देंगे जो उनके जीवन और तत्त्वज्ञानके कारण उनके प्रति मेरे मनमें उत्पन्न हो गये हैं। एक यूरोपीयसे किसी एशियाई मनुष्य या राष्ट्रके सम्बन्धमें ठीक मत स्थिर करनेके विषयमें भूल हो ही सकती है। किन्तु जब उसे वहाँ भी सर्वव्यापी परमात्मा और व्यापक प्रेमके दर्शन होते हैं तो ये भूलें नगण्य ही ठहरती हैं। हमारे एक यूरोपीय महात्मा बीथोवनने अपने 'आनन्दकी प्रशस्ति' (ओड टु ज्वाय) में कहा है "आओ हम करोड़ों लोग एक दूसरेको गले लगायें।" (एस० एन० ८५७३)।

२. यह वक्तव्य प्रायः सभी प्रमुख समाचारपत्रोंमें प्रकाशित हुआ था। यंग इंडियाने इसे 'वर्ग क्षेत्र विधेयक' शीर्षकसे उद्धृत किया था।

आफ्रिकियों, मलय लोगों और वतनी लोगोंने हजारोंकी तादादमें इकट्ठे होकर श्रीमती सरोजिनी नायडूको विधेयकके विरुद्ध भारतीयोंका समर्थन करनेका आश्वासन दिया। भारतीय कभी जातीय पृथक्करणके आगे सिर नहीं झुकायेंगे। भारतीय जनताको बतला दीजिए। आप जो भी ठीक समझें, कदम उठायें। श्रीमती सरोजिनी नायडूने लोगोंको काफी प्रभावित किया है और बहुत सारे लोगोंको अपना समर्थक बना लिया है। श्रीमती नायडूने दक्षिण आफ्रिकासे अपने प्रस्थानकी तिथि ३० अप्रैल तक स्थगित कर दी है, क्योंकि इस उद्देश्यके हितमें अभी यहाँ उनकी बहुत जरूरत है।

यह खबर चौंका देनेवाली है। यह दक्षिण आफ्रिकाके लिए भी इतनी ज्यादा बुरी है कि इसपर विश्वास करनेको मन नहीं करता। मैं यह बतलानेका प्रयास कर ही चुका हूँ कि विधेयकके क्षेत्राधिकारसे केपको क्यों अलग रखा जा रहा है। यदि केपको अलग रखनेके सम्बन्धमें रायटर द्वारा तारसे भेजी गई सूचना सही है, तो ऊपरके इस तारमें कहीं कुछ गलती रह गई है, या फिर उसमें दी गई सूचना अन्य तीनों प्रान्तों अर्थात् ऑरेंजिया, ट्रान्सवाल और नेटालपर ही लागू होती है। स्थिति इस प्रकार होगी — केपमें तो केपके भारतीय अब भी विधेयकके क्षेत्राधिकारसे विमुक्त रहेंगे, लेकिन अन्य प्रान्तोंमें यह विधेयक केवल भारतीयोंपर लागू होगा। विमुक्तियाँ देनेकी बात आसानीसे समझमें आ जाती है क्योंकि वतनी और मलय लोगोंके इतने स्पष्ट जातीय पृथक्करणका विचार नया ही है। हर यूरोपीय घरमें दक्षिण आफ्रिकाके वतनी लोग घरेलू नौकरोंके रूपमें मौजूद हैं। मैं पिछली बार बतला चुका हूँ[1] कि केपको छोड़कर अन्य सभी जगह मलय लोगोंकी संख्या लगभग नगण्य है। इसलिए हमारे सामने जो स्थिति आज यथार्थ रूपमें खड़ी है वह यह है कि यह विधेयक केवल भारतीयोंके खिलाफ है और इसका आशय भारतीयोंका जातीय पृथक्करण ही नहीं, बल्कि परोक्ष तरीकेसे उनको निकाल बाहर करना भी है। श्रीमती सरोजिनी नायडूकी दक्षिण आफ्रिकाकी यात्रा और उनकी प्रेरक उपस्थिति निस्सन्देह वहाँ बसे हुए भारतीयोंके हृदयोंको निरन्तर संघर्ष करते रहनेके लिए प्रेरित करेगी। उनकी उपस्थिति वहाँ यूरोपीयों और भारतीयोंको एक ही मंचपर लानेका काम भी कर रही है। लेकिन सुरक्षाकी इस मिथ्या भावनाको मानकर कि बस अब तो मँजे-तपे भारतीयोंके बीच पहुँचकर श्रीमती नायडू सब-कुछ करा ही लेंगी, भारतको निष्क्रिय नहीं बन जाना चाहिए। आखिर, दक्षिण आफ्रिकाके सुसंस्कृत यूरोपीय भी सज्जन हैं, और मुझे इसमें जरा भी शक नहीं है कि श्रीमती नायडूके अनेक और अतुलनीय गुणोंके कारण लोग हर तरहसे उनकी ओर आकर्षित भी हो रहे हैं, उनकी बात सुनी जा रही है। यह तो ठीक है। लेकिन दक्षिण आफ्रिकाके यूरोपीयोंकी एक अपनी पूर्व निर्धारित और निश्चित भारतीय विरोधी नीति भी तो है। जनरल स्मट्स एक मँजे हुए राजनीतिज्ञ हैं। जरूरत पड़नेपर वे बहुत ही मीठा बोल सकते हैं, लेकिन वे बखूबी जानते हैं कि उन्हें क्या करना है। हमें बिलकुल स्पष्ट

१. देखिए "दक्षिण आफ्रिकामें भारत विरोधी आन्दोलन", १४-२-१९२४।

रूपसे समझ लेना चाहिए कि यदि भारत परिस्थितिकी आवश्यकताके अनुसार पर्याप्त प्रयत्न नहीं करेगा, तो श्रीमती नायडूकी सारी सूझ-बूझ धरी रह जायेगी और यह विधेयक संघीय संसद द्वारा पारित कर दिया जायेगा।

मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, २७-३-१९२४

२०६. पत्र : एस० ए० ब्रेलवीको

पोस्ट अन्धेरी
२३ मार्च, १९२४

प्रिय श्री ब्रेलवी,

आपकी टिप्पणीके लिए धन्यवाद।

श्री हॉर्निमैनपर लगाये गये प्रतिबन्धोंको हटानेके पक्षमें जनता द्वारा एक स्वरसे बिलकुल स्पष्ट माँग किये जानेके बावजूद सरकार टससे-मस नहीं हुई। मेरे विचारसे इससे एक साथ दो बातें सूचित होती हैं — एक तो यह कि हम कमजोर हैं, और दूसरी यह कि सरकार जान-बूझकर जनमतकी अवहेलना करती है, फिर चाहे वह इतने जोरदार और सर्वसम्मत ढंगसे ही क्यों न व्यक्त किया जाये, जितने जोरदार और सर्वसम्मत ढंगसे श्री हॉर्निमैनके मामलेमें व्यक्त किया गया है। यदि हम थोड़ी देरके लिए इस दलीलको सही भी मान लें कि प्रतिबन्ध हटानेकी हमारी माँग गलत है, तो भी इतना तो स्पष्ट हो जाता है कि सरकार हमारे लिए गलती करनेकी भी गुंजाइश नहीं रहने देना चाहती। इसलिए हमारी सार्वजनिक सभाओंका बस इतना ही उद्देश्य रह जाता है कि हम उनके जरिये श्री हॉर्निमैनको जतला दें कि हमने उनकी सेवाओंको भुलाया नहीं है और उनको वापस लौटनेका परवाना न मिल पानेका कारण यह नहीं है कि हम ऐसा नहीं चाहते; बल्कि उसका कारण यह है कि हम इसमें असमर्थ रहे हैं। लेकिन यह उद्देश्य भी काफी अहम है। अस्तु मेरी कामना है कि आपकी सभा हर दृष्टिसे सफल हो।[1]

हृदयसे आपका,

श्री एस० ए० ब्रेलवी
'बॉम्बे क्रॉनिकल'
बम्बई

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ८५६७) की फोटो-नकल तथा सी० डब्ल्यू० ५१४२ से।

१. बम्बईमें २५ मार्चको वायस ऑफ इंडियाके कार्यालयमें हुई पत्रकार संघकी एक बैठकमें इस पैराको सन्देशके रूपमें पढ़कर सुनाया गया था। के० नटराजन्, 'इंडियन सोशल रिफॉर्मर' के सम्पादकने उसकी अध्यक्षता की थी।

२०७. पत्र : डी० आर० मजलीको

पोस्ट अन्धेरी
२३ मार्च, १९२४

प्रिय मजली,

आज सुबह सबसे पहले मुझे तुम्हारा ही खयाल आया और मैंने मन-ही-मन सोचा कि तुमको फिरसे पहले जैसा बननेमें मैं तुम्हारी क्या मदद कर सकता हूँ। अगला कांग्रेस अधिवेशन बेलगाँवमें होना तय हुआ है।[1] मैं जानता हूँ कि तुम उसकी तैयारियोंमें हाथ बँटाना चाहते हो। मैं यह भी जानता हूँ कि तुम हमारे अच्छेसे-अच्छे कार्यकर्त्ताओंमें से हो। तुमको अब इतना ही करना है कि अपना मन बिलकुल शान्त रखो और मानसिक उत्तेजनासे बचते रहो। मुझे लगता है कि जेलमें तुम देशकी समस्याओंके बारेमें काफी सोचते रहे हो। लेकिन समस्याओंके बारेमें सोचते रहना ही हमारे लिए काफी नहीं है। हम हैं ही क्या? हमें अपनी सारी चिन्ताएँ ईश्वरके भरोसे छोड़ देनी चाहिए। हमारा काम केवल इतना ही है कि हम भारतके कन्धोंपर पड़े भारको हलका बनानेकी अपनी शक्ति-भर कोशिश करते रहें। तुमने कभी तुलसी-दासकी 'रामायण' पढ़ी है? यदि तुमको हिन्दी अच्छी तरह न आती हो, तो शायद तुमने उसे नहीं पढ़ा होगा। मेरी समझमें तो उस महान् सन्तने राम-नामके यशोगानके लिए ही 'रामायण' की रचना की थी। मेरे लिए तो यह रक्षा-कवच-जैसा रहा है। बचपनमें मुझे अपनी माँकी अपेक्षा अपनी धायका अधिक साथ मिला था और मैं उसे अपनी माँकी तरह ही प्यार करता था। वह मुझसे कहा करती थी कि रातमें भूत-प्रेतोंका खयाल आनेपर अगर मुझे उनसे डर लगने लगे तो रामनामके जापसे मैं उनको भगा सकता हूँ। धाय-माँपर गहरी आस्था होनेके कारण मैंने उसकी बतलाई तरकीबपर अमल किया। जब भी रातके समय मुझे किसी तरहका डर लगता, मैं इसी पवित्र नामका जाप करने लगता और उससे मेरा डर भाग जाता था।[2] उम्र बढ़नेके साथ-साथ मेरी आस्था कमजोर पड़ती गई। मुझे राह दिखानेवाली, मेरी धाय-माँ तबतक मर चुकी थी। मैंने रामनामका जाप छोड़ दिया और मेरे मनमें फिर डर पैदा होने लगा। लेकिन जेलमें मैंने इतने ध्यान और आस्थाके साथ 'रामायण' का पाठ किया जितने ध्यान और आस्थाके साथ कभी नहीं किया था। जब भी मुझे अकेलापन महसूस होता या मेरे हृदयमें अहंकार जागता और जब भी वह मुझसे यह कहने लगता कि मैं सचमुच भारतके लिए कुछ कर सकता हूँ, तभी इस नामके जापसे मेरे मनमें यथोचित विनम्रताका भाव पैदा होने लगता और मुझे सर्वशक्तिमान्के अस्तित्वकी अनुभूति होने लगती। मैं इस प्रकार अपना अकेलापन दूर करनेके लिए

१. यह अधिवेशन दिसम्बर १९२४ में गांधीजी की अध्यक्षतामें हुआ था।

२. देखिए **आत्मकथा**, भाग १, अध्याय १०।

शान्त भावसे राम-नामके साथ उस सारी महिमाकी कल्पना करके, जिससे उसे तुलसीदासने मण्डित किया है, उसका जाप किया करता था। उस समय मेरे मनमें जो अकथनीय शान्ति उपजती थी, उसे मैं शब्दोंमें व्यक्त नहीं कर सकता। तुमको मालूम ही है कि श्री बैंकरको[1] कुछ समयके लिए मुझसे अलग रख दिया गया था। जब उनको फिरसे मेरे साथ रखा गया, उन्होंने मुझे अपना अनुभव सुनाया। जब वार्डर-ममताहीन भावसे उनकी कोठरीके दरवाजेमें ताला लगाकर चले जाते तब उनको तरह-तरहके डर सताने लगते थे। पर उन्होंने मुझको बड़े ब्यौरेवार ढंगसे बतलाया कि इस नामके जापसे किस तरह उनके मनमें शान्ति पैदा होने लगती थी और उनको सभी तरहके डरपर काबू पानेकी शक्ति मिलने लगती थी। इसीलिए मैं यह काफी जांचा-परखा नुस्खा तुम्हें लिख रहा हूँ। जब भी मनमें उत्तेजना महसूस होने लगे, रामका स्मरण करो और सोचो कि इस नामके जापमें मनको शान्त करनेकी कितनी अद्भुत क्षमता है। धीरे-धीरे जाप करते चलो, दूसरी सभी चीजोंको भूल जाओ और कल्पना करो कि इस विराट विश्वमें तुम एक क्षुद्रतम कण हो। ईश्वर चाहेगा तो मनकी उत्तेजना शान्त हो जायेगी, और तुमको हृदयमें एक बड़ी आनन्ददायक शान्ति महसूस होने लगेगी। प्राचीन कालके हमारे ऋषिगण अपने अनुभवसे जानते थे कि इस जापकी क्या महिमा है। इसीलिए उन्होंने चिन्ताग्रस्त लोगोंके लिए राम-नामका जाप, द्वादशाक्षर मन्त्र और ऐसे ही अन्य उपाय बतलाये हैं। मैं जितना ही इनके बारेमें सोचता हूँ, ये सभी मन्त्र आज मुझे उतने ही अधिक सच्चे प्रतीत होते हैं। मैं चाहता हूँ कि तुम्हारे मनमें इतनी आस्था उपजे कि तुम राम-नामका जाप करने लगो, या ऐसे ही किसी अन्य मन्त्रका जाप करने लगो जिसकी स्मृति तुम्हारे मानस-पटलपर आस्थापूर्वक अंकित हो गई हो। मुझे विश्वास है कि ऐसा करनेसे तुम फिर पहले जैसे ही बन जाओगे।

हृदयसे तुम्हारा,

[पुनश्चः]

तुम्हें याद होगा कि तुम्हें मेरे एक पत्रका उत्तर अभी देना बाकी है। मैंने तुम्हारे पोस्टकार्डका उत्तर तुरन्त दे दिया है। मैं अपने पत्रकी प्राप्तिकी सूचनाका इन्तजार करूँगा।[2]

श्रीयुत डी० आर० मजली,
बेलगाँव

अंग्रेजी प्रति (सी० डब्ल्यू० ५१४१) से।
सौजन्य : कृष्णदास

१. शंकरलाल बैंकर, जो यरवदा जेलमें गांधीजीके साथ बन्दी थे।

२. मजलीने इसके उत्तरमें एक पोस्टकार्ड लिखा था, जो यंग इंडियामें प्रकाशित हुआ था। देखिए "टिप्पणियाँ", ३-४-१९२४।

२०८. पत्र: गंगाधरराव देशपाण्डेको

पोस्ट अन्धेरी
२३ मार्च, १९२४

प्रिय गंगाधरराव,

आज तड़के मैं यह सोच रहा था कि मजलीकी सहायताके लिए मैं क्या कर सकता हूँ। परिणामस्वरूप एक पत्र लिखा। पत्रकी एक प्रति आपके पास भेज रहा हूँ।[1]

हृदयसे आपका,

श्रीयुत गंगाधरराव बी० देशपाण्डे
बेलगांव

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ८५६८) की फोटो-नकल तथा सी० डब्ल्यू० ५१४३ से।

२०९. पत्र: मणिबहन पटेलको

सोमवार [२४ मार्च, १९२४ के पूर्व][2]

चि० मणि,

आज मणिलालने[3] खबर दी कि तुम्हारा बुखार तो चला गया, मगर अशक्ति है और तुम डाक्टर कानूगाके यहाँ चली गई हो। मैं चाहता हूँ कि बापू और डाक्टर इजाजत दें तो यहाँ आ जाओ। आराम और शान्ति दोनों मिलेंगे। तुममें तो शक्ति तुरन्त आ ही जाएगी। इसलिए मैं तुमसे सेवा भी लूंगा। तुम्हें या बापूको यह भय हरगिज नहीं होना चाहिए कि मुझपर तुम्हारा भार पड़ेगा। बोझा पड़ेगा तो जमीन-पर, और जमीन काफी मजबूत है। तुम्हारे जैसी सौ बालिकाओंका बोझा तो वह आसानीसे उठा सकेगी। दूसरा बोझा रसोइयेपर होगा। रेवाशंकर भाईने रसोइया भी यहाँकी जमीनके जैसा ही मजबूत दिया है। तुम्हारे आनेसे मेरी चिन्ता दूर होगी, क्योंकि जो भी देश-सेवक और देश-सेविकाएँ दूर बैठे बीमार पड़ते हैं वे मेरी चिन्तामें वृद्धि करते हैं। वे सब मेरी नजरके सामने हों तो उस हदतक मेरी चिन्ता दूर हो जाये।

१. देखिए पिछला शीर्षक।

२. ऐसा लगता है कि यह पत्र २५ मार्चके पूर्व सोमवारको लिखा गया होगा चूँकि मुहम्मदअलीको लिखित अपने २५ मार्चके पत्रमें गांधीजीने मणिबहनकी बीमारीका उल्लेख किया है।

३. मणिलाल कोठारी, बहुत वर्षोतक गुजरात प्रान्तीय कांग्रेस कमेटीके मन्त्री थे।

डाह्याभाई तुम्हारे बदले ज्यादा अधिक समय बम्बईमें ही होंगे।

बापूके आशीर्वाद

[गुजरातीसे]
बापुना पत्रो : मणिबहेन पटेलने

२१०. अपील : जनतासे[1]

जुहू
२४ मार्च, १९२४

प्यारे भाइयो और बहनो,

जो-कुछ मैं यहाँ लिख रहा हूँ वह मुझसे मिलने आनेवाले भाई-बहनोंके लिए है।

अखबारों द्वारा मैं निवेदन कर चुका हूँ कि जिन्हें मुझसे मिलना अनिवार्य हो वे शामको चार और पाँच बजेके बीच आयें। या तो यह निवेदन लोगोंतक पहुँचा ही नहीं या वे आदतसे मजबूर हैं और निश्चित समयकी परवाह किये बिना आते ही रहते हैं। फल मुझे भोगना पड़ता है। जिस थोड़ी-बहुत सेवाका मैं निमित्त बना हुआ हूँ, उसमें भी व्यवधान पड़ जाता है।

मेरे शरीरमें आजकल शक्तिकी पूंजी बहुत कम है। इसलिए उसे मैं केवल सेवामें ही लगाना चाहता हूँ। अगले सप्ताहसे मैं 'यंग इंडिया' और 'नवजीवन' का सम्पादन फिर हाथमें ले रहा हूँ। उसके लिए पूर्ण शान्ति आवश्यक है। यदि मेरी सारी शक्ति और सारा समय आप लोगोंसे मिलने और बातें करनेमें चला जाये तो मैं इन पत्रोंका जैसा सम्पादन करना चाहता हूँ वैसा नहीं कर पाऊँगा।

और फिर इससे लोगोंको कुछ लाभ होनेकी सम्भावना भी नहीं है। यह मेरे प्रति आपके प्रेमका चिह्न तो अवश्य है, परन्तु यह ज्यादतीकी निशानी है। इस प्रेमको मैं एक महान् शक्ति मानता हूँ। मैं चाहता हूँ कि लोग उसे मुझसे मिलनेमें खर्च करनेके बदले देशकी सेवामें लगायें। मुझसे मिलनेके लिए आने-जानेमें जो खर्च होता है वह मुझे खादीके उत्पादन और प्रचारके लिए भेज दें। जो समय मुझसे मिलने आनेमें जाता है, उसे वे नीचे लिखे कामोंमें लगायें :

(१) सूत कातें अथवा रुई धुनकर पूनियाँ बनायें;
(२) खादीका प्रचार करें;
(३) अपने पड़ोसीको सूत कातना या रुई धुनना सिखायें।

जो लोग यह भी करनेको तैयार न हों और मुझसे मिले बिना न रह सकते हों, वे सोमवारको छोड़कर किसी भी दिन शामको ५ से ६ के बीचमें आयें। मैं सोमवारको मौन रखता हूँ और किसी आगन्तुकसे नहीं मिलता। मैं सबसे अलग-

१. यह खुला पत्र गुजरातीमें लिखा गया था और समाचारपत्रोंमें प्रकाशित हुआ था।

अलग नहीं, बल्कि एक साथ ही मिल सकूँगा। और मेरा निवेदन है कि आप लोग इसमें सन्तोष मानें।

जो लोग मिलने आते हैं उनसे मैं इतना और चाहता हूँ कि वे अपना काता हुआ सूत अथवा कुछ रकम साथ लेते आयें। सूतकी खादी बुनाई जायेगी और पैसा खादीके उत्पादनमें खर्च किया जायेगा।

मेरी इस प्रार्थनापर आप ध्यान देंगे तो मैं आपका कृतज्ञ होऊँगा और इससे देशकी सेवाके लिए मेरा समय बचेगा।

मोहनदास करमचन्द गांधी

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, २७-३-१९२४

२११. पत्र : डी० वी० गोखलेको

अन्धेरी
२४ मार्च, १९२४

प्रिय श्री गोखले,

पत्रके लिए धन्यवाद। मैं आपकी स्थिति समझता हूँ। पर सचमुच मेरा खयाल है कि सरकारके प्रति न्यासियों (ट्रस्टियों)का रुख मध्यस्थ-निर्णयके लिए उनके तैयार होनेकी बातसे बिलकुल मेल खाता है। मैं आपको गलत नहीं समझूँगा, इसका वचन देता हूँ। आपके कुछ कार्योंसे मुझे शिकायत हो सकती है, फिर भी मैं सदाशयतापूर्ण मतभेदोंकी कद्र करता हूँ।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

[पुनश्च :]

चूँकि आपने अपने पत्रको निजी और गोपनीय रखनेकी इच्छा प्रकट की थी इसलिए मैंने उसे नष्ट कर दिया है।

मो० क० गांधी

अंग्रेजी पत्र (एस० एन० ८५७६) की फोटो-नकलसे।

२१२. पत्र : च० राजगोपालाचारीको

सोमवार, २४ मार्च, १९२४

प्रिय राजगोपालाचारी,

पुत्र अपने पितासे आगे बढ़ गया। यही होना भी चाहिए। आप समझ सकते हैं, इस तथ्यकी जानकारीने मेरे मस्तिष्कपर कितना गहरा प्रभाव डाला है।

नटराजन्[1] और जयकरसे काफी देर तक गपशप हुई। वे कल फिर आ रहे हैं। बड़ा अच्छा हो, अगर वक्तव्य[2] तैयार करके समाचारपत्रोंको देनेसे पहले मैं आपको दिखला सकूँ। कोशिश करूँगा, पर हो सकता है सफलता न मिले। बिना बुलाये आनेवाले लोग मेरा काफी समय ले लेते हैं। मैं इस गड़बड़ीको दूर करनेकी कोशिश कर रहा हूँ।

आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजी पत्र (एस० एन० ८५७७)की फोटो-नकलसे।

२१३. पत्र : के० जी० रेखड़ेको

पोस्ट अन्धेरी
२५ मार्च, १९२४

प्रिय श्री रेखड़े,

आपका पत्र मिला। मैं नहीं समझता कि साबरमती आश्रमका जीवन आपको सन्तोष दे पायेगा। आजकल वहाँ सारा ध्यान हाथ-कताई और हाथ-बुनाईके विकासपर ही लगाया जा रहा है। आश्रममें पठन-पाठनका उतना महत्त्व नहीं रह गया है। इसलिए आश्रममें एक बड़े अच्छे पुस्तकालयके होते हुए भी मैं यह नहीं कह सकता कि वहाँका वातावरण दर्शन-शास्त्रके अध्ययनके लिए अनुकूल है या नहीं। जब आस-पासके सभी लोग अपनी पूरी शक्तिसे काममें जुटे हों, तब कोई भी अध्ययन और मननमें नहीं जुट सकता। आश्रमके जीवनको यह नया मोड़ इसलिए दिया गया है कि मेरा अपना पक्का विश्वास है कि हम दर्शनशास्त्र और राजनीतिके अध्ययनमें जरूरतसे ज्यादा डूब चुके हैं — इतना कि हाथ-पैरसे काम करनेकी हमारी प्रवृत्तिको जैसे काठ ही मार गया हो। आश्रममें शारीरिक श्रमके प्रति रुचि जगानेकी कोशिश की जा रही है। और आश्रम रुपये-पैसेकी आपकी जरूरतोंको भी पूरा नहीं कर

१. के० नटराजन्, इंडियन सोशल रिफॉर्मरके सम्पादक।
२. वक्तव्य अनुमानतः कौन्सिलोंमें प्रवेश और हिन्दू-मुस्लिम एकताके सम्बन्धमें था; क्योंकि उन दिनों गांधीजी इन विषयोंपर एक वक्तव्य तैयार करनेकी सोच रहे थे।

सकेगा। क्या आप जमनालालजीसे मिले हैं? शायद उनसे आपको सही सलाह मिल जायेगी।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत के० जी० रेखड़े,
वर्धा (मध्य प्रान्त)

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ८५८२) की फोटो-नकल तथा सी० डब्ल्यू० ५१४४ से।

२१४. पत्र : मुहम्मद अलीको

पोस्ट अन्धेरी
२५ मार्च, १९२४

प्यारे दोस्त और भाई,

आपका पत्र[1] मिला। मैं समाचारपत्रोंके जरिये आपकी गति-विधियोंकी जानकारी रखता आया हूँ और मैंने देखा है कि आपने परिवारपर टूटनेवाली इस विपत्तिका[2] सामना जिस साहस और तितिक्षा-भावसे किया है वह आपके ही योग्य है। मुझे भी ठीक यही उम्मीद थी। आपने अमीनाके अन्तिम क्षणोंका जो विवरण मुझे लिखा है, उसे मैं अपनी दोस्तीका एक खास हक मानता हूँ। वह बड़ी अच्छी और प्यारी बच्ची थी। बहुत ही अच्छा हो, अगर आप मेरे साथ एक हफ्ता गुजार सकें। मेरी तो इच्छा है कि आप बेगम साहिबा और अपने समस्त परिजनोंके साथ आयें, लेकिन इस इतने बड़े बँगलेमें भी जगहकी कुछ तंगी हो गई है। आपकी देखभाल तो मैं आसानीसे कर सकता हूँ, मतलब यह कि आप अपनी मर्जीके मुताबिक रहेंगे और इस बँगलेमें, जो अस्पताल ही बन गया है, जितना भी मुमकिन है उतना आराम पा सकेंगे। मैं यहाँ मरीजोंके बीच रह रहा हूँ। मगनलालकी पुत्री राधा और वल्लभभाईकी पुत्री मणिबाईने चारपाई तो नहीं पकड़ी है, पर वे चलने-फिरनेसे लाचार हैं; और मैंने पगले मजलीको भी यहीं आनेके लिए लिखा है। मैं कह नहीं सकता कि बड़े भाईकी भी तीमारदारी करनेसे मुझे कितनी खुशी हासिल होगी, लेकिन यह तभी हो सकता है जब मैं चंगा हो जाऊँ। इन सब मरीजोंको यहाँ रखनेका मंशा भी साफ-साफ समझा जाना चाहिए। आपको मालूम होना चाहिए कि मैं अगर एक सियासी आदमी हूँ फिर भी मुझमें नर्स होनेका माद्दा उससे भी बढ़कर है। और इतना ही नहीं मुझे तो शर्म महसूस हो रही थी कि मैं अकेले ही इतना बड़ा बँगला दबाये बैठा हूँ जब कि बाहर इतने सारे मरीज पड़े हैं और उनमें कुछ तो ऐसे हैं जो मेरी ही देख-रेखमें बड़े हुए हैं और जिन्हें तीमारदारी और आबोहवाकी तब्दीलीकी कहीं ज्यादा जरूरत है। इसलिए वे सब यहीं आ गये हैं — मेरे दिमागी सुकूनके लिए नहीं, अपने ही भलेके लिए। पर बँगलेको इस तरह अस्पताल बना देनेपर अब मैं खुद

१. यह उपलब्ध नहीं है।
२. तात्पर्य मुहम्मद अलीकी पुत्री, अमीनाकी मृत्युसे है।

मेहमानोंकी देखभाल नहीं कर पाता। और मैं अगर अपने मेहमानोंकी तरफ जरूरतके मुताबिक तवज्जह न दे पाऊँ, तो मैं उन्हें आनेकी दावत ही नहीं दूँगा। मैं आपको तो बड़ी खुशीसे आपकी मर्जीपर छोड़ सकता हूँ, और सोच सकता हूँ कि मैंने काफी कुछ कर लिया, पर बेगम साहिबाके बारेमें तो मैं ऐसा महसूस नहीं कर सकता।

अब आप मेरे बारेमें सभी कुछ जान गये हैं। इसलिए लिखिए कि आप कब आ रहे हैं। हफ्ते-भरके अन्दर-अन्दर यहाँ कुछ नेता लोग आ रहे हैं; मैं चाहता था कि आप भी उनके साथ बहस-मुबाहिसेमें शामिल हो सकते। शौकतसे कहिए कि उन्हें खाट पकड़ लेनेका कोई हक नहीं है। उनके सामने सबसे अच्छा रास्ता यही है कि वे जल्दसे-जल्द चंगे हो जायें।

हयातका क्या हाल है? उसे मेरे एक पत्रका जवाब अभी देना है।

आप सबको प्यार,

स्नेहाधीन,

मौलाना मुहम्मद अली
अलीगढ़

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ८५८४) की फोटो-नकल तथा सी० डब्ल्यू० ५३४५ से।

२१५. पत्र: स्वतन्त्रता-संघके बाल-सदस्योंको

पोस्ट अन्धेरी
२५ मार्च, १९२४

प्यारे बच्चो,

तुम लोगोंने सात दिन और रात लगातार चरखा चलाकर जो सूत काता उसका पार्सल मिला; मुझे बहुत प्रसन्नता हुई। अखण्ड कताईका यह विचार बहुत प्रिय लगा। मुझे विश्वास है कि यदि सब राष्ट्रीय शालाओंके लड़के ऐसा ही उत्साह दिखायें, जैसा तुम सबने दिखाया है, तो हम आजकी अपेक्षा स्वराज्यके बहुत अधिक निकट पहुँच जायेंगे।

आशा है, तुम सूत कातनेके लिए नित्य थोड़ा समय सुरक्षित रखना अपना धार्मिक कृत्य मानोगे।[1]

तुम्हारा हितैषी,

स्वतन्त्रता-संघके बाल-सदस्योंको
राष्ट्रीय शाला
धारवाड़

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ८५८५) की फोटो-नकल तथा सी० डब्ल्यू० ५१४९ से।

१. देखिए "टिप्पणियाँ", ३-४-१९२४।

२१६. पत्र : रागिनीदेवीको

पोस्ट अन्धेरी
२५ मार्च, १९२४

प्रिय श्रीमती रागिनीदेवी,

मैं आपके ११ फरवरीके कृपापत्र[1] और भारतीय संगीतके सम्बन्धमें लिखे गये आपके लेखकी रोचक कतरनके लिए आपको धन्यवाद देता हूँ।

आपने मेरे स्वास्थ्यके बारेमें कृपापूर्वक जो पूछताछ की है, उसके लिए आपका आभारी हूँ। उत्तरमें आपसे और अन्य जिज्ञासु मित्रोंसे मेरा यह निवेदन है कि मेरा स्वास्थ्य लगातार सुधर रहा है और जल्दी ही मेरे पूर्ण स्वस्थ हो जानेकी आशा है।

हृदयसे आपका,

श्रीमती रागिनीदेवी
१२४०, यूनियन स्ट्रीट
ब्रुकलिन
न्यूयार्क

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ८५८६) की फोटो-नकल तथा सी० डब्ल्यू० ५१४८से।

२१७. पत्र : एस० ए० ब्रेलवीको

पोस्ट अन्धेरी
२५ मार्च, १९२४

प्रिय श्री ब्रेलवी,

मैं प्रोफेसर शाहके उपन्यासकी रूपरेखा देख गया हूँ। वे कृपापूर्वक मुझे उसकी पाण्डुलिपि भेजनेको तैयार हैं। चाहता हूँ पूरे उपन्यासको पढ़नेका समय मेरे पास होता, लेकिन 'नवजीवन' और 'यंग इंडिया' के सम्पादनका काम मैं फिरसे हाथमें ले रहा हूँ। इस बातको देखते हुए लगता है कि मुझे इस लोभको संवरण करना ही पड़ेगा। जबतक मुझमें पहले जैसी शक्ति नहीं आ जाती — क्या जाने कभी आती भी है या नहीं — तबतक जितना समय मुझे मिल सकता है उसका एक-एक क्षण इसी कामके लिए सुरक्षित मानना पड़ेगा। क्या वह रूपरेखा वापस भेज दी जाये?

१. रागिनी देवीने इसमें बताया था कि अमेरिकाकी गांधीजीमें सच्ची दिलचस्पी है। उन्होंने अमेरिकामें भारतीय संगीतको लोकप्रिय बनानेके सम्बन्धमें किये जानेवाले अपने कार्यके लिए आशीर्वाद माँगा था।

आपके पत्रके सम्बन्धमें आपको देवदासने लिखा है। उसने पत्रमें जो कहा है मेरे द्वारा उसकी पुष्टि जरूरी नहीं है; आप जब कभी आयें, आपका स्वागत है। आप कृपा करके एक पूरा दिन यहाँ गुजारें। यह स्थान बेशक बहुत सुन्दर है और आप इसे पसन्द करेंगे।

हृदयसे आपका,

श्री एस० ए० ब्रेलवी
'बॉम्बे क्रॉनिकल'
बम्बई

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ८५८७) की फोटो-नकल तथा सी० डब्ल्यू० ५१४७ से।

२१८. पत्र: डा० सत्यपालको

पोस्ट अन्धेरी
२५ मार्च, १९२४

प्रिय डा० सत्यपाल,

आपका पत्र पाकर प्रसन्नता हुई। उसके द्वारा मुझे हिन्दुओं और मुसलमानोंके बीच तनावके सम्बन्धमें बहुत-कुछ जानकारी मिल गई है। अगली बार आप सिखों और हिन्दुओंके सम्बन्धमें जो लिखकर भेजनेवाले हैं, मैं उसकी प्रतीक्षा उत्सुकतासे कर रहा हूँ। मैं जानता हूँ कि देशके सम्मुख बहुत गम्भीर और बहुत उलझन-भरी समस्या उपस्थित है और इसका सन्तोषजनक और स्थायी हल निकालनेकी हमारी क्षमता-पर स्वराज्य निर्भर है। मैं जबसे रिहा हुआ हूँ तभीसे दिन-रात इसके सम्बन्धमें विचार करता रहा हूँ। नेताओंसे भेंट करनेके बाद तुरन्त इसके सम्बन्धमें लिखना आरम्भ कर दूंगा।

आपने मेरे स्वास्थ्यके सम्बन्धमें जो पूछताछ की है, उसके लिए धन्यवाद। मेरा स्वास्थ्य धीरे-धीरे सुधर रहा है। पत्रसे जाना कि आप अब अमृतसरमें नहीं, बल्कि लाहौरमें हैं। इस परिवर्तनका क्या कारण है?

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

डा० सत्यपाल
लाहौर

अंग्रेजी पत्र (एस० एन० १०४६०) की माइक्रोफिल्म तथा सी० डब्ल्यू० ५१४६ से।

२१९. तार: बलीबहन वोराको

[२६ मार्च, १९२४ के पश्चात्][1]

वलीवहन
मार्फत हरिदास वोरा
राजकोट

कान्तिको आज आश्रम भेज दो।

वापू

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ८५८८) की फोटो-नकलसे।

२२०. भेंट: 'बॉम्बे क्रॉनिकल' के प्रतिनिधिसे

जुहू
२७ मार्च, १९२४

उन्होंने कहा, मेरे स्वास्थ्यमें जो सुधार हुआ है उससे मैं सन्तुष्ट हूँ और यद्यपि मुझे वहुत विश्रामकी जरूरत है फिर भी मैंने प्रातः चार वजे उठनेके नियमका पालन फिरसे आरम्भ कर दिया है। एक अन्य प्रश्नके उत्तरमें उन्होंने कहा कि सूत कातना जो एक अनिवार्य काम है, मैंने शुरू कर दिया है। उन्होंने अपनी जेलमें लिखी पुस्तकोंके सम्वन्धमें हमारे प्रतिनिधिको वताया कि दक्षिण आफ्रिकाके सत्याग्रहका इतिहास नवजीवन प्रकाशन मन्दिरसे शीघ्र ही प्रकाशित होगा और वच्चोंकी पाठ्य पुस्तकें गुजरात विद्यापीठके अधिकारियोंको प्रकाशनके लिए दी जा चुकी हैं।

'टाइम्स ऑफ इंडिया' में 'मिसेज़ नायडूज पोएटिक्स' ('श्रीमती नायडूका कवित्व') शीर्षकसे श्रीमती नायडूके सम्बन्धमें जो टिप्पणी लिखी गई है, उसका उल्लेख करते हुए हमारे प्रतिनिधिने महात्माजीसे पूछा कि श्रीमती नायडू जो-कुछ कर रही हैं, उसके सम्वन्धमें आपका क्या खयाल है।

'टाइम्स ऑफ इंडिया' की टिप्पणीको पढ़कर मुझे दुःख हुआ। टिप्पणीमें श्रीमती नायडूपर जो आरोप लगाये गये हैं, असलमें उन सवका उत्तर 'टाइम्स ऑफ इंडिया' के ही उसी अंकमें प्रकाशित विशेष तारमें मिल जाता है। चूंकि तारसे भेजे गये समाचारोंमें भाषणों अथवा लेखोंको संक्षिप्त रूपमें भेजा जाता है, इसलिए उनके आधारपर राय वनानेमें अत्यन्त सावधानीसे काम लेना चाहिए।

१. यह किचलूसे प्राप्त २६ मार्च, १९२४ के तारके पीछे लिखा गया था।

इस सम्बन्धमें अपने विविध अनुभवों और कष्टोंसे भरे हुए जीवनकी कुछ घटनाओंका उदाहरण देते हुए उन्होंने कहा :

१८९६में रायटरने कुछ ही शब्दोंमें मेरी एक पुस्तिकाका[1] सार तारसे डर्बन भेज दिया था। यह पुस्तिका मैंने भारतमें नेटाल-स्थित भारतीयोंकी स्थितिके बारेमें लिखी थी। जब मैं डर्बन गया तो इस तारके कारण मुझे वहाँ बहुत यन्त्रणाएँ भोगनी पड़ीं।[2] यद्यपि यह गलतबयानी जान-बूझकर नहीं की गई थी, फिर भी अठपेजी आकारके ३० पृष्ठोंकी पुस्तिकाके इतने अधिक संक्षेपीकरणसे, मेरे कथनका बहुत ही गलत रूप सामने आता था। जब नेटालके यूरोपीयोंको यह ज्ञात हुआ कि मैंने भारतमें क्या कहा था तो उन्हें मेरे साथ किये अपने दुर्व्यवहारपर बहुत खेद हुआ था।

'टाइम्स' ने 'मैसेज फ्रॉम मि० गांधी' की जो खिल्ली उड़ाई है, उसका उल्लेख करते हुए महात्माजी ने कहा :

श्रीमती नायडूके नाम मेरा सन्देश 'टाइम्स' में और अन्य पत्रोंमें भी छपा था। मेरा खयाल है कि श्रीमती नायडूका भाषण जोरदार तो था किन्तु वह क्षोभजनक कदापि न था। वे बहुत चतुर हैं; उन्होंने दक्षिण आफ्रिकाकी स्थितिकी गम्भीरता न समझी हो, यह नहीं हो सकता। 'टाइम्स' को भेजे गये विशेष तारसे यह प्रकट होता है कि उनके मनमें अगर कोई भाव है तो वह समझौतेका भाव है। उदाहरणार्थ कहा जाता है कि उन्होंने भारतीयोंमें से कुछ वर्गोंके जीवनका स्तर नीचा होनेसे कुछ आर्थिक खतरा होनेकी बात स्वीकार की है। यह सिद्ध किया जा सकता है कि उनका रहन-सहन उसी स्थितिके फुटकर व्यापारियोंके रहन-सहनसे ज्यादा बुरा नहीं है। यह कोई मेरा अपना विचार नहीं है, बल्कि यूरोपीयोंका है; और भारतीयोंके विरुद्ध इस आधारपर भी शिकायत नहीं की जा सकती कि वे भारतको रुपया भेजते हैं। आँकड़ोंसे यह सिद्ध किया जा सकता है कि दक्षिण आफ्रिकासे भारतीयोंकी अपेक्षा यूरोपीय कहीं अधिक रुपया बाहर भेजते हैं। श्रीमती नायडूने जो वक्तव्य दिया है यदि उसे उसके समग्र रूपमें देखा जाये तो सम्भव है कि उसमें कुछ ऐसे शब्द भी मिल जायें जिनसे वक्तव्यका अच्छा अर्थ निकल आता हो। कुछ भी हो, बातोंको 'टाइम्स' ने जिस दृष्टिकोणसे देखा है, उस दृष्टिकोणसे देखते हुए भी यही माना जायेगा कि यदि श्रीमती नायडूने भूल की है तो वह सही दिशामें ही की है। मुझे इस बातका कोई अन्देशा नहीं कि दक्षिण आफ्रिकामें उनकी मौजूदगीसे भारतको कुछ हानि पहुँच सकती है; भले ही उनके मुंहसे असावधानीमें कुछ आपत्तिजनक बात निकल गई हो।

जब यह बातचीत धीरे-धीरे राजनीतिकी गम्भीर समस्याओंकी ओर बढ़ रही थी तभी खादीकी कमीज और धोती पहने हुए और हाथमें लन्दन 'पंच' का नया अंक लिये हुए श्री एन्ड्रयूज वहाँ आ गये। इससे वातावरणमें सजीवता आ गई। उन्होंने मुस्कराते हुए विनोदमें कहा, "महात्माजी, यदि आप अभीतक अमर नहीं हुए हैं, तो अब आपको अमर बना दिया गया है।"

१. देखिए खण्ड २, पृष्ठ १–५९।
२. देखिए खण्ड २, पृष्ठ २२५–२७।

उन्होंने 'पंच'का अंक महात्माजीको देते हुए कहा, "देखिए आपके सम्बन्धमें 'शैरीवैरी' ('भानमतीका पिटारा') स्तम्भके अन्तर्गत 'पंच' में कितना लिखा गया है।"

गांधीजीने 'पंच' में लिखी बातोंपर जल्दी-जल्दी निगाह डाली और उत्तर दिया:

निःसन्देह मैं अमर हो गया, विशेषकर इस कारणसे कि मेरा उल्लेख पहले पृष्ठपर और बिल्लीके चित्रके बाद किया गया है।

इसके बाद वहाँ बहुत जोरका ठहाका लगा, जिससे सारी गैलरी गूँज उठी और वहाँसे कुछ दूर जो रोगी विश्राम कर रहे थे वे भी उधर ही देखने लगे।

प्रतिनिधिके यह पूछनेपर कि केनियाके भारतीयोंने व्यक्ति-कर न देनेके आन्दोलनका जो संगठन किया है, उसके सम्बन्धमें आपका क्या खयाल है, महात्माजीने उत्तर दिया:

इस व्यक्ति-करका प्रभाव केवल ४,००० भारतीयोंपर पड़ता है, इसलिए बहुत करके यह आन्दोलन उग्र रूप धारण नहीं करेगा। यद्यपि इस संघर्षमें भारतीयोंके बहुत कष्ट उठानेकी सम्भावना नहीं है फिर भी उनमें अनुशासन और व्यवस्था अवश्य आ जाएगी। यूरोपीय लोगोंको यह समझ रखना चाहिए कि भारतीय कृतसंकल्प हैं और वे अब अन्यायको सहन नहीं करेंगे।

श्री शास्त्रीके रुखका उल्लेख करते हुए उन्होंने कहा कि जैसे केनियाके भारतीयोंका धैर्यपूर्वक संघर्ष चलाते रहना आवश्यक है वैसे ही यहाँके भारतीयोंको भी उन्हें नैतिक सहायता देते रहना आवश्यक है।

संवाददाताने उनसे आगे पूछा, कांग्रेसकी पिछले दो वर्षकी कार्यवाहीके सम्बन्धमें आपका क्या विचार है? महात्माजीने स्पष्ट रूपसे स्वीकार किया कि वे अभीतक उसका अध्ययन नहीं कर पाये हैं।

मेरा स्वास्थ्य दुर्बल है, इस कारण मेरे पास समय कम बचता है और जो बचता है वह सामयिक घटनाओंपर विचार करनेमें चला जाता है। किन्तु यदि मुझे कांग्रेसके पिछले दो सालके साहित्यको पढ़नेका अवकाश मिल भी जाता तो भी मुझे अपने सहकारियोंके कार्यके सम्बन्धमें राय देने अथवा उसकी आलोचना करनेमें झिझक ही होती। किसी घटनाके बाद बुद्धिमत्ता दिखाना बहुत आसान होता है। समयपर उचित निर्णय करना उतना आसान नहीं होता। किन्तु मुझे प्रमुख कांग्रेस कार्यकर्त्ताओंकी सचाई, निष्ठा और लगनमें पूरा विश्वास है, फिर वे चाहे कौंसिल-प्रवेशके पक्षमें हों अथवा विपक्षमें। यह प्रामाणिकतापूर्ण मतभेद है। और जबतक हम जैसे हैं वैसे ही बने रहेंगे तबतक ये मतभेद मिटनेवाले नहीं हैं। मेरी रायमें सतही मेल-मिलापकी खातिर लोगोंका अपने-अपने विचारोंपर अड़े रहना एक शुभ लक्षण है।

इसके बाद हमारे प्रतिनिधिने उनसे पूछा, "मैंने 'टाइम्स' में लेबर सरकारकी भारत-सम्बन्धी नीतिके बारेमें आपके विचार देखे हैं। यदि लेबर पार्टी बहुत बड़े बहुमतसे अपनी सरकार बना ले, तब भी क्या आपकी राय यही होगी?"

मेरा खयाल यह है कि अगर यह पार्टी बहुत बड़े बहुमतसे भी अपनी सरकार बनाती है तब भी मेरे इस विचारमें अधिक परिवर्तन नहीं होगा, क्योंकि लेबर पार्टी की सरकार जबतक पहला स्थान लोकप्रियताके बजाय सिद्धान्तोंको न दे तबतक उसके लिए भारतके सम्बन्धमें वस्तुतः कोई उदार कानून बनानेका दायित्व ओढ़ना कठिन होगा; और अगर वह ऐसा करती है तो उसकी गृह-नीति खतरेमें पड़ जायेगी।

जब बातचीत पिछले दो सालकी राजनैतिक घटनाओंपर आयी, तब महात्माजीने बोरसद सत्याग्रहके परिणामोंपर पूर्ण सन्तोष प्रकट करते हुए कहा:

बोरसद सत्याग्रहसे जो शिक्षा मिलती है वह अत्यन्त मूल्यवान है। यह सच है कि बम्बई सरकारने स्थितिको ठीक-ठीक समझनेमें जो विवेकशीलता और बुद्धिमत्ता दिखाई उसके लिए वह धन्यवादकी पात्र है; किन्तु दूसरी ओर यह भी उतना ही सच है कि बोरसदके सत्याग्रही तो पूर्ण अहिंसा, निश्चयकी दृढ़ता और अपने उद्देश्यकी न्याय्यतासे अजेय ही बन गये हैं। और यदि एक पूरा ताल्लुका एक छोटी और खास बुराईके सम्बन्धमें सफल सत्याग्रहके लिए संगठित हो सकता है तो एक आम और गहरी पैठी हुई बुराईके सम्बन्धमें अपेक्षाकृत बड़े पैमानेपर सत्याग्रहका संगठन भी सम्भव होना चाहिए। इसके लिए जिस चीजकी आवश्यकता है वह है ऐसे कार्यकर्ताओंका पर्याप्त संख्यामें सुलभ होना जिनका अपने ध्येय और साधनोंमें अटूट विश्वास हो। स्वयं श्री वल्लभभाई पटेलमें यह विश्वास था और उनके पास वैसे ही विश्वसनीय कार्यकर्ता भी थे।

संवाददाताने उनसे पूछा कि पूर्ण स्वस्थ होनेके बाद वे क्या करना चाहते हैं। महात्माजीने कहा कि उस समय देशके सामने जो स्थिति होगी, कार्यक्रम उसके अनुसार होगा।

स्वास्थ्य लाभ करनेके बाद मेरा कोई निश्चित कार्यक्रम नहीं है। चूंकि मैं किसी भी आकस्मिक परिस्थितिसे निबटनेके लिए स्वतन्त्र रहना चाहता हूँ, इसलिए मैं पहले से ही कोई जिम्मेवारी स्वीकार नहीं कर रहा हूँ।

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे क्रॉनिकल, २९-३-१९२४

२२१. पत्र : गंगाधरराव देशपाण्डेको

पोस्ट अन्धरी
२७ मार्च, १९२४

प्रिय गंगाधरराव,

मैंने 'मराठा'के एक अनुच्छेदमें यह पढ़ा है कि कर्नाटक प्रान्तीय कांग्रेस कमेटीने जिस प्रस्ताव द्वारा कांग्रेस अधिवेशनका स्थान बेलगांवमें नियत किया है, उसपर मंगलौरके लोग अभीतक आपत्ति कर रहे हैं। क्या यह बात सच है? यदि सच है तो कृपा कर मुझे इस सम्बन्धमें कुछ ब्योरा भेजें और यह भी बतायें कि क्या मैं किसी प्रकारकी सहायता कर सकता हूँ। जो लोग कमेटीके निर्णयको बदलवानेके लिए आन्दोलन कर रहे हैं, आप उनके नाम भी भेज दें तो अच्छा रहे।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत गंगाधरराव बी० देशपाण्डे
बेलगांव

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ८५९०) की फोटो-नकल तथा सी० डब्ल्यू० ५१५८ से।

२२२. टी० ए० सुब्रह्मण्य आचार्यको

पोस्ट अन्धेरी
२७ मार्च, १९२४

प्रिय सुब्रह्मण्य,

मुझे आपका डर्बनसे लिखा पत्र पाकर प्रसन्नता हुई।

आपकी शुभ कामना और मेरे स्वास्थ्यके सम्बन्धमें पूछताछके लिए धन्यवाद। मैं धीरे-धीरे किन्तु लगातार पूर्ण स्वास्थ्यकी ओर प्रगति कर रहा हूँ। आप अपने देशकी सेवा करनेमें असमर्थ हैं, इसके लिए आपको दुःखी होनेकी आवश्यकता नहीं। मैं आपसे यह नहीं कह सकता कि आप वहाँ सूत कातें। किन्तु वहाँ भी जहाँ तक सम्भव हो खद्दरका प्रयोग कर ही सकते हैं। और अपनी कमाईमें से जितना बचा सकें उतना देशमें संघर्ष चलानेके लिए आप सार्वजनिक कोषोंमें दे सकते हैं।

हृदयसे आपका,

श्री टी० ए० सुब्रह्मण्य आचार्य
१७५, उमगेनी रोड
डर्बन

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ८५९१) की फोटो-नकलसे।

२२३. पत्र : अमिय के० दासको

पोस्ट अन्धेरी
२७ मार्च, १९२४

प्रिय श्री दास,

आपका पत्र मिला। मैं नहीं जानता कि इसे असमियामें प्रकाशित करना है अथवा हिन्दीमें। इस सम्बन्धमें विलम्ब न हो, इस खयालसे आपको नीचेकी पंक्तियाँ अंग्रेजीमें भेजता हूँ:

हमारे दुःखोंको दूर करनेके उपायके रूपमें इस समय मेरे खयालमें केवल एक ही चीज आती है। वह यह है कि हममें से हरएक चरखा चलाये अथवा ऐसा कोई कार्य करे जिसका इससे सीधा सम्बन्ध हो — जैसे रुई धुनना, पूनियाँ बनाना, खादीकी फेरी लगाना, रुई इकट्ठी करना और उसका वितरण करना आदि। मैं स्वराज्यकी प्राप्तिके लिए चरखेका व्यापक प्रचार अनिवार्य मानता हूँ।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत अमिय के० दास
सम्पादक 'असमिया'
डिब्रूगढ़
(उत्तरी असम)

अंग्रेजी पत्र (एस० एन० ८५९३) की फोटो-नकल तथा सी० डब्ल्यू० ५१५१ से।

२२४. पत्र : जॉर्ज जोजेफको

पोस्ट अन्धेरी
२७ मार्च, १९२४

प्रिय जोजेफ,

इसके साथ एक पत्र[1] संलग्न है, उसमें जो-कुछ लिखा गया है, उसका आशय स्पष्ट है। लिखो हकीकत क्या है। यदि यह बात सच हो कि तुमने सविनय अवज्ञाकी धमकी दी है तो उसका कारण भी लिख भेजना।

मुझे दुःख है कि तुम्हें अभीतक अपनी पत्नीकी बीमारीके सम्बन्धमें निश्चित समाचार नहीं मिल सका है। देवदासको तुमने ठीक ही लिखा है कि रोगी सचमुच राजा होते हैं; किन्तु इन राजाओंका एक संघ हुआ करता है और इस संघके भद्र सदस्य अपने राजसी गौरवको अक्षुण्ण रखते हुए भी एक ही अनुशासनके अधीन चलते

१. देखिए अगला शीर्षक।

हैं। यह स्थान इतना भर गया है कि यदि तुम्हारी पत्नी यहाँ आनेके लिए तैयार भी हो जायें तो मुझे लगता है कि उन्हें यहाँ आराम न मिलेगा। इस समय यहाँ राधा, मणिवहन, कीकीवहन और प्रभुदास हैं; पाँचवाँ मैं स्वयं। मैं जव पूनामें था, तभी मैंने पगले मजलीको यहाँ आनेके लिए निमन्त्रित किया था। यदि वह किसी तरह भी यहाँ आने लायक स्थितिमें हो तो उसे यहाँ भेजा जा सकता है। क्या तुम अपनी पत्नीको वड़ौदाके राजकीय अस्पतालमें डा० जीवराज मेहताके इलाजमें रखनेको तैयार हो? मैं चाहता हूँ कि तुम इस प्रस्तावपर अपनी पत्नीसे सलाह करो और स्वयं भी गम्भीरतासे विचार करो। डा० मेहता तपेदिकके विशेषज्ञ हैं। वड़ौदाके राजकीय अस्पतालमें इन्तजाम कैसा है, इस वारेमें मैं खुद कुछ नहीं जानता; किन्तु यदि श्रीमती जोजेफ डा० मेहताकी देखरेखमें रहनेको राजी हों जायें तो मैं तुरन्त जानकारी प्राप्त कर लूँगा।

तुम दोनोंको प्यार,

हृदयसे तुम्हारा,

श्रीयुत जॉर्ज जोजेफ
चेंगनूर
त्रावणकोर

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ८५९४) की फोटो-नकल तथा सी० डब्ल्यू० ५१५५ से।

२२५. पत्र : ई० आर० मेननको

पोस्ट अन्धेरी
२७ मार्च, १९२४

प्रिय श्री मेनन,

श्री एन्ड्रयूजने मुझे आपका पत्र दिया कि मैं उत्तर दे दूँ। मैंने वह पत्र श्री जॉर्ज जोजेफको भेज दिया है।[1] मुझे सविनय अवज्ञाकी धमकीके सम्बन्धमें कोई जानकारी नहीं है। जवतक मुझे वास्तविक तथ्य मालूम न हों, तवतक मेरे लिए कोई राय देना वहुत कठिन है। सामान्यतः यह वात विलकुल सच है कि मैं देशी राज्योंमें सविनय अवज्ञा आरम्भ करनेके विरुद्ध रहा हूँ।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत ई० आर० मेनन
मार्फत 'इंडियन सोशल रिफॉर्मर'
एम्पायर विल्डिंग, हार्नवी रोड
वम्वई

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ८५९२) की फोटो-नकल तथा सी० डब्ल्यू० ५१५२ से।

१. देखिए पिछला शीर्षक।

२२६. पत्र : पी० शिवसाम्ब अय्यरको

पोस्ट अन्धेरी
२७ मार्च, १९२४

प्रिय श्री शिवसाम्ब अय्यर,

आपका १४ तारीखका पत्र मिला।

मैं आपकी कठिनाई समझता हूँ; किन्तु मैं आपको क्या सलाह दूं अथवा आपकी कैसे सहायता करूँ, यह नहीं जानता। मैं केवल इतना ही कह सकता हूँ कि यदि आपको देशभक्त कोंडा वेंकटप्पैयाका कोई पत्र न मिला हो तो आप जाकर उनसे मिलें और उन्हें अपनी स्थिति समझायें। यदि यह जानकर आपको कुछ सान्त्वना मिले तो मैं कहना चाहता हूँ कि आप जिस कठिनाईमें पड़े हुए हैं, वह कोई ऐसी कठिनाई नहीं है जो सिर्फ आपपर ही आई है। यह कठिनाई बहुत-से असहयोगियोंके सामने है। और इसी तरह बहुत-से सहयोगी भी ऐसी कठिनाइयोंमें फँसे हैं। अन्तर सिर्फ इतना है कि जहाँ असहयोगी चाहें तो इस बातसे सन्तोष प्राप्त कर सकते हैं कि उनकी कठिनाई अपने अन्तरात्माके आदेशके अनुसार चलनेके कारण है, वहाँ सहयोगियोंको यह सन्तोष भी प्राप्त नहीं है।

आपके नारियलोंकी चोरी होते रहनेकी समस्याको हल करनेके दो मार्ग आपके सामने हैं: एक मार्ग यह है कि आप उनपर परिश्रम करते रहें और चोरोंको जबतक उनका जी न भर जाये, फल चुराने दें। मैं मानता हूँ कि यह बहुत व्यावहारिक नहीं, आदर्श परामर्श है। दूसरा मार्ग वह है जो आपने बताया है; अर्थात् जबतक बाड़ लगाकर, अथवा ऐसे किसी अन्य उपायसे आप पेड़ोंकी रक्षा न कर सकें तबतक उनमें पानी न दें और उन्हें सूख जाने दें।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत पी० शिवसाम्ब अय्यर
किल पुदूपक्कम
ताल्लुका चेजार
डाकखाना तिरुवेतिपुरम्

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ८५९५) की फोटो-नकलसे।

२२७. तार: एच० एस० एल० पोलकको[1]

पोस्ट अन्धेरी
२७ मार्च, १९२४

फैलोफ़[2]
लन्दन

नेताओंसे मिलनेसे पहले कौंसिल प्रवेशके सम्बन्धमें राय देनेके लिए तैयार नहीं फिर भी लेख चाहिए तो अगले सप्ताह भेज सकता हूँ। एन्ड्रयूज रवाना न हों।[3]

गांधी

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ८५९६) की फोटो-नकल तथा सी० डब्ल्यू० ५१५९ से।

२२८. पत्र: एच० एस० एल० पोलकको

पोस्ट अन्धेरी,
२७ मार्च, १९२४

प्रिय हेनरी,

तुम्हारा तार मिला। तारमें निश्चित निर्देश न होनेसे मैंने उसका अर्थ यह निकाला है कि 'स्पेक्टेटर' मेरा लेख डाकसे मांगता है, तारसे नहीं। आज तुमको जो उत्तर भेजा है वह इस प्रकार है:

> नेताओंसे मिलनेसे पहले कौंसिल प्रवेशके सम्बन्धमें राय देनेके लिए तैयार नहीं फिर भी लेख चाहिए तो अगले सप्ताह भेज सकता हूँ। एन्ड्रयूज रवाना न हों। — गांधी।

मुझे लगता है कि जबतक मैं कौंसिल-प्रवेशके सम्बन्धमें अपने विचार निश्चित रूपसे न बतला सकूं तबतक कोई लेख भेजना व्यर्थ है। जिन नेताओंने कांग्रेसके कार्य-क्रममें परिवर्तन किया है, उनसे बातचीत करनेसे पहले मैं ऐसा करनेमें असमर्थ हूँ। अगले सप्ताह इन लोगोंके यहाँ आनेकी आशा है।

१. यह पोलकके २२ मार्चके इस तारके उत्तरमें भेजा गया था: "लन्दनका **स्पेक्टेटर** आपका चौदह सौ शब्दोंका लेख मांगता है, जिसमें आपका वर्तमान कार्यक्रम संक्षेपमें दिया हो। उत्तर दें।" (एस० एन० ८५६६)

२. पोलकका तारका पता।

३. देखिए अगला शीर्षक।

अधिकसे-अधिक मईके अन्ततक मैं इस पतेपर रहनेकी आशा करता हूँ। किन्तु सम्भव है मध्य मईके आसपास मैं साबरमती चला जाऊँ।

तुम सबको प्यार,

हृदयसे तुम्हारा,

श्री हेनरी एस० एल० पोलक
लन्दन

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ८५९७) की फोटो-नकल तथा सी० डब्ल्यू० ५१५६ से।

२२९. पत्र : सर दिनशा माणेकजी पेटिटको

पोस्ट अन्धेरी
२७ मार्च, १९२४

प्रिय सर दिनशा,

आपने अडाजानके स्वर्गीय सोराबजीका[1] नाम शायद सुना होगा। जैसा कि आपको मालूम होगा वे बहुत समयतक दक्षिण आफ्रिकामें रहे थे। वे सबसे अधिक लम्बी कैद काटनेवाले सत्याग्रहियोंमें से थे। वे बैरिस्टर होनेके बाद सार्वजनिक कार्यकरनेके लिए दक्षिण आफ्रिका चले गये। उनका खर्च एक मित्र देते थे। अब उनके परिवारमें उनकी विधवा पत्नी और एक पुत्री है। श्री पालनजी सोराबजी परिवारके निकट-सम्बन्धी हैं। उनकी विधवा पत्नी अपनी पुत्रीको पढ़ानेके खयालसे इस समय उसको लेकर बम्बईमें रह रही हैं। मांको बहुत ज्यादा मकान-किराया देना पड़ता है। उन्होंने मुझे बताया है कि आपके पास कुछ अच्छे मकान हैं, जिन्हें आप बहुत कम किरायेपर गरीब पारसियोंको देते हैं। आप उन मकानोंको किन शर्तोंपर किरायेपर देते हैं यह मैं नहीं जानता। श्री सोराबजी बहुत कम पैसा छोड़ गये हैं। मेरे खयालसे यह रकम एक हजारसे कम ही थी। मेरे जेल जानेसे पहले यह पूरी रकम इस विधवाको सौंप दी गई थी। जिन शर्तोंपर ये मकान गरीब लोगोंको किरायेपर दिये जाते हैं उनका खयाल रखते हुए यदि आप इनमें से एक मकान श्री सोराबजीकी पत्नीको किरायेपर दे दें तो यह मुझपर व्यक्तिगत अनुग्रह होगा। स्वर्गीय सोराबजी मेरे अत्यन्त प्रिय साथियोंमें से थे। वे मेरे अत्यन्त आत्मत्यागी पारसी मित्रोंमें से थे। उनके निर्मल चरित्रसे स्वयं श्री गोखले इतने प्रभावित हुए थे कि उन्होंने उनसे अपने मण्डलका सदस्य बननेका अनुरोध किया था और यदि वे जीवित रहते और भारत वापस आते तथा श्री गोखले भी जीवित होते तो बहुत सम्भव है कि श्री सोराबजी उनके मण्डलमें सम्मिलित हो जाते। यह सब मैं कुछ इस खयाल-

१. देखिए खण्ड १४, पृष्ठ ४८९-९०, ५०२।

से नहीं कह रहा हूँ कि इन बातोंसे प्रभावित होकर आप अनुकूल निर्णय ही करें। आपको यह निर्णय तो इन मकानोंको किरायेपर देनेकी शर्तोंके अनुसार ही करना चाहिये। किन्तु मैंने यह सब यहाँ यह बतानेके लिए कहा कि मुझे स्वर्गीय सोराबजी से सम्बन्धित प्रत्येक बातमें दिलचस्पी क्यों है। यदि मैं उनकी विधवा पत्नीको अपने साथ साबरमतीमें रहनेके लिए तैयार कर सकता तो मैं आपको कष्ट न देता, किन्तु उनकी इच्छा है कि उनकी लड़कीको वैसी ही शिक्षा मिले जैसी आम तौरपर पारसी लड़कियोंको मिलती है और मैं उनकी इस इच्छाको भली-भाँति समझ सकता हूँ। इसकी व्यवस्था मेरे आश्रममें नहीं है। आश्रममें तो हम सिर्फ सूत कातने और कपड़ा बुननेवाले लोग ही तैयार करते हैं, और मानवीय दृष्टिकोणसे जहाँतक सम्भव है वहाँतक सदस्योंको ऐसा परिवेश देनेका प्रयत्न करते हैं, जिसमें उनके चरित्रका गठन हो सके। आश्रममें पुस्तकीय ज्ञानका स्थान गौण है।

हृदयसे आपका,

सर दिनशा माणेकजी पेटिट

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ८५९८) तथा सी० डब्ल्यू० ५१५७ से।

२३०. पत्र : आर० बी० सप्रेको

पोस्ट अन्धेरी
२७ मार्च, १९२४

प्रिय श्री सप्रे,

आपका ११ फरवरीका पत्र मिला। उसके लिए धन्यवाद।

आपने जिस तारका उल्लेख किया है, वह मुझे मिल गया था। इसके लिए आप और क्लबके अन्य सदस्य भी मेरा धन्यवाद स्वीकार करें। जर्मनीमें कितने भारतीय रहते हैं, उनका धन्धा क्या है और जर्मनों और इन भारतीय निवासियोंके सम्बन्ध कैसे हैं, इस सबके बारेमें यदि आप मुझे कुछ विवरण भेज सकें तो मैं अनुगृहीत हूँगा।

हृदयसे आपका,

श्री आर० बी० सप्रे
मन्त्री, भारतीय व्यापारी क्लब
लोकेनगिसरवाल २
हैम्बर्ग (जर्मनी)

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ८५९९)की फोटो-नकल तथा सी० डब्ल्यू० ५१५३ से।

२३१. पत्र : आर० एन० माण्डलिकको

पोस्ट अन्धेरी
२८ मार्च, १९२४

प्रिय श्री माण्डलिक,

'नवाकाल' का निशान लगा हुआ अंक[1], जिसका उल्लेख आपने १९ तारीखके अपने पत्रमें किया था, भेजनेके लिए आपको धन्यवाद।

उल्लिखित वाक्योंका जो अर्थ आपने लगाया है, मेरी रायमें प्रसंगको देखते हुए उनका अर्थ उससे कुछ भिन्न है। मैंने उन वाक्योंका और उनसे पहले आनेवाले वाक्योंका अनुवाद एक मित्रसे करा लिया था। मुझे ऐसा लगता है कि यहाँ श्री खाडिलकर नेताओंकी तर्क-सम्मत स्थितिको स्पष्ट कर रहे हैं। आप देखेंगे कि अन्तिम वाक्य प्रश्नवाचक है। जहाँतक खुद मेरा सम्बन्ध है, सविनय अवज्ञाकी तैयारियोंका मेरे द्वारा नेतृत्व किये जानेका कोई प्रश्न नहीं है। देश सविनय अवज्ञा आन्दोलन आरम्भ करनेके लिए ठीक स्थितिमें है या नहीं, यह प्रश्न ऐसा है जिसपर इस समय, जब मैं विभिन्न प्रान्तोंकी अवस्थाका कहने लायक अध्ययन कर ही नहीं पाया हूँ, कोई मत नहीं दे सकता। किन्तु इतना तो मैं निश्चित मानता हूँ कि जबतक देश सविनय अवज्ञाके लिए तैयार नहीं हो जाता तबतक उसे कोई भी कहने योग्य वस्तु प्राप्त नहीं होगी। इसलिए मैं स्वस्थ हूँ अथवा अस्वस्थ, मेरी रायमें मार्ग बिलकुल स्पष्ट है। बारडोली कार्यक्रमको अमलमें लानेसे देश शीघ्रसे-शीघ्र सविनय अवज्ञाके लिए तैयार हो जायेगा।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत आर० एन० माण्डलिक
सम्पादक, 'लोकमान्य'
२०७, रस्तीवाई बिल्डिंग,
गिरगाँव, बम्बई–४

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ८६१२) की फोटो-नकल तथा सी० डब्ल्यू० ५१७० से।

१. गांधीजी ने इससे पहले ही नवाकालका अंक माँगा था; देखिए "पत्र : आर० एन० माण्डलिकको", २०-३-१९२४।

२३२. पत्र : ए० डब्ल्यू० मैकमिलनको

पोस्ट अन्धेरी
२८ मार्च, १९२४

प्रिय श्री मैकमिलन,

पत्रके लिए आपको अनेक धन्यवाद।

आप फीजीमें वहांके भारतीय निवासियोंकी ओरसे जो उद्योग कर रहे हैं, उसमें मैं आपकी पूरी सफलता चाहता हूँ। उन लोगोंके लिए मेरा सन्देश यही है कि उन्हें अपने-आपको इस तरह तैयार कर लेना चाहिए जिससे वे हर तरहकी कठिनाईका सामना कर सकें।

आप फीजीमें अपने देश-बन्धुओंसे निरन्तर विरोध रखकर रहना नहीं चाहते, मैं आपकी इस भावनासे पूरी तरह सहमत हूँ। मेरा निश्चित विश्वास है कि आप अपने देशभाइयोंसे विरोध रखकर भारतीयोंकी सेवा कर भी नहीं सकते। मेरे खयालमें आवश्यकता इस बातकी है कि जो सचाई है, उसे साफ-साफ कहा जाये और चाहे कुछ भी हो, न्यायका आग्रह रखा जाये। इसमें किसीका विरोध करनेकी कोई आवश्यकता भी नहीं पड़ सकती।

हृदयसे आपका,

श्री ए० डब्ल्यू० मैकमिलन
बनारस छावनी

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ८६२२) से।

२३३. पत्र : श्रीनिवास आयंगारको

पोस्ट अन्धेरी
२८ मार्च, १९२४

प्रिय श्री श्रीनिवास आयंगार,

श्री राजगोपालाचारीने मेरे लड़केको[1] लिखा है कि जब उन्होंने आपसे यह कहा कि मुझे आशु लिपिककी सहायताकी जरूरत है तो आपने तुरन्त मुझे बिना कुछ खर्च लिये अपना आशु लिपिक भेजनेका प्रस्ताव किया। कहनेकी आवश्यकता नहीं कि आपके इस प्रस्तावके लिए मैं आपका बहुत कृतज्ञ हूँ। श्री राजगोपालाचारीका पत्र मेरे लड़केको मिला, उससे पहले ही श्री गोलिकेरेको यह मालूम हो गया था कि मुझे

१. देवदास गांधी।

आशु लिपिककी जरूरत है। इसपर उन्होंने मुझे अपनी सेवाएँ प्रदान कीं। यदि ऐसा न हुआ होता, तो मैंने आपका प्रस्ताव प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार कर लिया होता। श्री गोलिकेरे मेरे जेल जानेसे पहले मुझे इस काममें सहायता दे चुके थे।

हृदयसे आपका,

श्री के० श्रीनिवास आयंगार
'हिन्दू' कार्यालय
मद्रास

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ८६१५) की फोटो-नकल; तथा सी० डब्ल्यू० ५१६० से।

२३४. पत्र : च० राजगोपालाचारीको

पोस्ट अन्धेरी
२८ मार्च, १९२४

प्रिय राजगोपालाचारी,

श्री कस्तूरीरंगा आयंगारके पुत्रने एक आशु लिपिककी सेवाएँ मुफ्त देनेका जो प्रस्ताव किया था, उसके लिए मैंने उन्हें धन्यवादका पत्र लिख दिया है।

महादेवने मौलाना मुहम्मद अलीके भाषणका वह अंश मुझे दिखा दिया था। वह पढ़नेमें अच्छा नहीं लगता। मैं उनसे हर हालतमें जल्दी ही मिलनेकी आशा करता हूँ।

मोतीलालजी और लालाजी कल आ रहे हैं और हकीमजी परसों। इसलिए मैं बातचीत और वाद-विवादमें अत्यन्त व्यस्त रहूँगा और आशा है, कौंसिल-प्रवेशके सम्बन्धमें अपने विचार आगामी सप्ताह प्रकाशित करनेकी स्थितिमें हो जाऊँगा। आपको दमेका दौरा कैसे आ गया? क्या कोई अतिरिक्त कारण पैदा नहीं हुआ? यहाँ लौटनेका विचार कब है? क्या कार्य-समितिकी बैठकसे कुछ दिन पहले यहाँ आना सम्भव नहीं है?

हृदयसे आपका,

श्रीयुत चक्रवर्ती राजगोपालाचारी
सेलम

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ८६१३) की फोटो-नकल तथा सी० डब्ल्यू० ५१६१ से।

२३५. पत्र : ए० एम० जोशीको

पोस्ट अन्धेरी
२८ मार्च, १९२४

प्रिय श्री जोशी,

आपने आगामी महाराष्ट्र प्रान्तीय सम्मेलनके सिलसिलेमें आयोजित खादी प्रदर्शनी-का उद्घाटन करनेके लिए श्रीमती गांधीको आमन्त्रित करनेकी कृपा की है। किन्तु श्री दास्तानेने मुझे बताया कि वे इस विधिको सम्पन्न करनेके लिए श्री चक्रवर्ती राजगोपालाचारीको बुला रहे हैं। मेरा निश्चित मत है कि उनको बुलाना अधिक अच्छा है। श्रीमती गांधी तो केवल शोभा ही बढ़ा सकती हैं, जब कि जनताके सामने व्यापक ढंगका यह जो एकमात्र वास्तविक और रचनात्मक आन्दोलन उपस्थित है, उसके लिए जरूरत हमें ऐसे लोगोंकी है जिनमें हृदय और मस्तिष्क, दोनोंकी शक्तियोंका उचित समन्वय हो।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत ए० एम० जोशी
मन्त्री, प्रदर्शनी समिति
महाराष्ट्र प्रान्तीय सम्मेलन
जलगाँव, पूर्व खानदेश

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ८६१४)की फोटो-नकल तथा सी० डब्ल्यू० ५१७१ से।

२३६. पत्र : सी० विजयराघवाचार्यको

पोस्ट अन्धेरी
२८ मार्च, १९२४

प्रिय बन्धु,

आपका पत्र[1] मिला, धन्यवाद।

इसमें सन्देह नहीं कि मैंने आपके वक्तव्यपर[2] आपकी पहली घोषणाओंको ध्यानमें रखे बिना ही विचार किया। मैं आपके आखिरी उत्तरके ३४वें और ३५वें पृष्ठसे निम्न वाक्य उद्धृत करता हूँ :

१. गांधीजीके १९ मार्चके पत्रका उत्तर विजयराघवाचार्यने २३ मार्चको दिया था; देखिए परिशिष्ट १०।
२. विजयराघवाचार्यसे हुई जिस भेंटका उल्लेख है, उसका पाठ उपलब्ध नहीं है।

देशके सर्वाधिक महत्वपूर्ण हितोंका तकाजा है कि भारत और इंग्लैंडके बीच भविष्यमें वर्षोंतक घनिष्ठ सम्बन्ध जारी रहें. . .। कई राजनीतिज्ञोंका कहना है कि अगर इंग्लैंडके लोग भारतवासियोंको उनके माँगने-भरसे स्वराज्य नहीं देते तो दूसरा रास्ता तलवार उठा लेना ही है। किन्तु, इस सिद्धान्तके प्रचारक चाहे वे भारतीय हों या अंग्रेज, यह भूल जाते हैं कि तलवारका प्रयोग और साम्राज्यके अन्तर्गत स्वराज्यकी स्थापना — ये दोनों बातें, यदि परस्पर विरोधी नहीं तो, पूर्णतः असंगत अवश्य हैं. . .। ब्रिटिश साम्राज्यके बाहर भारतकी स्वतन्त्रताकी कल्पना अब हमारे लिए बहुत ही घातक परिणामोंकी आशंकासे भरी हुई है और उसका अर्थ लगभग कुएँसे निकलकर खाईमें गिरना होगा।

. . .इंग्लैंडसे अपने सारे सम्बन्ध तोड़ लेनेका मतलब है संकटमें फँसना। हमें कदापि इस संकटके मुँहमें प्रवेश नहीं करना चाहिए। यह मार्ग पागलपनका मार्ग होगा। भविष्यमें बहुत वर्षोंतक — मैं नहीं जानता, और नहीं कह सकता, यह अरसा शताब्दियोंका अथवा अनन्त भी हो सकता है — हमारे कल्याणका रास्ता यही है कि हम ब्रिटिश साम्राज्यके अन्तर्गत स्वशासनका उपभोग करते रहें।

आपने अस्पृश्यताके सम्बन्धमें जो-कुछ कहा है उसे मैं समझता हूँ और अधिकांशसे मैं सहमत भी हूँ। मेरा खयाल है, आपके वक्तव्यसे मेरे मनपर जो छाप पड़ी है, उससे मैंने आपको अवगत करा दिया है।[1] निःसन्देह बीती बातोंके सम्बन्धमें आपने जो-कुछ कहा है, उसके सम्बन्धमें मैंने कुछ नहीं कहा। मैं जान-बूझकर इससे बचा हूँ, क्योंकि उससे कोई बात नहीं बनती।

आशा है आप जल्दी ही स्वस्थ हो जायेंगे।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत सी० विजयराघवाचार्य
आराम
सेलम

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ८६१६) की फोटो-नकल; तथा सी० डब्ल्यू० ५१६६ से।

१. तात्पर्य विजयराघवाचार्यकी भेंटसे है।

२३७. पत्र : शिवदासानीको

पोस्ट अन्धेरी
२८ मार्च, १९२४

प्रिय श्री शिवदासानी,

आपका दिलचस्प पत्र मिला।[1]

मैं विश्वास करता हूँ कि मेरे विचारोंको देखते हुए आप अपनी योजनाके सम्बन्धमें मुझसे कुछ करनेकी आशा नहीं रखेंगे। मेरे सामने ऐसा काम है जिसे तुरन्त करना है, उसमें मुझे अपनी पूरी शक्ति लगानी होगी। मशीनोंके सम्बन्धमें आपका तर्क बिलकुल विश्वासोत्पादक नहीं है। आपने मोटे तौरपर यह जो कहा है कि "मशीनें, मशीनोंका ही स्थान ले सकती हैं" सो इस कथनके मूलमें एक बड़ी मिथ्या धारणा है। आप पूरी प्रक्रियाको बारीकीसे देखें तो आपको मालूम होगा कि बाहरसे आनेवाले मशीनोंके तैयार किये हुए कपड़ेको यहाँसे हटानेके लिए मशीनोंका आयात करना सर्वथा अनावश्यक है। क्या आप यह नहीं समझते कि भारतके एक सुदूरवर्त्ती गाँवसे रुई मैनचेस्टर भेजने और उसे कपड़ेके रूपमें फिर आयात करनेमें जो श्रम और धन लगता है, उसकी बचत हो सकती है, यदि गाँवमें ही उस रुईसे वस्त्र तैयार कर लिया जाये। निश्चय ही आपको यह समझ सकना चाहिए कि संसारकी कोई भी मशीन इन ग्रामीणोंका मुकाबला नहीं कर सकती। इन लोगोंको कामके लिए तत्पर अपने हाथ-पैरोंके अलावा किसी और मशीनकी जरूरत नहीं; हाँ कुछ मामूलीसे लकड़ीके औजारोंकी जरूरत पड़ती है, जिनको वे खुद बना सकते हैं। मैं चाहूँगा कि आप इसपर अपने दृष्टिकोणसे फिर विचार करें। एक गाँवमें मशीन लगानेके खर्चको ७,००,००० से गुणा कीजिए और फिर अपने-आपसे पूछिए कि इतनी पूंजी कौन लगायेगा और उसका क्या लाभ होगा? क्या आप ये सब पेचीदगियाँ उन ग्रामीणोंपर थोपेंगे जो अपनी फुर्सतके समयमें अपनी रुईसे भली-भाँति कपड़ा तैयार कर सकते हैं? मुझे आशा है कि आप ऐसा नहीं करेंगे।

हृदयसे आपका,

श्री शिवदासानी, एल० सी० ई०, बार-एट-ला
हीराबाद
हैदराबाद (सिन्ध)

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ८६१७) की फोटो-नकल तथा सी० डब्ल्यू० ५१६७ से।

१. २२ मार्चके पत्रमें शिवदासानीने गांधीजीके प्रति आदरभाव व्यक्त किया था, परन्तु हाथकी बुनी खादीके समर्थनमें दिया गया उनका तर्क समझनेमें असमर्थता व्यक्त की थी। चीनीकी मिल खड़ी करनेके लिए उन्होंने एक योजना बनाई थी और गांधीजीसे जरूरी पूँजी जमा करनेमें सहायता माँगी थी।

२३८. पत्र : जगदीशचन्द्र वसुको

पोस्ट अन्धेरी
२८ मार्च, १९२४

प्रिय सर जगदीशचन्द्र वसु,[1]

५ तारीखके पत्रके[2] लिए आपको बहुत-बहुत धन्यवाद।

यदि आप वापसीपर मोटरसे जुहू आनेका समय निकाल सकें तो सचमुच मुझे आपसे तथा श्रीमती वसुसे मिलकर खुशी होगी। जुहू अन्धेरीके समीप एक रमणीय विश्रामस्थल है।

हृदयसे आपका,

सर जगदीशचन्द्र वसु
द्वारा वी० एन० चन्दावरकर महोदय
पेडुर रोड, खम्वाला हिल
वम्बई

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ८६१९) की फोटो-नकल तथा सी० डब्ल्यू० ५१६२ से।

२३९. पत्र : रामानन्द संन्यासीको

पोस्ट अन्धेरी
२८ मार्च, १९२४

प्रिय रामानन्द संन्यासी,

मुझे आपका २३ तारीखका पत्र मिला, धन्यवाद।

पूरी बातें जाने विना आपको सलाह देना मेरे लिए कठिन है:

(१) क्या भरती अभी शुरू हुई है, और यदि हुई है तो किस तारीखसे?

(२) क्या इसके पहले भरती नहीं हुई?

१. जगदीशचन्द्र वसु (१८५८-१९३७), विख्यात भौतिकशास्त्री, वनस्पतिशास्त्री और लेखक; कलकत्तामें 'बोस रिसर्च इंस्टीट्यूट' के संस्थापक।

२. इस पत्रमें वसुने लन्दनसे लिखा था: "आपकी गम्भीर बीमारीकी खबर सुनकर हमें बहुत चिन्ता हुई। आप धीरे-धीरे स्वास्थ्य लाभ कर रहे हैं इस खबरसे कुछ राहत मिली। ईश्वर करे कि समस्त संसारमें न्याय-धर्मकी सेवाके लिए आप चिरायु हों। हम १६ अप्रैलके आसपास वम्बई लौटेंगे और ३-४ दिन वाद कलकत्ताके लिए रवाना होंगे। यदि उस समय आप वम्बईके समीप ही हों तो मैं आपसे मिलना चाहूँगा। मेरा पता होगा द्वारा श्री चन्दावरकर (स्वर्गीय जस्टिस चन्दावरकरके पुत्र)। समस्त शुभकामनाओं सहित।" एस० एन० ८४४६

(३) यदि नहीं हुई तो यह कबसे बन्द हुई ?
(४) चाय बागानोंमें जाकर किस बातकी जाँच करनी है ?

जबतक चाय बागानके मालिकोंकी शर्तोंमें रद्दोबदल न हो, तबतक हालात पहलेसे बेहतर नहीं हो सकते। यदि शर्तें भिन्न प्रकारकी हैं तो उनकी एक नकल आपको उन गाँवोंमें मिल जानी चाहिए, जहाँ भरती हो रही है। इसलिए मेरी समझमें नहीं आता कि अभी चाय बागानोंमें जाकर जाँच करनेसे क्या लाभ हो सकता है। इसके अलावा, कोई भी कदम उठानेसे पहले असमकी प्रान्तीय कांग्रेस कमेटीसे पत्र-व्यवहार कर लेना चाहिए। इसलिए मैं तो यह सुझाव दूंगा कि आप उल्लिखित जिलोंमें हो रही भरतीका पूरा विवरण देते हुए एक पत्र[1] लिखें। यदि आप मेरे सुझावको मान लें, तो उत्तर देते समय असम कमेटीको लिखे गये अपने पत्रकी नकल भी कृपया मेरे पास भेज दें।

हृदयसे आपका,

रामानन्द संन्यासी
बलदेव आश्रम
खुर्जा, यू० पी०

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ८६२०) की फोटो-नकल तथा सी० डब्ल्यू० ५१७२ से।

२४०. पत्र : पी० के० नायडूको

पोस्ट अन्धेरी
२८ मार्च, १९२४

प्रियवर नायडू,[2]

इतने लम्बे अरसेके बाद आपकी लिखावट देखकर मुझे बड़ी खुशी हुई।

मैं दक्षिण आफ्रिकामें होनेवाली घटनाओंके प्रवाहको अत्यधिक ध्यान और चिन्तासे देख रहा हूँ। यदि कोई व्यक्ति इस घटना-प्रवाहको हमारे अनुकूल मोड़ दे सकता है, तो वे निश्चय ही श्रीमती नायडू[3] हैं। उनके तौर-तरीकोंमें एक विचित्र-सा जादू है और वे अपने कर्त्तव्य-पालनमें कभी थकतीं नहीं। वे इस महीनेके अन्ततक या शायद और भी अधिक समयतक वहाँ रहें। मैं केवल यही आशा करता हूँ कि यदि सारे प्रयत्नोंके बावजूद वर्ग क्षेत्र विधेयक (क्लास एरियाज़ बिल) कानून बन जाता है

१. रामानन्द संन्यासीने १ अप्रैलको फिर पत्र लिखा, और उसमें गांधीजीने जो ब्योरा माँगा था वह सब दिया और साथमें, जैसा गांधीजीने सुझाया था, असम कांग्रेस कमेटीको लिखे पत्रकी एक नकल भी भेजी। देखिए परिशिष्ट ११।

२. दक्षिण आफ्रिकाके एक सत्याग्रही और गांधीजी के सहकर्मी।

३. सरोजिनी नायडू।

तो आवश्यकता होनेपर आप अपने लोगोंको सत्याग्रह करनेके लिए तैयार कर सकेंगे। साथ ही मैं यह भी कहूँगा कि आप तबतक सत्याग्रह शुरू न करें जबतक कि आपको उसे सफलतापूर्वक चला सकनेका पूरा भरोसा न हो जाये। कृपया मुझे सारा ब्यौरा और कतरनें डाकसे भेजते रहें।

हृदयसे आपका,

पी० के० नायडू महोदय
पो० ऑ० बॉक्स नं० ६५२२
जोहानिसबर्ग

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ८६२३) की फोटो-नकल तथा सी० डब्ल्यू० ५१६४ से।

२४१. पत्र : जयरामदास दौलतरामको

पोस्ट अन्धेरी
२८ मार्च, १९२४

प्रिय जयरामदास,

आपका तार मिला। मैं उसे ध्यानमें रखूंगा। यदि अपना वक्तव्य पहले आपको न दिखा सकता तो मैंने किसी भी हालतमें उसमें सिन्धका कोई विशेष उल्लेख किया ही न होता। वक्तव्य अभीतक तैयार नहीं हुआ है। इसलिए मैं प्रकाशनसे पूर्व उसकी प्रति आपको नहीं भेज सकूंगा। इसी कारण उसमें सिन्धका कोई उल्लेख नहीं होगा।

मैं आपके पत्रकी प्रतीक्षामें हूँ। आशा है कि उसमें पूरी जानकारी होगी और डाक्टर चोइथरामके स्वास्थ्यके बारेमें शुभ सूचना भी।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत जयरामदास दौलतराम
हैदराबाद (सिन्ध)

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ८६२१) की फोटो-नकल तथा सी० डब्ल्यू० ५१६३ से।

२४२. पत्र : डी० आर० मजलीको

पोस्ट अन्धेरी
२८ मार्च, १९२४

प्रियवर मजली,

तुम्हारा पोस्टकार्ड पाकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई। यह जानकर मुझे खुशी हुई कि अब तुम्हारा मन अपेक्षाकृत स्वस्थ है। शायद बुखार आनेसे भीतरी विकार अच्छी तरह निकल गया है। सावधानीसे परिचर्या होनेपर तुम शीघ्र ही ज्वरसे छुटकारा पा लोगे। अपने इलाजके सम्बन्धमें जो जानकारी तुम मुझे दे रहे हो, निश्चय ही मैं उसका उपयोग करूँगा। तुम्हारा यह विचार कि "मैं किसी लायक नहीं", मुझे पसन्द आया। यदि हममें से प्रत्येक ऐसा ही सोचने लगे तो कितना अच्छा हो। तब कोई भी नेता बनना नहीं चाहेगा, बल्कि सभी सेवक और सहयोगी होंगे। यदि हर आदमी अपने दिलसे यह महसूस करने लगे कि वह खुद कुछ नहीं है और उद्देश्य ही सब कुछ है तो स्वराज्य हासिल करना और उसे चलाना अत्यन्त ही रुचिकर बन जायेगा। मैं तुम्हारा यह पत्र अपने सम्पादकत्वमें निकलनेवाले 'यंग इंडिया'के प्रथम अंकमें[1] छापना चाहता हूँ। मैं अगले सप्ताहसे सम्पादन-कार्य पुनः हाथमें ले रहा हूँ।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत डी० आर० मजली
बेलगांव

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ८६१०) की फोटो-नकल तथा सी० डब्ल्यू० ५१६० से।

२४३. पत्र : ए० क्रिस्टोफरको

पोस्ट अन्धेरी
२८ मार्च, १९२४

प्रियवर क्रिस्टोफर,

इतने वर्षों बाद आपकी परिचित लिखावट देखकर बहुत ही खुशी हुई।

मैं दक्षिण आफ्रिकाकी घटनाओंको ध्यान और चिन्तासे देख रहा हूँ और एक बीमार आदमी जो-कुछ कर सकता है, वह सब मैं करूँगा। मैं जानता हूँ कि श्रीमती नायडूकी उपस्थितिसे आपको अतीव प्रसन्नता और शक्ति दोनों ही उपलब्ध हुई हैं। कृपया मुझे घटनाओंकी प्रगतिकी सही जानकारी अच्छी तरहसे देते रहें; और इसके

१. देखिए "टिप्पणियाँ", ३-४-१९२४।

लिए मुझे सभी कतरनें और अन्य ऐसे सभी कागजात भेजते रहें जिन्हें आप समझते हों कि वे मुझे देखने चाहिए। आपने मुझसे अपने लोगोंमें एकता स्थापित करनेके लिए तार देनेको कहा है। मैं समझता हूँ कि उससे कुछ लाभ नहीं होगा। आपके पत्रपर ११ फरवरीकी तारीख पड़ी है। अब २८ मार्च हो गई है। दक्षिण आफ्रिकामें श्रीमती नायडूकी प्रगतिके सम्बन्धमें जो तार प्राप्त हो रहे हैं, उनसे मैं यह समझ पाया हूँ कि आप एक संयुक्त मोर्चा जमाये हुए हैं। इसलिए मैं एकता न होनेकी बात क्यों मान लूं जब कि हर चीजका संकेत दूसरी दिशामें है।

पाथेरसे मुझे एक तार[1] मिला है। आप देखेंगे कि मैंने उस तारका पूरा लाभ उठाया है। आपके तारके जवाबमें मैंने श्रीमती नायडूको जो लम्बा सन्देश तार द्वारा भेजा है[2], उसका खयाल करते हुए मैंने फिर कोई और तार नहीं भेजा।

मैं अच्छी प्रगति कर रहा हूँ। श्री एन्ड्रचूज मेरे साथ हैं और मेरी देखभाल कर रहे हैं और मुझे मदद दे रहे हैं।

आप सब मेरे और श्री एन्ड्रचूजके आदर स्वीकार करें।

हृदयसे आपका,

ए० क्रिस्टोफर महोदय
१५६, विक्टोरिया स्ट्रीट
डर्बन

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ८६२४) की माइक्रोफिलम तथा सी० डब्ल्यू० ५१६५ से।

२४४. पत्र : महादेव पाण्डे और करामत अली मकदूमको

पोस्ट अन्धेरी
२८ मार्च, १९२४

प्रिय मित्रो,

आपका इस मासकी २५ तारीखका पत्र मिला।

मेरी कठिनाई बुनियादी है, इसलिए मुझे डर है कि मैं आपकी मददके लिए कुछ नहीं कर सकता। आप कहते हैं कि हमारे भारतीय प्रवासियोंके सामने रखी गई शर्तोंको हासिल करनेके लिए नीग्रो लोग शोर मचा रहे हैं। मैं व्यक्तिगत रूपसे इसे बुरा नहीं समझता और न ही ब्रिटिश गियानाके हमारे देशभाइयोंको नीग्रो लोगोंके प्रस्तावित बहुसंख्यक आव्रजनसे डरना चाहिए। यदि १,३०,००० भारतीय अपना आचरण ठीक रखें तो वे अपना हित तो साधेंगे ही, साथ ही नीग्रो लोगों और वहाँ जानेवाले हर व्यक्तिका भी लाभ करेंगे। निश्चय ही उतने लोगोंमें से आपको पर्याप्त

१. देखिए "वक्तव्य : समाचारपत्रोंको", २३-३-१९२४।
२. देखिए "तार : सरोजिनी नायडूको", १६-३-१९२४ के पूर्व।

संख्यामें डाक्टर, पण्डित, मौलवी तथा अन्य धंधोंके लोग तैयार कर सकना चाहिए। मैं यह भी स्पष्ट देख रहा हूँ कि इस समय भी यदि भारतीय लोग ब्रिटिश गियाना जाना चाहें तो उनमें से किसीको भी वहाँ बेरोक-टोक प्रवास करनेसे रोकनेवाली कोई व्यवस्था नहीं है। मुझे जिस बातका डर है और जो मैं भारतकी वर्तमान असहाय अवस्थामें नहीं होने देना चाहता वह यह है कि प्रोत्साहन या सहायता देकर प्रव्रजन कराया जाये। सैकड़ों स्वतन्त्र भारतीय स्ट्रेट्स, मॉरीशस, मैडागास्कर, जंजीबार तथा संसारके अन्य भागोंमें बेरोक-टोक जाते हैं। मेरी समझमें तो यह नहीं आता कि उपनिवेश बसानेकी एक योजनाको लेकर इतना गरमागरम प्रचार और धनका इतना अपव्यय किसलिए हो रहा है। यदि आप बुरा न समझें तो मैं आपको बतला दूँ कि सिर्फ इसी कारण मुझे इसपर बिलकुल भी भरोसा नहीं है, और बुनियादी कठिनाईकी बात तो अपनी जगह है ही।

हृदयसे आपका,

सर्वश्री महादेव पाण्डे और करामत अली मकदूम
मेडन्स होटल
[दिल्ली]

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ८६२५) तथा सी० डब्ल्यू० ५१६८ से।

२४५. पत्र : ए० ज़ी० अडवानीको

पोस्ट अन्धेरी
२९ मार्च, १९२४

प्रिय श्री अडवानी[1],

आपका पत्र[2] मिला।

आपने जिस बातका उल्लेख किया है उसके बारेमें मुझे कुछ भी मालूम नहीं था, किन्तु मैं सचाईका पता लगानेके लिए जो कुछ भी कर सकता हूँ, तुरन्त कर रहा हूँ। मैं चाहूँगा कि आप उन सभी प्रमाणोंको जो अपने वक्तव्यके पक्षमें आपके पास हों, मेरे पास भेज दें। मैं समझता हूँ, आप ऐसा नहीं चाहते कि मैं आपके पत्रको गोपनीय मानूँ, क्योंकि यदि मुझे सचाईका पता लगाना है तो इसका उपयोग अवश्यमेव करना होगा। जबतक नितान्त आवश्यक न हो, तबतक मैं इसे समाचार-

१. ए० जी० अडवानी, एक सिंधी नेता।

२. २४ मार्चके इस पत्रमें गांधीजी का ध्यान इस तरफ दिलाया गया था कि कराची कांग्रेस कमेटीकी जुलाई १९२१ से मार्च १९२१ तककी रिपोर्ट इसलिए प्रकाशित नहीं की गई कि पैसेके अभिकथित गबनको छिपाया सके। अडवानीने मामलेकी जाँच करानेकी माँग की थी।

पत्रोंमें प्रकाशित नहीं करना चाहता और आपका जवाब आनेसे पहले तो नहीं ही करूँगा।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत ए० जी० अडवानी
एस० जे० कोऑपरेटिव सोसाइटी
एलफिन्सटन स्ट्रीट
कैम्प कराची

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ८६२६) की फोटो-नकलसे।

२४६. पत्र : जयरामदास दौलतरामको

पोस्ट अन्धेरी
२९ मार्च, १९२४

प्रिय जयरामदास,

एक पत्र[1] मिला है जिसकी नकल साथमें भेज रहा हूँ। पत्र अपनी बात खुद कहेगा। कृपया मुझे सूचित करें कि इन आरोपोंमें कितनी सचाई है। और यदि आप कुछ नहीं जानते तो कृपया पता लगाइए और मुझे सलाह दीजिए कि क्या करना चाहिए।

हृदयसे आपका,

संलग्न :
श्रीयुत जयरामदास दौलतराम
हैदराबाद, (सिन्ध)

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ८६२७) की फोटो-नकलसे।

१. देखिए पिछला शीर्षक।

२४७. पत्र : जमनालाल बजाजको

शनिवार [२९ मार्च, १९२४][1]

चि० जमनालाल,

तुमने कानपुर जानेका इरादा छोड़ दिया, यह ठीक किया है। अभी कमजोरीके सिवाय और भी कुछ है क्या ?

चिचवडकी संस्थाको[2] तुम जानते हो। उनका विरोध काफी हो रहा है। पैसेकी तंगी भी बनी ही रहती है। मैं समझता हूँ कि उन्हें मदद देनेकी जरूरत है। सोचता रहता हूँ कि यह किस तरह दी जाये। कुल मिलाकर उन्हें १५,००० रुपयोंकी जरूरत है। इतनी मदद मिल जाये तो फिर उन्हें बिलकुल जरूरत न होगी और वे फिर न मांगनेकी प्रतिज्ञा करनेके लिए तैयार हैं। यदि तुम्हारा अनुभव मेरी तरह हो कि वे लोग इसके लायक हैं और तुम्हें सुविधा हो तो मैं चाहता हूँ कि उनकी इतनी मदद तुम करो।

राजगोपालाचारीको फिरसे दमेका दौरा शुरू हुआ है। मैं समझता हूँ कि उन्हें नासिककी हवा माफिक आयेगी। यदि तुम्हें सुविधा हो तो उन्हें सेलम पत्र लिखो कि वे कुछ समय तुम्हारे पास आकर रहें। दवा भी वे पूनाके वैद्यकी ही लेते हैं। वे वैद्य उनकी जांच भी कर सकते हैं। मैंने उन्हें लिखा तो है कि जबतक तुम वहाँ हो तबतक वे नासिक रहने चले आयें तो ठीक होगा।

तुम्हें मालूम हुआ होगा कि पूनाके वैद्यका इलाज वल्लभभाईकी मणिबेन, मगनलाल-की राधा और प्रो० कृपलानीकी [बहन] के लिए शुरू किया है। इसकी प्रेरणा देनेवाला देवदास है।

इन वैद्यके सम्बन्धमें तुम्हारा अनुभव क्या है, सो लिखना।

मालवीयजी कल काशी गये। हिन्दू-मुसलमानोंके सम्बन्धमें कुछ बातें हुई। हकीमजी आये थे। उन्होंने भी इसी विषयमें बातें कीं। मोतीलालजी यहीं हैं, वे अभी रहेंगे। वे कौंसिलकी बातें कर रहे हैं।

मैं सब बातोंका विचार करता रहता हूँ।

बापूके आशीर्वाद

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें मूल गुजराती पत्र (जी० एन० २८४५) की फोटो-नकलसे।

१. पत्रमें मदनमोहन मालवीय, हकीम अजमलखाँ आदिसे हुई बातचीतका उल्लेख है; यह बातचीत मार्च १९२४के अन्तिम सप्ताहमें जुहूमें हुई थी और अन्तिम शनिवार २९ मार्चको था।

२. पूनाके पास, चिंचवड नामक गांवमें, श्री कानिटकर द्वारा संचालित स्वावलम्बन पाठशाला।

२४८. पत्र : के० टी० पॉलको[1]

[२९ मार्च, १९२४ या उसके पश्चात्][2]

मंगलवारको अवश्य आयें। यदि मैं अन्य मित्रोंके बीच समय निकाल सका तो निकालूँगा। अन्यथा आप फिर बृहस्पतिवारको आयें। आप अपना भोजन यहीं करें।[3]

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ८६२८) की फोटो-नकलसे।

२४९. भाषण : जुहूमें[4]

[३० मार्च, १९२४के पूर्व]

ऐसी बढ़िया जगह, जहाँ मकानोंकी तंगी नहीं, जहाँ हवा और रोशनीका अन्त नहीं, और जहाँ आप बम्बईकी गन्दगी और भीड़से भागकर आते हैं, वहाँ निमोनिया क्यों होता है और दूसरी बीमारियाँ क्यों फैलती हैं? मैं तो समझ ही नहीं सकता। मैं खुद बीमार हूँ, अतः मैं आपको उलाहना देनेकी बजाय इस बातको कबूल कर लेना और आपको समझाना अच्छा समझता हूँ कि इनके लिए हम लोग ही जिम्मेवार हैं। मच्छर, मक्खी, डाँस और अन्य कीड़े-मकोड़े जिनसे रोग फैलते हैं, मेरी रायमें कुदरतके बनाये कोड़े हैं। ये कोड़े यदि हमपर न पड़ें तो हमारी आँखें किस तरह खुलें? मैं यहाँ रहकर जितनी चाहूँ उतनी गन्दगी बढ़ा सकता हूँ और जितने चाहूँ उतने मच्छर, मक्खियाँ और डाँस पैदा कर सकता हूँ, परन्तु आप देखते हैं कि यहाँ ऐसी कोई बात नहीं है। यहाँ तो मैं जिस दिन आया था, मैंने उसी दिन कह दिया था, हमें भंगीकी जरूरत नहीं है। भंगी यहाँ है तो, परन्तु यहाँका आधा मैला उठाने और सफाई रखनेवाले तो ये लड़के — देवदास, प्यारेलाल और कृष्णदास हैं। यदि कोई

१. के० टी० पॉल, सी० एफ० एन्ड्रयूजके एक मित्र। कलकत्ताके फेडरेशन ऑफ नेशनल यूथ एसोसिएशन्ससे सम्बद्ध थे। ११ फरवरीके एक पत्रमें उन्होंने गांधीजीसे मिलने और "शान्त वातावरणमें बिना जल्दबाजीके बातचीत करनेकी" इच्छा व्यक्त की थी। ऐसा लगता है कि गांधीजीने पहली मार्चको पॉलको एक पत्र लिखा था, जिसमें उन्होंने लिखा था कि अन्तर्जातीय समस्या सुलझानेके बारेमें उन्होंने जो सुझाव दिया था वह उन्हें [श्री पॉलको] पहले ही सूझ गया है। पर यह पत्र उपलब्ध नहीं है।

२. देवदास गांधीके नाम २९ मार्चको लिखे पत्रमें पॉलने पहली अप्रैलको गांधीजीसे मिलनेकी इच्छा व्यक्त की थी। यह उत्तर उसी पत्रके पृष्ठ भागपर लिख दिया गया था।

३. गांधीजीके स्वाक्षरोंमें पत्रके अन्तमें यह टिप्पणी है: "डा० किचलू पत्र लेकर पहुँचा सकते हैं।"

४. गांधीजीने यह भाषण जुहूके पास विले पार्लेमें वहाँकी राष्ट्रीय शालाके अध्यापकों, प्रबन्ध समितिके सदस्यों और छात्रोंके संरक्षकोंकी छोटी-सी सभामें दिया था और इसका विवरण ३१-३-१९२४ के **नवजीवन**में महादेव देसाई द्वारा प्रेषित रिपोर्टके रूपमें छपा था। अध्यापकोंका विचार था कि शालामें अस्पृश्य बालक भी प्रविष्ट किये जायें; किन्तु सनातनी संरक्षक उनके इस विचारको पसन्द नहीं करते थे।

त्रुटि नजर आती हो तो उसका कारण यही हो सकता है कि कई बार इन लड़कोंसे गफलत हो जाती है। परन्तु आप समझ ही सकते हैं कि यदि मैं गन्दगी होने दूँ तो यहाँ जो प्राकृतिक सौन्दर्य है उसका सारा आनन्द नष्ट हो जाये। और आप यह भी समझ लें कि गन्दगी दूर करनेके साथ स्वराज्यका कितना निकटका और गहरा सम्बन्ध है। आप मान लें कि हमें स्वराज्य मिल गया, किन्तु हम उसके बाद भी प्रमादी ही बने रहें और अपने आरोग्यके विषयमें लापरवाह रहें तो अंग्रेज हमें यहाँसे फिर ठोकर मारकर निकाल देंगे, इसमें कोई शक नहीं है। और इसके साथ ही भंगियों और चमारोंका भी सवाल आता है। यदि हम भंगियों और चमारोंको दुरदुराते रहेंगे और अछूत समझते रहेंगे तो हम अंग्रेजोंसे किस मुँहसे समानताकी माँग कर सकेंगे? यह जरूरी है कि हम समानताकी बात करनेसे पहले इस बातको समझ लें।

अब इस सम्बन्धमें मैं धर्मकी बात आपके सामने क्या करूँ? मैं तो यह समझता हूँ कि हमारे धर्ममें जो-कुछ लिखा गया है, याज्ञवल्क्य आदि मुनियोंके जो-कुछ इक्के-दुक्के वचन इधर-उधर मिलते हैं वे सभी अमर और स्थायी नहीं हैं। वह जमाना और था, आज जमाना दूसरा है। हम द्रौपदीको एक अलौकिक स्त्री मानते हैं, सुबह उठकर उसका नाम लेते हैं और पाँचों पाण्डवोंको पूज्य मानते हैं। परन्तु इससे क्या आज हम द्रौपदीकी तरह पाँच पति करनेवाली स्त्रीको सती मानेंगे? हम जो उनकी पूजा करते हैं, वह उनके अच्छे कामोंके कारण। हमें गुणग्राहक होना चाहिए। उनके कितने ही गुण अलौकिक थे; इसलिए हमने उनकी स्मृतिको कायम रखा है। यह तो 'महाभारत' की बात हुई। 'रामायण'से बढ़कर प्रिय पुस्तक मेरी दृष्टिमें दूसरी कोई नहीं। फिर भी तुलसीदासने जो कितनी ही धर्म-शास्त्रकी बातें लिखी हैं क्या वे सब प्रामाण्य हैं? 'मनुस्मृति' तो बड़ा प्रामाणिक ग्रन्थ है न? पर उसमें मांसाहारकी स्पष्ट आज्ञा है। इससे क्या आप मांस खायेंगे? आप ऐसी बातें सुनकर चौंकते हैं। कोई मांस खाता होगा तो लुक-छिपकर खाता होगा। यह दूसरी बात है। परन्तु 'मनुस्मृति'में लुके-छिपे नहीं, सरेआम मांस खानेकी आज्ञा दी गई है। फिर भी हम उसे त्याज्य मानते हैं। तब कलियुगमें जिस चीजकी मनाही है, क्या सत्ययुगमें उसकी अनुमति रही होगी? स्वर्णयुगमें अभक्ष्य-भक्षण किया जा सकता है, परन्तु इस कलियुगमें नहीं, क्या यह बात बेतुकी नहीं मालूम होती? किन्तु सत्य यह है कि धर्मको किस दृष्टिसे देखना चाहिए, मुख्य बात यही है। इस बारेमें दो बातें ध्यानमें रखनी हैं: एक यह कि हम धर्मका विचार बुद्धिसे नहीं, हृदयसे करें और दूसरी यह कि हम धर्मके नामपर अधर्म न फैलायें। आप यह बात समझ लें कि 'गीता' का अनर्थ हो सकता है। भीमने दुर्योधनपर गदासे प्रहार किया — इसलिए यदि कोई यह कहने लगे कि भाई-भतीजे एक-दूसरेको शत्रु समझकर कत्ल कर सकते हैं, तो मैं कहूँगा कि वह 'गीता' पढ़ना नहीं जानता। यह तो केवल हृदयका विषय है। मेरे धर्मका आधार बुद्धि नहीं, केवल हृदय है। मैं आपसे अनुरोध करता हूँ कि आप अपने हृदयोंको टटोलें।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ३०-३-१९२४

२५०. सन्देश : 'भारती' को

[मार्च १९२४ के अन्तमें][1]

भारतके स्त्री-पुरुषोंके लिए और विशेषकर स्त्रियोंके लिए, मेरे पास एक ही सन्देश है — चरखेका सन्देश। अहिंसात्मक आन्दोलन एक ऐसा आन्दोलन है जो किसी सांसारिक संरक्षकके बिना भी कमजोरसे-कमजोर मनुष्योंको अपना सम्मान बनाये रखनेकी सामर्थ्य देता है। नारीको दुर्बलताकी प्रतिमूर्ति माना गया है। वह शरीरसे दुर्बल भले ही हो, परन्तु आत्मासे वह सशक्तसे-सशक्त व्यक्तिके समान हो सकती है। चरखा अपने सम्पूर्ण फलितार्थोंके साथ — कमसे-कम भारतमें तो सशक्त आत्मावाले व्यक्तियोंका ही अस्त्र है। समूची जनता यदि इस अद्‌भुत चरखेको अपना ले तो ग्रेट ब्रिटेन भारतमें अपने शुद्ध स्वार्थमय हितसे वंचित हो जायेगा। केवल तभी भारत और इंग्लैंडके पारस्परिक सम्बन्ध शुद्ध और मुख्यत: निःस्वार्थ तथा इसी कारण विश्वके लिए हितकारी बन सकते हैं। ईश्वर करे भारतकी महिलाएँ हाथ-कताईको अपने दैनिक कर्त्तव्यके रूपमें स्वीकार कर लें और हमारे देशके दुर्बलतम शरीरवाले लोगोंकी स्वतन्त्रताके लिए चलाये गये आन्दोलनमें पूरा-पूरा हाथ बँटायें।

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ८६१८) की फोटो-नकलसे।

२५१. पत्र : के० पी० केशव मेननको

अन्धेरी
१ अप्रैल [१९२४]

प्रियवर केशव मेनन,

सर्वश्री शिवराम अय्यर और वंचेश्वर अय्यर आपके सत्याग्रहके[2] सिलसिलेमें यहाँ आये हैं। उन्होंने मुझे बताया है कि जिन सड़कोंके सम्बन्धमें विवाद है, वे जिस मन्दिरको जाती हैं, उसकी निजी सम्पत्ति हैं और वह मन्दिर ऐसे ब्राह्मण न्यासियोंके एकाधिकारमें है जिन्हें प्रवेशको नियन्त्रित करनेका पूरा अधिकार है। ऐसा इन सज्जनों-का दावा है। इसपर मैंने उनसे पूछा कि क्या ये सड़कें केवल ब्राह्मणोंकी निजी

१. यह संदेश गांधीजी ने सरलादेवी चौधरानीको भेजा था। इसकी निश्चित तारीख तय नहीं की जा सकती। सरलादेवीने मार्च १९२४ के तीसरे सप्ताहमें लाहौरसे एक पत्र निकालनेका प्रस्ताव रखा था। फोटो-नकलका साधन-सूत्र भी उसी महीनेसे सम्बद्ध एस० एन० रेकर्ड्स और अन्य कागजोंमें है।

२. वाइकोम-सत्याग्रह, जिसका उद्देश्य हरिजनोंको मन्दिरोंमें प्रवेशका और सार्वजनिक सड़कोंके उपयोगका अधिकार दिलाना था; देखिए "पत्र : के० पी० केशव मेननको", १९-३-१९२४।

सम्पत्ति हैं या कोई ब्राह्मणेतर लोग भी उनका इस्तेमाल करते हैं? इसपर उन्होंने स्वीकार किया कि वे लोग भी उनका इस्तेमाल करते हैं। तब मैंने उनसे कहा कि जबतक एक भी ब्राह्मणेतर व्यक्तिको उन सड़कोंके इस्तेमालकी अनुमति दी जाती है, तथाकथित अछूतों और परिया लोगोंको भी अन्य ब्राह्मणेतरोंके समान ही अधिकार मिलने चाहिए। वे मुझसे सहमत हैं, परन्तु उनका कहना है कि मन्दिर तथा सड़कोंमें दिलचस्पी रखनेवाले न्यासियों तथा अन्य ब्राह्मणोंको भी इस दृष्टिकोणसे सहमत करानेमें अभी समय लगेगा।

मुझे यह भी मालूम हुआ है कि मालवीयजी दो मासके भीतर ही दक्षिण भारत जा रहे हैं। यदि मन्दिरके न्यासी इस बातके लिए राजी हों कि अछूतों और परिया लोगोंके प्रतिनिधिके रूपमें आपके और उनके बीच कोई विवाद खड़ा होनेपर इस प्रकारके सभी विवाद मालवीयजीको अन्तिम पंच-फैसलेके लिए सौंप दिये जायें और उनका फैसला एक निर्धारित समयके अन्दर हो जाये, तो मैं आपको सलाह दूंगा कि सत्याग्रह मुल्तवी कर दीजिए और सार्वजनिक रूपसे सत्याग्रह मुल्तवी करनेका यह कारण भी घोषित कर दीजिए कि मामला पंच-फैसलेके लिए सौंप दिया गया है।

स्वभावत: यह सलाह इस विश्वासके साथ दी गई है कि अय्यर भाइयों द्वारा बताये गये तथ्य सही हैं। वे मुझसे कहते हैं कि इस सुधारको पूरी तरह अमलमें लानेके लिए वे भी उतने ही उत्सुक हैं जितने कि हम और यदि वे अपनी कथनीके प्रति ईमानदार हैं तो हमें भी आपसदारीसे पेश आना चाहिए और अपने सिद्धान्तोंकी रक्षा करते हुए हम उन्हें जो सुविधा दे सकते हों, देनी चाहिए।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजी समाचार पत्रकी कतरन (एस० एन० १०२७३) की माइक्रोफिलम तथा हिन्दू, ३-३-१९२४ से।

२५२. तार: कानपुरकी अग्रवाल परिषद्को[1]

[१ अप्रैल, १९२४ या उसके पश्चात्]

अग्रवाल परिषद्
कानपुर

परिषद्की सफलताकी कामना करता हूँ। आशा है परिषद् खद्दरकी, जो कि अकेले लाखों देशभाइयोंकी भुखमरीको दूर कर सकता है, और दक्षिण भारतमें हिन्दी प्रचारकी मदद करेगी, जिसमें अबतक अग्रवाल लोग इतनी उदारतासे हाथ बँटाते रहे हैं। सेठ जमनालालजी इतने कमजोर हैं कि इतनी थकान बरदाश्त नहीं कर सकते।

गांधी

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ८६४२) की फोटो-नकलसे।

२५३. तार: के० पी० केशव मेनन को

[१ अप्रैल, १९२४ या उसके पश्चात्][2]

सत्याग्रहियोंको मेरी बधाई। आशा है सफलता प्राप्त होनेतक धारा[3] प्रवाहित रहेगी। हमें विरोधियोंको शुद्ध प्रेमसे जीतना है।

गांधी

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १०२६५) की फोटो-नकलसे।

१. यह तार गांधीजीने तार द्वारा प्राप्त निम्नलिखित सन्देशके जवाबमें दिया था: "अखिल भारतीय मारवाड़ी अग्रवाल परिषद् ५, ६, ७, अप्रैलको। निर्वाचित अध्यक्ष बम्बईके सेठ आनन्दीलालजी पोद्दार वहाँ ४को पहुँच रहे हैं। सेठ जमनालालजी की भी उम्मीद है। आपके आशीर्वाद और आध्यात्मिक सन्देशकी हृदयसे याचना है, स्वागत।" (एस० एन० ८६४१)

जमनालाल बजाजने भी १ अप्रैलको देवदास गांधीको एक तार भेजा था जो इस प्रकार था: "कानपुर अग्रवाल परिषद् उपस्थितिके लिए जोर दे रही है। कृपया पूनाके वैद्यसे निजी राय देनेके लिए विनती कीजिए। यदि अनुमति मिले तो तीन तारीखको अवश्य रवाना होना चाहिए। बापूकी भी राय लेनी जरूरी है।" (एस० एन० ८६४२)

२. यह तार के० पी० केशव मेननके १ अप्रैल, १९२४को मिले निम्नलिखित तारके जवाबमें दिया गया था: 'वाइकोम सत्याग्रह कल शुरू हो गया। तीन स्वयंसेवक शान्तिपूर्वक निषिद्ध क्षेत्रमें प्रवेश करते समय गिरफ्तार कर लिये गये। उनके गरिमापूर्ण व्यवहारका जनतापर बड़ा असर पड़ा। पुलिसका आचरण प्रशंसनीय रहा। तीनका एक और जत्था आगे बढ़ते हुए आज गिरफ्तार हो गया। जन-समुदाय व्यवस्थित ढंगसे प्रति दिन सत्याग्रह देख रहा है। पहले जत्थेको छः महीनेकी सजा दी गई है।' (एस० एन० १०२६५)

३. सत्याग्रहियोंकी धारा।

२५४. 'यंग इंडिया''के नये और पुराने पाठकोंसे

'यंग इंडिया' का सम्पादन-भार फिरसे हाथमें लेते हुए मुझे बड़ा संकोच हो रहा है। कह नहीं सकता कि अपने स्वास्थ्यको देखते हुए मैं पत्रके सम्पादनकी शक्ति अब भी जुटा पाऊँगा या नहीं। लेकिन आगेकी क्या जानूं। मुझे यरवदा जेलसे बाहर लानेमें ईश्वरका कोई-न-कोई उद्देश्य है। इस बातका आभास मुझे मिल रहा है और मैं 'नवजीवन' और 'यंग इंडिया' का सम्पादन-भार पुनः ग्रहण करनेमें इसी 'ज्योति' का सहारा लेते हुए बढूंगा।

मेरे पास कोई नया पैगाम नहीं है। मैंने तो स्वराज्य-संसदके हुक्मसे ही रिहा होकर स्वतन्त्र भारतकी यथाशक्ति सेवा करनेकी आशा रखी थी, परन्तु ईश्वरको वह मंजूर न था।

अभी हमें स्वतन्त्रता प्राप्त करनी बाकी है। मेरे पास कोई नया कार्यक्रम भी नहीं है। पुराने कार्यक्रममें मेरा विश्वास अधिक नहीं तो उतना ही दृढ़ बना हुआ है, जितना पहले था। बल्कि मैं तो मानता हूँ कि अपनी योजना और साधनोंके सम्बन्धमें मनुष्यके विश्वासकी सच्ची परीक्षा तभी होती है जब क्षितिजपर बादलोंकी घटा ज्यादासे-ज्यादा घनी दिखाई दे।

यद्यपि जहाँतक मेरी दृष्टि पहुँचती है, कोई नई रीति या नीति 'इंग यंडिया' के पृष्ठोंमें नहीं मिलेगी, फिर भी उसके पृष्ठोंमें बासी सामग्री नहीं रहेगी। 'यंग इंडिया' में बासीपन तभी आ सकता है जब सत्य बासी हो जाये। मैं तो ईश्वरके प्रत्यक्ष दर्शन करना चाहता हूँ। मैं जानता हूँ, सत्य ही ईश्वर है। मेरी दृष्टिसे तो ईश्वरको पहचाननेका एक अचूक साधन अहिंसा अर्थात् प्रेम है। मैं भारतकी आजादीके लिए जी रहा हूँ और उसीके लिए मरूँगा। क्योंकि यह सत्यका ही अंग है। स्वतन्त्र भारत ही उस सच्चे ईश्वरकी पूजा करनेके योग्य हो सकता है। (मैं भारतकी आजादीके लिए प्रयत्न क्यों कर रहा हूँ? इसलिए कि मेरा स्वदेशी धर्म मुझे सिखाता है कि इस देशमें मेरा जन्म हुआ है। इस देशकी संस्कृति मुझे विरासतमें मिली है। इसलिए मैं अपनी माताकी सेवा करनेका ही अधिकसे-अधिक पात्र हूँ और मेरी सेवापर पहला हक इस जन्मभूमिका है।) परन्तु मेरी स्वदेश-भक्ति मुझे दूसरे देशकी सेवासे विमुख नहीं करती। इसमें दूसरे देशको हानि पहुँचानेकी तो कोई बात ही नहीं, बल्कि उसमें सभीके सच्चे लाभके लिए जगह है। भारतकी स्वतन्त्रताका जो रूप मेरे सामने है वह संसारके लिए संकट-रूप हो ही नहीं सकता।

परन्तु वह संकट-रूप न बन सके, इसके लिए स्वराज्य प्राप्त करनेका साधन शुद्ध अहिंसात्मक होना जरूरी है। अतः यदि भारत हिंसात्मक साधनोंको ग्रहण करेगा तो भारतकी स्वतन्त्रतामें मेरी दिलचस्पी समाप्त हो जायेगी, क्योंकि उस साधनका फल स्वतन्त्रता न होगी, बल्कि स्वतन्त्रताके आवरणमें दासता होगी। और हम अबतक जो आजादी हासिल नहीं कर सके हैं इसका कारण यही है कि हम विचार, उच्चार

और आचारमें अहिंसानिष्ठ नहीं रहे। हाँ, यह बात सच है कि अहिंसाको हमने नीतिके रूपमें ग्रहण किया है, क्योंकि हमारा विश्वास है कि भारतको दूसरे किसी साधनसे स्वतन्त्रता नहीं मिल सकती। परन्तु हमारी नीति पाखण्डमय नहीं होनी चाहिए। हमारे मनमें अहिंसाके आवरणमें हिंसा न हो। जबतक हम एक साध्यके लिए एक नियत कालतक अहिंसानिष्ठ होनेका दावा करते हैं तबतक हमारे विचार और उच्चार उस साध्यके लिए उस घड़ीतक आचारके अनुरूप अवश्य होने चाहिए। एक ईमानदार जेलर फाँसीकी सजा पाये हुए कैदीसे ऐसा ही व्यवहार करता है। वह अपनी जानको जोखिममें डालकर भी फाँसीके दिनतक उसकी जानकी हिफाजत करता है। वह उसकी जानकी हिफाजतका ही विचार करता है और उसीकी बात करता है; अतः वह, जहाँतक उस व्यक्ति और उस समयसे सम्बन्ध है, विचार, उच्चार और आचारमें अहिंसानिष्ठ है।

हमने तो यह प्रतिज्ञा की है कि हम आपसमें तथा अपने विरोधियोंके प्रति, चाहे वे सरकारी कर्मचारी हों अथवा सहयोगी, अहिंसानिष्ठ रहेंगे। हमें तो उनके हृदयको द्रवित करना और उनकी प्रकृतिके श्रेष्ठ तत्त्वोंको जाग्रत करना है। हमें अपना मतलब साधनेके लिए उनके दिलोंमें बैठे हुए भयका लाभ नहीं उठाना चाहिए। परन्तु जानमें अथवा अनजानमें हममें से कितने ही लोगोंने — खासकर वक्ताओं और लेखकोंने — अपनी इस प्रतिज्ञाका पालन नहीं किया। हमने अपने विरोधियोंके प्रति असहिष्णुताका परिचय दिया है। हमारे देश-भाई हमको अविश्वासकी दृष्टिसे देखते हैं। उन्हें हमारी अहिंसापर विश्वास ही नहीं होता। कितनी ही जगह हिन्दुओं और मुसलमानोंने अहिंसाका नहीं बल्कि हिंसाका पदार्थपाठ पढ़ाया है। यही नहीं "परिवर्तनवादी" और "अपरिवर्तनवादी" लोगोंने भी एक दूसरेपर कीचड़ उछाली है। हरएकने सत्यका ठेकेदार होनेका दावा किया है और अज्ञानसे अपने आपको ही निश्चित रूपसे ठीक मानकर एकने दूसरेको लाचारीमें की गई गलतियोंपर खरी-खोटी सुनाई है।

अतः सार्वजनिक प्रश्नोंकी चर्चा करते हुए 'यंग इंडिया' के पृष्ठोंमें अहिंसाका उपयोग और उसकी आवश्यकताको ही समझाया जायेगा। इतना हुआ 'यंग इंडिया' की नियन्त्रण-सम्बन्धी नीतिके बारेमें।

अब कुछ उसके व्यावसायिक पक्षके सम्बन्धमें। जब मैंने श्री शंकरलाल बैंकर और अन्य मित्रोंके कहनेसे 'यंग इंडिया' के सम्पादनका काम अपने हाथमें लिया था तब मैंने जनतासे यह कहा था कि यह पत्र घाटा उठाकर चलाया जा रहा है और यदि यह घाटा जारी रहा तो मुझे इस पत्रको बन्द कर देना पड़ेगा। कुछ पाठकोंको मेरी इस बातका स्मरण होगा। पत्रोंको अनिश्चित समयतक घाटा उठाकर अथवा विज्ञापनसे घाटेको पूरा करके निकालनेमें मेरा विश्वास नहीं है। यदि किसी पत्रकी आवश्यकता अनुभव की जाती है तो उसका खर्च उसके प्रकाशनसे निकलना चाहिए। ग्राहकोंकी सूची सप्ताह प्रति सप्ताह बढ़ती गई और पत्रसे लाभ होने लगा। किन्तु पाठकोंको विदित होगा कि पिछले दो सालोंमें ग्राहक संख्या २१,५०० से घटकर ३००० रह गई है और अब पत्र घाटेमें चल रहा है। सौभाग्यसे यह घाटा 'नवजीवन' से पूरा हो जाता है। किन्तु यह तरीका भी गलत है। 'यंग इंडिया' या तो अपने पैरों-

पर खड़ा हो या उसे बन्द कर दिया जाये। यह सम्भव है कि यदि 'यंग इंडिया' के पुराने पाठकोंके दिलोंमें मेरे प्रति प्रेम बना हुआ है तो 'यंग इंडिया' जल्दी ही स्वावलम्वी हो जाये। किन्तु मैंने इस घाटेकी चर्चा जनताको केवल वास्तविक स्थिति बतानेके लिए ही नहीं की, एक महत्त्वपूर्ण घोषणा करनेकी भूमिकाके रूपमें भी की है।

जब श्री बैंकर और श्री याज्ञिकने यह सुझाव दिया था कि गुजराती 'नवजीवन' को जो तब मासिक निकलता था, साप्ताहिक कर दिया जाये और उसका सम्पादन मैं करूँ और जब मैंने यह जिम्मेदारी अपने ऊपर ली थी तब मैंने यह कहा था कि यदि इसमें घाटा होगा तो यह बन्द कर दिया जायेगा और इसमें लाभ होगा तो उसका उपयोग किसी सार्वजनिक कार्यके लिए किया जायेगा।[1] 'नवजीवन' से जल्दी ही लाभ होने लगा, किन्तु सेठ जमनालालजीके सुझावपर 'हिन्दी नवजीवन' का प्रकाशन आरम्भ कर दिया गया।[2] यह भी जैसे ही स्वावलम्वी हुआ, मैं गिरफ्तार कर लिया गया और उसके बाद उसकी ग्राहक संख्या लगातार घटती गई। अब यह फिर घाटा उठाकर निकाला जा रहा है। किन्तु इस हानिके बावजूद 'नवजीवन' और अन्य प्रकाशनोंकी ग्राहक-संख्या अधिक होनेसे प्रबन्धकोंने सार्वजनिक कार्यके लिए पचास हजार रुपये दिये हैं। स्वामी आनन्दानन्दने, जो नवजीवन प्रेसकी व्यवस्था कर रहे हैं, इस रुपयेको किसी काममें लगानेका प्रश्न बिलकुल मेरे ऊपर छोड़ दिया है और चूंकि इसके उपयोगका मुझे इससे अच्छा दूसरा कोई तरीका नहीं जँचता, इसलिए मैं इसे प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी-की मार्फत गुजरातमें, जिसमें काठियावाड़ भी आ जाता है, चरखे और खादीका प्रचार करनेमें लगाना चाहता हूँ। इसमें पहले गरीब स्त्रियों और दलित वर्गोंका ध्यान रखा जायेगा। अपने कुछ साथी कार्यकर्त्ताओंके विचारसे जनताको यह सूचित करना मेरा फर्ज है कि उनमें से कुछ लोग यह काम केवल लोकसेवाके भावसे कर रहे हैं। जो कार्यकर्त्ता कुछ लेते भी हैं वे उतना ही लेते हैं जितने से उनकी जरूरतें-भर पूरी हो जायें। ऐसे कामका नतीजा जनताके सामने है। आज सौभाग्यसे मुझे जैसे कार्यकुशल व्यवस्थापक प्राप्त हैं, यदि उसी तरह छोटेसे लेकर बड़ेतक निस्वार्थी कार्यकर्त्ता मिल जायें तो मुझे विश्वास है कि और भी ज्यादा करके दिखाना सम्भव होगा।

मैं यह भी कहना चाहता हूँ कि यदि मेरे जेल जानेके पूर्व 'यंग इंडिया' से जैसे लाभ होता था वैसे फिर लाभ होने लग जायेगा तो वह लाभ सार्वदेशिक कार्यके लिए वितरित कर दिया जायेगा और यदि 'हिन्दी नवजीवन' से मुनाफा हुआ तो वह हिन्दीके प्रचारमें लगा दिया जायेगा।

मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ३-४-१९२४

१. देखिए खण्ड १७, पृष्ठ ३८०-८१।

२. १९ अगस्त, १९२१ को।

२५५. टिप्पणियाँ

धन्यवाद

'यंग इंडिया' के जीवनमें संकटपूर्ण स्थिति आनेपर जिन सम्पादकोंने एकके बाद एक उसके सम्पादनका भार सँभाला, उनको मैं यदि सार्वजनिक रूपसे धन्यवाद न दूं तो यह मेरी कृतघ्नता होगी। शुएब कुरैशीकी चुटीली शैली सरकारके लिए असह्य सिद्ध हुई। सरकारने भी उनको दम नहीं लेने दिया। उनके बाद राजगोपालाचारी आये। उनके लेख विद्वत्तापूर्ण थे और उनसे सत्याग्रह सम्बन्धी गहन सत्योंकी अद्भुत पकड़ जाहिर होती थी। जॉर्ज जोसेफकी प्रखर शैली पाठकोंको अब भी याद होगी। इन लोगोंने समयपर 'यंग इंडिया' को जो सहायता की उसके लिए इन मित्रोंको अत्यन्त हार्दिक धन्यवाद देना मेरा प्रथम कर्त्तव्य है। प्रबन्ध विभागके कर्मचारियोंने भी राष्ट्रीय कार्यके प्रति उत्साहके कारण कम उद्योगशीलता नहीं दिखाई।

खिलाफत

लोग मुझसे कह रहे हैं कि मैं खिलाफतके सम्बन्धमें अपनी राय जाहिर करूँ। मेरी कोई राय नहीं है। मुझ जैसे एक बाहरी आदमीके लिए अपने विचार मुसलमान-भाइयोंपर लादना धृष्टता होगी। यह एक ऐसा प्रश्न है जिसे स्वयं मुसलमानोंको ही तय करना चाहिए। देशके तमाम गैर-मुस्लिम जो-कुछ कर सकते हैं वह इतना ही है कि वे इस दुःख-दर्दमें उनके साथ अपनी हमदर्दीका उन्हें यकीन दिला दें। खिलाफतका अस्तित्व उनके मजहबका एक मुख्य अंग है। हर शख्स जिसे अपना मजहब प्यारा है दूसरे मजहबवालोंके साथ सच्ची हमदर्दी जाहिर किये बिना नहीं रह सकता। हरएक ऐसे हिन्दूकी सहानुभूति, जो मुसलमानोंकी मित्रताको एक कीमती चीज मानता है, इस महादुःखमें अवश्य ही मुसलमानोंके साथ रहेगी। उस समयकी अपेक्षा जब खिलाफतपर बाहरसे हमला किया गया था, यह समय उनके लिए अधिक चिन्ताका है। चूंकि अब यह खतरा उनके घर ही में पैदा है और मुख्तलिफ फिरकोंके लोग अपने-अपने खयालातोंको लेकर झगड़ रहे हैं इसलिए जो लोग इस समस्याको ऐसे तरीकेसे हल करना चाहते हैं जो उनके मजहबके गहरे और सच्चे उसूलके मुआफिक हो और जिसे तमाम फिरके मंजूर कर सकें, उनको इसमें अपना समस्त बुद्धि-बल और युक्ति-बल लगानेकी जरूरत पड़ेगी। मुझे तो साफ नजर आ रहा है कि जहाँतक इन्सानके वशकी बात है न सिर्फ खिलाफतका, बल्कि इस्लामका भी भविष्य हिन्दुस्तानके मुसलमानोंपर निर्भर करता है। यह काम उन्हींको करना है और यह उनका ही विशेष अधिकार है। परमात्मा उन्हें सही रास्ता दिखाये और उसपर चलनेकी शक्ति दे।

'बुराईका व्यापार'

'बुराईका व्यापार' शब्दोंका प्रयोग श्री सी० एफ० एन्ड्रयूजने अफीमके व्यापारके सम्बन्धमें किया है। इस सम्बन्धमें पाठक अन्यत्र उनका लिखा एक ज्ञानवर्धक लेख[1] पढ़ेंगे। मुझे यह लेख देते समय उन्होंने कहा था कि "आपने अफीमके व्यापारको जो कुछ कहा है मैं उससे भी आगे बढ़ा हूँ। मैंने इसे 'बुराईका संगठन' कहा था। श्री एन्ड्रयूज इसे 'बुराईका व्यापार' कहते हैं। मैं श्री एन्ड्रयूज-जैसे विद्वान्से, जो शब्द गढ़नेमें अधिक कुशल हैं, बहस कैसे करता। मैं पाठकोंसे श्री एन्ड्रयूजके लेखको ध्यानपूर्वक पढ़नेका अनुरोध करता हूँ। श्री एन्ड्रयूजने अफीमके इस व्यापारकी भर्त्सना तथ्योंके आधारपर की है और उन्होंने उन भयंकर तथ्योंका भली-भाँति अनुशीलन भी किया है। पाठक यह न भूलें कि ब्रिटिश सिंगापुरमें भेजी जानेवाली अफीम ब्रिटिश भारतमें पैदा होती है और यहींसे भेजी जाती है। पाठक यह भी न भूलें कि सरकारी स्कूलोंमें हमारे बच्चोंकी शिक्षाका खर्च भी इसी संगठित और बुराईके व्यापारसे निकलता है।

अवकाशका समय

इस पत्रमें अन्यत्र श्री राजगोपालाचारीकी छात्रोंसे अपील[2] छापी गई है। यह अपील राष्ट्रीय स्कूलोंमें ही नहीं बल्कि सरकारी स्कूलोंमें भी समस्त छात्रों द्वारा बहुत ही ध्यानपूर्वक पढ़ी जानी चाहिए। अन्य लोगोंकी भाँति छात्रों द्वारा किया गया असहयोग भी हिंसारंजित था। राष्ट्रीय शालाओं और सरकारी स्कूलोंके लड़कों और लड़कियोंके बीच जो खाई है, उसका यही कारण है। वास्तवमें उनके बीच ऐसी कोई खाई नहीं होनी चाहिए। यदि श्री राजगोपालाचारीके सुझावपर अमल किया जायेगा तो उससे दो उद्देश्य सिद्ध होंगे। इसपर अमल करनेसे एक तो यह खाई पट जायेगी और दूसरे छुट्टियोंके दिनोंमें छात्रोंको जो अवकाश मिलता है उसका उपयोग राष्ट्रके लाभके लिए हो सकेगा। दोनोंके बीच मैत्रीका यह प्रयत्न असहयोगी छात्रोंकी ओरसे किया जाना चाहिए। इस कार्यमें उनको अपने सिद्धान्तका कोई त्याग नहीं करना पड़ेगा बल्कि वस्तुतः अपने इस व्यवहारसे वे उसके एक अहिंसात्मक और इसलिए महत्त्वपूर्ण भागको सशक्त बनायेंगे। यदि उनके इस सदाशयतापूर्ण प्रयत्नको अस्वीकार कर दिया जाये तो उनको इससे निराश नहीं होना चाहिए। यदि यह काम भाईचारेकी भावनासे प्रेरित होकर किया जाता है तो सफलता अवश्यम्भावी है।

एक अनुकरणीय उदाहरण

धारवाड़के राष्ट्रीय स्कूलके लड़कोंने मुझे अपने काते हुए सूतका एक पार्सल भेजा है और लिखा है कि यह सूत सात दिन और सात रातकी अखण्ड कताईका फल है। मुझे सैसून अस्पतालमें मालूम हुआ था कि चिंचवड़की संस्थामें भी डेढ़ महीनेतक कई

१. यह *यंग इंडिया*, ३-४-१९२४ में छपा था।

२. उन्होंने "छुट्टीका विचार" शीर्षक अपने लेखमें छात्रोंको अपना अवकाशका समय खादीके कार्यमें लगानेका सुझाव दिया था।

चरखोंपर अखण्ड कताई हुई। यदि वे सभी लोग जो सूत कात सकते हैं इन भले लड़कोंके आदर्शका अनुकरण करें तो हमारी खादीकी समस्या बहुत शीघ्र हल हो जायेगी; और चूंकि मैं मानता हूँ कि अगर सभी लोग चरखेको अपना लें तो उसमें हमें स्वराज्य दिलानेकी शक्ति है, इसलिए मुझे इसमें कोई सन्देह नहीं है कि धारवाड़की राष्ट्रीय शाला और चिचवड़की उक्त संस्थाके लड़कोंने जैसी लगन दिखाई है हम वैसी लगनके बलपर स्वराज्यकी दिशामें बहुत आगे बढ़ जायेंगे। और चूंकि इस तरहकी कताईमें मजदूरीका सवाल नहीं उठता अतः या तो खादीके दाम घटाये जा सकेंगे या उन लोगोंको जो अपनी रोजी चलाने अथवा अपनी आयमें कुछ वृद्धि करनेके लिए सूत कातते हैं, ज्यादा मजदूरी दी जा सकेगी।

श्री मजलीके साथ जेलवालोंका व्यवहार

चूंकि मैं भी बीमार हूँ मैंने बेलगांववासी श्री मजलीको दिलासा देते हुए एक छोटासा पत्र[1] लिखा था। पाठक जानते ही हैं कि श्री मजली कुछ ज्यादा बीमार हो जानेके कारण जेलसे छोड़े गये थे। मेरे पत्रके उत्तरमें वे लिखते हैं:

> आपके हाथका लिखा पत्र पाकर पहले तो मुझे अतीव हर्ष हुआ; परन्तु तुरन्त ही वह हर्ष उतनी ही कृतज्ञतामें बदल गया। बदस्तूर कल भी मुझे बुखार आया और पूरे सोलह घंटेतक रहा। मुझे हर तीसरे दिन बुखार आता है। लेकिन जितनी देर बुखार रहा, आपकी सलाह मेरे मनमें बराबर बनी रही और मैं अन्तमें चुपचाप पड़े रहनेमें सफल हो सका। मेरा चित्त अब बिलकुल शान्त है लेकिन तिजारीके इस नये रोगके कारण मेरी शरीर-शक्ति फिर घटती जा रही है।
>
> अखबारोंमें मैंने अपने साथ जेलमें किये गये व्यवहारके विषयमें धारा-सभाके सवाल-जवाब पढ़े। वहाँ जो तीन बातें बताई गई हैं उनमें से दो गलत हैं। सरकारका यह कहना सही नहीं है कि मुझे सूत कातनेका काम दिया गया था, बल्कि (प्रतिदिन १ पौण्ड) सूत बटनेका काम दिया गया था। दूसरी बात यह है कि उन १५ मिनटको छोड़कर जब मुझे घूमनेके लिए निकाला जाता था, चौबीसों घंटे तनहाईकी कोठरीमें बन्द रखा जाता था। सरकार कहती है कि जब मैं जेल गया तब भी बीमार ही था; परन्तु फिर भी मुझे भात तक नहीं दिया गया, बल्कि ज्वारकी रोटी दी गई, जो मुझे हजम नहीं हो पाती थी। मैं यह बात आपपर ही छोड़ता हूँ कि आप इसे प्रकाशित करें या न करें क्योंकि मैं अपनेको किसी लायक नहीं मानता।

श्री मजली एक अच्छे कार्यकर्त्ता हैं। पाठकोंको और मुझे आशा है कि वे शीघ्र सर्वथा रोगमुक्त और काम करने योग्य हो जायेंगे। अब रही उस खण्डनकी बात जो उन्होंने भेजा है। कामकी हदतक कातने या सूत बटनेमें नावाकिफ पाठकोंको शायद

१. देखिए "पत्र: डी० आर० मजलीको", २३-३-१९२४।

कोई भेद न दिखाई दे। परन्तु श्री मजलीके लिए यह फर्क एक बड़ा फर्क है। आज हजारों हिन्दुस्तानी सूत कातना अपना एक पवित्र कर्त्तव्य मानते हैं और इसीलिए सूत कातनेमें वे बहुत सुख अनुभव करते हैं। परन्तु सूतको बटना उनके लिए वह महत्त्व नहीं रखता। ऐसी कमजोरीकी हालतमें श्री मजलीकी नजरमें सूतको बटना एक असह्य कष्ट हो गया; मगर सूत कातना उनकी व्यथित आत्माके लिए शान्तिदायी औषधका काम देता और उन्हें अपनी बीमारीकी सुध भुला देता। इसके सिवा जिसे बटनेका अभ्यास है वह एक पौण्ड सूत आसानीसे बट सकता है; परन्तु श्री मजली-जैसा रोगी आदमी चौथाई पौण्ड सूत भी मुश्किलसे बट सकेगा। मैं भली-भाँति जानता हूँ कि सूत बटनेका क्या अर्थ है। और चूंकि खुद मुझे शरीर-श्रम पसन्द है इसलिए पाठक मेरे इस कथनमें जरा भी अत्युक्ति न मानें कि श्री मजली अपने दुबले-पतले शरीरपर अनुचित बोझ डाले बिना पाव पौण्ड सूत भी कठिनाईसे ही बट सकते हैं। २४ घंटेतक उन्हें तनहाईमें बन्द कर रखना और सिर्फ १५ मिनटके लिए खुली जगहमें घूमनेके लिए छोड़ना यन्त्रणा ही थी और भातकी जगह ज्वारकी रोटी देना उनकी हालतको और भी खराब करनेका अचूक तरीका था। किन्तु यह पत्र जेलके हाकिमोंकी शिकायत करनेके उद्देश्यसे प्रकाशित नहीं किया जा रहा है, क्योंकि बहुधा ऐसी घटनाएँ यों ही हो जाती हैं — उनमें कैदियोंको तकलीफ पहुँचानेका कोई खास इरादा नहीं होता। जो चीज बुरी है वह है जेल-शासनकी सम्पूर्ण प्रणाली। मैं उसे पहले ही हृदयहीन कह चुका हूँ। उससे भी बुरी बात है सरकारका सचाईको न मानना या तोड़-मरोड़कर प्रस्तुत करना। सरकारी उत्तरका खण्डन भेजते हुए श्री मजलीने खेद प्रकट किया है। परन्तु इसकी कोई आवश्यकता नहीं। आखिर वे कर्नाटकके एक मुख्य कार्यकर्त्ता हैं। क्या ही अच्छा हो यदि उनकी तरह हममें से हरएक सच्चे दिलसे अपने मनमें कहे — 'मैं किसी लायक नहीं हूँ।' उस अवस्थामें हम सब सेवक और कार्यकर्त्ता रह जायेंगे और हमारे अन्दर केवल एक स्पर्धा रहेगी — अधिकसे-अधिक काम करना, सो भी ख्याति और प्रधानताकी चाह रखे बिना। उस अवस्थामें स्वराज्यकी प्राप्ति और उसका संचालन सुगम हो सकेंगे। बेशुमार दिक्कतें तो तब पेश आती हैं जब हर आदमी नेता बनना और सलाह देना चाहता है, और काम करना कोई नहीं।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ३-४-१९२४

२५६. मेरा जीवन-कार्य

कुछ दिन पहले पण्डित घसीटाराम, सभापति अखिल भारतीय सब-असिस्टेन्ट सर्जन्स एसोसिएशन, पंजाब प्रान्त, अमृतसर,ने इस पत्रके सम्पादकके पतेपर मेरे नाम एक खुली चिट्ठी भेजी थी। यह चिट्ठी प्रशंसात्मक वचनों और मंगलकामना सम्बन्धी वाक्योंको निकालकर तथा व्याकरण सम्बन्धी स्पष्ट भूलोंको सुधारकर यहाँ दी जा रही है:

> मैं एक ब्राह्मण हूँ, डाक्टर हूँ और आप ही की तरह बूढ़ा हूँ। अतः इन तीन हैसियतोंसे यदि मैं आपको कुछ सलाह दूँ तो बेजा न होगा। उसमें यदि आपको कोई बात अक्लकी और सच्ची मालूम हो और यदि वह आपके दिल और दिमागको जँचे तो आप कृपा करके उसे हृदयंगम कर लें। आपने बहुत दुनिया देखी है और उसके बारेमें पढ़ा भी बहुत है और इसलिए आपको उसका अद्भुत अनुभव भी प्राप्त है। परन्तु इस मृत्युलोकमें अबतक कोई जीतेजी अपने जीवन-कार्यको पूरा नहीं कर पाया है। बुद्धको ही लीजिए। उनके नीति और सदाचार-सम्बन्धी विचार बड़े ही ऊँचे थे, पर फिर भी वे सारे हिन्दुस्तानको बौद्धधर्मी न बना सके।
>
> शंकराचार्यकी बुद्धिशक्ति अगाध थी। पर वे भी सारे भारतको वेदान्ती न बना सके। ईसा भी, इतनी गहरी आध्यात्मिकताके रहते हुए, पूरी यहूदी कौमको ईसाई मतावलम्बी न बना सके। सो मैं नहीं समझता, और कदापि यह माननेको तैयार नहीं हूँ कि आप भी अपना काम पूरा कर सकेंगे। इन तमाम ऐतिहासिक घटनाओंके रहते हुए भी, यदि आप यह मानते हों कि आप अपने जीवनमें कृतकार्य हो सकेंगे तो मेरा निवेदन है कि यह केवल स्वप्न है।
>
> यह दुनिया संकटों, विपत्तियों और दुःखोंकी लीला-भूमि है। मनुष्य इसमें जितना आसक्त होता है, उतना ही अधिक बेचैन होता है और फिर अपनी मानसिक और आत्मिक शान्तिको खो देता है। इसीलिए प्राचीन कालके महात्मागण अपने-आपको सांसारिक प्रपंचों और चिन्ताओंसे पृथक रखते थे और पूर्ण शान्ति तथा चित्तकी समता प्राप्त करनेका प्रयत्न करते थे जिससे उन्हें चिरंतन सुख-शान्ति और आनन्दकी उपलब्धि होती थी।
>
> आपके जेल-जीवनने आपके जीवनको बहुत-कुछ बदल दिया है और इस बीमारीने आपको बहुत क्षीण कर दिया है। अतः अब आपके लिए यही उचित है कि आप शान्तिमय जीवन यापन करें और कहीं किसी एकान्त गुफामें बैठकर ईश्वरके ध्यान और आत्मानुभवमें अपने जीवनके शेष दिन शान्तिपूर्वक वितायें;

क्योंकि आपकी तन्दुरुस्ती इस लायक नहीं है कि अब आप इन दुनियावी झगड़े और झंझटोंके भारको वहन कर सकें। यहां इस बातका जिक्र करना बेमौके न होगा कि अब आपको अंग्रेज हाकिमोंकी सद्भावना, दया और हमदर्दीका पूरा यकीन हो चुका है। उन्हीं अंग्रेजी दवाओं और चीर-फाड़के तरीकोंने आपको मौतके भीषण जबड़ेसे बचाया है, जिनकी आप बार-बार भर्त्सना करते रहे हैं। अंग्रेज हाकिमोंने आपको संकट और आवश्यकताके समय सहायता दी है।

मित्र वही है जो विपत्तिमें काम आये। अब आपका काम है कि आप अपने मित्र-भावका परिचय दें और अपने जीवनदान और कारावाससे छुटकारे-पर अंग्रेजी-राज्यके प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करनेके लिए उसके सच्चे मित्र बन जायें। यदि आप किसी वजहसे अपने वचन और कर्मके द्वारा ऐसा न कर सकें तो आपसे प्रार्थना है कि आप कमसे-कम राजनैतिक हलचलोंके अखाड़ेमें न उतरें; यदि फिर भी आपकी बेचैन आत्मा आपको कहीं शान्तिके साथ न बैठने दे तो आप इस ऋषि-मुनियों और साधुओंकी भूमिमें अपने हिन्दुस्तानी भाइयोंकी आत्मोन्नतिका काम अपने हाथमें लें और उन्हें आत्म-साक्षात्कारका पाठ पढ़ायें। ऐसा करनेसे आप ऐहिक राज्यके बदले स्वर्गीय राज्य प्राप्त कर सकेंगे।

मेरी रायमें लेखकने यह पत्र बहुत ही सच्चे भावसे लिखा है और यदि किसी दूसरे कारणसे नहीं तो केवल इसी कारण उसका उत्तर देना जरूरी है। पर इससे मुझे अपने जीवन-कार्यके सम्बन्धमें कुछ भ्रमोंका निराकरण करनेका भी मौका मिला है।

सबसे पहले मैं अपने दवा-दारू सम्बन्धी विचारोंके बारेमें दी गई सलाहको ही लेता हूँ। मेरी 'हिन्द स्वराज्य'[1] पुस्तक इस समय मेरे पास नहीं है। पर मुझे जो-कुछ याद है उसके आधारपर मैं इतना जरूर कह सकता हूँ कि मेरे उन विचारोंमें कुछ भी परिवर्तन नहीं हुआ है। यदि वह पुस्तक मैंने अंग्रेजीमें और अंग्रेजी पाठकोंके लिए लिखी होती तो मैं उसमें अपने विचारोंको इस ढंगसे प्रस्तुत करता कि वे अंग्रेजोंको अधिक अनुकूल जँचते। मूल पुस्तक गुजराती भाषामें 'इंडियन ओपिनियन' के नेटाल निवासी गुजराती पाठकोंके लिए लिखी गई थी। फिर उसमें जो-कुछ लिखा गया है वह आदर्श स्थितिसे सम्बन्धित है। किसी साधनकी निन्दाको व्यक्तिकी निन्दा मानना भूल है। लोग प्रायः यह भूल करते हैं। दवा अक्सर रोगीकी आत्माको मूढ़ बना देती है। इसलिए हम उसे बुरा समझ सकते हैं। परन्तु इस कारण यह जरूरी नहीं हो जाता कि हम दवा देनेवालोंको भी बुरा समझें। जब मैंने उक्त पुस्तक लिखी थी तब मेरी मैत्री बड़े-बड़े डाक्टरोंसे थी और जरूरतके वक्त मैं उनकी

१. देखिए खण्ड १०, पृष्ठ ६–६९।

मदद लेनेमें बिलकुल नहीं हिचकिचाता था। यह बात लेखककी रायमें मेरे औषधोपचार-सम्बन्धी विचारोंके खिलाफ है। कितने ही मित्रोंने मुझसे साफ-साफ ऐसा ही कहा है। मैं अपना अपराध स्वीकार करता हूँ। अर्थात् यह स्वीकार करता हूँ कि मैं पूर्ण पुरुष नहीं हूँ। दुर्भाग्यसे अभी मुझमें बहुत कमियाँ हैं। मैं तो पूर्णताका विनीत आकांक्षी-मात्र हूँ। मैं उसका रास्ता भी जानता हूँ। परन्तु रास्ता जाननेका अर्थ यह नहीं है कि मैं आखिरी मुकामपर पहुँच गया हूँ। यदि मैं पूर्ण पुरुष होता, यदि मैंने अपने तमाम मनोविकारों और विचारोंपर पूरा आधिपत्य कर लिया होता तो मेरा शरीर पूर्णताको पहुँच गया होता। मैं कबूल करता हूँ कि अभी मुझे अपने विचारोंको काबूमें रखनेके लिए प्रतिदिन बहुत मानसिक शक्ति खर्च करनी पड़ती है। यदि कभी मैं इसमें सफल हो सका तो जरा सोचिए, शक्तिका कितना बड़ा मुक्त स्रोत मुझे सेवाके लिए मिल जायेगा। मैं मानता हूँ कि मुझे अपेन्डिसाइटिसकी बीमारी होना मेरी विचारशक्ति अर्थात् मनकी दुर्बलताका फल है और उसी प्रकार ऑपरेशन करवानेके लिए तैयार हो जाना तो मनकी और भी अधिक दुर्बलता है। यदि मेरे अन्दर शरीरकी ममता बिलकुल न होती तो मैंने अपनेको होनहारके सिपुर्द कर दिया होता। लेकिन मैं तो अपने इसी चोलेमें रहना चाहता था। पूर्ण विरक्ति किसी यान्त्रिक क्रियासे प्राप्त नहीं होती, बल्कि धीरज, परिश्रम और ईश्वराराधनाके द्वारा उस स्थिति-तक पहुँचना पड़ता है। रही कृतज्ञताकी बात। कर्नल मैडॉक और उनके साथियोंने मेरे साथ जो अत्यन्त कृपापूर्ण व्यवहार किया है उसके लिए मैं उनके प्रति कई बार सार्वजनिक रूपसे कृतज्ञता प्रकट कर चुका हूँ। परन्तु कर्नल मैडॉकके मेरे प्रति किये गये इस कृपापूर्ण व्यवहार और उस शासन-प्रणालीका, जिसको मैं बुरा बताता हूँ, कोई सम्बन्ध नहीं है। उलटे यदि इस खयालसे कि कर्नल मैडॉक एक प्रवीण सर्जन हैं और उन्होंने सर्जनकी हैसियतसे अपने कर्त्तव्यका पालन किया है, मैं डायरशाही सम्बन्धी अपने विचारोंको बदलूँ तो स्वयं कर्नल मैडॉक ही मुझे नीची निगाहसे देखेंगे। और न मुझे इस बातके लिए सरकारको धन्यवाद देनेकी जरूरत मालूम होती है कि उसने मेरे इलाजके लिए अच्छेसे-अच्छे सर्जनोंकी तजवीज की या मुझे मीयाद पूरी होनेसे पहले जेलसे छोड़ दिया। उसके लिए पहला काम अर्थात् हरएक कैदीके इलाजका इन्तजाम करना तो लाजिमी ही था और उसके दूसरे कामसे मैं उलझनमें पड़ गया हूँ। मैं जेलमें चंगा था या रोगी, पर वहाँ मुझे अपना रास्ता तो मालूम था। अब जेलकी चहारदिवारीके बाहर होनेपर मेरा स्वास्थ्य तो धीरे-धीरे सुधर रहा है, पर निश्चयपूर्वक यह मेरी समझमें नहीं आता कि अपना कार्यक्रम मैं कैसे स्थिर करूँ।

अब पत्रके मुख्य विषयपर आता हूँ। लेखकके मनकी भ्रान्तिका कारण यह है कि उसने उल्लिखित पैगम्बरोंके कार्यको गलत समझा है और उनके साथ मेरी तुलना करके (मेरे हकमें) अशोभन काम किया है। बुद्धका काम था निर्वाण प्राप्त करना। वे अपने इस कामको पूरा नहीं कर पाये, यह मैं नहीं जानता। लोककथा तो यही कहती है कि उन्होंने निर्वाण प्राप्त कर लिया था। दूसरोंको अपने धर्ममें मिलाना एक धार्मिक कर्त्तव्य मानें तो यह उनके कामका आनुषंगिक परिणाम था। 'बाइबिल'

तो कहती है कि सलीबपर ईसाने अपने कामके सम्बन्धमें स्वयं यह कहा था कि 'मेरा काम पूरा हुआ'[1]। उनका यह निःस्वार्थ सेवाकार्य उनके पीछे समाप्त हो गया हो, ऐसा भी नहीं है। उसका सर्वाधिक सत्य अंश तो सदा अमर रहेगा। उनके धर्मोपदेशके बाद जो दो-तीन हजार वर्ष गुजरे हैं वे तो इस विशाल काल-चक्रमें एक नन्हीसी छींटके समान हैं।

मेरा नाम पैगम्बरोंके साथ लिया जाये, मैं अपनेको इस योग्य नहीं समझता। मैं तो एक विनम्र सत्य-शोधक हूँ। मैं इसी जन्ममें आत्म-साक्षात्कार करने और मोक्ष प्राप्त करनेके लिए अधीर हूँ। मैं अपने देशकी जो सेवा कर रहा हूँ वह तो मेरी उस साधनाका एक अंग है जिसके द्वारा मैं पंचभौतिक देह-धारणसे अपनी आत्माको मुक्त करना चाहता हूँ। इस दृष्टिसे मेरी देश-सेवा केवल स्वार्थ-साधना समझी जा सकती है। मुझे इस नाशवान् ऐहिक राज्यकी कोई अभिलाषा नहीं है। मैं तो ईश्वरीय-राज्य — मोक्षको पानेका प्रयत्न कर रहा हूँ। अपने इस ध्येयकी सिद्धिके लिए मुझे गुफामें जाकर बैठनेकी कोई आवश्यकता नहीं। गुफा तो मैं अपने साथ ही लिये फिरता हूँ। अलबत्ता इसकी प्रतीति-भर हो जाये। गुफा-निवासी साधक मनमें महल खड़े कर सकता है; पर जनक-जैसे महलमें रहनेवालोंको ऐसे महल बनानेकी जरूरत ही नहीं पड़ती। जो गुफावासी विचारोंके पंखोंपर बैठकर दुनियाके चारों ओर मँडराता है, उसे शान्ति कहाँ? परन्तु जनक राजमहलोंमें आमोद-प्रमोदमय जीवन व्यतीत करते हुए भी कल्पनातीत शान्ति प्राप्त कर सकते हैं। मेरे लिए तो मुक्तिका मार्ग है अपने देश और उसके द्वारा मनुष्य जातिकी सेवाके निमित्त सतत् परिश्रम करना। मैं संसारके प्राणिमात्रसे अपना तादात्म्य कर लेना चाहता हूँ। मैं 'समः शत्रौ च मित्रे च' हो जाना चाहता हूँ। इसीलिए यदि कोई मुसलमान, हिन्दू या ईसाई मुझसे नफरत करता हो, तो भी मैं उसको उसी भावसे प्रेम करना चाहता हूँ, जिस भावसे मैं अपनी पत्नी और बेटेको, उनके नफरत करनेके बावजूद, प्रेम करता हूँ। इस प्रकार मेरी देशभक्ति और कुछ नहीं, अपनी चिर-मुक्ति और शान्ति-लोककी मंजिलका एक विश्राम-स्थान है। इससे यह मालूम हो जाता है कि मेरे समीप धर्म-शून्य राजनीति कोई वस्तु नहीं है। राजनीति धर्मकी अनुचरी है। धर्महीन राजनीतिको एक फाँसी ही समझा जाये, क्योंकि उससे आत्मा मर जाती है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ३-४-१९२४

१. जॉन, १९-३०।

२५७. धीरज रखें

कुछ लोगोंने पत्र लिखकर कौंसिल-प्रवेश[1] और हिन्दू-मुस्लिम प्रश्नके सम्बन्धमें मेरे विचार जाननेकी उत्सुकता प्रकट की है। परन्तु कुछ अन्य लोगोंने उतना ही जोर इस बातपर दिया है कि मैं जल्दीमें कोई बात न कहूँ। मैं खुद इन दोनों सवालोंपर अपनी राय जाहिर करनेके लिए बहुत ज्यादा उत्सुक हूँ, लेकिन मैं यथा-सम्भव कोई गलत बात नहीं कहना चाहता। जो लोग[2] मुझसे इन विषयोंमें सहमत नहीं है, उनके प्रति मेरा कुछ कर्त्तव्य है। वे मेरे महत्वपूर्ण सहयोगी हैं। वे अपने देशसे उतना ही प्रेम करते हैं, जितने प्रेमका दावा मैं करता हूँ। उनमें से कुछ लोगोंने अभी-अभी ऐसी कुरबानियाँ की हैं जैसी कुरबानियोंका दावा मैं नहीं कर सकता। मेरी अपेक्षा उन्हें देशकी हालतका आँखों देखा तजुरबा भी अधिक है। इसलिए उनकी स्थिति और योग्यताको देखते हुए उनकी रायोंका पूरा आदर और उनपर पूरी तरह विचार किया जाना चाहिए। इन सबसे बढ़कर बात यह है कि कोई अविचारपूर्ण राय देकर मेरा उन्हें परेशानीमें डालना उचित नहीं है। उनका काम एक श्रेयहीन काम है। उन्होंने जो भी प्रस्ताव किया सरकारने उसे अस्वीकार कर दिया। जिन बातोंको मान लेनेमें उसका कुछ भी नुकसान नहीं था जैसे श्री हॉर्निमैनपर से प्रतिबन्ध हटाना और मौलाना हसरत मोहानीको छोड़ना, इन्हें भी उसने नहीं माना और वह संग्रामशील मनःस्थितिमें ही तनी खड़ी रही। ऐसी हालतमें मेरे लिए बिना विचार किये कोई ऐसी बात कह देना नामुनासिब होगा जिससे स्वराज्यवादियोंकी उन योजनाओंमें बाधा पहुँचे जिन्हें वे संकटके समय अमलमें लाना चाहते हों। मैं हालातको और उनके नजरियेको समझनेकी कोशिश कर रहा हूँ। इस विषयमें धीरज रखनेसे कुछ नुकसान नहीं हो सकता। मुमकिन है जल्दबाजीमें कोई अनावश्यक हानि हो जाये।

यही बात हिन्दू-मुसलमानोंके सवालके विषयमें और भी ज्यादा जोर देकर कही जा सकती है। यह एक ऐसी समस्या है जिसको बड़ी सावधानी और एहतियातसे हल करनेकी जरूरत है। हरएक विचारकी छान-बीन करनी होगी। हरएक शब्दको तौलना होगा। जल्दबाजीमें मुँहसे निकले निन्दा या स्तुतिके एक ही शब्दसे आग भड़क उठना सम्भव है। इसलिए अगरचे इस सवालपर मेरे विचार पक्के हो चुके हैं और मैं उन्हें प्रकट करनेके लिए बहुत अधिक उत्सुक हूँ, फिर भी अभी मुझे चुप रहना चाहिए। क्या हिन्दू और क्या मुसलमान दोनों जातियोंके अग्रणी सज्जन मुझसे कह रहे हैं कि हालातको पूरा-पूरा सोचे-समझे बिना मैं कोई राय न दूँ। मुझे एक खत मिला है। इसमें तो यहाँतक कहा गया है कि जबतक मैं खुद घूम-फिरकर

१. देखिए "कौन्सिल-प्रवेशके सम्बन्धमें विचार", ११-४-१९२४ के पूर्व और इसके बादवाला शीर्षक।

२. स्वराज्यवादी लोग।

सब-कुछ अपनी आँखोंसे न देखूंगा तबतक मुझे बहुत कम बातें मालूम हो पायेंगी। मैं इन लोगोंसे इस हदतक तो सहमत नहीं हूँ; परन्तु मैं उन्हें और उन तमाम लोगोंको, जो उन्हींकी-सी राय रखते हैं, अपनी तरफसे यकीन दिलाता हूँ कि मैं तबतक कोई बात अपनी जबानसे न निकालूंगा जबतक मैं गौरके साथ और प्रार्थनाका भाव मनमें रखकर इस प्रश्नपर विचार नहीं कर लूंगा। मेरे नजदीक स्वराज्यकी प्राप्ति इस बात-पर निर्भर नहीं है कि ब्रिटेनका मन्त्रिमण्डल उसके सम्बन्धमें क्या कहता है और क्या सोचता है, बल्कि पूरी तरह इस जटिल समस्याके उचित, सन्तोषजनक और स्थायी निपटारेपर निर्भर है। इसके बिना हमारे सामने चारों ओर अन्धकार ही समझिए; और इसके हल होनेपर स्वराज्य बायें हाथका खेल है।

अतएव जबतक इन बातोंपर विचार और सलाह-मशविरा हो रहा है तबतक जो इन महत्त्वपूर्ण विषयोंपर मेरी राय जाननेमें दिलचस्पी रखते हैं उन लोगोंसे मेरी प्रार्थना है कि वे रचनात्मक काममें जुटे रहें। उनका एक-एक गज सूत कातना और खादी बुनना स्वराज्यकी ओर एक-एक कदम आगे बढ़ना होगा। वे तमाम लोग जो कि अपने हिन्दू या मुसलमान भाईके सम्बन्धमें बुरे खयाल अपने दिलमें न आने देंगे, इस सवालको हल करनेमें मदद देंगे। वे तमाम लेखक और अखबार जो निन्दा और स्तुतिके शब्दोंका इस्तेमाल करनेसे हाथ खींच लेंगे, बदनीयतीका इलजाम लगाना या लोकमतको उभाड़ना और भड़काना बन्द कर देंगे, वे इसके निपटारेका रास्ता निष्कंटक बनायेंगे। अभी कुछ दिन पूर्व 'टाइम्स ऑफ इंडिया' ने भारतीय भाषाओंके पत्रोंमें से कुछ उद्धरण प्रकाशित किये थे जिनमें कुछ लेखकोंकी मनोवृत्ति भली-भांति प्रकट होती है। उनसे मालूम हो जाता है कि यह काम कैसे नहीं करना चाहिए। हम मान लें कि किसी हिन्दू या मुसलमानने बिना सोचे-समझे कुछ कह दिया है। जो अखबार-नवीस अपने देशका भला चाहते हैं उनका यह काम कतई नहीं है कि वे उसे तत्काल सर्वत्र फैला दें। इस तरहकी गम्भीर भूलोंको बढ़ा-चढ़ाकर प्रकाशित करना अपराध है। मैं निश्चयपूर्वक नहीं कह सकता कि इन उद्धरणोंमें जो बातें दी गई हैं वे उन लोगोंने कही भी हैं या नहीं। तथापि हम सही बात ही छापें, अपनी जबान और कलमपर काबू रखें। इस बातकी आवश्यकताको सिद्ध करनेके लिए हमें किसी व्यक्ति-का मतामत जानना जरूरी नहीं है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ३-४-१९२४

२५८. 'हिन्दी नवजीवन' के पाठकगण !

बृहस्पतिवार
फाल्गुन कृष्ण १४ [३ अप्रैल, १९२४]

मुझे हमेशा इस बातका दुःख रहा है कि मैं 'हिन्दी-नवजीवन'का सम्पादक रहते हुए भी उसमें कुछ लिखता नहीं हूँ। इसी कारण मैं अपनेको उसका सम्पादक होनेके लायक भी नहीं मानता।

मैंने सम्पादकका पद केवल श्री जमनालालजी बजाजके प्रेमके वश होकर ही ग्रहण किया है। जबतक उसमें केवल गुजराती और अंग्रेजीका अनुवाद ही आता है, मुझे सन्तोष नहीं हो सकता। समय मिलनेपर अब 'हिन्दी नवजीवन' में भी कुछ-न-कुछ लिखनेकी मैं कोशिश करूँगा।

पर इस लेखके लिखनेका कारण दूसरा है। मैं देखता हूँ कि 'हिन्दी नवजीवन' में नुकसान रहता है। एक समय उसके कोई १२,००० ग्राहक थे, आज १,४०० हैं।" 'हिन्दी नवजीवन' के स्वावलम्बी होनेके लिए ४,००० ग्राहकोंकी आवश्यकता है। यदि इतने ग्राहक थोड़े समयमें न होंगे तो मेरा इरादा है कि 'हिन्दी नवजीवन' बन्द कर दिया जाये। मेरा हमेशा यह विचार रहा है, और जेलमें वह अधिक दृढ़ हो गया है कि जो अखबार स्वावलम्बी नहीं है और जिसको इश्तहारोंका सहारा लेना पड़ता है, उसको बन्द कर देना चाहिए। इसी नियमके मुताबिक यदि 'हिन्दी नवजीवन' स्वावलम्बी न हो सके तो मैं उसे बन्द कर देना मुनासिब समझता हूँ। यदि आप इसकी आवश्यकता समझते हों तो ग्राहक-संख्या बढ़ानेका एक अच्छा उपाय यह है कि आप अपने मित्रोंको इसका ग्राहक बनानेकी कोशिश करें। आपको यह जानना उचित है कि मैंने 'यंग इंडिया'के लिए भी ऐसा ही इरादा जाहिर किया है। मेरे इस निश्चयका सबब आप केवल नैतिक या आध्यात्मिक समझें।

गुजराती 'नवजीवन' में 'हिन्दी नवजीवन' और 'यंग इंडिया' के नुकसानका बोझ उठानेपर भी फायदा रहा है। पाँच सालकी उम्रमें ५०,०००) बचे हैं। वे सार्वजनिक कामोंमें, सूतचक्र — चरखा — और खादी-प्रचारमें खर्च किये जायेंगे। इसका ब्योरा आपको गुजरातीके अनुवादमें मिलेगा। यदि 'हिन्दी नवजीवन' में लाभ होगा तो वह दक्षिण-प्रान्तोंमें हिन्दी भाषाका प्रचार करनेमें व्यय किया जायेगा। मेरा विश्वास है कि ऐसी सादी हिन्दीके प्रचारकी, जिसे हिन्दू व मुसलमान भाई-बहन समझ सकें, दक्षिणमें बड़ी आवश्यकता है। आप यदि इस खयालको पसन्द करें तो 'हिन्दी नवजीवन'का प्रचार करनेमें यथाशक्ति परिश्रम करें।

आपका सेवक,
मोहनदास करमचन्द गांधी

हिन्दी नवजीवन, ६-४-१९२४

२५९. पत्र : छगनलाल गांधीको

गुरुवार [३ अप्रैल, १९२४][1]

चि० छगनलाल,

तुम्हारे पत्र मिले। तुमने काशीके सम्बन्धमें जो-कुछ लिखा वह मैंने समझ लिया। मैंने चिरंजीव प्रभुदासको डा० दलालको दिखाया था। कल पूनासे एक प्रसिद्ध वैद्य आये थे, उनको भी दिखाया। दोनोंको यह ठीक लगा कि वह दूधपर ही रह रहा है। इस समय वह साढ़े चार [कच्चा] सेर दूध पीता है। उसमें अब पहलेसे अधिक शक्ति है। डा० देशमुखने भी उनकी परीक्षा की थी। उनका मत भी यही है। मैंने यहांके समुद्रके सम्बन्धमें सब तरहकी पूछताछ कर ली है। इसमें तो हजारों लोग स्नान करते हैं। तुमने यह बात वरसोवाके[2] समुद्रके सम्बन्धमें सुनी होगी। यहाँ तो सभी लोग निर्भय होकर स्नान करते हैं।

बापूके आशीर्वाद

गांधीजी के स्वाक्षरोंमें मूल गुजराती पत्र (एस० एन० ८६५८) की फोटो-नकलसे।

२६०. पत्र : मगनलाल गांधीको

गुरुवार [३ अप्रैल, १९२४][3]

चि० मगनलाल,

तुम्हारे पत्र मिले हैं। तुमने जो-कुछ लिखा है उसके सम्बन्धमें मुझे जो भी स्पष्टीकरण सूझेगा उसे मैं 'नवजीवन' अथवा 'यंग इंडिया' में दूंगा। डा० दलालने राधा और अन्य रोगियोंकी शरीर-परीक्षा भली-भाँति कर ली है। इनके अतिरिक्त पूनाके एक वैद्य भी यहाँ आये हुए हैं। उनकी दवा पीनेसे उसमें शक्ति आती जाती है। वह मेरे पास ही सोती है। अधिक ब्योरा नहीं लिखता। अभी रामदासको अपनेसे दूर नहीं भेजूंगा। मैं उसे स्वयं भी थोड़ा समय प्रसन्नतापूर्वक दूंगा। मैंने सुरेन्द्रसे बात तो कर ली है। अब वे जब आ जायें तब ठीक।

१. डाकखानेकी मुहरसे।
२. बम्बईके अन्धेरी उपनगरके पासका एक गांव।
३. डाकखानेकी मुहरसे।

मैं . . .[1] पहुँचनेकी आशा करता हूँ। उसके पश्चात् डेढ़ महीनेतक मेरा विचार कहीं जानेका नहीं है।

बापूके आशीर्वाद

चि० मगनलाल गांधी
सत्याग्रह आश्रम
साबरमती

गांधीजी के स्वाक्षरोंमें मूल गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ६०४१) से।
सौजन्य : राधाबेन चौधरी

२६१. भेंट : 'बॉम्बे क्रॉनिकल' के प्रतिनिधिसे

[३ अप्रैल, १९२४]

महात्मा गांधी इधर हाल ही में बीमारीसे उठे हैं और स्वास्थ्य-लाभके इन दिनोंमें भी उन्होंने कामका अत्यधिक भार अपने ऊपर लेना शुरू कर दिया है। तथापि उन्होंने हमारे प्रतिनिधिको भेंटकी अनुमति दे दी। हमारा प्रतिनिधि कल सुबह जुहू स्थित उनके निवासपर मुलाकातके लिए गया था। कल सुबह मुलाकात करनेवालों में थे: सर्वश्री शुएब कुरैशी, डॉ० चमनलाल और डा० किचलू।

"पिछले सप्ताह हमारी काफी लम्बी बातचीत हुई थी। उसके बाद फिर इतनी जल्दी आपको परेशान करनेका मेरा मंशा नहीं है," हमारे प्रतिनिधिने उनकी शान्ति और विश्राममें बाधा डालनेके लिए क्षमा-याचना करते हुए कहा, क्योंकि उसे गांधीजीकी गुजरातीमें की गई वह अपील[2] याद आ गई, जिसमें उन्होंने कहा था:

मेरे शरीरमें आजकल शक्तिकी पूँजी बहुत ही कम है, और उसे मैं केवल सेवामें ही लगाना चाहता हूँ। अगले सप्ताहसे मैं 'नवजीवन' और 'यंग इंडिया' का सम्पादन फिरसे हाथमें ले रहा हूँ। और उसके लिए पूर्ण शान्ति आवश्यक है। यदि मेरी सारी शान्ति और समय आप लोगोंसे मिलने और बातें करनेमें चला जाये तो मैं पत्रोंका जैसा सम्पादन करना चाहता हूँ, वैसा नहीं कर पाऊँगा।

हमारे प्रतिनिधिने पूछा: लेकिन आजकल आप स्वराजियों तथा अन्य नेताओंसे जो परामर्श कर रहे हैं, उसके परिणामके सम्बन्धमें क्या आप मुझे छोटा-सा वक्तव्य नहीं देंगे?

महात्माजी अत्यन्त विनोदप्रिय मुद्रामें थे। उन्होंने कहा कि मैं अब भी बीमार हूँ और मुझसे वर्तमान स्थितिके सम्बन्धमें तबतक कुछ भी कहनेकी आशा नहीं की

१. साधन-सूत्रमें अस्पष्ट।
२. देखिए "अपील: जनतासे", २४-३-१९२४।

जा सकती जबतक कि वर्तमान घटनाओंका मैं पूरा अध्ययन नहीं कर लेता और यहाँ उपस्थित नेताओंसे पूरी बातचीत नहीं कर लेता। फिर भी उन्होंने दिल खोलकर हँसते हुए प्रसन्न मुद्रामें हमारे संवाददाताको सुझाव दिया कि आप छायादार खजूरके झुरमुटों और धीमे-धीमे हिलोरें लेते समुद्रके वर्णनसे अपनी मुलाकातके विवरणको विस्तार दे सकते हैं।

जब गांधीजीसे यह प्रश्न किया गया कि क्या आपने सलाह-मशविरेके बाद हिन्दू-मुस्लिम एकता और अस्पृश्यताकी महत्त्वपूर्ण समस्याओंमें से एक या दोनोंको हाथमें लेनेका कोई निर्णय किया है, तो उन्होंने उत्तर दिया कि हिन्दू-मुस्लिम एकता और अस्पृश्यता दोनों ही सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण प्रश्न हैं और यह तय नहीं हुआ है कि उनमें से कौनसा पहले लिया जायेगा या दोनोंको साथ-साथ ही हाथमें लिया जायेगा।

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे क्रॉनिकल, ४-४-१९२४

२९२. पत्र : महादेव देसाईको

[३ अप्रैल, १९२४ के पश्चात्][1]

भाई महादेव,

इतना तो लेने योग्य ही है। गुजराती 'नवजीवन'के लिए तो निश्चय ही उपयोगी है। इसलिए कुछ अन्य लेख छोड़े जा सकते हों तो छोड़ देना और इन्हें लिया जा सकता हो ले लेना। ऐसा न हो सके तो परिशिष्टांक निकालना। जो उचित हो वह करना।

बापूके आशीर्वाद

मूल गुजराती पत्र (एस० एन० ८५७१) की फोटो-नकलसे।

१. गांधीजीने ३ अप्रैलको अपने साप्ताहिक पत्रोंका सम्पादन पुनः आरम्भ किया था। यह पत्र उसके बाद ही लिखा गया जान पड़ता है।

२६३. तार : वाईकोम सत्याग्रहियोंको

[४ अप्रैल, १९२४]

अत्यधिक व्यस्तताके कारण लिखनेमें असमर्थ। आपका ढंग शानदार है। जैसे आपने प्रारम्भ किया है वैसे ही जारी रखें।

[अंग्रेजीसे]

'हिन्दू'की कतरन (एस० एन० १०३००) से।

२६४. पत्र : च० राजगोपालाचारीको

पोस्ट अन्धेरी
४ अप्रैल, १९२४

प्रियवर राजगोपालाचारी,

मुझे आपका अत्यन्त हृदयस्पर्शी पत्र मिला। सुबहकी उस चिट्ठीके तुरन्त बाद मैं अपने-आप शान्त हो गया था। रामू द्वारा बिना झिझक मेरा सुझाव स्वीकार कर लेनेसे मेरे हृदयमें शान्तिके साथ प्रसन्नता भी पैदा हुई। मोतीलालजी और अन्य लोगोंके साथ जो-कुछ बातचीत चल रही है, उसे सम्मेलन नहीं कहा जा सकता। हालांकि मैंने स्वयं 'यंग इंडिया'के[1] स्तम्भोंमें इस शब्दका प्रयोग किया है, हम लोग छुटपुट चर्चा कर रहे हैं। हकीमजीने केवल हिन्दू-मुस्लिम समस्यापर बातचीत की। वे पहले ही जा चुके हैं। मालवीयजी अभी यहीं हैं। वे भी केवल हिन्दू-मुस्लिम एकता-पर बात करते हैं। केवल मोतीलालजी कौंसिल-प्रवेशके प्रश्नमें दिलचस्पी रखते हैं, क्योंकि जाहिर है, उन्हें अपनी नीति इसीके अनुसार निर्धारित करनी है। किन्तु हम किसी फैसलेपर नहीं पहुँचे हैं और मैं इसमें जल्दबाजी नहीं करूँगा। मैं देखता हूँ कि ऐसी अवस्थामें मैं एक आरजी वक्तव्य भी नहीं दे सकता। सम्मेलन या बात-चीतके बारेमें मुझे इतना ही कहना है।

मुझे सुझाव दिया गया है कि तरुण कार्यकर्त्ताओंका सम्मेलन बुलाये बिना मुझे अपने विचारोंको घोषित नहीं करना चाहिए। यह विचार मुझे ठीक लगा है। मैं गम्भीरतापूर्वक सोच रहा हूँ कि कांग्रेसके कार्यक्रममें दिलचस्पी रखने और मुझे अपनी रायसे लाभान्वित करनेवाले सभी कार्यकर्त्ताओंको 'यंग इंडिया'के जरिए इसी महीने किसी दिन आनेका एक आम निमन्त्रण[2] जारी कर दूं। कृपया इस विषयपर तार

१. देखिए "धीरज रखें", ३-४-१९२४।

२. देखिए "टिप्पणियां", १७-४-१९२४।

द्वारा अपनी राय दें और सुविधाजनक तारीखके वारेमें भी मुझे लिखें। मैं चाहता हूँ कि आप उसमें रहें। क्या यह सम्भव नहीं कि आप एक मास जमनालालजीके साथ रह सकें? वे नासिकमें हैं, जहाँ मौसम खुश्क और स्वास्थ्यप्रद है। पूनाके वैद्य भी कभी-कभी उन्हें देखने आते हैं। मैं चाहूँगा कि आप अपने इलाजका उन्हें पूरा मौका दें। वे देवदासके कहनेपर मेरे बीमार साथियोंको देखने यहाँ आये थे। उन्होंने इस वातपर जोर दिया था कि आपको पपीते और मुनक्कोंके अलावा और कुछ नहीं खाना चाहिए।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत सी० राजगोपालाचारी
एक्सटेन्शन
सेलम

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ८६५२) की फोटो-नकलसे।

२६५. पत्र : जयरामदास दौलतरामको

पोस्ट अन्धेरी
४ अप्रैल, १९२४

प्रियवर जयरामदास,

आपने मालवीयजी, मोतीलालजी, हकीमजी और अन्य नेताओंकी वम्बई यात्राकी खवर समाचार-पत्रोंमें पढ़ी होगी। आज अन्वेरीमें जो वात हो रही है उसे किसी प्रकार भी सम्मेलन नहीं कहा जा सकता, हालाँकि 'यंग इंडिया'के स्तम्भोंमें मैंने स्वयं इसी शब्दका प्रयोग किया है। हम लोग छुटपुट ढंगसे वातचीत कर रहे हैं। हकीमजीने केवल हिन्दू-मुस्लिम समस्यापर वातचीत की। वे जा चुके हैं। मालवीयजी अभी यहीं हैं। वे भी केवल हिन्दू-मुस्लिम एकतापर वातचीत करते हैं। केवल मोतीलालजी कौंसिल-प्रवेशके प्रश्नमें दिलचस्पी रखते हैं, क्योंकि जाहिर है उन्हें इसीको लेकर अपनी नीति निर्धारित करनी है। किन्तु हम किसी निर्णयपर नहीं पहुँचे हैं और मैं इसमें जल्दवाजी नहीं करूँगा। मैं देखता हूँ कि जो हो रहा है उसपर मैं एक आरजी वक्तव्य तक नहीं दे सकता। सम्मेलन या वातचीतके वारेमें मुझे इतना ही कहना है।

मुझे सुझाव दिया गया है कि तरुण कार्यकर्त्ताओंका सम्मेलन वुलाये विना मुझे अपने विचारोंकी कोई घोषणा नहीं करनी चाहिए। यह विचार मुझे ठीक लगा है। मैं गम्भीरतापूर्वक सोच रहा हूँ कि कांग्रेसके कार्यक्रममें दिलचस्पी रखने और मुझे अपनी रायसे लाभान्वित करनेवाले सभी कार्यकर्त्ताओंको 'यंग इंडिया'के जरिए इसी

महीने किसी दिन आनेका एक आम निमन्त्रण जारी कर दूं। कृपया इस विषयपर तार द्वारा अपनी राय दें और सुविधाजनक तारीखके बारेमें भी मुझे लिखें।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत जयरामदास दौलतराम
हैदराबाद (सिन्ध)

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ८६५३) की फोटो-नकलसे।

२६६. पत्र : आर० बी० पालकरको

पोस्ट अन्धेरी
४ अप्रैल, १९२४

प्रियवर पालकर,

मैं आपको इससे पूर्व पत्र नहीं लिख सका, इसके लिए आप मुझे क्षमा करेंगे। मैं कहना चाहता था कि जबतक मैं सैसून अस्पतालमें रहा आपने मेरे साथ हमेशा कितना अच्छा और दयालुतापूर्ण व्यवहार किया। आपका काम अत्यन्त कठिन था। और यद्यपि मेरा आपसे प्रत्यक्ष सम्पर्क बहुत ही कम हुआ, फिर भी मैं इस बातकी जानकारी रखता रहा कि आप स्वेच्छापूर्वक लिये गये अपने सेवाकार्यको कितनी निष्ठा और लगनसे निभाते रहे हैं। मिलनेको उत्सुक और अधीर आगन्तुकोंको वापस लौटाना या उन्हें इन्तजार करने देना एक ऐसा काम था, जिसे कमसे-कम कहा जाये तो भी श्रेयहीन कर्त्तव्य ही कहना पड़ेगा। मैं जब अस्पतालमें बीमार पड़ा था, उस समय कई मित्रोंने कृपापूर्वक मेरी सेवा की। उस सेवाकी सुखद स्मृतियाँ मुझे हमेशा याद आती रहेंगी। उसमें आपकी यादका स्थान आगेकी पंक्तिमें ही रहेगा।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत आर० बी० पालकर
भारत स्वराज्य सेवक
बालाजी व्यापारी संघके पास
बुधवार [पेठ], पूना शहर

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ८६५४) से।

२६७. पत्र : सी० ए० पेरीराको

पोस्ट अन्धेरी
४ अप्रैल, १९२४

प्रिय डा० पेरीरा,

आपका २६ मार्चका पत्र मिला।

मुझे विश्वास है कि आपका हिन्दू धर्मके नेताओंसे मिलना आपके उद्देश्यमें सहायक ही होगा। शिष्टमण्डलके लिए कोई ऋतु-विशेष ज्यादा अच्छी होगी, ऐसा मैं नहीं समझता, लेकिन आरामके लिहाजसे शीत-काल निश्चय ही अच्छा रहेगा।

आपने अपने पत्रमें जिस विषयका उल्लेख किया है उसके सम्बन्धमें मुझे कुछ नहीं मालूम। मैं नहीं जानता, मन्दिरपर इस समय किसका अधिकार है और न यही जानता हूँ कि मन्दिरपर कब्जा रखनेवाला व्यक्ति किस आधारपर कब्जेका दावा करता है अथवा बौद्धोंसे कब और किस प्रकार मन्दिरका कब्जा छीन लिया गया था। मैं स्वयं उस मन्दिरमें हो आया हूँ। शायद आप जानते ही हैं कि मन्दिरमें जानेपर कोई प्रतिबन्ध नहीं है, और न कोई प्रवेश-शुल्क ही माँगा जाता है।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

डा० सी० ए० पेरीरा
"तामुण्ड"
बम्बेला पितिया रोड
कोलम्बो

अंग्रेजी पत्र (एस० एन० ८६५५) की फोटो-नकलसे।

२६८. पत्र : एच० आर० स्कॉटको

पोस्ट अन्धेरी
४ अप्रैल, १९२४

प्रिय श्री स्कॉट,

आपका पत्र पाकर बहुत हर्ष हुआ।

आपकी शुभकामनाओंके लिए मैं आपका आभारी हूँ। फॉसडिककी लिखी हुई 'मैनहुड ऑफ द मास्टर' नामक पुस्तकका अनुवाद मुझे अवश्य मिल गया है। उसके लिए धन्यवाद। श्री मणिलाल पारेखने आपसे उस पुस्तककी एक प्रति मुझे

भेजनेके लिए कहा, इसके लिए उन्हें मेरी ओरसे धन्यवाद दे दीजियेगा। मूल पुस्तक मैंने नहीं पढ़ी है।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

रेवरेंड एच० आर० स्कॉट
मिशन हाउस
सूरत

अंग्रेजी पत्र (एस० एन० ८६५६) की फोटो-नकलसे।

२६९. पत्र: महादेव देसाईको

पोस्ट अन्धेरी
४ अप्रैल, १९२४

प्रिय महादेव,

किसी आते-जातेके हाथ 'इंडियन ओपिनियन' की फाइल तथा यदि उपलब्ध हो तो सॉलोमन-रिपोर्ट[1] यथासम्भव शीघ्र भेज दो।

हृदयसे तुम्हारा,
बापूके आशीर्वाद
३ बजे रात्रि[2]

[पुनश्च:]

किंगडम ऑफ हैवन — मोक्ष
पैराडाइज — स्वर्ग
शेषके बारेमें फिर कभी

घोटाला इसीको कहते हैं। मैंने उससे कहा था कि तुम अपनी ओरसे ही लिखो। परन्तु उस बेचारेकी समझमें आया ही नहीं। इसमें दोष किसका है? निश्चय ही मेरा। 'यंग इंडिया' में तुम्हारे दोनों परिवर्तन सही थे। इस आदतको जारी रखो।

अंग्रेजी पत्र (एस० एन० ८६५७) की फोटो-नकलसे।

१. सॉलोमन-आयोग की नियुक्ति अन्य बातोंके अतिरिक्त द० आ० में भारतीय विवाहोंको कानूनी मान्यता तथा तीन-पौंडी करको रद करनेके सम्बन्धमें की गई थी; देखिए खण्ड १२, पृष्ठ ३८८-९१ तथा ६०२-८।

२. गोलीकेरेने, जो इन दिनों गांधीजीके टाइपिस्टकी हैसियतसे काम कर रहे थे, उस पोस्टकार्डको टाइप किया और उसे हस्ताक्षरके लिए गांधीजीके पास पहुँचा दिया। गांधीजीने दूसरे दिन सुबह उस पोस्टकार्डपर अपने हस्ताक्षर गुजरातीमें किये और कुछ बातें जोड़ भी दीं, जो अन्तमें दी जा रही हैं। एक हफ्तेके बाद इन बातोंका स्पष्टीकरण पत्र द्वारा किया गया। देखिए "पत्र: महादेव देसाईको," ११-४-१९२४।

२७०. पत्र : पॉल रिचर्डको

पोस्ट अन्धेरी
५ अप्रैल, १९२४

प्रिय मित्र,

आपके ३ मार्चके पत्रके[1] लिए धन्यवाद। आपका लम्बा पत्र पानेसे कुछ समय पहले मुझे आपका वह छोटा पत्र[2] भी मिल गया था जिसमें आपके तथा श्री रोमां रोलांके हस्ताक्षर थे।

जबसे मैं रिहा हुआ हूँ, अपना मार्ग खोजनेकी कोशिश कर रहा हूँ। परिस्थितिमें बहुत परिवर्तन हो गया है। तथापि एक बात मैं निश्चित रूपसे जानता हूँ। अहिंसामें मेरी अगाध श्रद्धा है। आप यही इतना ही कर सकते हैं कि आप जहाँ-जहाँ जायें, अहिंसाके सत्यका प्रचार करें।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

श्री पॉल रिचर्ड
१३८ रूट द मिने
जेनेवा
स्विट्ज़रलैंड

अंग्रेजी पत्र (जी० एन० ८७१) की फोटो-नकलसे।

१. पॉल रिचर्डने अपनी मध्यपूर्व तथा दक्षिण-यूरोपकी यात्राका वर्णन करते हुए लिखा था कि मैं अपने शरीरपर खादी धारण करके पूर्वसे पश्चिम पहुँच रहा हूँ। रिचर्ड रोमाँ रोलाँसे स्विट्ज़रलैंडमें मिले थे।

२. पत्रपर १७ फरवरीकी तारीख पड़ी है। इसमें पॉलने लिखा है: 'हम लोगोंके स्नेह तथा सराहना स्वीकार करें। आप समरभूमिकी कड़ी धूप और जेलकी शीतल छायाका अनुभव करनेके पश्चात् फिर स्वतन्त्र हो गये हैं। ईश्वर करे भारत अबकी बार तैयार हो जाये और दिग्भ्रान्त यूरोप भी आपका सन्देश ध्यानसे सुने। आपको भारतके प्रति प्रेम है और मानव समाजकी सेवाका चाव है।

२७१. पत्र : हैदराबादके निजामको

पोस्ट अन्धेरी
५ अप्रैल, १९२४

श्रीमान्,

आपका पहली अप्रैलका लिखा पत्र[1] प्राप्त हो गया है। पहली मार्चका पत्र भी मिला था; उसका उत्तर मैं ५ मार्चको[2] भेज चुका था। मुझे इस बातपर आश्चर्य है कि मेरा उत्तर श्रीमान्‌के पास नहीं पहुँचा। इस पत्रके साथ मैं उस उत्तरकी नकल भेज रहा हूँ।

मैं हूँ
श्रीमान्‌का वफादार दोस्त

संलग्न :

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ८४२८) की फोटो-नकलसे।

२७२. पत्र : एच० वाल्टर हीगस्त्राको

पोस्ट अन्धेरी
५ अप्रैल, १९२४

प्रिय श्री हीगस्त्रा,

आपका पत्र मिला, धन्यवाद।

प्रथम प्रश्नका उत्तर नीचे दे रहा हूँ :

मेरा कार्यक्षेत्र भारत है। मेरा लक्ष्य भारतके लिए स्वराज्य प्राप्त करना है। इस उद्देश्यकी पूर्तिके लिए अपनाये जानेवाले साधन हैं अहिंसा और सत्य। इसलिए भारतके स्वराज्यसे संसारके लिए कोई खतरा नहीं है; इतना ही नहीं अगर वह स्वराज्य केवल उपरोक्त साधनों द्वारा ही प्राप्त किया गया तो वह मानव-मात्रके लिए बहुत ही लाभकारी सिद्ध होगा। चरखा आन्तरिक सुधारका बाह्य चिह्न है और यदि

१. वह इस प्रकार था :

"निजामने अपनी मर्जीसे बरारको स्वशासन-अधिकार इस शर्तपर देनेका वचन दिया है कि वह ब्रिटिश सरकारको इस आशयका पत्र भेजे कि हम फिर हैदराबाद रियासतमें वापस जानेको तैयार हैं। यदि बरार इस स्वशासन व्यवस्थाको — जो उसे मिला ही समझिए — स्वीकार नहीं करता है तो यही निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि बरारको अपने स्वशासन सम्बन्धी अधिकारका दावा, जिसको लेकर सारे भारतमें इतना शोर-गुल और आन्दोलन हो रहा है, छोड़ देना चाहिए।. . ."

२. देखिए "पत्र: हैदराबादके निजामको", ५-३-१९२४।

उसे भारतके घर-घरमें फिरसे अपना लिया गया तो देशका आर्थिक निस्तार तो होगा ही; साथ ही भारतके करोड़ों किसानोंको अपने बढ़ते हुए दारिद्र्यसे छुटकारा मिल जायेगा।

अमेरिकाके व्यवसायी वर्गके लोगोंसे मेरा यह कहना है: चरखेके सन्देशके भीतरी अर्थको समझिए; तब कदाचित् संसार-भरकी शान्तिका हल आपके हाथ आ जायेगा। मुझे मालूम है कि इस शान्तिकी इच्छा बहुतेरे अमेरिका-निवासी सच्चे दिलसे करते हैं।

खेद है मैं अपना चित्र न भेजकर आपको निराश कर रहा हूँ; जैसा कि मैंने आपको बताया था, इसका कारण यह है कि मेरे पास अपना कोई फोटो या तसवीर है ही नहीं।

जो पुस्तक आपने मुझे भेजी है उसके लिए मैं आपको धन्यवाद देता हूँ और आपके सुझावके अनुसार मैं उसे अपने पास रख रहा हूँ।

कृपया श्रीमती हीगस्त्रासे मेरा नमस्कार कहें। आप भी मेरा नमस्कार स्वीकार करें।

हृदयसे आपका,

एच० वाल्टर हीगस्त्रा महोदय,
शेफर्ड्स होटल
काहिरा (मिस्र)

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ८६६२) की फोटो-नकलसे।

२७३. पत्र : वी० वी० दास्तानेको

पोस्ट अन्धेरी
५ अप्रैल, १९२४

प्रिय दास्ताने,

मूलशीपेटा सम्बन्धी कागज-पत्र देख गया हूँ। परन्तु उन सभीको अभी पूरी तरह नहीं पढ़ पाया हूँ। लगता है कि निम्नलिखित दो-तीन कारणोंसे आन्दोलनको[1] बन्द करना ही होगा:

(१) मुझे मालूम हुआ है कि जिन-जिन लोगोंको क्षति पहुँची है उनमें से अधिकांशने मुआविजा स्वीकार कर लिया है। जिन थोड़े-से लोगोंने स्वीकार नहीं किया है, वे वही लोग हैं जिनका कि शायद पता ही नहीं लग रहा है।

(२) बाँध लगभग आधा तैयार हो चुका है और उसका निर्माण-कार्य स्थायी रूपसे बन्द नहीं किया जा सकता। लगता है कि इस आन्दोलनके पीछे कोई आदर्श नहीं है।

१. देखिए खण्ड २०, पृष्ठ ६६-९।

(३) आन्दोलनके नेतामें अहिंसाके प्रति पूर्ण विश्वास नहीं है। यह त्रुटि सफलताके लिए घातक सिद्ध होगी। जो पुस्तिकाएँ आपने मुझे भेजी हैं उनमें से एकके अन्तिम पृष्ठपर कविताकी कुछ बहुत ही सुन्दर और बोधक पंक्तियाँ हैं जिनमें बताया गया है कि सच्चा धर्म क्या है।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

श्रीयुत वी० वी० दास्ताने
द्वारा कांग्रेस कमेटी
जलगाँव (खानदेश)

अंग्रेजी पत्र (एस० एन० ८६६३) की फोटो-नकलसे।

२७४. पत्र : बदरुल हुसैनको

पोस्ट अन्धेरी
५ अप्रैल, १९२४

प्रिय बदरुल हुसैन,

तुम्हारा पत्र और सो भी स्वदेशी कागजपर लिखा हुआ पाकर बहुत प्रसन्नता हुई। तुमने तो मानो मुझे भुला ही दिया है, परन्तु जो लोग भी हैदराबादसे आये और जो तुमसे परिचित मालूम हुए मैंने उन सभीसे तुम्हारे बारेमें पूछताछ की है। तुम अपने स्वास्थ्यके बारेमें क्या कर रहे हो? नवयुवक वृद्ध पुरुषोंकी चाल क्यों अपनायें? इसलिए आशा करता हूँ कि तुम मुझसे बहुत पहले स्वस्थ हो जाओगे। जब स्वास्थ्यमें सुधार हो जाये और लम्बी यात्रा कर सको तब जरूर आना।

हृदयसे तुम्हारा,

बदरुल हुसैन महोदय
आबिद मंजिल
हैदराबाद (दक्षिण)

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ८६६४) से।

२७५. पत्र : एच० एम० पेरीराको

पोस्ट अन्धेरी
५ अप्रैल, १९२४

प्रिय पेरीरा,

गत २५ फरवरीका आपका पत्र मिला, धन्यवाद।

आपकी भेजी हुई दिलचस्प कतरन भी मिली। राष्ट्रीय आन्दोलनसे सम्बन्ध रखनेवाली जो भी खबरें मिलें उनकी कतरनें भेजते रहिए।

आपके पिताजीका मुझे भलीभाँति स्मरण है। आप वहाँ क्या कर रहे हैं?

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

श्री एच० एम० पेरीरा
मैरिक
लाँग आइलैंड
न्यूयार्क, यू० एस० ए०

अंग्रेजी पत्र (एस० एन० ८६६६) की फोटो-नकलसे।

२७६. पत्र : मु० रा० जयकरको

पोस्ट अन्धेरी
५ अप्रैल, १९२४

प्रिय श्री जयकर,

आप रामदासकी सार-सँभाल कर रहे हैं इसके लिए मेरा हार्दिक धन्यवाद। मेरा खयाल है कि आज जो नियमित प्रशिक्षण उसे मिल रहा है उससे उसको लाभ पहुँचेगा और उसके चित्तमें स्थिरता आयेगी।

आशा है आपकी माताजीके स्वास्थ्यमें सन्तोषजनक सुधार हो रहा है। कृपया उन्हें मेरा प्रणाम कहें।

हृदयसे आपका,

श्री मु० रा० जयकर
३९१., ठाकुरद्वार
बम्बई

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ८६६७) की फोटो-नकलसे।

२७७. पत्र : लाला मुल्कराजको

पोस्ट अन्धेरी
५ अप्रैल, १९२४

प्रिय लाला मुल्कराज,

पहली तारीखका आपका पत्र मिला, धन्यवाद।

देशबन्धु दास अभीतक यहाँ नहीं आये हैं। पण्डित मालवीयजीको बातचीत अधूरी छोड़कर बनारस चले जाना पड़ा। वे इस मासके अन्ततक यहाँ फिर आ जायेंगे। पण्डित मोतीलालजी यहीं हैं। आजकल चलनेवाला विचार-विमर्श जैसे ही समाप्त होता है, वैसे ही मैं जलियाँवाला बाग स्मारकके बारेमें बातचीत शुरू कर देनेकी आशा करता हूँ। नक्शोंकी मूल-प्रतियाँ हिफाजतसे रखूंगा और काम हो जानेपर वे आपको वापस कर दी जायेंगी।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

लाला मुल्कराज
अमृतसर

अंग्रेजी पत्र (एस० एन० ८६६८) की फोटो-नकलसे।

२७८. पत्र : जे० एम० गोकरनको

पोस्ट अन्धेरी
५ अप्रैल, १९२४

प्रिय श्री गोकरन,

कर्नाटकमें कांग्रेस अधिवेशनके स्थानके बारेमें आपका पत्र मिल गया है। मैं श्री गंगाधररावसे इस बारेमें पत्र-व्यवहार कर रहा हूँ।[1] जिस विवादका उल्लेख आपने किया है उसे तूल न मिले इस दिशामें यथासम्भव प्रयत्न कर रहा हूँ।

कृपया यह जान लें कि यदि मैं १९२२ में डिक्टेटर था भी तो आज नहीं हूँ।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

जे० एम० गोकरन महोदय,
अम्बेवाड़ी, 'डी' ब्लाक
गिरगाँव, बम्बई

अंग्रेजी पत्र (एस० एन० ८६६९) की फोटो-नकलसे।

१. देखिए अगला शीर्षक।

२७९. पत्र : गंगाधरराव देशपाण्डेको

पोस्ट अन्धेरी
५ अप्रैल, १९२४

प्रिय गंगाधरराव,

३१ मार्चका पत्र मिल गया था। देखनेमें आज ही आया। चूँकि ताजे समाचारोंसे अवगत नहीं हूँ इसलिए मैं 'यंग इंडिया' में उसकी बावत कुछ नहीं लिख रहा हूँ। परन्तु मैं सदाशिवरावको[1] एक पत्र भेज रहा हूँ। उसकी नकल[2] संलग्न है।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

संलग्न:
श्रीयुत गंगाधरराव बी० देशपाण्डे
बेलगाँव

अंग्रेजी पत्र (एस० एन० ८६७०) की फोटो-नकलसे।

२८०. पत्र : डी० हनुमन्तरावको

पोस्ट अन्धेरी
५ अप्रैल, १९२४

प्रिय हनुमन्तराव,

आपका पत्र मिला। उसकी लम्बाईके लिए क्षमा माँगनेकी आवश्यकता नहीं है। पत्र बहुत रोचक है और उससे प्रकट होता है कि आप आश्रम तथा प्राकृतिक चिकित्साके सम्बन्धमें कितनी दिलचस्पी ले रहे हैं। मुश्किल यह है कि मैं मूँगफली या बादामसे तैयार किया हुआ पेय हजम नहीं कर पाता। मुझे जो जोरकी संग्रहणी हुई थी, उससे छुटकारा पानेपर विश्रामके दिनोंमें मैंने इस पेयका प्रयोग करके देखा था। एक बार फिर आजमाकर देखना चाहता हूँ, परन्तु फिलहाल अपने भोजनके सम्बन्धमें मैं कोई ऐसा प्रयोग नहीं करना चाहता जिससे नुकसानकी सम्भावना हो। आपने

१. करनाड सदाशिवराव (१८८१-१९३७); वकील, सामाजिक कार्यकर्ता तथा कांग्रेसी नेता। कर्नाटक प्रान्तीय कांग्रेस कमेटीके चार बार अध्यक्ष।

२. उपलब्ध नहीं है।

मिस्त्रीकी पुलिटसके बारेमें लिखा है। अब उसकी जरूरत नहीं रह गई है क्योंकि घाव अच्छा हो गया है।

सबको प्रेम सहित,

आपका,

मो० क० गांधी

अंग्रेजी पत्र (एस० एन० ८६७१) की फोटो-नकलसे।

२८१. पत्र: एडवर्ड मर्फीको[1]

पोस्ट अन्धेरी

५ अप्रैल, १९२४

प्रिय मित्र,

आपकी शुभकामनाओंके लिए धन्यवाद।

आपने दो शब्द भेजनेको कहा है। भेज रहा हूँ: सत्यकी खोजसे बढ़कर खोज नहीं है। उसमें सफलता पानेका एक ही साधन है और वह है अहिंसा — अपने शुद्धतम रूपमें। हमने अभीतक उसकी उपेक्षा की है और यही कारण है कि हम जिसे सत्य मानते हैं उसे दूसरोंपर बलपूर्वक लादनेकी कोशिश करते हैं।

आपका मित्र,

एडवर्ड मर्फी महोदय,
मन्त्री, गांधी क्लब,
यंग मैन्स क्रिश्चियन एसोसिएशन्
न्यूबर्ग
न्यूयार्क, यू० एस० ए०

अंग्रेजी पत्र (एस० एन० ८६७३) की फोटो-नकलसे।

१. यह पत्र श्री एडवर्ड मर्फीके २७ फरवरी वाले पत्रके उत्तरमें लिखा गया था। श्री मर्फीने अपने पत्रमें लिखा था: "चूँकि इस क्लबके साथ आपका नाम जुड़ा है इसलिए इसका उद्देश्य आपके जीवनसे सम्बन्धित सभी बातोंका अध्ययन करना और उनपर विचार करना हो जाता है। हम आपके जीवनका अध्ययन बड़े चावसे करते हैं और उसे बहुत आकर्षक पाते हैं।" (एस० एन० ८३८१)

२८२. पत्र : गॉर्डन लॉको

पोस्ट अन्धेरी
५ अप्रैल, १९२४

प्रिय श्री गॉर्डन लॉ,

२७ फरवरीके पत्रके लिए धन्यवाद।

मुझे स्मरण है कि मेरी आपकी भेंट[1] एक बार हो चुकी है; यह भी याद है कि आपने 'न्यू टेस्टामेंट' (इंजील) के मोफेट कृत अनुवादकी एक प्रति भी मुझे दी थी।[2]

मैं गांधी क्लबको भी उत्तर भेज चुका हूँ।

आपकी शुभकामनाओंके लिए मैं आपका आभारी हूँ।

मैं 'यंग इंडिया' की एक प्रति भेज रहा हूँ। यह उसका सम्पादन भार पुनः सँभालनेके बादका पहला अंक है। मैं प्रबन्ध-विभागको सूचित कर रहा हूँ कि वह आपको नियमित रूपसे अंक भेजता रहे।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

श्री गॉर्डन लॉ, एम० बी० ई०
गांधी क्लब
वाई० एम० सी० ए०
न्यूबर्ग,
न्यूयार्क, यू० एस० ए०

अंग्रेजी पत्र (एस० एन० ८६७२) की फोटो-नकलसे।

१. १९२० में, लाहौरमें।

२. इन्होंने गांधीजीको एक अमेरिकी लेखक द्वारा बालकोंके सम्बन्धमें लिखी हुई पुस्तककी एक प्रति भेंट की थी।

२८३. पत्र : डाक्टर मु० अ० अन्सारीको

पोस्ट अन्धेरी
५ अप्रैल, १९२४

प्रिय डाक्टर अन्सारी,

आपका देवदासके नाम दर्दभरा पत्र मैंने पढ़ लिया है।

मैं मुहम्मद अलीको पहले ही इस बातका आश्वासन दे चुका हूँ कि जबतक मेरी उनकी मुलाकात न हो ले तबतक मैं कोई भी वक्तव्य नहीं दूँगा। लोग लगातार मुझसे कोई-न-कोई वक्तव्य देनेको कह रहे हैं और इसके बावजूद मैंने अपने आश्वासनको किस तरह निभाया है, वह आप देख सकेंगे। मैं स्वयं इस बातके लिए उत्सुक हूँ कि हिन्दू-मुस्लिम प्रश्नके बारेमें अपने विचार व्यक्त कर दूँ; मैं वक्तव्य प्रकाशित नहीं कर रहा हूँ सो केवल इसीलिए कि मुहम्मद अली तथा पण्डित मालवीय चाहते हैं कि मैं अभी इसे स्थगित रखूँ। मैंने इसी प्रश्नपर पण्डित मालवीयके साथ कल काफी देर तक बातचीत की थी। परन्तु आप यह नहीं चाहते कि मैं इन बातोंके बारेमें — मसलन तिब्बिया कालेजकी घटनाके बारेमें—मौन रहूँ। मैं उसके सम्बन्धमें तथा मुहम्मद अलीके खिलाफ लगाये गये आरोपके सम्बन्धमें अपने विचार व्यक्त करनेकी इच्छा जरूर रखता हूँ। उन्होंने स्वामी श्रद्धानन्दको जो उत्तर भेजा है वह मेरे पास मौजूद नहीं है। यद्यपि मैं देशी भाषाओंके समाचार-पत्रोंमें जो कुछ लिखा जा रहा है उससे पूरी तरह अवगत रहनेकी चेष्टा कर रहा हूँ, परन्तु यह मुझ अकेलेके बसकी बात नहीं है। अगर आप हिन्दुओं तथा मुसलमानोंके समाचार-पत्रोंमें प्रकाशित चुनी हुई खबरोंकी कतरनें मेरे पास भेजते रहनेकी कृपा करें तो मैं उनके सम्बन्धमें यथासम्भव पूर्ण दृढ़ताके साथ कार्रवाई करना चाहूँगा। इस आम सवालके बारेमें अभी इतना ही।

ऐसा कोई दिन नहीं गुजरता है जिस दिन मैं अली-भाइयों तथा उनके दु:खके बारेमें न सोचता होऊँ। खिलाफतका प्रश्न प्रत्येक मुसलमानको प्रिय है। परन्तु अली-भाई तो खिलाफतकी शान और इज्जतको कायम रखनेके लिए अपना जीवन हार चुके हैं। इसलिए मैं समझ सकता हूँ कि टर्कीकी विधानसभाके निर्णयसे उनके दिलको कितना भारी आघात पहुँचा होगा। अमीनाकी मृत्यु तथा शौकत अलीकी गम्भीर बीमारी-ने दु:खका प्याला लबालब भर दिया है। मेरी तीव्र इच्छा है कि शौकत अलीकी सेवा-शुश्रूषा करने और उन्हें फिर पहले जैसा स्वस्थ देखनेके लिए मैं आपके पास होता। वे रोग-शय्यापर लाचार अवस्थामें पड़े हुए हैं, यह कल्पना भी बहुत कठिन है। ईश्वर करे वे शीघ्र स्वस्थ हो जायें। कितना अच्छा होता कि आपके वहाँ पहुँचनेपर मैं उनसे मिलनेके लिए बम्बई आ जाता। परन्तु मुझे इसकी कोशिश नहीं करनी चाहिए। एक बार इस प्रकारकी यात्रा कोई कठिन बात नहीं है; परन्तु आप मेरे तौर-तरीके जानते ही हैं। यदि मैं अपनी ही मर्जीसे अपने ऊपर लगाये गये प्रतिबन्धको एक बार तोड़ देता हूँ

तो फिर बार-बार उसे तोड़ना होगा। और तब तो मैं कहींका न रहूँगा। इस विश्राम-स्थलमें भी मुझे विश्राम नहीं मिलता। दर्शकोंकी भीड़ मुझे अकेला नहीं छोड़ती। आजसे मैं लगभग प्रतिदिन कुछ घंटोंका मौनव्रत ले रहा हूँ ताकि मुझे शान्तिकी कुछ घड़ियाँ मिल जायें और साथ ही आनेवाले पत्रोंका जो ढेर बराबर बढ़ता जा रहा है, उसे भी निपटा सकूँ। मैं सोमवारको तो मौन रखता ही हूँ, अब बुधवारको भी रखा करूँगा ताकि 'यंग इंडिया' और 'नवजीवन' के सम्पादन-कार्यको ठीक तरह निभा सकूँ।

शौकत अली अपने स्वास्थ्यकी वर्तमान दशामें जुहू आयें — ऐसी कल्पना तक मेरे मनमें नहीं आ सकती; अतः आप उन्हें माथेरान ले जायें। अवश्य ही जब कभी आप एक दिनका अवकाश निकाल सकें, तब आप जरूर आ जाइए। शौकत अली मुझसे जो-कुछ भी कहना चाहते हैं वह सब मुहम्मद अलीसे सुन लूँगा। फिलहाल तो उससे काम चल ही जायेगा। अब रही मेरी बात। वास्तवमें अब बहुत कुछ जानना भी नहीं है। हाँ, इतना जरूर है कि आपके, अली-बन्धुओंके, तथा उन चन्द लोगोंके जिनके विचारोंकी मैं कद्र करता हूँ, ख्यालात जरूर जानना चाहूँगा। मुझे अब क्या करना है इसके बारेमें मेरे विचार लगभग अन्तिम रूप ले चुके हैं। मैं तो अपना बोझ उतार फेंकनेके लिए अधीर हो रहा हूँ।

आपको, अली-भाइयों तथा अन्य सब मित्रोंको मेरा स्नेहाभिवादन। बेगम साहिबा-से मेरा सलाम कहनेकी मेहरबानी कीजिएगा।

हृदयसे आपका,

डा० मु० अ० अन्सारी
१, दरियागंज
दिल्ली

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ८६७४) की फोटो-नकलसे।

२८४. पत्र : पी० ए० नारियलवालाको

पोस्ट अन्धेरी
५ अप्रैल, १९२४

प्रिय श्री नारियलवाला,

आपका पत्र और उसके साथ दस रुपयेका नोट भी मिला, धन्यवाद।

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि आपने इस कथनपर विश्वास नहीं किया कि मैं खद्दर न पहननेवालोंको कम प्यार करूँगा। मुझे यकीन है कि मेरा कोई भी सहयोगी किसीसे भी ऐसी कोई बात नहीं कहेगा, परन्तु पूनामें एक ऐसा व्यक्ति था जो अपने आपको स्वयंसेवक बताता था। उसीने आपसे यह गुस्ताखी की होगी।

अब रही खद्दर पहननेकी बात; तो उसके साथ आप सभी उच्च सद्गुणोंको क्यों जोड़ते हैं? निश्चय ही तब तो खद्दर धारण करनेका अधिकारी शायद ही कोई

निकले। खद्दर पहनने न पहननेका आधार खद्दरके अपने गुण-दोष ही होने चाहिए; फिर दृष्टिकोण चाहे राजनैतिक हो, चाहे आर्थिक। दरअसल तो खद्दरका मुख्य पहलू आर्थिक है, राजनैतिक पहलू तो उसका एक परिणाम-भर है। मैं दुष्टसे-दुष्ट व्यक्ति तकसे यह कहनेमें संकोच न करूँगा कि आप विलायती कपड़ेके या भारतीय मिलोंमें तैयार किये गये कपड़ेके स्थानपर खद्दर पहना कीजिए, क्योंकि इस तरह रुई धुनने, सूत कातने और कपड़ा बुननेमें जो रुपया हम व्यय करते हैं वह सब हमारे गरीब भाई-बहनोंको मिलता है। इसलिए मैं यही चाहूँगा कि आप खद्दर पहननेका यह मतलब न लगायें कि खद्दर पहननेवाला व्यक्ति सद्‌गुणोंसे विभूषित हो जाता है; लेकिन मुझे इसमें भी कोई शक नहीं है कि खद्दर पहननेके फलस्वरूप आप अपनी प्रकृतिमें उन सद्‌गुणोंको अधिक अच्छी तरह विकसित कर सकेंगे।

हृदयसे आपका,

श्री पी० ए० नारियलवाला
रोज़ ली, एल्टामॉन्ट रोड
खम्बाला हिल
बम्बई

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ८६७५) से।

२८५. पत्र : सर दिनशा माणेकजी पेटिटको

पोस्ट अन्धेरी
५ अप्रैल, १९२४

प्रिय सर दिनशा पेटिट,

आपका ३१ मार्चका पत्र मिला, धन्यवाद। श्रीमती सोराबजीके खिलाफ किये गये अपने निर्णयके[1] पक्षमें आपने जो कारण बतलाये हैं, वे मेरी समझमें आ गये हैं।

आपने कृपापूर्वक मेरे स्वास्थ्यके बारेमें पूछा उसके लिए मैं आपका आभार मानता हूँ। मेरा स्वास्थ्य धीमी गतिसे परन्तु निरन्तर सुधर रहा है।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

सर दिनशा माणेकजी पेटिट
४१, निकोल रोड
बैलार्ड एस्टेट
बम्बई

अंग्रेजी पत्र (एस० एन० ८६७६) की फोटो-नकलसे।

१. गांधीजीने श्री पेटिटसे श्रीमती सोराबजीकी सहायता करनेका अनुरोध किया था। देखिए "पत्र : सर दिनशा माणेकजी पेटिटको", २७-३-२४।

२८६. पत्र : जी० बी० तलवलकरको

पोस्ट अन्धेरी
५ अप्रैल, १९२४

प्रिय डाक्टर तलवलकर,

आपका पत्र मिला, धन्यवाद।

आपको पत्र भेज चुकनेके बाद डाक्टर दलाल मेरे स्वास्थ्यकी जाँच करनेके लिए अपनी साप्ताहिक गश्तपर आ गये थे। मैंने उनसे उन तीनों मरीजोंकी भी जाँच कराई। उन्होंने फीकी तथा राधाबहनके लिए कॉड-लिवर आयलकी सुइयाँ लगानेकी सलाह दी और मणिबेनके लिए कुछ गोलियाँ और पीनेकी दवा तजवीज की। पूनाके चिकित्सक महोदय उनके पश्चात् आये; उन्होंने भी उन तीनों मरीजोंको देखा। उन्हें ऐसा लगा कि ये रोगी अवश्य ही रोगमुक्त हो जायेंगे। आजकल इन तीनों बहनोंका इलाज वही कर रहे हैं। मुझे तो ऐसा लगता है कि उनके रोगका शमन हो रहा है, परन्तु उनके स्वास्थ्यमें जो भी सुधार हो पाया है उसका कारण मेरे अनुमानसे यह है कि उन्हें पहलेसे अधिक आनन्दमय वातावरण और स्वास्थ्यकर समुद्री आब-हवा सुलभ है। डाक्टरकी चिकित्साने कहाँतक लाभ पहुँचाया है इसके बारेमें अभी कुछ भी नहीं कहा जा सकता। अबकी बार जब डाक्टर दलाल यहाँ आयेंगे तब मैं उनके साथ उस पूनावाले चिकित्सकके इलाजके बारेमें वार्तालाप करूँगा। मेरी दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति यह है कि मैं आयुर्वेदिक दवाइयोंमें तो विश्वास रखता हूँ परन्तु आयुर्वेद प्रणालीके चिकित्सकोंके निदानमें नहीं। जब कोई रोगी किसी वैद्यका इलाज शुरू करता है तब मेरे मनमें उस चिकित्साके बारेमें इसलिए शंका ही बनी रहती है और वह तबतक दूर नहीं होती जबतक पाश्चात्य प्रणालीका कोई विश्वसनीय डाक्टर उस वैद्यके निदानकी जाँच न कर ले। मैं इन तीनों रोगियोंकी हरारतका क्रमिक ब्योरा चार्टके रूपमें रख रहा हूँ। जबतक बुखार नहीं बढ़ता और मरीज खुशमिजाज बने रहते हैं तबतक चिन्ताका कोई कारण नहीं है। यदि आप आवश्यक मानें तो आगे क्या करना चाहिए सो लिख भेजनेकी कृपा कीजिए।

हृदयसे आपका,

डाक्टर जी० बी० तलवलकर
अहमदाबाद

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ८६७७) से।

२८७. पत्र : सरदार मंगलसिंह और सरदार राजासिंहको

पोस्ट अन्धेरी
५ अप्रैल, १९२४

प्रिय मित्रो,

'ऑनवर्ड स्पेशल' की १७ मार्चकी प्रति मिल गई है। उसे पढ़ जानेपर मुझ बड़ा दुःख हुआ। क्या आपका ऐसा खयाल नहीं है कि उसमें आपने अतिशयोक्तिकी भरमार कर दी है और अनेक असत्य बातें ठूँस दी हैं? आपमें से उन लोगोंको जो इस संघर्षके धार्मिक स्वरूपमें विश्वास रखते हैं इस प्रकारके हथकण्डोंसे काम नहीं लेना चाहिए। यदि 'ऑनवर्ड'को संस्थाकी पत्रिकाके तौरपर चलाना है तो उसका सम्पादन-भार ऐसे व्यक्तिको दीजिए कि जो गम्भीर और सत्यपरायण हो।

हृदयसे आपका,

सरदार मंगलसिंह और सरदार राजासिंह
अमृतसर

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ९९५३) की फोटो-नकलसे।

२८८. पत्र : के० एम० पणिक्करको

पोस्ट अन्धेरी
५ अप्रैल, १९२४

प्रिय पणिक्कर,

आपका १ अप्रैलका पत्र[1] मिला। आपने उसमें जो-कुछ लिखा है, उससे मुझे कोई आश्चर्य नहीं हुआ। जो सज्जन यहाँ आये हुए थे वे आपको बतलायेंगे कि मैंने उनसे क्या कहा था। जो स्मृति-पत्र मैंने उनको दिया है उसके सम्बन्धमें जबतक मित्रोंके विचार मालूम न हो जायें तबतक मेरे लिए कुछ भी कहना कठिन है। क्या आपको अपने सब पत्र नियमित रूपसे मिलते रहते हैं? आपको मिलनेके पूर्व उनकी छानबीन या खोला-खाली तो नहीं की जाती? 'ऑनवर्ड स्पेशल'को पढ़नेके पश्चात् किसी प्रकारका वक्तव्य कैसे दिया जा सकता है? उस लेखके लेखकमें धर्म-भावनाका पूर्ण अभाव है और पत्रिकामें अतिरंजना और असत्य प्रचुर मात्रामें है। जिस संघर्षके बारेमें धार्मिकताका दावा किया जाता है परन्तु जिसको अपने समर्थनके लिए उकसानेवाले और असत्य-

१. पणिक्करने इससे पहले २९ मार्चको एक पत्र लिखा था। उस पत्रके साथ उन्होंने जेलकी घटनाओंकी जो एक अनौपचारिक जाँच की थी, उसकी रिपोर्ट भेजी थी।

पूर्ण लेखोंकी आवश्यकता पड़े, मेरे लिए उस संघर्षमें दिलोजानसे भाग लेना असम्भव है। यह पत्र मित्रोंको पढ़कर सुनाया जा सकता है। आपकी स्थिति बहुत नाजुक है। आशा है कि हम लोग जिस सिद्धान्तका दम भरते हैं आप उसके अनुसार आचरण करनेका बल और साहस दिखायेंगे।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

श्रीयुत के० एम० पणिक्कर
अकाली सहायक ब्यूरो
अमृतसर

अंग्रेजी पत्र (एस० एन० ९९५४) की फोटो-नकलसे।

२८९. तार : अलमोड़ा कांग्रेस कमेटीको[1]

[५ अप्रैल, १९२४ या उसके पश्चात्]

धन्यवाद आपका कृपापूर्ण आतिथ्य स्वीकार करनेमें असमर्थ हूँ।

गांधी

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ८६७९) की फोटो-नकलसे।

२९०. पत्र : वालजी देसाईको

[शनिवार, ५ अप्रैल, १९२४ के पश्चात्][2]

भाईश्री ५ वालजी,

सचमुच ही पिछली बार भी समयकी बड़ी कमी रही। दुराग्रह करके जागरण तो किया ही नहीं जा सकता। हम लोगोंको ज्यादा आदमी रखनेकी जरूरत नहीं है, इसलिए इसी वारसे तुम अपनी आखिरी सूचनापर अमल करना। इसलिए डाक-टिकट-के बराबर चौड़ाईकी बात कहता हूँ। आशा है कि फिर इस तरहकी भूल नहीं होने पायेगी। 'इम्पोस्चर' को ठीक ही बदल दिया। तुमने जो शीर्षक दिया है, उससे मतलब

१. यह तार अलमोड़ा कांग्रेस कमेटीके मन्त्री द्वारा ५ अप्रैल, १९२४ को भेजे गये इस तारके उत्तरमें था: "नव वर्षके अवसरपर बधाई। स्वास्थ्य लाभके लिए अलमोड़ाका जलवायु अत्युत्तम। ठहरनेके लिए बँगलेकी व्यवस्था कर ली गई है। कृपया अवश्य आइये।"

२. गांधीजीने **यंग इंडिया**का सम्पादन-भार ३ अप्रैल, १९२४ को सँभाला था। यह पत्र उसके बाद ही लिखा गया जान पड़ता है। उक्त शनिवार ता० ५ अप्रैलको था।

अधिक खुल जाता है। टिप्पणियोंमें जिन वाक्यांशोंका एक-दूसरेसे सम्बन्ध नहीं है, उनमें फेरफार करो तो कोई हर्ज नहीं है।

एक परिवर्तन कर देना। अग्रलेखके लिए चौथा पन्ना तय है। उसे छोड़ रखना। सारी टिप्पणियाँ पूरी हो जानेके बाद अग्रलेख जहाँ आ सकता हो, वहीं शुरू कर दिया जाये। केवल इतना ही ध्यान रखना है कि उसे पृष्ठके प्रारम्भसे ही शुरू किया जाये। यदि ऐसा करें तो हम भीतर जो 'यंग इंडिया' का नाम और तारीख देते हैं, उसकी जरूरत नहीं रहती।

इस बार मेरे पास 'यंग इंडिया' की एक भी प्रति नहीं आई।

देखता हूँ, तुम्हारे पास पाँच कालमसे अधिक तो तैयार ही पड़े हैं। थोड़ा आज भेज रहा हूँ। और अधिक तो सोमवारको ही भेज पाऊँगा। थोड़ी-बहुत सामग्री तो कल भी भेजनेकी आशा करता हूँ। कोशिश करूँगा, मंगलवारको कुछ भी न भेजना पड़े। बहुत हुआ तो दो कालम -- ऐसा गणित लगाया है।

मोहनदासके वन्देमातरम्

मूल गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ६२०१) की फोटो-नकलसे।
सौजन्य : वा० गो० देसाई

२९१. पत्र : महादेव देसाईको

[६ अप्रैल, १९२४ के पूर्व][1]

भाईश्री महादेव,

इस पत्रके साथ मैं तुम्हें सत्याग्रहके इतिहासके आठ अध्याय[2] भेज रहा हूँ। इस बातका ध्यान रखना कि किये गये संशोधनोंमें से एक भी संशोधन रह न जाये। तुम देखोगे कि सब संशोधन महत्त्वपूर्ण हैं। अन्तिम अनुच्छेदको मैंने हटा दिया है।

उस अनुवादके बारेमें तुम्हारे मनमें अब भी सन्ताप बना हुआ है, सो किसलिए? एकाध 'ही' इधर-उधर हो सकता है। 'किंगडम ऑफ हेवन' का तुमने जो अनुवाद किया था वह सर्वथा दोषरहित है।

तुम्हारे सामने दो उपाय हैं। एक तो यह कि तुम अपने दोषकी बात भूल जाओ। जैसे कुछ लोग अपने शरीरमें रोगके न होते हुए भी किसी रोगकी कल्पना कर लिया करते हैं, यह ऐसा ही कोई मानसिक रोग हो सकता है। हमें अपने दोषोंका भान तो होना ही चाहिए। परन्तु उनका अतिरंजन भी ठीक नहीं। सभी मामलोंमें एक मध्यम-मार्ग होता है, जो वास्तवमें मध्यवर्ती नहीं, सच्चा मार्ग ही है। दूसरा उपाय यह है कि तुम अपनी भीरुता छोड़ दो। अपनी भीरुताकी वजहसे ही तुम दुर्गाके कष्टोंके

१ व २. ये अध्याय **नवजीवन**में ६ अप्रैल, १९२४ से एक लेखमालाके रूपमें प्रकाशित होने लगे थे। इनका अंग्रेजी रूपान्तर १७ अप्रैलसे **यंग इंडिया**में छपने लगा था।

कारण बन जाते हो। तुमने अपनी इसी दुर्बलताके वशीभूत होकर उस गाड़ीवाले को पीट दिया था। उसने तुमपर हाथ उठाया, तो तुम भयभीत हो गये, ऐसा क्यों? भीरु लोग प्रायः धैर्य खो बैठते हैं। तुम्हारे हृदयमें प्रेम तो भरपूर है; परन्तु तुम सावधानीसे आत्मनिरीक्षण नहीं करते। तुममें आत्मविश्वास नहीं है। तुम निरन्तर अपने आपसे यह क्यों नहीं कहते कि "मैं कभी भयके वशीभूत नहीं होऊँगा", "जब-जब भूल होगी मैं उसे दुरुस्त करूँगा।" और किसी चीजसे काम न सरे तो रामनामका मन्त्र तो है ही। इस विषयमें मैंने जो पत्र मजलीको लिखा था उसे तुमने पढ़ा था या नहीं? तुम्हें उसकी नकल मिली ही होगी।

मुहम्मद अलीके बारेमें पत्र अवश्य लिखना। इस प्रकारके प्रश्न दूसरोंके मनमें भी उठ सकते हैं। यदि तुम लिखोगे तो मुझे सफाई देनेका अवसर मिल जायेगा। मैं कल तो उस सम्बन्धमें कुछ-न-कुछ लिखूंगा ही। जब मेरा लेख तुम्हें मिल जाये तब लिखना। हम दुर्गाका इलाज पूनावाले वैद्यसे करायेंगे। क्या वह यहां गुरुवारको आयेगी? वैद्यजी गुरुवारको आया करते हैं। दुर्गा यहां कुछ दिन ठहरे तो अच्छा होगा। लोगोंकी भीड़ तो यहां होगी ही; उसके लिए तैयार रहना। धर्मशालामें तो हर कोई आकर ठहर सकता है। प्रश्न इतना ही है कि क्या वह धर्मशाला सचमुच धार्मिक है? यदि है तो सकुचानेकी क्या जरूरत है?

बापूके आशीर्वाद

मूल गुजराती पत्र (एस० एन० ८७६२) की फोटो-नकलसे।

२९२. भेंट : एसोसिएटेड प्रेसके प्रतिनिधिसे

[बम्बई
६ अप्रैल, १९२४ या उसके पूर्व]

यूनियन असेम्बलीमें वर्ग क्षेत्र विधेयक (क्लास एरियाज बिल) के द्वितीय वाचनके अवसरपर श्री डंकनने[1] जो भाषण दिया था उसे मैं ध्यानपूर्वक पढ़ गया हूँ। जनरल स्मट्स और मेरे बीच जो पत्र-व्यवहार[2] हुआ था वह मेरे पास मौजूद नहीं है; 'इंडियन ओपिनियन' की मेरी फाइल सत्याग्रह आश्रम साबरमतीमें रखी हुई है। वह मैंने मँगवाई है। उसमें उपरोक्त दोनों पत्र छपे हैं, परन्तु मुझे वास्तवमें यहाँ अपने कामके लिए उनकी आवश्यकता नहीं है। श्री डंकनके कथनपर मुझे आश्चर्य हो रहा है। इन दोनों पत्रोंमें ही पूरा इकरारनामा नहीं आ जाता। यह बात स्मरण रखनी चाहिए कि भारतीय संघर्ष १९०७ में एशियाटिक रजिस्ट्रेशन ऐक्ट (एशियाई पंजीयन अधिनियम) से प्रारम्भ हुआ था। यही चीज पहले अध्यादेशके रूपमें अस्वीकृत कर दी गई थी

१. पैट्रिक डंकन, दक्षिण आफ्रिकी मन्त्रिमण्डलके सदस्य; १९२७ में वहांके गवर्नर-जनरल।
२. देखिए खण्ड १२।

और बादमें उसे ट्रान्सवालकी प्रथम उत्तरदायी विधान सभा द्वारा लगभग जैसाका-तैसा पारित कर दिया गया और आगे जाकर १९१४ में यह संघर्ष तीव्रतम हो गया। उस अवसरपर संघर्षमें संघके चारों प्रान्त शरीक थे। 'निहित अधिकार' एक ऐसा शब्द है जिसकी व्याख्या समय-समयपर होती रही है। मेरा निवेदन यह है कि इकरारकी सम्पूर्ण मनोवृत्ति यही सूचित करती थी कि संघ-सरकार निहित अधिकारोंको कम न करनेके लिए ही वचनवद्ध नहीं है बल्कि १९१४ में मौजूद प्रतिबन्धोंको क्रमशः हटा देनेके लिए भी वचनबद्ध है।

मैंने अपने कथनके समर्थनमें सर बेंजामिन रॉबर्ट्सन और श्री एन्ड्रयूजको गवाहों-के रूपमें पेश किया है। मैंने श्री एन्ड्रयूजसे, जो जनरल स्मट्स तथा मेरे बीच होने-वाली समझौता-वार्ताके समय मौजूद थे, पूछा। वे मेरी बातका पूरा समर्थन करते हैं।[1] जाहिर है कि आठ बरसतक चलनेवाला यह संघर्ष इसलिए नहीं चलाया गया था कि मुकम्मिल और सम्मानपूर्ण समझौता हो जानेके पश्चात् भी संघ-सरकार भारतीयोंको उनके मौजूदा अधिकारोंसे जब चाहे वंचित कर दे।

श्री डंकनका समूचा भाषण असंगतियोंकी एक विचित्र प्रदर्शनी है तथा वह इस बातका द्योतक है कि सही बात भी नहीं मानी जायेगी। जैसा कि स्वयं उस भाषण-से प्रकट है, वर्ग क्षेत्र विधेयक (क्लास एरियाज बिल) को पेश करनेका यह कारण नहीं है कि वह यूरोपीयोंकी प्रभुता कायम रखनेके लिए जरूरी है बल्कि यह है कि अपना स्वार्थ साधनेके इच्छुक यूरोपीय उसके लिए गुलगपाड़ा मचा रहे हैं। श्री डंकन खुद स्वीकार करते हैं कि आव्रजन बन्द हो चुकनेके कारण भारतीयोंकी जनसंख्या क्रमशः घटती जा रही है। अलगाव (सेपरेशन) और पृथक्करण (सेग्रीगेशन) के बीच श्री डंकनने जो अन्तर दिखाया है, वह छलपूर्ण है। उन्होंने जो-कुछ कहा है उसके बावजूद मैं यह बात साहसपूर्वक कह सकता हूँ कि विधेयकके पीछे मंशा कुछ भी क्यों न हो, उसका परिणाम तो यही निकलेगा कि भारतीय प्रवासी बरबाद हो जायेंगे।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, ७-४-१९२४

१. गांधीजीने जो रुख अख्तियार किया था उसका समर्थन करनेवाले श्री एन्ड्रयूजके वक्तव्यके पाठके लिए देखिए परिशिष्ट १२।

२९३. 'नवजीवन' के पाठकोंसे

दो वर्षके वियोगके बाद मैं आपसे इस पत्रके द्वारा मिल रहा हूँ। मैं 'नवजीवन' को अपने पाठकोंके प्रति प्रेषित अपना साप्ताहिक पत्र मानता हूँ। इसके द्वारा आपके साथ मेरा सम्बन्ध घनिष्ठ हुआ है। अपने विषयमें तो मैं कह सकता हूँ कि इस वियोगसे यह सम्बन्ध शिथिल होनेकी बजाय और मजबूत हुआ है। जबसे मैं छूटा हूँ, आपसे फिर परिचय करनेके लिए छटपटा रहा हूँ। मुझे जेलमें जब आपके स्नेहकी याद आती थी तब मैं हर्षसे फूल जाता था। मैं बराबर सोचा करता था कि जेलमें किये गये चिन्तनका परिणाम मैं आपके सामने कब प्रस्तुत कर सकूँगा। आज मैं अपने विचारको कार्य-रूपमें परिणत कर पा रहा हूँ; इसके लिए मैं ईश्वरका अनुग्रह मानता हूँ।

मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि यदि मैं आपके सामने कोई नवीन विचार प्रस्तुत न कर सकूँ तो आप उकता न जायें। अपने देशकी उन्नतिके लिए मुझे नवीन साधन नहीं मिले हैं। दो साल पहले हम जिन साधनोंसे काम लेते थे उन्हींके द्वारा (दूसरोंके द्वारा नहीं) हम अपने ध्येयको प्राप्त कर सकते हैं, यह विचार मेरे मनमें अधिक दृढ़ हो गया है। इसी कारण आपको 'नवजीवन' में इन साधनोंके सम्बन्धमें मेरी दृढ़ता दिखाई देगी। परन्तु उन्हीं, एक ही तरहके, साधनोंकी चर्चा 'नवजीवन' में करते रहनेसे क्या लाभ? उससे आप ऊब तो न जायेंगे? इसका जवाब तो आप ही दे सकेंगे। यदि आप ऊब जायेंगे तो 'नवजीवन' पढ़ना बन्द कर देंगे।

मेरा आग्रह यह है कि 'नवजीवन' घाटा उठाकर न चलाया जाये। मैं तो उसका निकलना तभी सफल समझूंगा जब उसकी बिक्रीसे ही उसका खर्च पूरा हो जाये।

सत्य उतना ही पुरातन है जितना कि यह जगत्। परन्तु फिर भी हम उससे ऊब नहीं जाते। असत्यका आचरण करते हुए भी हमें सत्यका खयाल रहता है। वही हमारा मान-दण्ड है। उसका अनुभव-पाठ हमें नित नई वस्तुकी तरह अच्छा लगता है। 'नवजीवन' के द्वारा आपको जो-कुछ दिया गया है और दिया जायेगा वह मुख्यतः अनुभव-पाठ ही था और अब भी होगा। इसीलिए 'नवजीवन' के भविष्यके विषयमें मुझे सन्देह नहीं है। भाई शंकरलाल बैंकर और इन्दुलाल याज्ञिकने जब मुझे 'नवजीवन' के सम्पादकका पद सौंपा था[1] तभी मैंने उनको यह बता दिया था कि यदि 'नवजीवन' को चलानेसे कोई लाभ होगा तो वह मुझे और मेरे साथियोंको नहीं चाहिए। उसका उपयोग किसी सार्वजनिक कार्यमें ही किया जायेगा।

आपने जो-कुछ किया है वह आशासे अधिक है। आपने 'नवजीवन' का खर्च तो चलाया ही; उसके अतिरिक्त 'हिन्दी नवजीवन' और 'यंग इंडिया' में जो घाटा हुआ उसको भी पूरा कर दिया। मेरे साथियोंने मेरे पीछे जो परिश्रम किया है उसको

१. सितम्बर १९१९ में।

बतानेका यह उपयुक्त स्थान नहीं। उन्होंने नवजीवन मुद्रणालयके कार्यको असाधारण रूपसे बढ़ाया है। वहाँसे अनेक पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। यदि मैं जेल न गया होता तो इतनी पुस्तकें कभी प्रकाशित न होतीं, यह बात मैं जानता हूँ। पहली बात तो यह है कि तब उनमें इतना उत्साह ही न होता। उन्होंने जल्दी स्वराज्य प्राप्त करनेमें अपना भाग नई पुस्तकोंके प्रकाशनके रूपमें दिया है। इसके अतिरिक्त यदि मैं जेल न गया होता तो मेरे हाथसे इतनी पुस्तकें प्रकाशित न होतीं। उन्होंने पुस्तकें लागत मूल्यमें नहीं बेची हैं, उनपर कुछ लाभ रखा है। इसमें उनका कोई स्वार्थ न था, बल्कि वे यह जानते थे कि यदि बचत होगी तो उसका उपयोग लोकोपकारी कार्योंमें किया जायेगा। यदि एक पुस्तकपर एक आना मूल्य अधिक रखा गया हो तो वह कदाचित् खरीदारोंको भारी नहीं पड़ता, किन्तु यदि खरीदार अधिक हों तो लाभ तो अच्छा हो ही जाता है। मुझे पाठकोंको बताना चाहिए कि इस कार्यमें जहाँ लाभ हुआ है वहाँ हानि भी हुई है। सब पुस्तकोंकी खपत एक-सी नहीं हुई है। इस कारण बहुत-सी पुस्तकें बिन बिकी पड़ी हैं।

इन उतार चढ़ावोंके बावजूद और 'यंग इंडिया' और 'हिन्दी नवजीवन' पत्रोंका घाटा उठानेपर भी पाँच सालमें 'नवजीवन'की हालत इस लायक हो गई है कि उसकी आयमें से ५०,०००) लोकोपयोगी कामोंमें खर्च किये जा सकते हैं। इस रकमको गुजरात प्रान्तीय कांग्रेस कमेटीकी मार्फत चरखा और खादीके प्रचारमें लगानेका इरादा है। इसका विनियोग इस तरह किया जायेगा, जिससे गरीब बहनों और अन्त्यज आदि वर्गोंको प्रोत्साहन मिले।

यह रकम बची है इसके मुख्य कारण तो आप ही हैं। किन्तु इसमें मेरे साथियोंका भाग भी है, यदि मैं यह बात न कहूँ तो मैं उनके प्रति अपने कर्त्तव्यका पालन न करूँगा। स्वामी आनन्दानन्द, जिनके अथक उद्यम और 'नवजीवन'के प्रति अनन्य भक्तिभावसे यह कार्य इतना बढ़ा है, एक पैसा भी नहीं लेते। इस तन्त्रके चलानेमें जो बहुतसे लोग लगे हैं उनमें से अधिकतर केवल निर्वाह योग्य रकम लेकर ही सन्तोष करते हैं। जो लोग 'नवजीवन'में लेख लिखते हैं मुझे क्या उनका नाम भी लेना चाहिए? उनको कोई वेतन नहीं दिया जाता। यदि मौजूदा वेतन दरोंसे इनका वेतन लगाया जाये तो उसकी रकम कमसे-कम १,००० रुपया प्रति मास बनेगी। इसका अर्थ यह है कि यह पाँच वर्षमें ६०,००० रुपये हुई। अब आप देख सकेंगे कि ५०,००० रुपयेकी जो बचत हुई है वह कोई बहुत अधिक नहीं है। यदि 'नवजीवन' के ग्राहक कम न होते, पुस्तक विभागमें इस समय जो घाटा हो रहा है वह घाटा न होता और 'यंग इंडिया' और 'हिन्दी नवजीवन' अपना खर्च स्वयं चलाते होते तो ५०,००० रुपयेकी अपेक्षा कहीं अधिक बड़ी रकम बची होती। आगे जो भी मुनाफा रहेगा उसे हर साल बाँट देनेका इरादा है। स्वामी आनन्दानन्दको तो एक पाई भी बैंकमें रखना पसन्द नहीं। वे मानते हैं और मैं भी उनसे सहमत हूँ कि सार्वजनिक संस्थाओंके पास रकम जमा पड़ी न रहनी चाहिए। जिस तरह हो सके उन्हें ईश्वरीय कानूनके अनुसार चलना चाहिए। ईश्वर जीवोंके लिए रोजका खाद्य रोज तैयार करता है। यदि कितने ही लोग अपनी जरूरतसे ज्यादा रकम जमा

करके न रखें तो संसारमें कोई भूखा न रहे। फिर सार्वजनिक संस्थाओंको स्थायी पूँजीपर जीवित रहनेका अधिकार ही नहीं है। सार्वजनिक संस्थाएँ तभीतक जीवित रहनी चाहिए जबतक वे लोकप्रिय हों। जब लोग उन्हें सहायता देना बन्द कर दें तब उन्हें बन्द ही कर दिया जाना चाहिए।

इस बार [लाभकी रकम खर्च किये बिना ही] पाँच वर्ष बीत गये इसका कारण तो आप समझ ही सकते हैं। मैं जेल गया इससे पहले ही लाभकी इस रकम-को लोकोपयोगी कार्योंमें लगानेकी बात चल रही थी। मेरे लगभग समस्त साथी भी जेल जानेके लिए निकल पड़े, इसलिए लाभकी यह सब रकम बिना खर्चकी हुई पड़ी रही।

इसके साथ ही दूसरी कुछ बातें भी बता दूँ। 'हिन्दी नवजीवन' और 'यंग इंडिया' को घाटा उठाकर दीर्घ कालतक चलानेका कोई विचार नहीं है। मुझे विश्वास है कि यदि 'नवजीवन' के लाभमें से ये पत्र चलाये जायें तो आपको इससे कोई ईर्ष्या न होगी। कदाचित् आप तो यही चाहेंगे कि ये पत्र इस तरह भले ही चलते रहें। किन्तु मेरी मान्यता यह है कि पत्रोंको इस तरह चलानेकी पद्धति बुरी है। इसीलिए मैं पाठकोंको सावधान कर रहा हूँ कि यदि इन पत्रोंका घाटा अधिक समयतक जारी रहेगा तो इन्हें बन्द ही कर देना चाहिए।

पाठको, आप 'नवजीवन' को अपना शौक पूरा करनेके लिए नहीं पढ़ते बल्कि यह जाननेके लिए पढ़ते हैं कि देशमें जो यज्ञ हो रहा है उसमें आपका सेवा-स्थान कहाँ है। यदि 'नवजीवन' के पाठक ही अपना कर्त्तव्य अच्छी तरह समझ लें तो आप यह निश्चित मानें कि स्वराज्य 'हस्तामलकवत्' है।

स्वराज्य प्राप्त करनेके लिए केवल सच्चे और शान्त सिपाहियोंकी जरूरत है। सच्चे कामके लिए कभी पैसेकी तंगी नहीं हो सकती। हमारा हथियार है सूत्र-चक्र — चरखा। हमारा गोला-बारूद है सूतके गोले। एक सज्जन बन्दूकके आकारका चरखा बनाकर मेरे पास रख गये हैं। उसके साथ उन्होंने कारतूसोंसे भरी पेटी भी लगायी है। इस पेटीमें रखी पूनियाँ ही कारतूस हैं। इन महाशयका यह परिश्रम सूचित करता है कि चरखेपर उनका विश्वास कितना गहरा है। हम आजतक स्वराज्य नहीं प्राप्त कर सके, इसका कारण साधनका दोष नहीं बल्कि साधन-विषयक अविश्वास, उद्यमकी कमी और कार्य-दक्षताका अभाव इत्यादि है। 'नवजीवन' इस बातका प्रयत्न करेगा कि आपको ये खामियाँ बार-बार दिखाई जायें और आपने अबतक जितनी देश-सेवा की है उसमें वृद्धि हो। मैं चाहता हूँ कि आप उसमें सहायक हों।

आपका सेवक,

मोहनदास करमचन्द गांधी

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ६-४-१९२४

२९४. टिप्पणियाँ

सब्रका फल मीठा होता है

मैं जानता हूँ कि 'नवजीवन' के पाठक कौंसिल-प्रवेशके सम्बन्धमें मेरे विचार जाननेको उत्सुक हैं। लेकिन अपने विचारोंको प्रकट करना मेरे लिए कोई आसान बात नहीं है। कौंसिलोंमें जाना चाहिए अथवा नहीं, यह सवाल एकदम नया हो तो मैं तुरन्त जवाब दे सकता हूँ कि नहीं जाना चाहिए। उसके खिलाफ मेरा विरोध अब भी कायम है। लेकिन कांग्रेसने[1] कौंसिलोंके चुनाव लड़नेमें लोगोंको छूट दी और जो लोग उसके इच्छुक थे वे उनमें जा भी चुके हैं; ऐसी स्थितिमें क्या करना चाहिए यह प्रश्न पूछना जितना आसान है, इसका उत्तर देनेका काम उतना ही मुश्किल है। इसके अतिरिक्त जो कौंसिलोंमें जानेके पक्षमें हैं, वे जनताके महान् नेता हैं। उन्होंने यह निर्णय कैसे किया, यह बात मुझे उनके मुँहसे ही समझनी चाहिए। उनमें से कईने बड़े-बड़े बलिदान दिये हैं। उनकी सेवा दीर्घ-कालकी है। उनका स्वदेश-प्रेम किसीसे कम नहीं है। इसलिए बहुत अच्छी तरहसे विचार किये बिना मैं इस सम्बन्धमें कुछ भी नहीं कहना चाहता। पाठकोंकी भी वही इच्छा होनी चाहिए। इस सम्बन्धमें मेरे विचारोंका मूल्य भी तो इसी बातसे आँका जायेगा कि उनके पीछे कितना गम्भीर चिन्तन है। इसके अलावा मुझे इस बातका भी ध्यान रखना है कि मैं जानबूझकर तो अपने विचारोंका सरकारके हाथों दुरुपयोग न होने दूँ। इसलिए मैं फिलहाल पाठकोंसे सब्रसे काम लेनेकी प्रार्थना करता हूँ।

हिन्दुओं और मुसलमानोंके बीच अनेक स्थानोंपर जो फूट पड़ गई है उसे पाटना मेरी नम्र रायमें बड़ेसे-बड़ा प्रश्न है। भिन्न-भिन्न मतावलम्बियोंमें जबतक सच्चा प्रेम न हो तबतक स्वराज्य अथवा सुखकी आशा ही नहीं की जा सकती। इसके बिना सब प्रयत्न बेकार हैं, यह मेरा दृढ़ विश्वास है। इस फूटको पाटनेके सम्बन्धमें अपने विचारोंको व्यक्त करनेके लिए मैं स्वयं व्यग्र हूँ, लेकिन इसके सम्बन्धमें भी मैं पाठकोंसे धीरज रखनेकी प्रार्थना करता हूँ। इसके बारेमें भी मुझे पहले नेताओंके साथ चर्चा करनी चाहिए।

नेताओंसे मुलाकात

भारतभूषण पण्डित मालवीयजी, हकीम अजमलखाँ साहब, पण्डित मोतीलालजी आदिसे मैं तथ्योंकी जानकारी प्राप्त कर रहा हूँ। उनके विचारोंको समझनेका प्रयत्न

१. सितम्बर १९२३ में दिल्लीमें हुए कांग्रेसके विशेष अधिवेशनमें स्वराज्य-दलको कौंसिलोंके चुनाव, जो वर्षके अन्तमें होनेवाले थे, लड़नेकी अनुमति दी गई थी। कुछ दिन बाद, जब दिसम्बरमें कोकोनाडामें कांग्रेसका वार्षिक अधिवेशन हुआ उस समय स्वराज्य-दलके निर्वाचित सदस्योंको प्रवेशकी इजाजत दे दी गई थी।

कर रहा हूँ। थोड़े ही दिनोंमें मौलाना मुहम्मद अली आ जायेंगे, इस आशयका उनका तार मिला है। चौथी तारीखके बाद देशबन्धु चित्तरंजन दासके भी आनेकी सम्भावना है। मैं इनसे मुलाकातकी बाट जोह रहा हूँ।

इस बीच

कोई मेरे विचारोंकी बाट देखते हुए बैठा न रहे। मैं कौंसिलोंमें प्रवेशके सम्बन्धमें चाहे जो भी विचार व्यक्त करूँ इससे न तो चरखेकी प्रवृत्तिमें कोई परिवर्तन होगा और न राष्ट्रीय शिक्षामें। इन दोनों कार्योंमें अगर हम अपना सारा समय लगायें तो भी उन्हें न तो तुरन्त पूरा किया जा सकता है और न सुव्यवस्थित बनाया जा सकता है। और यह न हुआ तो हम कभी भी सविनय अवज्ञाके लिए तैयार होनेवाले नहीं हैं।

इसी तरह हिन्दू-मुस्लिम एकताकी मैं भले ही कोई दवा क्यों न सुझाऊँ फिर भी एक-दूसरेके प्रति सच्चा प्रेम रखनेकी जरूरत तो सदा बनी रहेगी, इसमें कोई भी परिवर्तन नहीं होनेवाला है। हमें एक-दूसरेकी सेवा करनी है, उसके सम्बन्धमें कोई भी शंका नहीं होनी चाहिए। इस तरह विचार करनेपर हमें मालूम पड़ेगा कि मैं जब अपने विचारोंको अभिव्यक्त करूँगा तब हमें आज जो कार्य करने हैं उन्हें उस समय और भी दृढ़तासे निभाना होगा। इसलिए जिन्हें मेरे विचारोंके प्रति श्रद्धा है, वे अगर अबतक अपने कर्तव्यके प्रति लापरवाह और आलसी रहे हैं तो उन्हें आलस्य छोड़कर जाग्रत हो जाना चाहिए और अपने कर्तव्यमें जुट जाना चाहिए।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ६-४-१९२४

२९५. गुजरातकी तैयारी

गुजरातका पिछले दो वर्षका इतिहास उसकी कीर्तिको बढ़ानेवाला है। जिस बातसे गुजरातकी कीर्ति हो उससे सारे देशकी कीर्ति भी होती है। हमारा काम ऐसा है कि उसकी जिस बातसे एक प्रान्तको लाभ हो, उससे समस्त भारतवर्षको लाभ होता है। अतः जिस हदतक गुजरात आगे बढ़ा है उस हदतक सारा देश आगे बढ़ा है। वल्लभभाईकी[1] कार्य-दक्षता हरएक काममें दिखाई पड़ती है। जैसे वे हैं वैसे ही उनके साथी हैं। बोरसद-सत्याग्रह उनके उद्यमका उज्ज्वल उदाहरण है।

बोरसद-सत्याग्रह खेड़ा सत्याग्रहसे[2] बहुत ऊँचे दरजेका है। खेड़ाकी जीत केवल मानकी जीत थी। अहमदाबादके मिल-मजदूरोंकी जीत मेरे उपवासके कारण फीकी पड़ गई थी, क्योंकि मिल-मालिकोंपर उस उपवासका नाजायज दबाव पड़ा था।[3]

१. सरदार वल्लभभाई पटेल (१८७५-१९५०)।

२. देखिए खण्ड १४।

३. देखिए खण्ड १४, पृष्ठ २५३-५८।

बोरसदमें तो सत्याग्रहकी ही पूर्ण विजय हुई। उसमें मान और अर्थ दोनोंकी रक्षा हुई और उसमें किसी दूसरे जायज या नाजायज साधनकी खिचड़ी बिलकुल नहीं हुई।

यह भी खयाल करनेकी जरूरत नहीं कि परिस्थिति अनुकूल थी, इसलिए जीत हो गई; क्योंकि गवर्नर[1] भले आदमी निकले। गवर्नरको न्याय करनेके लिए हमें अवश्य धन्यवाद देना चाहिए। परन्तु क्या संगदिल हाकिम बोरसदके शुद्ध आग्रहको दबा सकता था? श्रद्धावान् लोग तो यह भी मानेंगे कि सात्विक कामको करनेवाले लोग भी यदि सात्विक हों तो परिस्थितियाँ अपने-आप अनुकूल हो जाती हैं। सत्याग्रहका कायदा ही यह है कि विरोधीको मित्र बनायें — दूसरे शब्दोंमें सात्विक परिस्थिति उत्पन्न करें।

यदि बोरसदका सत्याग्रह करके गुजरातने विश्राम किया होता तो भी कोई उसकी ओर अँगुली न उठा पाता। परन्तु सत्याग्रहीको आराम कैसा? नित्य नया उद्यम ही उसका 'वेकेशन' है। सत्याग्रहका अर्थ 'अन्तर्दर्शन' भी किया जा सकता है। बोरसदमें लोगोंने 'अन्तर्दर्शन' किया तो उन्हें दिखाई दिया कि बोरसदपर बतौर सजाके जो पुलिस बिठाई गई, उसमें कुछ दोष उसका भी था। एक दोषको देखनेपर दूसरा अपने-आप दिखाई देने लगता है। इसलिए अब वहाँ आन्तरिक सुधारका काम हो रहा है। सरकारसे जूझनेकी अपेक्षा यह काम अधिक कीमती और अधिक कठिन है। सरकारसे लड़कर विजय प्राप्त करना मानो खेतकी निराई थी। अब फसल पैदा करना और उसे काटनेकी मेहनत करना है। उसमें अधिक कठिनाइयाँ हैं, और इसलिए अधिक समयकी जरूरत है। सुनता हूँ, यह काम भी अच्छी तरह चल रहा है। इस कामकी सफलतासे ही बोरसद तहसीलकी जनताकी और स्वयंसेवकोंकी शक्ति और योग्यताकी परीक्षा होगी।

असहयोगके अन्य अंगोंके बारेमें भी गुजरातके विफल होनेकी कोई आशंका नहीं है। असहयोगी स्कूल जितने गुजरातमें हैं उतने अन्य प्रान्तोंमें नहीं हैं। खादी-प्रचार, अस्पृश्यता-निवारण आदिमें गुजरातने काफी-कुछ किया है; दूसरे प्रान्तोंकी तुलनामें उसे शरमाना पड़े, ऐसी बात नहीं है। हिन्दू-मुस्लिम एकतामें भी किसी तरहकी दरार नहीं पड़ी है, यद्यपि मैं देखता हूँ कि आसपासके वातावरणका असर उसके ऊपर भी कुछ हुआ है। इन सारे कार्योंके लिए मैं गुजरातको धन्यवाद देता हूँ। लेकिन साथ ही यह कह देता हूँ कि जो हुआ है उसकी अपेक्षा अभी जो शेष बचा है वह बहुत ज्यादा है। हमारी राष्ट्रीय शालाओंमें जो शिक्षण दिया जा रहा है उसे वस्तुतः राष्ट्रीय बनाना अभी शेष है। शालाएँ भी अभी संख्यामें कम ही हैं। खादी-प्रचार अभी बहुत बढ़ाना है। अभी घर-घरमें चरखेकी स्थापना नहीं हुई है। अन्त्यजोंकी सेवामें काफी कमियाँ दिखती हैं। उसके लिए अनेक उद्यमी, कुशल और चरित्रवान सेवकोंकी आवश्यकता है। जबतक इन सब दिशाओंमें सन्तोषजनक प्रगति नहीं होती तबतक हम चैनसे नहीं बैठ सकते।

१. सर लेस्ली विलसन।

इस तमाम कामका जब मैं विचार करता हूँ, तब जेलकी शान्ति याद आती है। पर मैं जानता हूँ कि यह तो कायरताकी निशानी है। मैं जेलमें था तो लोगोंने मुझे छुड़ानेकी भारी कोशिश की। परन्तु स्वराज्य मिलनेसे पहले छूटकर क्या मुझे शान्ति मिल सकती है? बाहर निकलनेके बाद मैंने इस बातको अधिक अनुभव किया है कि जेलका निवास भी मनोविनोदका एक प्रकार हो सकता है। बाहर आनेपर इन कामोंमें क्या भाग ले सकूँगा — इस बातका विचार करते हुए अपनी कमजोरीकी सुध मुझे दुःख देती और शर्मिन्दा करती है। फिर इस भयसे मेरा दुःख और बढ़ जाता है कि अब मैं बाहर आ गया हूँ इसलिए मुझे छुड़ानेके लिए जो उत्साह लोगोंमें था वह शायद मन्द पड़ जायेगा। अतएव मैं गुजरातके लोगोंको उस चेतावनीकी फिर याद दिलाता हूँ, जो मैंने दो साल पहले दी थी। हमारे तमाम काम स्वराज्यके निमित्त होने चाहिए। जबतक सारा हिन्दुस्तान जेलमें पड़ा है तबतक हम खामोश बैठ ही नहीं सकते। मैं गुजराती भाई-बहनोंसे यह चाहता हूँ कि आपका जो प्रेम मेरे प्रति है, उसे आप स्वराज्य-सम्बन्धी कामोंमें ही लगायें।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ६-४-१९२४

२९६. श्रीमती सरोजिनी और खादी

जब मैं पूनाके अस्पतालमें था तब मुझे पूर्व आफ्रिकासे एक पत्र मिला था। उसमें पूर्व आफ्रिकाके हिन्दुस्तानियोंको खादी पहननी चाहिए या नहीं, इस विषयपर श्रीमती सरोजिनी नायडूके विचार दिये गये थे। पत्र तो खो गया, परन्तु उसमें उद्धृत इन विचारोंका, जिन्हें प्रेषकने श्रीमती नायडूका बताया है, सार इस प्रकार है:

"गांधीजीकी राय है कि खादीका व्रत केवल हिन्दुस्तानके लिए है। विदेशोंमें उसकी जरूरत नहीं है, यही नहीं बल्कि वहाँ उसे छोड़ देना चाहिए और अंग्रेजी लिबास पहनना चाहिए। यदि गांधीजी खुद पूर्व आफ्रिकामें आयें तो वे खादीकी लँगोटी नहीं पहनेंगे, बल्कि श्री वर्माकी तरह विलायती कपड़े पहनेंगे और आपको भी ऐसा ही करना चाहिए।"

मुझे इस बातमें सन्देह है कि श्रीमती नायडूने ऐसी बात कही होगी। पूर्व आफ्रिकी पत्र-लेखकने इन विचारोंके सम्बन्धमें मेरी राय माँगी है। वे लिखते हैं कि पूर्व आफ्रिकामें बहुतसे हिन्दुस्तानी खादीके कपड़े पहनते हैं और खादीकी टोपी भी लगाते हैं। वे सब लोग श्रीमती नायडूके भाषणसे उलझनमें पड़ गये हैं।

मैं मानता हूँ कि खादीका व्रत विदेशोंके लिए नहीं है। विदेशोंमें इस व्रतका पालन बहुत बार नितान्त असम्भव भी हो जाता है। फिर इस व्रतका उद्देश्य है भारतकी आर्थिक आजादी, अतः भारतसे बाहर उसका पालन करनेकी आवश्यकता नहीं। परन्तु मेरी यह राय न तो पहले थी और न अब है कि विदेशोंमें जहाँ खादी आसानीसे पहनी जा सकती है, वहाँ भी न पहनी जाये। मेरा खयाल यह भी है

कि श्रीमती नायडू भी ऐसी राय न देंगी। खादी पूर्व आफ्रिका, अदन आदि प्रदेशोंमें आसानीसे पहनी जा सकती है। वह दक्षिण आफ्रिकामें भी गर्मियोंमें पहनी जा सकती है। मतलब यह है कि गरम मुल्कोंमें खादी पहननेमें दिक्कत नहीं होगी। फिर, घरके अन्दर तो ज्यादातर चीजें खादीकी ही होनी चाहिए।

पर हाँ, मैं यह राय जरूर दूँगा कि यदि हम ऐसे देशमें जायें जहाँ कपास पैदा होती हो और खादी बनती हो तो वहाँ हमें वहींका बना कपड़ा पहनना चाहिए। जो नीति हम भारतके लिए चाहते हैं वही दूसरे देशोंके लिए भी होनी चाहिए। जिस प्रकार यहाँ आनेवाले विदेशियोंको इस देशमें जो सामान मिलता है उसीका इस्ते-माल करना अभीष्ट है, उसी प्रकार हमें भी दूसरे देशोंमें करना चाहिए। पूर्व आफ्रिका आदि देशोंमें तमाम कपड़ा विदेशोंसे ही आता है। हमने कभी नहीं सुना कि वहाँ कपड़ा बनता है। अतः हमें वहाँ खादी इस्तेमाल करनेका अधिकार है, यही नहीं बल्कि मेरी मान्यता है कि उसे भरसक इस्तेमाल करना हमारा धर्म है। सत्याग्रह-संग्रामके दरम्यान ज्यों-ज्यों मेरे विचार पुष्ट होते गये और ज्यों-ज्यों मैंने सादगी और गरीबीकी ज्यादा जरूरत देखी त्यों-त्यों मैं सादगी अखत्यार करता गया और अन्तमें हिन्दुस्तानसे आनेवाला कपड़ा पहनने लगा तथा मैंने अपना लिबास हिन्दुस्तानी मजदूरकी तरह बना लिया। उसके बाद मैंने यही लिबास, अर्थात् मद्रासियों-जैसी लुंगी और कुरता पहना। मैं जाड़ेमें मोटे लट्ठेके दो कुरते पहनता। टोपी छोड़ दी थी। मैं इसी लिबासमें तमाम हाकिमोंसे मिलता था। परन्तु इससे मेरे अंग्रेज मित्रों अथवा हाकिमोंको बुरा लगा हो, यह मैंने नहीं देखा। मैं मजदूरोंकी ओरसे लड़ाई लड़ रहा था। मुझे उनके जीवन और लिबासका अनुकरण करते हुए देखकर कितने ही अंग्रेज मित्र धन्यवाद भी देते थे। यहाँ यह सब कहनेका मतलब इतना ही है कि यदि हम विदेशोंमें इतने ही कपड़े पहनें, जिनसे हमारे अवयव ढक जायें तो पर्याप्त है।

श्रीमती नायडूके भाषणके प्रेषित अंशमें एक मुद्दा ध्यान देने योग्य है। उनके भाषणका सम्बन्ध हमारी कुटेवोंसे था। उसमें हमारी गन्दगी और भोंडेपनका वर्णन था। अंशतः यह आरोप सच है। लिबास खादीका हो अथवा दूसरे कपड़ेका परन्तु यदि वह मैला, और भोंड़ा हो तो आँखोंको अच्छा नहीं दिखाई देता। सुघड़ताकी जरूरत शृंगारके लिए नहीं बल्कि स्वच्छता और शिष्टताके लिए है। उसी लिबासको एक मनुष्य भद्दे तरीकेसे पहने तो वह भोंडा मालूम होता है और इसी को दूसरा ठीक तरहसे पहने तो सुघड़ मालूम होता है। इससे मर्यादाका पालन होता है और दूसरोंके प्रति आदर-भाव व्यक्त होता है। हमें इसमें गफलत न करनी चाहिए। शिष्टतायुक्त सुघड़ता और शृंगारमें बहुत थोड़ा अन्तर है। परन्तु उस अन्तरको कायम रखनेकी बड़ी जरूरत है। मेरे कहनेका यह आशय बिलकुल नहीं है कि हम प्रत्येक क्षण आईनेमें देखकर अपनी वेष-भूषा ही ठीक किया करें। पूर्व आफ्रिकाके लोगोंके सम्बन्धमें तो मुझे ऐसा डर भी नहीं है। तो हम जो कपड़े पहनें उनमें मैल जरा भी न होना चाहिए। सफेद खादीके कपड़े नित्य धोये जाने चाहिए। हम हिन्दुस्तानमें तो एक छोटी-सी धोती पहनकर मर्यादाका पालन कर सकते हैं। हिन्दुस्तानकी उत्कृष्ट

सभ्यता तो ऐसी है कि मेरे जैसोंका मात्र-लँगोटी पहनना भी अशिष्ट नहीं माना जाता। यहाँ लिवाससे परीक्षा नहीं होती। परन्तु दूसरे देशोंमें लँगोटी काम नहीं दे सकती। यदि मुझे विदेशोंमें जाना पड़े तो मैं लँगोटीको खुशीसे सन्दूकमें वन्द करके रख दूँगा। दूसरे देशोंमें घुटनोंतक पाँवोंको ढकनेकी जरूरत मालूम होती है। 'जैसा देश वैसा भेस' यह कहावत सर्वथा निरर्थक नहीं है। यदि हम विना जरूरत ऐसा काम करें जिससे दूसरे देशोंके लोगोंके मनको आघात पहुँचे तो इसे सव लोग अशिष्ट ही कहेंगे। मैं इसे हिंसा कहूँगा। अशिष्टतामें हिंसा होती ही है।

पूर्व आफ्रिकाके पत्रपर विचार करते हुए यहाँ मैं यह भी वता दूँ कि वहाँ खादी-प्रचार किस तरह किया जा सकता है। पूर्व और दक्षिण आफ्रिकामें सिले हुए कपड़े वहुत जाते हैं। वहाँके आदिम निवासियों तथा हिन्दुस्तानियोंके इस्तेमालके कपड़े यहाँसे वनवाकर ले जाये जा सकते हैं। वहाँके होशियार व्यापारी थोड़ा प्रयत्न करें तो लाखों रुपयेकी खादी वड़े मजेमें वेच सकते हैं। हिन्दुस्तान अभी उतनी खादी तैयार नहीं करता जितनी उसके लिए जरूरी है। खादीकी वुनाई और विक्री अभी सिन्धुमें विन्दुके वरावर है; यह मैं न जानता होऊँ सो वात नहीं। किन्तु खादी-प्रचार अभी इतना मन्द है कि कितनी ही जगह खादी भरी पड़ी है। यह वात कितनी आश्चर्यजनक और कितनी दुःखजनक है। इसीका विचार करके मैंने पूर्वोक्त सुझाव दिया है। गुजरातमें जमा खादी तो दक्षिण-आफ्रिकाका एक ही व्यापारी आसानीसे ले जा सकता है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ६-४-१९२४

२९७. अस्पृश्यता और दुरदुरानेकी मनोवृत्ति

हिन्दुओंके पापका पुंज कोई छोटा-मोटा नहीं है। शास्त्र परमार्थकी शिक्षाके लिए हैं किन्तु हमने उन्हें स्वार्थका साधन वना दिया है। शास्त्रमें निहित शाश्वत सिद्धान्तोंको छोड़कर हमने उनके उन श्लोकोंको स्थायी रूप प्रदान किया है जो केवल अस्थायी व्यवहारके लिए उपयोगी थे और इस तरह दुराचारको धर्मके स्थानपर प्रतिष्ठित कर दिया है। मेरी आत्मा इस वातकी दिन-प्रतिदिन अधिक साक्षी देती जाती है कि अस्पृश्यता एक ऐसा ही दुराचार है। और मानो अस्पृश्यताका पाप पर्याप्त न हो, उसकी इस कमीको दूर करनेके लिए अव उन्हें दूर रखनेके पापकी खोज की गई है। दक्षिणमें अर्थात् मद्रासमें तो उस पापसे लोग परिचित हैं। लेकिन इन दुरदुराये जानेवाले लोगोंकी सेवाके लिए और अपने पापके प्रायश्चित्तके लिए, कांग्रेसके स्थानिक हिन्दू सदस्योंने त्रावणकोरमें सत्याग्रह आरम्भ किया है।[1] त्रावणकोर हिन्दू राज्य है। वहाँ अस्पृश्योंको दूर रखनेका यह पाप पूरे जोरके साथ फैला हुआ है।

१. वाइकोममें हिन्दूके प्रतिनिधिने इस सत्याग्रहके सम्बन्धमें गांधीजीसे भेंट की थी और गांधीजीने १७ मईको वाइकोम सत्याग्रह समितिके प्रतिनिधियोंसे बातचीत की थी।

इसका अर्थ भी अनेक गुजराती नहीं जानते होंगे। शब्दकोषमें उसके लिए कोई शब्द भी नहीं है। शास्त्रोंमें हो भी कैसे सकता है? उसका अर्थ है अस्पृश्य लोगोंका अन्य हिन्दुओंसे अमुक दूरीपर रहना तथा चलना। अस्पृश्योंकी छाया-मात्रसे अन्य हिन्दू और मुख्य रूपसे ब्राह्मण अपवित्र हो जाते हैं, इस मान्यताके कारण उन्हें जहाँ ब्राह्मण आदि चलते हों उन रास्तोंपर चलते हुए अमुक गजके अन्तरपर चलना पड़ता है। यदि वे ऐसा न करें तो उनपर गालियोंकी बौछार और मार भी पड़ सकती है। त्रावण-कोरमें कितने ही ऐसे रास्ते भी हैं जहाँ इन बेचारोंको प्रवेश भी नहीं करने दिया जाता। इस असहनीय दूषणसे दुःखी होकर, जैसा ऊपर कहा गया है, वहाँकी कांग्रेसके हिन्दुओंने सत्याग्रह आरम्भ किया है। ये दुरदुराये जानेवाले हिन्दू जिस रास्तेपर चलनेके अपने अधिकारको सिद्ध करना चाहते हैं उस रास्तेपर एक इतर हिन्दूको लेकर प्रवेश करते हैं। इस तरहसे हमेशा तीन-तीन व्यक्ति एक साथ जाते हैं और पकड़े जाते हैं। इस तरीकेसे तीन व्यक्ति पकड़े जा चुके हैं और छः महीनेकी सजा भोग रहे हैं। यदि यह सत्याग्रह शान्तिपूर्वक और लगातार चलता रहा तो लोगोंकी जय होगी, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।

उत्तर हिन्दुस्तानमें इस दोषको दूर करनेके लिए जुटे हुए हिन्दू इससे भी बहुत आगे बढ़ गये हैं। भारतभूषण मालवीयजीकी मददसे और उनके नेतृत्वमें अन्त्यज हिन्दू कुँएसे पानी भरते हैं। अस्पृश्यताका दोष तो, मालूम होता है, अनेक स्थानोंपर नष्ट हो गया है। अब अस्पृश्य माने जानेवाले भाइयोंको कुँएका उपयोग करनेकी सुविधा मिलने लगी है। दाहोद ताल्लुकेके मन्त्रीने ऐसी एक घटनाका समाचार दिया है।[1] वे लिखते हैं कि स्थानीय बोर्डके कुँएसे अन्य हिन्दू अन्त्यजोंको पानी नहीं भरने देते थे। एक बुनकरने, जिसने वर्नाक्यूलरकी अन्तिम परीक्षा पास की है, इस कुँएसे पानी भरनेकी हिम्मत की और अपने अन्य जाति-भाइयोंको समझाया। वे समझ गये और कुँएसे पानी भरने गये। अन्त्यजेतर हिन्दुओंने विरोध करनेका प्रयत्न किया लेकिन सब-इन्स्पेक्टरने उनकी मदद नहीं की और उन्हें समझाया कि जब सारे देशमें इस प्रतिबन्धके विरुद्ध आन्दोलन चल रहा है तब उन्हें इसका विरोध नहीं करना चाहिए। फलस्वरूप अन्त्यजेतर हिन्दू भाई शान्त हुए। बात अच्छी तरह निपट गई कही जा सकती है। लेकिन इस घटनासे पता चलता है कि अभी गुजरात-में भी अन्त्यज भाइयोंको सार्वजनिक कुँओंसे पानी भरनेसे रोका जाता है। दाहोदके हिन्दू भाइयोंको मैं बधाई देता हूँ, लेकिन साथ ही दाहोद समितिको सुझाव देता हूँ कि वे लोग अन्त्यजवाड़ेमें जाकर उन्हें सफाईका बोध करायें, घड़ा आदि साफ रखनेकी सलाह दें। यदि ये सुधार इसके साथ ही नहीं हुए तो यह जो शुभ आरम्भ हुआ है, इसी बीच सम्भव है कि अन्त्यजोंको पानी भरने देनेकी बातका विरोध फिरसे होने लगे। मैंने सुना है उत्तरमें कई जगह ऐसी घटनाएँ हुई भी हैं।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ६-४-१९२४

१. बादमें यह समाचार गलत पाया गया था। देखिए "भूल-सुधार", २७-४-१९२४

२९८. पत्र: एलिजाबेथ शार्पको

पोस्ट अन्धेरी
६ अप्रैल, १९२४

प्रिय कुमारी शार्प,

आपके हार्दिक और स्पष्ट पत्रके लिए धन्यवाद।

मैं जानता हूँ कि आपने जो विविध प्रश्न[1] उठाये हैं, उनके विषयमें आप मुझसे किसी चर्चाकी अपेक्षा नहीं रखतीं; बल्कि आप चाहती हैं कि मैं उनपर मनन करूँ। मैं निश्चय ही उनपर मनन करूँगा। किन्तु मुझे आपसे यह बात नहीं छिपानी चाहिए कि आपके और मेरे दृष्टिकोणमें मौलिक अन्तर है। किन्तु जबतक हम सत्य-शोधक बने रहते हैं तबतक इससे कुछ बनता-बिगड़ता नहीं।

हृदयसे आपका,

कुमारी एलिजाबेथ शार्प
श्रीकृष्ण निवास
लीम्बडी
काठियावाड़

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ८६८४) की फोटो-नकलसे।

१. कुमारी एलिजाबेथ शार्पने अपने ३ अप्रैलके पत्रमें गांधीजीसे अनेक प्रश्न किये थे:

"... क्या आप समझते हैं कि आपने भारतीयोंके हृदयमें अपने प्रति अन्यायकी दुःखद भावना — सत्य या कल्पित — उत्पन्न करके भारतका कोई हित किया है? क्या आप समझते हैं कि श्रीमती नायडूके 'घृणा' उत्पन्न करनेवाले उत्तेजक भाषण कोई 'सु' कर्म हैं? क्या आप समझते हैं कि गलत काम करते चले जानेका परिणाम अच्छा निकल सकता है? क्या लौकिक सत्ताको पाकर भारत अपनी आध्यात्मिकतासे हाथ नहीं धो बैठेगा? क्या आप यह अनुभव नहीं करते कि भारत अपनी भौतिक दरिद्रताके कारण ही आध्यात्मिक दृष्टिसे समृद्ध है? क्या आप यह अनुभव नहीं करते कि मनुष्य ईश्वर और शैतान दोनोंकी साथ-साथ पूजा नहीं कर सकता? यह कितने बड़े दुःखकी बात है कि भारतीयोंकी जो शक्ति कभी 'ब्रह्मदर्शन' में लगती थी वह उन्मादवश व्यर्थ नष्ट की जा रही है। अब भी संसारमें भारत ही ऐसा एक स्थान है जहाँ शान्त और स्थिर मनसे हम सांसारिकताका त्याग कर सकते हैं।... यहाँ हम चाहे जहाँ आने-जाने, भिक्षावृत्ति और प्रेम एवं अपने-अपने ढंगसे ईश्वरकी खोज करनेके लिए स्वतन्त्र हैं। क्या यह स्वतन्त्रता सर्वाधिक बड़ी स्वतन्त्रता नहीं है? आपका जीवन सच्चा जीवन है और आपमें भलाई करनेकी अपार शक्ति है। आप कृपा करके इस पृथ्वीपर मनुष्यकी दशाकी बिलकुल चिन्ता न करें। यह तो उनके पिछले पाप कर्मोंका फल है। आप उनके आत्मिक उद्धारका ही ध्यान रखें और उनके सांसारिक बन्धनोंको काटें। मैं यह बात आपको इसलिए लिखती हूँ कि आप भारतीय होनेसे इसे पूरी तरह समझ पायेंगे। पश्चिमके लोग मेरी बातके मर्मको बिलकुल नहीं समझेंगे क्योंकि वे तो केवल इस जन्ममें ही विश्वास करते हैं...।" (एस० एन० ८६८६)

२९९. पत्र : जोजेफ वैप्टिस्टाको

पोस्ट अन्धेरी
६ अप्रैल, १९२४

प्रिय श्री वैप्टिस्टा[1],

आपके ५ तारीखके पत्रके[2] लिए धन्यवाद।

मैंने आपका पत्र मिलनेपर आपको उत्तर तुरन्त लिखा दिया था। सोमवारकी भाँति वुधवार भी मेरा मौन-दिवस है। आपका यह कहना विलकुल ठीक है कि मेरे विचार लगभग पहले जैसे ही वने हैं। साथ ही यदि आपको अगले रविवारके वाद समय मिल सके तो सोमवार और वुधवारको छोड़कर अन्य किसी भी दिन सायंकाल ५ और ६ वजेके वीच मुझे आपसे मिलनेमें प्रसन्नता होगी।

हृदयसे आपका,

श्री जोजेफ वैप्टिस्टा
मथारपकाडी
मजगाँव, वम्वई

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ८६८५) की फोटो-नकलसे।

३००. पत्र : सरदार गुरुवख्शसिंह गुलाटीको

पोस्ट अन्धेरी
६ अप्रैल, १९२४

प्रिय सरदार गुरुवख्शसिंह[3],

आपका ३ तारीखका पत्र पाकर खुशी हुई और जो मित्र आपके आ जानेपर अभी तक जेलमें हैं उनके समाचार पढ़कर भी वड़ी प्रसन्नता हुई। मुझे उन सवका और कवीश्वरके साथ हुई वातचीतका स्मरण है।

१. होमरूल आन्दोलनसे सम्वन्धित एक राष्ट्रवादी नेता।

२. यह उपलब्ध नहीं है। इससे पहलेके ८ फरवरीके पत्रमें वैप्टिस्टाने लिखा था कि मैं जल्दी ही इंग्लैंड जा रहा हूँ, विशेष रूपसे इस वातको देखते हुए मैं आपसे मिलना और कुछ राजनीतिक मामलोंपर वातचीत करना चाहता हूँ।

३. मूलमें यहाँ 'गुरुवक्शसिंह' है, जो स्पष्ट ही टाइपकी भूल है।

आपने मेरे स्वास्थ्यके सम्बन्धमें पूछताछकी, इसके लिए मैं आपका आभारी हूँ। मेरे स्वास्थ्यमें काफी सुधार हुआ है। मैं रोज थोड़ा व्यायाम कर लेता हूँ और शक्ति दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

सरदार गुरुबख्शसिंह गुलाटी
मार्फत लाला अमृतलाल सेठी
गुजरांवाला

अंग्रेजी पत्र (एस० एन० ८६८६) की फोटो-नकलसे।

३०१. पत्र : श्रीमती एम० जी० पोलकको

पोस्ट अन्धेरी
६ अप्रैल, १९२४

प्रिय श्रीमती पोलक[1],

इतने वरसोंके बाद तुम्हारी वही लिखावट, तुम्हारी वही भाषा और वही विचार देखनेको मिले। चित्त प्रफुल्लित हो गया। तुमने वाल्डोके सम्बन्धमें जो-कुछ लिखा है उससे ऐसा लगता है कि यदि वह मुझे अचानक मिल जाये तो मैं उसे पहचान नहीं पाऊँगा। आशा है, वह परीक्षामें उत्तीर्ण हो जायेगा और उसे नौसेनामें कोई उपयुक्त नौकरी मिल जायेगी।

तुमने माँ[2] और मॉडके[3] बारेमें जो-कुछ लिखा उसे पढ़कर मुझे बहुत दुःख हुआ है। आशा करता हूँ कि इस पत्रके पहुँचने तक वे स्वस्थ हो जायेंगे। मैं तुमसे एमीके सम्बन्धमें पूछना भूल गया और तुमने भी उसके सम्बन्धमें कोई समाचार नहीं दिया। शायद तुम्हें नहीं मालूम कि एन्ड्रयूज इस रमणीक स्थानमें अब भी मेरे साथ हैं और माँकी तरह स्नेहपूर्वक मेरी देखभाल कर रहे हैं। रामदास और देवदास भी यहीं हैं। यह जगह एक छोटा अस्पताल ही बन गई है। मगनलालकी लड़की राधाके फेफड़ोंमें सख्त सोजिश आ गई थी। वह यहीं है और अब उसकी अवस्था सुधर रही है। इस कुटीर चिकित्सालयमें एक रोगी वल्लभभाई पटेलकी पुत्री है। उसे तुम नहीं जानतीं। यहाँ आचार्य कृपलानीकी बहन भी दाखिल है। तुम उससे भी परिचित नहीं हो। चौथा है छगनलालका पुत्र प्रभुदास; किन्तु वह बिस्तरमें नहीं पड़ा

१. एच० एस० एल० पोलककी पत्नी मिली ग्राहम पोलक।
२. पोलककी माँ।
३. पोलककी बहन।

है। राधाकी माँ और बहन भी यहीं हैं। इस तरह तुम देखती हो कि यहाँ हमारा परिवार खासा बड़ा हो गया है।

एन्ड्रयूजने मुझे बताया है कि हेनरी काफी मोटा-ताजा हो गया है। क्या जाने, वह अचानक आ जाये तो मैं उसे पहचान सकूँगा या नहीं। मैं इस प्रतीक्षामें हूँ कि . . .।

मैं यथासम्भव प्रगति कर रहा हूँ। एन्ड्रयूज मुझे सायंकाल समुद्र तटपर घुमाने ले जाते हैं।

तुम सबको प्यार,

तुम्हारा,

श्रीमती एम० जी० पोलक
३३, मोव्रे रोड
बर्न्सबरी
लन्दन, एन० डब्ल्यू०

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ८६८७) की फोटो-नकलसे।

३०२. पत्र: जॉर्ज जोजेफको

पोस्ट अन्धेरी
६ अप्रैल, १९२४

प्रिय जोजेफ,

तुमने अपनी पत्नीको डाक्टर राजन्की देख-रेखमें रखनेका निश्चय किया है, इससे मुझे प्रसन्नता हुई। वे एक निपुण चिकित्सक हैं और मुझे विश्वास है कि उनकी देख-रेखमें तुम्हारी पत्नीकी सेवा-शुश्रूषा भली-भाँति होती रहेगी।

यदि तुम अपने जिलेमें कपासकी खेती करा पाओ तो यह एक शानदार बात होगी। यदि तुम कपास उगानेवाले निकटतम जिलेसे कपास न मँगाना चाहो तो मेरा सुझाव यह है कि तुम कपड़ा बुनना और जहाँसे भी हाथका कता सूत मिल सके वहाँसे सूत मँगाना आरम्भ कर दो।

वाइकोम [सत्याग्रह] के सम्बन्धमें मेरा यह मत है कि इस कामको तुम हिन्दुओंपर ही छोड़ दो। आत्मशुद्धि उन्हींको करनी है। तुम इस सम्बन्धमें सहानुभूति दिखाकर और लेखादि लिखकर उनकी सहायता कर सकते हो, किन्तु तुम्हें आन्दोलनका संगठन करके उनकी सहायता नहीं करनी चाहिए और सत्याग्रह करके तो कदापि नहीं। यदि तुम नागपुर कांग्रेसके प्रस्तावको देखो तो तुम्हें पता चलेगा कि उसमें हिन्दू सदस्योंसे अस्पृश्यताके अभिशापको दूर करनेका अनुरोध किया गया है। सीरियाई ईसाइयों-में भी इस रोगकी छूत लग गई है, श्री एन्ड्रयूजसे यह जानकर मुझे आश्चर्य हुआ।

तुमको और तुम्हारी पत्नीको मेरा स्नेह,

हृदयसे तुम्हारा,

श्रीयुत जॉर्ज जोसेफ
कुजुवाकुरम्
चेंगानूर (त्रावनकोर)

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ८६८८) से।

३०३. पत्र : हरिभाऊ पाठकको

पोस्ट अन्धेरी
६ अप्रैल, १९२४

प्रिय हरिभाऊ,

मैं साथमें लोकमान्यसे अपनी बातचीतका एक संस्मरण भेजता हूँ।

हृदयसे तुम्हारा,
मो० क० गांधी

श्रीयुत हरिभाऊ पाठक
मन्त्री
नगर कांग्रेस कमेटी
पूना

[संलग्न]

मुझे लोकमान्यसे मिलनेका बीसियों बार सौभाग्य प्राप्त हुआ था। मुझे उनसे परिचयका प्रथम अवसर १८९६ में उस समय मिला[1] जब मैं नेताओंके प्रति अपना सम्मान व्यक्त करने और दक्षिण आफ्रिकाके भारतीय प्रवासियोंके मामलेमें उनकी सहायता माँगनेके लिए पूना आया था। उनसे मेरी अन्तिम भेंट बम्बईमें हुई थी। तब उत्तर भारतके दौरेपर रवाना होनेसे पहले मैं और मौलाना शौकत अली सरदारगृहमें उनसे मिले थे। जब हम दौरेसे लौटे तब हमें यह खबर मिली कि लोकमान्य तो बहुत ज्यादा बीमार हैं। मैं उनके दर्शन करने गया किन्तु इतना ही हो सका। हमारी कोई बातचीत नहीं हुई। मैं केवल पिछली बारका संस्मरण समयानुकूल होनेके कारण यहाँ देना चाहता हूँ। उन्होंने हिन्दुओं और मुसलमानोंके सम्बन्धमें मौलानाकी ओर मुँह करके कहा था : "गांधी जो-कुछ कह रहे हैं मैं उसीपर हस्ताक्षर कर दूंगा, क्योंकि इस प्रश्नपर मेरा उनमें पूरा विश्वास है।" असहयोगके सम्बन्धमें उन्होंने मुझसे जो बात पहले कही थी वही विशेष रूपसे फिर कही, "मैं इस कार्यक्रमको

१. देखिए खण्ड २, पृष्ठ १४७

वहुत पसन्द करता हूँ, किन्तु उसमें लोगोंको जवरदस्त त्याग करनेका जो हुक्म दिया गया है उसे देश मानेगा या नहीं, इस सम्वन्धमें मुझे सन्देह है। मैं ऐसा कोई काम करना नहीं चाहता जिससे आन्दोलनकी प्रगतिमें वाधा आये। मेरी कामना है कि आपको पूर्ण सफलता मिले। यदि लोगोंने आपकी वात सुनी तो मैं उत्साहपूर्वक आपका समर्थन करूँगा।"

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ८६८९) की फोटो-नकलसे।

३०४. पत्र : इब्राहीम रहमतुल्लाको

पोस्ट अन्धेरी
६ अप्रैल, १९२४

प्रिय सर इब्राहीम रहमतुल्ला,

मैं आज आपसे मिलनेकी प्रतीक्षा कर रहा था। आप नहीं आ सके इसका मुझे दुःख है; किन्तु आप अस्वस्थ होनेके कारण नहीं आ सके यह जानकर मुझे और अधिक दुःख हुआ है। मुझे आशा है कि आप जल्दी ही अच्छे हो जायेंगे। मेरा कलका दिन खाली है, क्योंकि मैं रातको देर गये तक मौन रखता हूँ। वुधवार मेरा दूसरा मौन दिवस है। सप्ताहमें मेरे अन्य दिन भरे रहते हैं। क्या मैं फिलहाल रविवारको छः वजे सायंकालका समय नियत मान लूं?

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

सर इब्राहीम रहमतुल्ला
वम्वई

अंग्रेजी पत्र (एस० एन० ११४०२) की फोटो-नकलसे।

३०५. पत्र : मगनलाल गांधीको

रविवार, सुबह ३-३० बजे
[६ अप्रैल, १९२४ या उसके पश्चात्][1]

चि० मगनलाल,

इस चिट्ठीके साथ जो पत्र हैं उसमें राधा तथा कीकी वहनके[2] वारेमें कुछ खवरें मिलेंगी। राधाको मानसिक व्याधिने अच्छी तरह जकड़ लिया है। थोड़ी वातें की हैं। समय मिला तो खूव करूँगा। तीनों वीमारोंकी चारपाइयाँ खुलेमें मेरे पास पड़ी हुई हैं।

तुमने 'मराठा' में जो लिखा है, उसके विषयमें 'यंग इंडिया' में लिखनेकी वात सोच रहा हूँ। जव हम वातें करेंगे, तव अधिक स्पष्ट हो सकेगा। जो थोड़ा-वहुत सोचा है उससे तो ऐसा ही लगता है कि हमारा काम केवल हाथ कते सूतको वुनने-वालोंको रोजी देना ही है।

वापूके आशीर्वाद

मूल गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ५७८६) की फोटो-नकलसे।
सौजन्य : नारणदास गांधी

३०६ तार : गोपाल कुरुपको

[वम्वई
६ अप्रैल, १९२४ या उसके पश्चात्][3]

[पण्डित गोपाल कुरुप
तिरुवाला
त्रावणकोर]

समर्पणकी अनुमति कोई विरला ही माँगता है।

गांधी

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ८६८०) की फोटो-नकलसे।

१. गांधीजीने सप्ताहिकोंमें नियमित रूपसे लिखना ३ अप्रैल, १९२४के वादसे आरम्भ किया था। इसके अनुसार पहला रविवार ६ अप्रैलको पड़ा था।

२. जे० वी० कृपलानीकी वहन।

३. यह गोपाल कुरुपके ५ अप्रैल, १९२४को त्रावणकोरसे प्रेषित और ६ अप्रैलको प्राप्त इस तारके उत्तरमें भेजा गया था: "अपनी मलयालमकी पुस्तक **स्वराज्य गीता** आपको समर्पित करना चाहता हूँ। कृपया आशीर्वाद और अनुमति दें।"

२०७. पत्र : महादेव देसाईको

सोमवार, ७ अप्रैल, १९२४

भाईश्री महादेव,

मैं तुम्हें सूचीके अनुसार सामग्री भेज रहा हूँ। इसमें भाषा, व्याकरण आदिकी जो भूलें ध्यानमें आयें उन्हें ठीक कर लेना। मैंने काफी पूछताछ करवा ली है। यदि तुम किसी चीजको छोड़ना आवश्यक समझो तो 'जेलके अनुभव' ही छोड़ना।

मेरी और एन्ड्रयूजकी दक्षिण आफ्रिकाके सम्बन्धमें एसोसिएटेड प्रेसको दी गई भेंट शामिल न करना। जो चीज दूसरी जगह छप चुकी है मेरे खयालसे उसको संरक्षित रखनेका यह तरीका ठीक नहीं है। ऐसे लेखोंकी एक अलग फाइल रखी जा सकती है अथवा वे 'यंग इंडिया' से सम्बन्धित साप्ताहिक फाइलमें रखे जाने चाहिए।

चूँकि 'जेलके अनुभव' का प्रकाशन आरम्भ कर दिया गया है, मुझे उसे जारी रखना चाहिए। अधिक पीछे लिखूँगा। मैंने कहा था कि यदि सम्भव हुआ तो सत्याग्रह-सप्ताहके सम्बन्धमें गुजरातीमें लेख लिखूँगा। किन्तु अब तुम 'नवजीवन' के परिशिष्टमें 'यंग इंडिया' की अंग्रेजी टिप्पणीका अनुवाद दे सकते हो।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च:]

यदि 'जेलके अनुभव' छोड़नेके बाद भी इस सप्ताह तुम्हारे पास जरूरतसे ज्यादा सामग्री हो तो तुम 'यूनिटी'[1] के लेखको अगले सप्ताहमें ले सकते हो। मुहम्मद अलीके सम्बन्धमें लिखे गये लेखको अग्रलेखके रूपमें छापना। टिप्पणियाँ जिस क्रमसे रखी गई हैं उसी क्रमसे देनेका प्रयत्न करना; किन्तु बदलना चाहो तो बदल भी सकते हो।

मूल गुजराती पत्र (एस० एन० ८६९६) की फोटो-नकलसे।

१. शिकागोके इस मासिक पत्रके लेखसे लिये गये गांधीजीके उद्धरण। और उसके सम्बन्धमें की गई गांधीजीकी टिप्पणीके लिए देखिए "असहयोग हिंसाका तरीका नहीं है", १०-४-१९२४।

३०८. तार: डा० प्राणजीवन मेहताको[1]

[८ अप्रैल, १९२४]

प्राणजीवन
रंगून

मणिलाल अहमदाबादसे आज रवाना।

गांधी

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ८६९२) की फोटो-नकलसे।

३०९. पत्र: जयशंकर त्रिवेदीको

अन्धेरी
चैत्र सुदी ४ [८ अप्रैल, १९२४][2]

भाईश्री जयशंकर त्रिवेदी[3],

आपको पत्र लिखूं-लिखूं कर रहा था कि इतनेमें आपका पत्र मिल गया। आपको पहले पत्र नहीं लिख सका इसके लिए मैं लज्जित हूँ। लिखना तो इतना ही था कि मैं आपके प्रेमको भूल नहीं सका हूँ। मैंने ऐसे लोग दुनियामें कम ही देखे हैं जो अहंकार छोड़कर दूसरोंकी भलाई करते हैं। आप उन्हींमें से हैं। मैं बरसोंसे यह देखता आ रहा हूँ और उससे मुझे प्रसन्नता होती रही है।

आपने मोटरगाड़ी खरीद ली, यह अच्छा किया।

मोहनदासके वन्देमातरम्

मूल गुजराती पत्र (जी० एन० ९९८) की फोटो-नकलसे।

१. यह मणिलालके ७ अप्रैल, १९२४ को दिये गये निम्न तारके सम्बन्धमें दिया गया था: "कल दिल्लीके रास्ते रंगूनको रवाना हो रहा हूँ। कृपया बर्माके भारतीयों, मुख्यतः गुजरातियों और बर्मियों, के नाम कोई सन्देश भेजें, मार्फत सेठ जमनालालजी, १२८, कैनिंग स्ट्रीट, कलकत्ता।"

२. १९२४ में चैत्र सुदी चतुर्थी ८ अप्रैल को थी।

३. पूनाके कृषि कालेजमें कृषि-सम्बन्धी इंजीनियरीके प्राध्यापक।

३१०. पत्र : परसरामको

चैत्र शुक्ल ४ [८ अप्रैल, १९२४]

चि० परसराम,

तुमारा खत मीला। मैंने कुछ तार तो कान्फरेंसमें भेजा था। कुछ परिणाम आया? अब तुमारा काम नियमबद्ध होगा।

बापुके आशीर्वाद

परसराम मेहरोत्रा
स्पिनिंग स्कूल
फीलखाना
कानपुर

मूल पत्र (जी० एन० ८७७९) की फोटो-नकल तथा सी० डब्ल्यू० ६२०२ से।
सौजन्य : परशुराम मेहरोत्रा

३११. तार : के० नम्बूद्रीपादको

अन्धेरी
[८ अप्रैल, १९२४ या उसके पश्चात्][1]

मेनन माधवन्को गिरफ्तारीपर बधाई। लड़ाई अन्ततक चलाये जानेकी आशा करता हूँ।

गांधी

अंग्रेजी पत्र (एस० एन० १०२७०) की फोटो-नकलसे।

१. यह के० नम्बूद्रीपादके ८ अप्रैल, १९२४ को प्राप्त निम्न तारके उत्तरमें दिया गया था : "अय्यर बन्धुओंकी बात ठीक नहीं। आन्दोलन आज पुनः आरम्भ। केशव मेनन, माधवन् सत्याग्रह करके गिरफ्तार। दूसरे जत्थे प्रतिदिन जायेंगे।"

३१२. पत्र : फूलचन्द के० शाहको

अन्धेरी
चैत्र सुदी ५ [९ अप्रैल, १९२४]

भाईश्री ५ फूलचन्द,

भाई चुनीलालने मुझे अपनी शालाके विषयमें लम्बा पत्र लिखा है। उसमें आपके ऊपर निश्चित आक्षेप हैं। आप उनसे मिलकर उनकी शिकायतोंको समझें और उन्हें सन्तुष्ट करें; फिर मुझे लिखें। इस तरह आपसे जितना माँग सकता हूँ, उतना ही माँग रहा हूँ।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० २८७५) की प्रतिसे।
सौजन्य : शारदाबहन फू० शाह।

३१३. पत्र : स्वामी आनन्दको

बुधवार [९ अप्रैल, १९२४][1]

भाईश्री आनन्दानन्द,

तुम्हारे तीन पत्रोंका उत्तर नहीं दे सका हूँ। किन्तु क्या करूँ? उस बेचारे संयमीकी तरह मेरी भी यही स्थिति है कि ऊपर आकाश और नीचे धरती। आजके लेखमें तुम्हें इस भाईका परिचय मिलेगा। तुम्हारे मनमें यह विचार एक क्षणके लिए भी क्यों आया कि मैं तुम्हारी प्रशंसा इसलिए करता हूँ कि मैं तुम्हें अपनेसे दूर मानता हूँ। वह तो मैंने तभी की होगी जब करना अनिवार्य हो गया होगा। जब अवसर आता है तब मैं अपनी प्रशंसा भी करता ही हूँ। मैंने बा की प्रशंसा की है। देवदासकी प्रशंसा तो बहुत बार की है। अब बताओ कि कौन मेरे पास है और कौन दूर? क्या तुम ऐसा समझते हो कि महादेव और काकाके सम्बन्धमें सांकेतिक रूपमें कुछ कहनेके अतिरिक्त अन्य कोई बात शोभा नहीं देती? मुझे इस बातका गर्व है कि इन सब मामलोंमें मुझे अनुपातका पूरा ध्यान रहता है। मैं अपने इस गर्वका त्याग नहीं कर सकता।

सत्याग्रहके इतिहासके सम्बन्धमें तुमने जैसा सुझाव दिया, मैंने वैसा ही किया है। सुझाव मुझे पसन्द आया। यदि पुस्तक बड़ी हो जाती तो भी ठीक न होता।

१. ऐसा लगता है कि यह पत्र "सत्याग्रह और समाज-सुधार", १३-४-१९२४के प्रकाशनके पूर्ववर्ती बुधवार, ९ अप्रैलको लिखा गया होगा।

पुस्तकके लिए भी तुम सारी सामग्री अभी साथमें ही छाप लो, यह ठीक है या नहीं, मैं नहीं कह सकता। पुस्तकमें तो शायद कुछ परिवर्तन भी करने हों। इस अवस्थामें उसे तो शायद नये सिरेसे कम्पोज करना ही अच्छा होगा। किन्तु इस सम्बन्धमें बिलकुल ठीक क्या है, यह तो तुम्हीं जानो। यदि मेरा खयाल यह न होता तो मैं तुम्हारी प्रशंसा करता ही क्यों?

शिक्षा-सम्बन्धी अंककी छपाई ऐसी होनी चाहिए जिससे हमारी प्रतिष्ठा बढ़े। उसमें भले ही कागज अच्छी किस्मका लगाया जाये। यदि अंक संग्रहणीय हो तो अच्छा है। यदि उस अंकमें और इस अंकमें कुछ वाक्योंको सुधारना आवश्यक हो तो महादेव अथवा स्वामी सुधार लें। वे मुझे यह सूचना भी दें कि हर बार इतनी ही सामग्री काफी होगी अथवा इससे अधिक। अंग्रेजीकी समूची सामग्री तो कल भेजूँगा ही। यदि आवश्यक जान पड़ा तो कुछ मंगलवारको भेजूँगा।

'नवजीवन' तथा 'यंग इंडिया' के ग्राहकोंकी संख्याके सम्बन्धमें मुझे समय-समयपर सूचित करते रहना।

मुझे काठियावाड़, शेष गुजरात, बम्बई — इसे मैं शेष गुजरातमें ही रखता हूँ — और अहमदाबादके ग्राहकोंकी संख्या तुरन्त भेजना। फेरीवाले रास्तोंमें कितने अखबार बेच लेते हैं और देशके अन्य भागोंमें कुल कितने ग्राहक हैं, इसके आँकड़े भी भेजना। मैं इन अंकोंसे यह निश्चय करूँगा कि अखबारकी बिक्रीसे ५०,००० रुपयेकी जो बचत हुई है उसका विभाजन कैसे किया जाये।

मूल गुजराती पत्र (जी० एन० ७७५६) से।

३१४. तार: के० एम० पणिक्करको

[९ अप्रैल, १९२४ या उसके पश्चात्][1]

जत्थेके शान्तिपूर्ण आत्मसमर्पणपर मेरी बधाई।

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ९९५७) की फोटो-नकलसे।

१. यह तार पणिक्करके ८ अप्रैलको प्रेषित और ९ अप्रैलको प्राप्त निम्न तारके उत्तरमें भेजा गया था: "तीसरे जत्थेने शान्तिपूर्वक आत्म-समर्पण किया।"

३१५. टिप्पणियाँ

सत्याग्रह सप्ताह

पाठकोंको यह याद दिलानेकी जरूरत नहीं कि यह सप्ताह पवित्र सत्याग्रह सप्ताह है। ६ अप्रैल, १९१९को रविवारके दिन ही रौलट कानूनके पास किये जानेपर विरोध प्रकट करनेके लिए पहली अखिल भारतीय हड़ताल की गई थी। इसी दिन समस्त देशमें हजारों स्त्री-पुरुषोंने चौबीस घंटेका उपवास रखा था। इसी पवित्र दिनको राष्ट्रने हिन्दू-मुस्लिम एकताकी आवश्यकताको अभूतपूर्व दृढ़तासे स्वीकार किया था और हिन्दू, मुसलमान, सिख, पारसी, ईसाई और अन्य लोगोंमें हार्दिक सहयोगकी भावना उत्पन्न हुई थी। इसी दिन समस्त देशमें प्रतिशोधसे प्रेरित होकर नहीं, बल्कि राष्ट्रीय जीवनकी एक महत्त्वपूर्ण आवश्यकताके रूपमें, स्वदेशी भावनाका जन्म हुआ था। [और एक हफ्ते बाद] १३ तारीखको जलियाँवाला बागका हत्याकाण्ड हुआ था। हम इन दोनों दिनोंको और इनके बीचके दिनोंको प्रतिवर्ष आत्मशुद्धि, आत्म-निरीक्षण, विभिन्न वर्गोंके पारस्परिक सम्बन्धोंमें सुधार और स्वदेशीके प्रचारके लिए, जिसका केन्द्र-बिन्दु धीरे-धीरे चरखा बनता जा रहा है, मनाते आये हैं। मुझे एक मित्रसे यह जानकर दुःख हुआ कि अमृतसरमें, जहाँ यह जघन्य दुःखद काण्ड हुआ था, इस सप्ताहका आयोजन पिछले वर्ष बहुत ही फीका रहा। देखना है इस वर्ष अमृतसर और भारतके अन्य स्थानोंमें लोग इसे किस तरह मनाते हैं।

क्या मैंने बेजा किया ?

सौभाग्यसे मुझे ऐसे मित्र प्राप्त हैं जो यदि मैं सत्पथसे च्युत होने लगूँ या उसकी सम्भावना दिखाई दे तो वे मुझे विचलित नहीं होने देते। ऐसे एक मित्रका खयाल है कि मैंने पिछले अंकोंमें अपने पाठकोंके नाम पत्रमें[1] बम्बईकी सरकारके साथ पूरा इन्साफ नहीं किया है। बम्बई सरकारने मेरी चिकित्साका अच्छेसे-अच्छा प्रबन्ध किया और मित्रों आदिको स्वतन्त्रतापूर्वक मुझसे मिलने देनेकी सुविधा करके पूर्ण स्वस्थ होनेका रास्ता सुगम किया, मैंने उसे इसके लिए धन्यवाद नहीं दिया है। मेरे मित्रकी रायमें सरकारका यह व्यवहार उसके हृदय-परिवर्तनका परिचायक था और इसका कारण था बम्बईमें नये गवर्नरकी नियुक्ति। इस दलीलपर मैंने गहराईसे विचार किया है। इच्छा न रहते हुए भी, मैं अपने इसी मतपर स्थिर रहनेके लिए विवश हूँ कि सर्वोत्तम औषधोपचार तथा मित्रोंके मिलने आनेकी सुविधा कर देनेके लिए मेरा सरकारके प्रति अनुगृहीत होना आवश्यक नहीं है। सरकार जब-जब अपने कर्त्तव्यका पालन करे तब-तब उसे धन्यवाद देना जरूरी होता हो तो बात दूसरी है। मैंने यह बात पर्याप्त रूपसे स्वीकार की है कि सरकारने मेरी बीमारीमें एक कैदीके

१. देखिए "यंग इंडियाके नये और पुराने पाठकोंसे", ३-४-१९२४।

प्रति उससे सामान्यतया जो-कुछ उम्मीद रखी जा सकती है, वह सब-कुछ किया था। परन्तु इसके लिए मैं सरकारको सरकारके नाते उस अर्थमें धन्यवाद देनेमें असमर्थ हूँ जिस अर्थमें मैंने कर्नल मैडॉक, कर्नल मरे और मेजर जोन्सको धन्यवाद दिया है। इन सज्जनोंने मेरे साथ जितनी मेहरबानी दिखाई, उन्हें उसकी जरूरत नहीं थी। यदि वे उतना न करते तो भी मैं यही स्वीकार करता कि उनके अपने-अपने क्षेत्रोंमें उनसे जितनी उम्मीद की जा सकती थी, उन्होंने उतना किया। मेरे प्रति इन सज्जनों-के इस व्यवहारमें हमारा निजी ताल्लुक भी एक कारण था और इसलिए उन्हें धन्यवाद देना मेरा कर्त्तव्य था। दलीलके इस हिस्सेको पूरा करते हुए, यदि सौजन्यकी मर्यादा न टूटती हो तो, मैं कह सकता हूँ कि मेरे और जेलके अफसरोंके — यहाँ तक कि सरकारके दरम्यान भी — जो अच्छा सम्बन्ध बना रहा उसमें एक कैदीकी हैसियतसे अपने कर्त्तव्योंके पूर्ण रूपसे पालनका मेरा हिस्सा कम नहीं है। मैंने बीसियों कठिन मौकोंपर इस सत्यको आजमाकर देखा है कि यदि हम अपना व्यवहार निरन्तर निर्दोष रखें तो उससे तीव्रतम विरोध, द्वेष और सन्देह निरस्त हो जाते हैं। यह पुनरुक्ति मैं इसी सत्यपर जोर देनेके विचारसे ही कर रहा हूँ।

अब कथित हृदय-परिवर्तनकी बातको लें। मैं बहुत चाहता हूँ कि मुझे भी यह हृदय-परिवर्तन दिखाई देता। मैं तो उसके लिए तरस रहा हूँ। मैं पाठकोंसे कहना चाहता हूँ कि मैं तो थोड़ा-सा भी वास्तविक हृदय-परिवर्तन देखूँ तो अविलम्ब संघर्ष रोक दूँ; परन्तु वह हो बिलकुल सच्चा। हृदय-परिवर्तनकी मामूली-सी कसौटी थी हसरत मोहानीको छोड़ देना और श्री हॉर्निमैनपर से प्रतिबन्ध हटा लेना। सरकार वह भी न कर सकी। मैं मानता हूँ कि पहले मेरा इस सरकारमें बहुत विश्वास था, परन्तु अब उसमें मेरा उतना ही अविश्वास हो गया है। किन्तु इतनी समझ मुझमें जरूर है कि सच्चे हृदय-परिवर्तनको पहचान सकूँ। यह कहा गया है कि यदि सर जॉर्ज लॉयड होते तो वे मेरी बीमारीमें श्रीमान् सर लेस्ली विलसन-जैसा सौजन्य न दिखाते। मैं इसे नहीं मानता। यद्यपि मैं सर जॉर्ज लॉयडको फूटी आँखों नहीं सुहाता था तो भी वे मेरे इलाजका इन्तजाम वैसा ही करते जैसा इन गवर्नर महोदयने किया। कोई आठ मास पूर्व जब मैं यरवदा जेलमें पहली बार कुछ ज्यादा बीमार हुआ था तब असलमें उन्होंने ही कर्नल मैडॉकको मुझे देखनेके लिए भेजा था और उन्हें आदेश था कि जबतक मुझे आराम न हो जाये वे हर हफ्ते मुझे देखें और हर हफ्ते मेरे स्वास्थ्यके समाचार उन्हें भेजें। लोग जितना समझते हैं, अंग्रेज अफसरोंके सम्बन्धमें मेरा खयाल उससे कहीं ऊँचा है। उन्हें अपने कर्तव्य-पालनका बहुत खयाल रहता है। बात केवल इतनी ही है कि मामूली हाकिमकी प्रामाणिकता नीतिकी सीमासे आगे नहीं बढ़ती। यह उसका कसूर नहीं। वह ऐसी कार्य-प्रणालीका वारिस है जो पुश्तोंसे चली आ रही है और जो सबलके द्वारा निर्बलकी लूटपर कायम रहती है। जो प्रणाली उसका आधार है, वही जब खतरेमें पड़ी दिखाई देती है तो वह लड़-खड़ाकर गिर पड़ता है, परन्तु मेरा यह विश्वास है कि इस प्रणालीके अन्तर्गत कोई दूसरा व्यक्ति भी ऐसा ही करेगा। इसलिए यह प्रणाली जितनी जल्दी मिटा दी जाये या जड़-मूलसे बदल दी जाये, उतना ही हम सबके लिए अच्छा है।

डेक-यात्री

श्री चतुर्वेदीको[1] पूर्व आफ्रिकामें जो मनोरंजक और शिक्षाप्रद अनुभव हुए हैं,[2] मैं उनकी ओर पाठकोंका ध्यान आकर्षित करता हूँ। डेक-यात्रीके रूपमें उनके कटु अनुभवोंसे दुःखद स्मृतियाँ जग गई हैं। उन्होंने जो सजीव विवरण दिया है उसमें कोई अत्युक्ति नहीं है। यह अपमानजनक स्थिति इन तीनके द्वारा वदली जा सकती है:

(१) ब्रिटिश इंडिया स्टीम नेवीगेशन कम्पनी
(२) सरकार
(३) यात्री लोग

ब्रिटिश इंडिया स्टीम नेवीगेशन कम्पनी इसकी ओर ध्यान नहीं देगी क्योंकि उसका काम तो ज्यादासे-ज्यादा मुनाफा कमाना है। सरकारसे हम तबतक कोई आशा नहीं कर सकते जबतक हममें उससे कुछ करवा लेनेकी शक्ति नहीं आ जाती। रहे यात्री, इस स्थितिसे होनेवाला कष्ट उन्हें ही उठाना पड़ता है। दुःखकी बात है कि अधिकांश यात्री निवारण किये जाने योग्य कष्टोंके भी अभ्यस्त हो गये हैं और दूसरे रिश्वतें देकर राहतें हासिल कर लेते हैं। जब कोई भावुक यात्री डेकपर यात्रा करता है, केवल तभी कुछ खलबली मचती है। किन्तु वह डेकके यात्रियोंके प्रति किये जाने-वाले इस व्यवहारमें सुधार कराना अपना जीवन-कार्य नहीं बनाता, अतः उसे कोई सफलता नहीं मिलती। जब श्री बनारसीदास-जैसे स्वाभिमानी लोग उचित सफाई और जगहके लिए आग्रह करेंगे केवल तभी किसी महत्त्वपूर्ण परिवर्तनकी आशा की जा सकती है, किन्तु उनका यह आग्रह केवल अपने लिए ही नहीं, बल्कि सबके लिए होना चाहिए।

विदेशोंमें चरखा

श्री चतुर्वेदीने चरखेके सम्बन्धमें जो-कुछ कहा है वह अत्यन्त शिक्षाप्रद है। यदि पूर्व आफ्रिकाके भारतीय धुनकी, चरखे और करघेको उस देशके वतनियोंमें लोकप्रिय बना सकें तो वे उनकी महत्त्वपूर्ण सेवा करेंगे। चरखेके प्रचारकी बड़ी गुंजाइश है, क्योंकि उसके प्रचारमें लगभग किसी पूँजीकी जरूरत नहीं होती। उसके लिए केवल सहानुभूति, संगठनकी मामूली योग्यता और थोड़ेसे हुनरकी आवश्यकता है जो आसानीसे प्राप्त किया जा सकता है।

पूर्व आफ्रिकामें खद्दर

क्या पूर्व आफ्रिकाके भारतीयोंको खादी पहननी चाहिए? कहते हैं श्रीमती सरोजिनी नायडूने इसका नकारात्मक उत्तर दिया है। मुझे इसपर विश्वास नहीं होता। उन्होंने कुछ भी कहा हो, पूर्व आफ्रिकाके लोगोंको यथासम्भव खादीका उपयोग

१. बनारसीदास चतुर्वेदी।
२. यह **यंग इंडिया**में १०-४-१९२४ को प्रकाशित हुए थे।

करना चाहिए। उनके लिए भारतके लोगोंकी तरह खादी पहननेकी प्रतिज्ञा लेनी आवश्यक नहीं है। श्रीमती नायडूने साफ-सुथरे रहनेपर अवश्य जोर दिया होगा। खद्दरके कपड़े बिलकुल साफ रखे जाने चाहिए और पहने भी सफाईसे जाने चाहिए। प्रायः लोग इन आवश्यक गुणोंकी उपेक्षा करते पाये जाते हैं। यदि खद्दरको ऊँचे वर्गोंमें लोकप्रिय बनाना है तो खद्दर पहननेवाले लोगोंको साफ-सुथरा रहना होगा। अच्छी धुली खादी खुरदरी और मोटी हो तो यह उसका दोष नहीं बल्कि गुण होता है। मोटी खादीमें पसीना सोखनेका अतिरिक्त गुण है, अतः वह स्वास्थ्यकी दृष्टिसे उपयोगी बन जाती है। उसकी ढीली-ढाली बनावटसे उसमें मुलायमियत आ जाती है, जो पहननेवाले को सुखद जान पड़ती है।

जैसा हमने बोया है

श्री एन्ड्रयूजने अस्पृश्यताके सम्बन्धमें जो दुःखजनक बातें कही हैं[1] उनपर हर हिन्दूको विचार करना चाहिए। मुझे श्री एन्ड्रयूज द्वारा बताये जानेके पहले इस बातकी जरा भी खबर नहीं थी कि मलाबारके सीरियाई ईसाइयोंमें भी छूतछात मानी जाती है। जब मैंने यह सुना तब मेरा सिर शर्मसे झुक गया, क्योंकि मैंने यह अनुभव किया कि उनमें यह बुराई हिन्दुओंके अनुकरणसे आई है। श्री एन्ड्रयूजने जहाजमें अपने साथी यात्रियोंसे जब भारतीयोंपर लगी निर्योग्यताओंकी चर्चा की तब उन्होंने श्री एन्ड्रयूजको जो तीखा उत्तर दिया, वह सर्वथा उचित ही था। यद्यपि यह सच है कि दक्षिण आफ्रिकाके यूरोपीयोंको अपने देशमें हमसे वैसा ही व्यवहार करनेकी आवश्यकता नहीं है जैसा हम यहाँ अपने लोगोंसे करते हैं, किन्तु जब हमारे दोष हमें आँखोंमें अँगुली डालकर दिखाये जाते हैं तब हमारे मुंह बन्द हो जाते हैं। हमने जो बोया है, वही हम काट रहे हैं।

मेरा प्रस्ताव

श्रीमती सरोजिनी नायडूके दक्षिण आफ्रिकामें किये गये शानदार कामका वहाँ गहरा असर हुआ है। दक्षिण आफ्रिकासे प्राप्त पत्रोंसे मालूम हुआ है कि वहाँ उनकी उपस्थितिसे भारतीय प्रवासियोंमें नया साहस आ गया है। श्री डंकनने एक अनुचित कानूनको उचित ठहरानेका जो व्यर्थ प्रयत्न किया है उससे यह मालूम होता है कि दक्षिण आफ्रिकाके यूरोपीय भी उनके आश्चर्यजनक कामसे चौकन्ने हुए हैं। श्री डंकनके इस दावेका कि संघ सरकार १९१४के समझौतेके अन्तर्गत भारतीय प्रवासियोंको उनके निहित अधिकारोंसे वंचित न करनेके लिए बाध्य नहीं है, किन्तु वह वर्गीय क्षेत्र विधेयक-से निस्सन्देह बँधी हुई है, आशय यह होना चाहिए और है भी कि यदि सिद्ध किया जा सके कि समझौतेके अनुसार भारतीय प्रवासियोंके निहित अधिकार छीने नहीं जा सकते तो इस विधेयकको कानूनका रूप देनेकी कार्रवाई रोक दी जायेगी। मैं यह सुझाव सामने रखता हूँ कि संघ सरकार द्वारा भारत सरकारको यह वचन दिये जाने-पर कि समझौता निष्पक्ष न्यायाधिकरणकी दृष्टिसे सन्तोषजनक रूपसे सिद्ध किया जा

१. एन्ड्रयूजका "अस्पृश्यता" सम्बन्धी लेख **यंग इंडिया**के इसी अंकमें छपा था।

सके तो वह जांच पूरी होनेतक इस विधेयकको स्थगित कर देगी, मैं उस हालतमें असहयोगी होनेपर भी इस समझौतेको सिद्ध करनेके निमित्त उस न्यायाधिकरणमें जानेके लिए तैयार हूँ। नजीर मौजूद है। जब १८८५के ट्रान्सवाल अधिनियम संख्या ३ की व्याख्या और लन्दन समझौतेके[1] होते हुए इस कानूनके बनानेके औचित्यके सम्बन्धमें विवाद खड़ा हुआ था तब साम्राज्य सरकार और ट्रान्सवाल सरकारने इसे पंचोंके सम्मुख उपस्थित किया था।

पत्र-लेखकोंसे

मेरे सम्मुख प्रकाशनके लिए आये हुए पत्रों और अन्य कागजोंका ढेर पड़ा है। यदि 'यंग इंडिया' के वर्तमान आकारको कायम रखना है तो इनको प्रकाशित कर पाना मेरे लिए असम्भव है। इसलिए पत्र-प्रेषक यहाँ अपने लेखोंको छपा न देखें तो वे कृपया मुझे क्षमा करेंगे। बात यह है कि 'यंग इंडिया', जैसा कि एक आदरणीय सज्जनने मुझसे कहा, कोई समाचार-पत्र नहीं, विचार-पत्र है। फिर इसका उपयोग बहुत कुछ मेरे विचारोंको और वह भी मेरे ही ढंगसे, प्रचार करनेके लिए किया जा रहा है। इसका क्षेत्र मर्यादित है इसलिए यदि पत्र-लेखक मुझे ऐसे लेख ही न भेजें जिनमें कोई विशेष बात नहीं है और जो 'यंग इंडिया' के उद्देश्यसे सम्बन्धित नहीं हैं तो अच्छा होगा।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १०-४-१९२१

३१६. असत्य कथनका आन्दोलन

ऐसा प्रतीत होता है कि इस समय हिन्दुओं और मुसलमानोंके बीच भेदभावको बढ़ानेका प्रयत्न जान-बूझकर किया जा रहा है। कुछ अखबार, जिनमें हिन्दुओंके अखबार भी हैं और मुसलमानोंके भी, उत्तेजना फैलानेके प्रयत्नमें कोई कसर नहीं रख रहे हैं और दुर्भाग्यसे उनको अत्युक्ति और असत्य कथनका आश्रय लेनेमें भी कोई झिझक नहीं होती। जो अखबार जान-बूझकर ऐसी हरकतें नहीं करते वे किसी दूसरे अखबारमें सनसनी फैलानेवाली किसी भी चीजको देखते हैं तो बिना उसकी जाँच किये उसे निधड़क छाप देते हैं।

एक ऐसी ही बात मौलाना मुहम्मद अलीके सम्बन्धमें कही गई है। कहते हैं उन्होंने कहा कि एक व्यभिचारी मुसलमान भी गांधीसे ज्यादा अच्छा है। मौलाना मुहम्मद अलीके सम्बन्धमें ऐसी किसी बातपर विश्वास करनेके लिए तैयार लोगोंका मिल सकना यह बताता है कि हिन्दुओं और मुसलमानोंमें कितना मनमुटाव है। पाठक एक दूसरे स्तम्भमें मौलानाके लिखे हुए दो पत्रोंका अनुवाद देखेंगे। इनमें से एक पत्र

१. इसपर १८८४ में हस्ताक्षर हुए थे, देखिए खण्ड १, पृष्ठ ३७५।

स्वामी श्रद्धानन्द और दूसरा 'तेज' के सम्पादकके नाम है।[1] अखबारोंमें मौलाना-पर आये दिन जो लांछन लगाया जा रहा है, इन पत्रोंसे उनका पूरी तरह निराकरण हो जाता है। भारतकी स्वतन्त्रताके शत्रुओंने मौलानाके कथनको विकृत करनेमें और उसका उपयोग हिन्दुओंको मौलानासे भिड़ानेके लिए करनेमें कोई संकोच नहीं किया है। मैं प्रत्येक विचारशील हिन्दूका ध्यान इन पत्रोंकी ओर आकर्षित करता हूँ। मेरी विनम्र सम्मतिमें इन पत्रोंसे मौलानाकी नितान्त निश्छलता व्यक्त होती है।

उनके जिस कथनको कुछ अखबारोंने इतनी बेरहमीसे तोड़ा-मरोड़ा है वह मूलतः क्या है? उन्होंने असलमें यही कहा है, इस्लाम धर्म गांधीके धर्मसे ज्यादा अच्छा है। क्या उनके इस कथनमें कोई रोष पैदा करनेवाली चीज है? जबतक यहाँ विभिन्न धर्म हैं तबतक क्या मौलानाकी यह स्थिति बिलकुल न्यायसंगत और सच्ची नहीं है? दक्षिण आफ्रिका और भारतमें मेरे अनेक परमप्रिय ईसाई मित्र हैं जो ईश्वरसे प्रार्थना करते रहते हैं कि वह मुझे प्रकाश दे। इनमें दक्षिण आफ्रिकाके एक प्रतिष्ठित अवकाश-प्राप्त सॉलिसिटर हैं। उन्होंने मुझसे ईसामसीहको मानने और उनकी शरणमें जानेका अनुरोध किया है। उनका कहना है कि जबतक मैं ऐसा न करूँगा तबतक मेरे सब प्रयत्न व्यर्थ होंगे। सचमुच हजारों ईसाई यह मानते हैं कि जिस सच्चे आदमीका ईसामें विश्वास नहीं है वह एक कुकर्मी ईसाईसे भी बुरा है। क्या कोई सनातनी हिन्दू भी ऐसा ही नहीं सोचता? यदि ऐसी बात न हो तो शुद्धिके सम्बन्धमें यह व्यग्रतापूर्ण प्रचार क्यों? सनातनी हिन्दू अपनी पुत्रीके लिए पतिका चुनाव करनेमें धर्मका खयाल छोड़कर सर्वोत्तम व्यक्तिको चुनेगा अथवा अपने ही सम्प्रदायके अच्छेसे-अच्छे मनुष्यको? यदि वह उस चुनावको अपने दायरेतक ही सीमित रखे तो क्या इससे यह प्रकट नहीं होता कि वह भी मौलानाकी तरह अपने धर्मको सब धर्मोंसे अच्छा मानता है?

मौलानाने अपने धार्मिक नियमका वर्णन सुन्दर भाषामें किया है और उसको उदाहरण देकर स्पष्ट करनेके लिए अपने सर्वोत्तम हिन्दू मित्रोंमें से मुझे चुना है एवं यह दिखाया है कि वे अपने धर्मको व्यक्तियोंसे, चाहे वे उनके कितने ही प्रिय क्यों न हों, अच्छा मानते हैं। इसके लिए उन्होंने मेरा उदाहरण चुननेमें यह समझकर अपने आपको निरापद माना कि मैं इसपर रोष नहीं करूँगा और उनको ऐसा माननेका अधिकार है। मैं यह मानता हूँ कि इसके लिए वे एक मित्रके प्रति उपेक्षा-भाव दिखाने अथवा उसके धर्मका अनादर करनेके दोषी ठहराये जानेकी अपेक्षा अपने धर्ममें दृढ़ आस्था दिखानेके कारण सम्मानित किये जानेके अधिक अधिकारी हैं।

उन्होंने यह प्रार्थना की है कि ईश्वर मेरे मनमें इस्लाम ग्रहण करनेकी इच्छा उत्पन्न करे। किसीको उनकी इस प्रार्थनासे भी किसी तरहका भय या आश्चर्य करनेकी आवश्यकता नहीं है। यदि वे मेरे लिए (अपने विश्वासके अनुसार) अच्छीसे-अच्छी कामना न करें तो वे मेरे सच्चे मित्र नहीं होंगे। सत्य और अहिंसाका चरम रूप ही मेरा धर्म है। इस सम्बन्धमें मैं भूलपर हो सकता हूँ। किन्तु यदि मैं अपने

१. देखिए परिशिष्ट १३।

मित्रोंका भला चाहता हूँ तो जबतक मैं इसको सबसे अच्छा धर्म मानता हूँ तबतक मैं यही कामना कर सकता हूँ कि उनका भी इस धर्ममें विश्वास हो। मैं हिन्दू धर्मके भीतर इसलिए हूँ कि मैंने अपने इस धर्मकी जो कसौटी रखी है उसपर हिन्दुत्व खरा उतरता है।

स्वामीजीने हृदयसे और पूरे तौरपर मौलानाके पत्रको स्वीकार करते हुए कहा है कि उनके अपने धर्ममें व्यवहार और विश्वासके बीच कोई अन्तर नहीं है, जब कि उनकी समझके अनुसार मौलानाके धर्ममें ऐसा अन्तर है। मौलानाने जो दूसरा पत्र लिखा है उसमें यह मुद्दा साफ कर दिया गया है और यह कहकर इस विवादको समाप्त किया है कि उनके धर्ममें भी व्यवहार विश्वाससे भिन्न नहीं है। उन्होंने यह भी कहा है कि मैंने अपने पत्रमें केवल संसारके धर्मोंकी तुलना की है और अपना यह मत प्रकट किया है कि मेरा धर्म सबसे अच्छा धर्म है। क्या मुसलमान रहते हुए मैं इससे भिन्न आचरण कर सकता हूँ? यदि मैं ऐसा करूँ तो एक सच्चे मनुष्यके रूपमें क्या मैं उस धर्मको, जिसे मैं इस्लामसे अच्छा समझता हूँ, माननेके लिए बाध्य नहीं हूँ?

मुहम्मद अली इस समय पारिवारिक दुःखसे पीड़ित हैं और उनके बड़े भाई बीमार हैं। इस अवस्थामें भी वे हिन्दुओं और मुसलमानोंके बीचकी खाईको पाटनेके लिए यथाशक्ति प्रयत्न कर रहे हैं। मुझे आशा है कि इस स्थितिमें प्रत्येक सच्चे हिन्दूकी सहानुभूति उनके साथ होगी। इसमें सन्देह नहीं है कि जो हिन्दू एकताका प्रयत्न कर रहे हैं उनके मनमें भी इतनी धर्मान्धता तो है ही कि वे अपने मुसलमान सहयोगियोंको अपनेसे बेहतर नहीं मानते।

दूसरी घटना तिब्बिया कालेजमें हुई बताते हैं। मैंने अपने पुत्रसे यह कहा था कि वह डा० अन्सारीको एक पत्र लिखे ताकि वे मुझे यह सूचित कर दें कि वास्तविक घटना क्या थी। मैं उनका उत्तर यहाँ लगभग पूराका-पूरा छाप रहा हूँ। इसमें से वे छः शब्द छोड़ दिये गये हैं जिनमें संयम रखनेके और समाचारको छापनेसे पहले उसकी सचाई जांच लेनेके नियमको भंग करनेवाले अखबारका नाम दिया गया है। चूंकि मेरा उद्देश्य किसी अखबार विशेषकी आलोचना करना नहीं है, बल्कि अखबारोंमें उग्र रूपसे फैली हुई इस बीमारीका इलाज ढूंढ़ना है, इसलिए मैंने यह नाम छोड़ दिया है। डा० अन्सारी लिखते हैं:

> तिब्बिया कालेजकी घटना बहुत ही मामूली-सी है। जिस दिन कालेजमें महात्माजीका जन्म-दिवस मनाया जा रहा था उस दिन एक वक्ताने महात्माजी-की तुलना ईसा मसीहसे की थी। इसपर एक मुसलमान छात्रने आपत्ति की और कहा कि किसी भी जीवित व्यक्तिकी, चाहे वह सभी बातोंमें कितना ही बड़ा क्यों न हो, पैगम्बरोंसे तुलना नहीं की जानी चाहिए। कुछ छात्रोंने मुसलमान छात्रके इस कथनका विरोध किया। इसपर मुसलमान छात्रने अपना आशय समझानेका प्रयत्न किया और उसके कथनसे जो भ्रम उत्पन्न हुआ था उसपर खेद प्रकट किया। सारी बात इतनी ही है और स्पष्ट ही यह कहना तो सरासर गलत

> है कि इसमें कुछ कार्यकर्ताओंका हाथ था अथवा शान्ति भंग होनेकी कोई भी आशंका थी।
>
> जिन पत्रोंका आपने उल्लेख किया है वे दलबन्दीके बड़े भारी हामी हैं। उनकी विशेषता ही यह है कि वे दोनों जातियोंको लड़ानेवाली खबरें इकट्ठी करते हैं और छोटी-छोटी घटनाओंको बहुत ही बढ़ा-चढ़ाकर छापते हैं। यदि केवल इन पत्रोंका ही दोष होता तो इतनी दुःखकी बात न होती, क्योंकि ये पत्र न तो महत्वपूर्ण हैं और न प्रसिद्ध। किन्तु दुर्भाग्यकी बात यह है कि वैरकी यह भावना उत्तर भारतके हिन्दुओं और मुसलमानों — दोनोंके देशी भाषाओंमें निकलनेवाले लगभग समस्त पत्रोंमें व्याप्त है।
>
> ये घटनाएँ जिन्हें छापनेमें इन पत्रोंने ऐसी दुःखजनक और ओछेपनसे भरी हुई कट्टरताका परिचय दिया है, विरल हों सो बात नहीं है। निपट धर्मान्धता और हर प्रकारसे दूसरी कौमको नीचा दिखानेकी यह कुत्सित इच्छा आज उत्तर भारतके देशी भाषाओंके पत्रोंका अनिवार्य अंग बन गई है।

घटना जिस तरह बढ़ा-चढ़ाकर पेश की गई है, पाठक उससे परिचित हैं। जिस मुसलमान छात्रने उक्त तुलनापर आपत्ति की उसका कार्य आखिर उचित ही था। किसी मनुष्यका सम्मान करनेके लिए उसकी तुलना सम्मान्य पैगम्बरोंसे करना तो दूर, किसी अन्य सम्मानित मनुष्यसे भी करना आवश्यक नहीं है। डा० अन्सारीने उत्तर भारतके देशी भाषाके पत्रोंके सम्बन्धमें जो जानकारी दी है उससे भय और चिन्ता उत्पन्न होनेकी सम्भावना है। आशा है जो पत्र सनसनी फैलाकर अपनी रोटी कमाते हैं वे पैसेका खयाल पीछे और देश-हित और सत्यका खयाल पहले करेंगे। सुननेमें आया है कि मुस्लिम पत्रोंके सम्पादक हिन्दुओं और उनके धर्मको गालियाँ देना तभी बन्द करेंगे जब हिन्दू पत्रोंके सम्पादक इस्लाम और मुसलमानोंको गालियाँ देना बन्द कर देंगे और हिन्दू पत्रोंके सम्पादक चाहते हैं कि इस मामलेमें पहल मुस्लिम पत्रोंके सम्पादक करें। मेरा सुझाव है कि दोनों ही अपने रवैयेमें बिना दूसरेका रास्ता देखे यह सुधार कर लें।

मैं यह कहना नहीं चाहता कि सत्यको छिपाया जाये। इस तरहका गलत सौजन्य पहले दिखाया गया है। आवश्यक यह है कि सत्यको निर्भय होकर प्रचारित किया जाये किन्तु अत्युक्ति और मिथ्या आरोपोंसे ईमानदारीके साथ बचते रहें।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १०-४-१९२४

३१७. मौलाना मुहम्मद अली और उनके आलोचक

मौलाना साहबके दो पत्र[1] यहाँ दिये जा रहे हैं। पहला पत्र स्वामी श्री श्रद्धानन्दजीके नाम और दूसरा 'तेज'के सम्पादकके नाम है। इन पत्रोंका अग्रलेखमें उल्लेख है।[2]

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १०-४-१९२४

३१८. असहयोग हिंसाका तरीका नहीं है

हममें जो अन्तर है, भारतकी वर्तमान स्थिति उसका एक अन्य विचित्र उदाहरण प्रस्तुत करती है। मैं 'अप्रतिरोध'के विचारका हामी हूँ। जहाँतक मैं समझता हूँ, गांधी अपने तरीकेको प्रेमका तरीका कहते हैं। किन्तु तब भी उनकी समझमें यह नहीं आता कि असहयोगका तरीका हिंसाका तरीका है"। मान लीजिए कि न्यूयार्कमें दूधकी गाड़ियाँ चलानेवालों को कोई सच्चा, वास्तविक और भयंकर कष्ट है। मान लीजिए कि वे हड़ताल कर दें और न्यूयार्कमें बच्चोंके लिए दूध पहुँचाना बन्द कर दें। वे हिंसात्मक आक्रमणके लिए शायद किसीपर हाथ न उठायें तथापि उनका यह तरीका हिंसाका तरीका होगा। छोटे-छोटे बच्चोंकी लाशोंपर से गुजरकर ही वे 'असहयोग'के द्वारा विजय प्राप्त करेंगे। जैसा कि बर्ट्रेंड रसेलने बोल्शेविकोंके बारेमें कहा था, "ऐसा कष्ट हमें उन साधनोंके विषयमें शंका करनेको बाध्य करता है, जो किसी वांछित लक्ष्यतक पहुँचनेके लिए काममें लाये जाते हैं।" असहयोगका परिणाम है लंकाशायरमें कष्ट; और वह अन्ततः विवेकको जाग्रत करनेकी बजाय क्रोधको जाग्रत करता है।

यह दृष्टान्त प्रस्तुत विषयपर पूरी तरह लागू नहीं होता, तथापि मेरे मनमें जो बात है उसका इससे एक हदतक ठीक निर्देशन होता है। भारतमें जो लोग स्वराज्यके समर्थक हैं वे आज विधान-सभाओंमें पहुँचकर वहाँ असहयोग करके उनकी प्रगतिको रोकना चाह रहे हैं। यह इतिहासका एक संयोग है कि इंग्लैण्डमें जहाँ नागरिक संस्थाओंका विकास जॉन फिस्कके शब्दोंमें संघर्षके अभावमें हुआ, उनका क्रमिक विस्तार सहयोगके प्रभावके आधारपर ही हो सका।

१. पत्रोंके लिए देखिए परिशिष्ट १३।

२. देखिए पिछला शीर्षक।

ऊपरका अंश एक अज्ञात अमेरिकी मित्र द्वारा मेरे पास भेजे गये १४ फरवरी, १९२४ के 'यूनिटी' में प्रकाशित एक लेखसे लिया गया है।

लेख श्री आर्थर एल० वैंदरलीने पत्रके रूपमें श्री होम्सको भेजा था। पत्रमें यह सिद्ध करनेका प्रयास किया गया है कि यदि आदर्शवादी व्यावहारिक बना रहना चाहता है तो उसे अपने आदर्शको प्रस्तुत परिस्थितियोंके तलतक नीचे उतार लाना पड़ता है। लेखकने अपने तर्कको पुष्ट करनेके लिए पत्रमें बहुतसे उदाहरण दिये हैं। चूंकि फिलहाल उनके मुख्य तर्कसे मुझे सरोकार नहीं है, अतः मैं समझता हूँ कि उनके पत्रसे केवल एक अंश उद्धृत करके मैं उनके प्रति अन्याय नहीं कर रहा हूँ। मेरे विचारमें भारतीय असहयोगके विषयमें श्री वैंदरलीका दृष्टिकोण पाठकोंको मोटे तौरपर रोचक अवश्य जान पड़ेगा।[1]

श्री वैंदरलीने यह बात एक व्यापक सत्यके रूपमें प्रस्थापित की है कि "असहयोग हिंसाका तरीका है"। यदि वे क्षणभर भी विचार करते तो इस प्रस्थापनाकी असत्यता दृष्टिगोचर हो जाती। मैं जब शराबकी दूकानपर शराब बेचनेसे इनकार करता हूँ अथवा खूनीको उसकी योजनाओंमें सहायता देनेसे इनकार करता हूँ, तब मैं असहयोग करता हूँ। मेरी रायमें मेरा यह असहयोग हिंसाका तरीका नहीं है, इतना ही नहीं बल्कि मैंने प्रेमके कारण इनकार किया हो तो मेरा असहयोग प्रेमका कार्य हो सकता है। तथ्य यह है कि सभी प्रकारका असहयोग हिंसात्मक नहीं होता और अहिंसात्मक असहयोग तो कभी हिंसात्मक कार्य हो ही नहीं सकता — सम्भव है हर हालतमें वह प्रेम-प्रेरित कार्य न हो। क्योंकि प्रेम एक ऐसा सक्रिय गुण है जो सदा क्रियासे अनुमित नहीं हो पाता। एक शल्य-चिकित्सक अत्यन्त सफल ऑपरेशन कर सकता है, तथापि हो सकता है कि रोगीके लिए उसके मनमें कोई प्रेम न हो।

श्री वैंदरलीने जो उदाहरण दिया है वह विवेचन करनेपर अत्यन्त अनुचित एवं अपूर्ण ठहरता है। यदि न्यूयार्कमें दूधकी गाड़ियाँ हाँकनेवालों को नगरपालिकासे उसके अपराधपूर्ण कुप्रबन्धके कारण शिकायत हो और यदि वे उसे झुकानेके लिए न्यूयार्कके बच्चोंको दूध पहुँचाना बन्द करनेका निश्चय करें तो वे मानव-जातिके प्रति अपराध करेंगे। किन्तु मान लीजिए कि दूधकी गाड़ियोंको हाँकनेवालों को उनके मालिक काफी मजदूरी नहीं देते जिसके फलस्वरूप वे भूखों मर रहे हैं, एवं उन्होंने अधिक मजदूरी करनेके अन्य सब सुलभ एवं उचित उपायोंका प्रयोग करके देख लिया है, तो उनका दूधकी गाड़ियाँ हाँकनेसे इनकार करना न्यायसंगत होगा — चाहे फिर उनके इस कार्यके फलस्वरूप न्यूयार्कके बच्चोंकी मृत्यु ही क्यों न हो जाये। उनका इनकार प्रेमका कार्य भले ही न हो किन्तु वह निश्चय ही हिंसाका कार्य नहीं होगा। वे कोई परहित निरत प्राणी नहीं हैं। वे अपनी जीविकाके लिए दूधकी गाड़ियाँ हाँक रहे हैं। कर्मचारियोंके रूपमें यह उनके कर्त्तव्यका अंश नहीं है कि वे चाहे जिस

१. गांधीजीने बादमें इस वाक्यमें यों सुधार किया है: "मेरा हेतु यह बताना है कि श्री वैंदरलीका दृष्टिकोण एकदम गलत है; किन्तु गलत होते हुए भी वह मोटे तौरपर रोचक अवश्य जान पड़ेगा। देखिए "पत्र: महादेव देसाईको", १०-४-१९२४ के पश्चात्।

परिस्थितिमें रहकर बच्चोंको दूध पहुँचायें ही। जहाँ कर्त्तव्यका अतिक्रमण नहीं है वहाँ हिंसा भी नहीं है। और फिर मान लीजिए कि दूधकी गाड़ियाँ हाँकनेवाले ये लोग यह जानते हों कि उनके मालिक सस्ता किन्तु मिलावटी दूध देते हैं, तथा एक दूसरा दुग्धालय अच्छा किन्तु महँगा दूध देता है और उन्हें न्यूयार्कके बच्चोंके कल्याणकी चिन्ता हो, तो उनका दूधकी इन गाड़ियोंको हाँकनेसे इनकार करना प्रेमका कार्य होगा, चाहे फिर न्यूयार्ककी कोई अदूरदर्शी माता महँगे और प्रामाणिक दुग्धालयसे दूध न लेनेके कारण इस मिलावटी दूधसे भी वंचित ही क्यों न रह जाये। इस अदूरदर्शी माताकी कल्पना हमने तर्ककी दृष्टिसे की है।

कल्पित हृदयहीन दूधकी गाड़ी हाँकनेवालों तथा न्यूयार्कके बच्चोंकी लाशोंके ढेरोंकी बात करके 'यूनिटी' का लेखक हमें लंकाशायर ले जाता है और भारतीय असहयोगके सफल हो जानेके बाद उसके नाशका चित्र प्रस्तुत करता है। अपने मुख्य तर्कको सिद्ध करनेकी उतावलीमें लेखकने सीधे-सादे तथ्योंका अध्ययन करनेका कष्ट भी नहीं उठाया। भारतीय असहयोगकी योजना लंकाशायर अथवा ब्रिटिश द्वीपोंके किसी भी भागको हानि पहुँचानेके लिए नहीं की गई है। उसे तो अपना राजकाज आप चलानेके भारतके अधिकारको सत्य सिद्ध करनेके लिए अपनाया गया है। भारतके साथ लंकाशायरका व्यापार संगीनोंके बलपर स्थापित किया गया था और वह उन्हीं साधनोंसे कायम रखा जा रहा है। उसने भारतके उस एकमात्र अत्यावश्यक कुटीर-उद्योग-को नष्ट कर दिया है, जिससे यहाँके लाखों-करोड़ों किसानोंकी आयमें कुछ योगदान होता था और जिसके कारण भुखमरी उनके दरवाजे तक नहीं फटक पाती थी। अब यदि भारत अपने कुटीर-उद्योग और अपनी हाथकी कताईको पुनरुज्जीवित करनेका प्रयत्न करता है तथा कोई भी विदेशी कपड़ा, यहाँतक कि भारतीय मिलोंका बनाया कपड़ा भी खरीदनेसे इनकार करता है और इससे लंकाशायर तथा भारतीय मिलोंको हानि पहुँचती है तो इससे असहयोग किसी भी कानून या नीति-नियमकी दृष्टिसे हिंसात्मक कार्य नहीं माना जा सकता। भारतने कभी लंकाशायरके भरण-पोषणका जिम्मा अपने ऊपर नहीं लिया है। यदि मदिरालयों तथा वेश्यालयोंमें जानेवाले बिना कोई सूचना दिये उनमें जाना बन्द कर दें, चाहे इस आत्मवर्जनाके फलस्वरूप उक्त आलयोंके संचालक भूखों मरने लगें तो भी वे इस आत्मसंयमके लिए बधाईके पात्र होंगे और उनके मालिकोंके हितेच्छु भी माने जायेंगे। इसी प्रकार यदि साहूकारोंके आसामी उनसे ऋण लेना बन्द कर दें और इससे साहूकार भूखों मरने लगें तो उनके आसामी ऋण लेना बन्द करनेके कारण हिंसक नहीं माने जा सकते। किन्तु यदि वे दुर्भावना अथवा द्वेषके कारण और बिना किसी न्यायसंगत कारणके एक साहूकारको छोड़कर दूसरेके आसामी बन जायें तो वे हिंसक माने जा सकते हैं।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि जब नियमके आधीन होनेसे इनकार करना अधिकार और कर्त्तव्य बन जाये तब असहयोग हिंसा नहीं होता, चाहे उसके प्रयोगके कारण कुछ लोगोंको कष्ट भी हो। जब मात्र अन्यायकर्त्ताके भलेके लिए ही असहयोगका आश्रय लिया जाये, तब वह प्रेमका कार्य होगा। भारतीय असहयोग अधिकार और कर्तव्य

है; किन्तु वह प्रेमका कार्य नहीं कहा जा सकता क्योंकि वह अशक्त लोगों द्वारा आत्मरक्षाके लिए अपनाया गया है।

श्री वैंदरलीने स्वराज्य दलके अड़ंगे डालनेके कार्यक्रमका जो उल्लेख किया है उसका विवेचन पिछले सप्ताह बताये गये कारणोंसे फिलहाल नहीं किया जा सकता।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १०-४-१९२४

३१९. सरोजिनीकी विमोहिनी शक्ति

'यंग इंडिया' के लिए अन्तिम पत्र भेजनेसे कुछ ही समय पूर्व मुझे अपने पुत्र मणिलाल गांधीका, जो नेटालमें 'इंडियन ओपिनियन' का काम सँभालता है, एक पत्र मिला है। इसमें श्रीमती नायडूकी यात्राका सुन्दर वर्णन दिया गया है। मैं जानता हूँ कि पाठक इसका जल्दीसे-जल्दी प्रकाशन पसन्द करेंगे। पत्र १५ मार्च, १९२४का है, जिसका अनुवाद मैं नीचे दे रहा हूँ:

> यह पत्र जल्दीमें लिखा गया है। दो घंटे बाद ही डाक निकल जायेगी।
>
> पिछले कोई २० दिनोंसे श्रीमती सरोजिनी नायडू यहाँ आई हुई हैं। उन्होंने इस देशके निवासियोंपर, खास करके गोरे लोगोंपर, बड़ा ही अच्छा प्रभाव डाला है। जोहानिसबर्गमें शुरू-शुरूमें तो लोगोंने उनका तीव्र विरोध किया था; परन्तु श्रीमती नायडूकी वक्तृता सुननेके बाद वह जाता रहा और वे लोग जो कुछ शरारत या उपद्रव करना चाहते थे, शरमाकर रह गये हैं। ट्रान्सवालकी अपनी यात्राके अन्तमें वे जोहानिसबर्ग आईं। उस समय गोरे हजारोंकी तादादमें सभाओंमें आते थे। मैं वहाँ नहीं गया था। जब वे इस तरफ आनेको हुईं तब मैं फोक्सरस्ट उन्हें लेने गया था। हर स्टेशनपर सैकड़ों लोग क्या गोरे और क्या हिन्दुस्तानी उनसे मिलने आते थे। उनकी गाड़ी फूलोंसे लद जाती थी। मैरित्सबर्गमें वे दो दिन ठहरीं। वहाँ एशियाई लोगोंके खिलाफ कटुता बहुत व्याप्त है और प्रतिगामी लोगोंका पूरा जोर है। श्रीमती नायडूके आनेके पहलेसे ही वे शोर कर रहे थे कि हिन्दुस्तानियोंको टाउनहॉल बिलकुल नहीं मिलना चाहिए और यदि मिलेगा तो भारी झगड़ा हो जायेगा। किन्तु आखिरी दिन मैरित्सबर्गके 'टाइम्स' ने अग्रलेख लिखकर लोगोंको झगड़ा-फसाद न करनेके लिए समझाया; जिससे स्थिति सँभल गई। सभाके वक्त टाउनहॉलमें लोग खचाखच भरे हुए थे और गैलरी गोरोंसे भर गई थी। मेयरने सभापति-पद ग्रहण करना मंजूर नहीं किया। तब एक दूसरा गोरा सभापति बनाया गया। उसके बोलनेके लिए खड़े होते ही गैलरीमें इतना गुल-गपाड़ा मचा कि उसे बैठ जाना पड़ा। फिर श्री भगतने उन्हें समझानेका प्रयत्न

किया किन्तु उन्हें भी बैठ जाना पड़ा। अन्तमें श्रीमती नायडू खड़ी हुई। वे दो-तीन वाक्य ही बोली थीं कि इतनेमें फसादी लोगोंके मुखिया चलते बने और बीस मिनट बोलनेके बाद बाकी फसादी भी उठ गये। व्याख्यान खत्म होनेके बाद कुछ अपरिचित यूरोपीय बड़ी उत्सुकतासे श्रीमती नायडूसे हाथ मिलानेके लिए आये।

दूसरे दिन भारतीयों और गोरोंके दलके-दल श्रीमती नायडूके निवासस्थान-पर उन्हें देखनेके लिए खड़े दिखाई दिये। लोग उनके निवासस्थानके चौकमें नहीं समा पा रहे थे। गोरी तथा गैर-गोरी स्त्रियाँ तो श्रीमती नायडूकी हिम्मत देखकर दंग थीं। पादरी भी आये थे और उनसे जान-पहचान करना चाहते थे। श्रीमती नायडूसे नेटालके बिशपकी भेंटके बाद तो समस्त वातावरण ही बदल गया।

श्रीमती नायडूका शायद सबसे अधिक स्वागत-सत्कार डर्बनमें हुआ। मैरित्स-बर्गतक उन्हें लेनेके लिए विशेष रेलगाड़ी भेजी गई थी। डर्बन स्टेशनपर तो लोगोंकी भीड़का कोई शुमार ही नहीं था और बाहरके रास्ते भी दर्शकोंसे ठसाठस भरे हुए थे। लोग उनकी गाड़ी खींचकर अल्बर्ट पार्कमें ले गये। वहाँ कमसे-कम पाँच हजार नर-नारी और इतने ही विद्यार्थी पहलेसे एकत्र थे। स्त्रियोंकी सभा ऐसी हुई जैसी पहले कभी नहीं हुई थी। टाउनहॉलमें उनके दो व्याख्यान हुए। दोनों बार हॉल खचाखच भरा था और पहले दिन तो कमसे-कम तीन-चार हजार लोगोंको वापस लौट जाना पड़ा था। गोरी महिलाओं-ने उनके स्वागतके लिए खास तौरपर सभाकी आयोजना की थी। इसके सिवा वे जुलूलैंड तक सफर कर आई हैं। अभी टोंगाट और फीनिक्स बाकी हैं। यहाँ तीन दिन रहकर वे इस समय केप टाउन चली गई हैं। वहाँ वे वर्ग-क्षेत्र विधेयककी चर्चाके वक्त उपस्थित रहना चाहती हैं। वे उसके बाद केपके दूसरे शहरोंकी यात्रा करेंगी। फिर कुछ समयके लिए जोहानिसबर्ग जायेंगी और तब यहाँ एक हफ्ता रहेंगी। वे यहींसे अप्रैलमें पहले जहाजसे मातृभूमिके लिए रवाना होंगी।

श्रीमती नायडूकी शक्ति अद्भुत है। उन्हें कभी-कभी यात्रा और व्याख्यानों-के कारण बुखार आ जाता है और सिर दर्द भी हो जाता है; किन्तु फिर भी इससे उनके व्यस्त कार्यक्रममें बाधा नहीं आती।

हाकिम लोग बड़ी अच्छी तरह पेश आते हैं। उनके लिए गाड़ियोंमें स्पेशल डिब्बेका इन्तजाम किया जाता है और राहमें भी रेल-अधिकारी शिष्टताका बरताव करते हैं। श्रीमती नायडू खुद ही आपको लिखना चाहती थीं, पर कामकी अधिकतासे न लिख सकीं। उन्होंने मुझे पत्र लिखनेके लिए कहा था।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १०-४-१९२४

३२०. पत्र : इस्माइल अहमदको

पोस्ट अन्धेरी
१० अप्रैल, १९२४

प्रिय मित्र,

मुझे आपका पत्र मिला। इसके लिए मैं आपको धन्यवाद देता हूँ। आशा करता हूँ कि मैं 'यंग इंडिया' के स्तम्भोंमें इसका उपयोग कर सकूँगा।

आशा तो यही है कि ईश्वर मुझे इसपर चलनेके लिए प्रकाश और बल प्रदान करेगा। यदि आप बारडोली सम्बन्धी निर्णयको गम्भीर भूल मानते हों तो मेरा खयाल है कि मैं सुधर ही नहीं सकता। यदि मुझे सत्यमें अपनी निष्ठा ज्योंकी-त्यों बनाये रखनी है तो बहुत सम्भव है मुझसे अभी ऐसी अनेक गम्भीर भूलें हों।

हृदयसे आपका,

श्री इस्माइल अहमद
खोलवाड
सूरत

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ८७०१) से।

३२१. पत्र : के० एम० पणिक्करको

पोस्ट अन्धेरी
१० अप्रैल, १९२४

प्रिय पणिक्कर,

वहाँके सब समाचार मुझे आपके द्वारा नियमित रूपसे मिलते रहते हैं। किन्तु मेरी नीति क्रमशः आगे बढ़नेकी है। आपने जिस तारमें यह लिखा है कि जत्थेने शान्तिपूर्वक समर्पण कर दिया, वह मुझे मिल गया है। मैं जानता हूँ कि विजय प्राप्त करनेका मार्ग यही है, दूसरा नहीं।

आप वाइकोम मन्दिरके सम्बन्धमें जो-कुछ कहते हैं, उसे मैं समझता हूँ। आपने देखा होगा मैंने अपने पत्रमें[1] कुछ भी निश्चयात्मक रूपसे नहीं कहा है, किन्तु तबसे घटनाएँ बड़ी तेजीसे घटी हैं और उतनी ही तेजीसे मैं आगे बढ़ा हूँ। मैं आपकी इस बातसे सहमत हूँ कि त्रावणकोरमें जो आन्दोलन आरम्भ किया गया है, वह बहुत

१. जान पड़ता है कि यहाँ "पत्र : के० पी० केशव मेननको", १-४-१९२४ का उल्लेख किया गया है, जो ३-४-१९२४ के **हिन्दू** में प्रकाशित हुआ था।

महत्त्वपूर्ण है। इतना ध्यान अवश्य रखना चाहिए कि सत्याग्रही पर्याप्त संख्यामें हों, ताकि लड़ाई अन्ततक चलाई जा सके।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत के० एम० पणिक्कर
अकाली सहायक संघ
अमृतसर

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ८७०३) से।

३२२. पत्र : मुहम्मद अलीको

पोस्ट अन्धेरी
१० अप्रैल, १९२४

मेरे अजीज दोस्त और भाई,

आपके दोनों पत्र मिल गये, एक आपके सेक्रेटरीका लिखा हुआ पत्र जिसके साथ वह पत्र नत्थी है जो आपको मिला है और दूसरा आपका अपना लिखा हुआ।

मैं सहपत्रके सम्बन्धमें अपने ढंगसे कार्रवाई कर रहा हूँ। आप जब यह समझें कि आप बड़े भाई साहबके[1] पाससे बिना कोई जोखिम उठाये हट सकते हैं, तभी आयें।

मैंने आपको अपनी ओरसे आश्वासन भेज दिया है और उसे यहाँ फिर दोहराता हूँ कि इन दोनों प्रश्नोंके सम्बन्धमें, आपसे मिले बिना मैं अपने विचार प्रकाशित नहीं करूँगा। आप अपना काम फुरसतसे करें। आप देखेंगे कि आपने स्वामीजीको जो पत्र लिखा है उसका मैंने 'यंग इंडिया'के[2] स्तम्भोंमें उपयोग किस तरह किया है।

वर्तमान उत्तेजनाका दोष दोनों पक्षोंपर है, मुझे इस कथनके पक्षमें करनेके लिए किसी भी प्रकारका अनुरोध जरूरी नहीं है; और मैं यह आशा कर रहा हूँ कि जब अवसर उपस्थित होगा ईश्वर मुझे सत्य, पूर्ण सत्य और उतना ही सत्य कहनेकी शक्ति और साहस देगा जितनेका मुझे बोध है।

मैं नहीं जानता कि देवदासने डाक्टर अन्सारीको क्या लिखा है, किन्तु उस बेचारेने मुझे यह बताया है कि उसके पत्रमें ऐसा एक भी शब्द नहीं है जिससे आपको अथवा डा० अन्सारीको कुछ भी परेशानी हो। लेकिन शायद आप यह चाहते हैं कि

१. शौकत अली, जो बीमार पड़े थे और जिनकी हालत फिर खराब हो गई थी। गांधीजीको शौकत अलीके लड़के जहीर अलीका ६ अप्रैलको एक पत्र मिला था। इसमें उसने लिखा था कि मुहम्मद अली गांधीजीसे मिलनेके लिए तबतक बम्बई रवाना नहीं हो सकते जबतक उनके भाईकी हालतमें सुधार नहीं हो जाता।

२. देखिए "असत्य कथनका आन्दोलन" तथा "मौलाना मुहम्मद अली और उनके आलोचक", १०-४-१९२४।

३२४. पत्र : महादेव देसाईको

[१० अप्रैल, १९२४ के पश्चात्][1]

भाईश्री महादेव,

इसके साथ 'यंग इंडिया' की सामग्री भेजता हूँ। कुछ सामग्री तो तुम्हारे पास ही पड़ी है। इसमें जहाँ-जहाँ तुम्हें भूलें दिखाई दें वहाँ-वहाँ सुधार करनेमें संकोच न करना।

इस सप्ताहके अंकमें यह वाक्य अशुद्ध है। "माई पर्पज इज़ टू शो दैट मिस्टर वैंदरलीज व्यू ऑफ इंडियन नॉन को-ऑपरेशन कैन नॉट फेल टू वी ऑफ जनरल इन्टरेस्ट।" इस वाक्यका अर्थ कुछ नहीं होता। यह वाक्य इस तरह होना चाहिए: "माई पर्पज . . . मि० डब्ल्यूज़ व्यू इज़ आलटुगेदर रॉंग। हिज व्यू, रॉंग दो इट इज, कैन नॉट फेल टू वी ऑफ जनरल इन्टरेस्ट।[2]" असलमें तो दूसरे वाक्यको निकाल दें तो भी कोई हर्ज नहीं। यह यहाँ गैरजरूरी ही है। किन्तु 'जनरल इन्टरेस्ट' की बात लिखी है इसलिए मैंने उसे कायम रखते हुए यह बताया है कि तुम ऐसे अर्थहीन वाक्योंको कैसे सुधार सकते हो। इस सम्बन्धमें यहाँ सावधानी तो रखी जा सकती है, किन्तु मैं देखता हूँ कि फिर भी भूलें रह जाती हैं। मेरी सलाह यह भी है कि तुम भूलोंको सुधारकर 'यंग इंडिया' की फाइल रखो, जिससे गणेशन्[3] अथवा कोई दूसरा उसके लेखोंको फिर छापे तो उनका शुद्ध पाठ ही छपे।

हमें 'नवजीवन' और 'यंग इंडिया' की ग्राहक-संख्यामें वृद्धि न होनेसे चिन्ता करनेकी जरूरत नहीं है। ५०,०००[4] रुपयेकी रकमका खयाल किसीने नहीं किया है, क्योंकि सभी लोग घबरा गये हैं। इस उदाहरणका अनुकरण करनेके लिए भी लिखना चाहिए न? किन्तु यह कैसे लिखा जा सकता है? हमारी जानकारीमें तो हमारे पत्र जिस तरह निकलते हैं उस तरह कोई पत्र कहीं नहीं निकलता। इसलिए तत्सम्बन्धी टिप्पणीके न होनेका अफसोस मत करना।

बापूके आशीर्वाद

१. दूसरे अनुच्छेदमें उद्धृत अंग्रेजीका वाक्य १०-४-१९२४ के **यंग इंडिया**में प्रकाशित हुआ था। देखिए "असहयोग हिंसाका तरीका नहीं है", पृष्ठ ४३३-३६।

२. "मेरा हेतु यह बताना है कि भारतीय असहयोग आन्दोलनके सम्बन्धमें श्री वैंदरलीका विचार बिलकुल गलत है। किन्तु गलत होते हुए भी वह मोटे तौरपर रोचक अवश्य जान पड़ेगा।"

३. मद्रासकी गणेशन एंड कं० जिसने गांधीजीके **यंग इंडिया**में प्रकाशित १९१९ से १९२२ और १९२२ से १९२४ तकके लेख छापे थे।

४. यह रकम **नवजीवन**की आयमें से ५ सालमें बची थी; देखिए "नवजीवनके पाठकोंसे", ६-४-१९२४।

[पुनश्च :] रामदासका स्वास्थ्य ठीक है।

'द मौलानाज रेजिगनेशन फ्राम दी प्रेसीडेंटशिप' और 'वाज आई पार्शियल?' लेख मुझे पसन्द नहीं हैं। यदि वे तुम्हें भी पसन्द न हों तो उन्हें निकाल देना। इनके बिना भी पर्याप्त लेख-सामग्री है।

मूल गुजराती पत्र (एस० एन० ११४२०) की फोटो-नकलसे।

३२५. कौंसिल-प्रवेशके सम्बन्धमें विचार[1]

[११ अप्रैल, १९२४ के पूर्व]

व्यवस्थापिका सभाओंमें जाना और फिर वहाँ असहयोग करना उचित है या नहीं, इस सम्बन्धमें पण्डित मोतीलालजी और मेरे बीच लम्बी बातचीत हुई। मुझे दूसरे स्वराज्यवादी मित्रोंसे भी बातचीत करनेका सुअवसर मिला। किन्तु पूरा प्रयत्न करनेपर भी असहयोग-नीतिके अनुकूल मुझे कोई ऐसा आधार नहीं मिल पाया जिस-पर हम सब सहमत हो जाते। मैं अपनी इस रायपर कायम हूँ कि कौंसिल-प्रवेशकी असहयोगसे संगति नहीं बैठती। स्वराज्यवादियों और मेरे बीच प्रामाणिक और मौलिक मतभेद है। मैं यह बात उनके गले नहीं उतार सका कि चाहे जितना घटा-कर कहा जाये व्यवस्थापिका सभाओंमें जानेकी अपेक्षा उनसे बाहर बने रहना देशके लिए कहीं अधिक लाभप्रद है। किन्तु मैं मानता हूँ कि जबतक उनकी राय भिन्न है, उन्हें निस्सन्देह कौंसिलोंमें जाना चाहिए। हम सबके लिए यही सर्वोत्तम मार्ग है। यदि उन्हें सफलता मिलती है और देशको लाभ पहुँचता है तो ऐसे प्रत्यक्ष प्रमाणसे मेरे जैसे सच्चे शंकाशील लोगोंको अपनी भूलकी प्रतीति हुए बिना न रहेगी; और इसी तरह मैं यह भी जानता हूँ कि यदि अनुभवसे उनकी धारणा झूठी साबित हुई तो उनमें इतनी देशभक्ति अवश्य है कि वे अपना कदम पीछे हटा लेंगे। इस-लिए मैं उनके मार्गमें किसी तरहका अड़ंगा डालनेमें सहायक नहीं होना चाहता। और जिस योजनामें मेरा विश्वास नहीं है उसमें मैं सक्रिय सहायता नहीं दे सकता।

मेरा मतभेद कौंसिलोंमें काम करनेके तरीकेके बारेमें भी है। मैं कौंसिलोंमें जाकर अड़ंगा लगानेकी नीतिमें विश्वास नहीं रखता। मैं किसी व्यवस्थापिका सभामें केवल तभी जाऊँगा जब मैं यह देखूँ कि मैं उसका उपयोग किसी-न-किसी लाभदायक रूपमें कर सकता हूँ, इसलिए यदि मैं कौंसिलोंमें जाऊँगा तो मैं वहाँ कांग्रेसके

१. यह गांधीजीके हाथका लिखा है और इसमें उन्होंने कई जगह संशोधन किये हैं। कांग्रेस-जन व्यवस्थापिका परिषदों और असेम्बलीमें वापस जायें या न जायें इस उलझन-भरे प्रश्नपर स्पष्टतः ये गांधीजीके प्रथम लिखित विचार हैं। गांधीजीने इस विवादास्पद विषयपर अपना यह मत २९ मार्चसे लेकर ५ अप्रैल तक सप्ताह-भर बम्बईमें पं० मोतीलाल नेहरू, लाला लाजपतराय और अन्य स्वराज्यवादी नेताओंसे बातचीत करनेके बाद स्थिर किया था। सम्भव है गांधीजीने ये विचार ११ अप्रैलके अपने कौंसिल-प्रवेश सम्बन्धी मसविदेको, जो अगले शीर्षकमें दिया गया है, तैयार करनेसे पूर्व लिखे हों।

रचनात्मक कार्यको मजबूत करनेका प्रयत्न करूँगा। इसलिए मैं ऐसे प्रस्ताव रखूंगा जिनमें केन्द्रीय और प्रान्तीय सरकारोंसे (१) अपनी कपड़ेकी जरूरत पूरी करनेके लिए हाथकते सूतकी और हाथवुनी खादी खरीदनेका, (२) विदेशी कपड़ेको यहाँ आनेसे रोकनेके लिए भारी कर लगानेका और (३) शराव और नशीली चीजोंके भण्डारोंको वन्द करनेका और फौजके खर्चमें उसी अनुपातमें कमी करनेका आग्रह होगा। यदि सरकार व्यवस्थापिका सभाओंमें पास किये इन प्रस्तावोंको कार्यान्वित करनेसे इनकार करेगी तो मैं उससे इनको भंग करने और विशेष मुद्दोंपर मतदाताओंकी राय लेनेके लिए कहूँगा। यदि सरकार इनको भंग नहीं करेगी तो मैं त्यागपत्र दे दूंगा और देशको सत्याग्रहके लिए तैयार करूँगा। जव वह अवस्था आयेगी तव स्वराज्यवादी यह देखेंगे कि मैं उनके साथ मिलकर और उनकी अधीनतामें काम करनेके लिए तैयार हूँ। देश सत्याग्रहके लिए तैयार है या नहीं यह जाननेकी मेरे विचारसे वही कसौटी होगी, जो पहले थी।

इस प्रायोगिक कालमें मैं अपरिवर्तनवादियोंको यह सलाह दूंगा कि स्वराज्यवादी क्या कर रहे हैं अथवा क्या कह रहे हैं, इसका कोई खयाल किये विना वे अपनी आस्थाकी सचाई सिद्ध करें और पूरी शक्ति और पूरी तन्मयतासे अपने कार्यक्रमोंपर अमल करें। चुपचाप, सचाईसे और दिखावा किये विना काम करनेमें विश्वास रखनेवाले वहुसंख्यक कार्यकर्त्ता खद्दरके प्रचार और राष्ट्रीय पाठशालाओंके संचालनमें ही खप सकते हैं। कार्यकर्त्ताओंको हिन्दू और मुस्लिम समस्यामें भी अपनी सारी शक्ति और आस्था लगा देनी पड़ेगी। जैसा कि वाइकोम सत्याग्रहसे प्रकट हो रहा है, हिन्दुओंके सम्मुख अस्पृश्यता-निवारण एक वहुत वड़ी समस्याके रूपमें उपस्थित है। कौंसिलोंके वाहर इस प्रकारके समस्त कार्योंमें अपरिवर्तनवादी और परिवर्तनवादी दोनों मिलकर काम कर सकते हैं।

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ८७१८) की फोटो-नकलसे।

३२६. कौंसिल-प्रवेशसे सम्बन्धित वक्तव्यका पहला मसविदा[1]

११ अप्रैल, १९२४

असेम्बली और कौंसिलोंमें कांग्रेसजन प्रवेश करें या न करें इस बहुचर्चित प्रश्न-पर स्वराज्यवादी मित्रोंसे बातचीत करनेके बाद मुझे खेदके साथ यह कहना पड़ता है कि स्वराज्यवादी मित्रोंसे मेरे विचार बिलकुल नहीं मिले। मैं पाठकोंको विश्वास दिलाता हूँ कि स्वराज्यवादियोंकी स्थितिको समझनेकी दिशामें मेरी ओरसे इच्छा अथवा प्रयत्नकी कोई कमी नहीं रही। यदि मैं स्वराज्यवादियोंके कार्यक्रमसे सहमत हो पाता तो मेरा कार्य बहुत सरल हो जाता। इन अत्यन्त प्रतिष्ठित और परखे हुए नेताओंका विरोध करना, यहाँतक कि मनमें विरोधकी भावना लाना मेरे लिए सुखद नहीं हो सकता। इनमें से कुछ नेताओंने तो देशके लिए भारी त्याग किया है और मातृभूमिकी स्वतन्त्रताके प्रति उनका प्रेम किसी भी दूसरे मनुष्यसे कदापि कम नहीं है। किन्तु अपने इस प्रयत्न और अपनी इस इच्छाके बावजूद उनके तर्कोंसे मेरा पूरा समाधान नहीं हो सकता। उनसे मेरा मतभेद केवल ब्योरेके बारेमें हो, ऐसी बात भी नहीं है। दुर्भाग्यसे यह मतभेद सिद्धान्तके मूल आधारतक जा पहुँचा है। यदि केवल ब्योरेके बारेमें ही मतभेद होता तो मैं अपने विचारको चाहे वह कितना ही दृढ़ क्यों न होता, त्याग देता और समझौतेकी खातिर स्वराज्यवादी दलमें सम्मिलित हो जाता तथा अपरिवर्तनवादियोंको स्वराज्यवादी दलसे हार्दिक सहयोग करनेकी और उसके कार्यक्रमको राष्ट्रीय कार्यक्रम बना लेनेकी सलाह देता। किन्तु चूँकि यह मतभेद, जैसा मैं कह चुका हूँ, बुनियादी है इसलिए ऐसा रुख अपनाना असम्भव हुआ। मेरा विश्वास है कि व्यवस्थापिका सभाओंमें प्रवेश करनेसे स्वराज्यकी दिशामें हमारी प्रगति मन्द पड़ गई है और मेरा यह विश्वास, विचार और अनुभवके बलपर, दिन-प्रति-दिन अधिकाधिक दृढ़ होता जा रहा है। अपने उक्त विश्वासके कारण नीचे दे रहा हूँ। मेरी विनम्र सम्मतिमें :

१. स्पष्ट है कि यह टाइप किया हुआ कागज गांधीजीके "कौंसिल-प्रवेशके सम्बन्धमें विचार" का विशद रूप है। उन्होंने इसका शीर्षक "फर्स्ट ड्राफ्ट ऑफ स्टेटमेंट ऑन दि कौंसिल्स क्वेस्चन" दिया था और उसपर लिखा हुआ है: "बिलकुल कच्चा, अधूरा, असंशोधित, गोपनीय, प्रकाशनके लिए नहीं।" गांधीजीने यह मसविदा १३ अप्रैलको पं० मोतीलाल नेहरूको भेजा था; देखिए पृष्ठ ४६५। मोतीलालजीने उत्तरमें गांधीजीको एक विस्तृत टिप्पणी लिखकर भेजी थी; देखिए परिशिष्ट १४। इसमें उन्होंने गांधीजीके मसविदेकी बातोंका सूक्ष्म और स्पष्ट आलोचनात्मक विश्लेषण किया था और अपने सुझाव दिये थे। गांधीजीने तब अपना अन्तिम मसविदा तैयार किया जिसे उन्होंने कुछ छोटे-मोटे शाब्दिक परिवर्तन करके २२ मईको वक्तव्यके रूपमें अखबारोंको भेजा था। देखिए खण्ड २४।

(क) व्यवस्थापिका सभाओंमें प्रवेश करनेका अर्थ वर्तमान शासन-प्रणालीमें प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूपसे भाग लेने-जैसा है; क्योंकि व्यवस्थापिका सभाएँ वर्तमान प्रणालीको कायम रखनेके लिए बनाये गये तन्त्रकी एक मुख्य अंग हैं।

(ख) अवरोधके कार्यक्रममें हिंसाकी तीव्र गन्ध आती है और उससे सविनय अवज्ञाके योग्य भूमि तैयार करनेके लिए आवश्यक शान्त वातावरण उत्पन्न नहीं हो सकता। कांग्रेसने सविनय अवज्ञाको ही ऐसा तरीका माना है जिसके लिए जनताको तैयार किया जा सकता है और जो सशस्त्र विद्रोहका प्रभावकारी विकल्प बन सकता है।

(ग) इससे रचनात्मक कार्य अर्थात् चरखेके प्रचार, विभिन्न जातियोंकी एकता, अस्पृश्यता-निवारण, पंचायत-प्रथाके विकास, राष्ट्रीय पाठशालाओंके संचालन और इस कार्यक्रमको चलानेके लिए आवश्यक धन-संग्रहके कार्यको आगे बढ़ानेमें बाधा उत्पन्न हुई है।

(घ) यदि यह मान भी लें कि कौंसिल-प्रवेश वांछनीय है, तो भी वह अभी असामयिक है। सभी लोग इस बातको मानेंगे कि व्यवस्थापिका सभाओंमें स्वराज्य दलने जिस अनुशासनका परिचय दिया है उसका कारण है कांग्रेस द्वारा १९२० से अबतक लगन और व्यवस्थित ढंगसे किया हुआ कार्य; किन्तु निराशाओंके बावजूद अनुशासन अथवा व्यवस्था बनाये रखना कांग्रेसी कार्यकर्त्ताओंके स्वभावका अंग नहीं बन पाया है। पिछले चार सालके अनुभवसे प्रकट होता है कि यदि कष्ट-सहनका यह सिलसिला लम्बे अर्सेतक चला तो सम्भवतः अनुशासन और लगनसे काम करनेकी आदत जाती रहेगी। वर्तमान व्यवस्थापिका सभाओंमें ऐसा वातावरण नहीं होता जिसमें सत्य और अहिंसाकी प्रवृत्ति बन सके। इसके विपरीत उस वातावरणमें नित्य ऐसे मौके आते रहते हैं जब आदमी इन गुणोंको त्याग देनेके लिए बरबस ही ललचा जाता है।

(ङ) कौंसिल-प्रवेशका अर्थ है खिलाफत और पंजाबके प्रश्नोंको छोड़ देना।

मैं उपर्युक्त आपत्तियोंके समर्थनमें विस्तृत तर्क देना नहीं चाहता। मैं केवल इस बुनियादी आपत्तिके सम्बन्धमें कुछ शब्द कहना चाहता हूँ कि कौंसिल-प्रवेशका अर्थ करीब-करीब हिंसामें भाग लेना है। कहा गया है कि मैं अहिंसाका जो आत्यन्तिक अर्थ लेता हूँ वैसा आत्यन्तिक अर्थ कोई दूसरा नहीं लेता और ज्यादातर कांग्रेसजन अहिंसाकी परिभाषा विरोधीको शारीरिक क्षति न पहुँचाने तक ही करते हैं। मैं इस कथनकी सत्यतापर सन्देह प्रकट करना चाहता हूँ। यदि यह सच भी हो तो भी यह तर्क मेरे बताये हुए बुनियादी मतभेदके विरुद्ध नहीं है; बल्कि कांग्रेसके सिद्धान्तोंको बदलने और कांग्रेसके प्रस्तावोंमें जहाँ-कहीं भी "अहिंसा" शब्द विशेषणके रूपमें आता है वहाँसे उसे हटानेके पक्षमें जाता है, क्योंकि यह बात हर व्यक्तिको स्पष्टतः समझ लेनी चाहिए कि यदि कोई असहयोगी अपने विरोधीको शारीरिक क्षति पहुँचानेसे बचता हुआ भी अपनी वाणीसे उसे चोट पहुँचाये और मनसे उसका बुरा चाहे तो यह संघर्ष अवश्य ही विफल हो जायेगा। ऐसी अहिंसा केवल भ्रामक आवरण है और उससे सविनय अवज्ञाके लिए उपयुक्त वातावरण कदापि उत्पन्न नहीं हो सकता; क्योंकि इस अवस्थामें सदा सरकारी अधिकारियों और सहयोगियोंके विरुद्ध किये गये प्रत्येक हिंसात्मक प्रदर्शनको हमारा मौन समर्थन प्राप्त होता रहेगा।

इसी मतकी रक्षाके लिए रौलट कानूनके विरुद्ध किये गये आन्दोलनके दिनोंमें अमृतसर, वीरमगाँव और अहमदाबादमें आग लगाने और लोगोंकी जान लेनेकी घटनाएँ होनेके बाद और असहयोग आन्दोलनके दिनोंमें बम्बई और चौरीचौरामें उपद्रवी भीड़ों द्वारा हिंसा किये जानेके बाद सविनय अवज्ञा आन्दोलन स्थगित कर दिया गया था। मैंने जब-जब सविनय अवज्ञा स्थगित करनेकी सलाह दी है तब-तब राष्ट्रने उसे स्वीकार किया है और यदि उसने यह स्वीकृति सचाईसे दी हो तो मेरा यह खयाल उचित ही है कि राष्ट्रने अहिंसाको पूरे अर्थोंमें समझ लिया है और स्वीकार कर लिया है, किन्तु उसका प्रयोग जिस उद्देश्यको ध्यानमें रखकर उसे स्वीकार किया गया है, उसी तक सीमित है।[1]

कौंसिल-प्रवेशके सम्बन्धमें चूंकि मेरे ऐसे विचार हैं, इसलिए निष्कर्ष यह निकलता है कि यदि मैं स्वराज्यवादियोंको अपना कदम वापस लेने और असेम्बली और कौंसिलोंको त्यागनेके लिए तैयार कर सकता तो अवश्य तैयार करता। किन्तु यदि अपने उठाये गये कदमकी उपयोगिताके सम्बन्धमें वे मुझे विश्वास नहीं दिला सके तो मैं भी उन्हें अपना दृष्टिकोण नहीं समझा सका हूँ। लेकिन उनके पल्ले कुछ शानदार जीतें हैं और वे औचित्यपूर्वक उनका उल्लेख कर सकते हैं। मैं रिहा किया गया हूँ, खद्दर ऊँचीसे-ऊँची जगहमें प्रत्यक्ष देखा जा सकता है, और अवरोधने सरकार-को वैध प्रणालीका त्याग करके प्रमाणपत्रोंका सहारा लेकर कानून बनानेपर विवश किया है। यदि कांग्रेसने गयामें कौंसिल-प्रवेशका पूरा समर्थन किया होता तो स्वराज्य दल अपना संगठन इतने प्रभावकारी रूपमें कर सका होता कि गैर-स्वराज्यवादियोंको चुनावमें एक भी स्थान न मिल पाता और तब स्वराज्य दलकी यह अवरोध-सम्बन्धी सफलता पूर्ण हो जाती। यदि मैं कहूँ कि ये सभी बातें असहयोगके पहले भी की जा सकती थीं तो स्पष्ट ही मेरा वह कहना व्यर्थ होगा। यदि आपका उद्देश्य कैदियों-को रिहा कराना होता तो आप अकेले गांधीको ही नहीं बल्कि हसरत मोहानी-जैसे अनेक लोगोंको और पंजाबके समस्त कैदियोंको भी रिहा करा सकते थे। यह कहना भी बेकार है कि खद्दरको ऊँची जगह आसीन कर देना और इतने नरमदलियोंको कौंसिलोंसे बाहर रखना भी कोई बड़ी बात नहीं है। सरकारका तन्त्र नरमदलियोंके बिना और अवरोध किये जानेपर भी बिना किसी बाधाके चलता रहता है। यह तर्क देनेमें भी कोई ज्यादा फायदा नहीं है कि कौंसिलोंमें प्रवेश करनेसे जो-कुछ लाभ होना सम्भव है वह उचित आन्दोलन करके १९२० में भी प्राप्त किया जा सकता था। सरकार चाहे स्वीकार न करे, फिर भी यह बहुत अधिक सम्भव है कि सुधारोंकी दिशामें कुछ सुखद प्रगति होगी; किन्तु मुझे इसमें कोई सन्देह नहीं है कि हमें जो-कुछ भी दिया जायेगा वह, कांग्रेसका कार्यक्रम जिस उद्देश्यको ध्यानमें रखकर बनाया गया था और अब बनाया गया है उसकी अपेक्षा बहुत कम होगा।[2]

१. वक्तव्यके अन्तिम मसविदेमें अहिंसाके प्रश्नका यह विवेचन नहीं आया है।

२. असहयोग और स्वराज्यवादियोंके कार्यक्रमके सापेक्ष प्रभावोंकी यह तुलना अन्तिम मसविदेमें से निकाल दी गई है।

यह आशा नहीं की जानी चाहिए कि स्वराज्यवादियोंका समाधान किसी तर्कसे किया जा सकता है। उनमें से बहुतसे लोग अत्यन्त योग्य, अनुभवी और सच्चे देशभक्त हैं। वे इतना विरोध किये जानेपर भी व्यवस्थापिका सभाओंमें बिना पूरी तरह सोचे-समझे प्रविष्ट नहीं हुए हैं और उनसे यह आशा भी नहीं की जानी चाहिए कि जबतक उन्हें अनुभवसे कार्यक्रमकी व्यर्थताका विश्वास न हो जायेगा तबतक वे अपनी नीतिको त्याग देंगे। इसलिए देशके सम्मुख प्रश्न स्वराज्यवादियोंके विचारों और मेरे विचारोंकी जांच-पड़ताल करनेका और उनकी अच्छाई और बुराई बतानेका नहीं है। प्रश्न यह है कि कौंसिल-प्रवेश तो हो चुका; अब उसके विषयमें करना क्या चाहिए। स्वराज्यवादियोंके कार्यक्रमका अपरिवर्तनवादी — मानसिक ही सही — विरोध करते रहें अथवा तटस्थ रहें और जहां सम्भव हो एवं जहाँ वह उनके सिद्धान्तोंसे मेल खाता हो, वहाँ उनको सहायता भी दें। दिल्ली और कोकोनाडाके प्रस्तावोंमें ऐसे कांग्रेसजनोंको जिन्हें कौंसिल-प्रवेशमें कोई सैद्धान्तिक आपत्ति नहीं है, इसकी अनुमति दे दी गई है कि यदि वे चाहें तो कौंसिलों और असेम्बलीमें जा सकते हैं। इसलिए मेरी रायमें स्वराज्यवादियोंके लिए व्यवस्थापिका सभाओंमें प्रवेश करना और अपरिवर्तनवादियोंकी ओरसे पूर्ण तटस्थताकी अपेक्षा करना उचित है। अवरोधका आश्रय लेना भी उनके लिए ठीक है, क्योंकि यह उनकी नीति ही है और कांग्रेसने उनके कौंसिल-प्रवेशकी कोई शर्त नहीं रखी है।

जहांतक मेरा सम्बन्ध है, मैं तो अहिंसामें सोलहों आने विश्वास करनेवाला आदमी हूँ। इस कारण मेरी स्थिति सन् १९१९ में अमृतसरमें जैसी थी वैसी ही बनी हुई है। मैं कौंसिलोंमें पहुँचकर किसी भी रूप अथवा प्रकारका अवरोध पैदा करनेमें विश्वास नहीं करता। मेरी समझमें तो यह समयकी बरबादीके सिवा और कुछ नहीं है। मैं तो कौंसिलोंमें केवल तभी प्रवेश करना चाहता हूँ जब मुझे यह विश्वास हो कि मैं उनका उपयोग देशकी उन्नतिके लिए कर सकता हूँ। इसके लिए मुझे इस तन्त्रमें और जिनके हाथमें वह है उन अधिकारियोंमें विश्वास रखना आवश्यक है। यह नहीं हो सकता कि मैं उस तन्त्रका अंग भी बना रहूँ और उसे नष्ट भी करना चाहूँ।

इसलिए कौंसिल-प्रवेशको आवश्यक बुराई मानते हुए यदि मैं इनमें से किसी संस्थाका सदस्य हो जाऊँ तो मुझे वहाँ कांग्रेसके रचनात्मक कार्यक्रमको पूरा करना चाहिए। दो काम तो तत्काल किये जा सकते हैं: एक प्रस्ताव पास करके केन्द्रीय सरकार और प्रान्तीय सरकारोंसे अनुरोध किया जाये कि वे अपने समस्त विभागोंकी जरूरत पूरी करनेके लिए केवल हाथकते सूतकी और हाथबुनी खादी ही खरीदें और दूसरे प्रस्तावमें शराब और नशीली चीजोंसे होनेवाली पूरी आयको समाप्त करने और उससे जो घाटा हो उसको पूरा करनेके लिए सेनाके खर्चमें उतनी ही कमी करनेकी माँग की जाये। सम्भव है सरकार इन प्रस्तावोंकी भी परवाह न करे। यदि सरकार इन प्रस्तावोंपर अमल करनेसे इनकार कर दे तो क्या किया जाना चाहिए, यह कहनेमें मैं असमर्थ हूँ। सचाई यह है कि चूंकि मेरी मन:स्थिति कौंसिलोंके अनुरूप नहीं है, इसलिए इस सम्बन्धमें इससे अधिक कुछ कहना मेरे लिए कठिन है।

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ८७१३) की फोटो-नकलसे।

३२७. पत्र : महादेव देसाईको

शुक्रवार [११ अप्रैल, १९२४][1]

भाईश्री महादेव,

पहली भूल गोलिकेरेने की। उसके बाद मैंने, और कहा जा सकता है कि उसके बाद तुमने की। तुम तो यही मान लेते हो कि हर बातमें मैं तुम्हारा ही दोष देखता हूँ। मैंने गोलिकेरेको अपने ही नामसे कार्ड लिखनेको कहा था। उसने यह समझा कि उसे यह चिट्ठी मेरे नामसे लिखनी है और उसपर मेरे हस्ताक्षर कराने हैं। जब मैंने यह देखा कि उसने तो यही मान लिया कि मैं कोई विशेष कारण न होते हुए भी तुम्हें अंग्रेजीमें लिखूँगा और वह पत्रको टाइप करके और उसे मेरी सहीके लिए रखकर घर चला गया है तब मैंने उसपर अपने हस्ताक्षर तो कर दिये, किन्तु उसपर यह टिप्पणी भी लिख दी कि 'यह भूल हुई।' मैंने यह सोचा था कि इसमें जो विनोद है उसे तुम समझ लोगे। उसके बाद मुझे तुम्हारे 'किंगडम ऑफ हैवन' सम्बन्धी पत्रकी याद आई। पत्रमें उसका अर्थ लिखनेके लिए पर्याप्त स्थान छूटा हुआ था; इसलिए मैंने उसका अर्थ वहाँ लिख दिया। इस अर्थका पत्रमें लिखी बातसे कोई सम्बन्ध ही नहीं था। मैंने तुम्हारा गुजराती अनुवाद तो पढ़ा ही नहीं था। मैंने यह केवल तुम्हारे पत्रको ध्यानमें रखकर ही लिख दिया था। मैंने तुम्हारा अनुवाद तो अभी तक नहीं पढ़ा है। अब सब बातें स्पष्ट हो गई न? इसमें गोलिकेरेने पहले भूल की। इसके बाद मैंने भूल की, क्योंकि मैंने जो-कुछ लिखा उससे तुम्हें भ्रम हुआ। फिर मानें तो तुमने भूल की, क्योंकि तुम मेरा अर्थ नहीं समझ सके और तुमने मेरी टिप्पणीका गलत अर्थ निकाला। तुमने 'किंगडम ऑफ अर्थ'के विरुद्ध 'किंगडम ऑफ हैवन'का अर्थ ठीक ही किया है। फिर भी चूँकि मैंने अभी उसे ठीक-ठीक नहीं पढ़ा है इसलिए निश्चित रूपसे नहीं कह सकता। मोक्ष इत्यादिकी चर्चा अभी तो नहीं की जा सकती।

कौंसिल-प्रवेशके सम्बन्धमें मैंने अबतक के अपने विचारोंको लिखित रूप दे दिया है।[2] उसकी एक प्रति मैं तुम्हें भेज रहा हूँ। इस प्रतिको वल्लभभाईको भी पढ़वा देना। काका[3] और अन्य लोगोंको भी पढ़नेको दे देना। उसके पश्चात् तुम्हें जो विचार प्रकट करना हो वह करना।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती पत्र (एस० एन० ८७२५) की फोटो-नकलसे।

१. देखिए "पत्र: महादेव देसाईको", ४-४-१९२४की पाद-टिप्पणी २

२. देखिए पिछला शीर्षक ।

३. काका कालेलकर ।

इसी श्रेणीमें आता है। मैंने अनशन उन लोगोंको सुधारनेके लिए किया जो मेरे प्रति प्रेम रखते थे। परन्तु मैं जनरल डायर-जैसे किसी व्यक्तिको सुधारनेके लिए अनशन नहीं करूँगा। वे मेरे प्रति प्रेमभाव नहीं रखते; इतना ही नहीं, वे अपनेको मेरा शत्रु भी मानते हैं। बात तुम्हारी समझमें आ गई होगी ?

श्रीमती जोजेफका स्वास्थ्य कैसा है ?

तुम्हें धीरज रखना चाहिए। तुम एक देशी राज्यके निवासी हो, इसलिए तुम कोई शिष्टमण्डल लेकर दीवान या महाराजासे मिल सकते हो। तुम ऐसे सनातनी हिन्दुओं द्वारा, जो आन्दोलनके प्रति सहानुभूति रखते हों, एक जबरदस्त आवेदन-पत्र तैयार कराओ। जो लोग इस आन्दोलनका विरोध कर रहे हैं, उनसे भी मिलो। विनयपूर्ण सीधी कार्रवाईको तुम अनेक तरहसे बल पहुँचा सकते हो। प्रारम्भिक सत्याग्रह द्वारा तुम जनताका ध्यान आकृष्ट कर ही चुके हो। अब सबसे अधिक ध्यान इस बातका रखना है कि यह आन्दोलन यों ही ठंडा न पड़ जाये या यह अधैर्यके कारण हिंसात्मक न बन जाये।

तुम्हारा,
बापू

अंग्रेजी प्रति (सी० डब्ल्यू० ५१७४) से।
सौजन्य : कृष्णदास

३३०. पत्र : डाक्टर चोइथराम गिडवानीको

पोस्ट अन्धेरी
१२ अप्रैल, १९२४

प्रिय डा० चोइथराम,

आपका लम्बा तार मिला। उसका उत्तर मैंने तार द्वारा नहीं भेजा है। आपके तारको पढ़कर अपने ढंगसे मैं दुःखी तो हुआ हूँ, परन्तु निराश नहीं। हममें से प्रत्येक व्यक्तिको अन्ततक दृढ़ बने रहना है। आशा है, आप इस कसौटीपर खरे उतरेंगे। वहाँ जो-कुछ हो रहा है, उसका समाचार देते रहिए। आपके तारसे प्रकट होता है कि आपका स्वास्थ्य अब ठीक है। क्या यह ठीक है ? जयरामदासको लिखे पत्रके[1] उत्तरकी प्रतीक्षा मैं उत्सुकतासे कर रहा हूँ।

हृदयसे आपका,

डा० चोइथराम गिडवानी
हैदराबाद (सिन्ध)

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ८७२०) से।

१. देखिए "पत्र : जयरामदास दौलतरामको", ४-४-१९२४।

३३१. पत्र : च० राजगोपालाचारीको

पोस्ट अन्धेरी
१२ अप्रैल, १९२४

प्रिय राजगोपालाचारी,

केरल प्रान्तीय सम्मेलनके मन्त्रियोंके नाम मैंने जो पत्र[1] भेजा है, उसकी नकल संलग्न कर रहा हूँ।

कौंसिल-प्रवेशके सम्बन्धमें मैंने जो मसविदा[2] तैयार किया है, उसकी प्रतिलिपि कल आपके पास भेजी है। मैंने उसे दोबारा नहीं देखा है और उसमें चर्चित विषयोंकी दृष्टिसे भी यह उसका अन्तिम रूप नहीं है। उसे तैयार करनेका उद्देश्य यही था कि मेरे स्वराज्यवादी साथी यह समझ जायें कि आज मेरी स्थिति क्या है।

कार्य-समितिकी बैठकमें शामिल होनेकी कोशिश जरूर करियेगा। और यदि जरा भी सम्भव हो तो कुछ पहले ही आ जाइए।

हृदयसे आपका,

संलग्न :
श्रीयुत सी० राजगोपालाचारी
एक्सटेंशन
सेलम

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ८७२१) की फोटो-नकलसे।

३३२. पत्र : कुमारी एलिजाबेथ शार्पको

पोस्ट अन्धेरी
१२ अप्रैल, १९२४

प्रिय बहन,

मुझे आपने जो लम्बा पत्र लिखनेका कष्ट किया है उसे मैं आपकी कृपा मानता हूँ। क्या ही अच्छा होता कि यह समस्या जितनी सरल आप बताती हैं उतनी ही सरल होती। मेरे लिए तो यह एक बहुत ही ज्वलन्त समस्या है। यदि अपने सह-मानवोंके प्रति मेरा कोई कर्त्तव्य है, तो जो लोग हाड़ और चामकी ठठरी-मात्र रह गये हैं उन्हें देखकर उनके प्रति अपने कर्त्तव्यकी याद आना अनिवार्य है। दया, करुणा

१. यह उपलब्ध नहीं है।
२. देखिए "कौंसिल-प्रवेशसे सम्बन्धित वक्तव्यका पहला मसविदा", ११-४-१९२४।

और प्रेम-जैसी कोई वस्तु संसारमें है अथवा नहीं? यदि है तो जो पुरुष और स्त्री भूखसे छीज-छीजकर मर रहे हैं और जिनके पास तन ढकनेको लगभग वस्त्र है ही नहीं, क्या मैं उनसे यह कह दूँ कि आखिरकार आप अपने पूर्वजन्मके कर्मोंका ही फल भोग रहे हैं? क्या उनके प्रति मेरा कोई फर्ज नहीं है? 'हमको पराई क्या पड़ी', क्या यही आदमीका शेवा है? ऐसी बात तो कोई अपने कलेजेपर पत्थर रखकर ही कह सकता है। यह सब लिखते हुए मेरा मन काँप रहा है। और यदि कर्मके सिद्धान्तका तात्पर्य यही है तो मैं उसका विरोध करूँगा। परन्तु सौभाग्यसे मुझे उस न्यायसे कुछ और ही सबक मिला है। एक ओर तो वह धैर्यकी शिक्षा देता है और दूसरी ओर यह अलंघ्य आदेश देता है कि वर्तमानकी पुनर्व्यवस्था करके अतीतके प्रभावको समाप्त कर दो। यकीन मानिए, जिन राजनीतिज्ञोंको आप अविवेकी मान बैठी हैं, वे वैसे अविवेकी नहीं हैं, जैसा आप सोचती हैं। जैसा कि आप स्वयं कहती हैं, आप युवती हैं। मैं इस आध्यात्मिक विषयके प्रति आपके उत्साहकी सराहना करता हूँ। तो क्या मैं एक वयोवृद्धकी हैसियतसे आपसे यह कह सकता हूँ कि आध्यात्मिकता बुराईको सिर झुकाकर स्वीकार करनेके सिद्धान्तको अस्वीकार करती है? आपने भारतके अध्यात्म-भावको जितना समझा है, उससे वह कहीं अधिक सशक्त है। जरा धीरज और गहराईसे विचार कीजिए।

आपका भाई

कुमारी एलिजावेथ शार्प
श्रीकृष्ण निवास
लीम्बडी
(काठियावाड़)

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ८७२२) की फोटो-नकलसे।

३३३. टिप्पणियाँ

एक और गलतफहमी

मौलाना मुहम्मद अलीके सम्बन्धमें जो गलतफहमी हुई थी उसका स्पष्टीकरण मैं अपने एक अग्रलेखमें कर चुका हूँ। इसी तरहकी एक अन्य गलतफहमी हकीम अजमलखाँके तिब्बिया कालेजमें हुई है। तिब्बिया कालेजमें मेरे छूटनेकी खुशीमें एक सभा हुई थी। उसमें एक हिन्दू विद्यार्थीने ईसा मसीहके साथ मेरी तुलना की। एक अन्य विद्यार्थीने इसपर आपत्ति की और कहा कि महान् पैगम्बरोंके साथ एक सामान्य मनुष्यकी तुलना करना उचित नहीं है। इस बातसे प्रथम विद्यार्थीको दुःख हुआ। क्योंकि इसमें उसे मेरा अपमान जान पड़ा। इसपर जिस विद्यार्थीने तुलनाका विरोध किया था उसने अपना दृष्टिबिन्दु समझाया और क्षमा माँगी। किसी समाचारपत्रने इसे तिलका ताड़ ही बना दिया।

इस टिप्पणीके लिखते समय ही एक समाचार मेरे पढ़नेमें आया है। कलकत्तेमें दो व्यक्ति बैठे हुए चाय पी रहे थे। उनमें से एकने मेरी प्रशंसा की और दूसरेने आलोचना की। मेरे प्रशंसकको आलोचना अच्छी नहीं लगी और वह उसपर टूट पड़ा। बादमें दोनों वीर एक-दूसरेसे भिड़ गये और अन्तमें पुलिसने दोनोंको इस हिंसक गुत्थमगुत्थासे अलग किया।

मैं इनमें से किसे जयमाला पहनाऊँ? अपने प्रशंसकको या आलोचकको अथवा दोनोंमें से किसीको भी नहीं। उत्तर देना आसान है। प्रशंसकने आलोचकपर प्रहार कर मेरी वास्तविक निन्दा की है। उसने मेरे ऊपर ही प्रहार किया है। आलोचक यदि मुझे आकर दो चाबुक मार जाता तो अपने अहिंसा-धर्मके अनुसार मैं उसे तुरन्त ही क्षमा कर देता। और यदि मुझमें बल होता तो मैं कदाचित् उसके चाबुकका चुम्बन भी करता। जिसने 'चौरासी वैष्णवनकी वार्ता' पढ़ी है उसे इस बातपर आश्चर्य न होना चाहिए। लेकिन प्रशंसकने आलोचकपर प्रहार कर मुझपर चाबुकसे भी अधिक तीव्र प्रहार किया है। उसे क्षमा प्रदान करनेकी हदतक कमसे-कम मेरी अहिंसा आज तो नहीं जाती। यदि इस प्रशंसकसे मेरी भेंट हो जाये तो उसे मेरे क्रोधको सहन करना ही होगा। आलोचकको जैसा लगा वैसा उसने कहा। लेकिन प्रशंसकने जो माना वैसा आचरण नहीं किया। स्वामीजी और मौलानाकी भाषामें तो प्रशंसकने अपने धार्मिक सिद्धान्तको निन्दित किया। और उसका धार्मिक सिद्धान्त चाहे कितना ही सुन्दर क्यों न हो तथापि आचरणमें वह आलोचककी अपेक्षा हलका उतरा।

मेरी जयमाला तो मेरे पास ही रहेगी। प्रशंसकके गलेमें तो मैं उसे कदापि नहीं डालूँगा। आलोचक तो बेचारा विपक्षी ठहरा इसलिए आजके वातावरणमें वह उसके गलेमें भी नहीं डाली जा सकती। लेकिन यदि वातावरण बदल जाये और वह माला इनमें से किसी एकको पहनानी ही पड़े तो मैं उसे आलोचकको ही पहनाऊँगा और हिमालय भाग जाऊँगा।

सहनशीलता स्वराज्यवादीका प्रथम लक्षण है। जबतक यह संसार विद्यमान है तबतक भिन्न-भिन्न विचारोंके लोग तो रहेंगे ही। स्वराज्य तो सभी मतवादियोंके लिए होगा। यदि हम लम्बी और छोटी गर्दनवाले सभी व्यक्तियोंके सिर काटने लग जायें तो समान गर्दनवाले लोगोंकी जोड़ी तो रह ही नहीं जायेगी। अर्थात् हमारे लिए दूसरोंकी स्वतन्त्रताको अपनी स्वतन्त्रता-जितना सम्मान दिये बिना छुटकारा नहीं है। सरकारके साथ हमारी लड़ाई किस बातकी है? क्या वह विचार-स्वातन्त्र्यकी ही नहीं है? मेरे विचार सरकारको बुरे लगे इसलिए उसने मुझे गिरफ्तार कर लिया। उपर्युक्त तिब्बिया कालेजके विद्यार्थीने और कलकत्तेके मेरे प्रशंसकने भी सरकारके रास्तेको ही अपनाया, इसलिए वे सरकारके सहयोगी बने। यदि हिन्दू और मुसलमान दोनों एक-साथ रहकर स्वराज्य प्राप्त करना चाहते हैं तो उन्हें निम्न पाठको कंठस्थ कर लेना चाहिए और तदनुसार आचरण करना चाहिए :

"एक-दूसरेके विचार और आचारको सहन करना और अपने-अपने आचारके पालनमें एक-दूसरेके बीच दखल न देना।"

इस सिद्धान्तपर अमल करनेमें जो पहल करेगा वह विजयी होगा। यदि दोनों एक-दूसरेकी राह देखते रहेंगे तो अन्तमें दोनों जहाँके-तहाँ ही रह जायेंगे। 'पहले आप' करते-करते गाड़ी निकल जानेका भय है।

'नवजीवन'का नया क्रोड-पत्र

'नवजीवन'का एक सामान्य क्रोड-पत्र तो समय-समयपर निकलता ही रहता है। अब शिक्षाके सम्बन्धमें एक विशेष क्रोड-पत्र प्रकाशित किया जायेगा। इसकी सूचना इस अंकमें अन्यत्र देखनेको मिलेगी। शिक्षा-सम्बन्धी यह विशेष क्रोड-पत्र हर महीने तीसरे शनिवारको प्रकाशित होगा अर्थात् उसका प्रथम अंक इस महीनेकी १९ वीं तारीखको प्रकाशित होगा। इस सूचनामें पाठक देखेंगे कि स्वतन्त्र शिक्षा-अंक प्रकाशित करनेकी बजाय किसी भी समाचारपत्रके परिशिष्टके रूपमें शिक्षा-अंक प्रकाशित करनेकी सलाह देनेवाला मैं ही हूँ। गुजरातमें बहुत-सारे अखबार निकलने लगे हैं, पुस्तकें भी बहुत प्रकाशित होती हैं। पाठकोंकी संख्यामें भी अच्छी वृद्धि हुई कही जा सकती है। जहाँ एक हजार ग्राहकोंकी संख्या सन्तोषप्रद मानी जाती थी, वहाँ अब तीन-चार हजार ग्राहकोंकी संख्या एक सामान्य बात हो गई है। इस तरह गुजरातियोंमें पढ़नेकी अभिरुचिमें वृद्धि हुई है और यह चीज निश्चय ही स्वागतके योग्य है। लेकिन उसी मात्रामें लेखकों और अखबार चलानेवालोंका उत्तरदायित्व भी बढ़ गया है। इस प्रसंगमें हमें दो बड़े सवालोंका निर्णय करना है: जनताके सम्मुख किस तरहके लेख रखे जायें और उन्हें किस तरह पेश किया जाये? पाठकवर्गको आज जो आदत पड़ जायेगी उसके स्थायी हो जानेकी सम्भावना है। जो बात बच्चों-पर लागू होती है, वही बड़ोंपर भी लागू होती है। बड़े लोग भी, जहाँतक नये अनुभव-का प्रश्न है, ठीक बच्चोंकी ही स्थितिमें हैं। बूढ़ोंको भी यदि कोई नई वस्तु पसन्द आ जाये और उनको उसकी आदत पड़ जाये तो उसमें वे बच्चोंका-सा आनन्द लेंगे और बादमें कदाचित् वह अनुचित सिद्ध हो तो भी उसे छोड़ते हुए उन्हें दुःख होगा। तात्पर्य यह कि गुजरातियोंमें पढ़नेकी रुचिमें जो वृद्धि हुई है उसे अगर निर्दोष मोड़ न दिया गया तो अन्तमें उससे हानि होनेकी आशंका है। अतएव लेखकोंको अपनी कलमपर अंकुश रखना चाहिए, इस बातका ज्ञान भी मेरे संकोचका एक कारण है। कोई कहेगा कि शिक्षा-अंकमें तो ऐसा दोष नहीं आयेगा। लेकिन शिक्षाकी पद्धतिकी क्या कोई सीमा है? मैं यह बात माननेवालों में नहीं हूँ कि समस्त पद्धतियाँ अच्छी ही होती हैं। काल, स्थान और शिष्यवर्गका विचार किये बिना रची गई पद्धतिमें बहुतसे दोष होनेकी सम्भावना है। इसलिए कोई निश्चयपूर्वक ऐसा नहीं कह सकता कि इस क्षेत्रमें कार्य करनेवाले निरंकुश हो सकते हैं।

मेरे संकोचका दूसरा कारण पाठकोंकी जेबको लेकर है। पाठकोंपर स्वेच्छा-करका बोझ भी हदसे ज्यादा नहीं पड़ना चाहिए। समस्त अखबारों और पुस्तकों आदिका प्रचार भी केवल इस नवोत्पन्न पाठकवर्गमें ही होगा। और मुझे भय है, बहुत अधिक बोझ पड़नेसे पाठकोंकी पढ़नेकी इच्छा ही नष्ट हो जायेगी।

मैंने विद्यापीठसे[1] अपने संकोचके इन दोनों कारणोंपर ध्यान देनेकी प्रार्थना की थी। इसके परिणामस्वरूप विद्यापीठने शिक्षाके लिए स्वतन्त्र मासिक निकालनेके स्थान-पर हर महीने 'नवजीवन' का एक विशेष क्रोड-पत्र निकालनेका निश्चय किया है। विद्यापीठके कार्यकर्त्ताओंको ऐसा महसूस हुआ है कि विद्यापीठकी प्रवृत्तियोंका परिचय देनेवाली और शिक्षा-सम्बन्धी उसके विचारोंको व्यक्त करनेवाली उनकी एक ऐसी स्वतन्त्र पत्रिका होनी चाहिए जो शिक्षकों, माता-पिताओं तथा शिक्षार्थियोंको सहायक सिद्ध हो। उनका यह खयाल सही है या गलत, यह तो अनुभव ही बता सकेगा। इतना तो स्पष्ट है कि विद्यापीठकी महान् प्रवृत्तियोंके सम्बन्धमें शिक्षकों, माता-पिताओं तथा शिष्योंको अभी बहुत-सी जानकारी हासिल करनी है। हम सब आशा करते हैं कि यह नया उपक्रम इस आवश्यकताको पूरा करेगा। शिक्षितवर्ग अगर उसकी सहायता करेगा तो इसमें कोई सन्देह नहीं कि यह नई प्रवृत्ति अवश्य सफल होगी।

बच गये

[दक्षिण आफ्रिकाके] भारतीयोंके सिरपर भंगीवाड़ेमें रहनेकी जो तलवार लटक रही थी उससे फिलहाल वे बच गये जान पड़ते हैं। श्रीमती सरोजिनीके प्रयत्नोंको अनपेक्षित रूपसे सफलता मिली है। जनरल स्मट्सको[2] यह लगा कि दक्षिण आफ्रिकाकी सरकारको जनताका समर्थन प्राप्त नहीं है, इसलिए उन्होंने दक्षिण आफ्रिकाकी संसद्को भंग कर नये चुनाव करवानेके अपने निश्चयकी घोषणा की है। इसके फलस्वरूप वर्तमान संसद्में जो नये कानून बनाये जानेवाले थे उन्हें फिलहाल स्थगित कर दिया गया। लेकिन नई संसद्में भी कोई भारतीयोंके साथ न्याय करनेवाले सदस्य नहीं आनेवाले हैं। दक्षिण आफ्रिकामें रहनेवाले भारतीय भाइयोंके प्रति अगर उनका रवैया वर्तमान सदस्योंसे भी अधिक कड़ा हो तो इसमें आश्चर्यकी कोई बात नहीं होगी। लेकिन "संकटसे बच निकलनेवाला व्यक्ति सौ वर्षतक जीवित रहता है", इस बातको ध्यानमें रखकर हम फिलहाल तो सन्तोष कर लेते हैं।

सजग लोकमतका मूल्य

दक्षिण आफ्रिकामें जो घटनाएँ हो रही हैं उनसे हम बहुत-कुछ सीख सकते हैं। केवल एक ही नगरमें अपने प्रतिनिधिकी हार होनेपर जनरल स्मट्सने सारे देशका कारोबार रोक दिया है। संसद्को भंग करते समय उन्होंने कहा:

"यदि हमारे पक्षको जनताका समर्थन प्राप्त नहीं है तो वे शासनमें जिन नई नीतियोंको दाखिल करना चाहते हैं उन्हें अभी तो दाखिल नहीं कर सकते। एक ही नगरके मतदाताओंने विरोधी पक्षको अपना मत दिया, हमारे लिए इतना ही पर्याप्त है।" ये वाक्य जनरल स्मट्सकी चतुराई और जनमतको स्वीकार करनेकी उनकी तत्परताके परिचायक हैं।

१. गुजरात विद्यापीठ।

२. जे० सी० स्मट्स (१८७०-१९५०); दक्षिण आफ्रिकाके प्रधान मन्त्री, १९१९-२४, १९३९-४८।

क्या यही बात हमारे देशमें भी है?

यहाँ तो सरकार सामान्य रूपसे जनमतके विरुद्ध काम करनेमें ही विश्वास रखती है। जहाँ देखो वहाँ जनमतका अनादर ही दिखाई देता है। मौलाना हसरत मोहानी अथवा श्री हॉर्निमैनके मामले सरकारकी दृष्टिसे महत्त्वहीन ही हैं। लेकिन सरकार उसमें भी जनमतके अनुसार नहीं चलना चाहती। शायद उसे जनमतका विरोध करनेमें ही रस मिलता हो।

यह चित्र और वह

दक्षिण आफ्रिकामें माननीय युवराजके आगमनकी तैयारियाँ हो रही थीं। लेकिन चूँकि अब गोरे निवासी नये चुनावोंकी सरगर्मियोंमें व्यस्त हो जायेंगे इसलिए जनरल स्मट्सने यह सन्देश भेजा कि फिलहाल तो युवराजके आगमनको स्थगित कर दिया जाये। इसलिए वह स्थगित कर दिया गया है। यह तो हुआ दक्षिण आफ्रिकाका चित्र।

आइए, अब हम १९२१ में विद्यमान यहाँकी स्थितिकी ओर देखें। एक समय ऐसा था जब यहाँकी सारी जनताने सरकारसे माननीय युवराजको यहाँ न बुलानेके लिए अनुनय-विनय की, लेकिन सरकार टससे-मस न हुई। उसने अपनी ही बात रखी। उसका परिणाम कितना बुरा निकला, उसे अभीतक कोई भूला नहीं है। जनताने उनका जो अपमान किया[1], सो अनिच्छापूर्वक ही किया। बम्बईमें जनताने शान्ति बनाये रखनेकी अपनी प्रतिज्ञापर पानी फेर दिया और क्षण-भरके लिए हमें बाजी हाथसे निकलती हुई जान पड़ी।

जनताका ऐसा अनादर कबतक चलेगा? १९२० में कलकत्ता और नागपुरमें कांग्रेसने[2] इसका जो उत्तर दिया था वह आज भी कायम है। एक वाक्यमें कहें तो वह उत्तर यह है कि जनता जबतक तैयार — योग्य — न हो जाये तबतक अर्थात्:

(१) जनता जबतक सम्पूर्ण रूपसे स्वदेशी न पहनने लगे तथा विदेशी और यहाँकी मिलोंके कपड़ेका त्याग न करे तबतक,

(२) अथवा हिन्दुओं और मुसलमानोंके दिल एक न हो जायें तबतक,

(३) अथवा अस्पृश्य और दूर रखी जानेवाली जातियोंका सत्कार करके हिन्दू शुद्ध न हो जायें तबतक,

(४) अथवा जनता कांग्रेस-तन्त्रका ठीक तरहसे संचालन करना न सीख ले तबतक,

(५) अथवा जनता व्यावहारिक शान्तिको सम्पूर्ण रूपसे मन, वचन और कर्मसे स्वीकार न करे तबतक।

१. नवम्बर १९२१ में जब युवराज बम्बई बन्दरगाहपर उतरे उस समय वहाँ जो दंगा हुआ था गांधीजीने यहाँ उसीकी ओर संकेत किया है।

२. कांग्रेसका विशेष अधिवेशन सितम्बर, १९२० में कलकत्तामें और वार्षिक अधिवेशन दिसम्बर, १९२० में नागपुरमें हुआ था।

अच्छी तरहसे विचार करनेपर यह स्पष्ट हो जायेगा कि पाँचमें से अगर हम एक चीजपर भी सम्पूर्ण रूपसे अमल कर सकें तो अन्य चार स्वयंमेव हो जायेंगी।

सरकारको दोप देना और गाली देना व्यर्थ है। इतना ही नहीं, ऐसा करना तो हमारी कायरताका सूचक है। जैसे हम हैं वैसी ही सरकार है। सरकार जनजागृतिका मापयन्त्र है।

मेरे दर्शन

एक भाईने मुझसे मिलनेके वारेमें पत्र लिखा है। उसमें से मैं निम्नलिखित अंश उद्धृत कर रहा हूँ:[1]

इस पवित्र कुटुम्बको मेरे दर्शन तो क्या करने हैं, लेकिन मैं अवश्य उसके दर्शन करके कृतार्थ हो जाऊँगा और अपनी शक्तिमें वृद्धि करूँगा। इन लोगोंसे मिलना तो रविवारको ही सम्भव हो सकेगा और मैं उस रविवारकी वाट जोह रहा हूँ। यदि सभी कुटुम्ब कांग्रेसके रचनात्मक कार्योंपर इसी तरह अमल करें तो मुझे उनके दर्शन रामवाण दवा-जैसे सिद्ध हों और हिन्दुस्तानको घर बैठे ही स्वराज्य मिल जाये।

स्वर्गीय मोतीलालसे क्षमा–याचना

ईश्वरने मुझे जो अनेक उपहार दिये हैं उनमें से एक उपहार शुभचिन्तक मित्रोंका भी है। वे निरन्तर मेरी चौकसी करते रहते हैं और मुझे भूलोंसे वचाते हैं अथवा मुझसे यदि कोई भूल हो जाती है तो उसमें सुधार करवाते हैं। तीन मित्रोंने संक्षिप्त लेकिन विवेकपूर्ण पत्र लिखकर मुझे बताया है कि 'नवजीवन'के गतांकमें वीरमगाँवमें ली जानेवाली जकातके मामलेके सम्वन्धमें लिखते हुए मैंने वढवानके स्वर्गीय दर्जी मित्रका जिक्र पोपटलालके नामसे किया है। लेकिन उनका नाम तो मोतीलाल[2] था। मित्रोंका सुधार ठीक है। नाम और चेहरे याद रखनेमें मैं वहुत कच्चा हूँ, और मुझे उम्मीद है कि यह जानकर भाई मोतीलालके सगे-सम्वन्धी मुझे माफ करेंगे। मैं स्वयं अपनेको उनका सगा-सम्वन्धी समझता हूँ। अफसोस कि मैं इतने दूरका सम्वन्धी सिद्ध हुआ हूँ कि नामतक भी याद न रख सका। मोतीलालकी आत्मा तो मुझे अवश्य माफ करेगी क्योंकि उनकी आत्माको भूल जाऊँ, ऐसा कच्चा मैं नहीं हूँ। मैं उन तीनों मित्रोंका जिन्होंने मुझे मेरी भूलका भान कराया है, उपकार मानता हूँ।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १३-४-१९२४

१. उक्त अंश यहाँ नहीं दिया जा रहा है। पत्र-लेखकने लिखा था कि अहमदावादके कांग्रेस अधिवेशनके वाद उसने, उसकी माताजी और वहनने कातनेका व्रत लिया था और उसे पूरी तरह निवाहा; अव वे लोग अपने घरमें अपना काता हुआ सूत खुद वुनते भी हैं और इस तरह अपने हाथकी कती और वुनी खादी पहननेका प्रयत्न कर रहे है। अन्तमें उसने अपनी माताजी और वहनके साथ गांधीजीके दर्शनकी अनुमति चाही थी।

२. ये सावरमती आश्रममें दर्जीका काम सिखाने आते थे। देखिए **आत्मकथा**, भाग ५, अध्याय ३।

३३४. मौलाना मुहम्मद अलीपर इलजाम

एक सज्जन लिखते हैं, गुजराती समाचारपत्रोंमें इस आशयकी खबर छपी है कि मौलाना मुहम्मद अलीने अपने एक भाषणमें कहा है कि गांधीजी महा अधम मुसलमानसे भी नीचे हैं। ये सज्जन अपने पत्रमें आगे लिखते हैं, 'मैं मानता हूँ कि मौलाना साहब ऐसा कभी नहीं कह सकते। तथापि 'नवजीवन' में यह स्पष्ट कर दिया जाना चाहिए कि बात दर-असल क्या है, जिससे गलतफहमी दूर हो जाये।' मुझे बड़े अफसोसके साथ लिखना पड़ता है कि केवल गुजरातीके ही नहीं बल्कि अंग्रेजीके अखबारोंमें भी यह खबर प्रकाशित हुई है और उसके विषयमें चर्चा भी खूब हुई है।

भगवान् जाने हुआ क्या है, परन्तु हिन्दुओं और मुसलमानोंमें आजकल गलतफहमीकी हवा चल रही है और एक-दूसरेके प्रति अविश्वास फैल गया है। मैं जानता हूँ कि इसके कुछ कारण हैं। मुझे यहाँ उनकी चर्चा करनेकी जरूरत नहीं मालूम होती। उत्तर भारतके हिन्दी और उर्दूके अखबारोंने तो हद ही कर दी है। डाक्टर अन्सारीने[1] लिखा है कि ऐसा मालूम होता है मानो इन अखबारोंने एक-दूसरेपर इलजाम लगाना, झूठी अफवाहें फैलाना, एक-दूसरेके मजहबकी निन्दा करना और इस प्रकार एक दूसरेको बदनाम करना ही अपना कर्त्तव्य मान लिया है। जान पड़ता है कि यह उनके रोजगारको बढ़ानेका साधन बन गया है। इस छूतकी बीमारीको किस तरह रोकें, यह एक विकट समस्या हो गई है। मेरी समझमें इसको हल करना कौंसिल-प्रवेशकी बनिस्बत ज्यादा जरूरी है। मुझे निश्चय है कि राज्य-तन्त्र संचालनकी हमारी क्षमता इस प्रश्नको हल करनेमें ही है। यदि हम देशके सम्मुख उपस्थित कुछ प्रश्नोंको हल कर सकें तो आज ही स्वराज्य हमारे हाथोंमें आया रखा है। जबतक हम इन गुत्थियोंको न सुलझा सकें तबतक स्वराज्य असम्भव है। कौंसिलें इन उलझनोंको दूर करनेमें असमर्थ हैं।

परन्तु मैं इस लेखमें कठिनाइयोंकी छानबीन नहीं करना चाहता। यहाँ तो मैं मौलाना साहबपर किये गये आरोपोंकी ही जाँच करना चाहता हूँ।

मौलाना साहबसे उनके पहले भाषणपर लखनऊकी एक सभामें एक सवाल पूछा गया। उन्होंने उसका जवाब यह दिया: "महात्मा गांधीके धर्म-सिद्धान्तकी बनिस्बत एक व्यभिचारी मुसलमानके धर्म-सिद्धान्तको मैं ज्यादा अच्छा मानता हूँ।" इसमें मौलाना साहबने महात्मा गांधी और व्यभिचारी मुसलमानकी तुलना नहीं की, बल्कि दोनोंके धार्मिक मतकी ही तुलना की है। अब जरा यह देखें कि यह तुलना उन्हें क्यों करनी पड़ी। मुसलमानोंने मौलाना साहबपर ऐसा इलजाम लगाया कि मौलाना तो गांधी-परस्त अर्थात् गांधी-पूजक हो गये हैं। गांधी-परस्त होना यानी गांधीको मूर्ति मान लेना, -- यह मान लेना कि दुनियामें उनके सिवा दूसरा कोई नहीं। ऐसा करना मानो गांधीका धर्म कबूल कर लेना है। तो मौलाना साहबपर यह इलजाम था। कितने ही मुसलमानोंके इस इलजामका जवाब मौलानाने पूर्वोक्त वाक्योंमें दिया है। इसका अर्थ

क्या यह हुआ कि मुसलमानोंको सन्तुष्ट करते हुए उन्होंने हिन्दुओंका दिल दुखाया? यदि मौलानाने पूर्वोक्त बात किसी दूसरी जगह कही होती तो उसकी बिलकुल टीका न हुई होती। हिन्दू अखबारोंने उनके भाषणका विकृत विवरण छापा। उन्होंने लिखा है कि मौलाना व्यभिचारी मुसलमानको 'महात्मा' गांधीसे अच्छा समझते हैं। यहाँ हमने देखा है कि मौलानाने ऐसी कोई बात नहीं कही। इतना ही नहीं बल्कि उन्होंने तो स्वामी श्रद्धानन्दजीके नाम भेजे अपने पत्रमें महात्मा गांधीको सारे संसारमें सर्वोत्तम मनुष्य माना है। परन्तु हाँ, उन्होंने महात्माके धर्म-सिद्धान्तको व्यभिचारी मुसलमानके धर्म-सिद्धान्तसे निम्न माना है। इसमें विरोध जरा भी नहीं; सिद्धान्त और सिद्धान्तीमें तो लगभग सारा संसार भेद मानता है।

मेरे कितने ही ईसाई मित्र मुझे बहुत अच्छा आदमी मानते हैं। फिर भी वे अपने धर्मको मेरे धर्मसे श्रेष्ठ मानते हैं, इसलिए हमेशा ईश्वरसे प्रार्थना करते हैं कि मैं ईसाई हो जाऊँ। दक्षिण आफ्रिकाके एक ऐसे मित्रका पत्र मुझे दो-तीन सप्ताह पहले मिला है जिसमें उन्होंने लिखा है:

> आपकी रिहाईका समाचार जानकर मुझे बड़ी खुशी हुई। आपके लिए मैं ईश्वरसे प्रार्थना करता हूँ कि वह आपको सुबुद्धि दे जिससे आप ईसा मसीह-को और मुक्ति देनेकी उनकी शक्तिको मानने लगें। यदि आप यह कर सकें तो आपके काम तुरन्त फलीभूत हो जायें।

इस तरह अनेक ईसाई मित्र चाहते हैं कि मैं ईसाई हो जाऊँ।

अच्छा, अधिकांश हिन्दू भी क्या करते हैं? क्या वे अच्छेसे-अच्छे ईसाई या मुसलमानके धर्म-सिद्धान्तसे अपने धर्म-सिद्धान्तको अच्छा नहीं मानते? यदि वे ऐसा न मानते हों तो क्या वे अपनी पुत्रीका विवाह एक अच्छेसे-अच्छे मुसलमान या ईसाईसे करेंगे? इतना ही नहीं, वे हिन्दुओंमें भी किसी अच्छेसे-अच्छे पुरुषसे नहीं बल्कि अपने सम्प्रदाय या जातिके ही किसी पुरुषके साथ यह सम्बन्ध करेंगे। इससे क्या प्रकट होता है? यही कि वे स्वधर्मको परधर्मसे अच्छा मानते हैं।

मेरी नाकिस रायमें मौलानाने अपनी राय जाहिर करके अपने दिलकी सफाई और अपनी धर्म-श्रद्धाको सिद्ध किया है। मेरी तो उन्होंने दूनी इज्जत की है। एक तो मित्रके रूपमें और दूसरे मनुष्यके रूपमें। उन्होंने मित्रके रूपमें मेरी इज्जत इस तरह की है कि उन्होंने यह माना है कि वे मेरे सम्बन्धमें जो चाहे कहें, मैं उसमें अपना अपमान न मानूँगा और मैं उनके भावको गलत न समझूँगा। उन्होंने मनुष्यके रूपमें मेरी इज्जत इस तरह की है कि हम दोनोंके धर्म भिन्न होते हुए और अपने धर्मको मेरे धर्मसे श्रेष्ठ मानते हुए भी वे मुझे सर्वोत्कृष्ट मनुष्य मानते हैं। इसमें कितनी श्रद्धा है? यदि संसार मुझे अच्छा मानता है तो उसके इस वहमको मैं समझ सकता हूँ। परन्तु मेरे निकट रहनेवाले मेरे मित्र, मेरी अनेक कमजोरियोंको देखते हुए भी मुझे सर्वोत्तम मानें, यह कितनी अजीब बात है?

किसी भी मनुष्यको सर्वोत्कृष्ट मानना, मुझे तो बड़ा खतरनाक मालूम होता है। उसके दिलको ईश्वरके सिवा कौन जान सकता है? उस मनुष्यकी बनिस्बत,

जिसके दिलकी गन्दगी प्रकट होती रहती है, वह मनुष्य अधिक मलिन होना चाहिए जो अपनी गन्दगी छिपी रख सकता है। पहले मनुष्यको तो मुक्ति मिलनेकी सम्भावना है; क्योंकि उसकी गन्दगी प्रकट हो गई अर्थात् उसके निकलनेका रास्ता खुल गया; परन्तु दूसरा मनुष्य तो अपनी गन्दगी अपने दिलके डिब्बेमें बन्द करके उसपर मुहर लगाकर रखता है। उसकी गन्दगी अन्दर-ही-अन्दर पड़ी रहेगी और उसे जहरीले जन्तुकी तरह नोंच-नोंचकर खायेगी। उसका छुटकारा इस जन्ममें असम्भव है। इसीसे शास्त्रोंने सत्यको सर्वोपरि माना है, इसीसे शास्त्रोंने पापको छिपानेका निषेध किया है। यदि हम किसी मनुष्यको सर्वोपरि मान सकते हों तो इसका निश्चय उसकी मृत्युके बाद ही किया जा सकता है।

मैं खुद तो अपना विश्वास नहीं कर सकता। मुझे दूसरेका विश्वास करना बहुत आसान मालूम होता है। यदि ऐसा करते हुए मुझे धोखा हो तो इससे मेरी कुछ आर्थिक हानि हो सकती है और दुनिया मुझे भोला-भाला कह सकती है; परन्तु यदि मैं अपना विश्वास करके गाफिल रहूँ तो मेरा नाश ही हो जाये। पाठको, इस मौकेपर आपसे यह भी कह देता हूँ कि एक बार तो मैं अपना विश्वास करके डूबते-डूबते ईश्वर-कृपासे ही बचा हूँ। दूसरी बार मुझे मेरे एक व्यभिचारी मित्रने बचाया। वे खुद तो बचनेकी हालतमें नहीं थे परन्तु वे मुझे निर्मल समझते थे। अतः यह समझकर कि इसे तो इस पापमें हरगिज न पड़ना चाहिए उन्होंने मुझे मोह-निद्रासे जाग्रत कर दिया। हम दूसरेकी चौकीदारी करने या दूसरेका काजी बननेकी बनिस्बत खुद अपनी चौकीदारी करें तो हम खुद अपनी रक्षा कर लें और संसारको भी अपने अन्यायसे बचा लें। इसीसे स्वराज्यकी सच्ची व्याख्या यह है, "स्वराज्य उस राज्यको कहते हैं जो खुद अपनेपर किया जाता है।" जिसने इसे प्राप्त कर लिया उसने सब-कुछ प्राप्त कर लिया। "आप भला तो जग भला" इस कहावतमें बहुत-कुछ अर्थ समाया हुआ है।

प्रस्तुत विषयको छोड़कर मैं गूढ़ चर्चामें नहीं चला गया हूँ। बल्कि यह बात इसी विषयसे सम्बन्ध रखती है। मित्र लोग जब मुझे सर्वोत्कृष्ट मानते हैं तब मैं काँप जाता हूँ। यदि मैं खुद ऐसा मानने लगूँ तो मेरा पतन हुए बिना न रहे, क्योंकि मुझे तो अभी बहुत ऊँचा उठना बाकी है। मेरी आकांक्षाकी सीमा नहीं है। मुझे अभी असंख्य शत्रुओंको जीतना है। ज्यों-ज्यों मैं गहराईसे विचार करता हूँ त्यों-त्यों मुझे अपनी खामियाँ दिखती जाती हैं। जब यह देखता हूँ तब मेरे मनमें विचार उठता है कि सचमुच सर्वोत्कृष्ट मनुष्य कैसा होता होगा? यह विचार करते हुए मेरे मनमें मोक्षकी और उसके द्वारा मिलनेवाली आत्यन्तिक आनन्दकी कुछ कल्पना होती है। उस समय मुझे इस बातकी झलक दिखाई देती है कि ईश-तत्त्व क्या हो सकता है?

अब पाठक शायद यह समझ सकें कि मौलाना साहबने मुझे सर्वोत्कृष्ट मानकर मेरी कितनी इज्जत की है। उनके इस कथनका अर्थ क्या है, यह बात पाठकको उनका पत्र पढ़नेपर अधिक अच्छी तरह मालूम होगी। उसका तरजुमा मैं इसी अंकमें देता हूँ।[1]

१. देखिए परिशिष्ट १३ (क)।

स्वामीजीने मौलानाके इस पत्रका स्वागत किया है और उनके दिलकी सफाई-पर उन्हें धन्यवाद दिया है। उन्होंने मौलानाको हिन्दुओंका मित्र माना है और जिन लोगोंने मौलानापर इलजाम लगाया था और इस प्रस्तावकी सूचना दी थी कि उन्हें कांग्रेससे इस्तीफा दे देना चाहिए उनसे अपनी सूचना वापस लेनेका अनुरोध किया है। परन्तु साथ ही उन्होंने उन्हें यह भी बताया है कि उनके धर्मके अनुसार तो अकेले सिद्धान्तकी कोई कीमत नहीं है। मनुष्यके शील और आचारसे ही उसकी कीमत आँकी जाती है। इसका जवाब देकर मौलानाने स्वामीजीके पत्रकी शंका भी दूर कर दी है। मौलाना यह बात नहीं मानते कि सिद्धान्तीको अपने सिद्धान्तके अनुसार आचरण करनेकी जरूरत नहीं। उन्होंने तो सिर्फ दो सिद्धान्त-सरणियोंकी तुलना की थी और बताया था कि दोनोंमें ऊँचा कौन है। सिद्धान्त बहुत अच्छे हों, किन्तु यदि जाननेवाला उनके अनुसार न चले तो उसे कुछ फल नहीं मिलता — यह बात उन्होंने अपने दूसरे पत्रमें प्रकट की है।[1]

इसलिए मौलाना मुहम्मद अलीके कथनका तात्पर्य सिर्फ इतना ही निकलता है कि सबको अपना-अपना धर्म अच्छा मालूम होता है। इस बातका विरोध कौन हिन्दू कर सकता है? यह राईका पर्वत किस प्रकार हुआ और इसके न होने देनेका उपाय क्या है, इसपर विचार फिर कभी करेंगे।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १३-४-१९२४

३३५. सत्याग्रह और समाज-सुधार

लोग सत्याग्रहके सिद्धान्तको ज्यों-ज्यों समझते जाते हैं त्यों-त्यों उसका उपयोग नये-नये क्षेत्रोंमें किया जा रहा है। केवल सरकारसे लड़नेमें ही नहीं बल्कि कुटुम्बों और जातियोंके क्षेत्रमें भी उसका उपयोग होता दिखाई दे रहा है। एक जातिमें कन्या-विक्रयका घातक रिवाज है। एक नौजवानको उसे रोकनेकी प्रेरणा हुई है। उसने यह सवाल उठाया है कि उसे क्या करना चाहिए। सत्याग्रहका सुगम अंग असहयोग है। यह नौजवान इस जातिमें कन्या-विक्रयकी प्रथाको रोकना चाहता है। विचार निर्दोष है; परन्तु सवाल यह है कि वह असहयोगका अवलम्बन करे या नहीं? यदि करे तो किस तरह करे और किसके खिलाफ करे?

प्रस्तुत मामलेमें निश्चित राय देना कठिन है। हाँ, ऐसे सभी मौकोंके लिए कुछ सर्व-सामान्य नियम बताये जा सकते हैं।

पहले तो असहयोगका प्रयोग एकाएक किया ही नहीं जा सकता। जो बुरे रिवाज एक जमानेसे चले आ रहे हैं, वे एक क्षणमें नष्ट नहीं किये जा सकते। सुधार एक टाँगका होता है इसलिए वह लँगड़ाकर चलता है। जो मनुष्य धीरज खो बैठता

१. देखिए परिशिष्ट १३ (ख)।

है वह शुद्ध असहयोगी नहीं हो सकता। सुधारकके लिए पहली सीढ़ी है लोकमत तैयार करना। उसे चाहिए कि जातिके समझदार लोगोंसे मिले और उनकी दलीलें सुने। यदि सुधारक सीधा-सादा आदमी हो, उसे कोई जानता न हो और समझदार लोग उसकी बात न सुनें तो उसे क्या करना चाहिए? यदि वह इतना दीन-हीन हो तो उसे जानना चाहिए कि वह सुधारका निमित्त बननेके लिए उत्पन्न ही नहीं हुआ है। हम सब लोग चाहते हैं कि संसारसे झूठका नाश हो जाये, परन्तु झूठे लोगोंको कौन समझाये? यह सुधार बहुत आवश्यक है। फिर भी हम धीरज धरे क्यों बैठे हैं?

बात यह है कि सुधारकमें अहंता न होनी चाहिए। हम तमाम बुराइयाँ दूर करनेकी जिम्मेवारी अपने सिरपर क्यों ले बैठें? हमें इतने ही से सन्तुष्ट रहना चाहिए कि हम खुद सच बोलें और सच्चा व्यवहार करें। इसी प्रकार जातिकी कुरीतियोंके सम्बन्धमें भी हमें खुद अपना आचार-विचार स्वच्छ रखना चाहिए और दूसरेके सम्बन्धमें तटस्थ रहना चाहिए।

"मैं यह करता हूँ, मैं वह करता हूँ, ऐसा सोचना तो अज्ञान है। जैसे गाड़ीके नीचे उसके साथ-साथ चलनेवाला कुत्ता यह मान बैठता है कि इस गाड़ीमें लदे भारको मैं ही खींच रहा हूँ।"[१]

कविकी इस उक्तिको याद रखना चाहिए और निरभिमान होकर रहना चाहिए।

जब निरभिमान रहते हुए भी हम यह महसूस करते हों कि यह जिम्मेवारी हमारी है तब हमपर विशेष कर्त्तव्यका भार आ पड़ता है। जातिके मुखिया और पंच निरभिमान होनेका दावा करके जातिकी कुरीतियोंको दरगुजर नहीं कर सकते; क्योंकि मुखियापन अथवा पंचपनको अंगीकार करके वे जातिकी नीतिके रक्षक बने हैं। यदि एक भी कन्याका विक्रय होगा तो उस निर्दोष बालिकाका शाप उन्हींपर पड़ेगा।

परन्तु यदि मुखिया या पंच खुद उस बुराईको दूर करनेका प्रयत्न न करें, इतना ही नहीं बल्कि खुद ही कन्या-विक्रय करें तो फिर उस बेचारे जाति-सुधारकको क्या करना चाहिए? वह खुद तो स्वच्छ हो गया है और जातिके तमाम अगुओंसे मिल चुका है। उन्होंने उसे कुत्तेकी तरह दुत्कारकर भगा दिया है और उसपर गालियोंकी बौछार की है। बेचारा हताश और खिन्न होकर घर आ गया है। नीचे जमीन और ऊपर आसमानके सिवा उसे कोई सहारा दिखाई नहीं देता। यही समय है कि ईश्वर उसकी पुकार सुनेगा। परन्तु अभी तो पहली ही सीढ़ी आई है। वह तपस्याके योग्य बने अतः यह उसकी पूर्व परीक्षा हुई है। अब वह अपनी अन्तरात्माकी आवाज सुन सकता है। वह अन्तर्यामीसे पूछता है — मैंने अपमान सहन किया है, क्या मैं फिर भी अपने बन्धुओंसे प्रेम रखता हूँ? क्या मैं उनकी सेवा करनेके लिए तैयार हूँ? क्या मैं उनके जूते खाना भी बरदाश्त कर सकूँगा? यदि उसका अन्तर्यामी इन तमाम सवालोंके जवाबमें 'हाँ' करे तो उसे समझना चाहिए कि वह दूसरा कदम उठानेकी तैयारी कर चुका है।

१. नरसी मेहताका एक प्रसिद्ध भजन।

अब वह प्रेममय असहयोग आरम्भ कर सकता है। प्रेममय असहयोगका मतलब है तमाम हकोंका त्याग, कर्त्तव्योंका त्याग नहीं। जातिमें इस गरीब सेवकके हक क्या हैं? जाति-भोजन और विवाह-सम्बन्ध। इन दोनों हकोंका वह नम्रतापूर्वक त्याग कर दे। इतना करनेपर वह अपना कर्त्तव्य पूरा कर चुका। यदि जातिके पंच उसे काँटेकी तरह चुनकर फेंक दें, मदकी मस्तीमें यह समझकर कि "चलो एक पत्तल कम हुई, एक लड़की माँगनेवाला कम हुआ", उसे बिरादरीकी सूचीसे खारिज कर दें तो वह गरीब सेवक निराश न होते हुए यह श्रद्धा रखे कि उसने जो शुद्ध बीज बोया है, उससे महान् वृक्ष पैदा होगा। अपना कर्तव्य पूरा कर चुकनेके बाद वह गा सकता है: "कर्मण्येवाऽधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।", उसके पहले नहीं।

यह गरीब तपस्वी अब वनवासी हो गया है। यदि वह ब्रह्मचारी है तो उसने यह भीष्म-प्रतिज्ञा कर ली है कि जबतक जातिमें यह बुराई मौजूद है तबतक वह ब्रह्मचारी रहेगा। यदि वह विवाहित है तो अपनी पत्नीसे मित्रका नाता रखेगा। यदि बाल-बच्चे हों तो उन्हें भी ब्रह्मचर्यका पालन करनेकी नसीहत देगा। जातिवालों से मदद न माँगनी पड़े और दूसरी जगह हाथ न फैलाना पड़े, इसलिए वह कमसे-कम परिग्रह — माल-असबाब रखेगा। इस प्रकार एक संन्यासीकी तरह जीवन व्यतीत करना ही उसका वनवास है। प्रेममय असहयोगमें स्वच्छन्दताके लिए अवकाश ही नहीं है, वहाँ तो संयमकी ही शोभा है। बोये हुए बीजको उसे अब संयम रूपी पानी देना है। जो यह विचार करता है कि "यदि मेरे बच्चोंका विवाह न होगा तो मैं उनका विवाह दूसरी जातिमें कर दूंगा या और कहीं भोजनका आनन्द लिया करूँगा," वह संयमी या असहयोगी नहीं; वह तो मिथ्याचारी है। संयमी असहयोगी तो अपनी जातिके ही गाँवमें रहकर तपश्चर्या करेगा। अहिंसाके सान्निध्यमें वैर-त्याग[1] कहा गया है। वह त्यागी हिमालयमें बैठकर पंचोंके प्रति अहिंसापालनका दावा करते हुए पंचोंके हृदयको द्रवित करनेकी आशा नहीं रख सकता। पंचोंने जो उसका अनादर किया है उसका एक कारण यह भी है कि उन्होंने उसे एक अविवेकी और उद्धत युवक मान लिया है, परन्तु उसे यह साबित करना तो अभी बाकी है कि वह गरीब और नव युवक होते हुए भी उद्धत या अविवेकी नहीं, बल्कि नम्र और विवेकी है।

इस प्रकार कार्य करते हुए और सेवाके मौकोंपर जाति-भाइयोंकी सेवा करते हुए, परन्तु फिर भी उसके बदलेकी आशा न रखते हुए वह देखेगा कि इस सुधार-कार्यमें दूसरे लोग भी शामिल होंगे। वे चाहे असहयोग न करें परन्तु उनकी हमदर्दी उसके साथ रहेगी, क्योंकि जिस प्रकार हम अपने सहयोगी भाइयोंको अपने त्याग और ज्ञानके घमण्डमें कोसते हैं उस प्रकार हमारा वह संयमी युवक अपने जातिवालोंको यह सोचकर कि वे उसका साथ नहीं देते हैं, अथवा विचारमें तो साथ देते हैं पर असहयोग नहीं करतें, गालियाँ नहीं देगा बल्कि उनके प्रति प्रेमभाव रखकर ही उनके मनको जीतेगा। वह नित्य इस बातका अनुभव करेगा कि प्रेम तो एक पारसमणि है।

१. "अहिंसा प्रतिष्ठायाँ तत्सन्निधौ वैरत्यागः" — **योगदर्शन** ।

परन्तु यदि ऐसा अनुभव होनेमें विलम्ब हो तो वह अधीर न होगा और विश्वास रखेगा कि प्रेम-बीजसे अगणित प्रेम-फल ही उत्पन्न हो सकते हैं।

मेरे पास जो पत्र आया है, उसमें यह भी पूछा गया है कि यदि हमारा तपस्वी असहयोगी जाति-भोजनका त्याग करे तो क्या वह जातिके मित्र लोगोंके यहाँ भी भोजनका त्याग कर दे? बात तो ऐसी होगी कि उसका त्याग-पत्र मिलते ही जातिके पंचोंको रोष आयेगा और वे उसे बिरादरीसे खारिज कर देंगे और जो कोई उससे रोटी-बेटीका व्यवहार करेगा या उसके घरका पानी भी पियेगा, वे उसे दण्ड देंगे। इस अवस्थामें व्यक्तियोंके साथ भोजन-व्यवहारका सवाल ही नहीं उठेगा। इस प्रकार यदि जाति-बाहर करनेका दण्ड मिले, तो संयमीका विशेष धर्म यह होगा कि वह खुले या छिपे तौरपर अपने जातिवाले मित्रोंके यहाँ न्योता मिलनेपर भी भोजन करने न जाये। हाँ, यदि कोई जातिवाला विचारपूर्वक असहयोगमें शामिल हो तो वह उसे अवश्य स्वीकार करे; और ऐसा होनेकी सम्भावना भी है।

परन्तु आमतौरपर ऐसा कहा जा सकता है कि मित्रोंके साथ भोजन-व्यवहारके त्याग करनेका मौका ही नहीं आयेगा। फिर भी कल्पना कर लें कि ऐसा मौका आये तो उसका त्याग करनेकी आवश्यकता नहीं। हाँ, जो लोग कन्या-विक्रय करते हों, उनका निमन्त्रण तो वह हरगिज़ कबूल न करे।

इससे हम इन नतीजोंपर पहुँचते हैं: (१) असहयोगका अवलम्बन करनेसे पहले लोकमत तैयार करनेके लिए बहुत कार्य करना चाहिए।

(२) असहयोगीमें यह शक्ति होनी चाहिए कि वह बिना रोष किये विरोधियोंके दुर्वचन सुन सके और दुर्व्यवहार बरदाश्त कर सके।

(३) असहयोग प्रेम-मूलक होना चाहिए।

(४) असहयोग आरम्भ करनेके बाद अपना असली मुकाम नहीं छोड़ना चाहिए।

(५) असहयोगीको कठोर संयमका पालन करना चाहिए।

(६) असहयोगीको अपने साधनपर पूरी श्रद्धा होनी चाहिए।

(७) असहयोगी फलके विषयमें उदासीन रहे।

(८) असहयोगीके प्रत्येक कार्यमें विवेक, विचार और नम्रता होनी चाहिए।

(९) असहयोग करनेका अधिकार और धर्म सबको प्राप्त नहीं होता। अधिकारके बिना किया गया असहयोग व्यर्थ होता है।

कुछ लोगों या बहुतसे लोगोंको ऐसा लगेगा कि इन नियमोंका पालन करना असम्भव है। यह ठीक ही है। तीव्र संयमके बिना शुद्ध असहयोग असम्भव है। फिर प्रस्तुत प्रसंगमें तो वह तपस्वी स्वयं ही कर्ता है, स्वयं ही भोक्ता है, स्वयं ही सेनापति है और स्वयं ही सिपाही है। यदि उसमें कमी रहेगी तो उसके भाग्यमें निराशा ही लिखी समझनी चाहिए। अतः ऐसे स्वतन्त्र असहयोगीके लिए तो असहयोगका अनारम्भ ही बुद्धिमानीका प्रथम लक्षण है। परन्तु एक बार आरम्भ कर चुकनेपर चाहे देह-पात् हो जाये, परन्तु उस कार्यका त्याग नहीं किया जाना चाहिए।

दूसरा सवाल यह उठता है कि ऐसे संयमका पालन करके जाति-जैसी संकुचित संस्थामें सुधारकी कौन बड़ी जरूरत थी? कुछ लोग कहेंगे हम तो जाति-बन्धनको ही

नष्ट कर डालना चाहते हैं तो फिर कन्या-विक्रय आदि कुरीतियोंके पीछे पड़नेसे क्या लाभ? यह सवाल यहाँ अप्रासंगिक है। हमारे सुधारकका प्रश्न जाति-सम्बन्धी ही है। यदि कौटुम्बिक असहयोग ठीक माना जाये तो जबतक जातियाँ कायम हैं तबतक जाति-सम्बन्धी असहयोगकी बात भी ठीक माननी चाहिए।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १३-४-१९२४

३३६. पत्र : मोतीलाल नेहरूको

जुहू

रविवार [१३ अप्रैल, १९२४][1]

प्रिय मोतीलालजी,

साथमें मसविदेको संशोधित करके भेज रहा हूँ। यदि आपको तथा अन्य मित्रोंको यह स्वीकार हो तो आप जितनी जल्दी चाहें, मैं उसे प्रकाशित करा सकता हूँ।[2] मुझे तो लगता है कि प्रायोगिक कालावधि नियत करनेसे सम्बन्धित धारा हटा दी जानी चाहिए। परन्तु मैं उन सज्जनोंसे यह बात अवश्य कहूँगा कि मेरा इरादा कोकोनाडाके प्रस्तावको रद करानेके लिए प्रस्ताव पेश करनेका नहीं है। बात केवल इतनी है कि यह धारा जिस रूपमें है, उस रूपमें उसके फलितार्थ मैं नहीं जानता। शेष संशोधनोंके बारेमें कुछ कहनेकी आवश्यकता नहीं है। परन्तु मसविदेके अन्तमें मैंने जो दो वाक्य जोड़े हैं, उनकी ओर मैं आपका ध्यान आकृष्ट करना चाहता हूँ। उनका अर्थ स्पष्ट है। ये दो वाक्य जोड़नेमें मेरा उद्देश्य कलकी बातचीतके निष्कर्षोंको इसमें किसी हद-तक शामिल करना है।

हृदयसे आपका,

मो० क० गांधी

अंग्रेजी पत्र (एस० एन० ८७१५) की फोटो-नकलसे।

१. पहला मसविदा ११ अप्रैल, १९२४को तैयार किया गया था और उसके बाद जो रविवार पड़ता था, उसकी तारीख १३ अप्रैल थी।

२. पं० मोतीलाल नेहरूने अपनी सम्मति एक बहुत लम्बी टिप्पणीमें अंकित की थी; देखिए परिशिष्ट १४ (क)। उन्होंने गांधीजीके प्रथम मसविदेकी एक नकल चित्तरंजन दासको भी भेजी थी। श्री दासने १८ अप्रैलको उसकी प्राप्ति स्वीकार करते हुए लिखा था कि वे इस सम्बन्धमें गांधीजीसे बातचीत करनेको उत्सुक हैं। श्री दासने यह भी लिखा था कि गांधीजीसे जबतक बातचीत न हो जाये तबतक उस मसविदेका प्रकाशन स्थगित रखा जाये। देखिए परिशिष्ट १४ (ख)।

३३७. पत्र : न० चि० केलकरको

पोस्ट अन्धेरी
१३ अप्रैल, १९२४

प्रिय श्री केलकर,

आपका पत्र मिला। श्री शरीफ देवजी कानजीको मैंने पत्र[1] लिख दिया है। उन्होंने उसका जो उत्तर भेजा है उसमें विचारार्थ विषयोंके सम्बन्धमें आपत्ति उठाई गई है। श्री पोद्दारने भी ऐसा ही किया है। मैं तो केवल इतना ही कह सकता हूँ कि अगर आप विचारार्थ विषयोंको लिखकर मेरे पास भेज दें तो मैं उसे उनके सामने रख दूंगा और अगर वे कोई बात सुझायें तो उसे मैं आपके पास भेज दूंगा। मैंने श्री शरीफ देवजी कानजीको लिखा है कि वे मुझसे आगामी गुरुवारको मिलें।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

श्री न० चि० केलकर
'केसरी' तथा 'मराठा' कार्यालय
पूना सिटी

अंग्रेजी पत्र (एस० एन० ८७२७) की फोटो-नकलसे।

३३८. भेंट : एसोसिएटेड प्रेस ऑफ इंडियाके प्रतिनिधिसे

[अन्धेरी
१३ अप्रैल, १९२४]

त्रावणकोरके अधिकारियोंने वाइकोम सत्याग्रह आन्दोलनके अनेक नेताओंको गिरफ्तार कर लिया है जिससे यह आन्दोलन, निस्सन्देह, अब एक नाजुक दौरमें पहुँच गया है। अखिल भारतीय स्तरके नेताओंसे अनुरोध किया गया है कि वे इस आन्दोलनका नेतृत्व हाथमें लें। यहाँ सवाल यह है कि किसी स्थानिक आन्दोलनके नाजुक अवस्थामें पहुँच जानेपर उसे किस हदतक अखिल भारतीय आन्दोलनका रूप दिया जाये। इस आन्दोलनके प्रति समस्त भारतकी सहानुभूतिका होना भी मेरी समझमें आ सकता है और मुझे यह भी मालूम है कि वाइकोम सत्याग्रहियोंके प्रति सारे देशमें सहानुभूतिकी भावना उमड़ रही है, परन्तु देशके भिन्न-भिन्न प्रान्तोंके नेताओंकी

१. देखिए "पत्र : शरीफ देवजी कानजीको", २०-३-१९२४।

शक्तियोंको एक स्थानीय आन्दोलनपर सक्रिय रूपसे केन्द्रित करना असम्भव नहीं तो कठिन जरूर मालूम हो रहा है। फिर भी मुझे आशा है कि मद्रास अहातेके नेतागण इस आन्दोलनको समुचित नेतृत्वके अभावमें ठंडा नहीं पड़ने देंगे। जॉर्ज जोजेफको उनकी गिरफ्तारीसे पूर्व इस आशयका एक तार[1] भेजा गया था कि अनशन वन्द कर दिया जाये। चूंकि तारके बाद भेजा गया पत्र[2] उन्हें मिल जाना सम्भव नहीं दीख पड़ रहा है, इसलिए मैं उसे प्रकाशनार्थ दे रहा हूँ। मेरी स्थिति क्या है, इसका परिचय उससे मिल जायेगा। हालकी घटनाओंसे उसमें फर्क नहीं पड़ा।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, १४-४-१९२४

३३९. तार: च० राजगोपालाचारीको

[अन्धेरी
१३ अप्रैल, १९२४ या उसके पश्चात्][3]

तार मिला। यदि स्वास्थ्य ठीक रहे तो आप जायें जरूर परन्तु विशेष रूपसे गिरफ्तार होनेके लिए नहीं बल्कि आन्दोलनको सुव्यवस्थित रूप देनेके लिए। आप दीवानके साथ बातचीत करें। अगर दूसरे नेता शामिल हो सकें तो उन्हें भी निमन्त्रित कीजिए। आखिर स्थितिको आपसे ज्यादा कौन जानता है। अगर जरूरी हो तो देवदास आपकी सेवामें प्रस्तुत है।

गांधी

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १०२७९) की फोटो-नकलसे।

१. देखिए "तार: जॉर्ज जोजेफको", ११-४-१९२४।

२. देखिए "पत्र: जॉर्ज जोजेफको", १२-४-१९२४।

३. यह चक्रवर्ती राजगोपालाचारीके इस आशयके तारके उत्तरमें भेजा गया था कि जोजेफ गिरफ्तार हो गये हैं और उन्होंने तार द्वारा अनुरोध किया है कि मैं उनका स्थान ग्रहण करूँ। इसपर उन्होंने गांधीजीकी सलाह माँगी। तार गांधीजीको १३ अप्रैल, १९२४ को मिला था।

३४०. तार : टी० आर० कृष्णस्वामी अय्यरको[1]

[अन्धेरी
१४ अप्रैल, १९२४]

[कृष्णस्वामी
मार्फत 'न्यूज'
कोचीन]

इतनी सारी गिरफ्तारियोंपर आपको मुबारकबाद। उचित व्यवस्था किये बिना स्वयं गिरफ्तार न हों। मैं फिर तार करूँगा। वहाँकी स्थितिका विवरण भेजिए। पत्र लिख रहा हूँ।[2]

गांधी

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १०२७७) से।

३४१. पत्र : एच० जी० पैरीको[3]

बम्बई
[१४ अप्रैल, १९२४ या उसके पश्चात्]

प्रिय श्री पैरी,

आप यदि आगामी रविवारको दिनमें २ बजे मुझसे मिलनेकी कृपा करें तो मुझे प्रसन्नता होगी। मेरे पास कहनेको कुछ ज्यादा होगा या नहीं, सो नहीं जानता। कारण यह है कि स्वराज्यवादी नेताओंसे मेरी बातचीत अभी समाप्त नहीं हुई है।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ८७२८) की फोटो-नकलसे।

१. यह तार श्री अय्यरके निम्नलिखित तारके उत्तरमें भेजा गया था: "सब नेता गिरफ्तार हो चुके हैं। स्वयंसेवक लोग रोके जानेपर, १० तारीखके प्रातःकालसे जहाँके-तहाँ बैठे हैं। कोई स्वयंसेवक गिरफ्तार नहीं किया गया है। मैं कोचीनमें प्रतीक्षा कर रहा हूँ। वाइकोम जाऊँ तो गिरफ्तारी निश्चित। कृपया किसी व्यक्तिको नेतृत्वके लिए भेजिए।"

२. इसका उत्तर कृष्णस्वामीने इस प्रकार दिया: "आपका सन्देश मिला, धन्यवाद। व्यवस्था की जा रही है। सत्याग्रही लोग प्रसन्नतापूर्वक डटे हुए हैं। अनशन समाप्त करनेके बारेमें हिदायत दे दी है। सत्याग्रहका मुख्य कार्यालय यहाँ रखा है। मेरी देखरेखमें।"

३. यह पत्र श्री पैरीके १४ अप्रैलके पत्रके उत्तरमें भेजा गया था, जिसमें उन्होंने गांधीजीसे पूछा था कि लन्दनके डेली एक्सप्रेस अखबारके लिए वे एक छोटी-सी भेंट दे सकेंगे या नहीं। श्री पैरीने भेंटका विषय यह बताया था: "वर्तमान माँगें और स्वराज्य-प्राप्तिके लिए नये सुझाव"।

३४२. पत्र : गंगाबहन मेघजीको[1]

चैत्र सुदी ११ [१५ अप्रैल, १९२४]

प्रिय वहन,

आपको पत्र लिखनेका विचार नित्य ही करता हूँ, किन्तु एकके-बाद-एक काम आ जाता है और मैं उसमें भूल जाता हूँ। आज प्रातःकालकी प्रार्थनाके तुरन्त बाद आपको पत्र लिखने बैठा हूँ। चि० रामदासको आपके पास संगीत सीखनेके लिए भेजनेवाला था किन्तु भेजा नहीं, क्योंकि उसके सम्बन्धमें श्री जयकरने बहुत उद्योग किया है और मुझे उनका अनादर करना उचित नहीं जान पड़ा।[2] उसको एक ही दिनमें दो जगह भेजनेमें बहुत मेहनत पड़ जाती, इसलिए भेजना अभी स्थगित रखा है।

फिर भी हमें संगीत शिक्षकका तो आभार मानना ही चाहिए; क्योंकि उन्होंने तो चि० रामदासको संगीत सिखानेकी बात तुरन्त स्वीकार कर ली थी।

आपको फुरसत मिले तब तुरन्त आ जायें।

मोहनदास गांधीके वन्देमातरम्

मूल गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ७७७५) से।
सौजन्य : गंगाबहन वैद्य

३४३. भेंट : 'हिन्दू' के प्रतिनिधिसे

[बम्बई
१५ अप्रैल, १९२४]

हमारे प्रतिनिधिने गांधीजीसे पूछा कि "त्रावणकोरके अस्पृश्यता-सम्बन्धी सत्याग्रहके बारेमें आपकी क्या राय है? हमारा पूरा देश किस प्रकार उसमें सहायता दे सकता है और सहायता देनेका सबसे अच्छा तरीका कौन-सा है?" महात्माजीने लम्बा-सा उत्तर देते हुए कहा :

आन्दोलनके नेताओंके बारेमें जो-कुछ मैं जानता हूँ, उसके आधारपर मुझे इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि उन्होंने बड़ी सतर्कता और विवेकसे काम लिया है और प्रारम्भिक तैयारियाँ कर लेनेपर ही उन्होंने इसमें हाथ डाला है। मुझे जो समाचार

१. बादमें गंगाबहन वैद्यके नामसे प्रसिद्ध।

२. गांधीजी जब जुहूमें थे तब रामदास जयकरके पास संगीत सीखनेके लिए जाया करते थे।

मिल रहे हैं उनसे मुझे लगता है कि इस आन्दोलनको जो नेतृत्व चाहिए, वह मद्रास अहातेसे मिल जायेगा। मैं समझता हूँ कि भारत-भरके नेतागण वहाँ जानेके लिए समय निकालकर प्रत्यक्ष रूपसे इस आन्दोलनपर अपनी शक्तियाँ केन्द्रित नहीं कर सकेंगे। परन्तु भारतके सभी समाचारपत्र इस आन्दोलनको समुचित प्रमुखता अवश्य दे सकते हैं। मुझे यह देखकर प्रसन्नता होती है कि इसे ऐसी प्रमुखता दी भी जा रही है। मेरा खयाल है कि इस नैतिक समर्थनके अलावा अखिल भारतीय पैमानेपर इसके लिए कोई प्रयत्न किया भी नहीं जा सकता और यदि इस आन्दोलनका स्वरूप लगातार शुद्ध बना रहा और अहिंसात्मक भी, तो अन्तमें इसे जनताका समर्थन अवश्य मिलेगा।

जो थोड़े-बहुत नेता वहाँ जायेंगे, यदि वे भी गिरफ्तार कर लिये जायें तो आप नेताओंकी इस कमीको किस प्रकार पूरा करेंगे? महात्माजी ने उत्तर दिया :

मेरे पास एक पत्र आया है। उससे प्रकट होता है कि आन्दोलन इतना आगे बढ़ चुका है कि यदि सबके-सब नेता गिरफ्तार कर लिये जायें तो भी स्वयंसेवक लोग सत्याग्रह चलाते रहेंगे। मैं यह सुझाव भी दूँगा कि कमसे-कम एक नेता अपनेको बचाये रखे और गिरफ्तार होनेका लोभ संवरण करते हुए आन्दोलनका संचालन करता रहे।

फिर महात्माजीसे यह प्रश्न पूछा गया: "मान लीजिए कि जो नेता अपनेको इस तरह गिरफ्तारीसे बचाकर रखना चाहता है, यदि वह भी गिरफ्तार हो जाये या उसे ऐसा लगे कि अब गिरफ्तार हो ही जाना चाहिए तो ऐसी स्थितिमें क्या बिना किसी नेताके आन्दोलन चलाया जा सकता है?" महात्माजीने उत्तरमें कहा :

मेरे विचारसे सत्याग्रह एक ऐसा आन्दोलन है जिसे अमुक मंजिल पार कर लेनेके पश्चात् नेताके बिना चलाते रहना भी बहुत आसान है। यह इस आन्दोलनका सहज गुण और शक्ति है। कूटनीति या चालबाजीका हम जो अर्थ लगाते हैं, अर्थकी उस दृष्टिसे सत्याग्रहमें इनमें से किसीके लिए कोई स्थान नहीं है। यह मैं स्वीकार करता हूँ कि यह मार्ग सँकरा है, परन्तु साथ ही यह सीधा है, इसलिए सुगम भी है। सिर्फ संकल्पकी जरूरत है; छल-कपटकी कदापि नहीं। स्वयंसेवकोंको फकत इतना ही तो करना है कि वे जिस अधिकारके लिए सत्याग्रह कर रहे हैं वह जबतक नहीं मिल जाता तबतक बस सत्याग्रह करते रहें। यदि विरोधी पक्षके लोग किसी समझौतेका प्रस्ताव रखते हैं तो गिरफ्तार किये गये नेता रिहा हो ही जायेंगे। दक्षिण आफ्रिकामें भी तो यही हुआ था। जब लगभग सब नेतागण गिरफ्तार कर लिये गये तब श्री गोखले घबरा उठे और उन्होंने श्री एन्ड्रयूज तथा श्री पियर्सनको दक्षिण आफ्रिका भेजा। इन दोनोंकी सहायता बहुमूल्य थी, परन्तु बलिदानकी शिखाको प्रज्वलित रखनेके लिए वह आवश्यक नहीं थी। समझौतेके लिए बातचीत चलानेमें[1] ये दोनों अवश्य सहायक हुए, परन्तु असली कष्ट-सहन तो आम जनताका ही काम था।

१. देखिए खण्ड १२, पृष्ठ ३११-३५०।

इसके बाद हमारे प्रतिनिधिने गांधीजीसे पूछा, 'चूंकि यह आन्दोलन एक देशी रियासतमें चल रहा है इसलिए देशमें चल रहे वृहत्तर असहयोग आन्दोलनके अंगके रूपमें इसका महत्त्व क्या कम नहीं हो जाता ?"

मैं यह नहीं मानता कि वाइकोम सत्याग्रह ऐसे किसी अर्थमें असहयोग आन्दोलन-का एक अंग है। हाँ, यह आन्दोलन सत्याग्रहका रूप जरूर है, परन्तु असहयोग आन्दोलनसे इसका कोई सीधा सम्बन्ध नहीं है। सत्याग्रह तो एक शाश्वत सिद्धान्त है। मुझे यकीन है कि इसके पैर अव जम चुके हैं और ज्यों-ज्यों समय वीतता जायेगा आप देखेंगे कि इसका उपयोग अनेक प्रकारसे किया जाने लगेगा। मैं 'नवजीवन' में[1] इसके उपयोगकी बात कर चुका हूँ। एक उत्साही समाज-सुधारक सत्याग्रहका उपयोग अपनी जातिकी एक कुप्रथा अर्थात् सबसे-ज्यादा पैसा देनेवाले के हाथ कन्याको बेच देनेकी कुप्रथाको हटानेके उद्देश्यसे करना चाहता है। वह अपनी जातिकी वहनोंकी खातिर कष्ट-सहनका मार्ग अपनाकर इस अमानवीय प्रथाको वन्द कराना चाहता है। यदि इस मामलेमें वह सत्याग्रह करता है तो हम इसे असहयोग आन्दोलनका अंग नहीं मान सकते। मुझे ज्ञात है कि इसमें और वाइकोम आन्दोलनमें वहुत वड़ा अन्तर है। वाइकोम आन्दोलन कांग्रेसजनों द्वारा चलाया जा रहा है और उसका असहयोग आन्दोलनके एक पहलू अर्थात् अस्पृश्यतासे सम्बन्ध है। फिर भी मेरे सामने यह स्पष्ट है कि इसे असहयोग आन्दोलनका अंग नहीं कहा जा सकता। वर्तमान परिस्थितियोंमें इस प्रकारका आन्दोलन किसी देशी रियासतमें छेड़ा जाना चाहिए या नहीं, इसका निर्णय इस मामलेके गुण-दोषके आधारपर ही करना चाहिए। यदि वाइकोम आन्दोलन देशके उस राजनीतिक आन्दोलनका एक अंग हो जो ब्रिटिश भारतमें चलाया जा रहा है तो मेरे सामने यह विलकुल स्पष्ट है कि इसे वन्द कर देना चाहिए। व्यक्तिगत रूपसे मैं इस वातके खिलाफ हूँ कि कांग्रेसजन प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूपसे देशी रियासतोंमें परेशानी पैदा करें, क्योंकि ये स्वयं ब्रिटिश भारतीय प्रजाजनोंसे कुछ अच्छी स्थितिमें नहीं हैं। कोई अकेला रेजीडेंट या पोलिटिकल एजेंट ही इन राजाओं और महाराजाओंके होश-फाख्ता कर देनेके लिए काफी है। ये ब्रिटिश सत्ताधारियोंके छोटेसे दवावके सामने भी टिक नहीं सकते। यह वाइकोम आन्दोलन एक सामाजिक और धार्मिक आन्दोलन है। इसके पीछे कोई निकटस्थ अथवा दूर-दराजका राजनीतिक उद्देश्य भी नहीं है। इसे त्रावणकोर दरवारके विरुद्ध नहीं वल्कि सिर्फ जमानेसे चले आ रहे पण्डे-पुजारियोंके असह्य पूर्वग्रहके विरुद्ध ही प्रारम्भ किया गया था। जहाँतक मुझे मालूम है, दरवारने इसमें जो हाथ डाला है वह केवल शान्ति कायम रखनेकी खातिर ही। जहाँतक मैं जानता हूँ, सही या गलत, दरवारको यह दहशत हो गई थी कि इन निषिद्ध सड़कोंपर सत्याग्रहियोंकी उपस्थितिके परिणामस्वरूप शान्ति भंग हो जायेगी। यदि महाराजा स्वयं एक सुधारक होते और अस्पृश्यताके प्रवल विरोधी होते तो यह सम्भव था कि वे सत्याग्रहियोंका पक्ष लेते और उन्हें मारपीट या परेशानियोंसे वचाते। परन्तु मुझे यह वताया गया है कि वे अस्पृश्यताको

१. देखिए "सत्याग्रह और समाज-सुधार", १३-४-१९२४।

लेकर सुधार-कार्य करनेमें रुचि नहीं रखते। चूँकि परिस्थिति ऐसी है, इसलिए उनके सलाहकारोंकी दिलचस्पी सिर्फ इसी वातमें है कि शान्ति कायम रखनेके लिए जरूरी कार्रवाई करें। परन्तु जो नेतागण वहाँ आन्दोलन चला रहे हैं, वे अव भी आन्दोलनको उचित सीमाओंमें रख सकते हैं और उसे दरबार-विरोधी होनेसे बचा सकते हैं।

फिर हमारे प्रतिनिधिने पूछा: "एशियाई विरोधी विधानपर दक्षिण आफ्रिकामें श्रीमती नायडूकी उपस्थितिका प्रभाव किस रूपमें पड़ा है और उससे भारतीय समाजको कहाँतक लाभ पहुँचा है?" महात्माजीने श्रीमती नायडूकी बहुत जोरदार शब्दोंमें प्रशंसा करते हुए कहा:

स्वयं श्रीमती नायडू तथा दक्षिण आफ्रिका निवासी मेरे कुछ पुराने मित्रोंने जो विवरण मेरे पास भेजे हैं, उनसे मुझे इस बातका विश्वास हो गया है कि श्रीमती नायडूकी उपस्थितिसे वहाँ बसे हुए भारतीयोंको बहुत लाभ हुआ है। निःसन्देह उन्होंने उन्हें हिम्मत बँधाई है और उनमें आशाका संचार किया है। उन्होंने अपनी अद्वितीय प्रतिभा द्वारा अनेक यूरोपीयोंको भारतीयोंका पृष्ठपोषक बना दिया है। जो भी हो, कटुताकी भावना नरम तो पड़ ही गई है। श्रीमती नायडूने अपने एक पत्रमें मुझे लिखा है कि उनकी बातें सुनकर यूरोपीय लोगोंकी आँखें डबडबा आई। अगर यह पत्र बहुत ही निजी न होता तो मैं उसे आपको भी पढ़नेके लिए देता। मेरा खयाल है कि 'केप टाइम्स'ने श्रीमती नायडूके क्रिया-कलापके बारेमें जो कड़ी बातें लिखी हैं, वे नितान्त एकपक्षीय हैं। उसकी बातोंको सुसंस्कृत यूरोपीय लोगोंका विचार नहीं माना जा सकता। मेरी रायमें तो श्रीमती नायडूने बहुत ही विवेक और सूझ-बूझसे काम लिया है। इस बातकी तो आशा भी नहीं की जानी चाहिए कि उनके शब्दोंका यूरोपीयोंके मनपर स्थायी प्रभाव होगा। उनके मनपर कोई स्थायी प्रभाव तो वहाँके भारतीय ही डाल सकते हैं, जिसके लिए उन्हें आदर्श आचरण करना होगा और एकमत होकर काम करने और कष्ट उठानेकी सामर्थ्यका परिचय देना होगा।

यह पूछनेपर कि हिन्दू-मुस्लिम समस्याका आपके लेखे सबसे अच्छा समाधान क्या है, महात्माजीने कहा:

जिन नेताओंने इस समस्याके समाधानको अपना प्रमुख काम बना लिया है, उनसे मिले बिना इस सम्बन्धमें कुछ न कहना ही मैं बेहतर समझता हूँ। इस सम्बन्धमें मेरे विचार बहुत दृढ़ हैं और जहाँतक मैं समझता हूँ, अधिक तर्क-वितर्कका उनपर कोई प्रभाव नहीं पड़नेवाला है। परन्तु मैं जल्दबाजी नहीं करना चाहता और जहाँ-तक किसी मनुष्यके लिए सम्भव है, इस सम्बन्धमें मैं बिलकुल अन्ततक उचित बात स्वीकार करनेके लिए अपना दिमाग खुला रखना चाहता हूँ।

शुद्धि और संगठनके बारेमें प्रश्न करनेपर महात्माजीने उत्तर दिया:

जब मैं पूरे प्रश्नके सम्बन्धमें अपने विचार स्पष्ट करनेकी स्थितिमें होऊँगा तभी इस विषयमें मेरे विचार मालूम हो जायेंगे।

जबतक कौंसिल-प्रवेशके प्रश्नपर स्वराज्यवादी नेताओं और श्री दाससे, जिनकी राह देखी जा रही है, पूरी तरह बातचीत नहीं हो जाती तबतक महात्माजी इस

सम्बन्धमें कुछ कहनेको तैयार नहीं थे। बेशक पण्डित मोतीलाल नेहरूके साथ बातचीत चल रही है। वे जुहूमें महात्मा गांधीके निवास-स्थानसे कुछ ही फासलेपर ठहरे हुए हैं। लेकिन महात्माजी अच्छी तरह जानते-समझते हैं कि स्वराज्यवादी लोगोंने कौंसिलमें क्या काम किया है।

हमारे प्रतिनिधिके इस प्रश्नके उत्तरमें कि "क्या आप अपनी रिहाईके लिए स्वराज्यवादियोंको श्रेय देते हैं?", महात्माजीने मुस्कराते हुए तत्काल कहा:

मेरी रिहाईका कितना श्रेय किसको है, यह बात अगर मुझे कहनी ही हो तो मैं समझता हूँ कि स्वराज्यवादियोंने जो स्थिति अपनाई वह मेरी रिहाईका एक मुख्य कारण थी।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, १७-४-१९२४

३४४. तार: च० राजगोपालाचारीको

अन्धेरी

[१५ अप्रैल, १९२४ या उसके पश्चात्][1]

अनशनके बारेमें मेरा उत्तर समाचारपत्रोंमें[2] प्रकाशित। भूख हड़ताल अवैध। मेरा विचार है कि वाइकोम सत्याग्रह मेरी सुझाई गई शर्तोंके अनुसार जारी रखा जाये।

गांधी

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १०२८०) की फोटो-नकलसे।

१. यह तार श्री राजगोपालाचारीके इस आशयके तारके उत्तरमें भेजा गया था कि बाहरसे नेताओं और धनकी मदद मिले बिना केरल अपने-आपको असमर्थ पाता है। मैं खुद अपनी अपरधाके कारण संघर्ष नहीं चला सकता। तमिलनाड खादीके कामको नुकसान पहुँचाकर ही आदमी भेज सकता है।...स्वयंसेवक अभी गिरफ्तार नहीं किये जा रहे हैं।...भूख हड़तालके अलावा कोई उपाय नहीं है...आप सलाह दें।" यह तार गांधीजीको १५ अप्रैलको मिला था। (एस० एन० १०२८०)

२. तात्पर्य १२ अप्रैलको जॉर्ज जोजेफको भेजे गांधीजीके तार और पत्रसे है; देखिए "भेंट: एसोसिएटेड प्रेस ऑफ इंडियाके प्रतिनिधिसे", १३-४-१९२४।

३४५. पत्र : मु० रा० जयकरको

[१५ अप्रैल, १९२४ के पश्चात्][1]

आप रामदासकी जो देख-भाल कर रहे हैं, उसके लिए मैं आपका बहुत आभारी हूँ। मेरा खयाल है कि आजकल आपके द्वारा नियमित रूपसे जो प्रशिक्षण मिल रहा है, उससे उसे लाभ पहुँचेगा और उसके चित्तमें स्थिरता आयेगी।

आशा है, चीरा लग जानेके उपरान्त अब आपकी माताजीके स्वास्थ्यमें निरन्तर सुधार हो रहा होगा। मेरा उनसे सादर प्रणाम कहें।

[अंग्रेजीसे]

स्टोरी ऑफ माई लाइफ

३४६. तार डा० मु० अ० अन्सारीको[2]

[१६ अप्रैल, १९२४ या उसके पश्चात्]

ईश्वरको धन्यवाद आशा है सुधार जारी रहेगा।

गांधी

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ८७३२) की फोटो-नकलसे।

३४७. तार कालीचरणको[3]

[१६ अप्रैल, १९२४ या उसके पश्चात्]

खेद है स्वास्थ्य ऐसा नहीं कि सभापतिका कर्त्तव्य निबाह सकूँ या सम्मेलनमें आ सकूँ।

गांधी

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ८७३३) की फोटो-नकलसे।

१. रामदासके गायन-विद्या सीखनेके सन्दर्भसे प्रतीत होता है कि यह "पत्र : गंगाबहन मैयजीको", १५-४-१९२४ के बाद ही लिखा गया होगा।"

२. यह तार डा० अन्सारीके १५ अप्रैल, १९२४ के निम्नलिखित तारके उत्तरमें भेजा गया था: "कल लगभग पूरे दिन शौकतका ज्वर सामान्य रहा। आज भी वैसा ही है। डा० मेहताको कष्ट न दीजिए। मुहम्मद अली कल रातको बम्बईके लिए रवाना हो गये।" यह गांधीजीको १६ अप्रैलको मिला था।

३. १६ अप्रैल, १९२४ को कालीचरणने गांधीजीसे तार द्वारा निवेदन किया था कि ३१ मई और १ जूनको गोंदियामें होनेवाले अखिल भारतीय दलित वर्ग गोलमेज सम्मेलनकी अध्यक्षता करें और हमारे सारे मामलोंको सदाके लिए निबटा दें। उक्त तार इसीके उत्तरमें भेजा गया था।

३४८. जेलके अनुभव – १

पाठक जानते हैं कि मैं एक पुराना पापी हूँ। १९२२ के मार्च मासकी मेरी जेल यात्रा जिन्दगीकी पहली यात्रा नहीं थी। दक्षिण आफ्रिकामें मैं तीन वार सजा भोग चुका हूँ। दक्षिण आफ्रिकाकी सरकार उस समय मुझे एक खतरनाक कैदी मानती थी, इसलिए वह मुझे एक जेलसे दूसरी जेलमें घुमाती रहती थी। इससे मुझे जेल-जीवनका वहुत अच्छा अनुभव हो गया।[1] हिन्दुस्तानमें जेल जानेसे पहले मैं इस तरह छ: जेलोंमें रह चुका था और उतने ही सुपरिंटेंडेंटों और उनसे अधिक जेलरोंसे मेरा वास्ता पड़ चुका था। इसलिए जब १० मार्चकी सुन्दर रात्रिमें भाई वैंकरके साथ मुझे सावरमती जेल ले जाया गया, तब कोई नया और अनसोचा अनुभव होनेपर मनुष्यको जो अटपटापन लगता है, वह मुझे नहीं लगा। मुझे तो लगभग ऐसा ही आभास हुआ मानो मैं और नये मित्र वनानेके लिए एक घरसे दूसरे घरमें जा रहा हूँ। गिरफ्तारीके वक्त अधिकारियोंका सुलूक देखकर ऐसा लगा मानो मुझे जेल नहीं, किसी विनोद-वाटिकामें ले जाया जा रहा है। पुलिस सुपरिंटेंडेंट श्री हीली सज्जन पुरुष हैं। आश्रममें उन्होंने कदम तक नहीं रखा, अनसूयावहन द्वारा सन्देश भेजा कि वे गिरफ्तारी-का वारंट लेकर आश्रमके दरवाजेपर मोटरमें ले जानेके लिए मेरी प्रतीक्षा कर रहे हैं। उन्होंने यह भी कहलवाया था कि तैयार होनेके लिए मैं अपनी इच्छानुसार समय ले सकता हूँ। आश्रमसे अहमदावाद वापस जाते हुए भाई वैंकरको श्री हीली रास्तेमें ही मिल गये थे और उन्हें वहीं पकड़ लिया गया था। अनसूयावहनकी दी हुई खवरके लिए मैं तैयार ही था। सच कहूँ तो सभी यह सोच रहे थे कि वारंट अव आया, तव आया। खासी प्रतीक्षाके वाद सवको सो जानेके लिए कह दिया गया था और मैं भी सोनेकी ही तैयारीमें था। मैं उसी दिन शामको अजमेरसे वापस आया था और थका हुआ था। वहाँ मुझे अत्यन्त विश्वस्त-सूत्रोंसे मालूम हो गया था कि मेरी गिरफ्तारीका वारंट अजमेर भेज दिया गया है। परन्तु वहाँके अधिकारियोंने उसे तामील करना नहीं चाहा, क्योंकि जिस दिन वारंट अजमेर पहुँचा उसी दिन मैं अहमदावाद लौट रहा था। इसलिए अन्तमें जव वारंटकी खवर आई तव हम सवने शान्तिकी साँस ली। मैंने अपने साथ एक अतिरिक्त कच्छ, दो कम्वल और 'भगवद्गीता', 'आश्रम भजनावलि', 'रामायण', 'कुरान' का रॉडवेलकृत भाषान्तर और कैलिफोर्नियाकी एक पाठशालाके विद्यार्थियों द्वारा मुझे हमेशा अपने साथ रखनेकी इच्छासे दी हुई ईसाके 'गिरि-प्रवचन' ('सरमन ऑन दि माउन्ट') — ये पाँच पुस्तकें ले लीं। जेल सुपरिंटेंडेंट खानवहादुर नसरवानजी वाछाने हमारा प्रेमपूर्ण स्वागत किया और हमें एक विशाल स्वच्छ चौकमें स्थित कोठरियोंके एक व्लाकमें ले

१. गांधीजीके पहलेके जेलके अनुभवोंके लिए देखिए खण्ड ८ तथा ९। इन अनुभवोंका संक्षिप्त विवरण **यंग इंडिया**के २९-६-१९२२, २०-७-१९२२ तथा १०-८-१९२२ के अंकोंमें प्रकाशित हुआ था।

जाया गया। हमें बरामदेमें सोनेकी इजाजत मिल गई। कैदियोंके लिए यह सुविधा असाधारण ही कही जायेगी। स्थानकी शान्ति और सम्पूर्ण निस्तब्धता मुझे पसन्द आ गई। दूसरे दिन सवेरे मुझे प्रारम्भिक सुनवाईके लिए अदालतमें ले जाया गया। भाई बैंकर और मैं, दोनोंने निश्चय किया था कि सफाईमें हमें कुछ भी नहीं कहना है, बल्कि सरकारके रास्तेमें कोई विघ्न डालनेकी बजाय उसकी मदद करनी है। इसलिए पहली सुनवाई जल्दी ही पूरी हो गई। मामला सेशन-सुपुर्द हुआ। और चूंकि हम तुरन्त सम्मन लेनेके लिए तैयार थे, इसलिए सुनवाई १८ मार्चको रखी गई। अहमदाबादके लोग अवसरका महत्त्व समझ गये थे। भाई वल्लभभाई पटेलने सख्त हिदायत दे रखी थी कि अदालतकी इमारतके आसपास लोग इकट्ठे न हों और किसी भी तरहका प्रदर्शन न किया जाये। इसलिए अदालतके अन्दर कुछ चुने हुए दर्शक ही थे। इससे पुलिसको कोई मुश्किल नहीं हुई और मैंने देखा कि अधिकारियोंने भी इसकी सराहना की।

मुकदमेसे पहलेका सप्ताह बाहरसे आनेवाले मित्रोंसे मिलनेमें ही निकल गया। आम तौरपर सबसे मिलनेकी छूट थी और हमें सुपरिटेंडेंटकी मार्फत मनचाहा पत्र-व्यवहार करनेकी इजाजत थी; शर्त इतनी ही थी कि पत्रोंमें कोई आपत्तिजनक बात न हो। जेलके तमाम नियमोंका हम खुशीसे पालन करते थे, इसलिए जेल-कर्मचारियोंके साथ साबरमती जेलके एक हफ्तेके कारावास-कालमें अधिकारियोंसे हमारे सम्बन्ध मधुर रहे। खानबहादुर वाछा तो पूरा खयाल रखते थे और बड़ी नम्रतासे पेश आते थे। परन्तु हर बातमें उनका दब्बूपन जाहिर हुए बिना नहीं रहता था। समय-समय-पर वे ऐसा प्रकट करते मालूम होते थे, मानो भारतमें जन्म लेकर उन्होंने कोई अपराध किया है और मानो अनजाने ही यह सूचित करना चाहते थे कि अगर वे यूरोपीय होते तो हमारे लिए और भी बहुत-कुछ कर सकते थे। भारतीय होनेके कारण हमें नियमानुसार जितनी सुविधाएँ दी जा सकती थीं उतनी देते हुए भी वे कलेक्टर, जेलोंके इंस्पेक्टर-जनरल और अपने ऊपरवाले हर अधिकारीसे भयभीत रहते थे। वे जानते थे कि यदि एक ओर वे हों और दूसरी ओर कलेक्टर अथवा जेलोंके इंस्पेक्टर जनरल हों, तो सचिवालयमें उनका समर्थन करनेवाला कोई भी नहीं मिलेगा। अपनी हीनताका खयाल भूतकी तरह उन्हें पग-पगपर सताता रहता था। कर्मचारियोंकी क्या जेलके बाहर और क्या भीतर एक-सी ही हालत देखनेमें आई। कोई भी भारतीय कर्मचारी अपनी बातपर डटे रहनेकी हिम्मत नहीं करता। सो इसलिए नहीं कि ऐसा करनेकी उसमें शक्ति नहीं होती, परन्तु इसलिए कि उसके मनमें निवृत्त नहीं तो पदच्युत कर दिये जानेका आतंक छाया रहता है। नौकरी बनाये रखने और पद-वृद्धि प्राप्त करनेके लिए उसे अधिकारियोंको खुश रखना ही पड़ता है; फिर भले ही उसे इसके लिए गिड़गिड़ाना अथवा सिद्धान्तोंका बलिदान करना पड़े। साबरमतीसे यरवदा ले जाये जानेपर कैफियत बिलकुल दूसरी ही पाई। वहांके यूरोपीय सुपरिटेंडेंटको जेलोंके इंस्पेक्टर-जनरलका कोई डर ही नहीं था। सचिवालयमें इसकी भी उतनी ही पहुँच थी। कलेक्टरको तो वह कुछ गिनता ही न था। अपने भारतीय अफसरोंकी उसे बिलकुल परवाह नहीं थी और इसलिए जब वह अपना फ़र्ज अदा करना चाहता

था तब निःशंक होकर करता था और जब कोई कठिन काम सामने आ जाता तो वह उतनी ही बेफिक्रीसे उसे टाल भी जाता था। वह जानता था कि आम तौरपर कोई उसका बाल भी बाँका नहीं कर सकता। अपनी इस धारणाके बलपर तरुण यूरोपीय अधिकारी जनता अथवा सरकारके विरोधकी परवाह न करके सही काम कर गुजरता है और कई बार तमाम विनियमों, और आदेशोंको ताकपर रखकर लोकमतका भी तिरस्कार करता पाया जाता है।

मुकदमे और सजाके बारेमें मैं कुछ नहीं कहना चाहता, क्योंकि पाठक इस विषयमें सब-कुछ जान चुके हैं। बेशक न्यायाधीश और एडवोकेट-जनरल सहित सब कर्मचारियोंने हमारे प्रति जो सज्जनता दिखाई उसका उल्लेख करना जरूरी है। अदालतके भीतर और अदालतके आसपास बाहर एकत्रित थोड़ेसे लोगोंने जो अद्भुत संयम दिखाया और जो अपार प्रेम प्रकट किया था, वह तो स्मृतिसे कभी मिटाया ही नहीं जा सकता। छः वर्षकी साधारण कैदकी सजाको मैंने हलका ही माना, क्योंकि दण्ड संहिताकी धारा १२४-अ के अनुसार कोई कार्य यदि वास्तवमें अपराध ही माना जाये और कानूनका पालन करानेवाला न्यायाधीश उसे अपराध माने बिना न रह सके, तो उस धाराके अनुसार अधिकसे-अधिक सजा देनेका उसे पूरा हक होता है। मेरा अपराध तो बार-बार और जान-बूझकर किया गया था, फिर भी मुझे जो हलकी सजा दी गई उसका कारण यह नहीं माना जा सकता कि न्यायाधीशने मुझपर दया की, क्योंकि दयाकी याचना मैंने नहीं की थी। मैं उसका यही कारण मान सकता हूँ कि धारा १२४-अ उन्हें पसन्द नहीं आती होगी। अमुक कानूनोंके विषयमें अपनी नापसन्दगी कमसे-कम सजा देकर प्रकट करनेवाले कई न्यायाधीश मैंने देखे हैं; भले ही अपराध हठपूर्वक और जान-बूझकर किया गया हो। न्यायाधीश द्वारा मुझे जो सजा दी गई उससे कम सजा वह दे ही नहीं सकता था, क्योंकि इसी अपराधके लिए स्व० लोकमान्यको छः बरसकी सजा हुई थी।

सजा सुना देनेके बाद बाकायदा सजायाफ्ता कैदियोंके रूपमें हम दोनोंको वापस जेलमें ले जाया गया, परन्तु हमारे प्रति व्यवहारमें कोई अन्तर नहीं पड़ा। कुछ मित्रों-को तो जेलतक साथ भी आने दिया गया था। विदाईके समयका वातावरण उल्लासपूर्ण था। मेरी पत्नी और अनसूयाबहन दोनोंने अलग होते समय बड़ी हिम्मत दिखाई। भाई बैंकर तो सारे समय हँसते ही रहे। और मैंने भी राहतकी साँस ली और भगवान्‌को धन्यवाद दिया कि सब-कुछ शान्तिसे निपट गया; अब मुझे साँस लेनेका मौका मिलेगा और साथ-साथ मुझे यह भी लगता ही रहेगा कि मैं देशकी उसी प्रकार सेवा कर रहा हूँ बल्कि उससे भी कुछ ज्यादा ही, जिन दिनों कि मैं एक कोनेसे दूसरे कोनेतक भाग-दौड़ करके बड़ीसे-बड़ी सभाएँ करके व्याख्यान दिया करता था। मैं चाहता हूँ कि कार्यकर्त्ताओंको यह बात समझा सकूँ कि एक साथीके जेल जानेसे उद्देश्य-की कोई बड़ी हानि नहीं होती। हमने कई बार यह मान्यता जोरदार शब्दोंमें प्रकट की है कि बिलकुल शान्त रहकर भोगा जानेवाला कष्ट, जिस अन्यायके लिए वह भोगा जा रहा हो उसके निवारणका सबसे अमोघ उपाय है। यदि वे अपनी इस मान्यतामें विश्वास रखते हैं तो फिर यह निर्विवाद रूपसे सिद्ध हो जाता है कि एक

साथीके जेल जानेसे कोई हानि नहीं होती। मर्यादा और नम्रताके साथ सहन किये जानेवाले मूक कष्ट-सहनकी वाणी जितनी स्पष्ट होती है, उतनी अन्य किसी भी चीजकी नहीं होती। यही ठोस कार्य है, क्योंकि इसमें कोई दिखावा नहीं होता। यही हमेशा सच्चा है, क्योंकि इसमें गलत अनुमान लगानेका अन्देशा नहीं होता। इसके सिवा यदि हम सच्चे काम करनेवाले हों तो एक साथीके जानेसे हमारा उत्साह और कार्य-क्षमता भी बढ़नी चाहिए। जबतक हम यह मानना नहीं छोड़ देते कि अमुककी स्थानपूर्ति करना असम्भव है, तबतक हम संगठित कार्यके योग्य नहीं बन सकते; क्योंकि संगठित कार्यका अर्थ है कार्यकर्त्ताओंकी कमी होनेपर भी काम चालू रखनेकी क्षमता। इसलिए मित्रोंको अथवा स्वयं हमको अकारण कष्ट-सहन करना पड़े तो उसमें हमें आनन्द ही मानना चाहिए और विश्वास रखना चाहिए कि जिस कार्यके लिए हमने कष्ट सहा है, वह यदि सच्चा है तो हमारे कष्टसे उस कार्यको लाभ ही होगा।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १७-४-१९२४

३४९. 'चरखेकी गुनगुन'

चरखेकी सम्भावनाओंका यह उत्साहपूर्ण वर्णन सभीको समान रूपसे रोचक लगेगा। लेखक[1] संयुक्त प्रान्तका एक सुशिक्षित व्यक्ति है और स्वयं एक अनुभवी कातनेवाला है। वह अपना नाम विज्ञापित नहीं करना चाहता।

> मैं एक सीधी-सादी वस्तु हूँ और मेरी यन्त्र-रचना कोई भी समझ सकता है। मैं एक या दो रुपयेमें खरीदा जा सकता हूँ। मैं यहाँसे वहाँ सुगमतापूर्वक ले जाया जा सकता हूँ और सभीको सरलतासे सुलभ हूँ। मैं चक्कीसे बहुत हलका हूँ और इसलिए स्त्रियोंको बहुत प्रिय हूँ। मेरी माँग शादियोंके समय होती है। मेरे द्वारा उत्पादित वस्तु पण्डितोंकी धार्मिक माँगोंकी पूर्ति करती है क्योंकि मैं सदा पवित्र हूँ। मैं देशके लाखों क्षुधा-पीड़ित ग्रामीणोंको रोटी दे सकता हूँ; किसानोंका तन ढँक सकता हूँ; भिखमंगोंको जीविका दे सकता हूँ और पतिता बहनोंको तथा उन्हें जिनकी लज्जा अन्य प्रकारसे लम्पट व्यक्तियों-की कामुकताके कारण अरक्षित रहती है, प्रतिष्ठापूर्ण धन्धा दे सकता हूँ। मैं सभी निठल्ले लोगोंके मनोंको काममें लगाकर 'शैतानके कारखानों'को ध्वस्त करनेका आदी हूँ। केवल उन्हें मुझे चलाना-भर चाहिए। मैं बुनकरों, धुनियों, लुहारों और बढ़इयोंको भोजन देता हूँ। मैं भारतको उस भारी अर्थ-निस्सारणसे बचा सकता हूँ जो उसके जीवन-रक्तको सुखाता रहा है। मैं भारतके विभिन्न समुदायोंको एक-दूसरेपर निर्भर बनाकर उनमें वास्तविक एकता स्थापित कर

१. परशुराम मेहरोत्रा; १९२२ से १९३३ तक गांधीजीके सेवक और आश्रमवासी।

सकता हूँ; हरिजन लोग जो सूत कातें उसके लिए बाजार सुलभ बनाकर उनकी आर्थिक दशा सुधार सकता हूँ; मैं देशवासियोंको आत्म-सम्मान तथा आत्म-विश्वासका पाठ पढ़ाकर भारतमें सच्ची शान्ति स्थापित कर सकता हूँ और इस प्रकार दूसरे राष्ट्रोंका भारतके शोषणके इरादेसे यहाँ आना बिलकुल असम्भव कर सकता हूँ। मैं जीवनमें सादगी ला सकता हूँ और सम्पन्न लोगोंको मिल-मजदूरोंसे बातचीत करनेके लिए बाध्य कर सकता हूँ। मैं कारखानोंकी प्रणालीका उन्मूलन करके और इस प्रकार मजदूरोंकी निरन्तर बढ़ती हुई आपदाओंका अन्त करके, तथा सत्ताकी लोलुपता और महत्त्वाकांक्षाके लिए खतरा बनकर, पूंजीपतियोंका गर्व खर्व कर सकता हूँ। इस प्रकार मैं शान्तिका अग्रदूत हूँ। भारतके आर्थिक स्वास्थ्यको वापस लौटा लानेवाला धन्वन्तरि और धनका निष्पक्ष वितरक हूँ।

किन्तु शालाओंके विद्यार्थियोंके लिए मैं कुछ और भी हूँ; मैं उनकी योग्यताका परीक्षक हूँ। मैं उनके स्वभावका मापक यन्त्र हूँ। मुझे कोई भड़भड़िया बालक दीजिए, और मैं एकदम बता दूँगा कि वह भड़भड़िया है, क्योंकि उसका सूत बिन बटा हुआ और असमान होगा। किसी गम्भीर लड़केके हाथमें दीजिए, मैं एकदम जान जाऊँगा कि उसका भविष्य उज्ज्वल है। क्योंकि उसका एक-सा सूत सधे हुए हाथका सूचक होगा।

मैं केवल परीक्षक ही नहीं, शिक्षक भी हूँ। यदि कोई बालक मुझे रोज चलाये तो मैं उसके मनको इतनी अच्छी तरह प्रशिक्षित कर सकता हूँ कि यदि वह मुझसे प्रमाण-पत्र लेकर लखनऊके जॉर्ज अस्पतालमें जाये तो अच्छा शल्य-चिकित्सक बन जायेगा। उसकी शल्य-क्रिया प्रायः सफल होगी और उसकी परख बिलकुल सच्ची होगी। मैं दावेके साथ कहता हूँ कि नियमित रूपसे कताई करनेवाला बालक अच्छा गणितशास्त्री बन सकता है, क्योंकि एक ही नियम दोनों विद्याओंका नियमन करता है। यह कहनेमें कोई अतिशयोक्ति न होगी कि कातना व्यावहारिक गणित है। यदि आप उसमें भूल करेंगे, तो आपकी भूल तुरन्त पकड़में आ जायेगी। जैसे मोथरा उस्तरा हजामत बिगाड़ देता है, जैसे तेजाब तसवीरका सत्यानाश कर देता है और जैसे श्रद्धाके बिना अर्चना व्यर्थ हो जाती है, उसी प्रकार विद्यार्थी एकाग्रताके बिना, उसे चाहे जितना पढ़ाया जाये, कुछ ग्रहण नहीं कर पाता। और आजके युवकोंमें एकाग्रताका नितान्त अभाव है। मैं बालकोंको एकाग्रताम प्रशिक्षित करनेका विशेषज्ञ हूँ; और जो बालक मुझसे मित्रता करेंगे उनके बारेमें मेरा दावा है कि इस दिशामें मैं उनका बहुत हित करूँगा।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १७-४-१९२४

३५०. अध्यापक और वकील

आशा है अबतक आप उन लोगोंसे परामर्श कर चुके होंगे जिन्हें दिल्ली-में कांग्रेसके त्रिविध बहिष्कारके प्रस्तावमें परिवर्तन करनेकी आवश्यकता दिखाई दी थी। आप अब किस नतीजेपर पहुँचे हैं? क्या आप उन तीनों बहिष्कारोंको देशके सामने फिर उसी रूपमें रखना चाहते हैं?

कौंसिलोंके बहिष्कारके सम्बन्धमें मुझे कुछ भी कहनेका अधिकार नहीं है। स्वराज्य-दलके नेता आपके सामने तमाम तथ्य और दलीलें अच्छी तरह पेश कर चुके होंगे। जो काम वे लोग कर रहे हैं और उनके द्वारा जिसके होनेकी सम्भावना है, वह आपके सामने है। यदि मैं अपने ही अनुभवसे कहूँ तो विद्यालयों और अदालतोंका बहिष्कार पूरी तरह असफल साबित हुआ है। मैं अपनी ही मिसाल पेश करता हूँ। यहाँ दो हाई स्कूल हैं जिनमें सभी दरजे हैं और वहाँ सारे विषय पढ़ाये जाते हैं — दोनोंमें पाँच-पाँच सौ विद्यार्थी हैं। लेकिन राष्ट्रीय पाठशालामें सिर्फ ३० ही हैं। विद्यार्थियोंकी तादाद बढ़ानेके लिए हमने तरह-तरहसे कोशिशें कर देखीं पर कुछ न हुआ। मुझे निश्चय हो चुका है कि लोग इस बहिष्कारके लिए तैयार नहीं हैं।

अब तीसरे बहिष्कारकी बात लीजिए। इने-गिने वकीलोंने ही वकालत छोड़ी थी। अब लगभग वे सभी फिरसे वकालत करने लगे हैं। अदालतोंकी शरण लेनेवाले लोगोंकी संख्या तो कभी कम हुई ही नहीं थी। राष्ट्रीय कार्य करनेवालों द्वारा स्थापित पंचायतें भी नहीं पनपीं और अब तो वे मृतप्रायः ही हो गई हैं। इन पंचायतोंके पास ऐसी कोई सत्ता नहीं जिससे वे अपने फैसलेको कार्यान्वित करा सकें और न लोगोंको ही उनके फैसले मान लेनेका प्रशिक्षण दिया गया है। ऐसी हालतमें उन्हें कहने योग्य सफलता मिल ही कैसे सकती है?

कांग्रेसने तो देशके नामपर केवल एक सालके लिए यह सब छोड़ देनेका आदेश दिया था। उसके अनुसार हमने अपनी भावी शिक्षा और अपने भावी जीवनकी आहुति दी। पर अब इस हालतमें हमें करना क्या चाहिए? हमारे तो एक नहीं तीन साल चले गये। लोगोंके लिए हमने राष्ट्रीय पाठशालाएँ स्थापित कीं, परन्तु लोग तो उनकी कुछ परवाह ही नहीं करते; कार्यकर्त्ताओंके बलिदान-की कद्र ही नहीं रह गई है। इतने थोड़े विद्यार्थियोंवाली राष्ट्रीय पाठशालाएँ क्या लोगोंके धन, शक्ति और जीवनका भारी अपव्यय नहीं हैं? क्या इसका यह अर्थ नहीं कि इन कोशिशों और तजवीजोंका समय अभी नहीं आया है? हमारा यह त्याग खुद हमें ही सन्तोष नहीं देता। बहुत बार देशभक्ति और

देश-कार्यके उत्साहमें यह असन्तोष बाधक हो जाता है। खादी मिलके कपड़ेसे महँगी पड़ती है और हमारे पास उतना पैसा नहीं है। कांग्रेसके प्रतिनिधि निर्वाचित हो जानेपर भी सफर-खर्च न होनेके कारण हम अधिवेशनोंमें शरीक नहीं हो पाते अथवा हमें प्रतिनिधि होनेसे इनकार करना पड़ता है। ऐशो-आरामके लिए नहीं, हमें अपनी दैनिक जरूरतोंके लिए रुपया कमाना ही पड़ता है। परन्तु कांग्रेसके कारण हमारे रास्ते रुक गये हैं।

मुझपर अपने कुटुम्बके भरण-पोषणका भार है और मेरा शरीर कमजोर है, इससे ग्रामोंमें प्रचार-कार्यकी कठिनाइयोंको मैं बरदाश्त नहीं कर सकता। कांग्रेसका अब लगभग कुछ काम-धाम बचा भी नहीं है। मेरी समझमें कांग्रेसको कार्यकर्त्ताओंके निर्वाहकी व्यवस्था करनी चाहिए। वह उन्हीं लोगोंको अपने काममें रोके जिनकी गुजरका भार वह उठा सकती हो। दूसरे सब लोगोंको इस बातकी आजादी दे दे कि वे गुजरके लिए जो काम करना चाहें, करें; पर करें देश-सेवाकी दृष्टिसे ही और अपनेको ऐसा (अनियमित सेनाका) सिपाही मानें, जो जब जरूरत पड़े देशकी पुकारपर लड़नेके लिए सामने आ जायें। ऐसे लोग सरकारी और अर्ध-सरकारी पाठशालाओंमें काम करेंगे और वहाँकी पाठ्यपुस्तकोंको देश-सेवाकी दृष्टिसे पढ़ायेंगे। वे वकालत करेंगे और पग-पगपर लोगोंको समझायेंगे कि अदालतमें कितना समय और धन बरबाद होता है; वे फौजमें भरती होंगे और अपने भाइयोंपर गोली चलानेसे इनकार करेंगे, इत्यादि। मुझे पता नहीं कि पूर्ण रूपसे तन्दुरुस्त हो जानेपर आप क्या करेंगे। इस बीच मैं आपकी सलाह चाहता हूँ। मेरा खयाल है कि यहाँकी राष्ट्रीय पाठशालाका — जिसकी न तो लोग कद्र करते हैं, न जिसे चलानेके लिए वे तैयार हैं, प्रधान अध्यापक रहकर मैं जनता या देशकी कोई बड़ी सेवा नहीं कर रहा हूँ। इसकी अपेक्षा यदि कानूनका अध्ययन करके, वकील बनकर मातृभूमिकी थोड़ी-बहुत सेवा करूँ तो कैसा हो? क्या आप कांग्रेसके इन बहिष्कारोंको रद करके स्वराज्य प्राप्त करनेके दूसरे साधन अपनानेकी सलाह देंगे? या आप इन्हीं बहिष्कारोंको उसी जोर-शोरके साथ फिर चलाना चाहते हैं? क्या हम लोग प्रतीक्षा करें?

पुनश्च: असहयोग अन्तरात्मा और धर्मका प्रश्न नहीं है। मैं तो उसे एक साधन-मात्र समझता हूँ।

मुझे पत्र भेजनेवाले तथा मुझसे मिलने आनेवाले सज्जन विद्यालयों और अदालतोंके बहिष्कारके खिलाफ जो दलीलें पेश करते हैं, उनका सार पूर्वोक्त पत्रमें आ जाता है। बिच्छूका डंक उसकी दुममें होता है। यही बात इस दलीलके सम्बन्धमें समझनी चाहिए। लेखककी बहिष्कार-विषयक अश्रद्धा 'पुनश्च' में प्रकट होती है। अनुकूल या प्रतिकूल परिस्थितिमें किसी साधनपर अडिग रहनेके लिए साधनको

अन्तरात्मा या धर्मका विषय बनानेकी जरूरत नहीं रहती। साधन भी इतने आवश्यक और महत्त्वपूर्ण हो सकते हैं कि उनका त्याग मृत्युके समान हो जाये। फेफड़े श्वास लेने और जीवनको कायम रखनेके साधन हैं; वे स्वयं जीवन नहीं हैं। फिर भी जहाँ फेफड़े नष्ट हुए कि जीवनका भी नाश ही समझिए। इसी तरह असहयोग भी एक साधन ही है। पर सवाल यह है कि १९२० में तजवीज किया गया असहयोग ही हमारे उद्देश्यकी सिद्धिका एकमात्र उपाय है या नहीं? कांग्रेसने स्वीकार किया था कि यही एकमात्र उपाय है। पर कांग्रेस अमुक समयके लिए अपने प्रतिनिधियोंके मतका प्रतिनिधित्व ही करती है। कितने ही लोग यह जरूर मानते हैं कि असहयोगके प्रस्तावको एकमात्र साधन मानना एक भूल थी। दूसरे कितने ही लोगोंकी यह धारणा है कि असहयोग एकमात्र नहीं, अनेकोंमें एक साधन है और उसके साथ दूसरे साधनोंसे भी काम लेनेकी जरूरत थी। फिर कुछ लोग ऐसे भी हैं जिनकी श्रद्धा असहयोगपर तो नहीं थी पर जिन्होंने बहुमतको शिरोधार्य करके और यह मानकर कि कांग्रेसके निर्णय आदेशरूप हैं और सिद्धान्त तथा ब्योरेकी छोटी-बड़ी बातोंमें भी वे अल्पमतवालों पर बन्धनकारक हैं, असहयोगको स्वीकार किया था। फिर कितने ही लोग ऐसे हैं जो आजतक उसी रायपर कायम हैं कि १९२० की धारणाके अनुसार आज भी असहयोग ही हमारे ध्येयकी सिद्धिका एकमात्र साधन है। मैं इस अन्तिम वर्गमें हूँ। मेरा यह विनम्र कर्त्तव्य होगा कि समय-समयपर यह दिखाता रहूँ कि असहयोग ही एकमात्र उपाय क्यों है। पूर्वोक्त पत्रलेखक निस्सन्देह मुझसे विपरीत विचार रखनेवाले वर्गमें हैं।

मैं कई बार कह चुका हूँ कि किसी भी सिद्धान्तके समर्थकोंको यह दावा करनेका अधिकार नहीं कि केवल हमारा ही सिद्धान्त सही है। हम सबसे भूलें हो सकती हैं और हमें प्रायः अपने विचार बदलने पड़ जाते हैं। भारत-जैसे विशाल देशमें हरएक प्रामाणिक विचारके लिए स्थान अवश्य होना चाहिए। अतएव, हमारा खुद अपने प्रति तथा दूसरेके प्रति कमसे-कम इतना कर्त्तव्य अवश्य है कि हम अपने विरोधियोंके विचारोंको समझें और यदि उन्हें स्वीकार न कर सकें तो भी उनका उतना ही आदर करें जितना हम उनसे अपने विचारोंके आदरकी उम्मीद रखते हैं। यह दृष्टिकोण स्वस्थ सार्वजनिक जीवनकी एक आवश्यक कसौटी है। और इसी कारण इसीपर स्वराज्य-सम्बन्धी हमारी पात्रता अवलम्बित है। यदि हमारे अन्दर उदारता और सहिष्णुता न हो तो हम अपने मतभेदोंका निपटारा शान्तिके साथ कभी कर ही नहीं सकते। तब हमें हमेशा तीसरेसे मध्यस्थता करानी पड़ेगी जिसका अर्थ है, हमें किसी बाहरी ताकतका प्रभुत्व स्वीकार करना होगा। अतएव मैं पाठकोंसे अनुरोध करता हूँ कि वे पत्रलेखकके विचारोंको उसी प्रकार आदरकी दृष्टिसे देखें जैसे कि मैं उन्हें देखता हूँ और यदि पाठक पत्रलेखकके विचारोंके हों तो वे मेरी असहमतिको बरदाश्त करें।

मेरी धारणाके अनुसार तो विद्यालयों और अदालतोंका बहिष्कार सफल भी हुआ है और असफल भी। बिलकुल तो नहीं, पर अधिकांशमें उसे असफल इसलिए कह सकते हैं कि विद्यालयों और अदालतोंमें जाना इस हदतक बन्द नहीं हुआ कि

उसे कारगर या सन्तोषजनक भी कहा जा सके। परन्तु इस बहिष्कारको इस लिहाजसे सफल कह सकते हैं कि सरकारी विद्यालयों और अदालतोंकी जो शान और धाक-धमक थी वह बहुत-कुछ जाती रही है। लोग आज पहलेकी अपेक्षा स्वतन्त्र राष्ट्रीय पाठशालाओं और झगड़ोंको निवटानेके लिए पंचायतोंकी स्थापनाकी जरूरत ज्यादा मानने लगे हैं। वकीलों और सरकारी स्कूलोंके अध्यापकोंको पाँच साल पहले जो कृत्रिम प्रतिष्ठा प्राप्त थी, उसे वे अव बहुत-कुछ खो चुके हैं। यह कोई ऐसा-वैसा लाभ नहीं माना जा सकता। पर कहीं मेरे कहनेका कोई गलत अर्थ न लगा बैठे। शिक्षकों, अध्यापकों और वकीलोंकी देशके लिए की गई कुर्वानी तथा उनकी देशभक्तिकी कीमत मैं कम नहीं आँकता। दादाभाई और गोखले अध्यापक थे। फीरोजशाह मेहता और वदरुद्दीन तैयवजी वकील थे। परन्तु अपने इन कीर्तिशाली देशवन्धुओंका भी यह दावा करना कि समझदारी और पथप्रदर्शन करनेकी योग्यता सिर्फ उन्हींके पास है औरोंके पास नहीं, ठीक नहीं माना जायेगा। कतैयों, बुनकरों, किसानों, कारीगरों और व्यापारियोंको देशके भाग्य-निर्माणका उतना ही अधिकार है जितना कि कथित उच्च पेशोंमें पड़े हुए लोगोंको है। चूंकि उच्च पेशेवाले ये लोग राजसत्ताके अंग ही थे, हम उनके रोवमें आ गये, और फलस्वरूप उस हदतक हम यह मानने लगे हैं कि केवल वे ही सरकार द्वारा हमारी आवश्यकताओंकी पूर्ति करा सकते हैं। उन्हें चाहिए तो यह था कि वे हमें यह सिखाते कि सरकार प्रजाकी वनाई हुई है और वह प्रजाकी इच्छाके अनुसार काम करनेका एक साधन-मात्र है। इस शिष्टवर्गकी मिथ्या प्रतिष्ठा डगमगा गई है। और मेरा खयाल है कि अव उसका उभरना मुश्किल है।

राष्ट्रीय शालाएँ और पंचायतें उतनी नहीं फली-फूलीं, जितना चाहिए था; परन्तु उसके अनेक कारण हैं। कुछ निवार्य थे और कुछको अनिवार्य कह सकते हैं। यह काम हमारे लिए विलकुल नया था इसलिए हमें यह सूझ नहीं पड़ा कि इसे किस तरह करना चाहिए। अतएव जो-कुछ हमारे हाथ लगा है उससे हम निराश नहीं हैं वल्कि हमें और अधिक प्रयत्न करना चाहिए तथा अधिक समझदारीके साथ। ऐसा करनेसे हमारी निष्फलताएँ सफलताकी सीढ़ियोंमें वदल जायेंगी।

हम लोग देहातोंमें जाकर काम करनेसे घवराते हैं। हम शहरियोंको देहातोंमें काम करना बहुत कठिन मालूम होता है। वहुतोंके शरीर भी देहातोंका कठोर जीवन व्यतीत करने योग्य नहीं हैं। पर यदि हम जनताके लिए स्वराज्य स्थापित करना चाहते हों, एक दलके वदले दूसरे किसी दलका, जो शायद उससे भी अधिक वुरा निकले, राज्य स्थापित करना नहीं चाहते तो इस कठिनाईका मुकावला हमें केवल साहसके साथ ही नहीं, जानको हथेलीपर रखकर करना होगा। आजतक हजारों देहाती हमें जीवित रखनेके लिए मरे-खपे हैं। अव शायद उन्हें जीवित रखनेके लिए हमें मरना पड़े। दोनोंके मरनेमें अन्तर वुनियादी होगा। देहाती लोग अनजाने ही और अनिच्छासे मरे हैं। उनके विवशतापूर्ण वलिदानसे हमारी अवनति हुई है। अव यदि हम जान-बूझकर और इच्छापूर्वक मरेंगे तो हमारा यह वलिदान हमें और सारे राष्ट्रोंको ऊँचा उठायेगा। यदि हम चाहते हैं कि हम स्वतन्त्र और स्वाभिमानी राष्ट्र वनकर रहें तो हमें इस अनिवार्य वलिदानसे अपना कदम पीछे न हटाना चाहिए।

असहयोगी वकीलोंकी कठिनाइयाँ इससे भी अधिक हैं। दुर्भाग्यवश उन्हें ऐसा कृत्रिम जीवन बितानेकी आदत पड़ गई है जो इस देशके वातावरणसे बिलकुल मेल नहीं खाता। यदि कुछ वकील अथवा डाक्टर मुवक्किलों या मरीजोंसे १,०००) रु० रोज या १००) रु० रोज भी मेहनतानेके रूपमें वसूल करें या उन्हें इतनी रकम मिले तो यह जुर्म ही है। कोई यह कहकर इस जुर्मसे अपनेको बरी नहीं मान सकता कि इतनी फीस देनेवाले लोग अक्सर धनी ही होते हैं और यदि धनवानोंसे कुछ ज्यादा रुपये लेकर वकील उसका कुछ भाग लोकहितमें लगायें तो इसमें कोई हानि नहीं बल्कि लाभ ही है। यदि वकालत या वैद्यक करनेवाले लोग स्वार्थी न हों और यदि वे केवल अपनी आजीविकाके लिए आवश्यक रकम ही लें तो धनवानोंको भी अपना बजट बदलना पड़ेगा। पर आज तो ऐसा लगता है कि हम इस पाप-चक्रमें घूम रहे हैं।

यदि हमें स्वराज्यमें नगर-जीवनको ग्राम-जीवनके अनुरूप बनाना हो तो नगर-जीवनका रंग-ढंग बदलना ही होगा। उसकी शुरुआत करनेका समय यही है। वकील आजकी तरह अपनेको एकदम असहाय क्यों मानते हैं? यदि वे पुनः वकालत न शुरू कर सकें तो क्या भूखों ही मरना पड़ेगा? क्या दूसरा कोई चारा नहीं? क्या एक सूझ-बूझवाले वकीलके लिए बुनाई अथवा दूसरा कोई बाइज्जत काम खोज लेना नामुमकिन है?

असहयोगी वकीलों और अध्यापकोंको सलाह देना मेरे लिए कठिन है। यदि वे बहिष्कारमें श्रद्धा रखते हों तो इन तमाम कठिनाइयोंका सामना करके बहिष्कारको जारी रखना चाहिए। यदि उनकी श्रद्धा न हो तो वे अपने मनमें हीनताका कोई भी भाव लाये बिना अपने पुराने कामोंमें लग जा सकते हैं। कांग्रेसके प्रस्तावको मैं बन्धनकारक नहीं मानता। अतएव मैं यह नहीं मानता कि केवल इस कारण कि बहिष्कारका प्रस्ताव कायम है, सरकारी विद्यालयों और अदालतोंमें कोई भी अध्यापक अथवा वकील न जाये। मैं तो अब भी बहिष्कार जारी रखनेपर जोर देता हूँ; परन्तु वह विद्यालयों और अदालतोंको खाली करानेकी हलचल खड़ी करनेके रूपमें नहीं, (यह काम १९२०-२१ में किया जा चुका था या करना ही पड़ा था) बल्कि रचनात्मक प्रणालीपर जोर देकर, अर्थात् राष्ट्रीय पाठशालाओं और पंचायतोंको स्थापित करके और उन्हें लोकप्रिय बनाकर।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १७-४-१९२४

३५१. टिप्पणियाँ

मौ० शौकतअलीकी बीमारी

पाठकोंको यह जानकर दुःख होगा कि मौ० शौकतअली जो कुछ समयसे बीमार हैं और जिनका इलाज डा० अन्सारीके यहाँ उन्हींके निवास-स्थानपर हो रहा है, आशाके अनुरूप प्रगति नहीं कर रहे हैं। मौ० मुहम्मद अली और डा० अन्सारी दोनोंके पत्र मुझे हाल ही में मिले हैं। वे लिखते हैं कि रोगीको बड़ी कमजोरी महसूस हो रही है और उनकी सेवा-शुश्रूषामें बहुत सावधानीकी जरूरत है। पाठकोंसे मेरा अनुरोध है कि वे मेरे साथ ईश्वरसे यह प्रार्थना करें कि हमारा यह विख्यात देशभाई शीघ्र पूर्ण रूपसे स्वस्थ हो जायें।

नेताओंके साथ बातचीत

स्वराज्यवादी नेताओं और मेरे बीच जो बातचीत हुई है उसके बारेमें अखबारोंमें तरह-तरहकी बातें छपी हैं। मैं चाहता हूँ कि पाठक ऐसी खबरोंको बिल्कुल कच्ची मानें और उनपर ध्यान न दें। अबतक जो चर्चा हुई है उससे हम लोग किसी निर्णयपर नहीं पहुँच पाये हैं। श्री चित्तरंजन दास तो अभीतक इस चर्चामें शामिल ही नहीं हो सके हैं। डाक्टरोंने उन्हें बहुत समयतक विश्राम करनेकी सलाह दी है। इसलिए शायद वे आ ही न सकें। कुछ भी हो, जबतक श्री दास तथा दूसरे मित्रोंके विचार मालूम न हों, तबतक इस विषयमें कोई बयान दिया भी नहीं जा सकता।

मुझे मालूम हुआ है कि इस बातचीतके कारण जो अनिश्चितताकी स्थिति उत्पन्न हो गई है उससे और अखबारोंकी गैर-जिम्मेवार हरकतोंसे जो झमेला पैदा हो गया है उसके फलस्वरूप शैथिल्य और नैराश्य छा गया है। कार्यकर्त्ताओंसे मेरा यही कहना है कि वे इस बातचीतके नतीजेकी चिन्तामें अपना वक्त न गँवायें। मैं हर कार्यकर्त्ताको इस बातका यकीन दिलाता हूँ कि इस बातकी रत्ती-भर भी सम्भावना नहीं है कि मैं रचनात्मक कार्यक्रमको बदलनेकी जरा भी हिमायत करूँगा। अतएव जो लोग रचनात्मक कार्य करनेमें ढील डालेंगे वे बड़ी भूल करेंगे और उस हदतक रचनात्मक कार्योंकी प्रगतिको हानि पहुँचायेंगे। यह तो एक ऐसा काम है जिसमें जितने कार्यकर्त्ता और जितना समय मिल सकता हो, लगा दिया जाना चाहिए।

कार्यकर्त्ताओंके प्रति

एक मित्र यह सुझाव दे रहे हैं कि जिस प्रकार मैं अभी नेताओंके साथ सलाह-मशविरा कर रहा हूँ उसी प्रकार कार्यकर्त्ताओंसे बात करनेके लिए उनकी भी एक सभा बुलाई जाये। पहले भी यह तजवीज मुझे अच्छी मालूम हुई थी, पर देखता हूँ कि ऐसा करना व्यावहारिक नहीं है। इस प्रकार सभा न बुलानेका सबसे बड़ा

कारण मेरी शारीरिक अवस्था है। अभीतक मेरा शरीर इस लायक नहीं हुआ है कि मैं निकट भविष्यमें किसी लम्बे विचार-विमर्शके बोझको बरदाश्त कर सकूँ। इस प्रकारके सम्मेलनसे लाभ तभी पहुँच सकता है जब वह यथासम्भव शीघ्र, अधिकसे-अधिक इस माहके अन्ततक, आयोजित कर लिया जाये। परन्तु देखता हूँ कि इस मासके अन्ततक मेरा स्वास्थ्य इस लायक नहीं हो पायेगा; और फिर आखिर उस सभामें होगा भी क्या? जितनी वाकफियत प्राप्त हो सकती है उतनी मैं हासिल कर ही रहा हूँ। जो वर्तमान जटिल प्रश्न हमारे सामने हैं उनपर मैं शीघ्र ही अपनी राय कायम कर लूँगा। मेरी रायको कितना ही महत्त्व क्यों न दिया जाता हो फिर भी आखिर उसे एक व्यक्तिकी ही राय समझना चाहिए; और इसलिए वह प्रमाणभूत नहीं कही जा सकती। कांग्रेसवालों के लिए तो कांग्रेसका निर्णय और उसके अभावमें कार्य-समिति अथवा अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीका निर्णय ही प्रमाणभूत माना जा सकता है। हाँ, मेरे सुझावोंको अखिल भारतीय कांग्रेसकी बैठक होनेपर विचारार्थ रखा जाना अलबत्ता उचित माना जा सकता है। कार्य-समितिकी बैठक तो बहुत ही जल्दी होनेवाली है; किन्तु मैं अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीसे राय लिये बिना कोई नई नीति अथवा कार्यक्रम निर्धारित कर ही नहीं सकता।

इस प्रकार यद्यपि कार्यकर्त्ताओंकी सभा बुलाना बिलकुल जरूरी नहीं है तो भी वे जिन मुद्दोंको लेकर परेशान हैं उनके सम्बन्धमें वे अपने विचार यथासम्भव संक्षेपमें लिखकर भेज दें तो मुझे निर्णयपर पहुँचनेमें बड़ी मदद मिलेगी। ऐसे तमाम लेख इस महीनेके अन्ततक पोस्ट अन्धेरी, बम्बईके पतेपर भेज दिये जाने चाहिए।

गुरुद्वारा आन्दोलन

५०० अकालियोंके एक और जत्थेने, गंगसर गुरुद्वारे जाते हुए, रास्तेमें रोके जानेपर पूरी शान्तिके साथ आत्मसमर्पण कर दिया और उसे नाभाके अधिकारियों द्वारा गिरफ्तार कर लिया गया। यदि हम ऐसी गिरफ्तारियोंके अभ्यस्त न हो गये होते तो आज इस प्रकारकी खबरसे सारे देशमें खलबली मच गई होती। पर अब तो हमारे लिए ये मामूली बातें हो गई हैं। न तो उनपर किसीको आश्चर्य या कुतूहल होता है, न दुःख ही। जिस हदतक इन घटनाओंके होनेपर सनसनी और उत्तेजना फैलना कम होगा उसी हदतक इन घटनाओंकी नैतिक कीमत बढ़ गई समझना चाहिए। ऐसी गिरफ्तारियोंसे जिस दिन सनसनी फैलना समाप्त हो जायेगा उस दिन उन्माद भी जाता रहेगा। जो लोग उत्तेजनापूर्ण वातावरण न होते हुए भी अपनेको गिरफ्तार करा लेते हैं, वे ऐसा इसलिए करते हैं कि वे किसी न्यायपूर्ण उद्देश्यकी खातिर मनमें रोप लाये बिना कष्ट-सहनके मूक परन्तु प्रभावयुक्त गुणके प्रति अतीव श्रद्धावान् हैं। आज चार सालसे सिख लोग गुरुद्वारा-आन्दोलन सत्याग्रहके तरीकेसे चला रहे हैं। उनके अधिकांश नेता आज जेलमें हैं, फिर भी यह स्पष्ट है कि उनका उत्साह मन्द नहीं हुआ है। उन्होंने बहुत अधिक कष्ट-सहन किया है। उन्होंने मारपीट बरदाश्त की और गोलियोंकी वर्षा भी सिरपर झेली किन्तु प्रत्याक्रमण नहीं किया। उनके सैकड़ों वीर जेलोंमें डाल दिये गये हैं। ऐसी स्थितिमें विजय तो निश्चित

ही है, आज हो या कल। सरकारकी ओरसे एक नई ज्यादती शुरू हो गई है। वह उन निर्दोष लोगोंको जेल भेज रही है जो पूजा-अर्चना करने वहाँ जाते हैं। ऐसे यात्रियोंके दलको भी उसने गैर-कानूनी जमात करार दे दिया है। अब देखना है कि बहादुर सिखोंको डरानेके लिए सरकार और क्या-क्या करती है। परन्तु यह अनुमान लगाना मुश्किल नहीं है कि सिखोंकी ओरसे सरकारके किसी भी हमलेका क्या जवाब मिलेगा। दमन-चक्र ज्यों-ज्यों तेज चलेगा त्यों-त्यों सिख 'करो या मरो' के अपने संकल्पपर और भी दृढ़ होते चले जायेंगे।

वाइकोम-सत्याग्रह

वाइकोमका नाम अभीतक त्रावणकोर अथवा मद्रास अहातेके बाहर शायद ही सुना गया हो। परन्तु सत्याग्रहका क्षेत्र बन जानेके कारण वह एकाएक विख्यात हो गया। वहाँके सत्याग्रहका दैनिक विवरण अखबारोंमें हर रोज प्रकाशित होता है। यह आन्दोलन त्रावणकोरके अछूतोंकी ओरसे चलाया गया है। इसके द्वारा हमें दलित वर्गो-की दशाका वर्णन करनेके लिए एक नया शब्द उपलब्ध हुआ है। वह शब्द है अनुप-गम्यता। हमारे ये बेचारे देशवासी किसी भी सवर्ण हिन्दूका स्पर्श नहीं कर सकते, इतना ही नहीं वे उसके समीप भी नहीं जा सकते; एक निश्चित दूरीपर ही उन्हें रहना होता है। इस समूची बुराईको दूर करनेकी बजाय आन्दोलनके नेताओंने इसके एक अंशमात्रको हाथमें लिया है। यह इस खयालसे कि यदि इसमें सफलता मिल गई तो कमसे-कम जहाँ आन्दोलन चलाया जा रहा है वहाँ वे अस्पृश्यताको समाप्त कर पायेंगे। इस लड़ाईको चलाते हुए मलाबारके कुछ अत्यन्त निष्ठावान कार्यकर्त्ता जेल भेजे गये हैं और उनमें 'यंग इंडिया' के मुझसे पहलेके सम्पादक श्री जॉर्ज जोजेफ भी हैं।

कितने ही स्थानीय नेताओंके जेल जानेके कारण अब हिन्दुस्तानके नेताओंसे प्रार्थना की गई है कि वे वहाँ जाकर मदद करें। यह अनुरोध स्वीकार किया जाना चाहिए या नहीं, इसका विचार यहाँ अनावश्यक है, क्योंकि ऐसा लगता है कि मद्रास पूरी तौरपर संघर्षमें भाग लेनेके लिए तैयार हो गया है। अब पीछे हटनेकी तो कोई बात ही नहीं हो सकती। यदि पुराने खयालके हिन्दू इस हलचलका सख्त विरोध करें तो सम्भव है कि लड़ाई ज्यादा दिनोंतक चले। यदि सत्याग्रही लोग नम्रता और दृढ़ताके साथ सत्य और अहिंसापर अविचल रहेंगे तो दुराग्रहकी कठिनसे-कठिन और मजबूतसे-मजबूत दीवारें भी टूटे बिना नहीं रह सकतीं। सत्य और अहिंसापर उनकी इतनी श्रद्धा तो अवश्य होनी चाहिए कि उनमें यह विश्वास पैदा हो जाये कि ये सद्गुण कठोरसे-कठोर दिलको भी पिघला सकते हैं।

मद्यपानकी रोकथाम

श्री एन्ड्रयूजने बंगाल सेवक संघके मन्त्री द्वारा किये गये एक प्रश्नका उत्तर देनेका प्रयास किया है। प्रश्न यह है कि मद्यपान-जैसी बुरी आदतकी रोक-थाम कैसे की जाये। श्री एन्ड्रयूजने पुसीफुट जॉन्सन द्वारा अपनाये गये मार्गका अनुसरण करने-को कहा है। जिस समय पुसीफुट जॉन्सन कुछ अंग्रेज विद्यार्थियोंको मद्यपानसे विरत

करनेका प्रयास कर रहे थे उस समय उनपर पत्थर फेंके गये। फलस्वरूप उनकी एक आँख जाती रही; किन्तु उन्होंने अपराधियोंको क्षमा कर दिया। उनपर मुकदमा चलानेको भी तैयार नहीं हुए और क्षतिपूर्तिके रूपमें ब्रिटिश सरकार द्वारा प्रस्तुत की गई रकम भी उन्होंनें नहीं ली। यह ऐसी मिसाल है जिसे मनसा-वाचा-कर्मणा अहिंसा कहा जा सकता है। यदि इस प्रकारकी अहिंसा यहाँ दृढ़तापूर्वक अपना ली जाये तो मैं शराबकी दूकानोंपर फिरसे धरना जारी करानेके विचारपर अमल करनेमें संकोच नहीं करूँगा। परन्तु हम इस कार्यके अयोग्य सिद्ध हुए हैं। १९२१ में अनेक स्थानोंमें जो धरना दिया गया वह अहिंसासे कोसों दूर था। हमारे मनमें सरकारको उलझनमें डालनेका विचार प्रधान था और पियक्कड़ोंको मद्यपानकी ओरसे विरत करने तथा उन्हें सुधारनेका विचार गौण था। असहयोगके संघर्षमें राजनीतिको नैतिक उद्देश्यसे नीचा स्थान दिया जाता है और वह एक साधनके रूपमें अपनायी जाती है। यदि हम शराबीका सुधार कर सकें तो प्रशासन तथा प्रशासक, दोनोंका सुधार अपने-आप ही हो जाता है। परन्तु यदि हम शराबीको शराब पीनेकी आदतसे बलात् विरत करें तो हम कुछ समयके लिए सरकारको शराब या नशीली चीजोंसे होनेवाली आमदनीसे वंचित करते हैं, परन्तु जोर-जबरदस्तीके कारण शराब न पी सकनेवाला शराबी या ध्रूमपान करनेवाला व्यक्ति मौका पाकर फिर शराब या ध्रूमपान करने लगेगा और सरकारकी आमदनी फिर बढ़ जायेगी। जबतक हमारे पास पर्याप्त संख्यामें इस प्रकारके स्त्री-पुरुष न हों जो अपनी जानपर खेलकर भी शराबीके प्रति प्रेमकी भावनासे प्रेरित होकर ही धरना दे सकें तबतक हम फिर धरना देना शुरू करनेकी बात सोच भी नहीं सकते। मेरा खयाल है कि डाक्टर जॉन्सनने हमारी प्रशंसामें जो शब्द कहे हैं, हम उसके पात्र नहीं हैं। श्री एन्ड्रयूजके लेखको डाकमें छुड़वानेके पहले उसमें से मैं उक्त विषयक अनुच्छेदको निकाल देनेवाला था। परन्तु मैंने उसे इस खयालसे रहने दिया कि हमें अपने कर्त्तव्यका भान होता रहे और हमें उससे वैसी प्रशंसाका पात्र बननेकी दिशामें प्रयास करनेकी प्रेरणा मिलती रहे।

खद्दर और शुचिता

एक सज्जनने मुझे एक पत्र भेजा है। उसके साथ दस रुपयेका एक नोट भी था। वे लिखते हैं: "यदि किसी व्यक्तिमें आत्मसंयम, शुचिता, लगन इत्यादि गुण पूरे-पूरे नहीं हैं तो उसका खद्दर धारण करना पाप ही माना जायेगा।" उन्होंने यह भी लिखा है कि चूँकि वे इन गुणोंसे पूर्णत: विभूषित नहीं हैं इसलिए उनको खद्दर पहननेका साहस नहीं हो रहा है। मेरी कामना तो यह अवश्य है कि खद्दरकी वेशभूषा अपनानेवाले में उपरोक्त गुण हों; परन्तु उस हालतमें बहुत ही कम लोग खद्दर पहन सकेंगे। पत्र-प्रेषकने खद्दरके गुणोंका अनावश्यक रूपसे बढ़ा-चढ़ाकर वर्णन किया है। खद्दरका एक विशिष्ट गुण यह है तथा वह गुण और किसी वस्तुमें उतने प्रचुर प्रमाणमें नहीं है कि उसको अपनानेसे भारतकी आर्थिक समस्या हल होती है और देशसे भुखमरी मिटती है। खद्दरका यही गुण अपने-आपमें इस बातके लिए काफी होना चाहिए कि गरीब-अमीर सभी हाथ-कते सूतका कपड़ा पहनने लगें। अन्य किसी प्रकारके कपड़ेको

हाथ न लगायें। किसीका चरित्र कैसा भी क्यों न हो, हम सबको खद्दर तो पहनना चाहिए। लुच्चे-लफंगे, शराबी अथवा भद्रसे-भद्र पुरुष सभी लोगोंको खानेको अन्न और पहननेको कपड़ा तो चाहिए ही। मैं उन लोगोंसे अपने आन्तरिक जीवनकी पद्धतिको बदलनेके लिए भले न कहूँ किन्तु खद्दर पहननेका आग्रह जरूर करूँगा। हमें चाहिए कि खद्दरमें जो गुण नहीं हैं उन गुणोंको उसपर आरोपित करना बन्द कर दें।

मुझे इसका पश्चात्ताप नहीं है

एक पत्र-प्रेषकने बड़े ही आवेशपूर्ण परन्तु सच्चे हृदयसे एक पत्र लिखा है और कहा है कि यदि मैं उचित समझूँ तो उसे प्रकाशित कर दूँ। पत्र-प्रेषक महोदयके प्रति समुचित आदर-भाव रखते हुए मेरा विचार है कि उस पत्रको प्रकाशित करना आवश्यक नहीं है। परन्तु मैं इतना जरूर कर सकता हूँ कि दो-चार पंक्तियाँ पाठकोंके सामने रख दूँ ताकि वे अनुमान लगा सकें कि मूल पत्रमें क्या होगा।

> **अगर आप स्वराज्य पार्टीके पिछले तथा वर्तमान कार्योंकी भर्त्सना कड़ेसे-कड़े शब्दोंमें नहीं करेंगे तो आप सत्यके प्रति और इसी कारण ईश्वरके प्रति अपने कर्त्तव्यसे च्युत हो जायेंगे। यदि आप उनकी लानत-मलामत नहीं करेंगे . . . तो उसका परिणाम आपके आन्दोलनके लिए घातक होगा . . . कृपया दूसरा बारडोली-काण्ड घटित न होने दें।**

उपर्युक्त वाक्यको प्रकाशित करनेमें मेरा उद्देश्य, अपने 'पतन' की भूमिका प्रस्तुत करना और इस प्रकार कुछ अंशोंमें उसकी तीव्रताको कम करना है। कौंसिल-प्रवेशके विषयमें मैं कोई भी वक्तव्य क्यों न दूँ, इतना जरूर जानता हूँ कि मैं किसी भी रूपमें स्वराज्यवादियोंकी निन्दा नहीं करूँगा। उनके और मेरे बीच जो मतभेद है उसे मैं कड़ेसे-कड़े शब्दोंमें व्यक्त करूँ, यह बात अलग है; परन्तु भिन्न प्रकारके विचार रखनेके कारण ही मैं उनकी निन्दा नहीं कर सकता। उनकी बात उतने ही आदरके साथ सुनी जानी चाहिए जितने आदरके साथ मेरी या हममें से किसी बड़ेसे-बड़े नेता की। 'मेरा आन्दोलन'-जैसी कोई वस्तु ही नहीं है। परन्तु जो भी आन्दोलन मेरे आन्दोलनके नामसे पुकारा जाये उस आन्दोलनके असफल होनेका तबतक कोई खतरा नहीं है जबतक मैं स्वयं असफल सिद्ध न हो जाऊँ। इसलिए पत्र-प्रेषककी मेरे प्रति जो चिन्ता है उसकी मैं कद्र तो जरूर करता हूँ, परन्तु मैं उनसे यही निवेदन करूँगा कि वे मेरी ओरसे निश्चिन्त रहें। इसका कारण यह है कि जहाँतक देख पाता हूँ वहाँतक तो इस बातका कोई खतरा नहीं दिखाई देता कि मैं आत्म-वंचना करूँगा। मैं समय रहते एक दूसरी बात भी सामने रख दूँ। बारडोलीमें जो-कुछ मैंने किया है, उसपर मुझे इतना अधिक गर्व है कि दूसरा बारडोली काण्ड घटित होनेकी पूरी-पूरी सम्भावना है। एक बहुत संगीन मौकेपर निश्छल रूपसे भूल स्वीकार कर लेनेके परिणामस्वरूप मेरा बहुत बड़ा लाभ हुआ है। उससे मैं पवित्र हुआ हूँ; और मेरा पक्का विश्वास है कि इस स्वीकारोक्तिसे आन्दोलनको भी लाभ पहुँचा है। इस भूलको मान लेने और कदम पीछे हटानेका फल यह निकला है कि उससे अहिंसाका पदार्थ-

पाठ जितनी अच्छी तरह पढ़ाया जा सका है उतनी अच्छी तरह अन्य किसी ढंगसे सम्भव न होता। इसलिए जब-जब अवसर आयेगा तब-तब मेरे लिए बारडोलीकी पुनरावृत्ति करना सम्भव है। ऐसा करनेमें यदि सारा देश भी एक तरफ हो जाये और मेरे अकेले पड़ जानेकी नौबत आ जाये तो भी मैं उसे करूँगा। यदि मैं सत्य बात कहनेमें संकोच करूँ और उसका कारण लोकप्रियता खो देनेकी आशंका हो तो मैं देशका नालायक सेवक ठहरूँगा। जिस एक चीजके लिए मैं जीवित हूँ, अगर वही जाती रही तो मेरा आन्दोलन किस कामका?

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १७-४-१९२४

३५२. सन्देश: उपनगरीय जिला सम्मेलनको[1]

बम्बई

[१८ अप्रैल, १९२४]

महात्मा गांधीने इस आशयका सन्देश भेजा है कि स्वास्थ्य ठीक न होनेके कारण मैं सम्मेलनमें भाग न ले सकूँगा। लेकिन मेरे प्रति आप सबका जो स्नेह है मैं उसे अच्छी तरह समझता हूँ। मुझे विश्वास है कि ईश्वर आपके सम्मेलनको सफलता प्रदान करेगा। परन्तु उसके पश्चात् क्या होगा? सम्मेलनके सभी प्रस्तावोंमें सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव वह है जो खादीसे सम्बन्धित है। इसका कारण यह है कि उसमें स्त्री-पुरुष, बच्चे-बूढ़े, शिक्षित-अशिक्षित, सहयोगी-असहयोगी, सभी समान रूपसे अपनी इच्छानुसार भाग ले सकते हैं। आपके पास धन भी है और विवेक भी। संख्याके हिसाबसे आप जरूर कम हैं। क्या आपके लिए सभीको खादी-प्रेमी बना सकना सम्भव नहीं? यदि आप लोग अपने छोटे-से क्षेत्रमें, जहाँ सभी प्रकारसे परिस्थिति आपके अनुकूल है इतना भी नहीं कर सकते, तो यह शंका उत्पन्न होगी कि आप लोग इससे भी बड़े कार्य करनेके योग्य हैं या नहीं। मुझे यकीन है कि आप सब लोग मिलकर इस कामको पूरा करनेका संकल्प करेंगे।

[अंग्रेजीसे]

अमृतबाजार पत्रिका, २३-४-१९२४

१. यह सम्मेलन सान्ता क्रूजमें शुक्रवारको तीसरे पहर हुआ था। इसकी अध्यक्षता दुआसाके दरबार गोपालदासने की थी।

३५३. पत्र: कर्नल एफ० मेलको

पोस्ट अन्धेरी
१८ अप्रैल, १९२४

प्रिय कर्नल मेल,

साबरमती सेन्ट्रल जेलमें एक कैदी दो बरसकी सख्त कैद भोग रहा है। उसे अन्य किसी उपयुक्त शब्दके अभावमें राजनैतिक कैदी ही कहा जा सकता है। उस कैदीका नाम श्री कल्याणजी विट्ठलभाई मेहता है। वह मेरा सहयोगी है; और मैं उससे भली-भांति परिचित हूँ। मुझे मालूम हुआ है कि जिस दिन वह व्यक्ति जेलमें प्रविष्ट हुआ था, उस दिन उसका वजन १०२ पौंड था; जो अब ९२ पौंड है। मुझे यह भी ज्ञात हुआ है कि किसी समय उसकी खुराकमें दूध भी शामिल था, लेकिन अब बन्द कर दिया गया है। जिस व्यक्तिसे मुझे यह बात मालूम हुई है, उस व्यक्तिको भी इसका कारण ज्ञात नहीं है। उस व्यक्तिने मुझे यह भी बताया है कि श्री मेहताको लिखनेकी सामग्रीसे भी वंचित कर दिया गया है, और यद्यपि वे दिन-भरमें बारह गज पट्टी ही बुन सकते हैं, तथापि जेलके अधिकारीगण कहते हैं कि नित्य २० गज पट्टी बुननी ही होगी। यह समाचार आपकी जानकारीमें लाये बिना मैं इसे प्रकाशित नहीं करना चाहता। पहले मेरे मनमें यह खयाल आया कि सीधे अधीक्षकको पत्र लिखूं, परन्तु चूंकि मैं यह जानता हूँ कि उन्हें मेरे पत्रका उत्तर देनेके पूर्व आपसे सलाह लेनी ही होगी, इसलिए मैं आपको लिख रहा हूँ। यदि आप मुझे यह बतानेकी कृपा करें कि यह खबर सच है या नहीं, और यदि सच नहीं है तो वास्तविक तथ्य क्या है, तो मैं आपका आभारी होऊँगा।[1]

आपका सच्चा,

कर्नल एफ० मेल, सी० आई० ई०, आदि
इन्सपेक्टर-जनरल ऑफ प्रिजन्स
पूना

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ८७४२) की फोटो-नकलसे।

१. कर्नल मेलने इसका उत्तर २१ अप्रैल और फिर १ मईको दिया था। इन पत्रोंमें उन्होंने कल्याणजीके स्वास्थ्य और भोजनसे सम्बन्धित ब्योरा लिख भेजा था। उत्तरमें उन्होंने यह भी लिखा था कि यह गलत है कि कल्याणजी मेहताको लिखने-पढ़नेके सामानसे वँचित किया गया है; और यह भी गलत है कि उनसे शारीरिक मेहनत कराई जाती है।

३५४. तार : वाइकोम सत्याग्रहियोंको

[अन्धेरी
१९ अप्रैल, १९२४][1]

अत्यधिक व्यस्तताके कारण लिखनेमें असमर्थ। आपका ढंग शानदार है। जैसे आपने प्रारम्भ किया है वैसे ही जारी रखें।

[अंग्रेजीसे]
हिन्दू, २४-४-१९२४

३५५. तार : मदनमोहन मालवीयको[2]

[बम्बई
१९ अप्रैल, १९२४ या उसके पश्चात्]

आशा है आपके स्वास्थ्यमें सुधार हो रहा होगा। स्वास्थ्यका हाल तार द्वारा सूचित कीजिए। कहीं बाहर जानेके पहले पूरा विश्राम कर लीजिए।

गांधी

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ८७४४)की फोटो-नकलसे।

१. के० एन० नम्बूद्रीपादने गांधीजीके नाम २३ अप्रैलको लिखे गये अपने पत्रमें वाइकोम सत्याग्रहके बारेमें सब हाल तफसीलके साथ लिख भेजा था, और साथ ही उस मन्दिर तथा मन्दिरतक पहुँचनेवाली सड़कोंका नक्शा भी भेजा था। उन्होंने यह भी लिखा था कि इसे देखनेपर इस क्रूर प्रथाकी अमानवीयता सहज ही प्रकट हो जायेगी। पत्रमें श्री नम्बूद्रीपादने गांधीजीके १९ अप्रैलके तारकी पहुँच भी स्वीकार की थी।

२. यह तार मालवीयजीके १९ अप्रैल, १९२४ के निम्नलिखित तारके उत्तरमें भेजा गया था: "खेद है कि अस्वस्थताके कारण अभी एक सप्ताह और बम्बई नहीं आ सकता।"

३५६. टिप्पणियाँ

रेशममें अहिंसा

एक भाई पूछते हैं, रेशमी कपड़ेका उत्पादन करनेमें कितने ही रेशमके कीड़ोंका नाश होता है। क्या अहिंसावादी भाई-बहन उसका इस्तेमाल कर सकते हैं? यदि वे नहीं कर सकते तो गुजरात खादी प्रचारक मण्डल तो रेशमी कपड़ेका प्रचार कर ही नहीं सकता!

यहाँ अहिंसावादीका अर्थ जाननेकी जरूरत है। यदि अहिंसावादीकी अहिंसा कांग्रेसके कार्य-क्षेत्रतक ही सीमित है तो उसके रेशमका इस्तेमाल करनेमें कोई दोष नहीं है, क्योंकि उसकी अहिंसाकी प्रतिज्ञा केवल असहयोगतक ही सीमित है। लेकिन जो पूर्णतः अहिंसावादी है वह तो हिंसा करनेसे जितना बचे उतना कम है। जहाँ दृश्य-जगत् हिंसासे ही भरा हुआ है और पग-पगपर हिंसा ही दिखाई देती है वहाँ शुद्ध अहिंसावादीका जीवन तो संयममय ही होना चाहिए। उसे तो, जितना त्याग उससे सम्भव हो सके, वह सब करना चाहिए और याद रखना चाहिए कि असली त्याग तो उसे अपने काम-क्रोधादिका ही करना है। [कभी-कभी] एक शब्दबाणमें जितनी हिंसा होती है उतनी सम्भवतः रेशमके उपयोगमें नहीं होती। ऊपर जो बारीक प्रश्न पूछा गया है, वैसे प्रश्न तो केवल उसी व्यक्तिको पूछने चाहिए जिसने अपनी समस्त इंद्रियोंपर संयम रखनेका निश्चय किया हो और जिसे उसमें कुछ अंशोंतक विजय मिली हो। वस्त्रोंका अथवा आहार-सम्बन्धी संयम तभी दीप्त हो सकता है जब वह आन्तरिक संयमका सूचक हो, नहीं तो उसके मिथ्या होनेकी सम्भावना है। मेरे ये विचार यदि सच्चे हों तो गुजरात खादी प्रचारक मण्डलके रेशम बेचनेमें हिंसा दोष नहीं रह जाता। असहयोगकी दृष्टिसे विचार करनेपर हमें रेशम बेचनेका अवकाश ही नहीं हो सकता, इसलिए कांग्रेसके किसी भी विभागमें अगर रेशम बेचा जाता है तो उसका बचाव कदाचित् यह कहकर किया जा सकता है कि ऐसा खादीके प्रचारके लिए किया जाता है। मैं तो यह मानता ही नहीं कि खादीके प्रचारके लिए रेशम बेचनेकी जरूरत है। खादीको सुन्दर बनानेके लिए रेशमकी कोर आदि बनाई जाये यह बात समझमें आ सकती है और इसे सहन किया जा सकता है।

स्वदेशी रेशम

लेकिन देशी रेशम तो बहुत कम मात्रामें मिलता है। रेशमके तार अधिकांशतः विदेशसे ही मँगवाये जाते हैं। बंगलौर और अन्य स्थानोंमें, निःसन्देह, रेशमका तार मिल सकता है लेकिन वह इतनी कम मात्रामें होता है कि उसे नगण्य कहा जा सकता है। इसके अतिरिक्त जिस उद्देश्यको ध्यानमें रखकर खादीका प्रचार करनेकी आवश्यकता है, वह रेशममें नहीं है। खादी-प्रचार धर्म-कार्य है, क्योंकि सूतके

तागेपर हिन्दुस्तानकी आजीविकाका आधार है। जबतक हम आजीविकाके प्रश्नको नहीं सुलझा सकते तबतक धर्मके पालनकी अथवा स्वराज्यकी प्राप्तिकी कोई आशा नहीं। रेशमके तारपर कुछ हजार लोगोंका निर्वाह होता है, जब कि सूतके तागेपर करोड़ों व्यक्तियोंकी गुजर होती है और उनके बिना करोड़ों भूखे मरते हैं। रेशमके तारके उद्योगका अगर बिलकुल लोप हो जाये तो इन करोड़ों अथवा हजारों व्यक्तियों-को भूखों मरनेकी नौबत नहीं आयेगी।

खादीका अर्थ

एक भाईने खादीका अर्थ पूछा है। उनका प्रश्न है कि क्या हाथसे कते हुए रेशमी तारकी हाथसे बुनी हुई अतलस खादीमें खप सकती है? खादीका तो वस्तुतः एक ही अर्थ है और होना चाहिए — हाथसे कते सूतका हाथसे बुना हुआ कपड़ा। उसी तरह कते और बुने रेशम, पटसन और ऊनको क्रमसे रेशमी, पटसनकी और ऊनकी खादी कहना चाहें तो कह सकते हैं। लेकिन रेशमी खादी पहनकर कोई खादीके प्रचारका दावा करे तो यह हास्यास्पद होगा। हाँ, यह अवश्य कहा जा सकता है कि विदेशी रेशमका उपयोग करनेकी अपेक्षा देशी रेशमका उपयोग बेहतर है। लेकिन इससे खादीका अर्थ तो चरितार्थ नहीं होता; इतना ही नहीं बल्कि यह खादीके प्रचारके लिए हानिकारक भी सिद्ध हो सकता है।

अन्त्यज भाइयोंके सम्बन्धमें

अस्पृश्यताके पापसे हिन्दू संसारने अभी मुक्ति तो प्राप्त नहीं की है, इतना ही नहीं वरन् स्थान-स्थानपर संकीर्ण विचार दिखाई देते हैं। वाइकोममें तो लोगोंने इस सम्बन्धमें हद ही कर दी है। लेकिन गुजरातको छोड़कर इतनी दूर जानेकी क्या जरूरत है? विले पारलेके राष्ट्रीय स्कूलमें जो धर्म-संकट आ पड़ा था, उसे दूर करनेमें मैंने यथाशक्ति भाग लिया। उस स्कूलका शिक्षक-वर्ग अन्त्यज बच्चोंको दाखिल करना चाहता है। उस स्कूलकी समितिमें भी अनेक सज्जन अन्त्यजोंको दाखिल करनेके पक्षमें हैं। विले पारलेमें इस प्रश्नके सम्बन्धमें बहुत प्रगति हुई है। अन्त्यज भाइयोंने अलग स्कूल खोले जानेकी माँग की है। ऐसी परिस्थितिमें मैंने सलाह दी कि अन्त्यज बच्चोंको स्कूलमें तुरन्त दाखिल करनेसे यदि स्कूलके अस्तित्वको धक्का पहुँचनेकी आशंका हो तो उनके लिए अलग स्कूल खोला जाना चाहिए। इस विशेष परिस्थिति-पर लागू होनेवाले और उसे सुलझानेके लिए सुझाये गये मेरे इस विचारका गुजरातके कुछ स्कूलोंके अध्यापक ऐसा विपरीत अर्थ करते हैं कि प्रत्येक स्थानपर जहाँ-जहाँ राष्ट्रीय स्कूल हों वहाँ-वहाँ अन्त्यजोंके लिए अलग स्कूल खोले जाने चाहिए। मेरा मत है कि यदि इस सुझावपर अमल किया जायेगा तो दोनों ही स्कूल डूब जायेंगे। इसका मुख्य कारण तो यह है कि हम इतना अधिक खर्च नहीं उठा सकेंगे। और यदि एक बार हम सिद्धान्तमें ढील होने देंगे तो अन्ततः सिद्धान्तका नाश हो जायेगा और अस्पृश्यताका कलंक कायम रह जायेगा। विले पारलेकी विशेष परिस्थितिमें दी गई सलाहका अनुकरण नहीं हो सकता। इसके अतिरिक्त उपर्युक्त दोषके कारण ही

विले पारलेके स्कूलको विद्यापीठके साथ नहीं जोड़ा गया।[1] ऐसा हो सके इसके लिए शिक्षक और समितिके सदस्य प्रयत्न कर रहे हैं और इस प्रयत्नका अगला कदम अलग स्कूल खोलना है। इसलिए यह उदाहरण विद्यापीठसे सम्बन्ध रखनेवाले स्कूलोंपर तो लागू ही नहीं होता।

अन्त्यज भाइयों द्वारा दिया गया अनुदान

बोटादके कुछ अन्त्यज भाइयोंने ३६ रुपयेकी रकम भेजी है। यह रकम भेजनेवाले भाई अपढ़ हैं। वे 'नवजीवन' के पाठक नहीं हैं; श्रोता मात्र हैं। रकम भेजनेवालोंके नाम प्रकाशित करनेका मुझसे आग्रह किया गया है और मुझे यह आग्रह स्वीकार करना पड़ा है। दलील यह है कि यदि उनके नाम 'नवजीवन' में प्रकाशित न किये जायें तो इन अपढ़ भाइयोंको अन्य किसी तरीकेसे मालूम ही नहीं होगा कि उनके भेजे हुए पैसे मुझे मिले हैं अथवा नहीं। इस दलीलमें मुझे वजन दिखाई दिया, इस-लिए मैंने उन भाइयोंके नाम प्रकाशित करनेका वचन दिया है। लेकिन मुझे उम्मीद है कि जो अन्य भाई, पैसे देना चाहते हों वे अपने नाम प्रकाशित करनेका दबाव मुझपर नहीं डालेंगे; मैं ऐसी आशा रखता हूँ। 'नवजीवन' के स्थानको मैं पैसेकी प्राप्ति स्वीकार से भरनेकी बजाय उसे बन्द करना अधिक अच्छा समझता हूँ। न्याय यह है कि हम जिसका विश्वास न करें उसे पैसा दें ही नहीं और हर किसी व्यक्तिको जो पैसा लेने आये, पैसा न दें। जाने-पहचाने और विश्वस्त व्यक्तिके आनेपर ही पैसे दिये जाने चाहिए। ऐसा हो तो पत्रमें नाम प्रकाशित करनेकी जरूरत ही न रहे। जिन भाइयोंके नाम मुझे भेजे गये हैं उनके पिताका नाम मैंने जगह बचानेकी खातिर छोड़ दिया है। जहाँ एकसे अधिक भाइयोंके नाम एक जैसे ही हैं वहाँ मैंने पिताका नाम रहने दिया है।

निम्नलिखित भाइयोंने एक-एक रुपया दिया है:

[पन्द्रह नाम दिये गये थे।]

निम्नलिखित भाइयोंने आठ आने दिये हैं:

[सोलह नाम दिये गये थे।]

निम्नलिखित भाइयोंने चार आने दिये हैं:

[पाँच नाम दिये गये थे।]

वाघा रामजीभाईने दो रुपये और दूधाभाईने दस रुपये दिये हैं। गरीब भाइयों-की इस भेंटको मैं अमूल्य मानता हूँ। इसका उपयोग केवल अन्त्यजोंसे सम्बन्धित कार्यपर ही किया जायेगा।

अस्पृश्यता-निवारणका अर्थ

मैं देखता हूँ कि कितने ही ऐसे विषयोंके सम्बन्धमें जो मैं समझता था कि काफी स्पष्ट किये जा चुके हैं अब भी प्रश्न उठा करते हैं। कांग्रेसके प्रस्तावानुसार

१. विद्यापीठकी सीनेटने ३१ अक्तूबर, १९२० को एक प्रस्ताव पास किया था जिसमें कहा गया था कि विद्यापीठ द्वारा मान्यता प्राप्त किसी भी स्कूलमें प्रवेश पानेसे अन्त्यजोंको वंचित नहीं रखा जा सकता।

और मेरी समझमें अस्पृश्यता-निवारण एक ही है और वह यह कि हमें यानी हिन्दू जातिको अस्पृश्यताके दोषसे मुक्त होना चाहिए। चारों वर्ण एक-दूसरेका स्पर्श करनेसे अपवित्र नहीं हो जाते, इसमें पाप नहीं मानते; अस्पृश्योंके सम्बन्धमें भी ऐसा ही होना चाहिए। अस्पृश्यता-निवारणका इससे ज्यादा कोई अर्थ नहीं है, यह बात मैं अनेक बार कह चुका हूँ। जिस तरह अलग-अलग जातियोंके बीच परस्पर रोटी अथवा बेटी व्यवहार नहीं है उसी तरह उक्त प्रस्तावके अनुसार अस्पृश्य माने जानेवाले लोगोंके साथ भी उसकी जरूरत नहीं है। एक-दूसरेके साथ खाना-पीना अथवा एक-दूसरेके साथ बेटी-व्यवहार रखना कोई जरूरी कर्त्तव्य नहीं है लेकिन एक-दूसरेका स्पर्श न करना और ऐसा मानना कि अमुक व्यक्ति अमुक जातिमें जन्मा होनेके कारण अस्पृश्य है — सृष्टिके नियम, दयाधर्म और सच्छास्त्रके विरुद्ध है। ऐसे पापी रिवाजके नष्ट करनेके प्रयत्नको रोटी-व्यवहार अथवा बेटी-व्यवहारके साथ मिलाना तो आवश्यक प्रायश्चित्तके प्रवाहको अवरुद्ध करनेके समान है। अस्पृश्यताका दोष हममें इतना अधिक घर कर गया है कि इसे हम दोषके रूपमें पहचानते ही नहीं हैं। इसे तो लोग इस तरह सहेजकर रख रहे हैं मानो यह हिन्दू जातिका भूषण हो। जब [हिन्दू जातिके] हितेच्छुओंको इसी दोषको दूर करनेमें इतनी कठिनाई हो रही है उस समय अन्य विघ्न उपस्थित करके सुधारको रोकना व्यवहारकुशल व्यक्तिका काम नहीं है।

रोटी-व्यवहार और बेटी-व्यवहारका प्रश्न तो जातिसे सम्बन्धित सुधारका प्रश्न है। जो लोग यह मानते हैं कि जाति-प्रथा ही नष्ट हो जानी चाहिए वे लोग स्वयं ऐसे सुधार करनेके लिए प्रयत्नशील हैं। लेकिन यह प्रयत्न बिलकुल अलग है और अस्पृश्यता-निवारणका उसके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है, यह बात स्पष्ट रूपसे समझने-की जरूरत है। जो लोग जाति-बन्धनको नष्ट करना चाहते हैं, अस्पृश्यता-निवारणके कार्यमें वे भी अपना योग देते हैं, और यह ठीक भी है। लेकिन यदि वे लोग इस बातको समझ लें कि अस्पृश्यता-निवारण और जाति-उन्मूलन दोनों अलग-अलग चीजें हैं, उनका मूल भी अलग है तो वे इन दोनों कार्योंकी कीमत और आवश्यकताको उनके गुण-दोषके आधारपर परख सकते हैं।

तो फिर अस्पृश्यता दूर करनेका तात्पर्य क्या हुआ? मैं तो मानता था कि यह बात भी लोगोंको अच्छी तरहसे समझाई जा चुकी है। उसका तात्पर्य यह है कि अस्पृश्य माने जानेवाले भाई दूसरे वर्णोंकी भाँति आजादीसे घूम-फिर सकें, जिन स्कूलों और जिन मन्दिरोंमें अन्य वर्णोंके लोग जाते हैं, वहाँ अस्पृश्य समझे जानेवाले भाई जा सकें और जिस कुएँसे सब लोग पानी भरते हैं, वहाँसे वे भी भर सकें।

'लेकिन अस्पृश्य लोग तो बहुत गन्दे रहते हैं, उनका धन्धा गन्दा होता है!' मेरे खयालसे यह दलील तो अज्ञानवश ही दी जाती है। अस्पृश्योंकी अपेक्षा कुछ दूसरे लोग अधिक गन्दे होते हैं तथापि सार्वजनिक कुओंसे पानी भरते हैं। दूधपीते बच्चेको माँका धन्धा गन्दा है, डाक्टरका भी गन्दा है तथापि उन्हें हम सम्मान देते हैं। उनके बारेमें यह कहा जाता है कि अपना काम करनेके बाद वे साफ हो जाते हैं, तो अधिकांश अस्पृश्य भी कुओंपर जानेसे पहले साफ हो जाते हैं। और यदि नहीं होते तो इसमें दोष हमारा है। हम उनका तिरस्कार करें उन्हें गाँवसे दूर

रखें, उनके लिए साफ रहनेके साधन दुर्लभ अथवा अलभ्य कर दें और फिर उन्हें दोष दें, यह तो अन्यायकी परिसीमा है। हमारी शिथिलता और अत्याचारके कारण उनमें जो दोष घर कर गये हैं उन्हें दूर करनेमें उनकी मदद करना हमारा कर्त्तव्य है। और ऐसा किये बिना हिन्दुस्तानकी स्वतन्त्रताकी इच्छा करना तो सूर्यकी ओर पीठ करके सूर्य-दर्शन करनेकी आशा रखनेके समान है।

झरियामें वचन-भंग

मौलाना मुहम्मद अलीके साथ मैं जब झरिया[1] गया था तब वहाँ के लोगोंने तिलक स्वराज्य-कोषमें अच्छी-खासी रकम देना स्वीकार किया था। बिहारमें रहनेवाले मारवाड़ी तथा गुजराती भाइयोंने बिहारकी ओरसे बहुत बड़ी रकम देना स्वीकार किया है। यह जानकर हम सब बहुत खुश हुए थे। वचन यह था कि रकम तुरन्त दे दी जायेगी। इस वचनको आज तीन वर्ष हो गये हैं। अब झरियासे इस आशयका पत्र प्राप्त हुआ है कि झरियाके कुछ खान-मालिक कच्छी भाइयोंने अपनी लिखाई हुई रकम नहीं दी है। यह बात सबको खेदजनक जान पड़ेगी। दिये हुए वचनके पालनकी महिमा शास्त्र-प्रसिद्ध है। जहाँ वचन-भंग होते रहते हैं वहाँ प्रगति हो ही नहीं सकती। वचन-भंगसे कुटुम्बोंका और यहाँतक कि राष्ट्रोंका भी नाश हुआ है। नीति-शास्त्रके अनुसार तो एकपक्षीय वचनका मूल्य द्विपक्षीय वचनकी अपेक्षा अधिक है और बोलकी कीमत लिखे हुए से कहीं अधिक होती है। उपर्युक्त भाइयोंका वचन एकपक्षीय होनेके कारण उसके पालनका आधार केवल उनकी सत्यनिष्ठापर ही निर्भर है। मेरा उनसे अनुरोध है कि वे दिये गये वचनका पालन करें और यदि वे वचनकी कीमत समझें तो प्रायश्चित्तके रूपमें उसका दूना व्याज भी दें।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २०–४–१९२४

३५७. काबुलियोंका जुल्म

लोगोंको काबुलियोंके[2] हाथों जो कष्ट भोगने पड़ते हैं, उनके सम्बन्धमें अखबारोंमें नित्य एक-न-एक खबर देखनेमें आती है। हमारे मनमें यह बात बैठ गई मालूम होती है कि हमारे पास इससे बचनेका उपाय सिर्फ एक ही है। यदि सरकार हमारी रक्षा न करे तो हम बेबस बनकर बैठे रहते हैं।

असहयोगियोंने तो यह रास्ता खुद बन्द किया है। यदि वे सरकारसे मदद माँगें तो उनके असहयोग-धर्मका लोप होता है और मदद माँगते हुए उन्हें शरमाना

१. ५ फरवरी, १९२१ को।

२. भारत-अफगानिस्तान सीमापर बसे पठान कबाइली, जो भारतके कुछ भागोंमें उस समय छोटा-मोटा व्यापार और कड़े सूदपर गरीब लोगोंको रुपया उधार देनेका धन्धा करते थे और उन्हें बहुत तंग करते थे।

भी पड़ेगा। परन्तु सहयोगियोंका भी धर्म यह नहीं है कि वे हमेशा सरकारसे मदद माँगते रहें। यदि तमाम सहयोगी हर वक्त सरकारकी ही सहायतापर नजर रखें तो फिर या तो वह सरकार ही नहीं रहेगी अथवा वह एक जालिम राज्य हो जायेगी। संसारके दूसरे किसी भागके लोग सरकारपर ही सारी जिम्मेदारी डालकर नहीं बैठ रहते बल्कि खुद ही अपनी और अपने सम्मानकी रक्षा कर लेते हैं।

तब सहयोगी और असहयोगी दोनोंके लिए सरकारकी मदद माँगे बिना काबुलियोंके जुल्मसे बचनेके कौन-कौनसे रास्ते खुले हैं?

एक आम रास्ता तो यह है कि लोग काबुलियोंसे लड़ें।

दूसरा रास्ता सत्याग्रहका है।

पहला रास्ता अंगीकार करना लोगोंका अधिकार और धर्म है। यदि लोग अपनी रक्षा न कर सकेंगे तो वे कायर समझे जायेंगे। स्वराज्य-सरकार भी पल-पलपर लोगोंकी रक्षा ही नहीं करती रहेगी। सरकार बड़े-बड़े संकटोंसे रक्षा करनेके लिए तैयार हो सकती है; परन्तु क्या कोई सरकार जहाँ-तहाँ अलग-अलग और दूर-दूर बसे हुए लोगोंकी रक्षा कर सकती है? इस सरकारकी तो रीति ही ऐसी है कि वह काबुलियोंके जुल्म-जैसे भयोंसे लोगोंकी रक्षा एकाएक नहीं कर सकती। उसकी रक्षानीति मुख्यतः उसे इस हदतक ही ले जाती है कि हम लोग आपसमें इतना न लड़ें कि आज हम कारकुनोंकी तरह उसकी जो सेवा करते हैं उसके लायक ही न रह जायें। वह हिन्दुस्तानकी बाहरी और भीतरी रक्षा अपने व्यापारके लिए जरूरी समझती है और उस सीमातक रक्षा करनेके लिए वह पूरी तैयारी रखती है। मैं यह कहना या मनवाना नहीं चाहता कि वह दूसरी तरहकी रक्षा करना ही नहीं चाहती। परन्तु ऐसी रक्षा करना उसका मुख्य कर्त्तव्य नहीं है इस कारण वह उसके लिए पूरी तरह तैयार नहीं होती। यदि वह वैसी तैयारी करना चाहे तो रक्षाके नामपर वह आजसे कहीं ज्यादा खर्च करेगी और वैसा उसे करना भी पड़ेगा। हमें आज भी घर-खर्चसे दरवानका खर्च ज्यादा उठाना पड़ता है। फिर यदि वह काबुलियोंके जुल्म-जैसे भयको दूर करनेकी पूरी तैयारी करे तो दरवान अलबत्ता सुखी ही रहेगा — परन्तु गृहस्थ तो बेचारा भीतरका-भीतर ही मर जायेगा। इसलिए हमें ऐसे भयोंसे अपनी रक्षा खुद ही कर लेनी चाहिए। हाँ, इसमें यह खामी जरूर है कि हमारे पास हथियार नहीं हैं। परन्तु हथियारोंसे भी ज्यादा जरूरत हिम्मतकी है। डरपोकके हाथमें बन्दूक किस कामकी? उसकी बन्दूक उसीपर चलाई जायेगी। डरपोक बन्दूक-धारीको हथियार न रखनेवाले हिम्मतवर हरा देंगे और उसकी बन्दूक, चलानेके पहले ही छीन लेंगे। हर गाँवके हिम्मतवर लोग यदि जान हथेलीपर लेकर लोगोंकी रक्षा करनेके लिए तैयार हो जायें तो काबुलियोंका जुल्म तुरन्त कम हो जाये। यहाँ यह लिख देना भी आवश्यक है कि शान्त असहयोगीकी प्रतिज्ञामें ऐसी स्वरक्षाका निषेध नहीं है।

'परन्तु क्या मैं ऐसे काममें हाथ बटाऊँगा?' यदि कोई मुझसे यह सवाल पूछे तो मुझे नकारात्मक उत्तर ही देना पड़ेगा। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि मुझमें हिम्मत तो है। जिसमें हिम्मत न हो वह सत्याग्रही हो ही नहीं सकता। डरपोकका

धर्म तो सत्याग्रह हो ही नहीं सकता। हाँ, डरपोक भी डरके मारे सत्याग्रही सेनामें शामिल हो सकता है; परन्तु यह अलग बात है। लेकिन मैं एक साथ दो घोड़ोंपर सवारी नहीं कर सकता। मैं तो सत्याग्रह करते-करते सत्यमूर्ति बनना चाहता हूँ, सत्यमय हो जाना चाहता हूँ। इसलिए मैंने किसीको मारकर जीवित रहनेका धर्म जान-बूझकर छोड़ दिया है। मैं तो मरकर जीवित रहनेका मन्त्र सीखना और उसके मुताबिक चलना चाहता हूँ। म प्रेमके द्वारा ही जीवित रहना चाहता हूँ। कोई भी व्यक्ति जो मुझसे वैर-भाव रखता हो इसी क्षण आकर मेरे शरीरको नष्ट कर सकता है। मैं निरन्तर प्रार्थना करता हूँ कि उस समय भी मेरे हृदयमें प्रेम ही दिखाई दे। यह प्रयोग करते हुए मैं मारकर रक्षा करनेके प्रयोगमें शामिल नहीं हो सकता और न मेरी ऐसी इच्छा ही है।

इस अवस्थामें मेरे लिए और मुझ-जैसोंके लिए केवल दूसरा रास्ता शेष रह जाता है। इसके लिए बहुत लोगोंकी जरूरत नहीं है। इसमें सामुदायिक सत्याग्रह असम्भव है। शास्त्रका यह कहना है कि यदि हममें कोई संयमी पुरुष हो तो वह काबुलियोंके हृदयको भी छू सकता है। कोई सच्चा मुसलमान फकीर इस कामको आसानीसे कर सकता है। परन्तु यह बात नहीं कि कोई हिन्दू संन्यासी इस कामको नहीं कर सकता। सत्याग्रह-शास्त्रमें न तो जाति-भेद है और न धर्म-भेद। उसकी अवधूत दशामें भाषाकी भी जरूरत नहीं रहती। हृदय हृदयका काम किया ही करता है।

जो काम एक सहजानन्दने[1] गुजरातमें किया, उसे राज्य-दण्ड न कर सका। जो काम चैतन्यने[2] बंगालमें किया उसे सरकार आजतक नहीं कर सकी है और कर भी नहीं सकेगी। डाकू और चोर चैतन्यके तेजसे ही सुधर जाते थे। हिन्दुस्तानमें मुसलमान फकीरों और हिन्दू संन्यासियोंके ऐसे कितने ही उदाहरण मिलते हैं। डाकुओंने अब्दुल कादर जीलानीके सत्यबलसे लूटा हुआ माल वापस कर दिया था और अपना डाके डालनेका पेशा छोड़ दिया था। यदि गुजरातके यतियों और साधुओंमें कोई भी निर्भय, संयमी हो तो वह काबुलियोंके जुल्मसे लोगोंको सहज ही मुक्त कर सकता है। सहजानन्दका जमाना अभी खत्म नहीं हुआ है। जरूरत है उनके सदृश भक्ति और संयमकी। इस युगमें थोड़ी भक्ति और थोड़ा संयम भी फलीभूत हो जाता है, क्योंकि यदि बीमारको इतनी मात्रा दी जाती है जिसका अनुभव उसे अबतक न हुआ हो, तो वह थोड़ी होनेके बावजूद असर कर जाती है।

हाँ, इसपर अवश्य ही यह सवाल हो सकता है: "दूसरोंको यति बनाते हो तो तुम खुद ही यति होकर दिखा दो न, बस सब-कुछ हो जायेगा।" यह बात भी सच है। परन्तु यदि मेरा बचाव समझमें न आया हो तो मैं उसे लिखकर नहीं समझा सकता। फिर यह लेख उन लोगोंके लिए नहीं लिखा गया है जो ऐसी शंका उठाते हैं। क्या यह सम्भव नहीं हो सकता कि जो बात मुझे बुद्धि द्वारा बिलकुल सम्भव मालूम होती हो उसे करनेका हार्दिक सामर्थ्य मुझमें न हो? मैंने सामर्थ्यका

१. (१७८१-१८३०); स्वामीनारायण मतके संस्थापक।
२. बंगालमें सोलहवीं सदीमें कृष्णभक्तिके प्रबल प्रचारक और जाति-प्रथाके विरोधी।

ठेका तो ले ही नहीं रखा है। बहुत सम्भव है, गुजरातमें मुझसे भी अधिक हृदयका बल रखनेवाले लोग हों। मेरी प्रार्थना उन्हींसे है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २०-४-१९२४

३५८. मेरे अनुयायी

एक सभाका विवरण मुझे प्राप्त हुआ है जिसमें एक सज्जन लिखते हैं:[1]

इस घटनाका हाल लिखनेवाले और पूर्वोक्त भाषण करनेवाले दोनों सज्जन इस बातको नहीं जानते कि मेरा अनुयायी सिर्फ एक है, और वह खुद मैं हूँ। इस एक अनुयायीको सँभालना ही मेरे लिए कठिन पड़ता है तो फिर दूसरोंकी तो बात ही क्या है? मेरा यह अनुयायी ऐसे खेल रचा करता है कि मैं कभी-कभी घबरा जाता हूँ। परन्तु मेरे सिद्धान्त इतने उदार हैं कि मैं उसपर दया करके उसकी भूलोंको दरगुजर कर देता हूँ और उसे आगे बढ़नेकी प्रेरणा देता हूँ। मेरा यह प्रयत्न कुछ हदतक सफल भी होता है। परन्तु जबतक पूरी सफलता न मिले तबतक मैं दूसरे अनुयायी बनाकर क्या करूँगा? मैं अपूर्णतामें अपूर्णताको मिलाकर पूर्णता पानेकी आशा नहीं रखता। जब मैं अपने आपको अपना पूर्ण अनुयायी बना लूँगा तब सारे संसारको न्योता देनेमें मुझे लज्जा अथवा भय न मालूम होगा और संसार भी मेरा अनुसरण आसानीसे करेगा। अभी तो मैं अपने प्रयोगमें साथियोंको खोज रहा हूँ और मैं तथा मेरे साथी सत्याग्रही कहे जाते हैं। मैं सत्यका पूरा आग्रही हूँ। मैं आशा रखता हूँ कि ईश्वर मुझे आखिरी कसौटीपर भी खरा उतरनेकी शक्ति देगा और मुझे ऐसा विश्वास भी है। मैं सत्यमूर्ति नहीं हूँ। अभी तो यह स्थिति धवलगिरिके शिखरकी तरह मेरी पहुँचके बाहर मालूम होती है। वहाँ पहुँचनेका प्रयत्न कोई साधारण बात नहीं है। मुझे अबतक जिन जीतोंका श्रेय दिया जा सकता है वे मुझे रास्ता चलते मिली हैं, ऐसा समझना चाहिए। ऐसी जीतें सत्याग्रहीके लिए अवलम्बनरूप होती हैं; वे उसे आशा बँधाती हैं। जब वह सत्यका साक्षात्कार कर लेता है तब तो वह करोड़ोंके हृदयोंका सम्राट् बन जाता है इसमें मुझे जरा भी सन्देह नहीं।

ऐसी अवस्थामें यदि पूर्वोक्त सभापति महाशय मेरे साथी ही बनेंगे तो मैं इसे बहुत मानूँगा। इन सभापतिजीने अपने सिरपर एक बड़ी जिम्मेदारी उठा ली है। पिछले हफ्ते अपने "सत्याग्रह और समाज-सुधार" नामक लेखमें मैं बता चुका हूँ कि सत्याग्रह कौन कर सकता है। सभापतिजी तथा दूसरे महाशय उसपर विचार और मनन करें।

१. यह यहाँ नहीं दिया गया है। विवरणमें उक्त सभाके सभापतिके कुछ वाक्य उद्धृत किये गये थे। सभापतिने कहा था कि मैं तो साधारण आदमी हूँ परन्तु . . . महोदयने मुझे इस संग्राममें खींचा और गांधीजीका अनुयायी बना दिया।

सत्याग्रह शाश्वत सिद्धान्त है। उसका प्रयोग हम नवीन क्षेत्रमें कर रहे हैं। आजतक उसका प्रयोग व्यक्ति और कुटुम्बतक ही सीमित रहा है। उसकी सीमा हमने बढ़ा दी है। अब हम व्यक्तिसे समुदायपर चले गये हैं। मैं तो कितने ही प्रयोगोंसे यह जान चुका हूँ कि दोनों क्षेत्रोंमें उसका विस्तार सम्भव है। परन्तु हर बार शर्त यह थी कि नेताओंमें थोड़ी-बहुत मात्रामें वे गुण थे जो गत अंकमें बताये गये हैं और सिपाही सच्चे थे। यदि नेता कुशल हों, परन्तु सिपाही सच्चे न हों तो निष्फलता ही मिल सकती है, यह अनुभव हमें बारडोली सत्याग्रहके समय हुआ था।[1] और नेताओंकी कुशलता और सिपाहियोंकी सचाईका अनुभव हमने बोरसदमें किया था।[2] उनसे हमारा यह वहम बिलकुल दूर हो गया कि हरबार सत्याग्रहके समय मैं ही नेता रहूँ अथवा कमसे-कम सलाहके लिए तो मेरी मौजूदगीकी जरूरत है ही? हमें यह कभी न भूलना चाहिए कि सफल सत्याग्रहके लिए सिर्फ तीन बातोंके मेलकी आवश्यकता है — कुशल और गुणी नेता, सच्चे सिपाही और शुद्ध ध्येय।

इन सभापति महाशयके उद्‌गार देशी राज्योंमें होनेवाले सत्याग्रहके सम्बन्धमें हैं। अतः देशी राज्योंमें सत्याग्रह करनेकी आवश्यकताके विषयपर भी कुछ विचार कर लेना जरूरी है। उदयपुर राज्यमें बिजौलियाके राजपूत किसानोंने सत्याग्रह किया था और उसमें पूरी विजय प्राप्त की थी। वाइकोम त्रावणकोर राज्यमें है। वहाँ आज सत्याग्रह चल रहा है। परन्तु दोनोंमें कांग्रेसने दखल नहीं दी और उसे दखल देना भी नहीं चाहिए। मैं समझता हूँ कि यह सिद्धान्त स्वीकार किया जा चुका है कि देशी राज्योंमें कांग्रेस न तो सत्याग्रह करे और न कराये। और यह ठीक भी है। कांग्रेसका ध्येय है ब्रिटिश भारतके लिए स्वराज्य प्राप्त करना। अतः यदि वह दूसरे भागोंके सत्याग्रहमें पड़ेगी तो यह अपनी हदसे बाहर जाना होगा। यदि कांग्रेसका ध्येय सिद्ध हो जाये तो देशी-राज्योंका प्रश्न अपने आप हल हो जायेगा। परन्तु इसके खिलाफ यदि देशी राज्योंको स्वराज्य मिल जाये तो उसका असर ब्रिटिश भारतपर शायद ही पड़ेगा। इसलिए देशी राज्योंके सत्याग्रहमें कांग्रेससे सहायता पानेकी आशा नहीं रखी जा सकती। देशी राज्योंमें काम करनेवाले प्रत्येक कार्यकर्त्ताको यह बात समझ लेनी चाहिए।

परन्तु इस प्रतिबन्धका अर्थ यह नहीं है कि कांग्रेसका कोई सदस्य देशी रजवाड़ोंके सत्याग्रहमें शरीक नहीं हो सकता। आज कांग्रेसके बाहर अनेक काम हो रहे हैं, और उनमें कांग्रेसके सदस्य सेवा कर रहे हैं। जो दूसरा सिद्धान्त प्रत्येक सेवकपर लागू होता है, वह कांग्रेसके सदस्योंपर भी लागू होता है। वह यह है कि वे कांग्रेसका जो काम करते हों उसे छोड़कर, उसे नुकसान पहुँचाकर, नया काम नहीं कर सकते। हमारे देशमें ऐसी प्रथा पड़ गई है कि एक ही व्यक्ति अपने बूतेसे ज्यादा काम अपने सिरपर ले लेता है और फिर उसके सब काम थोड़े-बहुत परिमाणमें बिगड़ते हैं।

१. बारडोली सत्याग्रह फरवरी १९२२ में चौरीचौराकी हिंसाके कारण स्थगित करना पड़ा था देखिए खण्ड २२।

२. सन् १९२३-२४ के सत्याग्रह आन्दोलनमें।

ऐसी हलचलोंमें एक बड़ा भय यह रहता है कि अगुआ लोग अति उत्साहके कारण आगा-पीछा न सोचकर आन्दोलनमें कूद पड़ते हैं और बादमें जब सिपाहियोंकी कमी पड़ती है तब परेशान होते हैं और हार जाते हैं। हरएक हलचल आरम्भ करनेसे पहले यह सोच लेना चाहिए कि इसमें लोग कहाँतक साथ देंगे। दो-चार जवानोंका उत्साह बड़ी लड़ाई चलानेके लिए काफी नहीं होता। जहाँ लोग तैयार न हों वहाँ लोगोंके नामपर किसी कामको आरम्भ करना हर तरहसे हानिकर है। जिसमें उमंग हो वह खुद ही आग सुलगाकर उसमें अपनी आहुति देकर शुद्ध हो सकता है। वह रोप या द्वेष न करे। जो इस तरह आगमें कूदता है वह शौकके कारण कूदता है, परोपकारके लिए नहीं। आगसे दूर रहना उसे दुःखदायी मालूम होता है। ऐसी आहुतियोंकी भी आवश्यकता होती है। इस तरह अपना बलिदान करनेका अधिकार सबको है। ऐसे व्यक्तिगत त्यागसे संसारके कितने ही महान् कार्य सिद्ध हुए हैं।

परन्तु जब सामुदायिक सत्याग्रहका सवाल खड़ा होता है तब व्यक्तियोंके उत्साहपर पूरा-पूरा अंकुश रखनेकी जरूरत होती है। तब लोगोंमें उत्साह, धीरज और सहिष्णुता होनी चाहिए। यदि लोगोंमें केवल उत्साह हो और वे सफलता न मिलनेपर धीरज खो बैठें तो हार हुए बिना न रहेगी। यदि उनमें कष्ट सहन करनेकी शक्ति न हो तो जब सत्ताधीश अन्दाजसे कहीं ज्यादा कष्ट देते हैं तब उनके हिम्मत हार जानेकी सम्भावना रहती है। इसलिए अगुआ लोग इन तमाम बातोंपर विचार करके ही युद्धमें उतरें।

एक और बात भी ध्यानमें रखने लायक है। अक्सर यह विश्वास रखा जाता है कि सत्ताधीश एक हदसे आगे नहीं बढ़ेंगे। ऐसे विश्वासके लिए स्थान ही नहीं है। सत्ताधीशका तो काम ही होता है विरोधको दबा देना। जब वह लोगोंकी माँगको मंजूर न करना चाहता हो तब वह लोगोंको हर तरहसे दबा देना अपना धर्म समझता है। इसलिए यह मानना कि वह दया करके कम कष्ट देगा, महज भोलापन है। ऐसे ही भोलेपनके कारण वाइकोमके सत्याग्रहियोंने मान लिया था कि त्रावणकोरके राजा नेताओंको गिरफ्तार नहीं करेंगे। क्यों गिरफ्तार नहीं करेंगे? क्या त्रावणकोरके राजा सत्याग्रहकी मदद करना चाहते हैं? यदि केवल नेताओंको पकड़नेसे कोई हलचल दब सकती हो, और उसे दबाना धर्म हो तो उसके नेताको पहले पकड़ना धर्म ही है। इससे बेचारे सिपाही लोग कष्टसे बच जाते हैं। और यदि सिपाही खुद नेताका स्थान लेने लायक हों तो वे नेताके कैद होनेपर खुश होंगे, उसकी गिरफ्तारीका स्वागत करेंगे। यदि सत्ताधीश नेताको नहीं पकड़ते तो इसी खयालसे नहीं पकड़ते कि उसे पकड़नेसे लड़ाई अधिक जोर पकड़ेगी। अतएव हमें यह मानकर ही लड़ाई आरम्भ करनी चाहिए कि सत्ताधीश उनसे जितना हो सकता है उतने कठोर उपायोंका अव-लम्बन करके लड़ाईको दबा देनेका प्रयत्न करेंगे।

इस प्रकार तमाम बातोंपर पूरी तरह गौर करनेपर यह निश्चय हो जाये कि हाँ, तमाम शर्तोंका पालन होगा तो फिर किसी भी अवस्थामें सत्याग्रह किया जा सकता है और उसका फल भी अवश्यमेव शुभ होगा।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २०-४-१९२४

३५९. गो-रक्षा

गो-रक्षासे हिन्दू-मुस्लिम ऐक्यका निकट सम्बन्ध है। परन्तु हम आज गो-रक्षाके प्रश्नपर उस दृष्टिसे विचार नहीं करेंगे। हिन्दू-मुस्लिम ऐक्यके सम्बन्धमें तथा उसको सामने रखकर गो-रक्षाके सम्बन्धमें मुझे बहुत-कुछ लिखना है। वह समय आनेपर होगा। इस लेखमें धर्मकी दृष्टिसे भी गो-रक्षाके प्रश्नपर विचार नहीं किया जायेगा। हम इसपर केवल आर्थिक दृष्टिसे ही विचार करेंगे।

मुझे जुहू-जैसे एकान्त स्थानमें रहते हुए कुछ अनुभव हुए हैं, जिनसे मेरे पुराने विचार ताजा हो गये हैं। मैं इन्हीं विचारोंको पाठकोंके सामने रखना चाहता हूँ। मेरे साथ रहनेवाले, मेरी देखरेखमें बड़े हुए या मेरे साथ निकट सम्बन्ध रखनेवाले कुछ लोगोंको जो बीमार हैं, मैंने यहाँ अपने साथ जलवायु-परिवर्तनमें भाग लेनेके लिए बुला लिया है। उनकी मुख्य खुराक गायका दूध है। यहाँ गायका दूध मिलनेमें कठिनाई होने लगी। यहाँसे नजदीक ही बम्बईके तीन उपनगर हैं — विले पारले, अन्धेरी और सान्ताक्रूज। इन तीनों जगहोंसे भी गायका दूध आसानीसे मिलना कठिन हो गया। भैंसका दूध जितना चाहिए मिल सकता है। वह भी मुझे बिना मिलावटका इसलिए मिल सकता है कि मेरी खास चिन्ता रखनेवाले मित्र आसपास बसते हैं; नहीं तो वह भी यहाँ शुद्ध रूपमें दुर्लभ है। अन्तमें मुझे तो ईश्वर और मित्रोंकी कृपासे गायका दूध भी मिल गया है। हालाँकि मित्रोंने मुझसे कहा है कि वे अपने बचे हुए दूधमें से ही मुझे गायका दूध भेजते हैं, फिर भी मुझे डर है कि मैंने उनकी जरूरतके दूधमें हिस्सा बँटाया है। परन्तु क्या मेरे जैसा सद्भाग्य सभीका होता है? मैं अपने-आपको भिखारी कहता हूँ, तथापि मुझे किसी तरहकी अड़चन नहीं उठानी पड़ती। मित्रोंके इस असीम प्रेमकी पात्रता मुझमें कितनी होगी, यह तो मेरे मरनेके बाद दया करके जब कोई ठीक-ठीक हिसाब लगायेगा, तभी पता चलेगा।

परन्तु गायके दूधके इस अभावने मुझे फिर जाग्रत कर दिया है। हिन्दुस्तान जैसे मुल्कमें, जहाँ जीव-दयाका धर्म पालनेवाले असंख्य मनुष्य बसते हैं और जहाँ गायको माताके समान माननेवाले करोड़ों धर्मात्मा हिन्दू रहते हैं, वहाँ गायोंका ऐसा बुरा हाल है, वहाँ गायके दूधका इतना अभाव है, गायोंके दूधमें मिलावट होती है और वह गरीबोंको सर्वथा अलभ्य है। इसमें दोष न मुसलमानोंका है और न अंग्रेजी सत्ताका। यदि इसमें किसीका दोष है तो वह हिन्दुओंका है। किन्तु वह दोष जान-बूझकर की जा रही उपेक्षाका नहीं, अज्ञानका परिणाम है।

हिन्दुस्तानमें जगह-जगह गोशालाएँ हैं; किन्तु उनकी हालत दयनीय है। उनके काम करनेका तरीका सदोष है। इन गोशालाओं या पिंजरापोलोंमें बेशुमार धन खर्च होता है। कुछ लोग कहते हैं कि अब तो यह सोता भी सूखने लगा है। शायद ऐसा हो भी। परन्तु मुझे यकीन है कि अगर यह काम अच्छी बुनियादपर उठाया जा

सके तो हिन्दुस्तानके भावुक हिन्दू रुपयोंका ढेर लगा देंगे। मुझे दृढ़ विश्वास है कि यह काम असम्भव नहीं है।

पिंजरापोल शहरोंके बाहर विस्तृत मैदानमें होने चाहिए। उनमें केवल बूढ़े पशु ही नहीं बल्कि दुधारू पशु भी होने चाहिए। हर शहरको अपने ही पिंजरापोलसे अच्छा दूध मिलना चाहिए। मुझसे अपरिचित लोगोंने मुझे मशीनोंके खिलाफ बताकर मुझे खूब बदनाम किया है और मेरा मनोविनोद भी किया है। मैं इन दुग्धशालाओंका संचालन करनेके लिए जितनी मशीनोंकी जरूरत हो उन सबको खरीदनेके खिलाफ अपनी "महात्मा" की आवाज नहीं उठाऊँगा, यही नहीं बल्कि उसके पक्षमें अपनी नम्र राय देनेको भी तैयार हूँ। यदि इन दुग्धशालाओंकी देख-भालके लिए कोई हिन्दुस्तानी व्यवस्थापक न मिले तो मैं किसी सच्चे अंग्रेजको नियुक्त करनेके लिए भी तैयार हो जाऊँगा। इस प्रकार यदि हम इन पिंजरापोलोंको दुग्धशाला बनायेंगे और अच्छे-अच्छे पशुओंको पालकर दूध-मक्खन कम दामोंपर बेचेंगे तो हजारों मवेशियोंको सुख पहुँचेगा और गरीबों और बच्चोंको स्वच्छ और सस्ता घी मिलेगा। अन्तमें ऐसी प्रत्येक गोशाला स्वावलम्बी अथवा लगभग स्वावलम्बी बन जायेगी। मेरे इस कथनमें कितनी व्यावहारिकता है यह बात किसी एक गोशालामें ऐसा प्रयोग करनेसे मालूम हो जायेगी।

मैं आशा करता हूँ कि इसपर कोई यह शंका न उठायेगा कि 'इसमें धर्म कहाँ है? यह तो रोजगार हो गया?' यदि कोई ऐसा शंकालु पाठक हो तो मैं उससे इतना ही कहना चाहता हूँ कि धर्म और व्यवहार ये दोनों हमेशा परस्पर विरुद्ध नहीं होते। जब व्यवहार धर्मका विरोधी दिखाई दे तब वह त्याज्य है। धर्मकी कसौटी भी तभी होती है जब वह व्यवहारमें परिणत होता है। धर्ममें मामूली कार्य-कुशलताके अलावा कुछ और बातोंकी जरूरत होती है, क्योंकि विवेक, विचार और ऐसे ही अन्य गुणोंके बिना धर्मका पालन ही असम्भव है। आजकल तो धन कमानेमें रत सेठ-साहूकार सरल चित्तसे अनेक प्रकारके दान बिना विचारे ही करते रहते हैं। जो संस्थाएँ इस दानका शिकार होती हैं उनके व्यवस्थापक उन संस्थाओंको बिना विचारे चलाते हैं और हम उनका अनुमोदन करते हैं। इस तरह तीनों ही पक्ष अनजानमें ठगे जाते हैं और समझते हैं कि वे धर्म कर रहे हैं। सच बात तो यह है कि इस प्रकार धर्मके नामपर बहुत बार बिलकुल अधर्म ही होता है। यदि तीनों पक्ष विवेकपूर्वक धर्मको समझें और उसके अनुसार चलें अथवा एक पक्ष भी ऐसा करे तो प्रत्येक संस्था शुद्ध धर्मसे दमक उठे।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २०-४-१९२४

३६०. तार : के० एम० पणिक्करको

[२१ अप्रैल, १९२४ या उसके पश्चात्][1]

मुफ्त भोजनालयोंका चालू किया जाना ठीक नहीं जान पड़ता। पत्र भेज रहा हूँ।

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १०२८८) की फोटो-नकलसे।

३६१. पत्र : महादेव देसाईको

बुधवार [२३ अप्रैल, १९२४][2]

भाईश्री महादेव,

इसके साथ गुजराती सामग्री है। वल्लभभाईने तुम्हारा भेजा हुआ बण्डल मुझे दे दिया है। किन्तु मैं उसमें से आज तो कुछ भी नहीं ले रहा हूँ। तुमने वीस-नगरकी घटनाका जो वर्णन किया है वह भाषाकी दृष्टिसे सुन्दर है। विषय-वस्तुकी दृष्टिसे वह आँखोंमें आँसू ला देनेके लिए पर्याप्त है। किन्तु मैंने तो अपना हृदय पत्थरका बना लिया है। इस दृष्टिसे तो हम इस संसारमें चींटीसे भी तुच्छ हैं। चींटी हमें अपनी निगाहमें तुच्छ लगती है और ईश्वरकी दृष्टिमें हम स्वयं कैसे हैं? फिर हम कीटाणु-जैसे तुच्छ जीव किसी वस्तुको देखकर कैसे प्रसन्न हों अथवा रोयें?

एक मुसलमानने 'प्रजामित्र' में मेरे नाम एक खुली चिट्ठी प्रकाशित की है। इसमें जहर तो है ही, किन्तु एक अच्छी सलाह भी है। उसने लिखा है कि आप दोनों जातियोंमें शान्तिका प्रसार नहीं कर सकते तो चुप होकर क्यों न बैठ जायें और तमाशा देखते रहें। 'मेरी भाषा' लेखको पहले पढ़ लेना। 'शिखर निवासी' कौन है यह तो तुम जानते ही हो। वालजीने 'नवजीवन' कितने परिश्रमसे पढ़ा है? उन्होंने जो सुधार किये हैं उनमें से अधिकतर हमें लज्जित करनेवाले हैं। यदि 'नवजीवन' के लेखोंको तुम पहले पढ़ लेते हो तो इन दोषोंके सम्बन्धमें मैं निश्चय ही तुम्हें उत्तरदायी मानूंगा। किन्तु मुझे कुछ ऐसा खयाल है कि तुमने इन लेखोंको छपनेसे पहले नहीं पढ़ा। तुमने तो उन्हें छपनेके बाद ही पढ़ा। तब इन लेखोंको किसने पढ़ा? यदि इनको आनन्दस्वामीने भी न पढ़ा हो तो इसके लिए उत्तरदायी

१. यह तार श्री के० एम० पणिक्करके २१ तारीखको प्राप्त निम्नलिखित तारके उत्तरमें भेजा गया था : "शिरोमणि समितिने निश्चय किया है कि लँगर खोल दिया जाए। वाइकोम जत्था शीघ्र ही रवाना होनेवाला है। आशा है आपकी स्वीकृति प्राप्त होगी।"

२. इस पत्रमें उल्लिखित "मेरी भाषा" शीर्षक लेख २७-४-१९२४ के **नवजीवनमें** छपा था। इससे पहले बुधवार २३ अप्रैलको पड़ता था।

किसे मानूं? क्या बच्चोंको मानूं? सच तो यह है कि यदि हम भाषाके स्पष्ट दोषों-को भी न सुधार सकें तो हमें 'नवजीवन' को चलानेका तनिक भी अधिकार है क्या? मैं स्वयं तो अपने लेखोंको आवश्यक सावधानीसे और वह भी भाषाकी दृष्टिसे जाँचने योग्य अभी नहीं हुआ हूँ। यदि तुम अथवा स्वामी उनकी पूरी तरह जाँच करनेकी जिम्मेदारी अपने ऊपर न लो तो मुझे 'नवजीवन'को बन्द करनेमें भी झिझक न होगी। यदि कोई मनुष्य अपने कार्यको सन्तोषजनक रूपसे पूरा न कर सके तो उसको छोड़ देना उसका कर्त्तव्य है।

अन्य बातोंके सम्बन्धमें भी मैं लिखना चाहता हूँ; किन्तु फिलहाल जितना हमारा काम चलानेके लिए काफी है उतना लिखकर ही मुझे सन्तोष मानना चाहिए। इस बार जो सामग्री भेजी है उसे तुम दोनोंमें से कोई सावधानीसे देख जाये।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्चः]

मैंने "क्रीड" शब्दके लिए 'विचारमान्यता' शब्दका प्रयोग किया है। यदि तुम्हारे खयालमें कोई ज्यादा अच्छा शब्द आ जाये तो इसके स्थानपर उसे रख देना।

वहाँ कोई भी राधाके सम्बन्धमें चिन्तित क्यों हो? वह अब बिलकुल ठीक है। यह पत्र स्वामीको दिखा देना।

गुजराती पत्र (एस० एन० ८७६०) की फोटो-नकलसे।

३६३. कुछ टीपें

[२३ अप्रैल १९२४ या उसके पश्चात्][१]

वे अध्यक्षका चुनाव कैसे कर सकते हैं?

यह तो मैं वल्लभभाईसे सलाह कर लेनेपर ही कह सकता हूँ।

वे अपनी समितिकी बैठक स्थगित कर दें।

अब उन्हें तार भी कैसे मिल सकता है?

यह जानते हुए उनको तार नहीं देना चाहिए और जैसा वे ठीक समझें उनको वैसा करने देना चाहिए।

यदि उनके पास कोई काम न हो और उन्हें बेकार रहना अच्छा न लगता हो तो वे चरखा तो चला ही सकते हैं।

गुजराती प्रति (जी० एन० ५७३०) की फोटो-नकलसे।

१. ये टीपें गांधीजीने अपने हाथसे एक तारके पीछे लिखी हैं जो २३ अप्रैल, १९२४ को बल्वन्त-राय मेहताकी ओरसे वल्लभभाई पटेलको भेजा गया था। तार यह था: "देवचन्दभाईका तार, समितिकी बैठक स्थगित। अन्तिम निर्देश तारसे भेजें।"

३६३. टिप्पणियाँ

वाइकोम सत्याग्रह

वाइकोममें अस्पृश्यता-निवारणके लिए जो संघर्ष चल रहा है उससे सत्याग्रहके अध्ययनके लिए खासी दिलचस्प सामग्री मिल जाती है; और चूँकि उसका संचालन भी बड़ी शान्तिके साथ हो रहा है, इसलिए इस दिशामें काम करनेवाले भावी कार्यकर्त्ताओंके लिए वह उपयोगी सिद्ध हुए विना नहीं रहेगा। त्रावणकोरके अधिकारी निषेधाज्ञाके सम्बन्धमें अभीतक झुके नहीं हैं; फिर भी वे अपना काम बड़ी शिष्टताके साथ कर रहे हैं। लोग इस बातको जानते हैं कि उन्होंने सत्याग्रहियोंके साथ किये जानेवाले जोरो-जुल्मको रोकनेकी कोशिश किस तत्परतासे की। जेलमें भी ठीक वैसा ही व्यवहार किया जा रहा है जैसा कि बाहर किया जाता था। श्री मेनन त्रिवेन्द्रम जेलसे लिखते हैं:

> **मैंने जो सोचा था वही हुआ। मैं अब अपने मित्र श्री माधवन्के साथ त्रिवेन्द्रम सेन्ट्रल जेलकी चहारदीवारीके अन्दर हूँ। हम राजकीय कैदीकी तरह रखे गये हैं। हमारे लिए एक अलहदा ब्लाक दे दिया गया है। हम अपने ही कपड़े पहनते हैं। एक कैदी हमारे लिए भोजन बनाता है। मैं जैसा भोजन घरपर करता था, वैसा ही यहाँ भी मिलता है। मेरे मित्र श्री माधवन्के बारेमें भी यही समझिए। किताबों और अखबारोंके पानेकी भी अनुमति है। अलबत्ता पत्रोंमें हम वाइकोमके मामलेमें कुछ भी नहीं लिख सकते। मित्रगण रविवारको छोड़कर सुबहके ८ बजेसे शामको ४ बजेतक हर रोज मिल सकते हैं।**
>
> **मुझे यकीन है कि आप यह जानकर खुश होंगे कि सुपरिटेंडेंट तथा दूसरे जेल अधिकारी हमें आराम पहुँचानेकी हर तरहसे कोशिश कर रहे हैं। वाइकोमके पुलिस अधिकारी हमारे साथ जैसा अच्छा बरताव करते थे वैसा ही ये भी करते हैं।**

सत्याग्रही कैदियोंके साथ इस तरह सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार करनेके लिए त्रावण-कोरके जेल-अधिकारी बधाईके पात्र हैं। हम आशा करते हैं कि अन्ततक दोनों ओरसे मौजूदा आत्म-संयम और शिष्ट व्यवहार कायम रहेगा।

प्रार्थना-पत्र किसलिए?

वाइकोम सत्याग्रहियोंको मैंने यह सलाह दी थी कि जबतक सत्याग्रह जारी है तबतक संचालकोंको चाहिए कि वे प्रार्थना-पत्रों, सार्वजनिक सभाओं, शिष्टमण्डलों आदिके द्वारा राज्यकी सहायता और लोकमतको अपनी ओर करनेके लिए कुछ न उठा रखें। इसपर बड़ा आश्चर्य प्रकट किया गया है। आलोचकोंकी दलील यह है कि मैंने

देशी राज्यके अधिकारियोंके साथ पक्षपात किया है, क्योंकि वे देशी राज्यके हैं; परन्तु अंग्रेजी अधिकारियोंके प्रति मेरा विरोध-भाव रहता है, इसलिए कि वे विदेशी राज्यके प्रतिनिधि हैं। मेरे नजदीक तो ऐसा हरएक शासक विदेशी ही है जो लोकमतकी अवहेलना करता है। दक्षिण आफ्रिकामें सत्याग्रहके जारी रहते हुए भी हिन्दुस्तानी आखिरी वक्ततक अधिकारियोंके साथ लिखा-पढ़ी करते रहते थे। पर ब्रिटिश भारतमें तो हम लोग असहयोग कर रहे हैं; और यह इसलिए कि हम इस पूरी शासन-प्रणालीको सुधारने या मिटा देनेपर तुले हुए हैं। अतएव प्रार्थना-पत्रोंका तरीका बेकार है।

त्रावणकोरमें सत्याग्रहियोंका आक्रमण समूची प्रणालीपर नहीं है। बल्कि उसपर तो उनका हमला है ही नहीं। वे तो सिर्फ पण्डे-पुजारियों द्वारा फैलाये गये अन्ध-विश्वासोंके विरुद्ध संघर्ष कर रहे हैं। त्रावणकोर राज्यका प्रवेश इसमें सिंहद्वारसे नहीं हुआ; उसका इससे सीधा सम्बन्ध ही नहीं है। ऐसी हालतमें यदि सत्याग्रही अधि-कारियोंसे बातचीत न करें और शिष्टमण्डलों, सभाओं आदिके द्वारा लोकमतको अपनी ओर न करें तो वे अपने रास्तेसे विचलित हुए कहलायेंगे। आमने-सामनेकी लड़ाईमें सर्वदा दूसरे सुसंगत उपायोंका बहिष्कार नहीं होता; और न सत्याग्रहियोंका प्रार्थना-पत्र आदि भेजना हमेशा ही कमजोरीका चिह्न माना जाता है। जिस व्यक्तिमें नम्रता न हो वह सत्याग्रही हरगिज नहीं है।

कुछ और खुलासा

मुझसे कहा गया है कि मैं अपनी इस दलीलको और स्पष्ट करूँ कि इस आन्दोलनमें त्रावणकोरके बाहरसे सहानुभूतिके अलावा किसी और तरहकी सहायता न ली जाये। एक भेंटके[1] दौरान मैं इस सम्बन्धमें उपादेयताकी दृष्टिसे अपने विचार प्रकट कर चुका हूँ। परन्तु ऐसी सहायता लेने, या स्वीकार तक करनेके सम्बन्धमें मूलभूत आपत्ति भी है। सत्याग्रह या तो अनेक कमजोर लोगोंके लिए चन्द त्यागी लोग करते हैं या भारी संकट पड़नेपर मुट्ठी-भर लोग उसका प्रयोग करते हैं। पहली सूरतमें, जो कि वाइकोमपर घटती है, अनेक लोग उत्सुक होते हुए भी कमजोर हैं और कुछ लोग उत्सुक और समर्थ हैं तथा अछूतोंके लिए अपना सब-कुछ बलिदान करनेके लिए तैयार भी हैं। ऐसी हालतमें स्पष्ट है कि उन्हें किसी प्रकारकी बाहरकी सहायताकी जरूरत नहीं है। पर मान लीजिए कि उन्होंने बाहरी इमदाद ली, तो इससे अछूत देशवासियोंका क्या हित होगा? जबतक वहाँके सबल हिन्दू आगे न बढ़ें तबतक निर्बल हिन्दुओंकी सबल प्रतिपक्षियोंके सामने कुछ न चलेगी। हिन्दुस्तानके अन्य प्रान्तोंसे सहायतार्थ आनेवाले लोगोंकी कुरबानीसे वहाँके विरोधियोंके दिल पसीजनेवाले नहीं हैं। बहुत सम्भव है कि इसके फलस्वरूप अछूत भाइयोंकी हालत पहलेसे भी ज्यादा खराब हो जाये। याद रखना चाहिए कि हृदयको परिवर्तित करनेके लिए एकमात्र सत्याग्रह ही अकसीर इलाज है। सत्याग्रही तो हृदयको द्रवित करनेकी कोशिश करता है, हिन्दुस्तानके दूसरे प्रान्तोंसे दौड़-दौड़कर वाइकोममें जमा होनेवाले लोगों द्वारा यह सम्भव नहीं है।

१. देखिए "भेंट: हिन्दूके प्रतिनिधिसे", १५-४-२४।

और फिर स्थानीय संघर्षको बाहरी आर्थिक सहायताकी भी जरूरत न होनी चाहिए। त्रावणकोर राज्यके सभी निर्बल किन्तु हमदर्दी रखनेवाले हिन्दू अपनेको गिरफ्तार न करायें और न अन्य प्रकारके कष्टोंका आह्वान करें; परन्तु वे आवश्यक आर्थिक सहायता कर सकते हैं, और उन्हें करनी भी चाहिए। यदि वे ऐसी सहायता नहीं करते तो मेरी समझमें उनकी हमदर्दीका कोई अर्थ नहीं है।

जहाँ भारी मुसीबतोंका सामना करना पड़े और बहुत-कम लोग सत्याग्रह करनेके लिए आगे आयें उस परिस्थितिमें भी बाहरसे मदद लेना उचित नहीं। सार्वजनिक सत्याग्रह व्यक्तिगत अथवा कौटुम्बिक सत्याग्रहका विस्तृत रूप है। सार्वजनिक सत्याग्रहके प्रत्येक मामलेमें कौटुम्बिक सत्याग्रहके दृष्टान्तको सामने रखकर उसकी जाँच करनी चाहिए। इस तरह फर्ज कीजिए कि मैं अपने कुटुम्बसे छुआछूतके अभिशापको मिटा देना चाहता हूँ। अब मान लीजिए कि मेरे माता-पिता इस विचारका विरोध करते हैं; मान लीजिए कि मेरे अन्दर उतना ही दृढ़ विश्वास है जितना कि प्रह्लादमें था, और मेरे माता-पिता पूरी तौरसे मेरी खबर लेनेकी धमकी भी देते हैं, और वे मुझे सजा देनेके लिए राज्यकी भी मदद लेते हैं; तो मुझे क्या करना चाहिए? क्या मैं अपने साथ कष्टसहन करनेके लिए और मेरे पिताने मेरे लिए जो सजा तजवीज की है उसमें शरीक होनेके लिए अपने मित्रोंको बुलाऊँ? या मुझे चाहिए कि मैं हर तरहके कष्टों और तकलीफोंको, जो मुझे पहुँचाई जायें, खुद चुपचाप सहन करूँ और प्रेम और कुर्बानी की शक्तिपर ही पूरा भरोसा रखते हुए उनके हृदयको पिघलानेकी कोशिश करूँ, जिससे उनकी आँखें खुल जायें और वे छुआछूतकी बुराईको देख सकें? इतना मैं जरूर कर सकता हूँ कि जो बातें मेरे बालक होनेके कारण पिताजी सुननेको तैयार नहीं हैं, उन्हें समझानेके लिए विद्वानों और कुटुम्बके हितैषियोंकी सहायता लूँ। लेकिन कष्ट-सहन करनेके अपने इस धर्म और सौभाग्यमें मैं उनमें से किसीको भी हाथ नहीं बँटाने दूँगा। इस कौटुम्बिक सत्याग्रहके कल्पित उदाहरणपर जो बात घटती है वही सार्वजनिक सत्याग्रहपर भी पूरी-पूरी चरितार्थ होती है। ऐसी अवस्थामें वाइकोम सत्याग्रह संघर्षमें भाग लेनेवाले सत्याग्रही संख्यामें चाहे बहुत ही कम हों, और जैसाकि मैंने सुना है, चाहे ज्यादातर हिन्दू उनके साथ हों, इतनी बात साफ है कि उन्हें लोगोंकी सार्वजनिक हमदर्दीके अलावा दूसरे किस्मकी सहायतासे बचना चाहिए। शायद हर मौकेपर हम इस नियमके अनुसार काम न कर सकें और इस मौकेपर भी शायद ऐसा न हो पाये, परन्तु हमें यह नहीं भूल जाना चाहिए कि सिद्धान्त यही है। जहाँतक हमसे बन पड़े वहाँतक हमें इसपर कायम रहना चाहिए।

चिरला-पेरलाकी मिसाल

ऐसी ही एक घटनाके मौकेपर सलाह देनेका सुअवसर मुझे मिला था और वह है चिरला-पेरलाकी घटना[1], जिसका जिक्र भी मैं यहाँ किये देता हूँ। वहाँके निवासियोंका दावा था कि हमारा समुदाय संगठित है और कुर्बानीके लिए तैयार है। और सचमुच

१. देखिए खण्ड २१, पृष्ठ १६-१८।

मैंने वहाँ अद्‌भुत हार्दिक एकता तथा साहस पाया और अत्यन्त कुशल एवं साहस-पूर्ण नेतृत्वके दृश्य देखे। मैंने तो कह दिया था कि मैं कांग्रेससे या आम जनतासे इस बातकी सिफारिश नहीं कर सकता कि आपको किसी तरहकी आर्थिक सहायता दी जाये। यही नहीं बल्कि मैंने यह भी कहा कि मैं कांग्रेसको प्रस्ताव पास करके आपको उत्साहित करनेकी सलाह भी न दे सकूँगा। यदि आपकी विजय हुई तो उसका श्रेय कांग्रेस लेगी क्योंकि यह हमारे तजवीज किये साधनकी विजय है, और यदि आपको असफलता मिली तो उससे कांग्रेसका कोई वास्ता न रहेगा। लोगोंने मेरी बात समझ ली और मेरी सलाहको स्वीकार भी कर लिया। आज तीन सालके गहरे और चिन्तनपूर्ण विचारके बाद भी मैं उस समय दी गई सलाहमें कुछ भी परिवर्तन करनेकी आवश्यकता नहीं देखता। उलटे मुझे तो यही दिखाई देता है कि यदि हम अपनी ऊँचाईतक उठना चाहते हों तो हमें जेलके तमाम नियमोंका ठीक-ठीक पालन करना ही पड़ेगा।

आगेका कार्य

कर्नाटक प्रान्तीय कांग्रेस कमेटीने अपनी बैठक बुलाई और अगले अधिवेशनके स्थानके निर्णयके सम्बन्धमें अपने मतभेदोंको परस्पर निबटा लिया। प्रस्तावमें यह बात मान ली गई है कि चुनाव सम्बन्धी विधिमें त्रुटि है। साथ ही अपने पिछले निर्णय-की पुष्टि भी की है कि अधिवेशन बेलगाँवमें हो। मैं उक्त कमेटीको त्रुटियाँ दूर करनेके प्रयासके लिए साधुवाद देता हूँ। गलतियाँ इन्सानसे ही होती हैं, यह कहना तभी ठीक है जब इन्सान अपनी गलती माननेको तैयार हो। मालूम पड़ जानेपर भी गलती करते जाना इन्सानियतसे बहुत घटकर है। कर्नाटकके सामने बहुत बड़ा काम पड़ा है। क्या वह रचनात्मक कार्यक्रमके सम्बन्धमें भारतके प्रान्तोंमें सबसे आगे बढ़ सकेगा? मुझे यकीन है कि वह ऐसा कर दिखायेगा। प्रश्न यह होना चाहिए कि क्या कर्नाटक सविनय अवज्ञा आन्दोलन शुरू करने योग्य रचनात्मक कार्य कर दिखायेगा। उसके सामने ब्राह्मण और अब्राह्मणकी समस्या तो है ही। यदि कर्नाटकको ही भारत मान लें तो क्या वह ब्राह्मण-अब्राह्मणके बीच पारस्परिक अविश्वास रहते हुए भी पूर्ण स्वराज्यका उत्तरदायित्व वहन कर सकता है? मैं एक बात जानता हूँ, वह यह कि कमसे-कम एक दलको दूसरे सभी दलोंका मन जीतनेके लिए अपना सर्वस्व त्याग देना चाहिए। यदि सभी दल एक-दूसरेके साथ सौदेबाजी करनेकी इच्छा रखें तो सवाल छोटे पैमानेपर हिन्दू-मुस्लिम समस्या-जैसा टेढ़ा हो जाता है। कठिन समस्याओंको हल करनेका एक ही मार्ग है कि प्रत्येक दल दूसरे दलके हितको अपना ही हित माने। ऐसा किये जानेपर ग्रन्थि अनायास ही खुल जाती है। जिस प्रकार एकाब-बार गाँठको खोलनेके लिए हम सबसे पहले उसी धागेपर हाथ लगाते हैं जो पकड़में बहुत जल्दी आ जाये, इसी प्रकार जो व्यक्ति सबसे मिलकर चलता है वह आपसके वैमनस्यको आसानीसे मिटा सकता है। यदि स्वयंसेवक तथा कार्यकर्त्तागण सेवा करनेमें एक-दूसरेसे होड़ बदें, यदि ब्राह्मण अब्राह्मणोंके सामने झुक जायें और अब्राह्मण ब्राह्मणोंके सामने नरमी अख्तियार कर लें तो पूरे कर्नाटकको उसकी आव-श्यकतानुसार खादी मिलनी सम्भव हो जाये; वहाँ इस प्रकारके राष्ट्रीय स्कूल खुल

जायें जिनमें एक ही कमरेमें ब्राह्मण, अब्राह्मण, अन्त्यज, मुसलमान तथा दूसरे मतावलम्बियोंके लड़के-लड़कियाँ शिक्षा प्राप्त करें। इस तरह हिन्दू-मुस्लिम एकताका सही मार्ग खुल जायेगा और फलतः स्वराज्य प्राप्त करनेका सच्चा मार्ग दिखाई देने लगेगा। इस प्रकार हम देखते हैं कि यदि कर्नाटक-सच्चे दिलसे और स्थायी रूपसे ब्राह्मण-अब्राह्मण समस्याको हल कर लेता है तो उसकी सभी और देशकी बहुतेरी समस्याओंका हल निकल आयेगा।

उदारताका एक दृष्टान्त

अक्सर हम केनियामें बसे हुए भारतीय प्रवासियोंके विरुद्ध यह सुना करते हैं कि चूँकि वे वहाँके निवासियोंके हितकी परवाह नहीं करते इसलिए वतनियोंके हितोंकी दृष्टिसे उनके आव्रजनको सीमित कर देना चाहिए। यह आरोप तो सुननेमें बहुत आता है पर आजतक मैंने यह कभी नहीं सुना कि भारतीय प्रवासियोंने वतनियोंको कोई क्षति पहुँचाई है। भारतीय प्रवासी उदारताका ढोंग नहीं रचते। इसी कारण वे वतनियोंके लिए स्कूल नहीं खोलते और न वे उन लोगोंके बीच मिशनरी-कार्य करते हैं। परन्तु मैं यह दावेसे कह सकता हूँ कि भारतीय व्यापार चूँकि वतनियोंके सिरपर जबरदस्तका ठेंगा नहीं है इसीलिए प्रवासी भारतीयोंकी उपस्थिति-मात्रसे ही वतनियोंका समाज सभ्यताकी ओर अग्रसर होता है।

परन्तु स्वभावतः प्रश्न यह उठता है कि क्या भारतीयोंके यूरोपीय निन्दकोंकी उपस्थिति वतनियोंके लिए हितकारी है। केनियामें जो ब्रिटिश नीति बरती जा रही है उसकी तीव्र निन्दा करते हुए श्री एन्ड्रयूजने बहुत माकूल जवाब दिया है। उनका लेख आधुनिक ढंगकी परोपकारिताका एक सुन्दर चित्रण है। श्री एन्ड्रयूजने अपने तीव्र आलोचनात्मक लेखमें यह दिखा दिया है कि वहाँ गोरोंकी मौजूदगी वतनियोंके लिए कितनी मँहगी[1] पड़ रही है। 'टाइम्स ऑफ इंडिया' ने श्री एन्ड्रयूजके मद्यपान सम्बन्धी लेखकी कटु आलोचना की है और उनके द्वारा पेश किये गये तथ्योंकी सत्यताको चुनौती दी है। श्री एन्ड्रयूजके 'व्हाइट मैन्स ट्रस्ट' नामक लेखमें उनके पिछले लेखकी अपेक्षा तथ्यों और आँकड़ोंका बाहुल्य है। श्री एन्ड्रयूज जो कुछ भी लिखते हैं उसका उन्हें ज्ञान होता है। वे इतिहासके विद्यार्थी हैं। यदि उन्हें अपनी भूलका पता लग जाता है तो वे स्वयं ही तत्काल अपनी गलती कबूल कर लेते हैं, यह मैं जानता हूँ। और बारीकीसे देखते रहनेके आधारपर मैं यह कह सकता हूँ कि यद्यपि उन्होंने बहुत अधिक लिखा है तथापि उनसे गलतियाँ बहुत ही कम हुई हैं। मुझे इस बातपर आश्चर्य हो रहा है कि 'टाइम्स ऑफ इंडिया' के लेखकने बिना पर्याप्त जानकारीके श्री एन्ड्रयूजके तथ्योंको गलत क्यों कहा। फिर भी मैं श्री एन्ड्रयूजकी कलमसे निकले कुछ दूसरे आँकड़े प्रस्तुत कर रहा हूँ और वे चुनौतीके रूपमें (यदि ऐसा कहना ठीक हो) पेश किये जा रहे हैं। अन्यथा उनको पेश करनेका मेरा अभिप्राय इतना ही है कि मानव-जातिके

१. इस विषयमें "द व्हाइट मैन्स बर्डन" शीर्षक लेख २४-४-१९२४ के **यंग इंडिया**में प्रकाशित हुआ था।

हितमें उनपर नम्रभावसे गम्भीरतापूर्वक विचार किया जाये। स्व० सेसिल रोड्सने[1] कई बरस पहले ही कुछ नीतियोंको "दिखावटी ईमानदारी" या "सन्दिग्ध सद्व्यवहार" बताकर, इस पाखण्डका पर्दा-फाश कर दिया था। परन्तु यह बुराई उस महापुरुषकी भर्त्सनाके बावजूद अभीतक बरकरार है। यह ठीक है कि उन्होंने भी अनेक बार गलती की, परन्तु उन्होंने उन गलतियोंपर पर्दा डालनेकी कोशिश नहीं की और इस तरह अपनी महानता और भलमनसीका परिचय दिया। केनियामें ब्रिटिश सरकारकी नीति निर्दोष आफ्रिकियोंके भयंकर शोषणपर हमेशा पर्दा डाले रहनेकी ही रही है।

लड़नेपर आमादा श्री पेनिंगटन

लड़नेपर आमादा श्री पेनिंगटनने फ्रांससे मेरे पूर्ववर्ती सम्पादकके नाम यह पत्र भेजा था:

> भारत सरकारका एक बहुत पुराना अधिकारी होनेकी हैसियतसे मैं आपके द्वारा सम्पादित 'यंग इंडिया' बहुत ध्यानसे पढ़ा करता हूँ, ताकि यह समझ पाऊँ कि ब्रिटिश राज्यको असम्भव बना देनेके बाद आप खुद उसका शासन किस तरह चलायेंगे। कदाचित् आप यह स्वीकार करेंगे कि हम ब्रिटिश लोग समझते हैं कि भारतमें आन्तरिक एवं बाह्य शान्ति कायम रखनेका उत्तरदायित्व हम लोगोंपर ही है और इस कर्तव्यको हमें निबाहना है। हमारा यह भी खयाल है कि इस दायित्वको हम केवल उन लोगोंके हाथोंमें ही सौंप सकते हैं जो शासन करने योग्य सरकार बना सकते हों। मेरे मनमें श्री गांधी तथा अनेक स्वराजियोंके प्रति अत्यधिक आदर-भाव है। परन्तु क्या आप सच्चे दिलसे यह मानते हैं कि उनके द्वारा बनाई गई कोई भी सरकार ब्रिटिश संगीनोंकी मददके बिना उस बड़े देशका शासन-तन्त्र चला सकती है?
>
> यदि स्वराजी लोगोंने यह प्रमाणित कर दिया होता कि वे मॉन्टेग्यु योजनाके अन्तर्गत अपने देशके मामलोंकी १० वर्षके स्वल्प काल तक थोड़ी-बहुत व्यवस्था कर सकनेकी साधारण क्षमता भी रखते हैं तो औपनिवेशिक ढाँचेकी कोई-न-कोई ऐसी शासन-व्यवस्था भारतके लिए तैयार कर दी गई होती, जिसे व्यावहारिक रूपसे चलाया जा सकता था। परन्तु अभीतक तो स्वराजी लोग केवल इतना ही दिखा पाये हैं कि प्रातिनिधिक शासन-व्यवस्थाको किस प्रकार असम्भव बनाया जा सकता है, और इसीलिए उन्होंने यह सिद्ध कर दिया है कि देशकी वर्तमान अवस्थामें उसी पुरानी प्रणालीका चलते रहना ज्यादा ठीक होगा। सम्भव है कि पुराने शासन-तन्त्रमें भारतीय प्रतिनिधियोंकी संख्या और बढ़ाकर कोई नई शासन-योजना निर्मित की जाये और उसे आजमाया जाये। इस प्रकारका सुझाव बहुत साल पहले डोनाल्ड स्मीटनने रखा

१. १८५३-१९०२; केप कालोनीके प्रधानमन्त्री, १८९०-९६।

था। चाहे वर्तमान दोहरी शासन-प्रणालीको समाप्त कर देना पड़े, परन्तु सम्राट्की सरकार अनिवार्य रूपसे कायम रखी जानी चाहिए।

मुझे श्री जे० बी० पेनिंगटनसे परिचय ताजा करनेका अवसर पाकर खुशी हो रही है। उनके प्रश्नका उत्तर बिलकुल ही सरल और सीधा है। यदि भारत ब्रिटिश बन्दूकोंके जवाबमें अपनी बन्दूकें बिना ताने ब्रिटिश राज्यको असम्भव बनानेमें सफल हो जाता है तो वह अपना शासन-तन्त्र भी इसी प्रकार बन्दूकों या बलके प्रयोगके बिना चला लेगा। परन्तु यदि यह नितान्त अनिवार्य हो कि बन्दूकोंके बलपर चलाया जानेवाला शासन-तन्त्र दूसरी — उससे अधिक मजबूत या उतनी ही मजबूत — बन्दूकोंसे ही मिटाया जाये, तो फिलहाल ब्रिटिश राज्यको असम्भव बनानेके कोई आसार नजर नहीं आते। तब मुझे यह बात स्वीकार करनी ही होगी, जैसा कि उक्त पत्र-लेखक मुझसे स्वीकार कराना चाहता है कि ब्रिटिश लोगोंका यह खयाल कि उन्हें भारतमें एक जिम्मेदारी निभानी है, ठीक है। परन्तु मैं यह भी कहना चाहता हूँ कि हम भारतवासियोंकी धारणा यह है कि यदि हम आपसमें कट मरनेके लिए उतावले ही हों तो ब्रिटिश लोगोंका कर्त्तव्य यह नहीं है कि वे हम लोगोंपर शान्ति थोपनेकी कोशिश करें। उनका कर्त्तव्य तो केवल इतना है कि वे हमारे कन्धोंपरसे उतर जायें। हमारा खयाल है कि हम उस बोझके मारे मरे जा रहे हैं।

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, २४-४-१९२४

३६४. अभिव्यक्तिकी स्वतन्त्रता

सम्पादक
'यंग इंडिया'
महोदय,

१० अप्रैलके, 'यंग इंडिया' में तिब्बिया कालेजकी घटनाके सम्बन्धमें आपने अपनी टिप्पणीमें लिखा है[1]: "जिस मुसलमान विद्यार्थीने तुलनाके बारेमें आपत्ति उठाई थी उसने ठीक ही किया था।" जिस दिन श्री गांधीका जन्म-दिवस मनाया गया उस दिन तिब्बिया कालेजमें वास्तवमें घटना क्या घटी थी सो मैं नहीं जानता किन्तु डाक्टर अन्सारीने जो लिखा है, उसे घटनाका ठीक वर्णन माननेपर भी, मुझे लगता है कि आपने टिप्पणीमें जो-कुछ लिखा है उससे सहमत होना कठिन है। श्री गांधीकी जब ईसा मसीहसे तुलना की गई तब ऐसा नहीं लगता कि किसीको हानि पहुँचानेका कोई उद्देश्य था, अथवा किसीकी कोई हानि हुई हो। जैसा कि आप लिखते हैं, किसी मनुष्यका सम्मान करनेके

१. देखिए "असत्य कथनका आन्दोलन", १०-४-१९२४।

लिए यह सदैव आवश्यक तो नहीं कि उसकी तुलना श्रद्धेय पैगम्बरोंसे की ही जाये, किन्तु कभी-कभी श्रोताओंको अथवा जनताको किसी व्यक्तिकी महानता समझानेके लिए अन्य सम्मानित मनुष्यों अथवा श्रद्धेय पैगम्बरोंके साथ उनकी तुलना करना न तो अस्वाभाविक होता है, न अशोभनीय। श्री एन्ड्रयूजने कई बार श्री गांधीको ईसा मसीहकी सच्ची प्रतिमूर्ति कहा है। यह बिलकुल सम्भव है कि जिस व्यक्तिकी तुलना की जा रही है वह व्यक्ति श्रद्धेय पैगम्बरोंका समकक्षी बनने योग्य न हो। यह बिलकुल अलग बात है। किन्तु किसीके तुलना करनेके सिद्धान्तपर आपत्ति उठाना न्याययुक्त कैसे ठहराया जा सकता है? तिब्बिया कालेजका वह मुसलमान विद्यार्थी कदाचित् श्री गांधीको ईसा मसीहकी तुलनाके अयोग्य समझता हो; यदि ऐसा था तो उसे ऐसा मानने और श्रोताओंके समक्ष कहनेका उसी प्रकार पूरा अधिकार था, जैसे किसी हिन्दू विद्यार्थीको अपनी राय व्यक्त करनेका। ऐसा मतभद समझमें आ सकता है। इसपर किसीको कोई आपत्ति नहीं। किन्तु यहाँ तो मामला कुछ और ही था। बात यह नहीं है कि जब एक हिन्दू विद्यार्थीने श्री गांधीकी तुलना ईसा मसीहसे की तो एक मुसलमान विद्यार्थीने गांधीजीकी पात्रताके सम्बन्धमें कोई शंका उठाकर हिन्दू विद्यार्थियोंके मूल्यांकनसे मतभेद प्रकट किया; बल्कि बात यह है कि उसने तुलना करनेपर ही आपत्ति की, और कहा कि किसी भी जीवित व्यक्तिकी तुलना, चाहे वह सभी प्रकारसे कितना ही महान् और प्रभावशाली क्यों न हो, पैगम्बरोंसे नहीं की जानी चाहिए। मेरी समझमें नहीं आता कि ऐसी आपत्ति न्याय-संगत कैसे मानी जा सकती है। पहलेके वे पैगम्बर मनुष्य थे, और उनकी तरहके मानव आज हमारे बीच हो सकते हैं और भविष्यमें भी होंगे ही। तब इसमें हर्ज ही क्या है अगर कुछ लोगों द्वारा पैगम्बरोंकी तरह माने जानेवाले और हमारे बीच मौजूद अपने कुछ सन्तों और महामानवोंकी तुलना हम पहलेके पैगम्बरोंसे करें? बौद्धिक, नैतिक अथवा आध्यात्मिक दृष्टिसे ऐसा करनेमें गलत कुछ नहीं है।

जिस व्यक्तिकी इस प्रकार तुलना की जाये वह अपने शीलके कारण ऐसी तुलनाको अनुचित बतला सकता है; किन्तु यह दूसरी बात है। अतः मैं समझता हूँ कि मुसलमान विद्यार्थीकी आपतिको न्याय-संगत मानना अपनी अभिव्यक्तिके स्वातन्त्र्यको कम करना है और अप्रत्यक्ष रूपसे असहिष्णुताकी प्रचलित भावनाको प्रोत्साहन देना है। मुझे विश्वास है कि आप ऐसा प्रोत्साहन कदापि नहीं देना चाहेंगे।

आपका,
घनश्याम जेठानन्द

हीराबाद
हैदराबाद (सिन्ध)

मेरा खयाल है कि मुझे अपने मतपर ही दृढ़ रहना चाहिए, जिसे मैं व्यक्त कर चुका हूँ और जिसपर श्री घनश्यामको एतराज है। मैंने वह मत नम्रताका दिखावा-मात्र करनेकी गरजसे नहीं व्यक्त किया था। यदि मैंने संकोच या अटपटे-पनका अनुभव किया होता, तो मैं घटनाका उल्लेख किये बिना भी रह सकता था किन्तु विनम्रताके कारण, वह वास्तविक हो या अवास्तविक, मैं पाठकोंको भ्रममें नहीं डालना चाहता था और इस प्रकार पत्रकारिताकी नैतिकतासे विचलित भी नहीं होना चाहता था; क्योंकि पत्रकारिताका तकाजा है कि वास्तविक मतको निर्भयताके साथ व्यक्त किया जाये। इसे तो सभी मानेंगे कि यदि किसी बातका कहना सत्यके हितमें आवश्यक नहीं हो और यदि उसके कहनेसे दूसरेके मनमें रोष उत्पन्न होता हो तो उसे कहना नैतिकताके विरुद्ध है और आध्यात्मिकताके प्रतिकूल तो है ही। मेरी समझमें यह नहीं कहा जा सकता कि उल्लिखित तुलना सत्यकी खातिर की गई थी। यद्यपि मैं समझता हूँ कि ऐसी तुलनाएँ अवांछनीय होती है, तथापि मैं स्वीकार करता हूँ कि यदि ऐसी तुलनाएँ की जायें तो उनपर आपत्ति उठाना असहिष्णुताका द्योतक होता है। किन्तु उस मुसलमान विद्यार्थीने यह जानकर कि उस तुलनासे अनेक मुसलमानोंको चोट पहुँचेगी, आपत्ति उठाकर उचित ही किया। जब उसकी आपत्तिसे हिन्दू विद्यार्थियोंमें रोष उत्पन्न हुआ तब क्षमा-याचना करके उसने अपनी नेकनीयतीका परिचय दिया। यदि अभिव्यक्तिकी स्वतन्त्रताके नामपर हम ऐसे मत व्यक्त करनेका आग्रह करें, जिनसे किसीको चोट पहुँच सकती है, तो हम असहिष्णुताकी अग्निको ही भड़कायेंगे। मैं श्री घनश्यामको बताना चाहता हूँ कि मेरे जेल जानेसे पहले एक धर्मनिष्ठ हिन्दूने मुझे पत्र लिखकर कृष्ण और रामसे मेरी तुलना किये जानेके प्रति घोर विरोध प्रकट किया था। निश्चय ही मैंने अपने पत्र-लेखकसे इस बातमें सहमति जताई थी कि ऐसी तुलना नहीं की जानी चाहिए। मैं उन परम्परानिष्ठ वैष्णवोंके प्रति सहानुभूति प्रकट करता हूँ जो धार्मिक भावनाको आघात पहुँचानेवाली तुलनासे क्षुब्ध होते हैं। मेरा निवेदन है कि दूसरोंकी भावनाओंका सूक्ष्मसे-सूक्ष्म और अधिकसे-अधिक ध्यान रखा जाये। सहिष्णुताके नामपर यदि हम परस्पर एक दूसरेके देवताओंको गालियाँ देने लगें तो यह बात कहानियोंमें उल्लिखित उस व्यक्तिके समान होगी, जिसने सोनेके अंडे देनेवाली बत्तखको एक साथ सब अंडे पानेके लालचमें मार डाला था।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २४-४-१९२४

३६५. हिन्दू धर्म क्या है?

मेरे एक प्रिय मित्रने मुझे एक पत्र भेजा है जिसे अन्यत्र प्रकाशित किया जा रहा है। उसमें उन्होंने मेरे द्वारा मौलाना मुहम्मद अलीके उस प्रसिद्ध भाषणको दोषरहित बतानेकी शिष्टतापूर्ण आलोचना की है, जिसमें उन्होंने धर्मोंकी तुलनाकी थी। उक्त महोदयका कहना है कि मैंने हिन्दू धर्मके प्रति न्याय नहीं किया, क्योंकि मैंने कहा है कि किसी हिन्दू की विचारधारा भी मौलानाकी विचारधारासे बेहतर न होगी। उन्हें विवाह सम्बन्धी मेरे दृष्टान्तपर आपत्ति है। आगे चलकर वे हिन्दू-धर्मकी खूबियाँ दर्शाते हैं। एक और सज्जनने भी इसी ढंगका प्रतिवाद भेजते हुए कहा है कि अनेक व्यक्तियोंकी राय भी उन्हींके जैसी है।

मेरी रायमें, इन सज्जनोंने धर्मोंकी तुलना करनेके औचित्यके प्रश्नको, विभिन्न धर्मोंके बीच उनके गुण-दोषोंके बँटवारेके प्रश्नके साथ जोड़कर बात उलझा दी है। उन्होंने कहा है कि हिन्दू धर्म इस्लाम जैसा नहीं है और न कोई हिन्दू मौलानाकी तरह सोच ही सकता है। परन्तु उनका यह कहना खुद अपने मुंहसे मौलानाकी बातका समर्थन करना है। अपने धर्मको दूसरे धर्मोंसे बढ़कर माननेका यह सर्वथा उचित और स्वाभाविक परिणाम है कि हम अपने सम्प्रदायके निकृष्ट व्यक्तिको भी दूसरे सम्प्रदायके अच्छेसे-अच्छे साधुवृत्तिवाले व्यक्तिकी अपेक्षा बढ़कर मानें। विवाहका जो दृष्टान्त दिया गया था मैं उसपर दृढ़ हूँ; यद्यपि अब मेरी समझमें आ गया है कि उसे टाल जाना बेहतर होता। वह उदाहरण निर्णायक उदाहरण नहीं है। मैं मानता हूँ कि वरको अमुक वर्गमें से ही चुना जाना चाहिए। मेरे आळोचकोंके पास इसके अनेक कारण हैं। किन्तु मैं इतना तो अवश्य कहूँगा कि सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति भी यदि वह किसी दूसरे वर्ग अथवा जातिका हो तो वरके रूपमें पसन्द नहीं किया जाता और इसका प्रधान कारण उसका मजहब ही हुआ करता है। ब्राह्मण माता-पिता अपनी कन्याके लिए पतिके रूपमें ब्राह्मणको ही चुनते हैं, क्योंकि वे अपने कुलगोत्रको प्रधानता देते हैं। इस पसन्दगीके मूलमें निश्चय ही यह विश्वास है कि किसीके मतको अंगीकार कर लेनेका अर्थ होता है अन्ततः उसके अनुसार आचरण करना। किसी संकीर्ण धर्ममें, यदि उसके प्रति सच्ची निष्ठा रखी जाये तो स्वभावतः आचरणका क्षेत्र सीमित हो जाता है। उदाहरणके लिए ऐसा मत जिसके अन्तर्गत मनुष्यकी बलि देना अनिवार्य माना गया हो, अपने अनुयायीको ऐसी धार्मिक हत्या करनेपर विवश करेगा; हाँ यदि वह अपने धर्मका त्याग कर दे तो बात अलग है। इसीलिए हम देखते हैं कि ऐसे लोगोंसे, जो और सब प्रकारसे तो अत्यन्त नीतिनिष्ठ हैं, परन्तु अपने संकीर्ण धर्मके कारण सर्वोच्च धर्मकी दृष्टिसे घटकर बैठते हैं, हमें बड़ी निराशा होती है। कई सच्चे और अन्य दृष्टियोंसे उदारमना हिन्दू अस्पृश्यताको हिन्दू धर्मका अंग समझते हैं और इसलिए वे सुधारकोंको जाति-भ्रष्ट मानने लगते हैं। यदि अस्पृश्यता हिन्दू धर्मका अंग होती तो मैं अपनेको हिन्दू

कहनेसे इनकार कर देता और निश्चय ही मैं ऐसा कोई दूसरा धर्म अंगीकार कर लेता जो धर्म-सम्बन्धी मेरी उच्चतम महत्त्वाकांक्षाओंके अनुकूल होता। मेरे लिए यह सौभाग्यकी बात है कि मैं मानता हूँ कि अस्पृश्यता हिन्दूधर्मका अंग नहीं है। इसके विपरीत वह हिन्दू धर्मपर भारी कलंक है, जिसे मिटानेमें हिन्दू धर्मके प्रत्येक प्रेमीको अपने-आपको बलिदान कर देना चाहिए। मान लीजिए, मुझे पता चलता है कि अस्पृश्यता सचमुच ही हिन्दू धर्मका अविभाज्य अंग है, तो मुझे बियावानमें भटकना होगा, क्योंकि दूसरे धर्म, जैसाकि उनके जाने-माने भाष्यकारोंके माध्यमसे मैं उन्हें जान पाया हूँ, मेरी उच्चतम महत्त्वाकांक्षाओंको सन्तुष्ट नहीं कर पायेंगे।

प्रस्तुत पत्र-प्रेषक मुझपर दोतरफा बात कहनेका आरोप लगाते हैं, क्योंकि मैंने हिन्दू धर्म तथा सत्य और अहिंसामें कोई अन्तर नहीं माना है। मैंने यह अपराध जान-बूझकर किया है। यह हिन्दू धर्मका सौभाग्य अथवा दुर्भाग्य है कि वह कोई सत्तारोपित मत नहीं है। अतः अपने-आपको किसी गलतफहमीसे बचानेके लिए ही मैंने कहा है कि सत्य और अहिंसा मेरा धर्म है। यदि मुझसे हिन्दू धर्मकी व्याख्या करनेके लिए कहा जाये तो मैं इतना ही कहूँगा — अहिंसात्मक साधनों द्वारा सत्यकी खोज। कोई मनुष्य ईश्वरमें विश्वास न करते हुए भी अपने-आपको हिन्दू कह सकता है। सत्यकी अथक खोजका ही दूसरा नाम हिन्दू धर्म है। यदि आज वह मृतप्राय, निष्क्रिय अथवा विकासशील नहीं रह गया है तो इसलिए कि हम थककर बैठ गये हैं और ज्यों ही यह थकावट दूर हो जायेगी त्यों ही हिन्दू धर्म संसारपर ऐसे प्रखर तेजके साथ छा जायेगा जैसा कदाचित् पहले कभी नहीं हुआ। अतः निश्चित रूपसे हिन्दू धर्म सबसे अधिक सहिष्णु धर्म है। सब प्रकारके मतमतान्तरोंके लिए इसमें स्थान है। किन्तु इस प्रकारका दावा करना संसारके सब धर्मोकी अपेक्षा हिन्दू धर्मकी श्रेष्ठताका दावा करनेके समान होगा। ये पंक्तियाँ लिखते हुए मुझे लगता है, मानों सम्प्रदायवादियोंकी एक भीड़ मेरे कानमें कह रही हो: "आप जिसकी परिभाषा कर रहे हैं वह हिन्दू धर्म नहीं है। हमारे पास आइए, हम आपको सत्यके दर्शन करायेंगे।" मैं इन सब कानाफूसी करनेवालोंको 'नेतिनेति' — 'ऐसा नहीं, मेरे मित्र, ऐसा नहीं' — कहकर अवाक् किये दे रहा हूँ। और वे भी दूने रोषके साथ प्रत्युत्तरमें 'नेति-नेति' कहकर सब गुड़ गोबर एक कर रहे हैं। किन्तु एक और स्वर मेरे कानोंमें गूंज रहा है; वह कहता है: "यह सब द्वन्द्व क्यों, यह वाक्‌युद्ध किसलिए? मैं इसमें से निकलनेका एक मार्ग दिखा सकता हूँ। वह मार्ग है — मूक प्रार्थना।" फिलहाल मैं चाहता हूँ कि उस स्वरको सुनूं, और मौन धारण कर लूं और अपने मित्रोंसे भी ऐसा ही करनेको कहूँ। सम्भवतः उन्हें और उनके सह-धर्मियोंका मेरे इस कथनसे समाधान न हुआ हो। यदि ऐसा है तो वह केवल इसलिए कि अभीतक मुझे प्रकाशके दर्शन नहीं हुए हैं। मैं अपनी ओरसे यह विश्वास दिला सकता हूँ कि मैंने मौलाना मुहम्मद अलीका बचाव करनेके लिए यह विशेष वकालत नहीं की है। यदि मुझे अपनी भूलका पता लग गया तो मैं आशा करता हूँ कि मुझमें उसे स्वीकार करनेका साहस होगा। मौलानाको मेरे बचावकी जरूरत नहीं है। और यदि उनके बचावके लिए मैं सत्यका अणुमात्र भी हनन करूँ

तो मैं उनका झूठा मित्र ठहरूँगा। मित्रका यह विशेष अधिकार होता है कि वह अपने मित्रके दोषोंको स्वीकार करे, और दोषोंके बावजूद कहे कि उसके प्रति उसके मनमें वैसा ही प्रेम बना हुआ है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २४-४-१९२४

३६६. जेलके अनुभव – २

कुछ कर्मचारी

शनिवार, १८ मार्चको मुकदमा खत्म हुआ। हमने आशा की थी कि साबरमती जेलमें कुछ सप्ताह तो हम शान्तिसे बैठ सकेंगे। हमने यह तो सोच ही लिया था कि सरकार हमें लम्बे समयतक वहाँ नहीं रहने देगी, परन्तु बिलकुल अचानक ही हटा दिये जानेकी बातका हमें खयाल भी नहीं था। किन्तु हुआ यही। पाठकोंको याद होगा कि सोमवार, २० मार्चको हमें एक स्पेशल ट्रेनमें बैठा दिया गया, जो हमें यरवदा सेन्ट्रल जेल ले जानेवाली थी। हमें साबरमतीसे हटायेंगे, इस बातकी खबर हमें रवाना होनेके लगभग एक ही घंटे पहले दी गई। हम जिस कर्मचारीकी देखरेखमें भेजे गये वह बड़ा ही शिष्ट था और पूरे सफरमें उसने हमें कोई असुविधा नहीं होने दी। परन्तु खिड़की स्टेशनपर पैर रखते ही हमने परिवर्तन अनुभव किया और हमें महसूस होने लगा कि आखिरकार हम कैदी ही हैं। कलेक्टर दूसरे दो व्यक्तियोंके साथ गाड़ीकी प्रतीक्षा कर रहे थे। हमें कैदियोंकी बन्द मोटरमें बिठाया गया। इस मोटरमें दोनों तरफ हवाके लिए छेद थे और यदि उसकी शक्ल उतनी भद्दी न होती तो हम उसे एक पर्देवाली मोटर कह सकते थे। बाहरकी दुनियाको तो उसमें से हम देख ही नहीं सकते थे। जेलमें हमारा कैसा सत्कार हुआ, भाई बैंकरको मेरे पाससे किस तरह हटाया गया, उसके बाद वे कैसे वापस लाये गये इन सब बातों तथा मेरी पहली मुलाकात और दूसरे दिलचस्प ब्योरेके लिए तो मैं पाठकोंसे अजमलखाँ साहबको लिखा गया अपना पत्र[1] देखनेको कहूँगा। वह इन स्तम्भोंमें पहले ही प्रकाशित किया जा चुका है। पहले कटु अनुभवके बाद तत्कालीन सुपरिन्टेंन्डेन्ट कर्नल डेलजीलके और हमारे सम्बन्ध जल्दी-जल्दी सुधरने लगे। हमारी शारीरिक सुविधाओंका वे बड़ा ध्यान रखते थे; परन्तु उनमें कुछ-न-कुछ ऐसी बात थी जो दूसरेको हमेशा खटकती रहती। उनके मनसे यह बात कभी नहीं निकल पाती थी कि वे सुपरिन्टेन्डेन्ट हैं और हम कैदी। हम कैदी हैं और वे सुपरिन्टेंन्डेट हैं, इसका हमें पूरा भान है, यह मान लेनेको वे तैयार नहीं थे। मैं दावेसे कह सकता हूँ कि हम यह बात किसी क्षण भी नहीं भूले कि हम कैदी हैं। उनके पदके योग्य हम उनका सम्मान करते थे; इसलिए उनका हमें अपने पदका बार-बार ध्यान दिलाना बिलकुल बेकार था। परन्तु

१. देखिए "पत्र: हकीम अजमलखाँको", १४-४-१९२२।

अनेक ब्रिटिश कर्मचारियोंमें व्यर्थकी अकड़ देखकर दुःख होता है, वह इनमें भी थी। उनकी इस कमजोरीके कारण कैदियोंके प्रति उनके मनमें अविश्वास रहता था। अपना कथन अधिक स्पष्ट करनेके लिए म एक मजेदार उदाहरण देता हूँ। मैं आमतौरपर जितना खाता था उससे अधिक मुझे खाना चाहिए, इसकी उन्हें बड़ी चिन्ता थी। वे चाहते थे कि मैं मक्खन खाऊँ। मैंने कहा कि मैं केवल बकरीके दूधका ही मक्खन ले सकता हूँ। उन्होंने खासतौरपर हुक्म दिया कि बकरीका दूध तुरन्त मँगाया जाये और वह आ गया। परन्तु वह किस चीजके साथ लिया जाये, यह प्रश्न था। मैंने कहा कि मुझे थोड़ा आटा दीजिए। आटा दिया गया। परन्तु वह इतना अधिक मोटा था कि मुझे पचाना मुश्किल हो जाये। बारीक आटा मँगानेका हुक्म हुआ और मुझे २० पौंड आटा दिया गया। इतना आटा लेकर मैं क्या करता? रोटी मैं बनाता था अथवा भाई बैंकर बनाते थे। थोड़े समय बाद मुझे यह महसूस हुआ कि न मुझे आटेकी जरूरत है, न मक्खनकी। इसलिए मैंने कहा कि आटा ले जाइये और मक्खन देना बन्द कर दीजिये। परन्तु कर्नल डेलजील क्यों सुनने लगे? जो दे दिया गया, सो दे दिया गया। कदाचित् बादमें मन खानेको हो जाये। मैंने कहा कि सार्वजनिक धन इस प्रकार व्यर्थ बरबाद होता है। मैंने नम्रभावसे कहा कि जितनी चिन्ता मुझे अपने पैसेकी है उतनी ही सार्वजनिक धन की है। उनके चेहरेपर अविश्वासपूर्ण मुस्कराहट आई तो मैंने कहा, "सचमुच यह मेरा ही पैसा है।" उन्होंने तुरन्त कटाक्ष किया, "सरकारी खजानेमें आपने कितना जमा कराया है?" मैंने नम्रतासे उत्तर दिया, "आप सरकारसे जो वेतन लेते हैं उसका एक अंश ही खजानेमें देते हैं, जब कि मैं तो सब-कुछ समर्पित किये हुए हूँ — मेरा श्रम, मेरी बुद्धि, मेरा सर्वस्व।" वे जोरोंसे खिलखिलाकर एक अर्थभरी हँसी हँसे। परन्तु मैं उससे अप्रतिभ नहीं हुआ, क्योंकि मैंने जो-कुछ कहा था उसे मैं हृदयसे मानता था। रहनेके लिए भव्य प्रासाद और बीस हजार रुपया वेतन पानेवाला वाइसराय, यदि उसका वेतन आय-करसे मुक्त न हो तो, अपनी आमदनी-के थोड़ेसे भागके बराबर कर चुकाकर सरकारको जितना रुपया देता है उसकी अपेक्षा निर्वाह-भरके लिए मेहनत करनेवाला मेरे जैसा मजदूर सरकारको कहीं अधिक ही देता है। लाखों मजदूर मजदूरी करते हैं, इसीलिए वाइसरायको, और जिस शासनके वे प्रधान हैं उसके दूसरे संचालकोंको, वेतन मिल पाता है। फिर भी बहुतसे अंग्रेज और भारतीय ईमानदारीसे यह मानते हैं कि वे सरकारकी सेवा ('सरकार' शब्दका वे जो भी अर्थ लगाते हों) मजदूरोंके मुकाबले कहीं अधिक करते हैं और साथ ही अपने पारिश्रमिकमें से राज्यतन्त्र चलानेके लिए अमुक भाग भी देते हैं। अपने मुँह मियाँ मिट्ठू बननेकी इस आधुनिक मान्यतासे अधिक बेतुकी कल्पना अथवा मिथ्या धारणा शायद ही कोई दूसरी हो।

परन्तु हम फिर उस बहादुर कर्नलकी बातपर वापिस आयें। कर्नल डेलजीलके दर्पपूर्ण अविश्वासका मैंने जान-बूझकर बढ़ियासे-बढ़िया नमूना दिया है। क्या पाठक विश्वास करेंगे कि वह आटा मुझे कर्नल डेलजीलके जाने और उनके स्थानपर मेजर जोन्सके आनेतक सहेजकर रखना पड़ा था? बादमें कर्नल डेलजीलका जेलोंके स्थानापन्न इंस्पेक्टर जनरलके रूपमें तबादला हो गया।

मेजर जोन्स कर्नल डेलजीलसे बिलकुल उलटे थे। वे जिस दिन जेलमें आये, उसी दिनसे कैदियोंके मित्र बन गये। अपनी पहली मुलाकातका मुझे पूरा-पूरा स्मरण है। हालाँकि वे कर्नल डेलजीलके साथ बाकायदा ठाठबाटसे ही आये थे परन्तु उनमें अफसरीकी बू नहीं थी और इसलिए उनका व्यवहार मनको एक तरहकी ताजगी देता था। वे मुझसे परिचितोंकी तरह मिले और साबरमती जेलके मेरे साथियोंके बारेमें बातें कीं और कहा कि उन्होंने आपको सलाम कहलवाया है। नियमोंके दृढ़ आग्रही होते हुए भी वे अपनी अफसरी नहीं बघारते थे। मुझे मेजर जोन्स-जैसा प्रतिष्ठा तथा बड़प्पनके झूठे गुमान अथवा दम्भसे मुक्त कोई भारतीय या यूरोपीय अधिकारी शायद ही कभी मिला हो। वे अपनी भूल स्वीकार करनेको सदा तैयार रहते थे। यह बात अधिकारियोंके लिए खतरनाक सिद्ध हो सकती है और इक्का-दुक्का अफसर ही ऐसा करते हुए देखे जाते हैं। एक बार उन्होंने किसी राजनीतिक कैदीको नहीं परन्तु एक ऐसे असहाय कैदीको जो सचमुच अपराधी था, सजा दे दी। बादमें उन्हें महसूस हुआ कि सजा अनुचित थी। बिना किसी बाहरी दबावके उन्होंने उसे एकदम रद कर दिया और कैदीके आचरण-सम्बन्धी टिकटपर इस प्रकारकी उल्लेखनीय टिप्पणी लिखी: 'मुझे अपने निर्णयपर पश्चात्ताप है।' यह देखना सचमुच बड़ी रोचक चीज है कि कैदी लोग सुपरिन्टेन्डेन्टका पूरा खाका एक ही शब्दमें किस खूबीसे खींच देते हैं। मेजर जोन्सको वे "बहुत भला" कहते थे। इसी तरह प्रत्येक अधिकारीको उन्होंने एक-एक नाम दे रखा था।

अब मैं आटे और अन्य अप्रयुक्त खाद्य-पदार्थोंको रख छोड़नेकी अधूरी बातको पूरी करता हूँ। मेजर जोन्स जब पहली ही बार निरीक्षणपर निकले, उसी दिन मैंने उनसे प्रार्थना की कि जो चीज मुझे नहीं चाहिए वह मुझे न दी जाये। उन्होंने तुरन्त मेरी प्रार्थनापर अमल करनेका हुक्म दे दिया। कर्नल डेलजीलको मेरे कथनके उद्देश्यके विषयमें शंका थी; परन्तु मेजर जोन्सने मेरी बातको यथार्थ मानते हुए किफायतके लिए मैं जितने परिवर्तन करना चाहूँ सो सब करने दिये और कभी ऐसी शंका नहीं की कि मैंने मनमें कुछ छिपा रखा है। एक और अफसर जिनसे शुरूमें हमारा वास्ता पड़ा, जेलोंके इंस्पेक्टर-जनरल थे। वे अकड़बाज और 'हाँ' या 'ना' से अधिक कहनेका कष्ट न उठानेवाले अफसर थे और लोगोंपर उनके कठोर होनेकी छाप पड़ती थी। खिंचे-तने रहनेका उनका अन्दाज तो निराला ही था। बेचारे कैदियोंको इससे बड़ी परेशानी होती थी। अधिकांश अफसरोंसे कल्पनाकी कमीके कारण, इरादा न होनेपर भी, अन्याय हो जाया करता है। वे दूसरा पक्ष देखते ही नहीं हैं। कैदियोंकी बात धीरजसे नहीं सुनते। उनसे यह आशा रखते हैं कि वे पूछते ही यथातथ्य उत्तर देंगे और जब वैसा उत्तर नहीं मिलता तो गलत फैसला कर बैठते हैं। इसलिए निरीक्षण अक्सर ढकोसला बन जाता है। परिणामस्वरूप लाभ कुपात्रों अर्थात् लुच्चे-लफंगों अथवा खुशामदियोंको ही होता है। सच्चे आदमीकी, कम बोलनेवाले सीधे-सादे कैदीकी तो कोई सुनता ही नहीं। और अधिकांश अफसर तो साफ स्वीकार करते हैं कि उनका कर्त्तव्य कैदियोंको

साफ-सुथरा रखने तथा एक-दूसरेसे लड़ने न देने अथवा उन्हें भागने न देने और बीमारीसे दूर रखनेके सिवा और कुछ भी नहीं है।

इस मनोवृत्तिके दुःखदायक परिणामोंपर हम अगले प्रकरणमें विचार करेंगे।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २४-४-१९२४

३६७. दिलचस्प जानकारी

श्री हार्डीकरने मुझे निम्नलिखित दिलचस्प जानकारी भेजी है:

आपकी सेवामें आज रेलवे पार्सल द्वारा साढ़े बारह पौंड सूत भजा जा रहा है। यह सूत गत राष्ट्रीय सप्ताहमें, अर्थात् ६ अप्रैलसे १३ अप्रैलके बीच निम्नलिखित संस्थाओं द्वारा काता गया था:

१. नेशनल हाईस्कूलके छात्रों द्वारा,

२. तिलक कन्या शालाकी छात्राओं द्वारा,

३. कर्नाटक बाल सेनाके गांधी पथक द्वारा,

४. शेवड़े परिवारके सदस्यों द्वारा।

दो चरखोंपर पूरे सप्ताह — लगातार चौबीसों घंटे और पाँच चरखोंपर हररोज बारह-बारह घंटे काम होता रहा। इस प्रकार सात चरखे कुल मिलाकर सात सौ छप्पन घंटे चले।

कुल मिलाकर लगभग ५०० तोले सूत काता गया, अर्थात् लगभग पौन तोला प्रति घंटा। सूत कम काता गया; इसके कारण नीचे दिये गये हैं। जो कारण कम सूत काते जानेके हैं वे ही सूतकी घटिया किस्मके भी हैं।

१. रुई खराब धुनी गई थी।

२. पूनियाँ ठीक तरहसे तैयार नहीं की गई थीं।

३. चरखा चलानेवालोंमें नौसिखिये भी थे।

सदस्योंकी भरती और तिलक स्वराज्य-कोषके लिए चन्दा जमा करनेका काम भी इस सप्ताहमें किया गया। काम करते हुए जो अनुभव प्राप्त हुए, वे यहाँ दिये जा रहे हैं:

१. जबतक प्रभावशाली व्यक्ति सक्रिय भाग नहीं लेते और जबतक वे जन-साधारणकी भलाईके खयालसे खुद काम नहीं करते, तबतक सफलता मिलना असम्भव है।

२. संगठित प्रयाससे मनोवांछित फल मिल जाता है।

३. नेतागण यदि किशोरों और नवयुवकोंको ठीक ढंगसे बात समझाते हैं, उनका मार्गप्रदर्शन और उनकी सहायता करते हैं तो उनपर अनुकूल प्रतिक्रिया होती है। वे हाथ बँटाने लगते हैं।

४. जबतक कार्यकर्त्ताओंके भरण-पोषणका प्रश्न कांग्रेस हल नहीं करती तबतक ठोस काम नहीं हो सकता, फिर चाहे मुट्ठी-भर कार्यकर्त्ता कितनी भी ईमानदारीसे काम क्यों न करें।

योग्यता तथा संगठन-शक्ति रखनेवाले लोगोंकी कमीके कारण काम बहुत रुका है। आन्दोलनके प्रति नेताओंकी उदासीनताके कारण तरुण कार्यकर्त्ताओंको निराशा हुई है। ये कार्यकर्त्ता अब एक-एक करके काम छोड़ते चले जा रहे हैं।

सूतका पार्सल भी प्राप्त हो गया है। उसे देखनेसे पता चलता है कि काम बेढंगा और भद्दा जरूर हुआ है, परन्तु ठोस हुआ है। ईमानदारीसे किये जानेवाले सभी कामों की तरह कताईका काम करनेके लिए भी परिश्रम, विचार, कौशल और एकाग्रताकी आवश्यकता है। अच्छे कातनेवालेको रुई धुनना जरूर जानना चाहिए, उसमें अपने कामके लायक पूनियाँ बनानेकी योग्यता अवश्य होनी चाहिए। ये काम कठिन नहीं हैं, परन्तु इनमें लगन तो जरूरी है ही। जबतक कातनेवाले व्यक्ति अपने काममें पूरा रस नहीं लेते हैं और जैसे खोटे रुपयेको, जिसे भुनाकर सोलह आने न मिल सकें, रुपया नहीं कहा जा सकता, वैसे ही ये खराब सूतको, जो बुननेके काममें न आ सके, सूत कहनेसे इनकार न करें तो ठीक ढंगका सूत नहीं काता जा सकता। आशा है कि जिन लड़के-लड़कियोंने उस सप्ताह-भर चरखा चलाया है वे अब नित्य थोड़ी देर — भले ही आधा घंटा ही क्यों न हो — सूत काता करेंगे। अगर वे इस प्रकार नियमित रूपसे और ठीक ढंगसे काम करेंगे तो उसका परिणाम इतना अच्छा निकलेगा कि उन्हें स्वयं आश्चर्य होगा।

श्री हार्डीकरने सामान्य कार्यके दोषोंके बारेमें जो बातें लिखी हैं, उनपर टिप्पणी करना आवश्यक नहीं है। मैं तो इतना ही कहूँगा कि कोई भी व्यक्ति साथ क्यों न छोड़ दे, कितनी भी निराशाका सामना क्यों न करना पड़े, हममें से जिन व्यक्तियोंको इस कार्यक्रममें आस्था है, उन्हें चाहिए कि वे दृढ़तापूर्वक और बिना रुके आगे बढ़ते जायें। राष्ट्रनिर्माण कोई जादूका करिश्मा नहीं है। इसमें कठिन परिश्रम करना होता है और कठिनतर दुःख सहने पड़ते हैं। कांग्रेस कार्यकर्त्ताओंको पारिश्रमिक देनेकी योजना बनाये या न बनाये; क्या इसका प्रबन्ध स्वयं प्रान्तीय संस्थाएँ नहीं कर सकतीं? कोई सर्वाधिक सुसंगठित प्रान्त कांग्रेसके सामने इस सम्बन्धमें उसी तरह एक आदर्श उपस्थित कर सकता है जिस तरह कांग्रेस सारे देशके सामने कर सकती है। जो इकाइयाँ सफलता प्राप्त कर चुकी होती हैं, वे ही लाभदायक परामर्श दे सकती हैं।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २४-४-१९२४

३६८. भेंट: 'डेली एक्सप्रेस' के प्रतिनिधिसे

बम्बई
२४ अप्रैल, १९२४

भारतको गलतियाँ ही नहीं बल्कि जबरदस्त गलतियाँ करनेतक का अधिकार होना चाहिए। एक राष्ट्रके रूपमें यदि हम चाहें तो हमें आत्मघाततक करनेका अधिकार होना चाहिए। हम इस अधिकारके प्राप्त होनेपर ही स्वतन्त्रता और उत्तरदायित्वके वास्तविक रूपको समझ सकते हैं।

"इंग्लैंडके प्रति असहयोग" आन्दोलनके प्रणेता गांधी जेलसे रिहा होनेके बाद पिछले छः हफ्तेसे बम्बईके समीप एक समुद्रतटीय विश्राम-गृहमें रह रहे हैं। जब मैं उनसे मिला तो उन्होंने उक्त बात कही।

मैंने निवेदन किया कि राष्ट्रोंको तो क्या, किसी व्यक्तितक को आत्मघात करनेका नैतिक या वैधानिक अधिकार नहीं है।

व्यक्तिको ऐसा करनेका अधिकार भले ही न हो, शक्ति तो अवश्य है और जबतक भारतको भी यह शक्ति नहीं मिल जाती तबतक उसे पूर्ण रूपसे स्वतन्त्र नहीं माना जा सकता।

मैंने उनसे यह जानना चाहा कि जिस स्वराज्यकी कल्पना आप करते हैं उस स्वराज्य (होम रूल)के अन्तर्गत भारतमें अंग्रेजोंकी स्थिति क्या होगी। उन्होंने कहा:

निःसन्देह ठीक प्रकारके अंग्रेजोंके लिए भारतमें सदैव स्थान बना रहेगा। मैं ऐसे किसी भी स्वराज्यकी कल्पना नहीं कर सकता जिसके लक्ष्योंमें अंग्रेजोंको भारतसे निकाल बाहर करनेकी योजना भी हो।

व्यक्तिगत रूपसे देखिए तो बहुतसे अंग्रेज मेरे दोस्त हैं और मैं उनकी मित्रताकी बहुत ज्यादा कद्र करता हूँ, परन्तु यदि ब्रिटेन शोषण-नीतिका परित्याग कर देनेकी इच्छाका वास्तविक प्रमाण दे सके तो वातावरण अवश्य ही बहुत स्वच्छ हो जाये।

यद्यपि गांधी भारतीय राजनीतिकी सबसे ताजा परिस्थितियोंके सम्बन्धमें तबतक अपनी निजी सम्मति प्रकट करनेके लिए तैयार नहीं है जबतक कि स्वराज्यवादी नेताओंके साथ चल रही बातचीत पूरी न हो जाय, तथापि मेरे मनपर जो छाप पड़ी वह यह है कि वे कौंसिलोंमें रोध-अवरोधकी नीतिको पूर्णतया पसन्द नहीं करते।

गांधी आज भी पहले-जैसे एक अस्पष्ट आदर्शवादी बने हुए हैं। वे इस बातका आग्रह रखते हैं कि भारतको आर्थिक और नैतिक स्वातन्त्र्य प्राप्त करनेका अधिकार है, फिर भी उनकी यह धारणा जान पड़ती है कि चरखा — जिसके द्वारा भारत ब्रिटेनके सूती मालका आयात करनेसे निजात पा जायेगा — इस देशकी मुक्तिका साधन है।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, १९-५-१९२४

३६९. तार: के० एन० नम्बूद्रीपादको[1]

अन्धेरी
[२४ अप्रैल, १९२४ या उसके पश्चात्]

आप अनशन कदापि न करें। बाड़को न तोड़ें और न उसको लाँघें। सत्याग्रहियोंके सामने यह सवाल नहीं होना चाहिए कि कौन-सी चीज प्रभावकारी प्रतीत होती है और कौन-सी नहीं; बल्कि यह कि उचित क्या है? पत्रकी प्रतीक्षामें।

गांधी

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १०२९०) की फोटो-नकलसे।

३७०. सन्देश: 'बॉम्बे क्रॉनिकल'को[2]

यदि हमारा यह संकल्प हो कि श्री हॉर्निमैनको भारत लौटनेकी अनुमति मिलनी ही चाहिए तो ऐसा होकर रहेगा। परन्तु वह इच्छा किस प्रकार व्यक्त की जाये? निःसन्देह, शब्दों द्वारा नहीं। इस प्रश्नके समुचित उत्तरपर भारतकी और उससे भी ज्यादा बम्बईकी मान-प्रतिष्ठा निर्भर करती है।

मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
बॉम्बे क्रॉनिकल, २६-४-१९२४

१. यह तार श्री नम्बूद्रीपादके निम्नलिखित तारके उत्तरमें भेजा गया था: "आपका १९ तारीखका तार आज प्राप्त हुआ। सत्याग्रह दृढ़तापूर्वक चल रहा है। अब जत्थोंकी संख्या बढ़ाकर छः कर दी गई है। आज सरकारने सब सड़कोंके किनारे बाड़ लगा दी है। कल रियासतके दीवानसे हम लोगोंकी बातचीत हुई। वे कहते थे कि अब उन सड़कोंको मन्दिरकी जायदाद घोषित करके उनपर मुसलमानों तथा ईसाइयोंका आना-जाना निषिद्ध कर देनेका विचार कर रहे हैं। वे यह भी कहते थे कि विरोधी पक्षकी ओरसे कभी-कभी मार-पीट भी हुई। इसकी और ज्यादा सम्भावना। सड़कें बन्द कर दिये जानेपर समितिने बाड़ें तोड़ने या लांघनेपर और पूर्ण या आंशिक अनशन आरम्भ करनेपर विचार किया। अनुभवसे ऐसा प्रतीत होता है कि अनशनका उपाय ज्यादा प्रभावकारी होता है। विस्तृत पत्र भेज रहा हूँ। अगला कदम क्या हो सलाह दीजिए।"

२. यह सन्देश बॉम्बे क्रॉनिकलके सम्पादक बी० जी० हॉर्निमैनके निष्कासनका एक वर्ष पूरा होनेपर भेजा गया था। देखिए खण्ड १५, पृष्ठ ३५८-९।

३७१. आचार बनाम विचार

मौलाना मुहम्मद अलीके इस्लाम-विषयक भाषणकी चर्चा अभी समाचारपत्रोंमें चल ही रही है। मैं देखता हूँ कि आचार और विचारमें उन्होंने जो भेद किया है उसे कितने ही समझदार और विवेकवान् सज्जन भी नहीं समझ पाये हैं और यदि समझे हैं तो उस विषयमें बोलते और लिखते समय उसे भूल जाते हैं। इसका अर्थ यह है कि उनके दिलमें उस भेदका ज्ञान गहरा नहीं बैठा है। अतएव मौलाना साहबके बताये भेदको बार-बार समझना जरूरी है। वे मानते हैं कि —

(१) मनुष्यके आचार और विचारमें भेद होता है।

(२) श्रेष्ठ विचारवालेका आचार बुरा हो सकता है।

(३) श्रेष्ठ आचारवाले के विचार दूसरोंके विचारोंके मुकाबले में हीन हो सकते हैं।

यहाँ विचारका अर्थ है विश्वास, धर्म-मत, धर्म — जैसे ईसाई मतमें ईसा मसीहका अप्रतिभ ईश्वरत्व, इस्लामका यह विश्वास कि ईश्वर एक है और मुहम्मद साहब उसके पैगम्बर हैं। हिन्दू धर्ममें (मेरे विचारके अनुसार) सत्य और अहिंसाकी श्रेष्ठता मानी गई है।

"सत्यान्नास्ति परो धर्मः।" "अहिंसा परमो धर्मः"।

पूर्वोक्त सिद्धान्तोंके अनुसार मौलाना साहबने कहा था :

> **मुसलमानकी हैसियतसे मैं मानता हूँ कि श्रेष्ठ आचारवाले गांधीके धर्म-विचार (धार्मिक विश्वास) की अपेक्षा व्यभिचारी मुसलमानका धर्म-विचार (धार्मिक विश्वास) ज्यादा अच्छा है।**

पाठक देखेंगे कि इसमें मौलानाने मेरी और व्यभिचारी मुसलमानकी तुलना नहीं की है। उन्होंने तो मेरे और उस मुसलमान भाईके धार्मिक विश्वासकी तुलना की है। इसके सिवा, मौलाना साहब अपनी उदारता और मेरे प्रति अपने स्नेहके कारण ऐसा कहते हैं कि यदि मनुष्यकी मनुष्यसे तुलना करनी हो तो गांधीजी गुणमें अर्थात् आचारमें उनकी पूजनीय माताजी और पूज्य गुरुसे भी बढ़ जाते हैं।

इसमें न तो मेरा अपमान है और न हिन्दू धर्मका। सच तो यह है कि सारा संसार पूर्वोक्त तीन सिद्धान्तोंको मानता है। फर्ज कीजिए, यूरोपका कोई सर्वश्रेष्ठ साधु यह मानता है कि मनुष्यके शरीरकी रक्षाके लिए जीवित पशुओं और पक्षियोंको तरह-तरहके कष्ट देकर उनपर प्रयोग करने अथवा उन्हें मार डालनेमें किसी तरहकी बुराई नहीं है, यही नहीं बल्कि ऐसा न करनेमें बुराई है। इसके खिलाफ फर्ज कीजिए मैं एक दुष्ट मनुष्य हूँ, परन्तु मैं मानता हूँ कि मनुष्य-शरीरको बचानेके लिए भी किसी जीवधारीकी हिंसा करना इन्सानियतको कम कर देना है। तब उस श्रेष्ठ साधुका किंचित् भी अपमान किये बिना क्या मैं यह नहीं कह सकता कि केवल विचारों — विश्वासोंकी तुलना करें तो मेरे दुष्ट होते हुए भी मेरे विश्वास उस सर्वश्रेष्ठ साधुके

विश्वासोंसे बहुत ऊँचे दर्जेके हैं? यदि मेरा यह कहना सदोष न हो तो मौलाना साहबके कहनेमें भी कोई दोष नहीं है।

वर्तमान चर्चामें एक बात साफ तौरपर निखर उठती है और वह मानो इस अँधेरेमें आशाकी किरण है। सब लोग यह प्रतिपादित करते हुए मालूम होते हैं कि आचार-हीन विचार बेकार हैं और अकेले शुद्ध विचारोंसे स्वर्ग नहीं मिल सकता। मौलाना साहबने अपना मन्तव्य बतानेमें कहीं भी इस बातका विरोध नहीं किया है। मुझे इसमें आशाकी किरणें दिखाई देती हैं, क्योंकि अपनी श्रद्धाके अनुसार चलनेवाले तथा उसके प्रति अनास्था रखनेवाले दोनों ही सदाचारके पुजारी हैं।

परन्तु आचारकी पूजा करते हुए हमें विचारोंकी शुद्धताकी आवश्यकताको न भुला देना चाहिए। जहाँ विचारोंमें दोष होगा वहाँ आचार अन्तिम शिखरतक नहीं पहुँच सकेगा। रावण और इन्द्रजित्की तपस्यामें किस बातकी खामी थी? इन्द्रजित्के संयमका मुकाबला करनेके लिए लक्ष्मणके संयमकी आवश्यकता थी, यह बताकर आदिकविने आचारका महत्त्व सिद्ध किया है। परन्तु इन्द्रजित्के विचारोंमें, विश्वासमें आर्थिक वैभवको प्रधान पद प्राप्त था और लक्ष्मणके विश्वासमें वह पद परमार्थको प्राप्त था। अतएव अन्तमें कविने लक्ष्मणको जयमाला पहनाई। "यतो धर्मस्ततो जयः" का भी अर्थ यही है। यहाँ धर्मका अर्थ उच्चसे-उच्च विचार अर्थात् विश्वास और उसके अनुसार उच्चसे-उच्च आचार ही हो सकता है।

एक तीसरे प्रकारके भी लोग हैं। उनके लिए इस चर्चामें जगह ही नहीं है। वे हैं ढोंगी। उनके पास विचारोंका — विश्वासोंका कोरा दावा तो है, किन्तु उनका आचार कोरा आडम्बर है। वास्तवमें उनका कोई धार्मिक विश्वास ही नहीं होता। तोता राम-राम रटता है तो क्या इससे लोग उसे राम-भक्त कहेंगे? फिर भी हम दो तोतोंकी या तोते और मैनाकी बोलियोंकी कीमत उनकी तुलना करके आँक सकते हैं।

परन्तु एक सज्जन कहते हैं:

> मौलाना साहबने निडरता भले ही दिखाई हो. . .किन्तु उसका लाभ देशको कितना मिला? हिन्दू-मुसलमानोंमें तनाव और बढ़ गया। संयमी गांधीसे अधम मुसलमान ऊँचा है, ये शब्द हिन्दुओंके दिलमें बाणकी तरह चुभ गये हैं। मौलाना साहबने तो मानो देशपर बमका गोला ही फेंक दिया है।

इन विचारोंको प्रकट करनेवाले मौलाना साहबके प्रेमी हैं। वे धर्मान्ध हिन्दू नहीं हैं। वे हिन्दुओंके ऐबोंको निष्पक्ष होकर देख सकते हैं। लेकिन सन्देहके वर्तमान वातावरणका असर उनपर भी हुआ है। पहले तो, जैसा मैं कह चुका हूँ, "संयमी गांधीसे अधम मुसलमान ऊँचा है", यह मौलानाने कहा ही नहीं। उन्होंने तो इतना ही कहा है कि "संयमी गांधीकी धार्मिक मान्यतासे अधम मुसलमानकी धार्मिक मान्यता बढ़कर है।" मौलानाके विचारमें और उनपर आरोपित विचारमें हाथी-घोड़ेका अन्तर है। एकमें दो व्यक्तियोंकी तुलना है, दूसरेमें दो धार्मिक विचारोंकी। "संयमी गांधी" और "अधम मुसलमान" हमारी प्रयोजन-सिद्धिके लिए निरर्थक

हैं। मुख्य तो धार्मिक मान्यताएँ हैं। फिर ये मान्यताएँ भले ही 'क' या 'ख' की हों अथवा 'ग' या 'घ' की; तुलना व्यक्तियोंकी नहीं, उनके धार्मिक विचारोंकी है। उनके आचार तथा गुण-दोषोंका इस तुलनासे कुछ भी सम्बन्ध नहीं है।

अब हम इस बातपर विचार करें कि मौलानाको धार्मिक मान्यताओंके सम्बन्धमें अपने ये उद्गार प्रकट करनेकी आवश्यकता थी भी या नहीं। मौलाना साहबके और मेरे बीच दो भाइयोंका-सा सम्बन्ध है। इस कारण वे जहाँ-तहाँ मेरी स्तुति किया करते हैं। इन दिनों हिन्दुओं और मुसलमानोंके बीच कलह उत्पन्न करनेवालोंकी संख्या बढ़ गई है। उनमें से कुछ लोगोंने उनके लिए 'गांधी-परस्त' अर्थात् 'गांधी-पूजक' विशेषण लगाया है। ऐसा करनेमें उनका उद्देश्य यह था कि मुसलमानोंपर मौलानाका जो प्रभाव है वह कम हो जाये। अतः मौलानाने कहा कि मैं गांधीजीका पुजारी तो हूँ परन्तु गांधीजी मेरे धर्म-गुरु नहीं हैं। गांधीजीका धर्म मेरे धर्मसे जुदा है। धार्मिक विश्वास तो एक व्यभिचारी मुसलमानके जो हैं वे ही मेरे भी हैं और मैं उन्हें गांधीजीके धार्मिक विश्वासोंसे अधिक अच्छा समझता हूँ। यह मौलानाके भाषणका सार है। यदि वे ऐसी ही कुछ बात न कहें तो क्या कहकर वे अपना, मेरा और हमारे पारस्परिक सम्बन्धोंका तथा साथ ही अपनी दृढ़ धर्म-निष्ठाका खुलासा और बचाव कर सकते हैं और किस तरह आक्षेपकर्ताओंके आक्षेपोंका उत्तर दे सकते हैं?

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २७-४-१९२४

३७२. मेरी भाषा

एक विद्वान् मित्र अत्यन्त सरल भावसे भाषाके प्रति और मेरे प्रति अपने प्रेमसे प्रेरित होकर लिखते हैं:[1]

उपर्युक्त दिलचस्प पत्रमें कुछ अंग्रेजी वाक्य और शब्द गुजराती लिपिमें हैं और दो अंग्रेजी शब्द रोमन लिपिमें ही हैं। इससे अंग्रेजी न जाननेवाले अनेक गुजराती भाई-बहनोंको चोट पहुँचेगी। इसके लिए मैं उनसे क्षमा माँग लेता हूँ। यदि इसमें मैं कोई हेर-फेर करता तो उससे पत्रका माधुर्य और उसमें निहित सूक्ष्म विनोद बहुत हदतक कम हो जाता। अंग्रेजी न जाननेवाले व्यक्तिको भी इस पत्रके भावार्थको समझनेमें कोई दिक्कत नहीं होगी।

यह तो पाठक आसानीसे समझ सकेंगे कि यह पत्र कोई प्रकाशित किये जानेके विचारसे नहीं लिखा गया है। अपने एक निजी पत्रमें पत्र-लेखकने यह किस्सा अनायास ही जोड़ दिया है। लेकिन पत्रमें की गई टीका उचित है और पाठकों तथा

१. इस निजी पत्रमें, जो यहाँ उद्धृत नहीं किया गया है उक्त मित्रने गांधीजीके **दक्षिण आफ्रिकाना सत्याग्रहनो इतिहास** में व्यवहृत कुछ शब्दों और मुहावरोंके गलत प्रयोगकी ओर उनका ध्यान खींचा था।

मेरे साथियोंको भी उससे शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए, यह सोचकर मैंने उसे उद्धृत किया है।

पाँच-एक वर्ष पहले एक विद्वान् हितेच्छुने टीका की थी कि "गांधीकी गुजराती नये मैट्रिक्युलेटसे भी ज्यादा कमजोर है।" जिस मित्रने टीका सुनी थी उन्हें वह अच्छी नहीं लगी। जब उन्होंने मुझे इस टीकाके बारेमें बताया तब मैंने कहा कि यह टीका सही है और टीका करनेवाले के मनमें मेरे प्रति कोई द्वेष नहीं है; टीकाका कारण उनका भाषा-प्रेम है। इस टीकाके सम्बन्धमें उस समय मैंने जो विचार व्यक्त किये थे वे आज भी उसी तरह कायम हैं।

मैं जानता हूँ कि मुझे गुजराती भाषाका सूक्ष्म ज्ञान नहीं है। मैं व्याकरणपर जितनी नजर रखना चाहता था उतनी नहीं रख सका हूँ। मैंने भाषाके विचारसे लिखनेका धन्धा शुरू नहीं किया है, बल्कि जैसी भाषा मुझे आती है अपने धन्धेके लिए उसीसे काम चलाना पड़ा है। यह मैं इसलिए नहीं लिख रहा हूँ कि मेरी भाषाकी भूलें माफ कर दी जायें। जानते हुए भूलें करना और क्षमा माँगना अक्षम्य है, इतना ही नहीं बल्कि यह तो एक दोषमें दूसरे दोषको जोड़नेके समान है। मुझे जो एक अमूल्य वस्तु मिल गई है उसमें मैं जगत्को भागीदार बनाना चाहता हूँ। इसमें भले मोह हो, अज्ञान हो, अभिमान हो, लेकिन वस्तुस्थिति यही है। मेरे कार्यमें भाषा एक बहुत बड़ा साधन है। कुशल कारीगरके पास जो हथियार होता है उसीसे वह अपना काम चला लेता है। ठीक यही चीज मुझे भी करनी पड़ी है। हम लोग एक वहमके शिकार हैं। जिस व्यक्तिमें एक बात सर्वश्रेष्ठ हो उसे बहुतेरी अन्य बातोंमें भी सर्वश्रेष्ठ मान लिया जाता है। और अगर वह महात्मा माना जाता हो, तब तो कहना ही क्या! वह तो सर्वश्रेष्ठ हुआ ही। इस वहमके कारण कोई मेरी भाषाके सम्बन्धमें भ्रमित न हो जाये, इसलिए मैं उपर्युक्त टीका प्रकाशित करके अपने भाषा-सम्बन्धी दोषोंको स्वीकार करता हूँ। सत्याग्रहके सम्बन्धमें, हिन्दुस्तानकी गरीबीको देखते हुए इस देशके उपयुक्त अर्थशास्त्रके नियमोंके सम्बन्धमें तथा ऐसी ही कुछ और वस्तुओंके सम्बन्धमें मैं अवश्य अपने-आपको कुशल मानता हूँ। लेकिन अपनी भाषाको मैं ग्रामीण तथा लेखन और व्याकरणके नियमोंको भंग करनेवाली मानता हूँ। इसलिए अन्य लोग मेरी भाषाका अनुकरण करें, यह बात मैं कदापि नहीं चाहता।

हिमालयके शिखरपर विराजमान मित्रने जो कुछ-एक दोष बताये हैं उन्हें अवश्य दूर करना चाहिए था। मेरी भाषाकी अपूर्णता मुझे दुःख देती है, लेकिन उससे मैं शर्मिन्दा नहीं होता। कुछ-एक भूलें ऐसी हैं जो आसानीसे दूर हो सकती थीं, इन भूलोंके सम्बन्धमें मैं अवश्य लज्जाका अनुभव करता हूँ। इन भूलोंको रहने देकर समाचारपत्र चलानेकी अपेक्षा मैं उसे बन्द करना अधिक अच्छा मानता हूँ। समाचारपत्रका सम्पादक अगर भाषाके सम्बन्धमें लापरवाह रहता है तो वह अपराधी ठहरता है। 'मुर्शिद' और 'अमानुष'[1] शब्द ऐसे हैं जिन्हें माफ नहीं किया जा सकता। ये शब्द

१. 'मुरीद' और 'अतिमानुष' के लिए गांधीजीने भूलसे उक्त शब्दोंका प्रयोग किया था।

कैसे रह गये, सो मैं नहीं जान सकता। मैं बोलता गया, दूसरेने लिखा और किसी तीसरेने उसकी नकल की। इस भूलका कारण या तो उर्दू और संस्कृतका मेरा कच्चा ज्ञान हो सकता है या फिर नकल करनेवाला। असली दोष तो मेरा ही माना जायेगा, उसके बाद मेरे साथीका। स्वामी आनन्द 'नवजीवन'को गुजरातमें प्रसारित करनेमें व्यस्त होनेके कारण उसकी भाषाको नहीं सँभाल सकते। और महादेव देसाई तो जिस तरह आशिक माशूकके दोषको देखते हुए भी नहीं देखता उसी तरह मेरे दोषोंको देखनेसे स्पष्ट रूपसे इन्कार करते हैं। उनका वश चले तो वे 'मुर्शिद' और 'अमानुष' शब्दोंके प्रयोग सही सिद्ध कर दें; और जो ज्ञानवान हैं वे तो हिमालयके शिखरपर जाकर बैठ गये हैं। इसमें पाठकके साथ अन्याय होता है, इसका विचार तो तीनोंमें से एक भी नहीं करता। बेचारी भाषा तो गरीब गाय है और हम चारों उसकी गर्दनपर छुरी फेरनेके लिए कटिबद्ध हैं। उपाय तो भाषा-प्रेमी पाठकोंके हाथमें है। उनको मेरी सलाह है कि वे महादेव देसाई, स्वामी आनन्द आदिको इस बातका नोटिस भेजें कि अब अगर फिर कभी 'नवजीवन'में हिमालय-जैसी गम्भीर भूलें देखनेमें आयेंगी तो वे दूसरा नोटिस भेजे बिना ही पत्र लेना बन्द कर देंगे। इतना ही नहीं, अगर जरूरत जान पड़ी तो 'नवजीवन'-बहिष्कार मण्डलकी स्थापना करेंगे। यदि यह मण्डल अहिंसात्मक असहयोग करेगा तो मैं भी उसमें अपना नाम अवश्य दर्ज करवाऊँगा और अपने ही घरमें झगड़ा खड़ा करूँगा। भाषा-प्रेमियोंको मेरा यह भी सुझाव है कि वे उपर्युक्त हिमालय-शिखर निवासीको खुली चिट्ठी लिखें कि वे प्रति सप्ताह 'नवजीवन'के ज्यादासे-ज्यादा आधे पृष्ठका उपयोग 'नवजीवन'के पिछले अंकोंकी गुजराती-सम्बन्धी भूलोंको बतानेमें किया करें। इस तरह यदि 'नवजीवन'के पाठक कड़े कदम उठायेंगे तो वे भाषाकी सेवा करेंगे और 'नवजीवन'पर अपना स्वामित्व सिद्ध करेंगे।

अब टीकाकारकी टीका करनेमें दो शब्द लिखता हूँ। चूंकि हमने अंग्रेजी भाषा पढ़ी है, इसलिए हम चाहे कितना भी प्रयत्न क्यों न करें फिर भी जाने-अनजाने हम [अपने गुजराती लेखनमें] अंग्रेजी शैली और उसके मुहावरों आदिका प्रयोग कर जाते हैं। मैं अंग्रेजी भाषाका दुश्मन समझा जाता हूँ। सच तो यह है कि मेरे मनमें उस भाषा और उस भाषाको बोलनेवाले अंग्रेजोंके प्रति आदर-भाव है। लेकिन दोनोंमें से एकको भी मैं प्रधान पद देनेके लिए तैयार नहीं हूँ, बल्कि दोनोंके बिना काम चला लेनेको तैयार हूँ। मेरा दृढ़ विश्वास है कि जिस व्यक्तिको गुजराती भाषापर पूरा अधिकार प्राप्त है वह व्यक्ति अंग्रेजीका एक भी शब्द जाने बिना गुजराती भाषामें भाषाकी सारी खूबियाँ ला सकता है। लेकिन अंग्रेजी अथवा अंग्रेजोंके प्रति कोई द्वेष न होनेके कारण मैं दोनोंमें से सार ग्रहण कर सकता हूँ और इसलिए थोड़ा-बहुत अनुकरण अनायास ही हो जाता है। 'पृथ्वीनां आंतरडां'[1] एक ऐसा ही अनायास आ गया मुहावरा है। 'पृथ्वीका उदर' बहुत मधुर शब्द-समूह है। लिखाते समय अगर वह मेरी जबानपर चढ़ा होता तो मैं इसका अवश्य प्रयोग करता, लेकिन

१. पृथ्वीकी अँतड़ियोंमें।

'पृथ्वीनां आंतरडां' को मैं त्याज्य प्रयोग नहीं मानता। 'मुंह मरोड़ना' तो है ही, लेकिन क्या उसी अर्थमें 'नाक मरोड़ना' का प्रयोग नहीं किया जा सकता? इस विषयमें मुझे शंका तो है हालाँकि नाक मरोड़नेका प्रयत्न करते समय मैं नाक तो नहीं मरोड़ सका; हाँ, मुंह आसानीसे अवश्य मरोड़ दिया। इससे मेरी गुजराती आत्माको सन्तोष हुआ। लेकिन सब मुहावरोंकी क्या ऐसे परीक्षा हो सकती है? इसलिए फिलहाल तो इस शंकाको रहने देता हूँ। हम जब स्वराज्य ले चुकेंगे तब अवश्य मैं नरसिंहरावभाई[1] और उनसे निपटनेकी योग्यता रखनेवाले कवि खबरदारको[2] द्वन्द्वयुद्धके लिए आमन्त्रित करूँगा और 'नवजीवन' के पाठकोंके सम्मुख उनकी कला-का थोड़ा-बहुत नमूना रखनेका प्रयत्न करूँगा। फिलहाल तो हमारे पास ऐसे निर्दोष विनोदके लिए भी वक्त नहीं है। 'इनडायरेक्ट कन्स्ट्रक्शन' का प्रयोग गुजराती भाषामें वर्जित नहीं है, ऐसा मैं मानता हूँ, लेकिन यह कहकर मैं टीकाकारकी टीकाको बिलकुल धो डालना नहीं चाहता। लेकिन उपर्युक्त पत्र प्रकाशित करके मैं अपने भाषा-शास्त्री मित्रोंसे प्रार्थना करना चाहता हूँ कि जिस तरह कुछ-एक मित्र मेरी नीति-की चौकसी करते हैं उसी तरह वे मेरी भाषाकी चौकसी करें और इस तरह मुझे कृतार्थ करें।

इस अन्तिम वाक्यका प्रयोग उचित है अथवा अनुचित, इसका उत्तर पाठकोंकी ओरसे शिखर-निवासीसे मैं ही सार्वजनिकरूपसे पूछे लेता हूँ।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २७-४-१९२४

३७३. भूल-सुधार

मुझे दाहोद ताल्लुकेसे एक पत्र मिला था। इस पत्रपर किसीने दाहोद ताल्लुकेकी कांग्रेस कमेटीके मन्त्रीके नामसे हस्ताक्षर किये थे और मैंने मान लिया था कि हस्ताक्षर मन्त्रीके ही हैं। तदनुसार मैंने चैत्र सुदी २ के 'नवजीवन' में दाहोदके अन्त्यजोंके सम्बन्धमें एक टिप्पणी[3] लिखी थी। अब उस कमेटीके वास्तविक मन्त्री श्री सुखदेव लिखते हैं कि उपर्युक्त पत्र उनकी अनुपस्थितिमें मन्त्रीके नामसे किन्तु उनकी जानकारीके बिना लिखा गया था। श्री सुखदेव द्वारा प्रेषित संशोधित विवरणके अनुसार यह तो सच है कि भंगियोंको[4] ढेढोंके कुएँसे पानी भरने दिया गया। लेकिन स्थानीय बोर्डके पक्के कुएँसे जो अन्त्यज पानी भरने गये थे उन्हें इन्स्पेक्टर महोदयने

१. नरसिंहराव बी० दिवेटिया (१८५९-१९३७); गुजराती कवि और साहित्यिक, बम्बईके एलफिन्स्टन कालेजके गुजरातीके प्रोफेसर।

२. अरदेशर फरामजी 'खबरदार' (१८८१-१९५४); गुजरातीके प्रसिद्ध पारसी कवि।

३. देखिए "अस्पृश्यता और दुरदुरानेकी मनोवृत्ति", ६-४-१९२४।

४. भंगी और ढेढ दोनों ही अन्त्यज हैं लेकिन भंगी ढेढसे नीची जातिके माने जाते हैं, इसलिए ढेढ इनको अपने कुएँसे पानी नहीं भरने देते हैं।

न केवल भगा दिया, बल्कि उन्हें अपना भरा हुआ पानी फेंकनेके लिए वाध्य किया। आज भी यही स्थिति विद्यमान है। उपर्युक्त घटना दाहोद गाँवमें नहीं, दाहोदके मातहत गरवाडा गाँवमें घटित हुई थी।

तात्पर्य यह कि अन्त्यज भाइयोंकी पहले जो स्थिति थी, वही आज भी है। श्री सुखदेवको इस बातकी जाँच करनी चाहिए कि मन्त्रीके नामसे यह गलत समाचार देनेवाला पत्र क्यों लिखा गया। झूठी खबरोंसे न तो अन्त्यजोंकी स्थिति सुधरनेवाली है, न हमारे पापोंका मार्जन ही होनेवाला है और न ही हमें स्वराज्य मिलनेवाला है। ठीक ढंगसे किया गया प्रायश्चित्त अखबारोंमें न भी छपे तो भी फलीभूत होता है। इस जगत्‌में करोड़ों सुकृत्य होते हैं जो समाचारपत्रोंमें प्रकाशित तो नहीं होते लेकिन जिनका प्रभाव निरन्तर होता ही रहता है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २७-४-१९२४

३७४. टिप्पणियाँ

मिलकी पूनियाँ

हम देखते हैं कि अनेक स्थानोंपर आज भी मिलकी पूनियोंका उपयोग हो रहा है। जब चरखेकी शुरुआत हुई थी उस समय पूनी किस तरह बनती है इसकी किसीको जानकारी नहीं थी। उस समय मिलकी पूनियोंका उपयोग भले ही किया गया हो, लेकिन आज तो इनका उपयोग असह्य माना जाना चाहिए। मिलकी पूनियोंका उपयोग तो वही करेगा जो चरखेके मर्मको नहीं समझता। हम हिन्दुस्तानके प्रत्येक गाँवमें और प्रत्येक घरमें चरखेको चलते हुए देखना चाहते हैं। हिन्दुस्तानमें सात लाख गाँव हैं। अनेक तो रेलगाड़ी [की लाइन] से बहुत दूर हैं। वहाँ मिलकी पूनियाँ पहुँचाना असम्भव है। इसके सिवा जिस गाँवमें कपास होती है वहाँसे उसे दूसरे गाँवमें ले जाकर ओटा जाये, बादमें वह मिलमें पहुँचे और वहाँ उसे धुना जाये और अन्तमें पूनीके रूपमें वह फिर उसी गाँवमें प्रवेश करे और तब काता जाये यह तो ठीक वही बात हुई कि आटा तो बम्बईमें साना जाये लेकिन रोटियाँ पकें पेथापुरमें[1]। कपास जहाँ काती जाये वहीं उसको धुना जाना चाहिए और जहाँ पैदा होती है वहीं उसे ओटा जाना चाहिए। आज जो अस्वाभाविक पद्धति चल रही है उसका जड़मूलसे उन्मूलन किया जाना चाहिए। कातनेकी प्रवृत्तिके मूलमें ही उसके पहलेकी समस्त क्रियाएँ समाहित हैं।

कर्नाटककी बहनें

बम्बईमें रहनेवाली कर्नाटककी कोई पचास बहनें गत सप्ताह मेरे पास आई थीं। वे सब बहनें अपना काता हुआ सूत लाई थीं, साथमें ५०० रुपये भी थे।

१. दक्षिण गुजरातका एक गाँव।

इन वहनोंमें से एकने 'समाज सेवा' नामक नाटक लिखा है। अन्य वहनोंने यह नाटक खेला था। नाटकमें टिकट रखा गया था। उपर्युक्त ५०० रुपये उन टिकटोंकी विक्रीसे होनेवाली आयमें से वची हुई रकम थी। उन्होंने नाटक खेलनेमें केवल ५० रुपये खर्च किये थे।

अन्य वहनें भी यदि इन वहनोंका अनुकरण करें तो?

अधिकांश वहनें पढ़ने अथवा खेलने लायक नाटक नहीं लिख सकतीं, अधिकांश खेल भी नहीं सकतीं, लेकिन सब कात तो अवश्य सकती हैं। एक वहनने मुझसे कहा कि महाराष्ट्रकी वहनें चुस्त हैं, उद्योगी हैं; गुजराती वहनें सुस्त हैं। ऐसा आरोप गुजराती वहनें किस तरह सहन कर सकतीं हैं? यद्यपि मुझे इतना तो स्वीकार करना ही चाहिए कि जितना सूत अवन्तिकावहनने[1] अपनी महाराष्ट्रीय वहनोंके वर्गसे कतवाया है उतना गुजराती वहनोंने काता प्रतीत नहीं होता। यदि हम निष्पक्ष होकर विचार करें तो अन्य अनेक वातोंमें भी महाराष्ट्रकी वहनें श्रेष्ठ सिद्ध होती हैं। तथापि मैं गुजराती ठहरा और गुजराती वहनोंके वारेमें लिख रहा हूँ, इसलिए मैं इतना निष्पक्ष कैसे हो सकता हूँ? निष्पक्ष नीतिकी पद्धतिको मैं स्वीकार करता हूँ फिर भी मैं इस अंकमें गुजराती वहनोंके साथ पक्षपात करते हुए उनसे अनुरोध कर रहा हूँ कि वे अपनेको दक्षिणकी वहनोंके समान ही चुस्त और उद्योगी सिद्ध करें। लेकिन यदि वे मेरी इस दीन प्रार्थनाको नहीं सुनतीं तो मुझे उपर्युक्त महाराष्ट्रीय वहनोंने गुजराती वहनोंपर जो आक्षेप किया है, उसे सच मानना पड़ेगा।

भाई-वहन दोनों ही कातें, लेकिन वहनोंका यह विशेष धर्म है। धनिक वहनोंको अपने कपड़ोंके लिए अथवा परोपकारके निमित्त कातना चाहिए, गरीव वहनोंको आजीविकाके लिए अथवा अन्नपूर्तिके लिए कातना चाहिए। शहरोंमें मुख्यतः इसी तरहकी कताई होगी। शहरोंमें रहनेवाली गरीव वहनें कातनेकी अपेक्षा मजदूरीसे अधिक कमा सकती हैं, अतः उनसे कातनेके लिए कहना व्यर्थ है। उन्हें आवश्यकतासे अधिक कातनेके लिए कहना हानिकारक है। इसके सिवा, कातनेके पीछे जो उद्देश्य है वह भी इससे पूरा नहीं होता।

जीवदया मण्डल

मुझे एक खुली चिट्ठी प्राप्त हुई थी जिसमें वम्वईके जीवदया मण्डलके कार्योंके सम्वन्धमें आरोप लगाये गये थे। यदि वे सब सही हों तो जीवदया मण्डलने जीवदयाका नहीं वल्कि जीवहत्याका कार्य किया है, ऐसा मुझे लगा। इन आरोपोंके सम्वन्धमें कुछ भी लिखनेसे पहले मैं इस वातकी जांच कर रहा था कि उनमें कितनी सचाई है। इसी वीच श्री छगनलाल नानावटी अन्य मित्रोंके साथ मुझसे मिलने आये। मैं तो उन्हें जीवदया मण्डलके मन्त्रीके रूपमें जानता था, इसलिए अपनी आदतके मुताविक मैंने उनपर विनोदमें आक्षेप करना शुरू किया। उन्होंने कहा: "मैं फिलहाल मन्त्री नहीं हूँ" और मुझसे पूछा: "आप जो कह रहे हैं, क्या वह वात मैं मण्डलसे

१. अवन्तिकावहन गोखले, महाराष्ट्रकी सक्रिय कांग्रेस कार्यकर्त्री।

कहूँ?" मैंने कहा: "अवश्य कहिएगा। मैं मन्त्रीसे मिलना भी चाहता हूँ।" मेरा खयाल है कि मैंने श्री छगनलालको उपर्युक्त बातचीतकी कोई भी बात समाचार-पत्रोंमें प्रकाशित करनेकी अनुमति नहीं दी थी। श्री छगनलालने अपनी और मेरी इस बातचीतको जिस तरह समझा उसके अनुसार उसका सारांश समाचारपत्रोंको या तो स्वयं दे दिया अथवा उसकी चर्चा ऐसे स्थानपर की जिससे कि वह समाचारपत्रोंमें आये बिना नहीं रह सकती थी। इससे जीवदया मण्डलके सदस्योंको दुःख हुआ और यह देखकर उन्हें आश्चर्य भी हुआ कि उनकी ओरसे तथ्योंको जाने बिना ही मैंने प्रतिकूल धारणा बना ली। उन्हें आश्चर्य होना ठीक भी था क्योंकि इस तरह धारणा बना लेना मेरी हमेशाकी पद्धतिके विरुद्ध है। मैंने कोई धारणा बनाई भी नहीं थी। श्री छगनलालके समक्ष मैंने जो टीका की थी वह भी 'यदि' पर आधारित थी। उसका यह आशय था कि "उपर्युक्त पत्रमें जो बातें कही गई हैं यदि मण्डलने वैसा ही किया हो तो वह जीवहत्याके समान है।" श्री छगनलाल मुझसे फिर मिल गये हैं और उन्होंने पत्रमें प्रकाशित सारी हकीकतके लिए गहरा खेद प्रकट किया है। मैं मानता हूँ कि उपर्युक्त खुली चिट्ठीमें जीवदया मण्डलपर जो आक्षेप किये गये हैं, उनमें कोई सार नहीं है। मण्डलके मन्त्री लल्लूभाई और अन्य सदस्योंके साथ मेरी इस विषयपर काफी चर्चा हुई है।

बहुमत

लेकिन उपर्युक्त खुली चिट्ठीमें एक बात ऐसी है जो विचारणीय है।

क्या नगरपालिकामें अथवा अन्य किसी सार्वजनिक संस्थामें धर्म सम्बन्धी प्रश्नों-पर बहुमतके द्वारा निर्णय लिया जा सकता है? मान लीजिए कि हिन्दू, मुसलमान और पारसी सदस्य मिलकर बहुमतसे यह प्रस्ताव पास करते हैं कि हिन्दू स्कूलोंमें अन्त्यज बच्चोंको दाखिल किया जाना चाहिए। मान लीजिए कि अगर केवल हिन्दुओंके ही मत लिये जाते तो वह प्रस्ताव रद हो जाता। ऐसी स्थितिमें क्या उक्त प्रस्ताव उचित माना जायेगा? मुझे तो लगता है कि उचित नहीं माना जा सकता; इतना ही नहीं, बल्कि वैसा प्रस्ताव पास करनेसे सुधारकी प्रगतिमें रुकावट पैदा होगी। हिन्दुओंके समाजका सुधार क्या विधर्मियोंके मतोंसे हो सकता है? अस्पृश्यता पाप है, यह ज्ञान अधिकांश हिन्दुओंको ही होना चाहिए। [तभी अस्पृश्यता दूर हो सकती है।] इसमें दूसरोंके मत किसी कामके नहीं हैं, यह बात स्वयंसिद्ध है।

उसी तरह मुसलमानोंको गोरक्षा करनी चाहिए अथवा नहीं, इसका निर्णय मिश्र समाज बहुमतके द्वारा नहीं कर सकता। यह निर्णय तो बहुमतके द्वारा मुसलमानोंको ही करना होगा। जबसे हिन्दुओं और मुसलमानोंके मन एक दूसरेसे खट्टे हो गये हैं तबसे जिस सवालका धर्मसे कोई सम्बन्ध नहीं है वह सवाल भी धर्मसे सम्बन्धित माना जाने लगा है। छोटे बछड़ोंकी हत्या नहीं की जानी चाहिए, इसके लिए धर्म-शास्त्रके आधारकी कोई जरूरत नहीं है। कोई भी धर्म ऐसे आर्थिक नियमोंका विरोधी नहीं होता और न है। लेकिन मुसलमानोंका संशयालु मन इसमें "अँगुली पकड़कर पहुँचा पकड़े" जानेका भय देखता है। इसलिए अगर मैं नगरपालिकाका

सदस्य होऊँ तो बछड़ोंको बचानेके लिए मुझे जबतक मुसलमानोंका बहुमत प्राप्त न हो तबतक — यद्यपि मैं अपने-आपको कट्टर हिन्दू मानता हूँ, हिन्दू-धर्मके सूक्ष्मतम आदेशोंको जाननेकी और उनका सम्पूर्ण पालन करनेकी इच्छा रखता हूँ, गोमाताका पुजारी हूँ और उसकी रक्षामें सदा अपना शरीर अर्पित करनेके लिए तैयार रहता हूँ, तो भी — मैं मुसलमानोंकी रायकी उपेक्षा करके अपना मत नहीं दूँगा। मुझे गायकी रक्षा करनी है, सो मैं कोई मुसलमानोंका विरोध करके नहीं कर सकता, केवल उनके हृदयोंमें प्रवेश करके ही कर सकता हूँ। यदि मैं अपनी बातके पक्षमें उनका हृदय न जीत सकूँगा तो यह सिद्ध करनेके लिए मैं उनपर बलात्कार नहीं करना चाहता, मैं बछड़ोंकी रक्षा करनेवाले आर्थिक कानूनको भी छोड़ दूँगा।

काठियावाड़की खादी

कच्छसे एक खादीधारी दम्पती मुझसे मिलनेके लिए आये। वे दोनों अपने हाथके कते सूतकी बनी खादी पहने हुए थे। कच्छसे चलकर जब उन्होंने काठियावाड़में प्रवेश किया तब उन्हें निराशा हुई। राजकोटमें और अन्य शहरोंमें वे जहाँ भी गये वहाँ उन्हें खादीके कपड़े और खादीकी टोपी पहने शायद ही कोई दिखा और यह देखकर उनका हृदय रो उठा। उनके अनुभवके अनुसार तो खादीका उपयोग काठियावाड़की अपेक्षा कच्छमें कहीं अधिक हो रहा है। काठियावाड़की सुस्तीकी ऐसी ही शिकायत दूसरे स्थानोंसे भी आई है। शिकायत यह है कि 'आप काठियावाड़ी बहुत वाचाल और फितरती हो। कथनीमें शूरवीर लेकिन करनीमें शिथिल हो।' यह सुनकर मेरा सिर शर्मके मारे नीचा हो गया। अब सुनता हूँ कि काठियावाड़ी तो काठियावाड़ी पट्टणी साहबको पराजित करेंगे, अपनी प्रतिज्ञा पूरी करेंगे तथा परिषद्[1] तो अवश्य होगी। कोई-कोई तो कहता है, "पट्टणी साहब हमें जेलमें परिषद् बुलानेसे कैसे रोक सकते हैं?" अतीतके शूरवीर काठियोंके ये शूरवीर मित्र इस तरह ओजस्वी भाषाका प्रयोग तो कर रहे हैं लेकिन मेरे जैसा दूर रह कर दृश्य देखनेवाला काठियावाड़ी यदि इन शूरवीर सत्याग्रहियोंसे पूछनेकी छूट ले सके तो उनसे यह पूछना चाहेगा: "आप सत्याग्रहकी शर्तोंको जानते हैं? आप खादी पहनते हैं? आप कातनेके धर्मका श्रद्धापूर्वक पालन करते हैं? आपने अपने क्रोधको जीत लिया है? आप मन, वचन और कर्मसे सत्याग्रहके लिए आवश्यक अहिंसा-धर्मका पालन करते हैं?" यह प्रश्नावली कोई मैंने पूरी नहीं कर दी है। सत्याग्रह करना चाहिए अथवा नहीं, मैं इसका निर्णय देने नहीं बैठा हूँ। इसका निर्णय तो वल्लभभाई पटेल करेंगे। मैं तो केवल अपने चरखेकी रट लगा रहा हूँ। मेरी दृष्टिमें परिषद् बुलानेकी अपेक्षा चरखेका महत्व कहीं अधिक है। काठियावाड़में आजीविका न मिलनेसे अनेक काठियावाड़ी दूर देशमें जाकर बस जाते हैं। वे पेटकी खातिर काठियावाड़की प्राणवर्धक आबोहवाको त्यागकर बम्बईकी प्राणघातक हवाको पसन्द करते हैं। इस आर्थिक हिजरतको रोकनेका उपाय चरखा है, यह समझते हुए भी

१. काठियावाड़ राजनीतिक परिषद्; यह जनवरी १९२५ में भावनगरमें हुई थी।

कितने काठियावाड़ी इस बातका विचार करते हैं कि काठियावाड़में खादीका उपयोग इतना कम क्यों है? अगर विचार करते भी हैं तो किस हदतक उसपर अमल करते हैं? काठियावाड़में खादीका प्रचार बहुत आसान चीज है। फिर भी वहाँ खादीका प्रचार कम है, इससे क्या प्रगट होता है? मैं यह नहीं कहना चाहता कि कच्छी दम्पतीने जो खबर दी है वह बिलकुल सही है। यह सम्भव है कि उनकी अवलोकन शक्ति मन्द हो अथवा वे केवल उन्हीं स्थानोंपर गये हों जहाँ खादीका पहनावा देखनेमें न आया हो। मैं तो कच्छी दम्पतीकी टीका केवल काठियावाड़ी कार्यकर्त्ताओंकी जानकारीके लिए प्रकाशित करके उन्हें सावधान करना चाहता हूँ और यह टीका यदि सही है तो मैं उससे उठनेवाले प्रश्नोंको उनके सम्मुख रख रहा हूँ।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २७-४-१९२४

३७५. एक सराहनीय उदाहरण

[अप्रैल १९२४ के अन्तमें][1]

लगभग तीन साल पहले श्री भरुचाने श्री बेलगाँववालासे मेरा परिचय करवाते हुए कहा था: "ये बहुत धनवान व्यक्ति हैं और ये खादी-आन्दोलनके लिए शक्ति-स्तम्भ सिद्ध होंगे।" पारसियोंके प्रति मेरे अटूट विश्वाससे अबतक सब लोग वाकिफ हो चुके हैं। परन्तु उस विश्वासके बावजूद, मैंने जब श्री बेलगाँववालाकी ओर देखा तो उस प्रथम दर्शनमें मुझे श्री भरुचा द्वारा दिये गये आश्वासनकी सचाईपर सन्देह हुआ था। लेकिन मुझे अपने उस सन्देहके लिए शीघ्र ही पश्चात्ताप करना पड़ा, क्योंकि श्री बेलगाँववालाने श्री भरुचाकी भविष्यवाणीसे भी ज्यादा करके दिखाया है। उन्होंने खादीके प्रचारपर हजारों रुपये खर्च किये हैं? चरखेके सन्देशमें उन्हें गहरी श्रद्धा है और वे उसके कट्टर अनुयायी बन गये हैं? श्री बैंकर जब श्री बेलगाँववालाको जबरदस्ती अपने साथ कर्नाटक ले गये थे तब उन्हें क्या पता था कि कर्नाटक-यात्राका उनके इस पारसी मित्रपर क्या प्रभाव पड़ेगा? कुछ भी हो, वे कर्नाटकसे चरखेके प्रति इतना उत्साह लेकर लौटे हैं कि उन्होंने मुझे बताया है, वे प्रतिदिन प्रातःकाल एक पवित्र कर्त्तव्यके रूपमें चरखा कातने बैठ जाते हैं। यह सुनकर मुझे सचमुच बहुत खुशी हुई है। चरखा उन्हें आनन्द, शान्ति और साथ ही यह सन्तोष प्रदान करता है कि वे कमसे-कम आधे घंटेके लिए देशके गरीब लोगोंके साथ एकात्म हो जाते हैं। ईश्वर करे कि उनके इस उदाहरणकी छूत सभी धनवान स्त्री-पुरुषोंको लगे।

मो० क० गांधी

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ८७०२) की फोटो-नकलसे।

१. इस लेखकी लेखन तिथिका ठीक पता नहीं चल सका। अप्रैल १९२४ की फोटो-नकलोंमें इस लेखकी फोटो-नकल पाई गई है। अतः अनुमानतः यह अप्रैल १९२४ में ही लिखा गया होगा।

३७६. पत्र : हरिभाऊ उपाध्यायको

[अप्रैल, १९२४ के अन्तमें][1]

भाई हरिभाऊ,[2]

मेरा दुःख कुछ तुम्हारे 'मालव मयूर' के लेखोंसे नहि था। लेख तो मैंने कुछ ऐसे ही देखे। मेरा दुःख सिध्धान्त भेदका था। मेरा अभिप्राय है कि प्रत्येक पुरुष जो कुछ लिख सकता है वह मासिक इ० निकालनेकी कोशिश [में] पड जाता है। उससे बहोत कम लाभ होता है। आपको यदि खास पेगाम मालवाके भाई बहनोको देनेका होता तो मैं समज सकता था। यह सब बारीक बातें हैं। उनका ख्याल न कीजिए। जब मिलेंगे तब ज्यादा बात करेंगे।

बापुका आशीर्वाद

[पुनश्चः]

'हि० न०' में लिखनेकी कोशिश अवश्य करुंगा। 'हि० न०' के लिए लेख कब पहुंचने चाहिए?

सेवाभावके साथ ज्ञानकी आवश्यकता समजता हुं। आप शीघ्रतासे 'मयूर' बंध करनेका प्रयत्न न करें। एक मासमें तो मैं आश्रम पहोंचनेकी उम्मीद रखता हुं। "अनारंभो हि कार्याणाम्" श्लोकका न्याय ईस प्रवृत्तिको लागू होता है।

मूल पत्र (सी० डब्ल्यू० ६०५१) से।
सौजन्य : मार्तण्ड उपाध्याय

३७७. पत्र : हरिभाऊ उपाध्यायको

बृहस्पतिवार [३० अप्रैल, १९२४ के पश्चात्][3]

भाई हरिभाऊ,

तुम्हारा खत मिला। मुजको 'मालव मयुर' देखकर खेद हुआ था। जबतक कोईके पास खास पेगाम नहीं है, नया अखबार न निकाले। यदि बंध हो सकता है तो ईसमें से छुट जाना अच्छा समजता हुं। यदि स्वावलम्बी बन गया है तो रहने दीजिए।

१. गांधीजीने पत्रमें एक महीनेके अन्दर आश्रम आनेका उल्लेख किया है। वे २९ मई, १९२४ को आश्रममें थे।

२. हिन्दी नवजीवनके सम्पादक।

३. देखिए पिछला शीर्षक।

हिन्दी न० जी० के लिए एक लेख ईसीके साथ रखता हूँ। हिन्दी न० जी० मुझे भेजते रहिये।

मोहनदासके आशीर्वाद

मूल पत्र (सी० डब्ल्यू० ६०५२) से।
सौजन्य : मार्तण्ड उपाध्याय

३७८. पत्र : ओताने जाकाताको

[३० अप्रैल, १९२४ के पश्चात्]

प्रिय महोदय,

पत्र[1] और पुस्तकके लिए धन्यवाद।

अगर मेरी इच्छा होती तो भी मेरे पास इतना समय नहीं कि आप जो ब्योरा चाहते हैं, वह आपको दे सकूं।[2] न मेरे पास अपना कोई चित्र है और न मैं चित्र बनवानेके लिए चित्रकारके सामने बैठता ही हूँ। अभी हालके जो चित्र हैं वे सबके-सब हाथके कैमरेसे सहसा लिये गये हैं। सन्दर्भके लिए सबसे अच्छी दो पुस्तकें हैं— 'यंग इंडिया' में लिखे मेरे लेखोंका मद्रासके गणेशन (पता भर दें)[3] द्वारा प्रकाशित संग्रह और मद्रासके ही जी० ए० नटेसन (पता भर दें) द्वारा प्रकाशित मेरे भाषणोंका संग्रह। इस दूसरी पुस्तकमें सत्याग्रहाश्रमके नियम भी दिये गये हैं।[4]

हृदयसे आपका,

[ओताने जाकाता
४५, कोदा माचि, ४ चोमे
ताइहोकु, फॉरमूसा, जापान]

मूल अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ८७५९) की फोटो-नकलसे।

१. यह पत्र ३० अप्रैलको लिखा गया था और श्री जाकाताने इसके साथ "**सेंट-हीरो गांधी**" नामक अपनी पुस्तककी एक प्रति भी भेजी थी। उन्होंने गांधीजीसे ऐसी प्रकाशित सामग्रीके बारेमें जानकारी मांगी थी, जिनसे गांधीजीके जीवन, कार्य और सिद्धान्तोंपर प्रकाश पड़ता हो। श्री जाकाता इन तथ्योंका उपयोग उक्त पुस्तकका संशोधित संस्करण निकालनेके लिए करना चाहते थे।

२. किन्तु लगता है कि महादेव देसाईने श्री जाकाताको यह सारी जानकारी देनेके खयालसे एक विवरण तैयार किया था। इसकी एक फोटो-नकल (एस० एन० ८८३७) उपलब्ध है।

३. स्पष्टतः कोष्ठकोंमें दिये गये शब्द गांधीजीने अपने सचिवको यह निर्देश देनेके लिए लिखे थे कि वहां पते भर दिये जायें।

४. पत्रके ऊपर गांधीजीने लिख रखा है: "नकल करके मेरे हस्ताक्षर करवा लें।" स्पष्टतः यह प्रति कार्यालयके लिए थी।

३७९. जेलके अनुभव – ३

कुछ भयंकर परिणाम

इस अध्यायमें मैं अधिकारियोंकी इस धारणाका विवेचन करना चाहता हूँ कि उनका कर्तव्य कैदियोंके स्वास्थ्यकी देखभाल करने और उन्हें आपसमें लड़ने या भाग जानेसे रोकनेतक ही सीमित है। मेरे खयालसे यह कहना अतिशयोक्ति नहीं है कि जेलें मवेशीखाने ही हैं जिनका प्रबन्ध अच्छा भी हो सकता है और बुरा भी। जो अधीक्षक कैदियोंके लिए अच्छे भोजनकी व्यवस्था कर देता है और बिना कारण दण्ड नहीं देता वह सरकार द्वारा और कैदियों द्वारा भी आदर्श अधीक्षक माना जाता है। दोनों ही पक्ष इससे अधिककी अपेक्षा नहीं करते। यदि कोई अधीक्षक कैदियोंके प्रति किये जानेवाले व्यवहारमें वस्तुतः मानवीय भावनाको दाखिल करने लगे, तो बहुत सम्भव है कि कैदियोंको कोई गलतफहमी हो जाये और सरकार भी उसके कार्य को बुरा नहीं तो कमसे-कम अव्यावहारिक मानकर उसका अविश्वास करने लगे।

अतः कारागार चारित्रिक पतनके और दुर्व्यसनोंके पनपनेके अड्डे हो गये हैं। उनमें रहते हुए कैदी सुधरता नहीं है। उनमें से अधिकांश तो पहले से भी बुरे हो जाते हैं। संसारकी जनता द्वारा सर्वाधिक उपेक्षित संस्था कदाचित कारागार ही है। नतीजा यह है कि उनकी व्यवस्थापर जनताका नियन्त्रण एक तो होता ही नहीं है और यदि होता भी है तो बहुत कम। जब थोड़ी-बहुत ख्याति प्राप्त कोई राजनैतिक बन्दी कारागारमें पहुँचता है तब जनतामें यह जाननेकी उत्सुकता पैदा हो जाती है कि दीवारोंके उस पार भीतर क्या हो रहा है।

कैदियोंका जो वर्गीकरण है, उसमें कैदियोंके हितकी अपेक्षा प्रशासनके हितका अधिक खयाल रखा जाता है। उदाहरणार्थ, हम देखते हैं कि पक्के अपराधी तथा ऐसे मनुष्य जिन्होंने कोई नैतिक नहीं, केवल मामूली कानून-भंगका अपराध किया है, एक ही अहाते, एक ही खण्ड, यहांतक कि एक ही कोठरीमें साथ-साथ रखे जाते हैं। भिन्न-भिन्न प्रकारके चालीस या पचास कैदी लगातार महीनों एक ही कोठरीमें बन्द किये जाते हैं — आप जरा इस स्थितिकी कल्पना तो करें। एक शिक्षित मनुष्य, जो मुहर लगे हुए टिकटका उपयोग करनेपर शासकीय दृष्टिसे स्टाम्प अधिनियमके अन्तर्गत दण्डित किया गया था, उसी ब्लॉकमें रखा गया था जिसमें खतरनाक माने जानेवाले पक्के अपराधी रखे गये थे। खूनियों, अपहरणकर्त्ताओं, चोरों और मामूली कानून-भंगके अपराधियोंका एक ही जगह ठूँस दिया जाना भी रोजकी बात नहीं है। कई काम ऐसे हैं जिन्हें करनेके लिए कई आदमी जरूरी होते हैं, जैसे रहट खींचना। ऐसे कामोंमें हट्टे-कट्टे आदमी ही लगाये जा सकते हैं। एक बार कुछ अत्यन्त भावुक व्यक्ति एक ऐसी टुकड़ीमें रख दिये गये जिस टुकड़ीके अधिकांश कैदी ऐसी अशिष्ट भाषाका व्यवहार करते रहते थे, जिसे कोई भला आदमी सुन भी नहीं सकता। जो लोग अश्लील भाषाका प्रयोग करते

हैं, उन्हें उसमें कोई अश्लीलता नहीं लगती। किन्तु ऐसी भाषा जब किसी भावुक व्यक्तिके सम्मुख प्रयुक्त की जाती है, तब वह उसे बहुत अखरती है। ये टुकड़ियाँ कैदी वार्डरोंके अधीन काम करती हैं। ये कैदी वार्डर काम लेते समय कैदियोंको भद्दीसे-भद्दी गालियाँ देते हैं। और काफी क्रुद्ध हो जानेपर तो वे डंडेका उपयोग करनेसे भी नहीं चूकते। यह कहना अनावश्यक है कि ये दोनों बातें अनधिकृत ही नहीं गैरकानूनी भी हैं। किन्तु मैं ऐसी गैरकानूनी बातोंकी खासी बड़ी सूची प्रस्तुत कर सकता हूँ, जो कारागारोंमें अधिकारियोंकी जानकारीमें और कभी-कभी उनके संकेतसे भी होती हैं। मैंने ऊपर जिस भावुक कैदीका उल्लेख किया है वह गन्दी भाषाको बरदाश्त नहीं कर सका। अतः उसने वैसी भाषाका प्रयोग बन्द न किये जानेतक उस टुकड़ीमें काम करनेसे इनकार कर दिया। मेजर जोन्सके तत्काल हस्तक्षेप करनेसे वह विषम स्थिति टली, किन्तु यह राहत क्षणिक ही सिद्ध हुई। ऐसी घटनाको फिर घटित न होने देनेकी शक्ति मेजर जोन्समें नहीं थी; क्योंकि जबतक कैदियोंका वर्गीकरण किसी नैतिक मानदण्डके अनुसार तथा प्रशासकीय सुविधाकी अपेक्षा उनकी मानवीय आवश्यकताओंके खयालसे नहीं होता, तबतक ऐसी घटनाओंकी पुनरावृत्ति कदापि नहीं रोकी जा सकती।

हमारा खयाल था कि कारागारमें, जहाँ प्रत्येक कैदी दिन-रात निगरानीमें रहता है और जहाँ वह वार्डरकी निगाहसे कभी ओझल नहीं हो पाता, अपराध सम्भव नहीं होते होंगे। किन्तु दुर्भाग्यवश वहाँ सभी तरहके नैतिक अपराध किये जाते हैं — इतना ही नहीं वे निःशंक होकर किये जाते हैं। छोटी-मोटी चोरियों, धोखेबाजियों और मामूली मारपीट अथवा संगीन हमलोंका उल्लेख मैं नहीं करूँगा किन्तु मैं यह अवश्य कहना चाहता हूँ कि वहाँ अप्राकृतिक अपराध तक होते हैं। मैं इसका ब्योरा देकर पाठकोंको व्यथित नहीं करना चाहता। कारावासके अपने अनेक अनुभवोंके बावजूद मेरा खयाल यह नहीं था कि कारागारोंमें ऐसे अपराध भी होते होंगे। किन्तु यरवदा जेलमें एकाधिक बार ऐसे मामले सामने आये जिनके कारण मुझे बड़ा आघात लगा। बल्कि अप्राकृतिक अपराधोंके होते रहनेकी बात जानकर तो मुझे सबसे बड़ा आघात पहुँचा था। जिन अधिकारियोंने मुझसे इनके बारेमें बात की उन सबने यही कहा कि वर्तमान प्रणालीमें इन अपराधोंको रोकना असम्भव है। जिस व्यक्तिको इस अपराधका शिकार बनना पड़ता है प्रायः इसमें उसकी सहमति नहीं होती। मैं विचारपूर्वक कहता हूँ कि ऐसे अपराधोंको रोकना सम्भव है, बशर्ते कि कारागारोंके प्रशासनमें मानवीयताका समावेश किया जाये, और उसे सर्वसाधारणकी चिन्ताका विषय बनाया जा सके। भारतके कारागारोंमें कैदियोंकी संख्या कई लाख अवश्य होगी। सार्वजनिक कार्यकर्त्ताओंको इस बातकी फिक्र होनी चाहिए कि उनपर क्या बीतती है। आखिर दण्डका उद्देश्य सुधार है। ऐसा विश्वास किया जाता है कि विधान मण्डल, न्यायाधीश और कारावासके अधीक्षक आदि यह अपेक्षा करते हैं कि सजाओंसे अपराधोंकी प्रवृत्ति घटेगी और ऐसा उससे केवल शरीर और मनको होनेवाले कष्टके फलस्वरूप नहीं होगा बल्कि उस पश्चात्तापके फलस्वरूप भी होगा जो दीर्घकाल तक एकान्त पाकर आवश्यक रूपसे उत्पन्न होता है। किन्तु तथ्य यह है कि सजाओंसे कैदी और भी पशु-तुल्य बन जाते हैं। कारागारोंमें उन्हें कभी पश्चात्ताप करने अथवा सुधरनेका अवसर नहीं मिलता।

सहृदयताका वहाँ अभाव है। यह ठीक है कि प्रति सप्ताह वहाँ धार्मिक उपदेशक जाते हैं। मुझे इन सभाओंमें से किसीमें भी भाग लेनेकी अनुमति नहीं दी गई; किन्तु मैं जानता हूँ कि यह बहुधा ढकोसला-भर होता है। मैं यह नहीं कहना चाहता कि उपदेशक ढोंगी होते हैं। किन्तु सप्ताहमें एक बार कुछ मिनटोंकी धार्मिक चर्चाका उन लोगोंपर कोई प्रभाव नहीं पड़ सकता, जिन्हें साधारणतः अपराध करनेमें कोई बुराई नहीं दिखाई देती। आवश्यक यह है कि ऐसे सहानुभूतिपूर्ण वातावरणका निर्माण किया जाये, जिसमें कैदी अनजाने ही बुरी आदतें छोड़ें और अच्छी आदतें सीखें।

किन्तु जबतक कैदियोंको बहुत अधिक उत्तरदायित्वके कार्य सौंपनेकी प्रथा कायम है, तबतक ऐसा वातावरण उत्पन्न होना असम्भव है। इस पद्धतिका बदतर भाग है कैदियोंको अधिकारियोंकी तरह नियुक्त करना। बहुत लम्बी सजा पाये हुए कैदी ही ऐसे पदोंपर नियुक्त होते हैं। अतः ये ऐसे ही लोग होते हैं जिन्हें किसी अत्यन्त गम्भीर अपराध करनेपर सजा दी गई होती है। बहुधा क्रूर स्वभाववाले कैदी वार्डर बनाये जाते हैं। वे अत्यन्त ढीठ होते हैं और आगे आनेमें सफल हो जाते हैं। कारागारोंमें जितने भी अपराध होते हैं लगभग उन सभीमें इनका हाथ होता है। ऐसे ही दो वार्डरोंमें एक बार सबके देखते लड़ाई हुई और उनमें से एक व्यक्ति मारा गया। लड़ाईका कारण यह था कि एक ही कैदी उन दोनोंकी अप्राकृतिक कामवासनाका शिकार था। सभी जानते थे कि जेलमें क्या चल रहा है, किन्तु अधिकारी केवल इतना ही हस्तक्षेप करते रहे जितनेसे लड़ाई अथवा खून-खराबी भर रुकी रहे। ये कैदी-अधिकारी ही दूसरे कैदियोंको किस कामपर लगाया जाये इसकी सिफारिश करते हैं। ये ही उनके कामकी देखरेख भी करते हैं। वे अपने अधीन कैदियोंके सद्व्यवहारके लिए भी उत्तरदायी होते हैं। वास्तवमें स्थायी अधिकारी जो-कुछ कहना या करना चाहते हैं वह इन्हीं कैदियोंके माध्यमसे कहा और कराया जाता है, जिन्हें अधिकारीकी प्रतिष्ठा सौंप दी गई होती है। मुझे आश्चर्य इस बातपर है कि ऐसी प्रथाके अन्तर्गत वास्तवमें जितनी बुरी हालत अब है उससे भी ज्यादा बुरी क्यों नहीं हुई। इससे मेरे समक्ष यह बात और प्रत्यक्ष हो गई कि मानव किस प्रकार एक दूषित सामाजिक व्यवस्थाकी अपेक्षा उच्चतर पाया जाता है और एक अच्छी समाज-व्यवस्थाकी अपेक्षा निम्नतर। लगता है, मनुष्य स्वभावसे ही मध्यम मार्गका अनुसरण करता है।

रसोई बनानेका सारा काम भी कैदियोंको सौंप दिया जाता है। नतीजा यह होता कि एक तो भोजन लापरवाहीके साथ बनाया जाता है और नवा-सवाया पक्षपात चलता है। कैदी ही आटा पीसते हैं, सागभाजी काटते हैं, भोजन बनाते हैं और परोसते हैं। जब-जब खाना कम और खराब होनेकी शिकायत की गई, तो सदा एक ही उत्तर मिला, इसका उपाय कैदियोंके ही हाथोंमें है, क्योंकि वे अपना भोजन आप ही बनाते हैं; मानो वे सब एक-दूसरेके सगे हों और पारस्परिक उत्तरदायित्वको समझते हों। एक बार जब मैंने नापके सहारे किसी उचित निष्कर्षतक पहुँचनेका आग्रह किया तब मुझसे यह कहा गया कि कोई भी शासन इतना खर्च बरदाश्त नहीं कर सकता। उस समय भी मैंने इसे ठीक नहीं माना और अधिक गौर करनेपर मेरा यह विचार पुष्ट ही हुआ है कि यदि व्यवस्थित रूपसे काम किया जाये तो कारागारोंका प्रशासन

आत्म-निर्भर बनाया जा सकता है। मैं एक अलग अध्यायमें कारागारोंकी आर्थिक व्यवस्थाके विवेचनकी बात सोच रहा हूँ। फिलहाल मुझे यही कहकर सन्तोष करना होगा कि नैतिक दुराचारोंका विचार करनेमें खर्चका प्रश्न संगत नहीं माना जा सकता।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १-५-१९२४

३८०. टिप्पणियाँ

अपराधोंकी सूची

१. तिलक स्वराज्य-कोषमें चन्दा देना;
२. असहयोगियोंसे सम्बन्ध रखना;
३. असहयोगी अखबारोंका ग्राहक होना;
४. असहयोगका पक्ष लेना;
५. खद्दर पहनना।

मद्रासके पोस्टमास्टर-जनरलने अप्रैल, १९२२ में इन बातोंको सचमुच अपराध माना और सिर्फ इन्हींके आधारपर डाक-विभागके श्री सुब्बाराव नामक एक कर्मचारीको, जो १७ सालसे नौकरीमें थे, बर्खास्त कर दिया। पाठक ऐसा न समझें कि अब श्री सुब्बाराव फिर अपने पदपर बहाल कर दिये गये हैं। ऐसा कुछ भी नहीं हुआ है। बेचारे बर्खास्त सरकारी नौकरने वाइसरायके पास अर्जी भेजी और ३ अक्तूबर, १९२३को उसे यह उत्तर मिला कि परमश्रेष्ठने "आपकी अर्जी नामंजूर कर दी है।" बर्खास्तगीके हुक्मनामेमें उनके अभियोग उसी रूपमें बताये गये हैं जिस रूपमें मैंने उन्हें ऊपर गिनाया है। हर अभियोगके बाद उसका वर्णन किया गया है। उदाहरणके लिए तिलक स्वराज्य-कोषमें चन्दा देनेके बारेमें कहा गया है कि यह चन्दा नाबालिग पुत्रीके नामसे दिया गया था और चन्देकी रकम ५ रुपये थी। सरकारके मनमें कितना जहर भिद गया है इसका इससे बड़ा उदाहरण और क्या हो सकता है? ऐसी बर्खास्तगीका तर्कसंगत परिणाम तो यही होना चाहिए कि ऐसा नियम बना दिया जाये जिससे विधान-मण्डलके किसी भी सदस्यका खद्दर पहनना अपराध बन जाये। फिर तो कलमकी एक लकीरसे ही सारे देशमें शान्ति स्थापित हो जायेगी। इससे सरकार भी सुखी हो जायेगी और कौंसिल-प्रवेशके समर्थक और उसके विरोधी भी सुखी हो जायेंगे। लेकिन जबतक सुब्बाराव-जैसे लोगोंको हरएक आदमीके विरुद्ध सच्ची शिकायत रहती है तबतक शान्ति स्थापित नहीं हो सकती। सरकारके खिलाफ उनकी शिकायत यह है कि वह नित नये अपराध गढ़ती जा रही है और कौन्सिल-प्रवेशके पक्षधरोंके खिलाफ उनकी शिकायत यह है कि वे स्वयं तो बड़े आदमी होनेके क़ारण दण्ड-भयसे मुक्त रहकर खद्दर पहन सकते हैं लेकिन श्री सुब्बाराव-जैसे लोगोंको किसी तरह राहत नहीं दिला सकते। और कौन्सिल-प्रवेशके विरोधियोंके खिलाफ उनकी

शिकायत यह है कि वे खद्दरको सर्वव्यापी रूप देकर स्वराज्यकी माँगको दुर्निवार क्यों नहीं बना देते।

हिंसा क्या है?

'यंग इंडिया' (१०-४-१९२४) में प्रकाशित मेरे "असहयोग हिंसाका तरीका नहीं है" शीर्षक लेखके सम्बन्धमें, एक पत्र-लेखक हिंसाके उपादानोंपर विचार करते हुए कहता है:

> असली सवालका सम्बन्ध उचित या अनुचित कारणोंसे नहीं है। कोई काम हिंसात्मक है या नहीं, इसका निर्णय वह काम जिन कारणोंसे किया जाता है, उनके आधारपर नहीं हो सकता, बल्कि इसका आधार यह होगा कि जिस व्यक्तिके खिलाफ वह किया गया है उसपर उसका क्या प्रभाव पड़ता है और आमतौरपर इसके क्या नतीजे निकलते हैं। हिंसात्मक और जो हिंसात्मक नहीं हैं, दोनों किस्मके कार्योंका कोई उचित कारण हो भी सकता है और नहीं भी हो सकता। अगर किसी न्याय-सम्मत उद्देश्यके लिए किसी उपायको उचित माना जा सकता है तो वह उपाय अनाक्रामक ढंगका ही क्यों हो, आक्रामक ढंगका क्यों न हो? अगर उस उद्देश्यकी प्राप्तिके लिए असहयोग करना उचित हो सकता है तो तलवार उठाना भी उचित हो सकता है। नैतिकताकी वह कौनसी सूक्ष्म भावना है जो हमें असहयोगको अपनाने और तलवारको ठुकरानेकी प्रेरणा देती है? इस सवालके उत्तरमें हमसे कहा जाता है कि तलवारका प्रयोग हिंसाका तरीका है। लेकिन ऐसा क्यों? कारण सीधा-सा है कि इससे विरोधीको पीड़ा और कष्ट होता है। क्या असहयोगसे नहीं होता? क्या दोनोंमें कोई भेद है? एकमात्र भेद यह है कि तलवारके वारसे शरीरके अन्दर चलनेवाली उन शरीर-गत, प्राकृतिक प्रक्रियाओंमें व्यवधान पैदा हो जाता है जो जीवनको चलाती और उसकी रक्षा करती हैं और इसके फलस्वरूप शरीरको कष्ट और पीड़ा पहुँचती है, जब कि असहयोग शरीरके बाहर आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक क्षेत्रोंमें काम करनेवाली उन प्रक्रियाओंमें व्यवधान पैदा करके पीड़ा पहुँचाता है जो जीवनके संरक्षणमें उतना ही योग देती हैं जितनी कि शरीरगत प्रक्रियाएँ।

सकता है लेकिन ऐसा नहीं कहा जायेगा कि मैंने उसके साथ हिंसात्मक व्यवहार किया है। लेकिन अगर मैं न्याय करानेके लिए उसपर प्रहार कर बैठूं तो माना जायेगा कि मैंने हिंसाके बलपर उसे न्याय करनेको मजबूर किया।

सिन्धमें हिन्दुओं और मुसलमानोंके बीच तनाव

डा० चोइथरामने मुझे अखबारोंकी कुछ कतरनें भेजी हैं। इन कतरनोंसे, सिन्धमें जो संकट पनपता लग रहा है, उसका काफी-कुछ आभास मिल जाता है। मैं इस मामलेसे सम्बन्धित तथ्योंपर विचार नहीं करना चाहता। पंच-फैसले द्वारा हिन्दू-मुस्लिम झगड़ा सुलझानेकी कोशिश की गई थी। डा० चोइथराम और सेठ हाजी अब्दुल्ला हारूनने अखबारोंमें अपना मत व्यक्त कर दिया था। सेठ हाजी अब्दुल्ला हारून कहते हैं कि हृदय-परिवर्तनके बिना पंच-फैसला नहीं हो सकता। कारण जो भी रहा हो, लेकिन पंच-फैसला न हो पाना एक दुर्भाग्यपूर्ण बात है। लेकिन सारे मामलेका सबसे दुखद पहलू यह है कि हिन्दू ऐसा महसूस नहीं करते कि वे निरापद हैं और पुलिस प्रभावित क्षेत्रोंमें चौकसी कर रही है। अगर यह सच है तो कहीं कोई बड़ी खराबी जरूर होगी। गलती चाहे जिसकी हो, लेकिन दोनों पक्षोंके बीच इतनी बात तो तय होनी ही चाहिए कि कानूनको कोई भी अपने हाथमें नहीं लेगा। अगर वे पंच-फैसले द्वारा अपना विवाद हल नहीं कर पाते तो न्यायालयकी शरण ले सकते हैं, लेकिन अगर एक पक्ष दूसरेको डराता-धमकाता रहा तो इसका परिणाम अन्ततः रक्तपात ही हो सकता है। यह तो धर्मका रास्ता नहीं है।

मैं अपने हिन्दू और मुसलमान भाइयोंको विश्वास दिलाता हूँ कि मैं हिन्दू-मुस्लिम एकताके सवालपर अपने विचार व्यक्त करनेके लिए अत्यन्त व्यग्र हूँ। मैं सिर्फ उन मित्रोंकी प्रतीक्षा कर रहा हूँ जिन्होंने मुझसे कहा है कि जबतक इस सवालपर उनसे मेरी बातचीत नहीं हो जाती तबतक मैं चुप ही रहूँ। मुझे प्रतिदिन तनावकी जो खबरें मिलती रहती हैं, उनसे प्रकट होता है कि देशके सामने जो सबसे बड़ा सवाल है वह अन्य कोई नहीं, हिन्दू-मुस्लिम एकताका ही है। आशा है, इस अत्यन्त असन्तोषजनक स्थितिसे निकलनेका कोई रास्ता मिल जायेगा।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १-५-१९२४

३८१. भूखसे ग्रस्त मोपले

नीचे श्री याकूब हसनसे प्राप्त एक पत्र दिया जा रहा है:

मोपलोंके कष्ट-निवारणके सम्बन्धमें मैंने जो वक्तव्य अभी-अभी समाचार-पत्रोंमें भेजा है, उसकी प्रतिलिपि साथ भेज रहा हूँ। आपको यह जानकर निस्सन्देह दुःख होगा कि उन हजारों मोपलोंके, जो या तो विद्रोहमें मारे गये या जिन्हें बादमें गोली मार दी गई या फाँसीपर चढ़ा दिया गया था, जो लम्बा कारावास भोग रहे हैं, स्त्री-बच्चे लगभग भूखों मर रहे हैं।

मोपलोंकी पूरी कौम ही सदासे गरीब रही है। उनमें से अधिकतर जेन्मी नामधारी छोटे भूस्वामियोंकी जो लगभग सभी हिन्दू हैं, जमीनें जोतते थे। और जेन्मी हमेशासे अपने जुल्मके लिए बदनाम हैं। इनके विरुद्ध मोपलोंकी अरसेसे चली आती शिकायतें कई बार कानून बनाकर स्थितिको सुधारनेके प्रयत्नोंके बावजूद दूर नहीं हुईं। विद्रोहने दारिद्र्यग्रस्त मोपला जातिको और भी गहरी खाईमें ढकेल दिया है। चूंकि मोपलोंने विद्रोहके दौरान हिन्दुओंका बलपूर्वक धर्मपरिवर्तन भी किया, अतः मोपला जाति साधारणतः सभी हिन्दुओंके और विशेषतः जेन्मियोंके रोषकी पात्र बन गई है और अभीतक सरकारसे जमकर लोहा लेते रहनेके कारण सरकारके मनमें भी उसके लिए कोई प्रेम नहीं है। हिन्दुओंने मोपलोंसे फौजके जरिये बदला लिया है और फौजने मोपलोंके सारे घर और मसजिदें जला दी हैं। हजारों मोपले मारे गये, गोलीसे उड़ा दिये गये या फाँसीपर लटका दिये गये। कितने ही जन्म-भरके लिए जेल भेज दिये गये और हजारों अभी कारागारोंमें पड़े सड़ रहे हैं। जिन्हें कारावास नहीं दिया गया है उनमें से कितने ही हजार लोग दो वर्षके कारवासके बदले माहवारी किस्तोंमें जुर्माना भुगत रहे हैं। पुलिस हमेशा इन्हें दबाती रहती है। जो थोड़ेसे लोग मौत, कारावास या जुर्मानेसे बचे हैं, वे भी कुछ अधिक अच्छी स्थितिमें नहीं हैं। वे डरके मारे होश-हवास खो बैठे हैं और निरन्तर आतंककी अवस्थामें रह रहे हैं। मैंने दूरस्थ स्थानोंमें जाकर कुछ लोगोंसे बातचीत की। यद्यपि मैंने उन्हें आश्वासन दे दिया कि मैं उनका मित्र हूँ और यथासम्भव उनकी मदद करनेके उद्देश्यसे ही यहाँ आया हूँ; किन्तु फिर भी मैं उनमें से कुछ लोगोंका डर दूर नहीं कर सका।

दक्षिण मलाबारमें मोपलोंकी सामान्य स्थिति ऐसी ही है। पति अथवा पिताकी मृत्यु अथवा कारावासके कारण जो स्त्रियाँ निराश्रित हो गई हैं उनकी हालत और भी बुरी है। भारतके और भागोंकी अपनी बहनोंके समान मोपला

स्त्रियाँ पर्दा नहीं करतीं। वे चतुर एवम् परिश्रमी होती हैं और सदा अपने परिवारके पुरुषोंके साथ खेतों आदिमें काम करती हैं। वे इस समय बड़ी कठिनाईमें हैं, क्योंकि ऐसे समयमें जब कि कुटुम्बके भरण-पोषणका भार उनके कन्धोंपर आ पड़ा है और वे विषम परिस्थितियोंके कारण अपने परिवारोंके लिए अकेली रोटी कमानेवाली रह गई हैं, उन्हें ऐसा कोई काम नहीं मिल रहा है जिससे उन्हें गुजारेके लायक मजदूरी मिल सके। यद्यपि मोपले सदासे गरीब हैं, तथापि उन्होंने भीख कभी नहीं माँगी, किन्तु अब मोपला स्त्रियाँ और बच्चे फटे चीथड़े पहने सड़कोंपर प्रायः भीख माँगते दिखाई दे जाते हैं। रमजानमें, जो खैरात देनेका महीना है, गरीब मुसलमान औरतें भीख माँगती हैं। मैं देखता हूँ कि मद्रासमें इन औरतोंमें लगभग आधी स्त्रियाँ मोपला हैं और मुझे मालूम हुआ है कि मद्रास अहातेके सभी बड़े शहरोंमें यही बात है।

जहाँतक बच्चोंका सवाल है, उनकी अवस्थाकी कल्पना ही की जा सकती है, उसका वर्णन करना कठिन है।

अतः यदि मोपला जातिको नैतिक ही नहीं वरन् भौतिक बरबादीसे भी बचाना है तो कुछ करना आवश्यक है और तुरन्त ही। मोपला अपने सारे दोषों और त्रुटियोंके बावजूद शानदार आदमी होता है। उसमें अरबी बाप-दादोंका शौर्य, साहस तथा जीवट और माता पक्षसे प्राप्त शराफत तथा उद्योगशीलता भी होती है। उसके मजहबी जोशकी तो कद्र ही नहीं की गई। उसे लेकर गलतफहमी ही अधिक फैली है। वह साधारणतः शान्तिप्रिय होता है, किन्तु वह अपने आत्मसम्मानपर कोई प्रहार अथवा अपने धर्मका कोई अपमान सहन नहीं कर सकता। दुर्भाग्यपूर्ण परिस्थितियोंने, जिनके कारणोंपर विचार करना मैं इस समय आवश्यक नहीं समझता, उसे बरबस विद्रोही बना दिया और उसने वही किया है जो कोई भी अन्य हिन्दू, मुसलमान अथवा ईसाई उन्हीं परिस्थितियोंमें -- अनिवार्य संकटकी वैसी ही अवस्थामें -- आत्मरक्षा एवम् आत्महितकी खातिर करता। उसने अपने कियेका फल भोग लिया है। क्या उसके पापोंका दण्ड उसकी पत्नी और बच्चोंको भी देना उचित है?

महात्माजी, मैं यह मामला आपके सामने पेश कर रहा हूँ, क्योंकि आप भारतीय राष्ट्रके प्रमुख हैं, तथा हिन्दू और मुसलमान दोनों मिलकर और अलग-अलग भी, आपको अपना नेता मानते हैं। इस भारी समस्याको कैसे हल किया जाये, यह मैं नहीं कहूँगा। ईश्वरकी इच्छा होगी तो आप अपनी बुद्धिमत्ता तथा अपनी सहृदयतासे स्वयं ही पीड़ित मोपला स्त्रियों और बच्चोंको जीवनदायिनी सहायता देनेका मार्ग ढूँढ़ निकालेंगे। आपकी अपील हिन्दुओंको सब-कुछ भूलकर उन्हें क्षमा करने और हृदयकी ऐसी विशालता दिखलानेकी प्रेरणा देगी जिसके बिना कोई राष्ट्र महान् नहीं हो सकता, साथ ही आपकी अपीलसे मुसलमान भी अपने प्रति अपना कर्त्तव्य और अधिक अच्छी तरह

समझ जायेंगे। मुझे विश्वास है कि सभी प्रमुख व्यक्ति, चाहे वे किसी जाति, धर्म अथवा राजनैतिक विचारधाराके हों, मानवीयताके इस कार्यमें सर्वसामान्य लोगोंको ठीकसे समझानेमें आपका साथ देंगे।

मेरी अपील तो हिन्दुओंसे ही हो सकती है। कह नहीं सकता कि दोनों समाजोंके बीच वर्तमान तनावको देखते हुए वह किस हदतक कामयाब होगी। किन्तु मुझे नतीजेकी बात नहीं सोचनी है। यदि मैं श्री याकूब हसनका पत्र — जिससे मुझे सहानुभूति है — प्रकाशित न करूँ तो मैं कायरताका दोषी हूँगा। मैं जानता हूँ कि १९२१ में मलबारमें मोपलोंने अपने हिन्दू पड़ोसियोंके साथ जैसा व्यवहार किया था, उसके कारण हिन्दू दुखी हैं। मैं जानता हूँ कि हजारों हिन्दुओंके खयालसे उस समय सर्व-साधारण मुसलमान समाजने मोपलोंके अत्याचारोंकी जितनी तीव्र निन्दा करनी उचित थी उतनी तीव्र निन्दा नहीं की थी। मैं जानता हूँ कि श्री याकूब हसनके इस व्यापक कथनपर कि मोपलाओंने वही किया है, जो कोई भी हिन्दू, मुसलमान अथवा ईसाई, उन्हीं परिस्थितियोंमें, वैसी ही अनिवार्य संकटकी अवस्थामें आत्मरक्षा तथा आत्महितकी खातिर करता, (मेरी तरह) अनेक लोगोंको आपत्ति होगी। कोई भी परिस्थिति तथा कोई भी उत्तेजना, चाहे वह कितनी ही गम्भीर रही हो, ऐसी नहीं हो सकती जिसमें बलपूर्वक धर्मपरिवर्तन करना न्याययुक्त माना जा सके। मैं आशा करता हूँ कि श्री याकूब हसन इन्हें भी मोपलोंके क्षम्य कार्योंमें शामिल करना नहीं चाहते।

किन्तु मोपलों तथा शेष भारतीय मुसलमानोंके तत्कालीन अथवा बादके आचरणके विरुद्ध हिन्दुओंका जो कुछ कहना है वह साराका-सारा सच हो तो भी मुझे इसमें कोई सन्देह नहीं है कि यदि हिन्दू अपने पूर्वग्रहोंके कारण अपने देशवासी पुरुषों और स्त्रियोंके प्रति, भूखों मरते हुए मोपलोंके प्रति, उदारता नहीं दिखायेंगे, तो यह ईश्वरके दरबारमें पाप गिना जायेगा। भावी सन्ततिके विषयमें न्याय करते समय हमें उनके पूर्वजोंके कृत्योंके बारेमें नहीं सोचना चाहिए। मोपलोंने धर्म-विरुद्ध आचरण किया और उसका काफी फल भी भोग लिया। फिर हिन्दुओंको यह भी याद रखना चाहिए कि स्वयं उन्होंने भी प्रतिशोधका कोई अवसर हाथसे नहीं निकलने दिया है। बहुतोंने मौका पाते ही बदला लेनेमें कोई कसर नहीं रखी।

मेरी बात बहुत ही सीधी-सादी है। जिनके रहने और खानेका ठिकाना नहीं बचा उनके प्रति विरोधकी सारी बात बन्द कर दी जानी चाहिए। आजसे कुछ पीढ़ियों बाद, हमारे सारे दुष्कृत्य लोगोंके खयालसे उतर जायेंगे और भावी सन्तति हमारे पारस्परिक प्रेम और सद्भावके छोटेसे-छोटे कामोंकी याद बनाये रखेगी। अत: मैं प्रत्येक हिन्दू पाठकसे, जो भूखसे ग्रस्त अपने मोपला भाइयों, बहनों तथा उनके बच्चोंके प्रति स्नेह और भाईचारेका हाथ बढ़ाना चाहता है, प्रार्थना करता हूँ कि वह अपनी सामर्थ्यके अनुसार धन मेरे पास भेजे; मैं यह प्रयत्न करूँगा कि मोपलोंमें जो सबसे ज्यादा जरूरतमन्द हैं, यह रकम उचित रीतिसे उन्हींके बीच वितरित की जाये।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १-५-१९२४

३८२. वाइकोम सत्याग्रह

वाइकोम सत्याग्रहकी ओर जनताका ध्यान बहुत अधिक आकर्षित हुआ है, यद्यपि सत्याग्रह एक छोटे-से क्षेत्रमें ही हो रहा है, फिर भी उससे उत्पन्न इतनी समस्याएँ सामने खड़ी हैं कि मैं पाठकोंका ध्यान बार-बार उसकी ओर आकर्षित करनेके लिए कोई कैफियत देना आवश्यक नहीं समझता।

मुझे ऐसे अनेक महत्त्वपूर्ण एवं विचारपूर्ण पत्र प्राप्त हुए हैं, जिनमें मेरे द्वारा किसी भी प्रकारसे उस सत्याग्रहको प्रोत्साहन देनेका विरोध किया गया है। एक पत्रमें तो मुझसे यहाँतक आग्रह किया गया है कि मैं अपने समूचे प्रभावका उपयोग करके उसे बिलकुल बन्द करा दूं। खेद है कि मैं इन सब पत्रोंको प्रकाशित करनेमें असमर्थ हूँ; किन्तु मैं यहाँ इन सभी पत्रोंमें उठाये गये अथवा किसी अन्य प्रकारसे जानकारीमें लाये गये सभी प्रश्नोंपर विचार करनेकी कोशिश करूँगा।

सबसे पहला जो पत्र मैं ले रहा हूँ उसमें श्री जॉर्ज जोजेफ द्वारा, जो ईसाई हैं, नेता और आयोजकके रूपमें श्री मेननका स्थान लेनेके विरुद्ध आपत्ति की गई है। मेरी विनम्र रायमें यह आपत्ति पूर्णतः उचित है। ज्यों ही मैंने सुना कि श्री जोजेफ नेतृत्व करनेके लिए आमन्त्रित किये गये हैं और वे नेतृत्व ग्रहण करनेकी बात सोच रहे हैं, त्यों ही ६ अप्रैलको मैंने उन्हें यह पत्र[1] लिखा था :

> वाइकोम [सत्याग्रह] के सम्बन्धमें मेरा यह मत है कि इस कामको तुम हिन्दुओंपर ही छोड़ दो। आत्मशुद्धि उन्हींको करनी है। तुम इस सम्बन्धमें सहानुभूति दिखाकर और लेखादि लिखकर उनकी सहायता कर सकते हो, किन्तु तुम्हें आन्दोलनका संगठन करके उनकी सहायता नहीं करनी चाहिए और सत्याग्रह करके तो कदापि नहीं। यदि तुम नागपुर कांग्रेसके प्रस्तावको देखो तो तुम्हें पता चलेगा कि उसमें हिन्दू सदस्योंसे अस्पृश्यताके अभिशापको दूर करनेका अनुरोध किया गया है। सीरियाई ईसाइयोंमें भी इस रोगकी छूत लग गई है, श्री एन्ड्रयूजसे यह जानकर मुझे आश्चर्य हुआ।

दुर्भाग्यवश, पत्र उनतक पहुँचनेके पहले ही श्री मेनन गिरफ्तार कर लिये गये थे और श्री जॉर्ज जोजेफने उनका स्थान ले लिया था। किन्तु अस्पृश्यताका समर्थन तो हिन्दू करते हैं; श्री जोजेफको उसके लिए हिन्दुओंके समान कोई प्रायश्चित्त नहीं करना है। यदि वे इस सन्दर्भमें कोई त्याग करते भी हैं तो हिन्दू-समाज मालवीयजी द्वारा किये गये प्रायश्चित्तकी तरह उसे अपना प्रायश्चित्त नहीं मान सकता। अस्पृश्यता हिन्दुओंका पाप है। उसके लिए उन्हींको कष्ट भोगना चाहिए, उन्हींको अपनी शुद्धि करनी चाहिए और अपने दलित भाइयों और बहनोंका उनके ऊपर जो ऋण है, उसे स्वयं उन्हींको चुकाना चाहिए। यह घोर पाप उन्हींके लिए लज्जाकी बात है और

१. देखिए "पत्र : जॉर्ज जोजेफको", ६-४-१९२४।

जब वे अपने-आपको इससे मुक्त कर पायेंगे तब इसका गौरव मिलेगा भी उन्हींको। हिन्दूके रूपमें एक भी शुद्ध हिन्दूका मूक और प्रेम-प्रेरित कष्टभोग लाखों हिन्दुओंके हृदयोंको पिघला देनेके लिए काफी होगा। किन्तु अछूतोंके पक्षमें हजारों अहिन्दुओंका कष्टभोग भी हिन्दुओंपर कोई असर नहीं करेगा। उनकी इस ओरसे मुंदी हुई आँखें बाह्य हस्तक्षेपसे नहीं खुलेंगी, चाहे वह कितना ही सद्भावपूर्ण और उदारतापूर्ण क्यों न हो; क्योंकि उससे उन्हें अपने अपराधकी पूरी प्रतीति नहीं होगी। उलटे सम्भव है, बाह्य हस्तक्षेपसे इस पापको वे और भी उत्कट रूपसे अपना लें। कोई भी सुधार सच्चा और स्थायी तभी होता है जब वह भीतरसे प्रादुर्भूत हो।

[किन्तु प्रश्न किया गया है] कि वाइकोमके सत्याग्रही बाहरसे आर्थिक सहायता क्यों न प्राप्त करें, विशेषतः जब वह हिन्दुओंसे प्राप्य हो? जहाँतक अहिदुओंकी सहायताका प्रश्न है, इस प्रकार बाहरसे उनके द्वारा भेजी गई आर्थिक सहायताके बारेमें मेरे विचार उतने ही स्पष्ट हैं, जितने उनकी शारीरिक सहायताके बारेमें हैं। मुझे अहिन्दुओंके पैसेसे हिन्दू-मन्दिरका निर्माण नहीं करना चाहिए। यदि मुझे पूजा-स्थान आवश्यक लगता है तो मुझे स्वयं उसके लिए पैसा खर्च करना चाहिए। अस्पृश्यता-निवारण ईंट और चूनेका मन्दिर बनानेकी अपेक्षा अधिक बड़ा काम है। उसके लिए खून-पैसा, सब-कुछ हिन्दुओंको ही देना चाहिए। उन्हें इस अभिशापको मिटानेके लिए अपनी पत्नी, अपने बच्चे और अपने सर्वस्वका त्याग करनेके लिए तैयार हो जाना चाहिए। जहाँतक बाहरके हिन्दुओंकी आर्थिक सहायता स्वीकार करनेका प्रश्न है, इससे यही प्रकट होगा कि स्थानीय हिन्दू इस सुधारके लिए उद्यत नहीं हैं। यदि सत्याग्रहियोंको स्थानीय हिन्दुओंकी सहानुभूति प्राप्त है, तो जितने धनकी आवश्यकता हो, वह उन्हें स्थानीय रूपसे ही इकट्ठा करना चाहिए। यदि उन्हें उनकी सहानुभूति प्राप्त नहीं है, तो जो मुट्ठी-भर व्यक्ति सत्याग्रह करते हैं उन्हें भूखे रहनेमें ही सन्तोष मानना होगा। यदि वे इसमें सन्तोष नहीं मानते हैं तो स्पष्ट है कि वे स्थानीय हिन्दुओंमें, जिनका वे हृदय-परिवर्तन करना चाहते हैं, कोई सहानुभूति उत्पन्न न कर पायेंगे। सत्याग्रह हृदय-परिवर्तनकी प्रक्रिया है। मेरा विश्वास है कि सुधारक अपने विचारोंको समाजपर लादनेकी बजाय उसके हृदयको छूनेका प्रयत्न करते हैं। यदि मैं सत्याग्रहकी पद्धतिको प्रेमकी प्रक्रिया कहूँ, तो बाह्य आर्थिक सहायता उसमें अवश्य ही बाधक होगी। इस दृष्टिसे मैं सिखोंके लंगर खोलनेके प्रस्तावको वाइकोमके डरे हुए हिन्दुओंके लिए एक खतरा ही मानता हूँ।

मेरे मनमें इस विषयमें कोई सन्देह नहीं है कि रूढ़िवादी हिन्दू, जो अभीतक यह मानते हैं कि भगवान्की पूजा करने और अपने ही धर्म-बन्धुओंके एक समाज विशेषको छूना परस्पर असंगत है तथा जो यह सोचते हैं कि सारा धार्मिक जीवन नहाने-धोने और शारीरिक अशुद्धिसे बचनेमें ही निहित है, वाइकोम आन्दोलनकी घटनाओंसे भयभीत हैं। वे समझते हैं कि उनका धर्म खतरेमें है। अतः आयोजकोंको यह उचित है कि वे अत्यन्त रूढ़िवादी तथा अत्यन्त कट्टरपन्थियोंको भी सान्त्वना दें और उन्हें आश्वस्त कर दें कि वे बलपूर्वक सुधार नहीं करना चाहते। विजय प्राप्त करनेके लिए वाइकोमके सत्याग्रहियोंको नम्र होना चाहिए। यदि वे कट्टर हिन्दुओंके हृदयोंको

वदलना चाहते हैं तो उन्हें उनके अपमानों तथा बुरे बरतावका खयाल न करके उनसे प्रेम ही करना चाहिए।

एक तार आया है जिसका आशय है, "अधिकारी सड़कोंपर वाड़ लगा रहे हैं। क्या हम उन्हें तोड़ या लाँघ नहीं सकते? क्या हम अनशन नहीं कर सकते? हम देखते हैं कि अनशनका प्रभाव पड़ता है।"

मेरा उत्तर यह है कि यदि हम सत्याग्रही हैं, तो हम कदापि बाड़को तोड़ या लाँघ नहीं सकते। ऐसा करें तो जेल तो मिल जायेगी, किन्तु इसे सविनय अवज्ञा नहीं कहा जा सकता। ऐसा करना तत्त्वतः अविनयपूर्ण और अपराधयुक्त होगा। और हम अनशन भी नहीं कर सकते। मैं देखता हूँ कि श्री जोजेफको लिखे गये मेरे अनशन-सम्वन्धी पत्रसे भ्रम हुआ है। पाठक यहींके-यहीं उसे देख सकें इसलिए मैं उसका सम्वद्ध अंश यहाँ उद्धृत कर रहा हूँ:

> अनशन न किया जाये लेकिन लोग वारी-वारीसे जत्थे वाँधकर तवतक शान्ति और विनयके साथ खड़े या वैठे रहें जवतक कि वे गिरफ्तार न कर लिये जायें।
>
> ऊपर उस तारका मसविदा है, जो तुम्हारे तारके उत्तरमें मैंने भेजा है। सत्याग्रहमें अनशन करनेकी कुछ सुनिश्चित सीमाएँ हैं। तुम किसी अत्याचारीके विरोधमें अनशन नहीं कर सकते, क्योंकि ऐसा करना उसके प्रति हिंसाके समान होगा। तुम उसके आदेशोंके उल्लंघनके लिए उससे दण्ड पानेकी आशा रखते हो, परन्तु जव वह सजा देनेसे इनकार कर दे और ऐसी स्थिति उत्पन्न कर दे कि उसे सजा देनेको विवश करनेके खयालसे उसके आदेशोंका उल्लंघन करना तुम्हारे लिए असम्भव हो जाये, तव तुम अपने-आपको दण्डित नहीं कर सकते। अनशन तो किसी प्रेमीके विरुद्ध ही किया जा सकता है और सो भी अधिकार प्राप्त करनेकी दृष्टिसे नहीं वल्कि उसको सुधारनेके खयालसे — वैसे ही जैसे कोई पुत्र अपने शरावी पिताके विरुद्ध अनशन करता है। वम्बईमें और उसके वाद वारडोलीमें मैंने जो अनशन किया था, वह इसी श्रेणीमें आता है। मैंने अनशन उन लोगोंको सुधारनेके लिए किया जो मेरे प्रति प्रेम रखते थे। परन्तु मैं जनरल डायर-जैसे किसी व्यक्तिको सुधारनेके लिए अनशन नहीं करूँगा। वे मेरे प्रति प्रेमभाव नहीं रखते; इतना ही नहीं, वे अपनेको मेरा शत्रु भी मानते हैं। बात तुम्हारी समझमें आ गई होगी?[1] . . .

यह वतानेकी आवश्यकता नहीं है कि ऊपर कही गई बातें चालू भाषामें कही गई हैं। 'अत्याचारी' और 'प्रेमी' शब्दोंका प्रयोग भी सामान्य अर्थमें है। अन्याय करनेवाले को 'अत्याचारी' की संज्ञा दी गई है और जिसे आपसे सहानुभूति है, उसे 'प्रेमी' कहा गया है। मैंने यहाँ वाइकोम आन्दोलनमें सुधारके विरोधियोंको 'अत्याचारी' माना है। शासनतन्त्रपर यह शब्द लागू हो भी सकता है और नहीं भी हो सकता। इस सम्वन्धमें मैंने शासनतन्त्रको केवल शान्ति वनाये रखनेकी चेष्टा करने-

१. देखिए "पत्र: जॉर्ज जोजेफको", १२-४-१९२४।

वाली पुलिस माना है। शासनतन्त्र अथवा विरोधी, 'प्रेमी' की संज्ञा कदापि नहीं पा सकते। वह दर्जा तो वाइकोमके सत्याग्रहियोंके समर्थकोंको दिया गया है। सत्याग्रहीके अनशनके साथ दो शर्तें जुड़ी हुई हैं। वह प्रेमीके विरुद्ध और उसके सुधारके लिए होना चाहिए, उससे अधिकार ऐंठनेके लिए नहीं। वाइकोम सत्याग्रहमें अनशन एक ही स्थितिमें उचित हो सकता है और वह स्थिति है जब उसके स्थानीय समर्थक कष्ट-सहनके अपने वचनसे मुकर जायें। मैं अपने पिताको किसी व्यसनसे मुक्त करनेके लिए उनके विरुद्ध अनशन शुरू कर सकता हूँ। किन्तु मुझे उनसे पैतृक सम्पत्ति पानेके लिए अनशन नहीं करना चाहिए। हमारे देशमें भिखारी कभी-कभी उन लोगोंके विरुद्ध अनशन शुरू कर देते हैं जो उन्हें मुंह-मांगा नहीं देते, और इसी तरह अच्छी पोशाकके लिए बच्चे भी माता-पितासे नाराज होकर खाना-पीना छोड़ देते हैं। ये दोनों ही सत्याग्रही नहीं हुए। ऐसे भिखारियोंको उद्धत और बच्चोंको नादान कहना चाहिए। मेरा बारडोलीका अनशन उन साथी कार्यकर्त्ताओंके विरुद्ध था, जिन्होंने चौरीचौरामें आग लगाई थी। उसका उद्देश्य उनका सुधार करना था। यदि वाइकोमके सत्याग्रही इसलिए अनशन करते हैं कि अधिकारी उन्हें गिरफ्तार नहीं करना चाहते तो मुझे बड़े अदबके साथ यह कहना पड़ेगा कि वह अनशन ऊपर वर्णित किसी भिखारीके अनशनके समान होगा। यदि उसका प्रभाव पड़े तो उससे अधिकारियोंकी अच्छाई सिद्ध होगी, ध्येयकी अथवा कार्यकर्त्ताओंकी नहीं। सत्याग्रहीकी पहली चिन्ता उसके कार्यके प्रभावके बारेमें नहीं बल्कि हमेशा उसके औचित्यके विषयमें होनी चाहिए। उसे अपने ध्येय और अपने साधनोंमें निष्ठा होनी चाहिए, और मनमें विश्वास रखना चाहिए कि अन्तमें उसे सफलता अवश्य मिलेगी।

पत्र लिखनेवालोंमें से कुछने तो रजवाड़ोंमें सत्याग्रह करनेके विरुद्ध ही आपत्ति की है। मैं इस मामलेमें भी श्री जोजेफको लिखे गये अपने पहले पत्रका शेष अंश उद्धृत कर दूं:

> तुम्हें धीरज रखना चाहिए। तुम एक देशी राज्यके निवासी हो, इसलिए तुम कोई शिष्टमण्डल लेकर दीवान या महाराजासे मिल सकते हो। तुम ऐसे सनातनी हिन्दुओं द्वारा, जो आन्दोलनके प्रति सहानुभूति रखते हों, एक जबरदस्त आवेदनपत्र तैयार कराओ। जो लोग इस आन्दोलनका विरोध कर रहे हैं, उनसे भी मिलो। विनयपूर्ण सीधी कार्रवाईको तुम अनेक तरहसे बल पहुँचा सकते हो। प्रारम्भिक सत्याग्रह द्वारा तुम जनताका ध्यान आकृष्ट कर ही चुके हो। अब सबसे अधिक ध्यान इस बातका रखना है कि यह आन्दोलन यों ही ठंडा न पड़ जाये या यह अधैर्यके कारण हिंसात्मक न बन जाये।

मेरे खयालसे अपने उद्देश्यको प्राप्त करनेके लिए कांग्रेसका किसी भी रजवाड़ेमें सत्याग्रह करना बिलकुल निषिद्ध है। किन्तु वहाँ भी स्थानीय बुराइयोंके विरुद्ध सत्याग्रहका किसी भी समय छेड़ा जाना उचित माना जा सकता है, बशर्ते कि अन्य आवश्यक शर्तें पहले पूरी कर ली गई हों। चूंकि रजवाड़ोंमें असहयोगका प्रश्न उठता ही नहीं है; इसलिए अर्जियाँ तथा शिष्टमण्डल भेजनेके मार्गको न केवल सदा खुला हुआ ही

रखना है बल्कि यह अनिवार्य भी है। किन्तु कुछ पत्रलेखकोंका कहना है कि वाइकोममें विधिसंगत सत्याग्रहकी परिस्थितियाँ विद्यमान नहीं हैं। वे जानना चाहते हैं कि,

१. अनुपगम्यता — अन्त्यजोंको किसी मार्ग विशेपपर न चलने देनेकी प्रथा केवल वाइकोममें प्रचलित है अथवा पूरे केरलमें?

२. यदि वह पूरे केरलमें प्रचलित है तो केरलके ब्रिटिश अधीनस्थ भागको छोड़कर वाइकोमको चुननेका विशेष कारण क्या है?

३. क्या सत्याग्रहियोंने महाराजा, स्थानीय विधान सभा आदिके समक्ष कोई याचनापत्र भेजा था?

४. क्या उन्होंने रूढ़िवादी हिन्दुओंसे परामर्श लिया था?

५. कहीं रास्तेके उपयोगका प्रश्न अँगुली पकड़कर पहुँचा पकड़नेकी कोशिश तो नहीं है? क्या वह जाति प्रथाको बिलकुल मिटा देनेकी ओर उठाया गया कदम तो नहीं है?

६. क्या वह रास्ता कोई आम रास्ता है?

पहले दो प्रश्न अवान्तर हैं। अनुपगम्यता और अस्पृश्यताको — वे कहीं भी क्यों न हों — हमें मिटाना ही है। सत्याग्रह कहाँ और कब करना उचित है, यह समझ लेनेके बाद कार्यकर्ताको चाहिए कि वह सत्याग्रह अथवा अन्य किसी वैध साधनके द्वारा काम शुरू कर दे।

मुझे जो खबर मिली है उससे मालूम हुआ है कि याचिका आदि देनेकी पद्धतिका प्रयोग एक बार नहीं बल्कि अनेक बार किया जा चुका है।

उन्होंने रूढ़िवादी लोगोंसे परामर्श किया था और उनका खयाल है कि उन्हें उनका समर्थन प्राप्त है।

मुझे विश्वास दिलाया गया है कि रास्तेका उपयोग ही सत्याग्रहियोंका अन्तिम ध्येय है। किन्तु इस बातसे भी इनकार नहीं किया जा सकता कि आज समूचे भारतमें इस तरहका जो आन्दोलन चल रहा है उसका उद्देश्य उन सभी सार्वजनिक रास्तों, सार्वजनिक शालाओं, सार्वजनिक कुओं, तथा सार्वजनिक मन्दिरोंको, जो अब्राह्मणोंके लिए गम्य हैं, दलित वर्गोंके लिए गम्य बना देना है।

वास्तवमें यह आन्दोलन जाति-प्रथाको उसके अत्यन्त नाशकारी परिणामसे मुक्त करके शुद्ध बना देनेके लिए किया जा रहा है। मैं खुद वर्णाश्रम-व्यवस्थामें विश्वास करता हूँ; यद्यपि यह ठीक है कि उसका मेरा अपना अर्थ है। कुछ भी हो, अस्पृश्यता-विरोधी आन्दोलनका ध्येय अन्तर्जातीय सहभोज अथवा अन्तर्जातीय विवाह नहीं है। जो लोग स्पृश्यताके प्रश्नको इन दोनों बातोंसे जोड़ देते हैं, वे दलित वर्गोंके हितों तथा अन्तर्जातीय सहभोज एवं अन्तर्जातीय विवाहके प्रश्नको भी हानि पहुँचा रहे हैं।

मेरे पास ऐसे भी पत्र आये हैं, जिनमें रास्तेके निजी कहे जानेका खण्डन किया गया है। मुझे सूचना देनेवाले तो यहाँतक कहते हैं कि वह रास्ता कुछ वर्ष पहले अब्राह्मणोंके समान अन्त्यजोंके लिए भी खुला हुआ था।

इसलिए मेरी रायमें वाइकोम सत्याग्रहका आधार उचित है, और जबतक वह उचित सीमाओंका उल्लंघन नहीं करता तथा अहिंसा और सत्यका पूर्ण आग्रह रखकर चलाया जाता है तबतक वह जनताकी पूर्ण सहानुभूतिका पात्र है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १-५-१९२४

३८३. दक्षिण कर्नाटकमें चरखा

दक्षिण कर्नाटकमें बाढ़के कारण जो संकट आया उसमें स्वयंसेवकों द्वारा किये गये सहायता-कार्यकी चर्चा करते हुए श्री सदाशिवराव लिखते हैं:

> बाढ़ सहायता समितिने, जिसका मैं संयुक्त मन्त्री हूँ, लगभग ५०,००० रुपया इकट्ठा किया था और इसमें से अधिकांश गरीबोंको बाँट दिया गया है। यह धन सबसे पहले तो गरीबोंको भोजन और कपड़ेकी व्यवस्था करने और बादमें कुछ पैसा लोगोंको झोपड़ियाँ और छोटे-छोटे घर बनानेके लिए दिया गया। इस तरह जितना भी पैसा इकट्ठा किया गया था वह समितिने जनतासे जो वायदा किया था उसके अनुसार लगभग पूरा खर्च कर दिया गया है। लेकिन ऐन मौकेपर कांग्रेस कार्य-समितिने जो ५,००० रुपयेकी रकम बाढ़-ग्रस्त क्षेत्रमें रचनात्मक कार्यक्रममें लगानेके लिए दी थी वह बाढ़की ही तरह एक छिपा हुआ वरदान सिद्ध हुई। हमारी जिला कांग्रेस कमेटीके अधीन काम करनेवाले राष्ट्रीय जिला खादी बोर्डके तत्त्वावधानमें हमने बाढ़-ग्रस्त क्षेत्रोंमें बारह आदर्श उद्योगालय खोले हैं, जहाँ लोगोंको उनकी रुचिके अनुसार बुनाई और बढ़ईगीरी सिखानेकी व्यवस्था की गई है; इसके सिवा बाढ़-ग्रस्त क्षेत्रमें सभी वर्गोंके लोगोंके बीच कताईके कामको बढ़ावा देनेके लिए बहुत-कुछ किया गया है। उद्योगालय चलानेके लिए एक-एक सुविधाजनक केन्द्रस्थ गाँव चुन लिया गया है। हर सुबह हमारे कार्यकर्त्ता रुई और चरखा लेकर आसपासके गाँवोंमें जाते हैं और लोगोंके घरोंपर ही उन्हें कपास ओटना और कातना सिखाते हैं। इन उद्योगालयोंसे सम्बद्ध जमीनोंपर कपासके पौधोंकी पौधशालाएँ बनाई गई हैं और लोगोंके बीच उनकी अपनी जमीनपर लगानेके लिए मुफ्त या नाममात्रको दाम लेकर पौधे बँटवानेकी व्यवस्था भी की गई है। पिछले वर्ष कांग्रेस कमेटीने कपासकी खेतीको प्रोत्साहन देनेका प्रयत्न किया था और यहाँकी जमीनके लिए उपयुक्त बीजोंका वितरण किया था। लेकिन कुछको छोड़कर अधिकांश लोगोंने इसके प्रति कोई उत्साह नहीं दिखाया। इसी कारण इस साल कुछ दूसरा ही प्रबन्ध किया गया है। पाँच हजार परिवार तो बड़े उत्साहसे कताईका काम अपना चुके हैं और हमें आशा है कि इस महीने एक

हजार पौंड सूत तैयार हो जायेगा। पिछले महीने हमें इन बारह उद्योगालयोंसे ७३५ पौंड सूत मिला। इसमें ८ से लेकर २० नम्बर तकका सूत था। लोग गरीब हैं, इसलिए हमें उन्हें किस्तोंपर चरखे देने पड़ते हैं। यह बात बहुत ही उत्साहवर्धक है कि जिन परिवारोंने कताईका काम शुरू किया है उनमें से अधिकांश मुसलमानों और ईसाइयोंके परिवार हैं। अब मानसून यहाँ लगभग आने ही वाला है और आशा की जाती है कि यह इस बार जल्द ही शुरू हो जायेगा; बल्कि गरज और तूफानके साथ यहाँ थोड़ी वर्षा हो भी चुकी है। यह एक सर्वविदित बात है कि वर्षा शुरू हो जानेके बाद गाँवके लोगोंके पास कोई धन्धा नहीं रह जाता। रचनात्मक कार्यक्रमके लिए अलग रखा गया पैसा अब समाप्तप्रायः है और अगर उदार लोग इस मौकेपर हमारी सहायताके लिए आगे नहीं आते तो, हमारे कर्मठ स्वयंसेवकोंने लोगोंको बेकारीके दिनोंमें उनके घरमें ही कामकी व्यवस्था करनेके लिए जो यह छोटा-सा प्रयत्न आरम्भ किया है, वह विफल हो जायेगा। इस तथ्यको ध्यानमें रखते हुए कि जिन्होंने कताईका काम अपनाया है उनमें ९० प्रतिशत स्त्रियाँ ही हैं, मुझे लगता है कि राष्ट्र-निर्माणके प्रेमी लोगोंसे मैं विश्वासपूर्वक यह आशा कर सकता हूँ कि वे अपनी शक्ति-भर अवश्य सहायता देंगे, ताकि हम गरीबोंकी सेवाका यह शानदार काम जारी रख सकें। हजारों स्त्रियाँ चरखे लेनेके लिए लालायित हैं, लेकिन पैसेके अभावमें काम आगे नहीं बढ़ सकता।

आपकी सलाहके अनुसार हमने एक और नया काम शुरू किया है। हमारे जिलेमें बीस राष्ट्रीय स्कूल हैं, जिनमें एक हजार छात्र हैं। इनमें से दो हाईस्कूल हैं। इन स्कूलोंसे निकलनेवाले लड़कोंको प्रशिक्षणार्थीके रूपमें इन उद्योगालयोंमें लिया जाता है; और प्रशिक्षणोपरान्त उनसे अपने-अपने गाँवोंमें जाकर प्राथमिक राष्ट्रीय शालाएँ या पंचायती अदालतें या कोई दस्तकारीका काम, जैसे बुनाई, बढ़ईगीरी, लुहारी, रंगरेजी, छपाई आदि शुरू करनेको कहा जाता है। इन उद्योगालयोंमें इन सभी धन्धोंकी शिक्षा देनेकी व्यवस्था की जा रही है। मूक गरीब भाइयोंकी ओरसे की गई हमारे कर्मठ और आत्म-त्यागी स्वयंसेवकोंकी यह अपील क्या अनसुनी कर दी जायेगी?

यह एक ठोस कार्य है जिसमें सहायता अवश्य दी जानी चाहिए।

अभी कुछ ही दिन पहले मैं पचास कन्नड़ बहनोंसे मिला था।[1] उन्होंने स्वयं सारा प्रबन्ध करके एक नाटक खेला था। उन्हींमें से एकने यह नाटक लिखा भी था। इस नाटकसे ५५० रुपये आये। कुल खर्च ५० रुपये बैठा। इन बहनोंने ५०० रुपये और अपने हाथसे कता हुआ सूत मुझे लाकर दिया। मैं उनकी इस बहुमूल्य भेंटका जो उपयोग करना चाहता हूँ, मुझे मालूम है कि उसे ये बहनें पसन्द करेंगी। मुझे

१. देखिए "टिप्पणियाँ", २७-४-१९२४।

लगता है कि इसका सबसे अच्छा उपयोग मैं यही कर सकता हूँ कि उनकी मुसीबतमें पड़ी मुसलमान और ईसाई बहनोंके लिए चरखोंकी व्यवस्था करनेके लिए मैं यह रकम दे दूं। यह रकम जल्दी ही श्री सदाशिवरावको भेज दी जायेगी।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १-५-१९२४

३८४. शान्तम्, शिवम्, अद्वैतम्[1]

अभीतक मैं श्री एन्ड्रूज़के 'यंग इंडिया' में प्रकाशनार्थ भेजे गये लेखोंमें संशोधन इत्यादि कर दिया करता था। किन्तु उनके इस सुन्दर गद्य-काव्यमें, व्यक्तिगत बातोंका उल्लेख होते हुए भी मुझे उसका एक शब्द भी बदलनेका साहस नहीं होता।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १-५-१९२४

३८५. तार: च० राजगोपालाचारीको[2]

[बम्बई
१ मई, १९२४ या उसके पश्चात्]

तार मिला। इतनी ही राहत पहुँचा सकता हूँ कि देवदासको भेज दूं। तार द्वारा हालत और जवाब दें।

गांधी

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ८७७७) की फोटो-नकलसे।

१. सी० एफ० एन्ड्रूज़के गद्य-काव्यका शीर्षक। गद्य-काव्य यहाँ नहीं दिया जा रहा है। गांधीजीकी इस टिप्पणीके साथ गद्य-काव्य **यंग इंडिया**के इसी अंकमें प्रकाशित हुआ था।

२. यह राजगोपालाचारीके १ मई, १९२४ के तारके उत्तरमें देवदास गांधीके नाम भेजा गया था। राजगोपालाचारीका तार २ मईको प्राप्त हुआ था। तारमें उन्होंने अपने जामाताके सख्त बीमार होनेकी खबर भेजी थी।

३८६. पत्र : जमनालाल बजाजको

अन्धेरी
शुक्रवार [२ मई, १९२४ या उसके पश्चात्]

भाई जमनालालजी,

महात्मा भगवानदीन और पं० सुन्दरलाल यहाँ आये हैं। असहयोग आश्रमके सम्बन्धमें और अन्य विषयोंके बारेमें बातें करना चाहते हैं। पर मैंने कह दिया है कि आपसे मिले बिना मैं कुछ नहीं कर सकता। मैंने उन्हें आपके पास जानेकी सलाह दी है। इसलिए वे वहाँ आ रहे हैं। उनकी बातें सुनकर मुझसे कुछ कहना या पूछना हो तो कहना।

मोहनदासके वन्देमातरम्

मूल गुजराती पत्र (जी० एन० २८४६) की फोटो-नकलसे।

३८७. वक्तव्य : काठियावाड़ राजनीतिक परिषद्के सम्बन्धमें[1]

[बम्बई
४ मई, १९२४ के पूर्व]

मुझे मालूम हुआ है कि काठियावाड़ राजनीतिक परिषद्की स्वागत-समिति राज्यको यह आश्वासन देनेको तैयार है कि परिषद् पूरे तौरपर शालीनता बनाये रखेगी और राजाओंकी कोई व्यक्तिगत आलोचना नहीं की जायेगी। मुझे यह भी मालूम हुआ है कि कार्य-समितिकी जो बैठक पोरबन्दरमें हुई थी उसे, भावनगरमें परिषद् बुलानेके सम्बन्धमें स्वागत-समितिके पास सिफारिश करनेके पूर्व, पट्टणी साहबसे सलाह-मशविरा कर लेना चाहिए था। उसने वैसा न करके गलती की है।

पट्टणी साहबकी इच्छा है कि इस साल परिषद् भावनगरमें न हो। मुझे यह भी मालूम हुआ कि अगर वे यहाँ परिषद् होने देंगे तो उन्हें बहुत सारी कठिनाइयोंका सामना करना पड़ेगा। उनका कहना है कि अगर परिषद् सोनगढ़में हो, तो वे पूरी सहायता करनेको तैयार हैं। वे भावनगरके लोगोंको सोनगढ़में परिषद्की बैठकमें शामिल होनेके लिए प्रोत्साहित करनेको भी तैयार हैं; और सबसे बड़ी बात तो यह

१. परिषद्के कार्यकर्ताओंकी बम्बईमें गांधीजी और सरदार वल्लभभाई पटेलसे बातचीत हुई थी, जिसके बाद गांधीजीने यह वक्तव्य जारी किया था। यह पाठ किसी सम्वाददाता द्वारा ४ मईको भेजे गये "भावनगर-समाचार" शीर्षकसे लिया गया है।

कि वे परिषद्को ऐसी हर जरूरी सहायता देनेको तैयार हैं जिससे वह अगले वर्ष किसी भी राज्यकी सीमामें अपनी बैठक कर सके। वे सिर्फ एक ही शर्त रखना चाहते हैं कि इस साल जो भी भाषण आदि हों उनमें पूरी शालीनता बरती जाये। अगले वर्षके लिए वे इस तरहकी कोई शर्त नहीं रखना चाहते। उन्हें भरोसा है कि परिषद् स्वयं ही अपनी मर्यादा और शिष्टाचारके नियमोंका पालन करेगी।

परिस्थितिको कुल मिलाकर देखनेपर तो मैं यही मानता हूँ कि स्वागत-समितिको इस वर्ष भावनगरमें परिषद् बुलानेका आग्रह नहीं करना चाहिए। समितिके सदस्योंको पट्टणी साहबसे सहमत होना चाहिए और सत्याग्रहियोंके रूपमें अपनी पूरी योग्यताका परिचय देते हुए परिषद्में पूरी शालीनता बरतनी चाहिए। ऐसा करनेमें लोगोंके लिए अपमानकी कोई भी बात नहीं है। सत्याग्रहका तेज इससे कम नहीं होगा और अगले वर्षके लिए रास्ता साफ हो जायेगा। और मान लीजिए कि सब कुछ हमारी आशाके विपरीत ही होता है, मान लीजिए कि पट्टणी साहब अपना वायदा तोड़ देते हैं या उस अवसरपर काठियावाड़से बाहर रहते हैं, अथवा वे सभी सम्भव प्रयत्न करनेके बाद भी किसी राज्यमें परिषद्की बैठक नहीं करा पाते तब भी इन सब सत्याग्रहियोंका कुछ बिगड़नेवाला नहीं है। सच्चा सत्याग्रही उचित नियम-विधानके पालनसे थकता नहीं है। खोये हुए अवसरोंके लिए उसे कभी पछताना नहीं पड़ता। समय आनेपर वह पूरी तरह तैयार रहता है।

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे क्रॉनिकल, ८-५-१९२४

३८८. त्यागकी मूर्ति[1]

विधाताने हिन्दू-विधवाकी सृष्टि करनेमें अपना पूरा कौशल लगा दिया है। मैं जब-जब पुरुषोंको अपने दुःखकी कथा कहते हुए सुनता हूँ तब-तब विधवा बहनोंकी प्रतिमा मेरे सामने खड़ी हो जाती है और मुझे उस पुरुषपर जो अपने दुःखोंका रोना रोता है, देखकर मुझे हँसी आ जाती है।

हिन्दू धर्मने संयमको उच्चतम कोटिपर पहुँचाया है और वैधव्य उसकी परिसीमा है। पुरुष तो अपने दुःखको दूर कर लेता है। उसके दुःखका कारण उसकी मूर्खता ही होती है। वह बहुत-सा दुःख तो केवल धन-लोभके कारण भोगता है। परन्तु विधवाके बारेमें क्या कहें? उस बेचारीका तो अपने दुःखमें हाथ ही नहीं है। उसके दुःखकी निवृत्तिका उपाय उसके पास है ही नहीं, क्योंकि रूढ़ि-धर्मने उसका द्वार बन्द कर रखा है। अनेक विधवाएँ दुःखको दुःख नहीं मानतीं। उनके लिए त्याग एक स्वाभाविक चीज हो गई है। त्यागका ही त्याग उसे दुःख-रूप मालूम होता है। विधवाका दुःख ही उसके लिए सुख माना गया है।

१. देखिए खण्ड १७, पृष्ठ ४३३ तथा ४६३।

यह स्थिति बुरी नहीं, अच्छी है। इसमें हिन्दूधर्मकी श्रेष्ठता है। मैं वैधव्यको हिन्दू धर्मका भूषण मानता हूँ। जब मैं विधवा बहनोंको देखता हूँ तब मेरा सिर अपने-आप उनके चरणोंमें झुक जाता है। विधवाका दर्शन मेरे लिए अपशकुन नहीं है। मैं प्रातःकाल उसका दर्शन करके अपने-आपको कृतार्थ मानता हूँ। मैं उसके आशीर्वादको एक बड़ा प्रसाद मानता हूँ। मैं उसे देखकर अपने तमाम दुःख भूल जाता हूँ। विधवाके मुकाबले पुरुष एक पामर प्राणी है। विधवाके धैर्यका अनुकरण असम्भव है। विधवाको प्राचीन कालकी जो विरासत मिली है उसके सामने पुरुषके क्षणिक त्यागकी पूंजीकी कीमत क्या हो सकती है?

विधवा अपने दुःखकी कहानी किसे सुनाये? यदि संसारमें वह किसीको सुना सकती हो तो अपनी मांको जरूर सुनाये। परन्तु वह उसे सुनाकर करे क्या? मां उसकी क्या मदद कर सकती है? वह तो "धीरज रख बेटी" कहकर अपने काममें लग जायेगी। मांका घर उसका घर कहां है? विधवा तो ससुरालमें रहती है। सासके अत्याचारोंको बहू ही जान सकती है। विधवाका तो एकमात्र धर्म है सेवा। देवर, जेठ, सास, ससुर—जो भी हों सबकी सेवा करना उसका काम है। यह सेवा करते हुए उसका जी ऊबता ही नहीं। वह तो उलटे अधिक सेवा करनेका बल चाहती है।

यदि इस विधवा-धर्मका लोप होगा और कोई अज्ञान या उद्धतताके वशीभूत होकर सेवाकी इस साक्षात् मूर्तिका खण्डन करेगा तो हिन्दू धर्मको बड़ी हानि पहुँचेगी।

ऐसा वैधव्य किस प्रकार सुरक्षित किया जा सकता है? जो मां-बाप दस सालकी कन्याका विवाह कर देते हैं क्या उनको वैधव्यके पुण्यका कुछ हिस्सा मिल सकता है? जिस कन्याका आज ही विवाह हुआ हो और जिसका पति आज ही मर जाये, क्या उस कन्याको विधवा कहना चाहिए? क्या हम वैधव्यकी अतिशयताको धर्मका पद देकर महापाप नहीं करते? यदि वैधव्यको सुरक्षित रखना हो तो क्या पुरुषोंको अपने धर्मका विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है? जिसके मनको वैधव्यका अनुभव नहीं है, क्या उसका शरीर वैधव्यका पालन कर सकता है? जिस बालिकाका विवाह आज ही हुआ है, उसके मनका हाल कोई जान सकता है? उसके प्रति उसके पिताका क्या धर्म है? क्या बाप उसके गलेपर छुरी फेरकर उसके प्रति अपने कर्त्तव्यका पालन कर चुका?

वैधव्यकी पवित्रताकी रक्षाके लिए, हिन्दू धर्मकी रक्षाके लिए और हिन्दू-समाजकी सुव्यवस्थाके लिए, मेरी नम्र रायमें, इतने नियमोंकी आवश्यकता है:

१. कोई पिता १५ सालके पहले अपनी कन्याका विवाह न करे।

२. जिस लड़कीका विवाह अबतक उक्त आयुके पहले हो चुका हो और जो १५ सालकी होनेसे पहले विधवा हो गई हो उसके विवाहकी व्यवस्था करना पिताका धर्म है।

३. यदि १५ सालकी बालिका विवाहके एक सालके भीतर विधवा हो जाये तो माता-पिताको चाहिए कि वे उसे फिर विवाह कर लेनेके लिए उत्साहित करें।

४. कुटुम्बके प्रत्येक व्यक्तिको विधवाके प्रति पूरा आदर-भाव रखना चाहिए। माता-पिता अथवा सास-ससुरको उसके लिए ज्ञान-वृद्धिके साधन जुटाने चाहिए।

मैंने ये नियम इस गरजसे नहीं दिये हैं कि इनका पालन अक्षरशः किया जाये। ये तो केवल मार्गदर्शक हैं। हाँ, इस बातमें मुझे जरा भी सन्देह नहीं है कि ये नियम विधवाके प्रति हमारे कर्त्तव्यके दिशा-दर्शक हैं।

तब इन तथा ऐसे नियमोंके पालनकी व्यवस्था कौन करे? हिन्दू-समाजके पास भिन्न-भिन्न जातियाँ इस कार्यके लिए कुदरती साधन हैं। परन्तु जबतक उनमें सुधार न हो तबतक जो माँ-बाप इन नियमोंके पक्षमें हों वे क्या करें? वे जातिमें सुधार करनेकी कोशिश करें। और यदि उन्हें इसमें तत्काल सफलता न मिले तो वे बन्धन-मुक्त होकर विधवाके लिए योग्य वरकी खोज करें। दोनों तरफके लोग जातिसे बाहर रहनेके लिए तैयार हों और बाहर रहकर भी जातिवालोंसे अनुनय-विनय करें; जातिके पंचोंके दिलको चोट न पहुँचायें, सत्याग्रह करनेका इरादा न करें अथवा करें भी तो यही समझें कि हमारा नम्रताके साथ जातिसे बाहर रहना ही एक प्रकारका सत्याग्रह है। यदि ऐसा विवाह अनिवार्य समझकर किया जायेगा और यदि उसका उद्देश्य संयमकी रक्षा करना ही होगा और यदि इस बहिष्कृत कुटुम्बका आचरण शुद्ध होगा तो पंच लोग खुद ही उन्हें फिर जातिमें ले लेंगे; यही नहीं बल्कि वे उस सुधारको भी स्वीकार कर लेंगे और दूसरी दीन विधवाओंपर होनेवाले अत्याचारकी जड़ ही कट जायेगी।

ऐसे सुधार एकाएक नहीं हो सकते। उनका बीजारोपण हो जाना ही पर्याप्त है। फिर उससे वृक्ष बने बिना न रहेगा।

यह तो मैंने एक छोटा-सा सुधार बताया है तथा बड़े सुधारके असम्भव लगनेके कारण ही यह छोटा सुधार सुझाया है। सच्चा सुधार तो यह है कि स्त्रीकी तरह पुरुष भी विधुर हो जानेपर फिर विवाह न करे। यदि हम हिन्दू धर्मके रहस्यको समझ लें तो हम कष्ट-साध्य संयमको शिथिल करनेकी अपेक्षा दूसरे उसी प्रकारके संयमोंको जीवनमें अपनाकर उसे अधिक दृढ़ करेंगे। यदि पुरुष विधुर रहे तो स्त्रीको अपना वैधव्य भाररूप मालूम न हो। फिर यदि पुरुष विधुर रहें तो वर्तमान बेजोड़ विवाह और बाल-विवाह बन्द हो जायें।

हाँ, एक खतरा रहता है। हमें उससे बचना चाहिए। मैंने एक दलील सुनी है: "वैधव्य सर्वथा उत्तम है। यदि बाल-विधवाओंकी संख्या कम हो तो उन्हें पुनर्विवाहके झंझटमें पड़नेकी क्या आवश्यकता है? हम तो पत्नीके न रहनेपर पुरुषको भी विधुर ही रखना चाहते हैं और बाल-विवाहको भी निर्मूल करना चाहते हैं। इसलिए किसी भी अवस्थामें स्त्रियोंके पुनर्विवाहकी आवश्यकता नहीं है।" यह दलील खतरनाक है, क्योंकि वास्तवमें तो यह शब्दजाल-मात्र है। यह दलील कतिपय अंग्रेज मित्रोंकी इस दलीलकी तरह है: "आप तो अहिंसावादी हैं। आप हमें भी अहिंसा-धर्म सिखाना चाहते हैं। अतः हम चाहे कितनी ही हिंसा करते रहें परन्तु आप अपने लोगोंसे यह नहीं कह सकते कि वे हिंसाका मकाबला हिंसासे करें।" इस दलीलमें जो भूल है वह हमसे जाने-अनजाने हमेशा हुआ करती है। ऐसी दलील

करनेवाले यह भूल जाते हैं कि यद्यपि मैं दोनों पक्षोंको अहिंसा-धर्मकी दीक्षा देना चाहता हूँ, तथापि जो लोग अहिंसा-धर्मको सीखनेमें असमर्थ हैं अर्थात् भीरु हैं, उनसे मैं अहिंसाकी बात किस तरह करूँ? मैं अपने पुत्रको यह बात नहीं समझा सका। मैं दलित और पीड़ित बेतियाके लोगोंको यह धर्म नहीं सिखा सका।[1] उनसे तो मुझे यह कहना पड़ा था: यदि आपको इन दो मार्गों यानी अपनी स्त्रीको भाग्यके भरोसे छोड़कर भाग जाने अथवा लाठी लेकर अत्याचारीसे उसकी रक्षा करनेमें किसी एक मार्गको चुनना पड़े और यदि आप अत्याचारीके सामने निडर खड़े रहकर उसे चोट पहुँचाये बिना मरते दमतक सत्याग्रह करनेके लिए तैयार न हों तो आप बेशक उसकी रक्षाके लिए लाठी लेकर लड़ें। सत्याग्रह कायरोंका धर्म नहीं है। जब मनुष्य अपनी कायरता छोड़कर वीर बनता है तब वह अहिंसा-धर्म सीखनेके लायक होता है।

अब यदि हम उस शब्द-जालकी परीक्षा करें जो विधवाके सम्बन्धमें फैलाया गया है तो मालूम होगा कि इस दलीलको वही पुरुष पेश कर सकता है जो स्वयं विधुर रहनेके लिए तैयार हो। जो लोग विधुरताको पसन्द न करते हों, या पसन्द करते हुए भी उसका पालन करनेके लिए तैयार न हों, उनको उसे विधुरताकी आवश्यकताको स्वीकार करके वैधव्य प्रथाके समर्थनमें दलीलके तौरपर पेश करनेका अधिकार नहीं है। कल्पना करें कि कोई साठ सालका बुड्ढा, जिसने दूसरा विवाह किया है, अपनी नौ वर्ष की बालिका पत्नीके वैधव्यका अभिनन्दन करते हुए अपने वसीयतनामेमें वैधव्यकी प्रशंसा करता है और उस बेचारी भावी विधवा बालिकाकी सराहना करते हुए यह लिखता है, "परमात्मा न करे, परन्तु यदि मेरी मृत्यु मेरी सती पत्नीसे पहले हो जाये तो मैं जानता हूँ कि वह विधवा रहकर अपने कुटुम्बके, मेरे कुटुम्बके और हिन्दू धर्मके गौरवको कायम रखेगी। मैंने इस बालिकासे विवाह करके यह सबक सीखा है कि पुरुषको भी विधुर रहना चाहिए। अच्छा होता यदि मैं विधुर रहा होता। मैं अपनी दुर्बलताको स्वीकार करता हूँ। परन्तु पुरुषकी दुर्बलतासे वैधव्य और भी भूषित होता है। इसलिए मैं चाहता हूँ कि मेरी यह बालिका पत्नी मेरी मृत्युके बाद विधवा बनी रहे और संयम-धर्मकी शोभा बढ़ाये।" उसकी ऐसी दलीलका असर उस बालिकापर या वसीयतनामा पढ़नेवाले पर क्या हो सकता है?

इस दलीलकी समीक्षा करनेकी आवश्यकता इसलिए थी कि उच्च धर्मके प्रवर्तनका आश्रय लेकर अथवा उसके बहाने धर्मके सदृश दिखाई देनेवाले अधर्मका बचाव बराबर होता रहता है। वैधव्यकी व्याख्यामें बाल-विवाह आ ही नहीं सकता। विधवा वह स्त्री है जिसका पति मर चुका हो — वह स्त्री जिसने उचित अवस्थामें अपनी इच्छा या सम्मतिसे विवाह किया हो और जो स्त्री-पुरुषके सम्बन्धसे परिचित हो गई हो। इस व्याख्यामें उन किशोर वयकी बालिकाओंका समावेश हो ही नहीं सकता और न होना चाहिए जो अक्षत-योनि हैं अथवा माँ-बापने जिन्हें अग्निकुण्डमें झोंक दिया है। अतएव बालिकाके नाममात्रके 'वैधव्य'की पैरवी करना ही अनर्थ है। परन्तु जब पुरुष तकको

१. देखिए खण्ड १९, पृष्ठ ९०।

विधुर रहनेकी आवश्यकता है, ऐसा कहकर ऐसी बालिकाओंको विधवा रखनेका प्रतिपादन किया जाता है तब ऐसा करनेवाले लोग अनर्थ तो करते ही हैं, उसके साथ-साथ उद्धतता दिखाते हैं और घोर अज्ञान प्रकट करते हैं।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ४-५-१९२४

३८९. कौन बचायेगा?

'त्यागकी मूर्ति' लेख लिखनेके बाद मुझे उपर्युक्त पत्र[1] मिला है। हिन्दुस्तानमें ऐसी घटनाएँ होती ही रहती हैं। जो वृद्ध पुरुष अपनी विषयवासनाके वशीभूत होकर एक बालिकाके जन्मको बिगाड़नेके लिए तैयार बैठा है उसे एकाएक समझाना मुश्किल है। बालिकाके पिताको, जिसे पैसा मिलनेकी सम्भावना है, अपनी बच्चीके हितकी बात किस तरह समझाई जा सकती है? जहाँ वासना और स्वार्थ व्यक्तिकी आँखोंपर पट्टी बाँध दें वहाँ उन्हें खोलनेवाला कहाँसे मिल सकता है?

तथापि यदि जातिके पंच लोग चाहें तो इस गरीब गायको बचा सकते हैं। पंच कुछ करनेको तैयार न हों तो जो इस परोपकारके कार्यको करना चाहें उन्हें पंचोंसे बीचमें पड़नेका अनुरोध करना चाहिए। वह भी न हो सके तो जो लोग इस घोर कृत्यको होनेसे रोकना चाहते हों उन्हें विनयपूर्वक लड़कीके पिताको और उसी तरह विवाह करनेवाले को भी समझाना चाहिए। वे इन दोनों व्यक्तियोंका त्याग तो अवश्य करें। उनके भोजन आदिके कार्यमें भाग न लें और ऐसा करके स्वयं इस पापके भागीदार होनेसे बचें। जिस समाजमें ऐसे अपराध होते हों उसमें सारे समाजका दोष माना ही जाना चाहिए, क्योंकि जिस वस्तुके विरुद्ध तीव्र सामाजिक लोकमत हो उस वस्तुको करनेकी धृष्टता एकाएक कोई नहीं करता। और जहाँ समाजकी परवाह किये बिना उद्धततासे कोई व्यक्ति समाजकी मर्यादाका उल्लंघन करता है वहाँ समाजके पास शान्त असहयोग रूपी सुन्दर हथियार है और उसकी मददसे समाज दोषमुक्त बन सकता है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ४-५-१९२४

१. पत्र यहाँ नहीं दिया गया है; पत्र-लेखकने उसमें पचास वर्षके एक वृद्धको अल्पवयकी एक बालिकासे विवाह करनेके अपने विचारको छोड़ देनेके लिए समझानेके अपने असफल प्रयत्नका वर्णन किया था।

३९०. हिन्दू और मुसलमान

हिन्दुओं और मुसलमानोंमें जो कटुता फैल गई है मैं उसके सम्बन्धमें अपने विचारोंको प्रकट करनेके लिए तैयार नहीं था और न अभी हूँ। मेरे विचार तो निश्चित हो चुके हैं; परन्तु मित्रोंके सुभीतेके लिए मैंने अभी उन्हें प्रकट नहीं किया है। इस ढिलाईका कारण यह है कि वे अभी विचार कर रहे हैं, परन्तु वीसनगरमें जो घटना घटी है, मैं उसके सम्बन्धमें बिलकुल चुप नहीं रह सकता। यदि मुझे पत्रका सम्पादन करना है तो मौका आनेपर अपने विचार अवश्य प्रकट करने चाहिए।

अव्वास साहब और श्री महादेव देसाईने वीसनगर जाकर किस प्रकार समझौता करानेका प्रयत्न किया था और वह किस प्रकार वेकार हुआ, इसका हृदयभेदक विवरण श्री महादेव देसाईने मुझे दिया है। इससे मालूम होता है कि हिन्दुओंने रामनवमीके दिन रामजीका जुलूस निकाला। वाजे वजते जा रहे थे। जुलूस जव मस्जिदके नजदीक आया तव मुसलमान नंगी तलवारें लिये मुकावला करनेके लिए तैयार खड़े नजर आये। जुलूस वहाँसे लगभग चौवीस घंटे वाद पुलिसके संरक्षणमें गुजर सका।

मैं दूसरी वातें छोड़े देता हूँ। हिन्दू वाजे वजानेका अपना हक नहीं छोड़ते थे और मुसलमान वाजे वजाने नहीं देते थे। फिर भी ज्यों-त्यों करके दंगा तो होनेसे रुक गया। परन्तु इसका श्रेय उनमें से किसी भी पक्षको नहीं दिया जा सकता। श्रेयकी पात्र तो अकेली पुलिस है।

अव ऐसी खवर मिली है कि किसीने कुछ पशुओंको लुक-छिपकर तलवारसे जख्मी कर दिया है और मालूम हुआ है कि एक पशु तो मर भी गया है। हिन्दुओंने मुसलमानोंसे अपने सम्वन्ध तोड़ लिये हैं।

जुलूसकी घटनाके वाद वीसनगरके एक प्रख्यात सज्जन श्री महासुखलाल चुन्नीलालने एक तीखा भाषण दिया। इसमें उन्होंने सफेद टोपीवालोंको सम्वोधित करके कहा कि वे जो चाहें प्रयत्न करें, परन्तु हिन्दू-मुस्लिम एकता नहीं हो सकती। श्री महासुखलालने हिन्दुओंको असहयोग करनेकी सलाह दी है।

वीसनगरमें हिन्दुओंकी संख्या मुसलमानोंसे वहुत ज्यादा है। फिर भी वे मुसलमानोंसे वहुत डरते हैं। और मुसलमान अपनी तलवार म्यानमें रखना नहीं चाहते।

मैं मानता हूँ कि ऐसा कोई अचल धार्मिक नियम नहीं है कि धार्मिक जुलूसके वाजे एक दफा वजने शुरू होनेके वाद लगातार वजते ही रहने चाहिए। मैं यह भी मानता हूँ कि मुसलमान-भाइयोंके भावोंको आघात न पहुँचे, इसलिए कुछ खास मौकोंपर वाजे वन्द कर देना हिन्दुओंका फर्ज है। परन्तु मैं यह भी उतनी ही दृढ़तासे मानता हूँ कि मुसलमानोंकी तलवारसे डरकर वाजे वन्द करना अधर्म है। जिस प्रकार हिन्दू मुसलमानोंको दवाकर उन्हें गोवध करनेसे नहीं रोक सकते उसी प्रकार मुसलमान भी हिन्दुओंसे जवरन वाजे वन्द नहीं करा सकते। यदि दोनोंको मित्रता प्यारी हो तो दोनों अपनी-अपनी गरजसे गोवध और वाजे वन्द कर दें। मैं यह भी मानता हूँ कि यदि

एक अपना फर्ज न अदा करे तो दूसरेको अपने फर्जसे न चूकना चाहिए। परन्तु दोमें से एक भी तहस-नहस हो जानेपर भी तलवारके सामने सिर न झुकाये —— नहीं झुका सकता और न उसे झुकाना ही चाहिए।

मौका आनेपर शान्तिपूर्ण असहयोग करनेका अधिकार प्रत्येक व्यक्तिको है। ऐसी कोई बात नहीं है कि हम सरकारसे तो असहयोग कर सकते हैं; परन्तु आपसमें नहीं कर सकते। ऐसा भी नहीं है कि हिन्दू मुसलमानसे अथवा मुसलमान हिन्दूसे तो असहयोग करे किन्तु एक हिन्दू दूसरे हिन्दूसे या एक मुसलमान दूसरे मुसलमानसे असहयोग न कर सके। सिद्धान्तकी बातमें बाप और बेटेमें भी असहयोग जरूरी हो सकता है।

परन्तु सवाल यह है कि ऐसा मौका वीसनगरके हिन्दुओंके सामने आया है या नहीं। मेरी नम्र रायमें ऐसा मौका अभी नहीं आया है। गूढ़ और पेचीदा सवालका फैसला हर नगरके हिन्दू और मुसलमान खुदमुख्तार होकर नहीं कर सकते। नेता पक्षको भले इसका तात्कालिक नतीजा अच्छा मालूम हो परन्तु इसका स्थायी परिणाम बुरा ही होगा। फिर यह भी माननेका कोई कारण नहीं है कि एक पक्षकी जीत होनेपर उस पक्षके दूसरे सहधर्मियोंको लाभ ही होगा। वीसनगरमें हिन्दू संख्या-बलमें अधिक होनेसे राज-बल अथवा असहयोगके बलसे मुसलमानोंको झुका लें तो इससे क्या हुआ? दूसरे नगरोंमें जहाँ स्थिति मुसलमानोंके अनुकूल होगी वहाँ वे हिन्दुओंको दबायेंगे। क्या यह बात वीसनगरके हिन्दुओंको अच्छी मालूम हो सकती है? यदि यह बात उन्हें अच्छी न मालूम होगी तो वीसनगरके मुसलमानोंकी हार दूसरे नगरोंके मुसलमानोंको कैसे अच्छी लगेगी? वीसनगरके हिन्दुओंका रास्ता आरम्भमें भले ही मीठा हो परन्तु परिणाममें वह जहरीला है; अतः वह 'गीता'के मतके[1] अनुसार त्याज्य है।

वीसनगरके हिन्दुओंसे मैं यह नहीं कहता कि वे दबकर अपना बाजे बजानेका हक छोड़ दें। मैं यह भी नहीं कहता कि वे कभी असहयोग न करें। परन्तु मैं नम्रतासे यह राय जरूर देता हूँ कि जो ब्योरा मुझे मिला है वह यदि ठीक हो तो हिन्दुओंके इस असहयोगमें जल्दबाजी हो रही है। इसके पहले जो काम उन्हें करने चाहिए थे वे सब उन्होंने किये नहीं हैं। यदि उनमें समझदारी हो तो वे राजसत्ताकी सहायता कमसे-कम लें। मैंने सुना है कि वीसनगरमें सत्ताधिकारियोंने अपना काम शान्ति और चतुराईसे निष्पक्ष होकर किया है। मैं यह बात तटस्थ हिन्दुओंसे मिले समाचारोंके आधारपर लिख रहा हूँ। तटस्थ मुसलमानोंके दिलोंपर क्या असर हो रहा है, मैं अभी यह नहीं जानता।

परन्तु हम तो राजसत्ताकी कमसे-कम सहायता लेना चाहते हैं। हम चार सालसे इस सिद्धान्तकी पुष्टि कर रहे हैं। अतः हमें यह विचार करनेकी जरूरत है कि हम राजसत्ताकी मध्यस्थताके अतिरिक्त अन्य क्या उपाय करें? वीसनगरके हिन्दुओंको फिलहाल मुसलमानोंकी तलवारका भय नहीं है। सत्ताधिकारियोंने उन्हें इस भयसे

१. अध्याय १८, श्लोक ३७-३८।

बचाया है और वे उन्हें अब भी बचा रहे हैं। इसलिए अब उन्हें सुलहके रास्ते खोजनेकी जरूरत है। क्या उन्होंने वीसनगरके बाहरके हिन्दुओं और मुसलमानोंकी सलाह और सहायता ली है? क्या उन्होंने अली भाइयोंको या हकीमजीको पत्र लिखा है? सम्भव है, ये कुछ न कर सकें। परन्तु हिन्दुओंका फर्ज है कि वे उनसे सहायता माँगें। क्या हिन्दुओंने गुजरातके अग्रगण्य पुरुष वल्लभभाईकी सलाह ली है? उन्होंने अब्बास साहबकी बात नहीं सुनी और उनकी अवहेलना की। क्या उन्होंने इसके लिए उनसे माफी माँगी और उनकी सलाह ली है?

परन्तु श्री महासुखलाल कहते हैं कि दाढ़ी और चोटीकी कभी बन ही नहीं सकती। हिन्दू अपना निपटारा खुद कर लें। यदि वे सफेद टोपीवालोंकी बात मानेंगे तो वे हिन्दू न रहकर मुसलमान हो जायेंगे। मैं इन सज्जनसे नम्रतापूर्वक कहता हूँ कि यदि उनके विचार वैसे ही हैं जैसे कि मुझतक पहुँचे हैं तो वे भूल करते हैं। सफेद टोपीवालोंमें तो हिन्दू भी हैं और मुसलमान भी हैं। मैं उन्हें यकीन दिलाता हूँ कि सफेद टोपीवाले हिन्दू अपना हिन्दूपन नहीं त्यागेंगे। हमारा झगड़ा इस वक्त सफेद या काली टोपीका नहीं है। सफेद टोपीवाले बुरे हो सकते हैं। मैं उनकी सफाई क्या दूँगा? सबकी सफाई सबका अपना-अपना आचार देता है। परन्तु यह मान्यता मुझे भयंकर मालूम होती है कि हिन्दुओं और मुसलमानोंमें एकता हो ही नहीं सकती। इस विचार-में धार्मिक दोष है। यह विचार हिन्दू संस्कृतिके विरुद्ध है। हिन्दू धर्मके अनुसार किसीका सर्वथा नाश नहीं होता, अर्थात् सबके अन्दर एक ही आत्मा रम रही है। हिन्दू यह नहीं कह सकता कि दूसरोंको स्वर्ग तभी मिलेगा जब वे भी उसी बातको मानें जिसे वह खुद मानता है। मैं यह नहीं जानता कि मुसलमान ऐसा मानते हैं या नहीं। परन्तु मुसलमान भले ही यह मानते रहें कि तमाम हिन्दू काफिर हैं और वे स्वर्गके अधिकारी नहीं हो सकते। परन्तु हिन्दू धर्म हमें यह शिक्षा देता है कि हम ऐसोंसे भी प्रेम करें और उन्हें प्रेमपाशमें बाँधें, क्योंकि हिन्दू धर्म किसी धर्मकी अवगणना नहीं करता। वह सबसे कहता है, 'स्वधर्ममें ही श्रेय है'।

व्यवहारकी दृष्टिसे भी यह मानना कि हिन्दू-मुसलमानोंकी एकता असम्भव है, मानो हमेशाके लिए गुलामी कुबूल करना है। जो हिन्दू यह मानते हों कि सात करोड़ मुसलमानोंको हिन्दुस्तानसे नेस्त-नाबूद किया जा सकता है वे महा अज्ञानमें फँसे हैं, यह कहते हुए मुझे जरा भी संकोच नहीं होता।

फिर, वीसनगरमें हिन्दू और मुसलमान लड़ते हैं, इससे हम यह क्यों मान लें कि हिन्दुस्तानके सात लाख गाँवोंमें भी जहाँ-जहाँ दोनों जातियाँ बसती हैं, वहाँ-वहाँ दोनों लड़ती हैं? सारे हिन्दुस्तानमें ऐसे अनेक देहात हैं जहाँ हिन्दू और मुसलमान सगे भाइयोंकी तरह रहते हैं, इतना ही नहीं बल्कि वे यह भी नहीं जानते कि कुछ शहरोंमें और उनके नजदीकके गाँवोंमें दोनों लड़ रहे हैं।

अतः धर्म और व्यवहार दोनोंकी दृष्टिसे विचार करते हुए वीसनगरके समझदार हिन्दुओंको समझना चाहिए कि हिन्दुओं और मुसलमानोंमें मेल होना सम्भव और आवश्यक है। मैं असहयोगकी सलाह देनेवाले इन सज्जनको यह भी सूचित कर देना चाहता हूँ कि असहयोगका अर्थ अन्तमें सहयोग करना ही है। असहयोग मलिनताको

धोनेकी क्रिया है। एक ही ईश्वरके इस जगत्‌में किसी भी मानवप्राणीसे सर्वदा असहयोग नहीं किया जा सकता। यह विचार कल्पनाके वाहर है, क्योंकि यह कल्पना ईश्वरके स्वामित्वके विरुद्ध है। इसलिए मैं वीसनगरके हिन्दुओंसे प्रार्थना करता हूँ कि वे वल्लभभाई तथा अव्वास साहवको वुलायें और उनसे कहें कि वे उनका झगड़ा तय करा दें। यदि उन्हें इन असहयोगियोंका विश्वास न हो तो वे भले ही सहयोगियोंको वुला लें। गुजरातमें वहुतसे ऐसे सहयोगी हिन्दू और मुसलमान हैं जो उन्हें मदद देंगे। जवतक वीसनगरके हिन्दू समझौतेके तमाम उपाय न आजमा लें तवतक उन्हें असहयोग करनेका अधिकार नहीं प्राप्त होता।

यह तो हिन्दू भाइयोंके लिए हुआ।

मुसलमान भाइयोंने गहरी भूल की है। मुस्लिम इतिहास कहता है कि इस्लामकी उज्ज्वलता तलवारके जोरपर कायम नहीं रही है। इस्लामकी तलवारने इस्लामकी रक्षा भले ही की हो, परन्तु न्याय और अन्यायका फैसला इस्लामने तलवारसे नहीं किया है। आजतक जगत्‌में कोई धर्म महज तलवारसे जीवित नहीं रह पाया है। चाहे जव तलवार खींच लेनेकी आदत ही खराव है; वह धर्मका नाश करनेवाली है। मैं विधर्मी होते हुए भी यह वात वीसनगरके मुसलमानोंसे अवश्य कहना चाहता हूँ। इस्लामके नामको उज्ज्वल किया है उसके फकीरों, सूफियों और तत्त्वज्ञानियोंने। उन्होंने अपनी या अपने मजहवकी रक्षा तलवारके वलपर नहीं वल्कि अपनी रूहानी ताकतसे की है। इस्लामका इतिहास यही सावित करता है।

वीसनगरके मुसलमानोंको चाहिए कि वे अपनी तलवारें म्यानमें रख लें। वे तलवारके वलसे हिन्दुओंको मस्जिदके पास वाजे वजानेसे नहीं रोक सकते। हिन्दू तीस-चालीस वर्पसे वाजे वजाते आये हैं। उन्हें एकाएक वाजे वजानेसे रोकना कठिन है। यह काम तलवारसे नहीं किया जा सकता। दुनियाका यह कायदा है कि जैसा हमको लगता है वैसा ही दूसरोंको लगता है। यदि हिन्दू मुसलमानोंसे जवरदस्ती कोई हक माँगेंगे तो वे नहीं देंगे। उसी प्रकार मुसलमान भी हिन्दुओंसे जवरदस्ती कुछ नहीं ले सकते। वीसनगरके मुसलमान भाइयोंको इस वातपर शान्त चित्तसे विचार करना चाहिए।

मैं यह नहीं कहता कि चूँकि हिन्दू चालीस वर्षसे वाजे वजाते आ रहे हैं, इसलिए उनका ऐसा करना भूल हो तो भी वाजे वन्द नहीं किये जा सकते। कोई वेजा वात वहुत कालसे होती चली आनेसे जा नहीं हो सकती। और वेजा वात तलवारके वलसे सुधारी नहीं जा सकती। उसका तो एक ही तरीका है — मेलजोल, समझौता। यदि वीसनगरके हिन्दुओंकी कोई भूल हो तो वह उन्हें वतानी चाहिए। उन्हें समझाया-वुझाया जा सकता है। यदि वे न समझें और वाजे वजाते हुए ही जायें तो इससे मुसलमानोंकी नमाज व्यर्थ न हो जायेगी। नमाजका व्यर्थ जाना या सफल होना यह नमाजीके दिलपर निर्भर है। मैंने पढ़ा है कि पैगम्वर साहव जव लड़ाई चल रही हो, तलवारें खनक रही हों, घोड़े हिनहिना रहे हों और तीर सन-सन चल रहे हों, तव भी शान्त चित्तसे एकाग्र होकर नमाज पढ़ सकते थे। उन्होंने मक्काके वुतपरस्तोंके दिल प्रेमके वलसे जीते थे।

पैगम्बर साहब जो उदाहरण छोड़ गये हैं उसे वीसनगरके मुसलमान क्यों भूलते जाते हैं? नमाज पढ़ना उनका फर्ज है, यह तो 'कुरान शरीफ' में पढ़ा है। परन्तु मैंने यह कहीं नहीं पढ़ा और न सुना है कि यदि दूसरे लोग बाजे बजाते हों तो उन्हें उनको जबरन बन्द करा देनेका हक है और बन्द करा देना उनका फर्ज है। वे हिन्दुओंसे प्रेमपूर्वक प्रार्थना कर सकते हैं। यदि हिन्दू न मानते हों तो वे वीसनगरके बाहरके हिन्दुओं और मुसलमानोंकी सहायता ले सकते हैं। मेलजोल और समझौतेके सिवा न तो हिन्दुओंके लिए कोई रास्ता है और न मुसलमानोंके लिए ही।

क्या वीसनगरके मुसलमान स्वराज्य नहीं चाहते? क्या उन्हें गुलामी ही पसन्द है? क्या मुसलमान खिलाफतके प्रति अपना फर्ज अदा कर चुके? क्या गुलामीमें रहनेवाले मुसलमान खिलाफतकी सच्ची सेवा कर सकते हैं? क्या मुसलमान हिन्दुओंसे पक्की दिली-दोस्ती किये बिना खिलाफतको रोशनी दे सकेंगे? अच्छा, यह मान भी लें कि खिलाफतका सवाल उनके सामने नहीं है; फिर भी क्या वे अपने वतन हिन्दुस्तानमें अपने हमवतन हिन्दुओंके साथ हमेशा दुश्मनीके ही नाते रहना चाहते हैं? हम हिन्दुओं और मुसलमानोंके सम्बन्धमें दूसरे कितने ही सवालोंका 'नवजीवन' में विचार करेंगे। परन्तु एक बातका निश्चय तो तुरन्त किया जाना चाहिए। आपसी झगड़ोंका फैसला या तो पंचकी मार्फत या अदालतकी मार्फत ही कराया जा सकता है। हमें धर्मोंके अथवा दूसरी किसी चीजके नामपर एक दूसरेपर तलवार चलाना हराम समझना चाहिए। जिस प्रकार मुसलमानोंसे हमेशा डरते रहना, हिन्दुओंको शोभा नहीं देता उसी प्रकार हिन्दुओंको डराते रहना मुसलमानोंको भी शोभा नहीं देता। डरानेवाला और डरनेवाला दोनों भूल करते हैं। दोमेंसे किसका दर्जा बड़ा है यह मैं नहीं कह सकता। परन्तु यदि मुझे किसी एकको पसन्द करना ही पड़े तो मैं जरूर डरनेवालों के झुण्डमें जा बैठूंगा और डरानेवाले से पूरा-पूरा असहयोग करूँगा। मुझे निश्चय है कि डरनेवाले पर तो खुदा रहम करेगा और डरानेवाले को उसके अहंकारके कारण अपने पास खड़ा न होने देगा।

[गुजरातीसे.]

नवजीवन, ४-५-१९२४

३९१. टिप्पणियाँ

'भैया' का अर्थ

मनुष्यकी ही भाँति शब्दको भी संगदोष लगे बिना नहीं रहता। 'लाला' शब्द अपने मूल रूपमें मानसूचक है। पंजावियोंके प्रति आदरभाव प्रगट करनेके लिए हम 'लाला' शब्दका प्रयोग करते हैं, लेकिन यदि किसी गुजरातीको 'सुरती लाला' कहें तो वह चिढ़ उठेगा। 'बाबू' शब्द भी आदरसूचक है लेकिन अंग्रेज अपने बंगाली नौकरोंको 'बाबू' कहकर बुलाते थे, (अब भी बुलाते हैं या नहीं सो म नहीं जानता), इसलिए यह तिरस्कारसूचक बन गया था। ठीक यही हाल सुन्दर शब्द 'भैया' का हुआ है। 'भैया' का अर्थ 'भाई' है। इसमें जो रस है उसे तो वही व्यक्ति जान सकता है जो संयुक्त प्रान्त अथवा बिहारमें रहा हो। लेकिन हमने बम्बईमें उत्तर भारतकी ओरसे जो हिन्दू नौकर आते हैं उनके लिए इस शब्दका प्रयोग किया और बादमें उत्तरकी ओरसे आनेवाले हिन्दू-मात्रको हम 'भैया' कहने लगे। फलस्वरूप उस ओरके हिन्दू 'भैया' शब्दपर आपत्ति करने लगे हैं और उस ओरके कुछ सज्जनोंने मुझे लिखा कि इसके अनेक दुष्परिणाम भी निकले हैं। 'भैया' शब्दका ऐसा उपयोग न किया जाये इसके लिए वे लोग आन्दोलन भी कर रहे हैं और यह ठीक भी है। उत्तर भारत अथवा भारतके किसी भी भागमें 'भैया' नामकी कोई जाति नहीं है। किस व्यक्तिने किस परिस्थितिमें 'भैया' शब्दका प्रयोग किया, यह हम नहीं जानते। लेकिन इतना तो हम जान सकते हैं कि यह शब्द उत्तरकी ओरसे बम्बई और आसपासके भागोंमें आकर बसे हुए व्यापारी आदि वर्गोंको बहुत अनुचित लगता है। इसलिए हमें इस शब्दका प्रयोग करना छोड़ देना चाहिए। मुझे लिखनेवाले भाई यह भी बताते हैं कि 'नवजीवन' में भी इस शब्दका प्रयोग किया गया है। ज़बरकी कुशलता, उसकी तन्मयता और शुद्ध हृदयता आदिकी स्तुति करते हुए 'नवजीवन' में लिखनेवाले ने ज़बरको 'भैया' नामसे सम्बोधित किया है। आश्रममें ज़बरके प्रति हर व्यक्तिके मनमें अत्यन्त सम्मान-भाव है। तथापि मैं अब समझ गया हूँ कि हमें 'भैया' शब्दका ऐसा स्नेहपूर्वक किया गया प्रयोग भी छोड़ देना होगा।

मिलका कपड़ा

राष्ट्रीय उत्थानके इस आन्दोलनमें छद्म रूपसे ऐसा भी एक प्रयत्न हो रहा है कि मिलके कपड़ेको खादीका स्थान दे दिया जाये। इससे पता चलता है कि खादीके मर्म और उसके स्थानको लोग अभी पूरी तरह समझ नहीं पाये हैं। खादी-प्रवृत्तिका जन्म मिलोंके प्रति द्वेषभावसे नहीं हुआ अपितु हिन्दुस्तानके गरीबोंके प्रति दयाभावसे इसकी उत्पत्ति हुई है। इसका नियोजन स्वराज्यके लिए किया गया है। खादीको मैं स्वराज्यका प्राण मानता हूँ। इसके बिना हिन्दुस्तान जी ही नहीं सकता

और निर्जीव देशके लिए स्वराज्यका क्या अर्थ हो सकता है? आप हिन्दुस्तानकी विराट् रूपमें कल्पना करें। धड़पर स्थित मस्तक और मस्तकमें निहित बुद्धिको इस वातकी क्या खबर हो सकती है कि यह [विराट] शरीर पाँवोंसे जड़ होने लगा है? हम लोग तो जो अपेक्षाकृत भले-चंगे हैं, गाँवोंमें हो रहे नाशको देख नहीं सकते, लेकिन अर्थशास्त्री अथवा गाँवोंमें भ्रमण करनेवाले लोग देख सकते हैं कि हिन्दुस्तान-रूपी विराट् शरीरके पाँव सूखने लगे हैं। और उनके सूखनेकी यह क्रिया लगातार चल रही है। इसे रोकनेका उपाय खादी है, मिलका कपड़ा नहीं। देशी मिलोंके कपड़ेसे विदेशी मिलके कपड़ेका बहिष्कार भले ही सम्भव हो, लेकिन इससे हिन्दुस्तानके करोड़ों भूखोंकी भूख नहीं मिट सकती, कदापि नहीं मिट सकती। यह तो केवल खादीके द्वारा ही सम्भव है। हिन्दुस्तानमें पैसेकी कमी है, क्योंकि कामकी कमी है। शहरोंमें जो मजदूरी मिलती है वह पर्याप्त नहीं है। सात लाख गाँवोंको स्वतन्त्र करवाना है। गाँवोंमें ही ग्रामीणोंको उपयुक्त धन्धा मिलना चाहिए। ऐसा धन्धा केवल चरखा ही प्रदान कर सकता है। इसीलिए मैं उसे अन्नपूर्णा कहता हूँ। हमें उसीका प्रचार करना है उसका अर्थात् चरखेसे सम्वन्धित आगे और पीछेकी सभी क्रियाओंका। उसमें हजारों व्यक्ति काम करने लगें तभी हम उसका प्रचार करनेमें सफल हो सकते हैं। हमारा काम तो केवल खादी-आन्दोलनको संगठित करना है।

मिलें तो पहलेसे ही संगठित हैं। उन्हें स्वयंसेवकोंकी जरूरत नहीं है। हीरेका व्यापारी अपने मार्गको खोज निकालता है, उसकी मददके लिए स्वयंसेवक मण्डलकी स्थापना नहीं करनी पड़ती। ठीक यही वात मिलोंके सम्बन्धमें है। देशी मिलें चाहें तो विदेशी कपड़ेको रोक सकती हैं। यदि वे स्वार्थको गौण और हिन्दुस्तानके हितको प्रधान पद दें, अपने व्यापारमें प्रामाणिकता लायें, नफेकी ओर कम ध्यान देकर मालकी उत्तमताकी ओर अधिक ध्यान दें तो इसमें सन्देह नहीं कि आज उनके मालकी जितनी खपत होती है उससे कहीं अधिक हो। वस्तुतः देखा जाय तो खादी इस समय मिलोंके साथ होड़ नहीं करती है। अप्रत्यक्ष रूपसे भले ही खादीका कुछ असर हुआ हो, लेकिन हम जब अभीतक करोड़ रुपयेकी खादी नहीं बना पाये हैं तब उसके होड़ करनेकी वात ही कहाँ उठती है? खादीको अभी स्थायी स्थान नहीं मिला है। उसके लिए जबतक भगीरथ प्रयत्न नहीं किया जायेगा तबतक वह अपने प्राचीन साम्राज्यका उपभोग नहीं कर सकती। ऐसी हालतमें मेरी समझमें नहीं आता कि खादीके साथ मिलके कपड़ेकी वात भी कैसे हो सकती है।

कांग्रेस तो मूक लोगोंकी आवाज है अथवा होनी चाहिए। कांग्रेसका कार्यक्षेत्र तो वस्तुतः गरीबोंके बीचमें है, लेकिन वह उनके पास नहीं पहुँचती, पहुँच भी नहीं सकती। इसलिए जो लोग अनजाने ही गरीबोंपर सवारी कर रहे हैं उन्हें वह सावधान करती है, उनके लिए खादीका उद्योग कर रही है। कहनेका तात्पर्य यह कि कांग्रेसके अनुयायियोंके लिए तथा जिन लोगोंतक कांग्रेसकी आवाज पहुँच सकती है उनके लिए मिलोंका कपड़ा बिलकुल त्याज्य है, इसमें मुझे तनिक भी सन्देह नहीं है।

इस कार्यमें मैं तो हमेशा मिल-मालिकोंकी सहायता माँगता आया हूँ। खादीकी प्रवृत्तिका वे हृदयसे स्वागत करें, उसे प्रोत्साहन दें, स्वयं मिलोंका कपड़ा पहननेके

बदले खादी पहनकर गरीबोंके साथ एकरूप हो जायें। ये दो विरोधी चीजें नहीं हैं। देशी मिलोंके कपड़ेके लिए आज तो हिन्दुस्तानमें जगह है। मान लीजिए प्रभु-कृपासे समस्त हिन्दुस्तान केवल खादीमय बन भी जाता है तो इसमें मिल-मालिकोंको भय किस बातका है? उनका विदेशी व्यापार तो है ही। मान लीजिए विदेशोंके लोग भी अपनी कपड़ेकी जरूरतको स्वयं ही पूरा करने लगें; तो भी क्या? मिलोंके मालिकोंमें धन उपार्जन करनेकी जो क्षमता है वह कोई नष्ट होनेवाली नहीं है। देशमें हमेशा धनकी जरूरत रहेगी और इसलिए देशमें धनाढ्योंके लिए स्थान भी हमेशा रहेगा। उनका हृदय-परिवर्तन हो, इतना ही पर्याप्त है। द्रव्य-लोभमें इस समय दयाका जो अंश है उस समय इसकी अपेक्षा वह अधिक होगा। आज नीति द्रव्यके अधीन है, उस समय द्रव्य नीतिके अधीन होकर रहेगा। इसमें धनवानोंका भला है और आम लोगोंका भला तो है ही।

जबतक खादीका सर्वत्र प्रचार नहीं होता तबतक ऐसा सुयोग असम्भव है और खादीके सार्वत्रिक प्रचारको सम्भव बनानेके लिए यह बात निर्विवाद रूपसे मान ली जानी चाहिए कि जो लोग खादी-प्रचारके वर्तमान आन्दोलनमें काम कर रहे हैं उनके लिए खादीके सिवा किसी अन्य वस्त्रको स्थान नहीं है। यह बात सबको दीपक-जैसी स्पष्ट दिखाई नहीं दी, इसीसे तो खादीके प्रचारकी गति धीमी है। चरखा थोड़े दिन चलता है और फिर बन्द हो जाता है; फिर चलता है और फिर बन्द हो जाता है; इसीलिए लोग कपासका संग्रह नहीं करते, इसीलिए पींजनेका शौक भी नहीं बढ़ा है, इसीलिए अनेक लोग केवल दिखावेकी खातिर ही खादी पहनते हैं और घरमें देशी अथवा विदेशी मिलके कपड़ेका उपयोग करते हैं। और जबतक यह अनिश्चितता चलती रहेगी तबतक देशी मिलोंके कपड़ेका परित्याग करनेकी बातपर जोर देनेकी जरूरत बनी रहेगी।

स्वर्गीय रमाबाई रानडे

रमाबाई रानडेका नाम दक्षिणमें जितना प्रसिद्ध है उतना गुजरातमें नहीं है। न्यायमूर्ति स्व० रानडेके नामको इस महिलाने शोभान्वित किया है। उनकी मृत्युसे हिन्दू जगतको भारी क्षति पहुँची है।

रमाबाईने अपना वैधव्य-जीवन जिस सुन्दर ढंगसे बिताया वैसे बहुत कम बहनोंने बिताया होगा। पूनाकी सेवासदन-जैसी दूसरी संस्था समस्त भारतमें ढूँढ़े नहीं मिलेगी। इस सेवासदनमें एक हजार स्त्रियों और लड़कियोंको अनेक प्रकारका शिक्षण मिलता है। सेवासदनको आज जो प्रतिष्ठा प्राप्त है वह रमाबाईकी अनन्य भक्तिके बिना यह संस्था कभी प्राप्त नहीं कर सकती थी। रमाबाईने एक ही कार्यके लिए अपना जीवन अर्पित कर दिया।

वैधव्यका अर्थ ही अनन्य भक्ति है। पातिव्रत्य अर्थात् शुद्ध वफादारी। सामान्य वफादारीका सम्बन्ध देहके साथ होता है इससे देहके अन्तके साथ उसका भी अन्त हो जाता है। वैधव्यकी वफादारी पतिकी आत्माके प्रति होती है। वैधव्यको इस तरह धार्मिक महत्त्व प्रदान कर हिन्दू धर्मने यह बात सिद्ध कर दी है कि विवाहका सम्बन्ध

वस्तुतः देहके साथ नहीं, आत्माके साथ होता है। रमाबाई रानडेने आत्माका वरण किया था इसलिए आत्माके उस सम्बन्धको उन्होंने अखण्डित रखा और इसी कारण जो कार्य उनके पतिको प्रिय थे उनमें से जो काम वे स्वयं कर सकती थीं उसे उन्होंने अपने हाथमें ले लिया तथा उसकी सिद्धिके लिए अपना सर्वस्व अर्पण करके समाजके समक्ष वैधव्यका सम्पूर्ण अर्थ प्रगट किया। ऐसा करके रमाबाईने स्त्री-जातिकी भारी सेवा की है। जब मैं ससून अस्पतालमें था तब कर्नल मैडॉकने मुझे बताया था कि अच्छी भारतीय नर्सें केवल इसी अस्पतालमें प्रशिक्षण प्राप्त करती हैं और ये सेवासदन-की मार्फत तैयार होती हैं और सारे हिन्दुस्तानसे उनकी माँग आती रहती है। विधवाएँ यदि कार्यक्षेत्रमें उतरें तो उनके लिए कार्य करनेके अनेक स्थान हैं। एक चरखेका काम ही सैकड़ों धनिक विधवाओंको सारा समय व्यस्त रख सकता है। और ऐसी कौन विधवा होगी जिसने यह अनुभव न किया हो कि चरखा गरीबोंका बेली है। यह तो मैंने एक सर्वव्यापक और परम कल्याणकारी कार्य बताया। ऐसे अनेक उपाय हैं कि जिसमें गरीब विधवाओं और अन्य बहनोंको तैयार करनेमें धनिक विधवाएँ अपना समय लगा सकती हैं।

सूपा[1] परगनेके किसान

एक सज्जन कालिआवाड़ीसे[2] निम्नलिखित पत्र[3] लिखते हैं:

यह पत्र पढ़ने और विचार करने योग्य है। इस पत्रसे पता चलता है कि देशमें सोना पड़ा हुआ है। किसान अपने लाभकी बातको नहीं पहचानते। यह खेद-जनक तो है लेकिन आश्चर्यजनक नहीं। बहुत समयसे चले आ रहे अपने अभ्यासके कारण किसान अपने हितका सरल अर्थशास्त्र भी नहीं समझ सकते। उन्हें अपने कपासके जितने अधिक दाम मिलते हैं उतने ही अधिक दाम उन्हें अन्तमें कपड़ेके भी देने पड़ेंगे, यह तो अत्यन्त सरल गणितशास्त्र है, लेकिन यह बात वे किस तरह समझ सकते हैं? यदि शिक्षकने किसी बच्चेको गलत तरीकेसे हिसाब करना सिखाया हो तो वह बच्चा गलत उत्तर ही निकालेगा। दूसरा शिक्षक यदि उसकी भूल सुधारने-की कोशिश करे तो बच्चा हँस पड़ेगा। वैसी ही हमारी दीन-दशा आज है। हमने गलत हिसाब करना ही सीखा है इसलिए सही गलत लगता है और गलत सही। ऐसी ही वस्तुको शंकराचार्यने माया कहा है।

स्वयंसेवकोंको ऐसी स्थितिमें धीरज रखना चाहिए, इसके सिवा और कोई चारा नहीं है। किसानपर कदापि क्रोध नहीं करना चाहिए। आज उनकी जो दशा है वही दशा कल हमारी थी। किसान अपने स्वार्थको जरूर समझेंगे। वे घरकी आवश्यकता-नुसार घरमें अनाज रखते हैं तो फिर अपनी जरूरत जितनी कपास भी क्यों न रखेंगे? स्वयं धनवान होनेके कारण यदि वे कातते अथवा बुनते नहीं हैं तो भले ही

१ व २. गुजरातके सूरत जिलेके गाँव।

३. पत्र यहाँ उद्धृत नहीं किया गया है। इसमें लेखकने सूपा परगनेके किसानोंकी अपने गाँवमें पैदा हुई अच्छी कपाससे सूत कातनेकी अनिच्छाका चर्चा की थी।

दूसरोंसे कतवायें और बुनवायें। अनाजके सम्बन्धमें ऐसा उलटा न्याय धनवान भी लागू नहीं करते। वे तो अपने घरमें ही पकाते हैं, बाजारसे भोजन नहीं मँगवाते, इतना ही नहीं बल्कि बाजारसे भोजन मँगाना गृहस्थके लिए अशोभनीय माना जाता है। ठीक ऐसी ही बात पहले सूतके सम्बन्धमें भी मानी जाती थी। अब फिर ऐसा ही क्यों नहीं हो सकता?

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ४-५-१९२४

३९२. चरखेके प्रति उदासीनता

एक सज्जन काशीजीसे लिखते हैं कि बोर्ड इत्यादिमें हमारे लोगोंके जानेसे कुछ लाभ नहीं हुआ; बल्कि रचनात्मक काम थम गया है। वे यह भी लिखते हैं कि इन लोगोंकी चरखेके प्रति उदासीनता है। बहुतेरे लोगोंका विश्वास भी चरखेमें नहीं है। जब इन सज्जनोंसे कुछ कहा जाता है तो वे उत्तर देते हैं — हम गांधीजीके कहनेपर बोर्डमें गये हैं।

प्रथम बात तो यह है कि मैं नहीं चाहता कि कोई शख्स मेरे कहनेसे कुछ भी करे। जो कुछ करे अपनी ही रायके मुताबिक करे। हम स्वतन्त्र बनना चाहते हैं। हम किसी व्यक्तिके, फिर वह कैसा ही प्रभावशाली हो, गुलाम बनना नहीं चाहते। मेरी राय तो ऐसी है कि लोकल बोर्ड इत्यादिमें जानेकी खास आवश्यकता नहीं है। यदि हम जायें तो सिर्फ रचनात्मक काम करनेके इरादेसे। इसलिए यदि यह काम भली-भाँति न हो सके तो हमें ऐसी संस्थाका त्याग कर देना चाहिए।

मैं जानता हूँ कि चरखेकी शक्तिमें बहुतसे असहयोगियोंका अविश्वास है। उनको विश्वास दिलानेका एक ही उपाय है कि जिनको विश्वास है वे अधिक उत्साहसे खुद चरखा चलायें और दूसरोंको प्रोत्साहित करें। मेरा तो दृढ़ विश्वास है कि चरखेके बिना स्वराज्यका मिलना और उसे कायम रखना असम्भव है। हाँ, एक बात है। सम्भव है कि स्वराज्यके मानी हम सबके दिलमें एक न हों। मैं तो एक ही अर्थ करता हूँ — हिन्दुस्तानकी कंगालीका मिटना और प्रत्येक स्त्री-पुरुषका आजाद बनना। हिन्दुस्तानके भूखसे पीड़ित भाई-बहनोंसे पूछो। वे कहते हैं कि हमारा स्वराज्य हमारी रोटी है। सिर्फ काश्तकारीसे हिन्दुस्तानके करोड़ों किसान अपना पेट नहीं भर सकते। उनके लिए किसी-न-किसी दूसरे उद्यमकी सहायता आवश्यक है। ऐसा सार्वजनिक उद्यम चरखेके द्वारा ही मिल सकता है।

"भूखे भगति न होइ गोपाला"

दूसरे सज्जन लिखते हैं कि जिन्होंने असहयोग-आन्दोलनके कारण अपना धन्धा छोड़ दिया है उनके निर्वाहका कुछ-न-कुछ प्रबन्ध होना चाहिए। इस प्रश्नका जल्दी हल होना मुश्किल है, और नहीं भी है। यदि सब लोग रचनात्मक कार्यका मर्म समझ

लें तो भूखका प्रश्न उठ ही नहीं सकता। यदि रचनात्मक-कार्यमें श्रद्धा न हो तो भूखका प्रश्न सदाके लिए रह जायेगा। मेरा दृढ़ मन्तव्य है कि जिनको चरखे और करघेमें विश्वास है उन्हें आजीविका मिल सकती है। देशमें मध्यम वर्गकी जो कठिनाइयाँ हैं उनका इलाज उद्यमसे ही हो सकता है। हमारे अन्दर कितने ही बुरे रिवाज हैं। उन्हें हमको छोड़ना होगा। एक आदमी यदि मजदूरी करे और दूसरे दस कुछ न करें तो बुनाईके द्वारा हमें आजीविका नहीं मिल सकती। और ऐसा भी न होना चाहिए कि सब लोग महासभाका ही मुंह देखते रहें। स्वराज्यमें यह भी तो होना चाहिए कि हम सब स्वावलम्बी बनें। इसीका नाम आत्मविश्वास है। भक्तवत्सल गोपालने अपनी 'गीता'में प्रत्येक मनुष्यके लिए आजीविकाकी एक शर्त रखी है। जो भूख मिटाना चाहता है उसे यही करना चाहिए। यज्ञके कई अर्थ हैं। एक आवश्यक अर्थ मजदूरी है। जो मनुष्य मजदूरी नहीं करता और खाता है उसको भगवान्‌ने चोर कहा है।

हिन्दी नवजीवन, ४-५-१९२४

३९३. पत्र : वसुमती पण्डितको

रविवारकी रात
वैशाख सुदी १ [४ मई, १९२४][1]

चि० वसुमती,

मुझे पत्र लिखना बन्द करनेकी जरूरत नहीं है। जब तुम्हारा पत्र नहीं मिलता तब मैं उलटा विचारमें पड़ जाता हूँ। इतना ही काफी है कि मुझे अपनी फुरसतसे उत्तर देनेकी छूट मिल जाये। मेरा स्वास्थ्य सुधरता जा रहा है।

बापूके आशीर्वाद

मूल गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ६१४) से।
सौजन्य : वसुमती पण्डित

१. स्वास्थ्यके उल्लेखसे ऐसा लगता है कि यह पत्र १९२४ में लिखा गया होगा। इसके अतिरिक्त वैशाख सुदी १ रविवार ४ मई, १९२४ को पड़ी थी।

३९४. पत्र : जमनालाल बजाजको

पाम वन, जुहू
पो० अन्धेरी
रविवार [४ मई, १९२४ या उसके पश्चात्][1]

चि० जमनालाल,

तुमको दुःख हुआ उससे मुझे भी हुआ। मैंने उस खतमें[2] 'चिरंजीव' विशेषणका प्रयोग नहीं किया क्योंकि वह मैंने खुला भेजा था। उसमें 'चि०' विशेषण सब लोग पढ़ें, यह उचित होगा या नहीं इसका निर्णय उस समय मैं नहीं कर सका। इससे मैंने 'भाई' शब्दका प्रयोग किया। तुम चि[रंजीव] होनेके योग्य हो या नहीं, अथवा मैं पिताका स्थान लेने लायक हूँ या नहीं, इसका निर्णय कैसे हो? तुम्हें जैसे अपने बारेमें शंका है, वैसे ही मुझे अपने बारेमें है। यदि तुम अपूर्ण हो तो मैं भी अपूर्ण हूँ। पिता बननेसे पहले मुझे अपने बारेमें ज्यादा विचार करना था। तुम्हारे प्रेमके वश होकर मैं पिता बना हूँ। ईश्वर मुझे इसके योग्य बनाये। यदि तुममें कमी रहेगी तो वह मेरे स्पर्शकी कमी होगी। इसका मुझे विश्वास है कि हम दोनों प्रयत्न करते हुए अवश्य सफल होंगे। इतनेपर भी यदि निष्फलता हुई तो वह भगवान्, जो कि भावनाका भूखा है और हमारे अन्तःकरणको देख सकता है, हमारी योग्यताके अनुसार हमारा फैसला करेगा। इसलिए जबतक मैं ज्ञानपूर्वक अपने अन्दर मलिनताको स्थान नहीं देता तबतक तुमको चिरंजीव ही मानता रहूँगा।

आज एक बजेतक मौन है। पं० सुन्दरलालको छः बजे आनेको कहा है। उनसे मिलनेके बाद यदि तुम्हें बुलानेकी जरूरत मालूम हुई तो तार करूँगा।

आशा है तुम्हें वहाँकी जलवायु माफिक आ रही होगी। मणिबहन हजीरा गई है। राधा पहलेसे काफी अच्छी है, ऐसा कहा जा सकता है। कीकीबहन भी अच्छी है।

बापूके आशीर्वाद

मूल गुजराती पत्र (जी० एन० २८४७) की फोटो-नकलसे।

१. यह जिस पत्रका उत्तर है वह ३ मईका था; उसके बादका रविवार ४ मईको था।
२. देखिए "पत्र: जमनालाल बजाजको", २-५-१९२४ या उसके पश्चात्।

३९५. पत्र : मणिबहन पटेलको

रविवार [४ मई, १९२४ के पश्चात्][1]

चि० मणि,

तुम्हारा पत्र मिला। यह मेरा चौथा पत्र है। मैं एक पत्र और दो कार्ड लिख चुका हूँ। तुमने एक ही कार्डकी पहुँच दी है।

आत्म-विश्वास सच्चा तब कहा जायेगा जब वह निराशाके समय भी अचल रहे। सत्य और अहिंसामें मेरा विश्वास हो तो मैं नाजुक समयमें भी उनका पालन करूँगा। भले ही बुखार आये तो भी आशा हरगिज न छोड़ी जाये। हम गाफिल न रहें, परन्तु चिन्ता न करें। 'त्यागकी मूर्ति'के[1] बारेमें तुम्हारी आलोचना देखनेको मैं आतुर हो रहा हूँ। मुझे पत्र लिखना हरगिज न भूलना।

तुम्हारे वहाँ और कोई आकर रह सके ऐसी गुंजाइश है क्या? वहाँ वसुमती बहनको भेजनेका जी होता है।

बापूके आशीर्वाद

[गुजरातीसे]
बापुना पत्रो : मणिबहेन पटेलने

३९६. पत्र : मणिबहन पटेलको

सोमवार, ५ मई, १९२४

चि० मणि,

कल तुम्हारे पत्रकी बाट उसी तरह देखी, जैसे पपीहा बरसातकी देखता है। आज सुबह प्रार्थनाके बाद तुम्हारा पहला पत्र देखा। देवदासने कहा कि कल शामको मणिबहनका पत्र मिला।

भाई . . . लिखते हैं कि थकावट रहनेपर भी वहाँ तबीयत यहाँसे अधिक अच्छी है। इसी तरह चलता रहे तो हम सब वहाँ आ जायेंगे। दुर्गाबहनकी तबीयत भी वहाँ ठिकाने आ जाये तो कितना अच्छा हो। उससे कहना कि मुझे पत्र लिखे। महादेवभाईको मद्रास नहीं भेजा। वे वापस साबरमती पहुँच गये हैं।

यहाँसे जो-कुछ चाहिए वह मँगवा लेना। माँगे बिना तो माँ भी नहीं परोसती। सच तो यह है कि माँ ही नहीं परोसती, दूसरोंको शिष्टता दिखानी पड़ती है। माँको

१. इस पत्रमें उल्लिखित "त्यागकी मूर्ति" शीर्षक गुजराती लेख, ४ मई, १९२४ के **नवजीवन**में प्रकाशित हुआ था।

शिष्टता दिखानेकी फुर्सत ही नहीं होती। माँ विवेककी मूर्ति है। तुम्हें मालूम है कि मैं ऐसी 'माँ' बननेकी शक्ति-भर कोशिश कर रहा हूँ।

राधा और कीकीबहन ठीक हैं, ऐसा कहा जा सकता है। दोनोंका तापमान ९९° से अधिक नहीं बढ़ता।

शौकत अली दो दिन रहकर गये।

बापूके आशीर्वाद

मणिबहन वल्लभभाई पटेल
खीमजी आसर वीरजी सेनेटोरियम
हजीरा, सूरत होकर

[गुजरातीसे]
बापुना पत्रो : मणिबहेन पटेलने

३९७. पत्र : मणिबहन पटेलको

[५ मई, १९२४ के पश्चात्][1]

चि० मणि,

तुम्हारी डाक नियमपूर्वक आने लगी है। इससे मुझे शान्ति रहती है। धीरज और आत्म-विश्वास रखना, दवासे भी विश्वास ज्यादा फायदा करेगा। प्रभुदासका पंचगनी जाना स्थगित कर दिया है। चि० राधा ठीक है। प्रार्थनामें शामको आती है। कीकीबहन जैसी थी वैसी ही है। चि० गिरधारी[2] कल अहमदाबाद गया।

बापूके आशीर्वाद

चि० मणिबहन वल्लभभाई पटेल
हजीरा, सूरत होकर

[गुजरातीसे]
बापुना पत्रो : मणिबहेन पटेलने

१. पत्रमें राधाकी तबीयतका उल्लेख है जिससे मालूम होता है कि यह मणिबहनके नाम लिखित ५ मईके पत्रके बाद लिखा गया होगा। देखिए पिछला शीर्षक।

२. आचार्य कृपलानीका भतीजा।

३९८. पत्र : मु० रा० जयकरको

अन्धेरी
मंगलवार, ६ मई, १९२४

प्रिय श्री जयकर,

दलित वर्ग मिशनवाले श्री भोंसलेने मुझे लिखा है कि वे लोग जो मन्दिर और छात्रावास बनवाने जा रहे हैं उसके सम्बन्धमें सारी जानकारी मुझे आप देंगे। अगर आपको इस बातमें दिलचस्पी हो तो आपका मार्गदर्शन पाकर मैं अनुगृहीत होऊँगा। वे चाहते हैं कि मैं इस योजनाके लिए अंशतः अथवा पूर्णतः धनकी व्यवस्था करूँ। मैं समझ नहीं पा रहा हूँ कि क्या करूँ। आशा है, श्रीमती जयकरका स्वास्थ्य सुधर रहा होगा।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
द स्टोरी ऑफ माई लाइफ

३९९. पत्र : कमर अहमदको

पोस्ट अन्धेरी
६ मई, १९२४

प्रिय भाई,

आपका पत्र देखा। उसपर कोई तारीख नहीं है। लेकिन मैं जानता हूँ, यह कुछ समय पहले ही यहाँ आ गया था। खेद है कि अबतक मैं इसे पढ़ नहीं सका था।

वकीलों और स्कूलोंके शिक्षकोंकी ओरसे मैं उदासीन नहीं हूँ। उनके साथ मेरी पूरी सहानुभूति है और यही कारण है कि मैं अपने-आपको उन्हें कोई सलाह देनेकी स्थितिमें नहीं पाता। अगर कोई व्यक्ति किसी बातकी पूरी प्रतीति करके उसके सम्बन्धमें अपना दृष्टिकोण बदल दे तो उसके लिए इसमें लज्जाकी बात नहीं मानी जा सकती। जिस वकील या शिक्षकने अपना पेशा मेरे कहनेसे छोड़ा हो, और बादमें यह देखकर कि मैं भरोसे लायक नहीं रह गया हूँ यदि फिर अपने पेशेको अपना लेता है तो वह और भी कम दोषी ठहरेगा। अलबत्ता, मुझे यह जानकर बहुत दुःख होगा, फिर भी वकीलों

और शिक्षकोंने खुद तो कुछ सोचा-समझा नहीं और मेरे कहने-भरसे ही वे इस आन्दोलनमें कूद पड़े। यद्यपि मैंने बहुत जोर देकर यह कहा था कि कोई भी जबतक असहयोग करना आवश्यक और उचित न समझे तबतक वैसा न करे। जिस व्यक्तिकी अन्तरात्मा स्वीकार करती है कि ब्रिटिश न्यायालयोंमें वकालत करना या किसी ब्रिटिश स्कूलमें शिक्षण कार्य करना गलत है उसे मैं फिरसे अपने पेशेको अपनानेके लिए कैसे कह सकता हूँ? और जिनकी अन्तरात्मा उन्हें ऐसा करनेसे रोकती नहीं है उन्हें मैं अपने पेशेको फिरसे अपनानेसे कैसे और क्यों रोकूँ? मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि वकालत करते हुए भी बहुतसे वकील काफी उपयोगी सार्वजनिक कार्य कर रहे थे। जो काम हमें अब करनेकी जरूरत है, वह मेरे विचारसे, अबतक हम जो-कुछ कर रहे हैं उससे बहुत ऊँचा है और उसके लिए अधिक त्यागकी आवश्यकता है। किसी छोटे स्थानका कोई वकील, जो वकालत करके भी सिर्फ अपने जीवन-यापन-भरको ही कमा रहा हो, अगर अच्छा बुनकर बन जाये तो अब भी वह उतना कमा सकता है और साथ ही सार्वजनिक कार्य भी कर सकता है। मैं जो-कुछ कहना चाहता हूँ, पता नहीं, वह अब भी आपके सामने साफ हुआ या नहीं।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

श्रीमान् कमर अहमद
दैनिक 'खिलाफत'
जैकब सर्किल
बम्बई, पोस्ट नं० ११

अंग्रेजी पत्र (एस० एन० ८७८६) की फोटो-नकल तथा जी० एन० ५११० से।

४००. पत्र : के० माधवन् नायरको

पोस्ट अन्धेरी
६ मई, १९२४

प्रिय माधवन् नायर,

आपका पत्र[1] मिला; साथमें वह कागज भी जिसमें आपने वाइकोम संघर्षके बारेमें अपने विचार दिये हैं। किसी भी ईमानदाराना मतभेदपर नाराज होनेका सवाल ही नहीं उठता। एक ऐसी स्थितिमें जब कि सब ओरसे लोग आँख मूँदकर सहमति व्यक्त कर रहे हैं, आपका यह मतभेद मुझे सूर्यकी किरण-जैसा लगा। इसके लिए आपको बधाई देता हूँ और मैं आपसे कहूँगा कि जबतक आपको दूसरे पक्षकी बात सचमुच ठीक न लगे तबतक आप अपने इसी विचारपर दृढ़ रहें।

अब आपके उक्त लेखके बारेमें। आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि आपने 'सोशल रिफॉर्मर' के जिस अंककी चर्चा की है, उसे मैंने अबतक पढ़ा नहीं है। श्री नटराजन्की चीजें पढ़नेमें मुझे बराबर आनन्द आता है। मैंने अपनी फाइलमें वह अंक रख भी छोड़ा है लेकिन अभीतक पढ़ नहीं पाया हूँ। मेरा दुर्भाग्य है कि मैं जब सबसे अधिक सम्पादन-कार्य कर रहा होता हूँ तब अखबार कमसे-कम पढ़ता हूँ। अब इसके गुण-दोषपर विचार करें। क्या आपको मालूम है कि जब केशव मेननने यह आन्दोलन शुरू किया तब उन्होंने मुझे बताया था कि सामान्य हिन्दू जनता इसके साथ है? बादमें मुझे अन्य कार्यकर्त्ताओंके जो पत्र मिले उनसे भी मेरे मनपर यही छाप पड़ी। सत्याग्रह वह करता है जिसको लगता है कि सत्यको पैरों तले रौंदा जा रहा है। गलत चीजके खिलाफ अपनी लड़ाई वह सिर्फ ईश्वरके भरोसे छेड़ता है। वह किसी भी दूसरी सहायताका मुंह नहीं जोहता। उचित समय आनेपर सहायता अपने-आप मिल जाती है और अगर उचित होती है तो सत्याग्रही उसे स्वीकार कर लेता है। सत्याग्रही भूखा रहकर और इससे बुरी स्थिति झेलकर भी अकेले लड़नेके लिए वचनबद्ध होता है। मेरा लेख[2] कृपया फिर पढ़ें, तब शायद आप मेरा आशय जितना अब समझ पाये हैं, उससे कहीं अधिक समझ जायेंगे। सत्याग्रहमें 'जो हो गया, सो हो गया' जैसी कोई चीज नहीं होती। अगर आपको लगे कि किसी

१. १ मई, १९२४ के **यंग इंडिया**में वाइकोम सत्याग्रहके सम्बन्धमें गांधीजीका एक लेख प्रकाशित हुआ था, जिसपर अपने विचार व्यक्त करते हुए माधवन् नायरने उन्हें २ मईको एक लम्बी टिप्पणी भेजी थी। इस टिप्पणीके साथ भेजे गये पत्रमें उन्होंने लिखा था: "आशा है आप अपनी सहज उदारतावश इस मतभेदके लिए क्षमा करेंगे। मेरा हार्दिक निवेदन है कि आप वाइकोम सत्याग्रहपर अधिक ध्यान दें और हमें सलाह दें कि यह संघर्ष किस ढंगसे चलाया जाये।" श्री नायरने अपनी टिप्पणीकी प्रतियाँ मद्राससे प्रकाशित **हिन्दू** और **स्वराज्य**को भी भेजी थीं।

२. देखिए 'वाइकोम सत्याग्रह', पृष्ठ ५४७-५२।

अवस्थामें आपने भूल की है तो आप कभी भी अपना पैर पीछे हटा सकते हैं। अगर त्रावणकोरमें जनमत अनुकूल नहीं है तो आपको बाहरी प्रदर्शनों द्वारा जनताको भयभीत करनेकी कोशिश नहीं करनी चाहिए। आपको धीरजके साथ प्रतीक्षा करनी चाहिए और कष्ट सहन करने चाहिए। आप स्वयं अपनी अवस्था दलित वर्गके लोगों-जैसी बना लें। उनके साथ रहें और उन्हें जो जलालत झेलनी पड़ती है उसे आप भी झेलें। आप पहले व्यक्ति हैं, जिसने मुझे बताया है कि त्रावणकोरमें जनमत आप लोगोंके साथ नहीं है।

अगर आप एक प्रवुद्ध और जागरूक हिन्दूकी तरह धर्मान्ध हिन्दुओंके खिलाफ लड़ रहे हैं तो आपका यह परम कर्त्तव्य है कि आप गैर-हिन्दुओंसे सहायता न माँगें, इतना ही नहीं बल्कि अगर सहायता मिले भी तो उसे अस्वीकार कर दें। इस सीधी-सादी बातकी सचाई सिद्ध करनेकी भी मैं कोई जरूरत नहीं समझता। मेरा खयाल है, आपके लेखमें उठाई गई सारी शंकाओंका अब मैंने उत्तर दे दिया है। मैंने अत्यन्त विनम्र भावसे, सत्याग्रहको मैं जिस रूपमें जानता हूँ उसके अनुसार, इस सवालपर अपने विचार आपके सामने प्रस्तुत कर दिये हैं। और चूँकि इस सत्याग्रह शब्दका रचयिता मैं ही हूँ, इसलिए इसका अर्थ बतानेका अधिकार भी आप मुझे देंगे हीं। अगर आप इस अर्थसे सहमत न हों तो उचित यही होगा कि आप कोई दूसरा शब्द ढूंढ़ निकालें, जो आपका आशय प्रकट कर दे। लेकिन बेशक यह प्रश्न तो परिभाषाका है। किसी शब्दको गढ़नेवाला व्यक्ति भी यह दावा नहीं कर सकता कि उसका जो अर्थ वह लगाता है, वही सही है; उसपर उसका कोई एकाधिकार तो नहीं होता। एक बार मुंह या कलमसे निकल जानेके बाद शब्द अपने रचयिताकी सम्पत्ति नहीं रह जाते।

इस पत्रको लेकर आपके मनमें जो भी शंका उठे, मुझे लिख भेजें। सड़कोंपर जगह-जगह रुकावटें [बैरिकेड] खड़ी कर दी गई हैं और फिर भी सरकार लोगोंको गिरफ्तार करनेके लिए तैयार नहीं है। इन तथ्योंको ध्यानमें रखते हुए आगे क्या कार्यक्रम हो, इस विषयपर मैंने जान-बूझकर कुछ नहीं कहा है। प्रारम्भिक बात तो अभी यह है कि सत्याग्रह और उसके फलितार्थोंको समझा जाये। यह हो जानेपर ही, उसकी स्वीकृत व्याख्याके अनुसार भावी कार्यक्रम तय करनेमें आसानी होगी, लेकिन तभी; उससे पहले नहीं।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत के० माधवन् नायर
वकील
कालीकट

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १०३०४) की फोटो-नकल तथा (जी० एन० ५६७४) से।

४०१. पत्र : वालजी गोविन्दजी देसाईको

अन्धेरी
मंगलवार [६ मई, १९२४][1]

भाईश्री वालजी,

तुम्हारा पत्र मिला। मैं उनको लिख रहा हूँ कि वे प्रूफ तुम्हें भेजें।[2] मैं उन्हें यह भी लिख रहा हूँ कि हिज्जे जैसे हैं वैसे ही रखें। मेरे पास नीली पेंसिल नहीं रहती। यदि प्रत्येक विद्वान् अपने ही हिज्जोंका आग्रह करे तो गाँवोंके लोग क्या करेंगे? तुम्हारे किये हुए हिज्जे ही ठीक हैं; इसका कारण लिखो।

अपने भाईका नाम और पता भेजो। मैं उनसे पत्र-व्यवहार करना चाहता हूँ।

यदि तुम्हारे पास कपड़ा काफी न हो तो नया कपड़ा न खरीदनेकी प्रतिज्ञा तुमने नहीं की है। मैंने ऐसे लोग देखे हैं जो पास पेड़की छाया होनेपर भी धूपमें तपते रहते हैं। क्या तुम भी ऐसे ही लोगोंमें से हो?

मोहनदासके वन्देमातरम्

[पुनश्च:]

तुम अपनी शक्तिसे अधिक एक भी काम हाथमें लो, मैं यह भी नहीं चाहता। मुझसे जब कोई पूछता है तो मैं उसे योग्य व्यक्तियोंके नाम बता देता हूँ। बस मेरा उत्तरदायित्व इतना ही है।

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें मूल गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ६००१) से।
सौजन्य : वालजी गोविन्दजी देसाई

४०२. पत्र : स्वामी आनन्दानन्दको

मंगलवार [६ मई, १९२४][3]

भाईश्री आनन्दानन्द,

यह है वालजीका मंगलाचरण। वे प्रूफ देखना चाहते हैं। वे अपने ही हिज्जे भी कायम रखना चाहते हैं। 'दुधारू गायकी' लात भी प्यारी होती है, इस उक्तिके अनुसार हमें उनकी सब शर्तें माननी हैं। उनकी पत्रिका तो अगले सप्ताह ही

१. इसपर डाककी जो मुहर लगी है वह ७ मई, १९२४ की है।
२. नवजीवन प्रेसको भेजे गये पत्रके लिए देखिए अगला शीर्षक।
३. यह पत्र स्पष्टतः उसी दिन लिखा गया था जिस दिन इससे पहला शीर्षक।

प्रकाशित की जा सकेगी। जैसी आयी थी वैसी ही तुरन्त भेज रहा हूँ जिससे उनको प्रूफ भेजा जा सके।

वालजीके भाईका नाम और पता क्या है?

बापूके आशीर्वाद

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें मूल गुजराती पत्र (जी० एन० ७७५४) से।

४०३. पत्र : वा० गो० देसाईको

मंगलवार [६ मई, १९२४ के पश्चात्][1]

भाईश्री वालजी,

तुम्हारा पत्र मिल गया था। तुमने देखा होगा कि उसके अर्द्धांशका जवाब तो 'नवजीवन' में आ गया है। तुम्हारा यह सुझाव कि 'नवजीवन' का एक पूरा स्तम्भ इसके लिए रखा जाये, कुछ ज्यादा मालूम होता है। हाँ, इस बार तुम उतना स्थान ले लो। इससे तुम्हें 'नवजीवन' के सारे अंक पढ़नेका अवसर मिल जायेगा।

अपने भाईकी योग्यताका ब्योरा लिख भेजो और यह भी कि वे कितना वेतन चाहते हैं।

साथमें तुम्हारे लेखकी टाइप की हुई नकल भेज रहा हूँ। संशोधन और परिवर्धनके लिए उसमें काफी जगह छोड़ दी गई है ताकि तुम्हें प्रूफ मँगवानेकी जरूरत न रहे। उसे पढ़कर तत्काल भेज दो ताकि उसे अगले अंकमें लिया जा सके।

तुम्हारा स्वास्थ्य वहाँ जरूर सुधरेगा।

मैं मईके अन्ततक आश्रम पहुँचनेकी उम्मीद करता हूँ।[2]

मोहनदासके वन्देमातरम्

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें मूल गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ६२०३) की फोटो-नकलसे।
सौजन्य : वा० गो० देसाई

१. गांधीजीने वा० गो० देसाईके नाम अपने ६-५-१९२४ के पत्रमें उनसे उनके भाईका नाम और पता पूछा था।

२. गांधीजी २९ मई, १९२४ को आश्रम पहुँचे थे।

४०४. पत्र : गंगाबहन मेघजीको

अन्धेरी
बुधवार [७ मई, १९२४][1]

पू० गंगाबहन,

आपका पत्र मिला। आप कुछ ही दिनमें आश्रम पहुँच जायेंगी, यह पढ़कर मुझे प्रसन्नता हुई है।

काका दूसरी बार जब बम्बईकी ओर जायें तब आपके यहाँ अवश्य जायें। आश्रममें जायें तब यह बात उनसे कह दें।

मुझे आशा है आपने दवाओंकी झझंट अब कम कर दी होगी।

आपका आश्रममें आनेका विचार है यह बात मैं बाको लिख रहा हूँ। मैं भी इस महीनेके अन्तमें आश्रम पहुँच जाऊँगा।

मोहनदासके वन्देमातरम्

पूज्य गंगास्वरूप गंगाबेन
बोरीवली

बापुना पत्रो : गंगास्वरूप गंगाबहेनने

४०५. पत्र : मणिबहन पटेलको

बुधवार [७ मई, १९२४][2]

चि० मणि,

कल तुम्हारे दो पत्र साथ मिले। पता नहीं चलता कि मेरे पत्र तुम्हें मिलते हैं या नहीं। सप्ताहमें एक पत्र लिखनेके बजाय मैंने लगभग हर तीसरे दिन पत्र लिखा है। बुखार जरूर जायेगा। खाया जाता है और दस्त ठीक आता है, इसलिए मैं मानता हूँ कि न जानेका सवाल ही नहीं रहता। बीमारी पुरानी है इसलिए देर हो रही है।

"त्यागकी मूर्ति" के बारेमें आलोचना लिखना।

बापूके आशीर्वाद

बापूना पत्रो : मणिबहेन पटेलने

१. डाककी मुहरसे।

२. पत्रमें "त्यागकी मूर्ति" शीर्षक लेखका उल्लेख जिस तरह किया गया है उससे प्रकट होता है कि यह मणिबहन पटेलके नाम ४ मई, १९२४ को लिखे गये पत्रके बाद लिखा गया था।

परिशिष्ट

परिशिष्ट १

हकीम अजमलखाँका पत्र

अहमदाबाद
१७ मार्च, १९२२

प्यारे महात्माजी,

आपका साबरमती जेलसे लिखा खत मुझे मिल गया है। उसमें आपने मेरी बहुत तारीफ की है। आपकी इस मेहरबानीके लिए मैं सच्चे दिलसे आपका अहसान मानता हूँ। मैं सचमुच उसके लायक हूँ या नहीं, यह दूसरी बात है, जिसकी चर्चामें मैं पड़ना नहीं चाहता।

श्री शंकरलाल बैंकर जेलमें आपके साथ हैं, यह जानकर मुझे खुशी हुई। उन्हें आपसे बहुत मुहब्बत है और उनमें ऐसी खूबियाँ हैं जिनके कारण वे आपके अजीज बन गये हैं। मुझे भरोसा है कि जेलमें उनके साथ रहनेसे आपको और भी खुशी और तसल्ली होगी।

लेकिन मैं तो आपकी गिरफ्तारीपर तभी खुश हो सकता हूँ जब मैं देखूं कि देशकी जनता, आपके प्रति अपनी गहरी इज्जत जतानेके लिए, राष्ट्रीय आन्दोलनमें जितनी दिलचस्पी आपके जेलसे बाहर रहनेपर लेती थी, उससे ज्यादा दिलचस्पी अब लेती है। मगर मुझे यह देखकर बेहद खुशी होती है कि आपकी गिरफ्तारीपर देशने पूरा अमन बनाये रखा। इससे साफ जाहिर होता है कि देशमें अहिंसाकी वह भावना खूब फैल गई है, जो हमारी कामयाबीके लिए उतनी ही जरूरी है जितनी जिन्दगीके लिए साफ हवा।

मुझे इस बातमें जरा भी शक नहीं कि भारतकी तरक्कीका राज हिन्दुओं, मुसलमानों और दूसरी जातियोंकी एकतामें छिपा हुआ है। ऐसी एकता नीतिपर मुनहसिर नहीं होनी चाहिए, क्योंकि मेरी रायमें वह तो सिर्फ लड़ाईको कुछ वक्तके लिए बन्द करने-जैसी होगी और वह शायद मुश्किलसे ही हमारी मौजूदा जरूरतोंके लिए काफी हो। लेकिन मैं साफ देख रहा हूँ कि दोनों बड़ी जातियाँ रोज-ब-रोज एक-दूसरेके नजदीक आ रही हैं और दोनों जातियोंमें मजहबी तअस्सुबसे बिलकुल ऊपर उठे हुए लोगोंकी तादाद चाहे बहुत न हो, फिर भी मुझे यकीन है कि देशने सच्ची एकताका रास्ता पा लिया है और वह खूब जमे हुए कदमोंसे उसपर चलकर अपनी मंजिलकी ओर आगे बढ़ेगा। मैं अपने देशमें रहनेवाली जातियोंकी एकताको इतना कीमती मानता हूँ कि यदि देश दूसरे सभी कामोंको छोड़कर सिर्फ उस एकताको ही हासिल कर ले,

तो मैं समझता हूँ कि खिलाफत और स्वराज्यके सवाल अपने-आप तसल्लीवख्श तरीकेसे हल हो जायेंगे, क्योंकि हमारे मकसदोंके पूरा होनेका इस एकतासे इतना गहरा सरोकार है कि मुझे दोनों चीजें विलकुल एक ही दिखाई देती हैं।

अव सवाल यह पैदा होता है कि हम इस असली और टिकाऊ एकताको कैसे हासिल करें? मैं इसका सिर्फ एक जवाव खोज पाता हूँ। हम इसे अपने दिलोंकी सचाई और सफाईसे ही हासिल कर सकते हैं। जवतक हममें से हरएक शख्स अपने दिलसे खुदगर्जीको निकाल नहीं देता, तवतक देश अपने मकसदको पूरा करनेमें कामयाव नहीं होगा। मैं जानता हूँ कि इस हुकूमतके कारण पिछले सौ सालमें जो तफरकात पैदा हो गये हैं, वे वहुत जल्दी दूर नहीं किये जा सकते और इसी कारण हम अपनी कोशिशोंके तुरन्त कामयाव होनेकी उम्मीद नहीं कर सकते। लेकिन इसमें कोई शक नहीं हो सकता कि हमने पीढ़ियोंका काम महीनोंमें कर लिया है और हमारे वीच कुछ नाउम्मीद लोग जिस कामको नामुमकिन मानते थे, हम सचमुच उसे पूरा करनेमें कामयाव हो गये हैं।

मैं खिलाफतके सवालको या दूसरे लफ्जोंमें इस्लामी नीतिके विकासके सवालको कोई आज या कलकी चीज नहीं मानता। जिस तरह पिछले सैकड़ों सालसे वह एक-न-एक शक्लमें सामने आता रहा है उसी तरह अगले सैकड़ों सालमें भी वह हमारे सामने आता रहेगा। खुदा ही जानता होगा कि वह आखिरी तौरपर कैसे और कव हल होगा। इसलिए जो लोग सही मानीमें हिन्दू-मुस्लिम एकतामें यकीन नहीं रखते, उन्हें भी यह तो समझ ही लेना चाहिए कि व्यवहार-नीतिके तौरपर भी इसे सैकड़ों साल चलानेकी जरूरत है। यह एक मानी हुई वात है कि भारतकी मौजूदा हालतको देखते हुए हिन्दू-मुस्लिम एकताके वाद दूसरा अहम सवाल अहिंसाका ही है। उस ओर हमारी या ज्यादा ठीक कहूँ तो आपकी, कोशिशें कहाँतक कामयाव हुई हैं यह तो घटनाक्रमसे ही साफ हो जाता है। लेकिन इस ओर हमारी कामयावीका सवसे शानदार सवूत उत्तरी-पश्चिमी सीमान्त प्रदेशने पेश किया है, जहाँ अहिंसाकी कामयावीकी उम्मीद सवसे कम थी। जव भारतके उस कोनेमें हम अपने भाइयोंको आम तौरपर अहिंसाकी ढालसे अपने मुखालिफोंके हिंसात्मक हमलोंका सामना करते पाते हैं तव हमें यकीन हो जाता है कि देशमें अहिंसाकी भावना तसल्लीवख्श पैमानेपर फैल चुकी है और फैल रही है।

इस मामलेमें संयुक्त प्रान्तके वारेमें कुछ शक किया जाता है, लेकिन मेरी अपनी राय है कि राष्ट्रीय कार्यकर्त्ताओंकी कमीके कारण लोगोंको कांग्रेसका तरीका और उसूल अच्छी तरह समझाया नहीं गया है। फिर भी मुझे पूरा यकीन है कि संयुक्त प्रान्त भी वहुत जल्दी दूसरे प्रान्तोंके दर्जेमें आ जायेगा।

यदि देशके कुछ हिस्सोंमें किन्हीं खास या आम वजहोंसे कभी-कभी हिंसा हो गई है तो उससे नाउम्मीद होनेका कारण नहीं होना चाहिए। यह जानते हुए कि हमने ३३ करोड़की आवादीके वीच थोड़े-से कार्यकर्त्ताओंको लेकर केवल १८ महीने ही काम किया है, हमें ऐसी इक्की-दुक्की घटनाओंसे चौंकना न चाहिए; किन्तु साथ ही ऐसी घटनाओंकी अहमियतको भी हमें कम करके नहीं आँकना चाहिए और दुवारा ऐसी वारदात

न होने देनेकी पूरी कोशिश करनी चाहिए। भारतमें रहनेवाली जातियोंकी एकता और अहिंसा दोनों मौजूदा तहरीककी कामयावीकी जरूरी शर्तें हैं।

वेशक हमें अपने मकसदोंको पूरा करनेमें खद्दरसे भी वेशकीमती मदद मिलेगी। उससे हमारी एकता जाहिर होगी और हम यह जानेंगे कि हम स्वराज्यकी ओर कितना आगे वढ़े हैं। मेरा खयाल है कि खद्दरको लोकप्रिय वनानेके लिए धरना देना उतना जरूरी नहीं है जितना जरूरी उसे देश मानता है। देश उसे जल्दीका रास्ता समझता है और अपने थोड़े-से समयको उसमें खर्च कर देता है। हालाँकि जैसा आपने भी कहा है, असली काम तो लोगोंके मनमें देशकी वनी चीजोंके लिए प्रेम पैदा करना है। लेकिन जहाँतक मेरा खयाल है, हमारी कांग्रेस कमेटियोंने इस काममें काफी वक्त नहीं लगाया है। इसी वजहसे वे अपनी लापरवाहीसे हुए नुकसानको, धरनेका अपेक्षाकृत आसान तरीका अपनाकर, पूरा करना चाहती हैं। किन्तु मैं उम्मीद करता हूँ कि आगेसे विभिन्न कांग्रेस कमेटियाँ जनताको हाथ-कते सूतकी हाथ-वुनी खादीके इस्तेमालके लिए राजी करनेके कामको आदर्श मानकर अपने हाथमें लेंगी और उसे धरनेकी वनिस्वत ज्यादा पसन्द करेंगी।

आपने अपने खतमें अछूतोंके सवालपर भी कुछ लिखा है। ऊपरसे देखनेपर शायद यह सवाल एक खास कौमका सवाल मालूम दे। लेकिन दरअसल यह एक राष्ट्रीय सवाल है, क्योंकि जिन अलग-अलग हिस्सोंसे यह राष्ट्र वना हुआ है, वे सभी हिस्से जवतक तरक्की नहीं करते तबतक पूरा राष्ट्र तरक्की नहीं कर सकता। जिनके मनमें मुल्कके फायदेका खयाल हो, ऐसे हरएक आदमीका फर्ज है कि वह ऐसे सभी सवालोंमें दिलचस्पी ले जिनका असर राष्ट्रकी तरक्कीपर पड़ता है। इस-लिए हमें राष्ट्रकी दुनियवी या नैतिक तरक्कीके रास्तेमें आनेवाली सभी रुकावटोंकी ओर ध्यान देना चाहिए। इसलिए यह सवाल जितनी अहमियत हिन्दुओंके लिए रखता है, उतनी ही मुसलमानोंके लिए भी रखता है। इसी तरह अगर मुसलमान तालीममें पिछड़े हुए हैं, तो हरएक अच्छे हिन्दूको तालीमके लिहाजसे उनकी तरक्की-का खयाल करना चाहिए, क्योंकि उसके लिए की गई हर कोशिश तालीमके लिहाज-से समूचे राष्ट्रकी तरक्कीके लिए उठाया गया कदम होगी, चाहे वह ऊपरसे देखनेमें एक ही जातिके लिए फायदेमन्द क्यों न दिखाई दे। इसलिए मैं उम्मीद करता हूँ कि मुल्क अछूतोंके सवालपर जितना ध्यान देना चाहिए उतना ध्यान जरूर देगा।

वारडोली और दिल्लीकी तजवीजोंमें मुल्कके लोगोंसे आपके पेश किये हुए रचना-त्मक कार्यक्रमपर अमल करनेके लिए जमकर कोशिश करनेको कहा गया है। इस वारेमें मेरा खयाल है कि अगर हम सविनय अवज्ञा शुरू करें तो हमें रचनात्मक कार्यक्रमकी कामयावीके लिए जरूरी वातावरण नहीं मिलेगा। कोई वीचका रास्ता ढूँढ़ सकना वहुत मुश्किल है। मैं मानता हूँ कि इस सवालपर कार्य-समिति पूरी तरह गौर करेगी और जरूरी और ठीक रास्ता अपनायेगी।

अव चूँकि हम रचनात्मक कार्य शुरू कर रहे हैं; इसलिए हमें अपनी जरूरतोंके मुताविक कांग्रेस-कार्यालयका नये सिरेसे गठन करना चाहिए। हमें कामको वाँट देना

चाहिए और अलग-अलग कामोंके लिए अलग-अलग महकमे बनाने चाहिए। हर महकमा उस कामके लिए चुने गये कार्य-समितिके मेम्बरके हाथमें रहना चाहिए।

मैं आपकी प्रार्थनामें शरीक हूँ और आपको भरोसा देना चाहता हूँ कि हालाँकि अपनी खराब सेहतके कारण मैं देशकी बहुत ज्यादा खिदमत नहीं कर सकूँगा, फिर भी जबतक श्री चित्तरंजन दास दुबारा हमारे बीच नहीं आ जाते, तबतक मैं अपना फर्ज निष्ठाके साथ पूरा करनेकी कोशिश करूँगा। मैं खुदासे यही दुआ करता हूँ कि आपने और देशने सत्य और न्यायकी खातिर जिस पाक कामको अपने हाथमें लिया है, उसे पूरा करनेमें वह हमारी मदद करें। आपका जेल जाना हमारे तीनों मकसदोंके पूरा होनेमें सहायक हो।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २३-३-१९२२

परिशिष्ट २

च० राजगोपालाचारीसे भेंट[1]

श्री देवदास गांधी और मैं पिछले शुक्रवारको महात्माजीसे मिलने पूना गये। हमें मालूम हुआ था कि वे यरवदा जेलमें हैं। भारत सेवक समाजके सदस्य श्री ठक्करने हमें बताया था कि जेल सुपरिन्टेन्डेन्टको तीन महीनेमें केवल एक ही भेंटकी अनुमति देनेकी आज्ञा है। महात्माजीके सुपुत्र देवदास श्री ठक्कर और मुझे साथ लेकर जेल गये और सुपरिन्टेन्डेन्टसे महात्माजीसे भेंटकी अनुमति देनेकी प्रार्थना की। हमें बताया गया कि देवदासके साथ श्री ठक्कर या मैं — केवल एक आदमी जा सकता है।

इसके बाद वार्डर कैदीको सुपरिन्टेन्डेन्टके कमरेमें लाया और हमें अन्दर बुलाया गया। सुपरिन्टेन्डेन्ट अपनी कुर्सीपर बैठे थे और महात्माजी उसकी मेजके सामने खड़े थे। उन्हें मुलाकातमें पूरे समय खड़े ही रहना पड़ा।

भोजनके सम्बन्धमें प्रश्न किये जानेपर महात्माजीने कहा : "मुझे रोटी और बकरीका दूध दिया जाता है; सारा दूध एक साथ ही दे दिया जाता है। मैं अब तीन बारकी बजाय दो बार भोजन करता हूँ।" आप फलोंके लिए क्या करते हैं, यह पूछनेपर उन्होंने कहा : "मुझे प्रतिदिन दो सन्तरे दिये जाते हैं। मैंने कह दिया था कि मेरे सामान्य भोजनमें किशमिश सम्मिलित हैं; परन्तु अभी मुझे उनकी अनुमति नहीं मिली है। किन्तु सुपरिन्टेन्डेन्टने वादा किया कि किशमिशोंकी अनुमति दे दी जायेगी।" महात्माजीके लिए दूध स्टोवपर आँगनमें गर्म किया जाता है, जिसे कुछ अरब कैदी काममें ला रहे हैं।

श्री शंकरलाल इसी जेलमें हैं; किन्तु महात्माजीको उनसे या किसी भी अन्य व्यक्ति अथवा कैदीसे नहीं मिलने दिया जाता। उन्हें एक ऐसी कोठरीमें रखा गया है,

१. यह भेंट शनिवार १ अप्रैल, १९२२ को हुई थी।

जो तनहाईकी सजा देनेके लिए बनाई गई है और जिसमें रातमें ताला लगा दिया जाता है। कोठरीमें दो रोशनदान हैं, एक छतके पास और दूसरा जमीनसे लगा हुआ। कोठरीके साथ एक बरामदा है और उसकी बगलमें आँगन है जिसके कुछ हिस्सेमें वे दिनके समय घूम सकते हैं। रातमें टट्टी और पेशाबका बर्तन भी उसी छोटी कोठरीमें रखा जाता है। हमारी भेंटके वक्त सुपरिन्टेन्डेन्टने वादा किया कि आगेसे उस भद्दे बर्तनकी जगह कमोड रखवा दिया जाया करेगा।

महात्माजीको बाहरसे कोई भी चीज मँगवानेकी इजाजत नहीं है। उन्हें अपना बिस्तर रखनेकी भी इजाजत नहीं है। उन्हें भी सबकी तरह जेलके दो कम्बल दिये गये हैं। मैंने जिज्ञासावश पूछा कि क्या आपके पास तकिया है? उन्होंने कहा, तकिया नहीं है। जब मैंने इसपर आश्चर्य प्रकट किया तो सुपरिन्टेन्डेन्टने बीचमें टोककर कहा कि तकिया तो आरामकी चीज है। बर्तनोंमें महात्माजीके पास जेलका सामान्य लोटा और तश्तरी है किन्तु उन्हें बहुत हुज्जत करनेपर अपना चम्मच रखनेकी इजाजत दे दी गई है। हमारी भेंटके दौरान सुपरिन्टेन्डेन्टने कहा कि यदि महात्माजी अर्जी देंगे तो वे उसे सरकारके पास भेज देंगे। उन्हें अपने लिखनेके कागज और कलमसे वंचित नहीं किया गया है। वे उनका इस्तेमाल अभी केवल अपने-आप उर्दू सीखनेमें कर रहे हैं। महात्माजी हमेशाकी तरह अपनी लंगोटी पहने हुए थे। उनका स्वास्थ्य हमें तो अच्छा नहीं दिखाई दिया, किन्तु जेलरका कहना था कि उनका वजन बढ़ गया है।

जाहिर है कि जितना मैंने बताया उसी हदतक खानेमें फर्कके अलावा अन्य सभी मामलोंमें महात्माजीसे बम्बईके जेल-नियमोंके अनुसार एक साधारण कैदीके जैसा बरताव किया जाता है और बम्बईके जेल-नियम कई बातोंमें अन्य प्रान्तोंके जेल-नियमोंसे बदतर हैं। महात्माजीने मुझसे कहा कि वे नहीं चाहते कि उनके जेल-जीवनके बारेमें कोई शिकायत की जाये। अहमदाबादके प्रसिद्ध मुकदमेमें न्यायाधीशने जो सुन्दर शब्द कहे थे उनसे हम सबको यह आशा बँधी थी कि बम्बई सरकार यदि इन महान् बन्दीके साथ उनके सर्वथा योग्य या उनकी इच्छाके अनुरूप बरताव नहीं करेगी तो कमसे-कम वैसा बरताव तो करेगी ही जैसा एक सभ्य सरकार अपेक्षाकृत महत्त्वपूर्ण युद्ध-बन्दियोंके साथ करती है; किन्तु हमारी इस भेंटसे भारतमें अंग्रेजोंके शासनके वास्तविक रूपके सम्बन्धमें हमारी आँखें पूरी तरह खुल गई हैं।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, ३-४-१९२२

परिशिष्ट ३

मगनलाल गांधीसे भेंट[1]

इस महीनेकी पहली तारीखको जो मण्डली गांधीजीसे मिलने गई, उसमें मैं भी था।

हमने महात्माजीसे पूछा, आपका दैनिक कार्यक्रम क्या है? उनके उत्तरसे स्पष्ट सन्तोष झलकता था उन्होंने कहा कि मैं हमेशा सुबह चार बजे उठता हूँ और सुबहका समय प्रार्थना और चिन्तनमें लगाता हूँ . . .। जबतक अच्छी तरह दिन नहीं निकल आता, महात्माजीको कुछ भी काम करनेको नहीं रहता क्योंकि शायद उन्हें कोई चिराग नहीं दिया गया है। सुबह स्नानादि करके वे सूत-कताई और रुई-धुनाईका अपना प्रिय कार्य शुरू करते हैं . . . ।

हमें अपना नित्यका कार्यक्रम बताते समय उन्होंने अपने पैरोंकी तरफ देखा जिन-पर रुईके बारीक रेशे चिपके थे। उन्होंने कहा: "मैं अभी रुई-धुनाईके कामसे उठकर आया हूँ।"

इस बार सभी उपस्थित लोगों, भेंटकर्त्ताओं और कैदीके लिए भी कुर्सियाँ रखी गई थीं। परन्तु कुर्सीपर बैठनेका बार-बार आग्रह किये जानेपर भी, उन्होंने जबतक हम बात करते रहे तबतक खड़े रहनेमें ही आनन्द माना। हर बार आग्रह करनेपर उन्होंने यही कहा, मैं बिलकुल ठीक हूँ। कोई भी समझ सकता था कि उन्होंने स्वेच्छापूर्वक जिस अनुशासनको अंगीकार किया, वह उनके लिए आनन्दकी ही बात थी . . .।

जब महात्माजीने भेंटकी समाप्तिपर दी गई यह चेतावनी सुनी कि यहाँ जो-कुछ हुआ है उसमें से कोई भी बात प्रकाशित नहीं की जानी चाहिए तो उन्होंने मनोहारी मुस्कानके साथ सुपरिन्टेन्डेन्टसे पूछा, "क्या यह बात भी नहीं कि गवर्नरने कुछ कारणोंसे, जिन्हें वे ही जानते हैं, पत्रोंपर रोक लगा दी है?"

"नहीं।"

"यह भी नहीं कि मैं ठीक हूँ?"

इसका उत्तर था, "नहीं, कुछ भी नहीं।"

कैदीने दरवाजेकी ओर वापस मुड़ते हुए कहा, भविष्यमें मेरी भेंट करनेकी सुविधा रहे या छिने इसका निर्णय मैं भेंटकर्त्ताओंपर ही छोड़ता हूँ। . . .

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २०-७-१९२२

१. मगनलाल गांधीसे यह भेंट १ जुलाई, १९२२ को हुई थी। उन्होंने इसके बारेमें "जेलमें महात्मा-जीके सुख-साधन" शीर्षकसे जो लेख लिखा था उसे यहाँ अंशतः उद्धृत किया जा रहा है।

परिशिष्ट ४

इनर टेम्पलका आदेश

श्री गांधीको वैरिस्टरके दर्जेसे हटानेका इनर टेम्पल[1] समितिका अधिकृत आदेश इस प्रकार है :

"इनर टेम्पल : शुक्रवार, १० नवम्बर, १९२२ को हुई प्रतिनिधि सभाका निर्णय।

"चूंकि ९ नवम्बर, १९२२ को समितिकी बैठकमें कोषाध्यक्षने सूचना दी थी कि उन्हें इस विधि-सभाके एक बैरिस्टर मोहनदास करमचन्द गांधीको अहमदाबाद, भारतमें सेशन जजकी अदालतसे १२ मार्च, १९२२ को राजद्रोहके जुर्ममें छ: सालकी कैदकी सजा दिये जानेके फैसलेकी प्रामाणिक प्रति मिली है।

"आदेश दिया जाता है कि चूंकि उक्त मोहनदास करमचन्द गांधीको एक अधिकृत अदालतने एक ऐसे अपराधमें सजा दी है जिससे इस समितिकी रायमें वे इस विधि-सभाके सदस्य बने रहनेके अयोग्य हो जाते हैं, अत: उनका नाम इस विधि-सभाकी किताबोंमें से निकाल दिया जाये।"

"और समितिकी इसी बैठकमें यह आदेश भी दिया गया कि शुक्रवार, १० नवम्बर, १९२२ को होनेवाली प्रतिनिधि सभामें उक्त मोहनदास करमचन्द गांधीको बैरिस्टरके दर्जेसे हटा दिया जाये और उनका नाम समितिकी किताबोंमें से काट दिया जाये और यह आदेश सर्वोच्च न्यायालयके न्यायाधीशों अन्य विधि-सभाओं और बैरिस्टरोंकी सामान्य परिषद्को तथा रजिस्ट्री पत्र द्वारा उक्त मोहनदास गांधीको सूचित कर दिया जाये एवं विधि-सभाके भवनमें लग दिया जाये।"

१० नवम्बरको हुई इनर टेम्पलकी प्रतिनिधि सभामें इस आदेशकी पुष्टि की गई।

[अंग्रेजीसे]

अमृतबाजार पत्रिका, २१-१२-१९२२

१. इंग्लैंडकी बैरिस्टरीकी तालीम देनेवाली कानूनी सभा।

परिशिष्ट ५

जेलमें भेंट

[१० सितम्बर, १९२३]

गांधीजीसे सोमवारके दिन यरवदा जेलमें भेंट की गई थी। उनका स्वास्थ्य तीन महीने पहलेकी बीमारीके बादसे काफी अच्छा चल रहा है। उन्हें अब भी दूध, रोटी और फल दिये जाते हैं और यह खूराक उन्हें अभीतक काफी माफिक रही है। यद्यपि वे पूर्णतः प्रसन्न-चित्त और स्वस्थ दिखाई पड़ते हैं, किन्तु उनकी सामान्य आकृति-प्रकृतिसे लगता है कि उनपर समय और गहन धार्मिक अध्ययनका प्रभाव अवश्य पड़ा है। उनका वजन अब १०१ पौंड है जो उनकी गिरफ्तारीके वक्त लिये गये वजनसे १३ पौंड कम है। वे अपना समय कातनेके अलावा मुख्यतया 'वेदों' और 'उपनिषदों'के अध्ययनमें और उर्दू सीखनेमें बिताते हैं। उन्हें उर्दू सीखनेमें श्री मंजर अली सोख्ता मदद देते हैं। जब उनको यह बताया गया कि उनकी रिहाईकी अफवाहोंपर देशमें कैसे अनुमान लगाये जा रहे हैं तब वे बहुत हँसे और हँसते हुए उन्होंने कहा, मुझे अपनी जल्दी रिहाईसे दुःख होगा, क्योंकि उससे मेरे अध्ययनमें रुकावट आ जायेगी।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया १३-९-१९२३

परिशिष्ट ६

ड्रू पियर्सनकी सर जॉर्ज लॉयडसे भेंट

मैं महात्मा गांधीकी गिरफ्तारीके ठीक डेढ़ साल बाद गांधी-दिवसपर शहरके पासकी उस जेलमें गया जिसमें वे बन्दी हैं और मैंने उस अधिकारीसे बातचीत की जो उनकी गिरफ्तारीके लिए भारतमें किसी भी अन्य मनुष्यकी अपेक्षा ज्यादा जिम्मेदार था। यह अधिकारी भारतके उच्चतम अधिकारियोंमें से है। मैं उनका नाम नहीं बता सकता। उन्होंने महात्माजीसे अपनी बातचीतका और गिरफ्तारीकी कारणभूत घटनाओंका वर्णन ऐसी सजीव भाषामें किया कि मुझे एक तरहसे ऐसा लगा मानो उनके सामने गांधीजीकी क्षीण काया मौजूद हो। उन्होंने जो बात मुझे बताई वह बहुत कम लोगोंने ही सुनी होगी।

मुझे बताया कि जब असहयोग आन्दोलन पूर्ण उत्कर्षपर था तब उन्होंने गांधीको अपने दफ्तरमें बुलाया था, गांधीने इंग्लैंडके बने कपड़ोंकी बड़ी-बड़ी होलियाँ जलवाई थीं। स्कूलों और अदालतोंका बहिष्कार किया था, जो बहुत सफल हुआ था,

और युवराजके विरुद्ध इतना प्रभावकारी आन्दोलन चलाया था कि जिन सड़कोंसे होकर उनका जलूस निकलता, वे लगभग जनशून्य मिलतीं थीं।

इसके बाद उन्होंने कहा,[१] 'गांधी नंगे पैर धीरे-धीरे अन्दर आये और वहाँ बैठ गये, जहाँ आप बैठे हैं। मैंने उन्हें चेतावनी दी। मैंने कहा, "आप नहीं जानते कि आप क्या कर रहे हैं। लेकिन आप इस दुष्टतापूर्ण कार्यक्रमको चालू रखनेका आग्रह करते हैं। जो भी स्त्री-पुरुष या बच्चे मारे जायेंगे उनकी मृत्युके लिए मैं आपको जिम्मेदार मानूँगा।"

"कोई नहीं मारा जायेगा, परमश्रेष्ठ", उन्होंने कहा।

मैंने इसके उत्तरमें कहा, "अवश्य मारे जायेंगे। आप अहिंसाका प्रचार कर रहे हैं लेकिन वह सब कोरी कल्पना है। वह व्यवहारमें नहीं टिकेगी। आप जिस तरहका आन्दोलन चला रहे हैं, उसमें अहिंसा-जैसी कोई चीज होती ही नहीं। आप लोगोंके रोष, उद्वेगपर काबू नहीं रख सकते। आप याद रखें, मैं आपको ही जिम्मेदार मानता हूँ।"

ऐसा कहते समय परमश्रेष्ठने मेरी ओर अंगुली हिलाई मानो उनके सामने बैठा हुआ मैं गांधी था।

चौरीचौरामें दंगे और हत्याएँ होनेके बाद जब सब समाप्त हो गया तब गांधी यहाँ फिर आये। मैंने उनसे कहा:

"मैंने आपसे कह दिया था कि क्या होगा। इसके जिम्मेदार आप हैं।" उन्होंने अपने हाथोंसे अपना मुँह छिपा लिया और कहा, "मैं यह बात जानता हूँ।"

"आप यह बात जानते हैं! किन्तु क्या इससे अब वे स्त्री और पुरुष पुनः जीवित हो सकते हैं जिनको उपद्रवी भारतीयोंकी भीड़ने पैरों तले कुचल दिया है?"

उन्होंने व्यथित स्वरमें कहा, "परमश्रेष्ठ मुझे जेल भेज दें।"

अवश्य ही मैं आपको जेल भेजूँगा; लेकिन जबतक मैं मजबूत और तैयार नहीं हो जाता तबतक नहीं भेजूँगा। क्या आप समझते हैं कि मैं आपको काँटोंका ताज पहनाना चाहता हूँ?" उन्होंने कहा, "मैं अब एक सप्ताहका उपवास करूँगा।"

एक महान् प्रयोग

परमश्रेष्ठ यहाँ कुछ रुके और पीछेकी ओर झुके। फिर उन्होंने पहलेसे कुछ मन्द स्वरमें कहा:

"वे दुबले-पतले और छोटेसे आदमी हैं; लेकिन उनका प्रभाव ३१९,०००,००० लोगोंपर है, जो उनके इशारेपर चलते और उनका आदेश मानते हैं। उन्हें भौतिक वस्तुओंकी परवाह नहीं है और वे भारतके आदर्शों और नैतिक सिद्धान्तोंका ही प्रचार करते हैं। आप किसी देशका शासन कोरे आदर्शोंसे ही नहीं चला सकते। फिर भी उन्होंने आदर्शोंके बलपर ही लोगोंको अपनी मुट्ठीमें कर लिया है। वे उनके देवता हैं। भारतके लिए सदा एक-न-एक देवता होना जरूरी है। पहले उनके देवता तिलक थे, फिर गांधी हुए और कल उनका देवता कोई दूसरा मनुष्य होगा। उन्होंने हमें यों ही डरा दिया। उनके कार्यक्रमके कारण हमारी जेलें भर गईं। लोगोंको आप अनन्त

कालतक गिरफ्तार करते नहीं रह सकते, यह तो आप जानते ही हैं, और खासकर तब, जब उनकी संख्या ३१९,०००,००० हो। यदि लोग उनके कार्यक्रमके दूसरे अंगपर अमल करते और करोंकी अदायगीसे इनकार कर देते तो पता नहीं हम कहाँ होते। गांधीका यह प्रयोग विश्वके इतिहासमें महानतम प्रयोग था और वह करीब-करीब सफल हो गया था। लेकिन लोगोंका रोष, उद्वेग उनके काबूमें नहीं रह सका। वे हिंसा कर बैठे और गांधीने अपना कार्यक्रम वापस ले लिया। शेष जो-कुछ हुआ वह आप जानते ही हैं। हमने उन्हें जेल भेज दिया। मैं तीन दिन पहले उनसे जेलमें मिला था। लगता था कि उनका जीवन कुछ नीरस है। मैं समझता हूँ कि शायद वे जेलसे मुक्त होना चाहते थे। उनकी शिकायत थी कि मैं उन्हें किसी समाचारपत्रकी अनुमति नहीं देता। उन्होंने कहा, मैं तो यह भी नहीं जानता कि प्रधान मन्त्री कौन है। मैंने उनसे कहा, राजनीतिकी पूर्ण जानकारी रखनेके लिए सबसे अच्छा तरीका तो जेलके बाहर रहना है। आपको यह जानकर खुशी होगी कि मैं कुछ महीनोंमें ही जा रहा हूँ। आप और हम कभी अच्छे दोस्त नहीं रहे, परन्तु कमसे-कम हम एक-दूसरेसे साफ-साफ बातें तो कर ही लेते थे।"

यहाँ मैंने बीचमें वह सवाल पूछा, जिसे पूछनेके लिए मैं आया था; मैंने कहा, क्या मुझे जेलमें गांधीसे मिलनेकी अनुमति मिलेगी?

परमश्रेष्ठने बीचमें ही उत्तर दिया, "सर्वथा असम्भव। गांधीको कैद करनेका एकमात्र तरीका यही है कि उन्हें जीवित ही दफना दिया जाये। यदि हम लोगोंको यहाँ आने और उनके सम्बन्धमें अनावश्यक बात करनेकी छूट दे दें तो वे शहीद बन जायेंगे और जेल संसारके लिए मक्का हो जायेगी। हमने गांधीको काँटोंका ताज पहनानेके लिए जेलमें नहीं रखा है।"

मैंने पूछा, क्या छः सालकी कैदकी मीयाद पूरी होनेसे पहले गांधीकी रिहाई सम्भव है। उन्होंने जोर देकर कहा:

"जबतक मैं यहाँ हूँ, तबतक नहीं। हाँ, मेरा कार्यकाल दिसम्बरमें समाप्त हो रहा है। मैं इंग्लैंड चला जाऊँ, उसके बाद सरकार कुछ भी कर सकती है।"

जेलमें श्री गांधीका जीवनक्रम बतानेके बाद श्री पियर्सन लिखते हैं:

उनके पुत्रने मुझे बताया कि श्री गांधीका धार्मिक सिद्धान्त दो चीजोंपर आधारित है: सत्य और अहिंसा। वे उन सभी बाह्य रूपों और कर्मकाण्डोंको छोड़नेके लिए तैयार हैं जिन्हें संसार धर्म कहता है, वे केवल इन दो मूल सिद्धान्तों-को ही कायम रखना चाहते हैं।

उनके पुत्रका कहना है कि श्री गांधी जनताकी आम माँगका दबाव डालकर जेलसे रिहा होना नहीं चाहते, बल्कि भारतीय जनताके प्रति सरकारका हृदय-परिवर्तन होनेपर स्वयं सरकारके हाथों ही रिहाई चाहते हैं। वे राजनीतिसे पृथक होनेका वचन देकर रिहा न होंगे; बल्कि तभी रिहा होंगे जब वे अपना शेष जीवन अपने देशकी स्वतन्त्रता प्राप्त करनेमें बितायेंगे।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २२-११-१९२३

परिशिष्ट ७

गांधीजीकी रिहाईपर एन्ड्रयूजका वक्तव्य

श्री गांधीके सम्बन्धमें श्री सी० एफ० एन्ड्रयूजने एसोसिएटेड प्रेसको निम्नलिखित वक्तव्य भेजा है:

मैं आज सुबह करीब ७-३० बजे ससून अस्पतालमें मौजूद था। महात्मा गांधी रातमें अच्छी तरह सोये थे, इसलिए मुझे वे बहुत ही प्रफुल्लित और प्रसन्न दिखाई दिये। हम जब बात कर रहे थे, तभी अस्पतालमें उनकी देखरेखके जिम्मेदार डाक्टर कर्नल मैडॉकने अन्दर आकर महात्माजीको उनकी बिना शर्त रिहाईका समाचार सुनाया और इसके लिए उन्हें हार्दिक बधाई दी। इसके बाद उन्होंने उनको सरकारी सन्देशकी भाषा पढ़कर सुनाई और कहा, इसको एक विशेष सन्देशवाहक सोमवारकी रातको लाया था। इसलिए मैंने जल्दीसे-जल्दी आपके पास आनेका अवसर निकाला है, क्योंकि मैं चाहता था कि आप अब स्वतन्त्र हो गये हैं और इस समाचारको सबसे पहले मैं ही सुनाऊँ। महात्मा गांधी कुछ क्षण शान्त रहे। फिर उन्होंने मुस्कराते हुए कर्नल मैडॉकसे कहा, "आशा है आप मुझे कुछ समयतक और अपना मरीज और मेहमान बने रहनेकी छूट देंगे।" डाक्टरने हँसकर कहा, मुझे विश्वास है कि मेरा मरीज डॉक्टरके नाते मेरा हुक्म मानता रहेगा। मुझे स्वयं भी मरीजको पूर्णतः स्वस्थ देखकर बहुत सुख और सन्तोष होगा। बादमें सुबह घावकी मरहम-पट्टी करनेके बाद कर्नल मैडॉकने चेतावनी दी कि यद्यपि मरीजकी हालत इतनी अच्छी तरह सुधर रही है, फिर भी हो सकता है कि आगामी कुछ दिनोंमें जो लोग उनसे मिलना चाहते हैं उनसे मिलने-जुलनेसे कोई अनावश्यक उत्तेजना या थकान होनेके कारण उनकी हालतमें गम्भीर बिगाड़ हो जाये। इसलिए उनके स्वास्थ्य-लाभके नाजुक वक्तमें जो लोग उनकी शुश्रूषा कर रहे हैं उनके अलावा दूसरे सभी लोग उन्हें यथासम्भव पूरा-पूरा आराम करने देंगे तो यह उनके प्रति सभीकी अधिकतम दयालुता होगी। यह याद रखना चाहिए कि आपरेशन करते समय जो जख्म करना पड़ा था, वह पूरी तरह भरा नहीं है और मरीजकी शक्तिसे थोड़ा अधिक श्रम होनेसे स्वास्थ्य-लाभकी प्रगतिमें बाधा आ जायेगी। आगामी पखवाड़ेमें जख्मोंको बिलकुल ठीक करनेके लिए पूरी संचित शक्तिकी जरूरत होगी। अभीतक तो सब ठीक-ठीक चलता रहा है, लेकिन जरूरत इस बातकी है कि कोई अनावश्यक जोखिम न उठाई जाये।

डाक्टरके आदेशसे महात्मा गांधी दूसरे कमरेमें ले जाये गये, जिसके बाहरकी ओर बरामदा था ताकि उन्हें सूरजकी रोशनी और खुली हवाका पूरा लाभ मिल सके। उनके पास सुबहसे ही तार आने लगे थे। अस्पतालमें कर्नल मैडॉकके जानेके तुरन्त बाद ही पहला तार आ गया था।

मैंने महात्मा गांधीके स्वास्थ्यकी जैसी हालत अस्पतालमें देखी है, उसको ध्यानमें रखकर मैं डाक्टरकी चेतावनीके साथ अत्यन्त नम्रतापूर्वक अपनी ओरसे भी अनुरोध करना चाहता हूँ, क्योंकि यद्यपि महात्मा गांधीकी हालत निस्सन्देह अबतक आश्चर्यजनक रूपसे सुधरी है, फिर भी वे अभी बहुत कमजोर हैं और यह याद रखना आवश्यक है कि अभी उनका जख्म भरना बाकी है, अतः ऐसी कोई भी बात जिससे उनकी हालत फिर बिगड़ सकती हो, नहीं की जानी चाहिए। उन्हें अगले दिनोंमें, खासकर आगामी पखवाड़ेमें, पूरा आराम मिलना चाहिए। उनके प्रत्येक दिनके आरामसे भविष्यमें बहुत अन्तर पड़ेगा। जो लोग उनके स्वास्थ्यको अत्यन्त मूल्यवान मानते हैं, वे यदि उनके पूर्ण स्वस्थ होनेतक डाक्टरके निर्देशोंका पूरी तरह पालन करेंगे तो उनकी अतिशय कृपा होगी। पत्रोंके संवाददाताओंको भेंट देना भी महात्माजीके लिए बिलकुल असम्भव होगा। मैंने यह वक्तव्य महात्मा गांधीको उनके आग्रहपर पढ़कर सुना दिया है और उन्होंने इसे समाचारपत्रोंके लिए स्वीकृत कर दिया है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ७-२-१९२४

परिशिष्ट ८

डा० सत्यपालका पत्र

भारत बिल्डिंग्स
लाहौर
२३ फरवरी, १९२४

प्रिय महात्माजी,

वन्देमातरम्।

मैं आपके पुनः स्वास्थ्य-लाभपर हृदयसे बधाई देता हूँ। हम सबको इससे हार्दिक प्रसन्नता हुई है कि आप हमारे पथप्रदर्शनके लिए फिर हमारे बीच आ गये हैं। हमारी अत्यन्त हार्दिक प्रार्थना है कि आप चिरजीवी हों।

आपको अबतक यह तो मालूम ही हो गया होगा कि जो सिख जत्था अखण्ड पाठके लिए जैतो गया था, उसपर गोली चलाई गई है। कुछ लोग हताहत हुए हैं (घायलों और मृतकोंकी ठीक-ठीक संख्या अभी मालूम नहीं हुई है)। इस सम्बन्धमें पंजाब प्रान्तीय कांग्रेस कमेटीने निम्नलिखित निर्णय किये हैं।

(क) उसने एक घायल सेवी दल संगठित किया है और उसे शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक समितिको सौंप दिया है।

(ख) उसने शि० गु० प्र० स०के अध्यक्षको लिखा है कि हमारी समिति इस सम्बन्धमें उसकी क्या सहायता कर सकती है, वे यह बतायें। उसने उन्हें यह आश्वासन भी दिया है कि उनके लिए वह जो-कुछ भी कर सकती है, तत्काल करेगी।

क्या मैं आपसे विनती कर सकता हूँ कि आप कृपया मुझे विस्तारसे लिखें कि इस सम्बन्धमें हमें क्या करना चाहिए।

आशा है, आप स्वस्थ होंगे।

हृदयसे आपका,
सत्यपाल
मुख्य मन्त्री

[पुनश्च :]

मैंने अभी-अभी एक तार भेजा है। उम्मीद है कि वह आपको इस पत्रसे पहले मिल चुकेगा।

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ९९१५) की फोटो-नकलसे।

परिशिष्ट ९

के० पी० केशव मेननके पत्रका अंश

केरल प्रान्तीय कांग्रेस कमेटीने पिछली बैठकमें इस वर्षके लिए अस्पृश्यता-निवारणका एक निश्चित कार्यक्रम बनाया था। आप जानते ही हैं कि केरलकी परिस्थितियाँ विशिष्ट हैं। यहाँ प्रश्न केवल स्पर्श कर सकनेका नहीं वरन् पास न आ सकनेका है। अब हम इस दिशामें कदम उठा रहे हैं कि सार्वजनिक सड़कें उन लोगोंके लिए भी खुल जायें जो पास नहीं आ सकते। केरलमें कितनी ही ऐसी सड़कें हैं, जिनको इस समय मुसलमान, ईसाई और उच्च वर्णके हिन्दू इस्तेमाल कर रहे हैं, लेकिन जिन्हें एजवा, थिया और पुलाया-जैसे अस्पृश्योंको इस्तेमाल नहीं करने दिया जाता। दो हफ्ते पहले जब मैं उत्तरी त्रावणकोरके एक प्रमुख स्थानसे वाइकोम गया था तब मैंने उच्च वर्णके हिन्दुओंसे प्रार्थना की थी कि वे एजवा और पुलाया वर्गके लोगोंको मन्दिरकी आस-पासकी सड़कोंको इस्तेमाल करने दें। मैं यह भी उल्लेख कर दूँ कि इस सड़ककी सार-सँभाल सार्वजनिक कोषसे की जाती है और उसे इस समय ईसाई, मुसलमान और उच्च वर्णके हिन्दू स्वतन्त्रतापूर्वक इस्तेमाल कर रहे हैं। हालाँकि हमने इसी पहली तारीखकी सुबह इस सड़कसे पुलाया लोगोंका एक जलूस निकालनेका प्रबन्ध किया था, लेकिन हमें वह कुछ स्थानीय मित्रोंके कहनेपर मुल्तवी करना पड़ा, क्योंकि वे इस प्रश्नपर लोकमत तैयार करनेके लिए थोड़ा समय और चाहते थे। शायद आपको याद होगा कि थिया वर्गके एक प्रमुख सदस्य श्री टी० के० माधवन्ने करीब तीन साल पहले जब आप तिन्नेवेली[1] आये थे तब आपसे भेंट की थी। वे अब कांग्रेसमें शरीक हो गये हैं और हमारे साथ पूरे मनसे अस्पृश्यता-निवारणके काममें लगे हैं। हमने इन सड़कोंपर जलूस निकालनेके लिए अगली ३० तारीख तय की है। आपको

१. देखिए खण्ड २१, पृष्ठ १९३-९६

यह आश्वासन देनेकी जरूरत नहीं कि हम यथासम्भव अत्यन्त अनुशासनपूर्ण ढंगसे जलूस निकालनेकी कोशिश करेंगे। इस बीच भाषणों, पर्चोंके वितरण तथा व्यक्तिगत मुलाकातों द्वारा पुराणपन्थी लोगोंको अपनी तरफ मिलानेके प्रयत्न किये जा रहे हैं। यदि आप हमें एक सन्देश भेज देंगे तो हमें उससे नया उत्साह मिलेगा।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, २५-३-१९२४

परिशिष्ट १०

सी० विजयराघवाचार्यका पत्र

'आराम'
सेलम
(दक्षिण भारत)
२३ मार्च, १९२४

प्रिय महात्माजी,

मुझे आज आपका पत्र[1] मिलनेपर बहुत प्रसन्नता हुई और मैं विशेष रूपसे आपको इस बातके लिए धन्यवाद देता हूँ कि अपने स्वास्थ्यकी इस हालतमें भी आपने वह लम्बा वक्तव्य पढ़ा। मैं अपने वक्तव्यमें अपनी बात शायद ठीक-ठीक व्यक्त नहीं कर सका हूँ। आपकी उत्साह बढ़ानेवाली स्पष्टवादिताको देखते हुए मुझे आशा है कि आप मुझे इतना तो कहने देंगे ही कि आपने मेरे वक्तव्यके महत्त्वपूर्ण अंशोंका अर्थ ठीक नहीं समझा है। आपको यह बात स्पष्टतः बतानेके लिए जितना समय और स्थान इस समय मेरे पास है, उससे ज्यादा चाहिए। मेरा स्वास्थ्य पूरी तरह ठीक नहीं है, अतः मैं डाक्टरकी सलाहसे अधिकतर विस्तरमें पड़ा रहता हूँ और खानेमें पतली चीजें ही लेता हूँ। फिर ऐसे समय जब आपके लिए आराम बेहद जरूरी है, आपको तंग करना वांछनीय भी नहीं है, किन्तु मैं एक-दो उदाहरण तो दूँगा ही।

आप कहते हैं, "आपके निष्कर्षसे यह अर्थ भी निकलता है कि स्वराज्य सिर्फ ब्रिटिश संसदसे ही मिल सकेगा।" इस वाक्यसे तो मुझे आश्चर्य ही हुआ है। इस वक्तव्यके तर्ककी दिशा और ध्वनि वही है जो मेरे जीवनमें अबतक रही है और वह आपके उक्त कथनसे सर्वथा विपरीत है। हमें स्वतन्त्रता किसी राष्ट्रसे दानके रूपमें मिल सकती है, मेरा ऐसा हीन विचार कभी नहीं था और न कभी हो सकता है। मैंने अपने इसी वक्तव्यमें स्पष्ट रूपसे इस दृष्टिकोणसे अपना गहरा मतभेद प्रकट किया है। मुझे खेद है कि मैंने अनुच्छेदोंपर संख्या नहीं डाली; लेकिन मैंने इस विषय-पर जो-कुछ कहा है उसे आप वक्तव्यमें आसानीसे ढूंढ़ सकेंगे। आप यह भी गौर

१. १९ मार्च, १९२४ का।

करेंगे कि मैं नरमदलीय और राष्ट्रवादी दोनों ही तरहके लोगोंको उन लोगोंसे अलग मानता हूँ जिन्होंने स्वराज्यका आपका सिद्धान्त अपनाया है। मैंने वक्तव्यमें कहा है कि नरमदलीयों और राष्ट्रवादियोंके पास स्वतन्त्रता लेनेका साधन नहीं है। आप जानते हैं कि कानून और राजनीतिकी भाषामें इस शब्दका अर्थ क्या होता है। हमारी स्वतन्त्रता-प्राप्तिके प्रामाणिक रूपसे घोषित तरीके केवल दो हैं — इंग्लैंडसे दानके रूपमें प्राप्त करना या तलवारके जोरसे लेना। मैंने इन दोनों तरीकोंका उल्लेख किया है और बादमें कहा है कि हमने इन दोनों तरीकोंकी बजाय एक तीसरे तरीकेकी खोज की है और वह है इस तरहका नैतिक दबाव जिसका प्रतिरोध न इंग्लैंड कर सकेगा, और न उसमें ऐसा करनेकी हिम्मत ही है। मैंने इसीको 'साधन' कहा है। फिर भी जब आप मुझपर इस विचारका आरोप करते हैं कि "हमें स्वराज्य इंग्लैंडसे अपने-आप मिल जायेगा" तो मुझे अवश्य ही दुःख होता है। मैं इस तर्कको विशद बना सकता हूँ; लेकिन मैं उसे अनावश्यक मानता हूँ। मैं आपसे यह हार्दिक अनुरोध करके ही अपना मन समझा लूँगा कि आप मेरा वक्तव्य और श्री सी० एफ० एन्ड्रयूजको कुछ दिन पहले भेजी गई मेरी कतरनें फिर पढ़ें। आप हमेशा यह ध्यान रखें कि मैं कोई विद्वान् नहीं हूँ, अतः कृपापूर्वक मेरे बिखरे विचारोंमें से, जो तर्ककी दृष्टिसे अधिक क्रमबद्ध नहीं हैं, मेरा पूरा-पूरा अभिप्राय निकालें। आपने कहा है कि मेरे स्वराज्यकी संगति जब चाहें तब ब्रिटिश साम्राज्यको छोड़नेकी स्वतन्त्रतासे नहीं बैठती। इस सम्बन्धमें मेरा कहना केवल इतना ही है कि आप मेरे तर्कोंकी सामान्य ध्वनि और दिशा तथा मेरे नागपुरके भाषणको देखें। आप इन सबसे आसानीसे समझ सकते हैं कि मेरी कल्पनाके स्वराज्यमें अंग्रेजोंसे 'आप चलते बनें' यह कहनेकी स्वतन्त्रता और क्षमता आ जाती है। आप अच्छी तरह जानते हैं कि कनाडाके लिबरल दलके नेता और फ्रांसीसी प्रधानमन्त्री स्व० सर विल्फ्रेड लारियेने कहा-था कि यदि कनाडा अपनी आजादीकी घोषणा कर देता है तो इंग्लैंड एक गोली भी नहीं चला सकता। ब्रिटेनके उपनिवेश साम्राज्यसे जिस समय चाहें सम्बन्ध-विच्छेद करनेके लिए स्वतन्त्र हैं, यह नीति अब विवादास्पद नहीं रही वरन् सर्वमान्य हो गई है।

अस्पृश्यताके विषयमें भी आप मेरा मत पूरी तरह नहीं समझे हैं। एक सामान्य धारणा, विशेष रूपसे विदेशोंमें व्याप्त है कि हिन्दुओंमें पंचमवर्णी लोगों और नीची जातियोंकी अस्पृश्यताका सिद्धान्त उच्चवर्णी हिन्दुओंने निकाला है। मैं केवल इस भ्रान्त और दुष्टताभरी धारणाको दूर करना चाहता हूँ। यदि आप मुझसे असहमत हों तो मैं इसके विरोधमें प्रमाण जानना चाहता हूँ। फिर इन अभागे वर्गोंपर लागू अस्पृश्यताका सिद्धान्त वर्ण और परिवारके भीतर प्रचलित अस्पृश्यताके सिद्धान्तका ही स्पष्ट और तर्कसम्मत विस्तार और अत्यन्त अनुदार ढंगका विकास है। दोनों ही दशाओंमें इस सिद्धान्तका आधार यह विचार है कि छूना यानी अशुद्ध और अपवित्र होना है। मेरा अभिप्राय केवल इतना ही था। मेरा आशय यह था कि दोनों विचार एक ही प्रकारके हैं; किन्तु उनमें मात्राका अन्तर है। शायद आपको मालूम नहीं है कि दक्षिण भारतमें रजस्वला स्त्रीके समीप जाना वर्जित है, चाहे वह अपनी माँ, बहन या बेटी ही क्यों न हो। यदि हम अनजाने उसके समीप चले जाते हैं तो हमें बिलकुल-

ऐसे ही नहाना और जनेऊ बदलना होता है, जैसे कट्टरसे-कट्टर रूढ़िवादीको किसी परियाको छूने या उसके बहुत पास जानेपर। श्री शंकराचार्यने धर्मके इस पक्षका पूरी तरह समर्थन नहीं किया है। उन्होंने कहा है कि रजस्वला स्त्रीका वास्तविक स्पर्श होनेपर नहाना और जनेऊ बदलना पर्याप्त है; परन्तु उसके पास जाने मात्रसे अशुद्धि नहीं होती। इस प्रकार इन सब तथ्योंसे आप देखेंगे कि मेरे कहनेका अभिप्राय इससे अधिक कुछ नहीं था कि जो शिकायत सचमुच मौजूद है और जिसे दूर करना हमारा पवित्र कर्त्तव्य है, उसका रूप और क्षेत्र व्यर्थ न बढ़ाया जाये जिससे हिन्दू समाजके उच्च वर्गोंने उनको जान-बूझकर नीचे गिरानेके लिए अस्पृश्यताका सिद्धान्त निकाला है, इस भ्रमसे पीड़ित लोगोंके मनमें अनावश्यक कटु भाव पैदा न हो। आशा है, आप मुझसे सहमत होंगे कि यदि दोनों पक्षोंमें से किसीमें भी भ्रान्त धारणाएँ न हों और पीड़ित लोग समस्याके कारणके भ्रान्तिपूर्ण निदानसे और शिकायतको अनुचित रूप देनेसे उत्पन्न कटुताके कारण कोई अशोभनीय भाव प्रदर्शित न करें तो हमारे सामूहिक राष्ट्रीय जीवनमें इस महत्त्वपूर्ण विषयमें सुधार करना ज्यादा आसान होगा। आशा है, हम जब फिर मिलेंगे और मुझे अपने पिछले और वर्तमान विचार आपको बतानेका सौभाग्य मिलेगा तब मैं आपको यह विश्वास करा सकूँगा कि अपने देशको इस संसारके महान् राष्ट्रोंके बीच उचित स्थान दिलानेके लिए मैं अपने देशके जो कर्त्तव्य और अधिकार समझता हूँ, उनके सम्बन्धमें मेरे विचार, आपके इस पत्रसे जैसा लगता है उसकी अपेक्षा कहीं अधिक समझदारी भरे, अधिक उचित और अधिक उदारतापूर्ण हैं।

श्रीमती गांधीको प्रणाम, आदरणीय श्री सी० एफ० एन्ड्रचूजको नमस्कार एवं बच्चोंको प्यार। आशा है कि आपका स्वास्थ्य दिनोंदिन सुधर रहा होगा और आप जल्दी ही पूर्ण स्वस्थ हो जायेंगे। आपको सादर अभिवादन सहित;

हृदयसे आपका,
सी० विजयराघवाचार्य

[पुनश्च :]

कोकोनाडा कांग्रेसने कथित समझौता-प्रस्तावको असहयोगका प्रस्ताव मानकर व्यवहारमें दुःखपूर्ण क्षुद्रता दिखाई है। मैं इस सम्बन्धमें आपका ध्यान, मसूलीपट्टमके डा० पट्टाभि सीतारामैया द्वारा सम्पादित 'जन्मभूमि' के रुखकी ओर खींचना चाहता हूँ। इस पत्रने इसका विरोध मुझसे भी अधिक किया है और सीतारामैया सच्चे कांग्रेसी हैं। आपका उनसे ज्यादा शुद्ध और निष्ठावान अनुयायी दूसरा कोई नहीं है।

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ८५७०) की फोटो-नकलसे।

परिशिष्ट ११

(क) रामानन्द संन्यासीका पत्र

बलदेव आश्रम
खुरजा (संयुक्त प्रान्त)
१ अप्रैल, १९२४

श्रीमान् महात्माजी,

आपका २८ तारीखका पत्र मिला। मुझे खेद है कि पहले पत्रमें मैंने आपको कोई ब्यौरा नहीं लिखा।

(१) १९२१की घटनाके बाद भरती बिलकुल बन्द हो गई थी। व्यापार मन्दीपर था और इंग्लैंड तथा भारत, दोनों ही जगह, भारतकी चाय काफी जमा थी। इस समय बाजारके भाव चढ़नेसे और जमा चायके खप जानेसे चाय बागानके मालिकोंको और ज्यादा मजदूरोंकी जरूरत महसूस हुई ताकि १९२१में छोड़े हुए बागानोंमें फिर चायकी खेती की जा सके। इस समय भरती पिछले नवम्बरमें शुरू हुई थी। मुझे सूचना अपने एक दोस्तसे मिली थी। वे जिला गुड़गाँव (पंजाब) में डिस्ट्रिक्ट इंजीनियर हैं। उसके बाद मुझे संयुक्त प्रान्तके लगभग छः जिलोंसे और पंजाबके दो जिलोंसे सूचना मिली। मैंने जनवरीमें समाचारपत्रोंके नाम एक वक्तव्य जारी किया था जिसमें मैंने लोगोंको भरतीके परिणामोंसे आगाह किया था। बागानोंके आंग्ल-भारतीय एजेंटोंने सावधानीसे उन जिलोंको छोड़ दिया था जिनसे वे १९२१की घटनासे पहले मजदूर भरती किया करते थे।

(२) उपर्युक्त विवरणमें आपके दूसरे और तीसरे प्रश्नोंके उत्तर भी आ जाते हैं।

(३) मैं चायके बागानोंमें यही जाँच-पड़ताल करना चाहता हूँ कि वहाँ इस समय वास्तवमें कैसी स्थिति है, क्या मजदूरोंकी नैतिक और आर्थिक स्थितिमें पहलेसे सुधार हुआ है; और यदि किसी भी दिशामें कोई भी सुधार नहीं हुआ हो तो क्या उन क्षेत्रोंमें मजदूरोंका जाना बन्द करना देशके सामान्य हितमें नहीं होगा, ताकि और अधिक लोगोंका चारित्रिक और नैतिक पतन न हो।

(४) जहाँतक मुझे पता लगा है, भरती किये जानेवाले मजदूरोंको कामकी कोई लिखित शर्तें नहीं बताई गई, लेकिन मुख्यतः उनकी शर्तें इस प्रकार थीं:

(१) पति और पत्नी दोनोंको ३० रु० मासिक मजूरी। (२) मकान, ईंधन और डाक्टरी देखभाल मुफ्त। (३) यदि नये मजदूरको जगह पसन्द न हो तो रेल-का वापसी टिकट मुफ्त। लेकिन आप स्वयं अन्दाज लगा सकते हैं कि यदि एक बार कोई चायबागानके जिलोंमें मजदूरके रूपमें चला जाता है तो उसके लिए वहाँसे लौटना कितना कठिन होता है। मैं आपके इस सुझावको बिलकुल स्वीकार

करता हूँ कि वहाँ जानेसे पहले असम कांग्रेस कमेटीकी मारफत जाँच-पड़ताल करा ली जाये; और मैं तदनुसार कमेटीको एक पत्र लिख रहा हूँ, जिसकी नकल इस पत्रके साथ संलग्न है। कुछ दिन पहले मुझे विसवाँ कांग्रेस कमेटीका एक पत्र मिला था। मैं इसके साथ वह मूल पत्र भी भेज रहा हूँ।

हृदयसे आपका,
रामानन्द संन्यासी

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ८६४३) की फोटो-नकलसे।

(ख) रामानन्द संन्यासीका असम कांग्रेस कमेटीको पत्र

वलदेव आश्रम
खुरजा (संयुक्त प्रान्त)
१ अप्रैल, १९२४

मन्त्री
असम प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी
गोहाटी

प्रिय महोदय,

पिछले नवम्बरमें, मुझे पंजावके गुड़गाँव जिलेसे सूचना मिली थी कि कोई आंग्ल-भारतीय सज्जन सेनाके सेवानिवृत्त लोगोंको चायबागनोंके लिए मजदूर भरती करनेके लिए नौकर रख रहे हैं और उनकी शर्तें ये हैं: (१) बागानतक का मुफ्त रेलका टिकट। (२) पति और पत्नी दोनोंकी ३० रु० मासिक मजूरी। (३) मकान और ईंधन मुफ्त। यदि नया मजदूर वहाँ जानेके बाद रहना न चाहे तो वे वापसी रेल-किराया और सफर-खर्च भी देनेके लिए तैयार हैं। इस सूचनाके तुरन्त वाद ही इसी तरहकी सूचनाएँ मुझे पंजावके करनाल, अम्वाला, रोहतक और हिस्सार जिलोंसे तथा फैजावाद, वलिया, गोरखपुर और दो-तीन दूसरे जिलोंके अलावा संयुक्त प्रान्तके लगभग सभी जिलोंसे मिली हैं। उन्होंने इन जिलोंको शायद इसलिए छोड़ दिया था कि इनमें उनके यहाँ रहे हुए पुराने मजदूर हैं। चूँकि चायवागानोंकी मौजूदा हालतोंसे मैं पूरी तरह वाकिफ था और १९२१ की घटना मेरी आँखोंके सामने साफ मौजूद थी, इसलिए मैंने पिछली जनवरीमें वंगाल, पंजाब और संयुक्त प्रान्तके समाचारपत्रोंके नाम एक वक्तव्य जारी किया था। आपने यह वक्तव्य अवश्य ही देखा होगा। मैंने वंगाल, संयुक्त प्रान्त और पंजावकी कमेटियोंको परिस्थितिके अनुसार कार्रवाई करनेके लिए भी लिखा था। उस समय मैंने आपको पत्र नहीं लिखा; इसलिए नहीं कि लिखना जरूरी नहीं था, वरन् इसलिए कि असम मेरे ध्यानसे उतर ही गया था। अव मैंने महात्मा गांधीको सव वातें लिखीं और उनकी सलाह माँगी कि चायवागानोंमें जाकर वहाँकी हालत देखना उचित होगा या नहीं। उन्होंने मुझे

लिखा[1] है कि मैं पहले आपकी मारफत पूछताछ करवाऊँ और तब उस जानकारीको ध्यानमें रखते हुए विचार करूँ कि क्या कदम उठाया जाये। इसलिए यदि आप मुझे निम्नलिखित जानकारी दे सकेंगे तो मैं आभारी हूँगा: (१) इस समय चाय-बागानोंमें वास्तविक स्थिति कैसी है; और क्या १९२१ की घटनाओंके बाद मजदूरी अथवा नैतिक स्थितिमें कुछ परिवर्तन हुआ है? (२) क्या वहाँ नये मजदूर आ रहे हैं? यदि आ रहे हैं तो मुख्यत: किन जिलोंसे आ रहे हैं और उनके साथ कैसा व्यवहार किया जा रहा है? (३) क्या आप अपनी जाँच-पड़तालके परिणामको ध्यानमें रखते हुए मजदूरोंकी भरतीके खिलाफ कदम उठाना ठीक समझते हैं या क्या वहाँ उनकी देखभालके लिए किसी व्यक्तिको भेजना चाहिए?

कृपया मेरे इस पत्रके उत्तरकी एक नकल महात्माजीको अन्धेरी, बम्बईके पतेपर भेज दें।

हृदयसे आपका,
रामानन्द संन्यासी

(टिप्पणी) मैं इस पत्रकी एक नकल महात्माजीको उनके आदेशानुसार भेज रहा हूँ।

रा. सं.

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ८६४३) की फोटो-नकलसे।

परिशिष्ट १२

एसोसिएटेड प्रेसके प्रतिनिधिसे सी० एफ० एन्ड्रयूजकी भेंट

इसी विषयपर भेंटके समय श्री सी० एफ० एन्ड्रयूजने कहा कि जनरल स्मट्ससे हुई प्रारम्भिक वार्ताके दौरान, जिसके परिणामस्वरूप जुलाई १९१४ का स्मट्स-गांधी समझौता हुआ था, मैं लगातार श्री गांधीके साथ-साथ था। वास्तवमें समझौतेके मूल मसविदेपर मेरे सामने ही हस्ताक्षर किये गये थे। उसके प्रत्येक शब्दपर सावधानीसे बातचीत की गई थी और दोनों पक्षोंने उसका पूरी तरह स्पष्टीकरण किया था। जनरल स्मट्सने कहा था "इस बार भ्रम या मानसिक दुरावका अवकाश नहीं होना चाहिए। सभी बातें साफ-साफ सामने आ जानी चाहिए।" श्री गांधीने पूर्णत: इस भावनाके अनुरूप ही काम किया था। उन्होंने ये तीन मुद्दे यथासम्भव स्पष्ट कर दिये थे:

(१) समझौतेमें किसी भी प्रकारकी प्रजातीय भावनाका दोष न होना चाहिए;
(२) जातिके मौजूदा अधिकार छोटे होनेपर भी सुरक्षित रखे जाने चाहिए, और,

१. देखिए "पत्र: रामानन्द संन्यासीको", २८-३-१९२४।

(३) जो भी निर्योग्यताएँ शेष रह जायें उनको दूर करनेके सम्बन्धमें बातचीत की जा सकेगी।

यह तीसरा मुद्दा गृहमन्त्रीके सचिवको १६ जून, १९१४को लिखे गये एक पत्रमें साफ तौरसे रख दिया गया था। श्री गांधीने अपने विदाई भाषणोंमें, जो समस्त संसारमें तार द्वारा भेजे गए थे, पहले मुद्देपर बार-बार जोर दिया था। उदाहरणके लिए उन्होंने जोहानिसबर्गमें कहा था: "जो समझौता हुआ है उसमें यह सिद्धान्त स्थिर किया गया है कि कानूनमें प्रजातीय भावनाका दोष कभी नहीं आयेगा। इसमें तो ब्रिटिश संविधानके उस आशयके सिद्धान्तकी पुष्टि की गई है। मैं समझता हूँ कि समझौतेमें गलतफहमीकी कोई गुंजाइश नहीं रही है। समझौता जहाँ इस अर्थमें अन्तिम है कि उससे एक बड़े संघर्षका अन्त हुआ है, वहाँ वह इस अर्थमें कि उसके द्वारा भारतीयोंको वह सब मिल जाता है, जिसके वे अधिकारी हैं अन्तिम नहीं भी है। ये शेष बचे प्रतिबन्ध हटाने होंगे।"

श्री गांधीका सबसे ज्यादा महत्त्वपूर्ण वक्तव्य, जिसे इस विषयपर उनका अन्तिम कथन माना जा सकता है, दक्षिण आफ्रिकासे विदाईके समय रायटरको दिया हुआ उनका सन्देश है। उसमें निम्नलिखित महत्त्वपूर्ण अंश था: "जनरल स्मट्सने वर्तमान कानूनोंको, न्यायोचित ढंगसे निहित अधिकारोंका समुचित ध्यान रखते हुए, अमलमें लानेका जो वचन दिया है, उससे भारतीय समाजको साँस लेनेका समय मिल गया है। लेकिन ये कानून स्वतः ही सदोष हैं, अतः उन्हें भूतकालकी भाँति भविष्यमें भी दमनका यन्त्र और भारतीयोंको दक्षिण आफ्रिकासे अप्रत्यक्ष रूपमें बाहर निकालनेका साधन बनाया जा सकता है। भविष्यमें भारतीयोंके यहाँ आनेपर लगभग रोक-सी रहेगी और वे राजनैतिक सत्तासे लगभग वंचित रहेंगे — हमने यह छूट यहाँके लोगोंके जातीय विद्वेषको देखते हुए ही दी है। हमसे ज्यादासे-ज्यादा इतनी ही अपेक्षा की जा सकती थी। इन दो बातोंपर आश्वस्त किये जानेपर मेरा निवेदन यह है कि हमें व्यापार, अन्तर्प्रान्तीय प्रवास और अचल सम्पत्तिके स्वामित्वका पूरा अधिकार शीघ्र ही पुनः दे दिया जाना चाहिए।"[१]

श्री एन्ड्रयूजने कहा कि इन उद्धरणोंसे यह बात बिलकुल स्पष्ट हो जाती है कि श्री गांधी दक्षिण आफ्रिकासे पूर्णतः सुनिश्चित समझौता करके ही आये थे। प्रवास-पर रोक रहेगी, यह मानते हुए ही जनरल स्मट्सने यह बात स्वीकार की थी कि कोई भी प्रजातीय प्रतिबन्ध नहीं लगाया जायेगा और सभी मौजूदा निहित अधिकार सुरक्षित रहेंगे। उन्होंने यह बात भी स्वीकार की थी कि भविष्यमें भारतीय समाज अन्तर्प्रान्तीय प्रवासपर प्रतिबन्ध-जैसी अन्य निर्योग्यताओंको भी हटवानेका प्रयत्न करनेके लिए स्वतन्त्र होगा।

अपना वक्तव्य समाप्त करते हुए श्री एन्ड्रयूजने कहा कि श्री डंकनकी व्याख्या बिलकुल समझमें नहीं आती और श्री गांधीकी भविष्यवाणी सच होती जान पड़ती

१. देखिए खण्ड १२, पृष्ठ ४९४।

है; क्योंकि ऐसा दिखता है कि संघ सरकार अब अपने कानूनोंको "दमनका यन्त्र तथा भारतीय जनताको दक्षिण आफ्रिकासे बाहर खदेड़नेका अप्रत्यक्ष साधन बनानेमें संलग्न है।"

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, ७-४-१९२४

परिशिष्ट १३

(क) स्वामी श्रद्धानन्दके नाम मुहम्मद अलीका पत्र

आदरणीय स्वामीजी महाराज,

अफसोस कि मैं अपने वादेके मुताबिक आपके बताये मामलेपर कल आपको खत नहीं लिख सका, क्योंकि मैं नवाब साहब रामपुरसे मिलने चला गया था और वहाँ मुझे दिनके ११ बजेसे रात ८ बजेतक रहना पड़ा। मैंने 'तेज'में अभी-अभी पढ़ा है कि आपके चार आर्यसमाजी दोस्तोंने मुझसे कांग्रेससे इस्तीफा देनेकी माँग की है। इसे पढ़कर मुझे बरबस हँसी आ गई, हालाँकि मैं कबूल करता हूँ कि इससे मुझे बहुत दुःख भी हुआ। मैं जानता हूँ कि ऐसे कुछ लोग कुछ समयसे इस तरहके कामोंमें लगे हुए हैं। लेकिन मैंने लखनऊकी आम सभामें इसके बारेमें किये गये सवालका जवाब देनेके बाद यह मान लिया था कि ये लोग आगे इस तरहके काम नहीं करेंगे। उस सभामें मौजूद एक हिन्दू साहबको मेरा जवाब इतना पसन्द आया कि वे जोशमें आकर पुकार उठे थे कि २२ करोड़ हिन्दू आपके साथ लड़ने और मरनेके लिए तैयार हैं। किन्तु मैं अब महसूस करता हूँ कि मेरी यह उम्मीद कितनी बेकार थी। हालाँकि यह बहस इस समय जिस तरह चलाई जा रही है उसे देखते हुए जवाबमें एक लफ्ज भी कहना बिलकुल गैर-जरूरी हो जाता है, फिर भी चूँकि मैं मामलेकी पूरी सफाईका वादा कर चुका हूँ, इसलिए जैसा आप चाहते हैं मैं यह बयान दे रहा हूँ:

हकीकत वही है जो मैंने आपको जबानी बताई थी। तब भी मेरे कुछ मुसलमान दोस्त मुझपर बराबर यह इल्जाम लगा रहे हैं कि मैं हिन्दू-परस्त और गांधी-परस्त हूँ। वे यह दिखाना चाहते हैं कि मैं मजहबी उसूलोंके बारेमें महात्मा गांधीका मुरीद हो गया हूँ। इसमें इनका असल मंशा यह है कि मुसलमान लोग, खिलाफत कमेटी और कांग्रेस मुझसे नाखुश हो जायें। इसलिए कई मौकोंपर मैंने साफ-साफ कहा है कि मजहबी मामलोंमें मेरा वही अकीदा है जो किसी भी दूसरे सच्चे मुसलमानका है। मैं इसीलिए पैगम्बर मुहम्मदका (खुदा उनको राहत दे) मुरीद होनेका दावा करता हूँ, गांधीजीका नहीं। और चूँकि मैं इस्लामको खुदाकी सबसे बड़ी देन मानता हूँ, इसलिए महात्माजीके लिए मेरे मनमें मुहब्बतका जो जज्बा है उसीने मुझे खुदासे यह दुआ माँगनेके लिए कहा है कि वह उनकी रूहको इस्लामकी सच्ची रोशनी-

से रोशन कर दे। फिर भी मैं जोर देकर अपने इस अकदेका ऐलान करना चाहता हूँ कि इस्लाम, हिन्दू, यहूदी, ईसाई या पारसी किसी भी मजहबका आज ऐसा कोई भी नुमाइंदा मौजूद नहीं जो महात्माजीकी तरह नेकचलन और उसूलोंका पाबन्द हो। इसीसे मेरे दिलमें उनके लिए इतना अदब और मुहब्बत है। मैं अपनी माँका बहुत अदब करता हूँ और अगर इस्लामकी सच्ची नसीहत हर हालमें सब्र करना और एहसानमन्द रहना है तो मेरा दावा है कि कोई भी इन्सान — चाहे वह धर्मका कितना भी बड़ा पण्डित हो — इस्लामको मेरी माँसे ज्यादा अच्छी तरह नहीं समझा है। इसी तरह मैं मौलाना अब्दुल बारीको अपना मजहबी रहनुमा मानता हूँ। उनकी मेहरो-मुहब्बतसे मैं बँधा हुआ हूँ। मैं उनके हृदयकी निश्छलताकी बहुत तारीफ करता हूँ। लेकिन इसके बावजूद मैं यह कहनेकी हिम्मत करता हूँ कि मुझे आजतक ऐसा कोई भी इन्सान नहीं मिला जो सच्चे अमलके नजरियेसे महात्मा गांधीसे ऊँचे स्थान-पर बैठने लायक हो।

लेकिन मजहबी अकीदे और अमलमें बड़ा फर्क है। इस्लामको माननेवाला होनेके नाते मैं यह माननेके लिए मजबूर हूँ कि इस्लामके उसूल इस्लामके अलावा किसी भी दूसरे मजहबको माननेवालों के उसूलोंसे ऊँचे हैं। इस नजरियेसे एक पस्त और गिरे हुए मुसलमानके मजहबी उसूल भी एक गैर-मुसलमानके मजहबी उसूलोंके मुकाबिले ऊँचा दर्जा पानेके मुस्तहक हैं — भलेही वह गैर-मुसलमान कितना ही पाक और नेकचलन क्यों न हो, और चाहे वह खुद महात्मा गांधी ही क्यों न हों।

लखनऊमें जब मेरी तकरीर शुरू होनेसे ठीक पहले किसीने ऊपर बताये गये सवालकी एक नकल जवाबके लिए मुझे दी और बहुत-सी नकलें सुननेवालों में भी बाँटी थीं तब मैंने कहा था कि मैं ऐसे किसी सवालका जवाब देना नहीं चाहता; क्योंकि मैं समझता हूँ कि किसी भी इन्सानको, जबतक वह यह साबित न कर दे कि वह महात्माजीसे मेरे मुकाबले ज्यादा मुहब्बत करता है, मुझपर उनकी हतकका इल्जाम लगानेका हकदार नहीं हो सकता। मैंने ऊपर बताया गया जवाब तब दिया, जब मुझे बताया गया कि सवाल यह नहीं है कि मैंने गांधीजीकी हतक की है, बल्कि यह है कि मैंने हिन्दू धर्मकी हतक की है। मेरी उस तकरीरकी रिपोर्ट आजसे करीब एक महीने पहले 'हमदम' में छपी थी। उसमें मैंने यह भी कहा था कि जहाँतक सच्चे अमलसे जुदा मजहबी अकीदेका ताल्लुक है, हर ईसाई यह मानता है कि बहुत ही पस्त गिरा हुआ ईसाई भी एक पाक और नेकचलन मुसलमान या यहूदीसे ज्यादा ऊँचा दर्जा पानेका मुस्तहक है। हिन्दू और दूसरे धर्मोंके माननेवाले भी ऐसा ही मानते हैं। जैसा कि मैं बता ही चुका हूँ, मेरा जवाब इतना तसल्लीबख्श साबित हुआ कि एक हिन्दू दोस्तने पुकारकर कहा कि "२२ करोड़ हिन्दू आपका साथ देनेके लिए तैयार हैं।" सुननेवालोंमें से बहुतसे हिन्दुओंने उसकी बातपर खुशी जाहिर करते हुए 'वन्देमातरम्' और 'अल्लाहो-अकबर' के नारे लगाये। दूसरी तरफ जो लोग उस सवालकी छपी हुई नकलें लाये थे, उनका मुँह बिलकुल बन्द हो गया। मजेकी बात तो यह है कि जिन लोगोंने मुझसे इस्तीफेकी माँग की है, उनमें से एक साहबने अभी हालमें मुझे देहरादूनमें एक आम सभामें आनेके लिए बड़े तपाकसे दावत दी थी।

ऐसे हालातमें मैं इन साहवानके कहने या सोचनेपर अपने किसी कामको नहीं छोड़ सकता। इसके अलावा, यह बात पूरी तरह कांग्रेसके इख्तियारकी है। फिर भी मैं यहाँ यह कहना चाहता हूँ और आप भी मेरी इस बातकी ताईद करेंगे कि हालाँकि मैं इस्लामका एक नाचीज बन्दा हूँ, लेकिन अगर ये साहवान मुझे हिन्दू-मुस्लिम एकताका दुश्मन और महात्मा गांधी तथा उनके जानेमाने मजहबी अकीदेकी हतक करनेवाला मानते हों तो मेरा खयाल है कि ऐसा एक भी मुसलमान नहीं होगा जो उन्हें पूरी तरहसे तसल्ली करा सकेगा।

एक बार मैं फिर कहना चाहता हूँ कि यदि मैंने आपसे वादा न किया होता तो मैं यह खत लिखता ही नहीं; क्योंकि मैं इस देशमें आजकल जो कई बहसें छिड़ी हुई हैं उनमें इजाफा नहीं करना चाहता। मैं इस समय अपनी बेटीकी मौत और अपने एक भाई और अपनी माँकी खतरनाक बीमारीकी वजहसे जिस्मानी तौरपर इस बहसमें पड़नेके नाकाबिल हूँ। ऐसे वक्त जिन दोस्तोंने यह बदमजा बहस छेड़ी है मैं उन्हें उनकी अखलाकी तमीजपर ही छोड़ना अच्छा समझता हूँ। मैं एक बार फिर आपकी हमदर्दीके लिए आपका शुक्रगुजार हूँ और इन अल्फाजके साथ खत पूरा करता हूँ कि अगर आप इसके बारेमें अखबारोंमें कुछ लिखें तो इस खतको आप ज्योंका-त्यों छाप सकते हैं।

आपका,
मुहम्मद अली

(ख) 'तेज' के सम्पादकके नाम मुहम्मद अलीका पत्र

प्रिय महोदय,

स्वामीजी महाराजके खतमें एक ऐसा जुमला था जिसका मतलब लगाया जा सकता है कि मैं हस्तीकी कशाकशसे निजातके लिए अच्छे काम करना जरूरी नहीं मानता। ऐसा न मैं मानता हूँ, न कोई भी मुसलमान। निज़ातकी जरूरी शर्तें हैं: अकीदा, अमलकी पाकीजगी, दूसरोंको नेक काम करनेके लिए समझाना और उन्हें बुरे कामोंसे आगाह करना तथा अपने कियेका फल तहम्मुलके साथ भोगना। मैं मानता हूँ कि जिस तरह एक मुसलमान बुरे कामोंके लिए सजा पानेके लायक है उसी तरह एक गैर-मुसलमान भी अपने नेक अमलके लिए अच्छे फलका मुस्तहक है। सवाल निज़ातके लिए जरूरी शर्तोंका नहीं, बल्कि मजहबी अकीदे और अमलमें फर्कका है। यही वजह है कि मैं महात्माजीको अपने जाने हुए सभी मुसलमानोंसे ऊँचा दर्जा देता हूँ। लेकिन अपने मजहबको सभी गैर-मुसलमानोंके मजहबसे ऊँचा मानना हर मुसलमानका फर्ज है। ऐसा कहकर मैंने अपने ऊपर लगाये गये 'गांधी-परस्ती' के इल्जामका जवाब दिया था। मेरा मंशा बिलकुल यही था, हिन्दू भाइयोंके जज्बातको चोट पहुँचाना या महातमा गांधीकी हतक करना नहीं। इसपर अगर किसीको शिकायत हो सकती है तो मेरे अपने मजहबके लोगोंको ही हो सकती है, क्योंकि

मैं उनमें से किसीको भी अमलकी पाकीजगीके नजरियेसे महात्मा गांधीके बराबर नहीं मानता।

मुहम्मद अली

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, १०-४-१९२४

परिशिष्ट १४

(क) कौंसिल-प्रवेशके सम्बन्धमें मोतीलाल नेहरूकी टीप

महात्माजीका मसविदा मुझे मिले पूरा एक सप्ताह हो गया है। इस बीच मैंने मसविदेको यथाशक्ति पूरे ध्यानसे बार-बार पढ़ा है और मुझे उसपर महात्माजीसे चर्चा करनेका लाभ भी मिला है, जिसके लिए उन्होंने मुझे कृपापूर्वक तीन घंटेसे अधिक समय दिया। महात्माजीने जो बातें कहीं, मैंने उनपर चिन्तन और मनन किया है। किन्तु मुझे यह कहते हुए दुःख होता है कि इस दीर्घ चिन्तन और मननसे भी मेरा १८ महीने पहले बनाया हुआ मत पुष्ट ही हुआ है।

मैं मानता हूँ कि महात्माजी और मेरे बीच जो मतभेद है वह केवल ब्योरेकी बातोंको लेकर ही नहीं है बल्कि कुछ मामलोंमें सैद्धान्तिक है। असलमें अधिक बारीकीसे जाँच करनेपर मेरा खयाल यह बना है कि हमारा यह मतभेद और भी गहरा है और उसका मूल स्वयं इस सिद्धान्तमें नहीं बल्कि स्वयं इस सिद्धान्तके आधारभूत विचारमें है। किन्तु इसके बावजूद मेरा यह विश्वास हो गया है कि इस मतभेदका प्रभाव इस सिद्धान्तको व्यवहारमें लागू करनेपर नहीं पड़ता और हमें वैसा प्रभाव पड़ने भी नहीं देना चाहिए। अब हम अहिंसा और असहयोगपर पृथक-पृथक विचार करें।

(१) "अहिंसा"—इस मामलेकी आवश्यकतासे विवश होनेके कारण अहिंसाका जो स्वरूप मैंने स्वीकार किया है उसकी अपेक्षा महात्माजीकी अहिंसाकी कल्पना अधिक ऊँची है। कांग्रेस अहिंसाके सिद्धान्तको उसके सब फलितार्थों और सहज परिणामों सहित स्वीकार नहीं कर सकती और उसने उसको स्वीकार किया भी नहीं है। वह मानती है कि उसके दायरेमें सब धर्मों और सम्प्रदायोंके लोग आते हैं। इस्लाम अहिंसाको जीवनका अपरिवर्तनीय और अटूट नियम नहीं मानता और हिन्दुओंकी कई जातियाँ और धार्मिक शाखाएँ हिंसाके सविवेक प्रयोगमें विश्वास रखती हैं। जहाँ महात्माजी किन्हीं भी स्थितियोंमें मन, वचन और कर्मसे हिंसा नहीं करना चाहते वहाँ बहुतसे सच्चे कांग्रेसी ऐसे हैं जो कुछ स्थितियोंमें वास्तविक स्थूल हिंसा करना भी अपना परम कर्तव्य मानते हैं। असलमें मैं यह मानता हूँ कि यदि हम विचारमें आने योग्य समस्त स्थितियोंमें सब प्रकारकी हिंसाका निषेध कर देंगे तो यह मानवकी उच्चतम और उदात्ततम भावनाओंपर बलात्कार करना होगा। यदि मैं किसी बलवान-को अपेक्षाकृत कमजोर आदमीपर आक्रमण करता हुआ या उससे दुर्व्यवहार करता

हुआ देखूँ तो मैं इतना ही न करूँगा कि आक्रमणकारी और उस पीड़ित व्यक्तिके बीचमें कूद पड़ूँ और इस प्रकार ऐसी स्थिति उत्पन्न कर दूँ जिससे उसके सम्मुख एकके बजाय दो पीड़ित व्यक्ति हों, बल्कि मैं उसे पटककर उस पीड़ित व्यक्तिकी और अपनी रक्षा करनेका प्रयत्न करूँगा। फिर यदि कोई मुझपर आक्रमण करे तो मैं आक्रमणकारीसे अपनी रक्षा, आवश्यक होनेपर, बलप्रयोग करके भी करूँगा और मेरा वह बलप्रयोग विशेष स्थितियोंमें आक्रमणकारीके लिए प्राणान्तक भी हो सकता है। मुझे इस तरहके दूसरे उदाहरण देनेकी जरूरत नहीं है। ऐसे उदाहरण तो आसानीसे सोचे जा सकते हैं। जहाँतक विचारकी अहिंसाका सम्बन्ध है, यह स्पष्ट है कि जो मनुष्य विशेष अवसरोंपर वास्तविक हिंसा करनेके लिए तैयार हो वह हिंसाके विचारसे सर्वथा मुक्त नहीं हो सकता। अहिंसात्मक असहयोगमें सम्मिलित होकर मैंने जो जिम्मेदारी अपने ऊपर ली है वह केवल इतनी ही है कि मैं सरकारके विरुद्ध असहयोगके कार्यक्रमको कार्यान्वित करनेमें किसी तरहकी हिंसा नहीं करूँगा अथवा उसकी बात भी नहीं सोचूँगा। "अहिंसाका पूरा पालन किया जाये; किन्तु उसका प्रयोग जिस उद्देश्यके लिए वह स्वीकार की गई है उसीतक सीमित रखा जाये", मैं महात्माजीके कथनका अर्थ इतना ही समझता हूँ। यदि कोई सरकारी अधिकारी ऐसे मामलोंमें जिनका कांग्रेससे कोई सम्बन्ध नहीं है, मेरे साथ ऊपर बताये गये बदमाशकी तरह व्यवहार करना चाहे तो मैं उस अधिकारीसे वैसे ही निबटूँगा, जैसे उस बदमाशसे। जहाँतक मेरा सम्बन्ध है, मैं अहिंसाके सिद्धान्तका उपयोग जिस विशिष्टतम उद्देश्यके लिए मैंने उसे स्वीकार किया है, उसीतक सीमित मानता हूँ।

महात्माजी कहते हैं कि कौंसिलोंमें जाना 'हिंसामें भाग लेनेके समान है।' मेरे खयालसे इसमें इस तथ्यकी ओर संकेत किया गया है कि कौंसिलें हिंसाकी नींवपर बनी सरकार द्वारा स्थापित की गई संस्थाएँ हैं। मैं मानता हूँ कि इस अर्थसे ऐसी सरकारके शासनमें रहनेवाला कोई भी मनुष्य हिंसामें भाग लेनेसे नहीं बच सकता। किन्तु ऐसी सरकारके शासनमें रहना और जीवन-रक्षाके लिए अत्यावश्यक साधनोंको अपनाना भी "हिंसामें भाग लेनेके समान" होगा। हिंसाकी नींवपर बनी सरकारके शासनमें रहने मात्रकी अपेक्षा कौंसिलोंमें जाना हिंसामें अधिक सीधा भाग लेना है या नहीं, यह प्रश्न केवल मात्राका है और इसका उत्तर जिस उद्देश्यसे लोग कौंसिलोंमें जाते हैं, उस उद्देश्यपर निर्भर करता है।

गांधीजीने इस बातकी सचाईमें शंका प्रकट की है कि "अहिंसाका जैसा आत्यन्तिक अर्थ मैं करता हूँ वैसा दूसरा कोई नहीं करता और ज्यादातर कांग्रेसी अहिंसाकी परिभाषा केवल अपने विरोधीको शारीरिक क्षति न पहुँचाना ही करते हैं।" इस विचारको सिद्धान्त-रूपमें माननेवाले कुछ लोग हो सकते हैं; किन्तु मैं महात्माजीके ऐसे एक भी अनुयायीको नहीं जानता जो इसपर आचरण करता हो। यह सच है कि मैं अहिंसाको जिस सीमित अर्थमें मानता हूँ उसमें भी वह वाणी और कर्म दोनोंकी अहिंसा होनी चाहिए और वह केवल शारीरिक क्षति न पहुँचानेतक ही सीमित नहीं हो सकती। किन्तु विचारकी अहिंसा पूर्णतः अव्यावहारिक समझकर अमान्य

की जानी चाहिए। यदि हम ऐसा न करेंगे तो अपने ही बुने भ्रमके जालमें फँस जायेंगे और फिर हमारे लिए उसमें से निकलना असम्भव हो जायेगा।

(२) असहयोग — मैं स्वीकार करता हूँ कि कांग्रेसकी वर्तमान गति-विधियोंमें मुझे असहयोगका कोई चिह्न दिखाई नहीं देता। यह सम्भव है कि उनके परिणाम-स्वरूप भविष्यमें कभी असहयोग किया जा सके; किन्तु वे स्वतः तो किसी भी तरह असहयोग नहीं मानी जा सकतीं। केवल बारडोलीका कार्यक्रम हमारे सम्मुख है, किन्तु उसमें भी कोई ऐसी बात नहीं है जो किसी भी अर्थमें सरकारसे वास्तविक असहयोग मानी जा सके। महात्माजी कहते हैं कि त्रिविध बहिष्कार असफल नहीं हुआ है क्योंकि वकीलोंकी प्रतिष्ठा चली गई है, माँ-बापोंका सरकारी स्कूलोंकी शिक्षासे विश्वास उठ गया है और कौंसिलोंमें कोई आकर्षण नहीं रह गया है। मैं यह सब स्वीकार करता हूँ और यह भी मानता हूँ कि ऐसी और भी कई चीजें हैं जो अब नहीं रही हैं। किन्तु प्रश्न यह है कि यह सब बहिष्कारपर अमल करनेसे हुआ है या यह महात्माजीके उपदेशोंका परिणाम है। क्या इससे यह सिद्ध नहीं होता कि स्थिति बहिष्कारकी बात सोचनेसे पहले जैसी थी, अब उससे भी ज्यादा बुरी है? वकीलों और स्कूल जानेवाले छात्रोंकी संख्या बहुत-कुछ बढ़ गई है और कौंसिलोंमें जानेवाले लोगोंकी संख्या जितनी थी, अब भी उतनी है। अन्तर केवल इतना ही है कि जहाँ १९२० से पहले लोग वकालतका धन्धा करते हुए, अपने बच्चोंको सरकारी स्कूलोंमें भेजते हुए और कौंसिलोंमें जाते हुए यह विश्वास करते थे कि उनका कार्य उचित है, वहाँ १९२१-२३में वे इन्हीं कामोंको करते हुए यह समझते और विश्वास करते हैं कि वे अपने प्रति ही नहीं, बल्कि समस्त राष्ट्रके प्रति भारी अन्याय कर रहे हैं। क्या इससे लोगोंका नैतिक स्तर ऊँचा उठा है? मेरे विनम्र मतमें इस त्रिविध बहिष्कारसे केवल इतना ही सिद्ध हुआ है कि जिन ऊँचे आदर्शोंपर चलनेके लिए लोग तैयार न हों उन आदर्शोंका प्रचार करनेसे निश्चित हानि ही हो सकती है। ईमानदारी यह होगी कि हम इस त्रिविध बहिष्कारकी असफलताको स्वीकार कर लें और इस बहिष्कारको निसंकोच छोड़ दें। यदि स्वराज्यवादी लोग यह न समझते कि महात्माजीके उपदेशोंके विरुद्ध जनसाधारणको नहीं ले जाया जा सकता तो वे इस कार्यको जरूर करते। उसके बाद दूसरा कार्य जिसे वे कर सकते थे वह था कौंसिलोंमें सच्चे असहयोगका तत्त्व दाखिल करना। इस कार्यमें उनको बहुत अधिक सफलता मिली है, इसमें कोई शंका नहीं हो सकती।

अब मैं कौंसिल-प्रवेशके विरुद्ध दिये गये महात्माजीके तर्कोंका विवेचन करूँगा। उन्होंने यह कहकर कि "विधान सभाओंमें प्रवेश करनेसे स्वराज्यकी ओर प्रगति रुकी है — स्वराज्यवादियोंपर एक गम्भीर और भारी लांछन लगाया है। मैं सादर किन्तु सशक्त रूपमें इस विवादमें अपना पक्ष रखता हूँ और कहता हूँ कि बात बिलकुल उलटी ही है। वास्तवमें हुआ यह है कि कौंसिलमें ऐसे लोक-स्वराज्यकी नींव डाल दी गई है जिसका विकास लोगोंकी स्वतन्त्र इच्छा और पसन्दके आधारपर किया जायेगा। कौंसिलकी माँग स्वीकार की जायेगी या नहीं, यह बात गौण है। इसी तरह यह प्रश्न भी उतना ही असंगत है कि कौंसिलों द्वारा स्वराज्यकी ओर

वास्तविक प्रगति सम्भव है या नहीं। किन्तु मेरी समझमें यह बात बिलकुल नहीं आती कि कौंसिल अथवा विधान सभाओंमें की गई किसी कार्रवाईसे "स्वराज्यकी ओर प्रगति वस्तुतः कैसे रुकी है।" मेरा खयाल तो यह है कि स्वराज्यवादियोंने सन्देहग्रस्त संसारको कमसे-कम यह दिखा दिया है कि उनके दलके लोग कृतसंकल्प हैं और वे स्वराज्यसे कम कोई चीज स्वीकार नहीं करेंगे। हमारे प्रदर्शनका कोई निश्चित लाभ हुआ है, यह बात शायद शंकास्पद हो, किन्तु उससे हानि हुई है, यह कहना तो उचित नहीं है।

अब मैं महात्माजीके बताये गये कारणोंका साफ-साफ उत्तर दूँगा।

(क) कौंसिल-प्रवेश — "वर्तमान शासन-पद्धतिमें प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष भाग लेनेके समान" है। हम अपने दैनिक जीवनमें ऐसे बहुतसे कार्य करते हैं जिनके द्वारा हम वर्तमान शासन-पद्धतिमें प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष भाग लेते हैं। किन्तु यह आपत्ति इस मान्यतापर आधारित मालूम होती है कि विधान सभाएँ इस प्रणालीको कायम रखनेके लिए बनाये गये तन्त्रकी मुख्य अंग-मात्र हैं। यह कहना ज्यादा सही होगा कि वर्तमान प्रणालीका औचित्य बतानेके लिए बनाये गये तन्त्रमें ये विधान सभाएँ केवल दिखावटी अंग हैं। तथ्य यह है कि सरकार विधान सभाओंसे पूर्णतः स्वतन्त्र है। ये सभाएँ इस प्रणालीको वास्तवमें कायम नहीं रखतीं; बल्कि सरकार संसारको जो धोखा दे रही है, वे उसे छिपानेके लिए बनाई गई हैं। स्वराज्यवादी कौंसिलोंमें इस धोखेकी कलई खोलनेके लिए गये हैं। वे इस धोखेमें हिस्सा नहीं लेते, बल्कि उसमें हिस्सा लेनेसे इनकार करते हैं। कांग्रेसजन नगरपालिकाओंमें भाग लेते हैं; किन्तु गांधीजी इस सम्बन्धमें कुछ नहीं कहते। मैं महात्माजीके इस रुखसे उनके इस कथनका मेल बैठानेमें असमर्थ हूँ। इस देशमें जो विभिन्न नगरपालिका अधिनियम लागू हैं उनको सरसरी निगाहसे पढ़नेसे यह बात मालूम होगी कि ये संस्थाएँ प्रशासनका अत्यन्त आवश्यक भाग हैं और उनको समस्त महत्त्वपूर्ण मामलोंमें सरकारसे पूरा सहयोग करके ही चलाया जा सकता है। उनके कारण सरकारी स्कूलोंका बहिष्कार व्यर्थ हो जाता है, क्योंकि लगभग सभी नगरपालिकाएँ इन स्कूलोंको चलानेके लिए सरकारी राजस्वमें से सहायता माँगती हैं और अच्छी-बड़ी राशियाँ सहायताके रूपमें प्राप्त करती हैं। उनके कारण ही यह विसंगति उत्पन्न होती है कि कांग्रेसजन भारतीय विधान कानूनके अन्तर्गत नियुक्त किये गये मन्त्रियोंकी नीतिको कार्यान्वित करने और इस प्रकार मन्त्रियोंपर सरकारका नियन्त्रण लागू करनेके लिए विवश होते हैं। ऐसे अन्य भी बहुतसे काम हैं जिनसे केवल सहयोगकी ही गन्ध नहीं आती, बल्कि जो वर्तमान शासन-पद्धतिमें प्रत्यक्ष भाग लेनेके समान हैं।

(ख) "अवरोध" — यह शब्द ऐसा है जिसका बहुत अधिक दुरुपयोग और अनुचित प्रयोग हुआ है, किन्तु मैं मानता हूँ कि हमारे स्वराज्यवादियोंको पर्याप्त अभ्यास न होनेके कारण, इससे हिंसाकी गन्ध नहीं आती और वे यह भी नहीं समझ पाते कि दण्डविधि संशोधन अधिनियमके भंगमें और कांग्रेस द्वारा स्वीकृत विभिन्न तरहके धरनों और हड़तालोंमें हिंसाकी जो गन्ध आती है, स्वराज्यवादियोंके कार्यक्रममें हिंसाकी उससे तेज गन्ध आये, यह कैसे सम्भव है। मैं स्वयं सविनय अवज्ञाको अवरोधका

सबसे बड़ा रूप मानता हूँ। किन्तु हमें शब्दोंको अनुचित महत्त्व नहीं देना चाहिए और स्वराज्यवादियोंने वास्तवमें जो कार्य किया है उसीपर विचार करना चाहिए। उन्होंने मध्यप्रान्तमें कार्यक्रमपर पूरा अमल किया है। उन्होंने वहाँ क्या किया है अब हम उसपर विचार करें। उन्होंने सबसे पहले मन्त्रियोंके विरुद्ध अविश्वासका प्रस्ताव स्वीकार किया। यह वस्तुतः उस प्रणालीमें अविश्वास था जिसके अन्तर्गत मन्त्री नियुक्त किये गये हैं और यह बात प्रस्तावके समर्थनमें दिये गये भाषणोंमें बिलकुल स्पष्ट कर दी गई थी। अविश्वास प्रस्तावके बाद सरकारको मन्त्रियोंको बरखास्त करना था, किन्तु उसने ऐसा नहीं किया। उन्होंने उसके बाद मन्त्रियोंकी तनख्वाहें नामंजूर कर दीं; किन्तु वे फिर भी अपने पदोंपर बने रहे और अपनी विभागीय कार्रवाइयाँ करते रहे। ये सब कार्रवाइयाँ नामंजूर कर दी गईं, क्योंकि कौंसिलने अविश्वास प्रस्ताव और उनकी तनख्वाहें नामंजूर करनेके बाद मन्त्रियोंको मान्य करनेसे इनकार कर दिया था। इसके बाद बजट रखा गया। इसपर कौंसिलका कोई प्रभावकारी नियन्त्रण नहीं था, अतः वह साफ-साफ यह कारण देकर नामंजूर कर दिया गया कि जिस राजस्वको इकट्ठा करनेमें कौंसिलकी कोई राय नहीं ली जाती और जिसके खर्च किये जानेपर उसका कोई नियन्त्रण नहीं, कौंसिल उस राजस्वके खर्चमें भाग लेना नहीं चाहती। ऐसे ही कारणोंसे कुछ दूसरे विधेयक भी नामंजूर किये गये। वहाँ जो-कुछ हुआ है वह बस इतना ही है। मैं स्वराज्यवादियोंके इन कार्योंकी जाँच-पड़ताल उनके गुणावगुणके आधारपर करनेका आह्वान करता हूँ और यह पूछता हूँ कि क्या उच्चतम नैतिक और सदाचार सम्बन्धी आधारपर इनमें से किसी कार्यपर कोई आपत्ति की जा सकती है। ये कार्य ही विभिन्न दृष्टिकोणोंसे अवरोधके कार्य, ध्वंसके कार्य और तोड़-फोड़के कार्य कहे जा सकते हैं और कहे गये हैं। किन्तु केवल भाषापर जानेसे कुछ नहीं बनता। आपको तो तत्त्व या सार देखना चाहिए। मेरा दावा है कि मध्यप्रान्तमें जो-कुछ किया गया वह तत्त्वतः लोगोंकी इच्छाके प्रति उदासीन सरकारसे असहयोग था। यही बात कौंसिल और बंगाल विधान सभामें किये गये स्वराज्यवादियोंके कार्योंपर लागू होती है।

(ग) "रचनात्मक कार्यक्रम"। इस आपत्तिका क्या अर्थ है यह मैं नहीं समझ सका हूँ, किन्तु बादमें मुझे महात्माजीने बताया कि इसका अर्थ केवल इतना ही है कि कौंसिल-प्रवेशके प्रश्नमें जो समय और शक्ति लगी वह रचनात्मक कार्यक्रममें नहीं लग सकी। जहाँतक इस बातका सम्बन्ध है, यह केवल अपरिवर्तनवादियोंपर लागू होती है, क्योंकि स्वराज्यवादी तो कांग्रेसकी कार्यकारिणी समितियोंमें से लगभग निकाल ही दिये गये हैं और उनका रचनात्मक कार्यक्रमके विभिन्न भागोंसे सम्बन्धित संस्थाओं-पर कोई नियन्त्रण नहीं रहा है। यदि स्वराज्यवादी कौंसिलोंमें न जाते तो उनके सामने ये दो मार्ग रह जाते, या तो वे कार्यसे निवृत्त हो जाते या रचनात्मक कार्य करनेके लिए अपनी स्वतन्त्र संस्थाएँ बनाते; किन्तु इन दोनों ही कार्योंसे रचनात्मक कार्यमें कोई सहायता न मिलती।

(घ) "प्रवेश असामयिक है"। मेरा खयाल है कि यह आपत्ति मेरी समझमें पूरी तरह नहीं आई है। यदि इसका अर्थ यह हो कि हमें स्वराज्य मिलनेतक रुके

रहना था तब तो बात ही खत्म हो जाती है। यह कहा गया है कि "कौंसिलोंके वातावरणमें सत्य और अहिंसाको त्यागनेका लोभ सदा बना रहता है और वह लगभग दुर्दम्य होता है।" इस सम्बन्धमें मैं केवल इतना ही कह सकता हूँ कि मुझे कौंसिलोंके वातावरणमें और बाहरके वातावरणमें कोई अन्तर नहीं दिखाई दिया है। कौंसिलोंमें प्रवेशसे अनुशासनपर पड़नेवाला भार निश्चय ही सविनय अवज्ञाकी लम्बी प्रतीक्षाके भारसे कम होगा।

(ङ) "खिलाफत और पंजाबके कारण"। ये कारण अब लगभग समाप्त हो चुके हैं, इस बातको छोड़ दें तो भी मेरी समझमें यह नहीं आता कि इन प्रश्नों और कौंसिल-प्रवेशके प्रश्नमें क्या विशेष सम्बन्ध है।

महात्माजीने कौंसिलोंमें कांग्रेसजनोंके प्रवेशके विरुद्ध ऊपर दिये हुए मुख्य कारण बताये हैं। मुख्य कारणोंके बाद अपने सामान्य वक्तव्यमें उन्होंने प्रसंगवश कुछ दूसरे मुद्दे भी बताये हैं। महात्माजीने स्वीकार किया है कि स्वराज्यवादियोंकी बहुत अच्छी जीत हुई है; किन्तु उसके बाद कहा है कि स्वराज्यवादियोंने जो-कुछ किया है वह तो "असहयोगसे पहले" भी किया जा सकता था, और हम "एक गांधीको ही नहीं, बल्कि कई हसरत मोहानियों और पंजाबके समस्त कैदियोंको" "न्यायपूर्ण आन्दोलन करके" रिहा करा सकते थे और "खद्दरका जो प्रदर्शन किया जा सका है या कौंसिलोंमें इतने नरमदलियोंका प्रवेश रोका जा सका है वह भी कोई बड़ी बात नहीं है।" "सरकारी तन्त्र तो नरमदलियोंके सहयोगसे या उसके बिना भी और अवरोध किये जानेपर भी अबाध रूपसे चल रहा है।" इस प्रकारके तर्क महात्माजीके अनुरूप नहीं हैं। स्वराज्यवादियोंने महात्माजीकी रिहाईका या खादीके प्रदर्शनका श्रेय कभी नहीं लिया है; किन्तु उन्होंने नरमदलियोंको अवश्य ही कौंसिलोंमें जानेसे रोका है। यह कार्य महात्माजीके कार्यक्रमके अन्तर्गत कौंसिलोंके बहिष्कारसे सम्पन्न नहीं किया जा सकता था। मैं मानता हूँ कि सरकारका असली तन्त्र अबाध रूपसे चल रहा है। किन्तु हमारा कहना यह है कि हमने इस तन्त्रमें से नकली और दिखावटी पुर्जोंको निकाल लिया है और उसका नंगा रूप संसारके सामने रख दिया है। यदि ३०,००० कार्यकर्त्ताओंको केवल यह साबित करनेके लिए जेल भेजना ठीक था कि युवराजका आगमन असन्तुष्ट लोगोंपर जबरदस्ती लादा गया है तो लोक प्रतिनिधियोंके नामसे सरकार जिस धोखेको कायम रख रही है उसकी कलई खोलना भी निश्चय ही कुछ कम महत्त्वका काम नहीं था।

सबसे अधिक क्रूर प्रहार इस वाक्यमें किया गया है, "यह आशा नहीं करनी चाहिए कि स्वराज्यवादियोंका समाधान किसी तर्कसे किया जा सकता है।" मैं तो इतना ही कह सकता हूँ कि स्वराज्यवादी अत्यन्त नम्रतापूर्वक अपने लिए स्वयं निर्णय करनेका अधिकार माँगते हैं और अभीतक कोई ऐसी बात नहीं कही गई है जिससे उनका समाधान हो सके।

महात्माजीने इसके बाद ऐसी एक-दो बातें और कही हैं जिनका उल्लेख करना आवश्यक है। उन्होंने कहा है, "मैं तो कौंसिलोंमें तभी जाना चाहता हूँ जब मुझे यह विश्वास हो सके कि मैं उनका उपयोग देशकी उन्नतिके लिए कर सकूंगा। इसलिए

यह आवश्यक है कि इस तन्त्रमें और वह जिनके नियन्त्रणमें है उन लोगोंमें मेरा विश्वास हो। यह नहीं हो सकता कि मैं इस तन्त्रका पुर्जा बना रहूँ और उसको नष्ट भी करना चाहूँ।" मेरा निवेदन है कि इस तर्कमें वैसी ही कमजोरी है जैसी उपमाओं और रूपकोंका सहारा लेकर दिये गये सब तर्कोंमें होती है। मेरी समझमें नहीं आता कि यह तन्त्र जिन लोगोंके नियन्त्रणमें है उनमें विश्वास होना क्यों आवश्यक है, जब कि दूसरे लोग इस तन्त्रको उनकी अपेक्षा अधिक अच्छी तरह चला सकते हैं। मेरा खयाल तो यह है कि अच्छेसे-अच्छा और निर्दोष तन्त्र भी इतनी बुरी तरहसे चलाया जा सकता है कि चलानेवालोंको तुरन्त हटानेकी जरूरत पड़ जाये। यदि एक कमजोर पुराने तन्त्रको ऐसे चालकोंके हाथसे ले लिया जाये जो खराबी करनेपर तुले हुए हों और जरूरी मरम्मतके बाद उन लोगोंके फायदेके लिए चलाया जाये जिनके फायदेके लिए वह है तो इससे कोई हानि नहीं हो सकती। हम इस तन्त्रको नष्ट करनेके लिए उसके पुर्जे नहीं बने। इसके कुछ बाहरसे मँगाये हुए पुर्जे ऐसे हैं जो माल बनाते वक्त मालको बरबाद कर देते हैं। हम फिलहाल इन्हीं पुर्जोंको इस तन्त्रमें से निकाल रहे हैं और उनकी जगह खुद ले रहे हैं। हम आशा करते हैं कि हम अन्तमें एक नया और पूर्णतः स्वदेशी तन्त्र खड़ा कर लेंगे जिसे लोग अपने लाभके लिए स्वयं चलायेंगे।

अब मैं मसविदेके उस हिस्सेपर आता हूँ जिसमें महात्माजीने कौंसिल-प्रवेशको अन्तिम तथ्य मानकर इस प्रश्नका उत्तर दिया है; "अब क्या किया जाना चाहिए?" जैसा कि अपेक्षित था, उन्होंने इसका उत्तर केवल वही दिया है जो कांग्रेसके दिल्ली और कोकोनाडा अधिवेशनोंमें स्वीकृत प्रस्तावोंके अन्तर्गत दिया जा सकता है। किन्तु मेरा खयाल है कि उन प्रस्तावोंकी कोरी व्याख्या पर्याप्त नहीं है, उससे कुछ अधिक करना आवश्यक है। सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण विचारणीय प्रश्न यह है कि कांग्रेसके साधारण आन्दोलनमें स्वराज्यवादियोंकी स्थिति क्या होगी। क्या वह कुछ-कुछ ऐसी ही होगी जैसी महात्माजीने वकालत करनेवाले उन वकीलोंके लिए निश्चित की है, जिसकी तुलना उन्होंने जूते गाँठनेवाले चमारोंसे की है और जिनको कांग्रेसकी बातचीतमें सक्रिय भाग लेने और कार्यकारिणी समितियोंके सदस्य बननेसे रोक दिया है। यदि योजना ऐसी हो तो स्वराज्यवादियोंको महात्माजीके सम्मानजनक नेतृत्वसे अलग ही होना पड़ेगा और या सार्वजनिक जीवनसे अवकाश ग्रहण करना पड़ेगा या अपने लिए सेवाका कोई "नया ही मार्ग और नया ही साधन" ढूँढ़ना पड़ेगा। किन्तु यदि योजना ऐसी न हो तो मैं मानता हूँ कि एक संयुक्त उद्देश्यके लिए मिलकर काम करना अब भी सम्भव है। इस सम्बन्धमें मेरे खयालमें कुछ प्रस्ताव आये हैं और मुझे वे जिस क्रममें उपयुक्त लगे हैं, मैं उन्हें यहाँ उसी क्रममें देता हूँ।

१. कांग्रेस कौंसिलोंमें काम करनेका एक नया कार्यक्रम बनाये जिसका उद्देश्य "रचनात्मक कार्य" और "असहयोग" की दिशामें किये जानेवाले कांग्रेसके बाहरी कार्योंमें सहायता देना हो। इस प्रकार बनाया गया कार्यक्रम देशके लिए नये निर्देशके समान होगा और सभी स्वराज्यवादी उसपर अमल करनेके लिए और सभी कांग्रेसी उसका समर्थन करनेके लिए बाध्य होंगे। उस अवस्थामें स्वराज्यवादियों और अस्व-

राज्यवादियों अथवा परिवर्तनवादियों और अपरिवर्तनवादियोंके बीचके सब भेद मिट जायेंगे, किन्तु यद्यपि सब लोग मिलकर काम करेंगे फिर भी सामान्यतः वे कांग्रेसी ही कौंसिलोंमें जायेंगे जिन्हें वहाँ जानेमें कोई आपत्ति न होगी। कौंसिल-सम्बन्धी प्रचारके लिए आवश्यक रुपये कांग्रेस कार्यसमिति मंजूर करेगी और अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी उसपर नियन्त्रण रखेगी। यह व्यवस्था कांग्रेसके अन्य कार्योंकी तरह ही की जायेगी और उसमें कांग्रेसके खर्चकी दूसरी मदोंके महत्त्वको ध्यानमें रखा जायेगा। तिलक स्वराज्य-कोषमें धन देनेवाले लोग चाहेंगे तो अपना रुपया कौंसिलोंके कार्यके लिए अलग निर्धारित कर सकेंगे।

२. कांग्रेस कौंसिल-विभाग नामका एक अलग विभाग खोले और उसे स्वराज्य-वादियोंके अधिकार और नियन्त्रणमें रखे। स्वराज्यवादी कौंसिलोंसे बाहरकी कांग्रेसकी साधारण प्रवृत्तियोंमें भाग लेंगे और जिस तरह कांग्रेस चाहेगी उस तरह कौंसिलोंमें जाकर इन प्रवृत्तियोंमें सहायता देंगे। इस अवस्थामें भी सामान्य कार्यकारिणी परिषदोंमें कुछ स्वराज्यवादी रहेंगे; किन्तु उनको तिलक स्वराज्य-कोषमें से कोई ऐसी आर्थिक सहायता नहीं दी जायेगी जो कौंसिलोंके लिए निर्धारित न की गई हो। पहले और दूसरे प्रस्तावमें अन्तर यह है कि पहले प्रस्तावके अनुसार कांग्रेस कौंसिलोंका पूरा कार्यक्रम तय करेगी, किन्तु दूसरे प्रस्तावके अनुसार वह स्वराज्यवादियोंसे अनुरोध करेगी कि वे ऐसे कोई खास कदम उठायें जिनका उल्लेख महात्माजीने अपने मस-विदेके अन्तमें किया है, अर्थात् वे खादीके प्रचार और शराबसे होनेवाले राजस्वकी बन्दीके सम्बन्धमें कार्रवाई करें।

३. दिल्ली और कोकोनाडा अधिवेशनोंके प्रस्तावोंके अनुसार जैसे इस समय कार्य चल रहा है वैसे ही चलता रहे और स्वराज्यवादियोंपर कोई निर्योग्यता न लग जाये। इस अवस्था स्वराज्यवादी अपनी नीति स्वयं बनायेंगे और उसको कार्यरूप देंगे। वे इस सम्बन्धमें कांग्रेसका निर्देशन लेंगे। वे अपने लिए रुपया भी इकट्ठा करेंगे। कांग्रेस उनके कार्यमें किसी भी तरहका हस्तक्षेप न करेगी। स्वराज्य-वादी दल कांग्रेसके रचनात्मक कार्यको अमलमें लानेके लिए यथाशक्ति पूरा प्रयत्न करेगा और कांग्रेस उनके कार्यमें सहायता और सहयोग देगी।

टाइप की हुई अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ८७१६) की फोटो-नकलसे।

(ख) सी० आर० दासके पत्रका अंश

कलकत्ता
१८ अप्रैल, १९२४

मोतीलालने मुझे एक मसविदा भेजा है जिसमें आपके कौंसिल-प्रवेश सम्बन्धी विचार हैं। मुझे इसमें आपके उठाये गये दो-एक मुद्दोंपर आपसे चर्चा करनेकी बहुत उत्कण्ठा है। यदि असहयोगका अर्थ बहुत ही शाब्दिक किया जाये तो हो सकता है कि असहयोगके सवालपर आपके विचार ठीक हों। लेकिन अहिंसाके प्रश्नपर मैं आपसे सहमत नहीं हूँ। मैं सिद्धान्त रूपमें अहिंसामें विश्वास रखता हूँ और यह बहुत ही दु:खजनक है कि डाक्टर मुझे आपके पास आने और इस पूरे मामलेपर आपसे चर्चा करनेकी इजाजत नहीं देंगे। मैं बड़ी कठिनाईसे यह पत्र लिखवा रहा हूँ। यदि आप अपने विचार तबतक प्रकाशित न करें जबतक मैं आपसे मिलने लायक न हो जाऊँ तो क्या आपको कुछ अधिक असुविधा होगी? हो सकता है कि आपको मेरी बात कुछ बेजा जँचे, किन्तु मुझे लगता है कि यदि दिल्लीका समझौता अचानक उलट-पुलट जाये तो फिर सारा देश सैद्धान्तिक चर्चामें लग जायेगा, जिससे बड़े काममें बहुत अधिक बाधा पड़ जायेगी। मुझे यहाँ इलाजके लिए २३ तारीखतक रहना है और उसके बाद दार्जीलिंग जाने और वहाँ कमसे-कम एक महीना रहनेका विचार है।

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ८७४०) की फोटो-नकलसे।

सामग्रीके साधन-सूत्र

गांधी स्मारक संग्रहालय, नई दिल्ली: गांधी साहित्य और सम्बन्धित कागजातका केन्द्रीय संग्रहालय तथा पुस्तकालय। देखिए खण्ड १, पृष्ठ ३५९।

राष्ट्रीय अभिलेखागार (नेशनल ऑर्काइव्ज ऑफ इंडिया), नई दिल्लीमें सुरक्षित कागजात।

साबरमती संग्रहालय : पुस्तकालय तथा आलेख संग्रहालय : जिसमें गांधीजीके दक्षिण आफ्रिकी काल तथा १९३३ तकके भारतीय कालसे सम्बन्धित कागजात रखे हैं; देखिए खण्ड १, पृष्ठ ३६०।

'अमृतबाजार पत्रिका' : कलकत्तासे प्रकाशित अंग्रेजी दैनिक।

'गुजराती' : बम्बईसे प्रकाशित गुजराती साप्ताहिक।

'टाइम्स ऑफ इंडिया' बम्बईसे प्रकाशित अंग्रेजी दैनिक।

'नवजीवन' (१९१९-१९३१) : गांधीजी द्वारा सम्पादित और अहमदाबादसे प्रकाशित गुजराती साप्ताहिक।

'बॉम्बे क्रॉनिकल' : बम्बईसे प्रकाशित अंग्रेजी दैनिक।

'यंग इंडिया' : (१९१९-१९३२) : अहमदाबादसे प्रकाशित अंग्रेजी साप्ताहिक। सम्पादक, मो० क० गांधी; प्रकाशक, मोहनलाल मगनलाल भट्ट।

'सर्चलाइट' : पटनासे प्रकाशित अंग्रेजी दैनिक।

'हिन्दी नवजीवन' (१९२१-१९३२) : गांधीजी द्वारा सम्पादित और अहमदाबाद से प्रकाशित हिन्दी साप्ताहिक।

'हिन्दू' : मद्राससे प्रकाशित अंग्रेजी दैनिक।

बॉम्बे सीक्रेट एक्स्ट्रैक्ट्स।

'ट्रायल ऑफ गांधीजी' (अंग्रेजी) : रजिस्ट्रार, गुजरात उच्च न्यायालय, अहमदाबाद, १९६५।

'ड्रिंक ऐंड ड्रग ईविल इन इंडिया' (अंग्रेजी) : बदरुल हसन।

'बालपोथी' (गुजराती) : मो० क० गांधी, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद, १९५१।

'बापुना पत्रो — ४ : मणिबहेन पटेलने' (गुजराती) : मणिबहेन पटेल द्वारा सम्पादित; नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद, १९५७।

'बापुनी प्रसादी' (गुजराती) : मथुरादास त्रिकमजी; नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद, १९४८।

'माई डियर चाइल्ड' (अंग्रेजी) : एलिस एम० बार्न्ज द्वारा सम्पादित; नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद, १९५६।

'श्रेयार्थिनी भावना' (गुजराती) : नरहरि परीख; नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद, १९५३।

'सेवेन मन्थस विद महात्मा गांधी' (अंग्रेजी); कृष्णदास; रिचर्ड बी० ग्रेग द्वारा सम्पादित; संक्षिप्त संस्करण, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद, १९५१।

'स्टोरी आफ माई लाइफ', खण्ड २, (अंग्रेजी) : मु० रा० जयकर; एशिया पब्लिशिंग हाउस, बम्बई, १९५९।

'स्पीचेज ऐंड राइटिंग्स ऑफ एम० के० गांधी' (अंग्रेजी) : जी० ए० नटेसन ऐंड कम्पनी, मद्रास।

तारीखवार जीवन-वृत्तान्त

(४ मार्च, १९२२ से ७ मई, १९२४ तक)

४ मार्च : गांधीजी अहमदाबाद पहुँचे।

५ मार्च : दोपहर बाद गुजरात प्रान्तीय कांग्रेस कमेटीकी सभामें गये, जिसकी अध्यक्षता वल्लभभाई पटेलने की।

८ मार्च : शामकी गाड़ीसे अहमदाबादसे अजमेरको रवाना।

९ मार्च : अजमेरमें उलेमाओंकी सभामें गये।

अजमेरसे अहमदाबादको रवाना।

सार्वजनिक सभाओंमें भाषण देनेपर लगे प्रतिबन्धका उल्लंघन करनेके लिए लाला लाजपतरायको एक वर्षका कठोर कारावास।

भारत मन्त्री, मॉन्टेग्युका इस्तीफा स्वीकृत।

१० मार्च : दोपहर बाद अहमदाबाद पहुँचे। शामके १० बजे गिरफ्तार कर साबरमती जेल ले जाया गया।

११ मार्च : 'यंग इंडिया' के लेखों द्वारा जनतामें सरकारके प्रति असन्तोषकी भावना भड़कानेके आरोपमें गांधीजीको सहायक न्यायाधीशके सामने पेश किया गया। विदा होते समय आश्रमवासियोंसे सभी समुदायोंमें शान्ति और सद्भावनाका प्रचार करनेमें ही पूरी शक्ति लगानेको कहा। देशके नाम सन्देश देते हुए उन्होंने कहा कि मेरा एक ही सन्देश है और वह है—खद्दर।

१८ मार्चके पूर्व : इंग्लैंडके प्रधानमन्त्री लॉयड जॉर्जने कॉमन सभामें कहा कि ब्रिटिश प्रभुसत्ताको हमें बनाये रखना है और ब्रिटिश नीतिका ध्येय, जैसा कि १९१९ के भारत सरकारके अधिनियमकी भूमिकामें कहा गया है, भारतमें एक उत्तरदायी सरकार स्थापित करना है न कि उसे एक उपनिवेशका दर्जा देना।

१८ मार्च : जेलमें असहयोग आन्दोलनके बारेमें 'मैनचेस्टर गार्जियन' के प्रतिनिधिसे भेंट। शाहीबागके सर्किट हाउसमें सेशन इजलासने गांधीजीको ६ वर्ष तथा शंकरलाल बैंकरको एक वर्ष कैदकी सजा दी।

२० मार्च : आधी रातके समय गांधीजी स्पेशल ट्रेनसे साबरमती जेलसे यरवदा जेल ले जाये गये।

२१ मार्च : शामके साढ़े पाँच बजे यरवदा जेल पहुँचे।

२२ मार्च : यरवदा जेलमें चरखा न लाने देनेपर अनशन। शामको चरखा दे दिया गया।

२३ मार्च : जुएब कुरैशीने 'यंग इंडिया' का सम्पादन-भार सँभाला।

१ अप्रैल : च० राजगोपालाचारीसे भेंट।

२२ अप्रैल : गंगाधरराव देशपाण्डेसे बातचीत।

६ मई : सरकारने गांधीजीको सूचना दी कि उनका हकीम अजमलखाँके नाम लिखा पत्र नहीं भेजा जा सकता।

१२ मई : हकीम अजमलखाँको लिखा कि आपके नाम लिखे पत्रको ज्योंका-त्यों न भेजनेके सरकारी फैसलेके कारण मैं अपना तिमाही पत्र नहीं लिखूंगा।

१ जून : च० राजगोपालाचारीने 'यंग इंडिया' का सम्पादन-भार सँभाला।

१ जुलाई : मगनलाल गांधीसे भेंट।

२ जुलाई : कस्तूरबा, मणिलाल, देवदास तथा मथुरादास त्रिकमजी गांधीजीसे मिलने आये।

१३ सितम्बर : एक सप्ताहका मौन शुरू किया।

२० सितम्बर : एक सप्ताहके लिए पुनः मौन आरम्भ किया।

४ अक्तूबर : कस्तूरबा, जमनालाल, रामदास, पुंजाभाई तथा किशोरलाल गांधीजीसे मिलने आये।

११ नवम्बर : कलकत्तामें अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीने सविनय अवज्ञा प्रस्ताव पास किया।

१९२३

२७ जनवरी : कस्तूरबा गांधीजीसे मिलने आईं।

१० फरवरी : यरवदा जेलमें मूलशीपेटाके सत्याग्रहियोंको काम करनेसे मना करनेपर कोड़े लगाये गये।

गांधीजीने जेलके सुपरिन्टेन्डेन्टसे मूलशीपेटाके कैदियोंसे मिलनेकी अनुमति माँगी।

१६ अप्रैल : देवदास गांधीजीसे मिलने आये।

१७ अप्रैल : शंकरलाल बैंकरको रिहा कर दिया गया।

२१ अप्रैल : गांधीजीके पेटमें जोरका दर्द हुआ।

१ मई : जेल-सुपरिन्टेन्डेन्टको पत्र लिखा कि जबतक दूसरे कैदियोंको विशेष वर्गसे वंचित रखा जायेगा, मैं भी उसमें रहना पसन्द नहीं करूँगा।

५ मई : मुख्य चिकित्सक कर्नल मैडॉकने गांधीजीके स्वास्थ्यकी जाँच की।

१५ मई : कर्नल मैडॉकने पुनः गांधीजीके स्वास्थ्यकी जाँच की।

इन्दुलाल याज्ञिक मिलने आये।

१८ मई : गांधीजीको यूरोपीयोंके वार्डमें ले जाया गया। कस्तूरबा तथा अन्य लोग उनसे मिलने आये।

२७ जून : मूलशीपेटाके सत्याग्रहियोंने अनशन आरम्भ किया।

२९ जून : मूलशीपेटाके कैदियोंको पुनः कोड़े लगाये जानेपर गांधीजीने जेल-सुपरिन्टें-डेन्टसे उनसे मिलनेकी अनुमति माँगी तथा कर्नल डेलजीलसे इस विषयपर बातचीत की।

२ जुलाई : रातको अत्यधिक शारीरिक कष्ट रहा।

९ जुलाई : मूलशीपेटाके सत्याग्रहियोंसे भेंट करनेकी अनुमति न देनेपर जेल-सुपरिन्टें-डेन्टको अपने अनशन करनेके निश्चयके बारेमें पत्र लिखा।

१० जुलाई: सुपरिन्टेन्डेन्टकी प्रार्थनापर ४८ घंटेके लिए अनशन स्थगित करनेके लिए मान गये।

११ जुलाई: ग्रिफिथने गवर्नरका सन्देश दिया।

१२ जुलाई: ग्रिफिथने उनको सूचित किया कि वे मूलशीपेटाके सत्याग्रहियोंसे मिल सकते हैं और कैदियोंको कोड़े तभी लगाये जायेंगे जब वे जेल-अधिकारियोंपर आक्रमण करेंगे। सत्याग्रहियोंसे अनशन स्थगित करनेका आग्रह किया।

१३ जुलाई: गवर्नर सर जॉर्ज लॉयडसे कैदियोंके वर्गीकरणपर बातचीत की।

१६ जुलाई: कस्तूरबा तथा अन्य लोग गांधीजीसे मिलने आये।

१० सितम्बर: देवदास, नारणदास तथा अन्य लोगोंने गांधीजीसे भेंट की।

१० अक्तूबर: कस्तूरबा, अवन्तिकाबाई, जमनालाल तथा सवटीबाई मिलने आये।

२६ नवम्बर: "दक्षिण आफ्रिकाके सत्याग्रहका इतिहास" गुजरातीमें लिखना आरम्भ किया।

१७ दिसम्बर: कस्तूरबा, मथुरादास तथा रामदास मिलने आये।

१८ दिसम्बर: रमाबाई रानडे गांधीजीसे मिलने आईं।

१९२४

२ जनवरी: भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसका कोकोनाडा अधिवेशन समाप्त हुआ।

५ जनवरी: चित्तरंजन दास बंगाल विधान परिषद्के सदस्य निर्वाचित हुए।

८ जनवरी: गांधीजीके पेटमें जोरका दर्द हुआ और रात बड़ी बेचैनीसे बीती।

१२ जनवरी: सैसून अस्पतालमें श्रीनिवास शास्त्री मिलने आये। कर्नल मैडॉकने अपेन्डिक्सका आपरेशन किया।

१४ जनवरी: गांधीजीने स्वास्थ्य बिगड़नेपर देशवासियोंको उत्कट प्रेम प्रदर्शनके लिए डा० फाटक द्वारा धन्यवादका सन्देश भेजा।

१९ जनवरी: 'बॉम्बे क्रॉनिकल' के प्रतिनिधिसे भेंट।

२ फरवरी: दिलीपकुमार रायसे हुई भेंटमें संगीतके बारेमें विचार व्यक्त किये।

४ फरवरी: बिना शर्त गांधीजीकी रिहाईका आदेश जारी किया गया।

५ फरवरीके पूर्व: 'युग धर्म' के प्रतिनिधिसे हुई भेंटमें गांधीजीने आत्मकथा लिखनेका अपना विचार प्रकट किया।

५ फरवरी: प्रातः ८ बजे रिहाईकी सूचना दी गई, किन्तु सैसून अस्पतालमें ही रहे।

५ फरवरीके पश्चात्: स्वराज्यके सम्बन्धमें ड्रू पियर्सनके प्रश्नोंके उत्तर देवदासको दिये।

६ फरवरी या उसके पूर्व: गुजरात विद्यापीठको भेजे सन्देशमें कहा कि मेरी जेलसे मुक्ति प्रसन्नताका विषय नहीं है, बल्कि वस्तुतः उससे और भी अधिक विनम्र बनना चाहिए।

७ फरवरीके पूर्व। 'बॉम्बे क्रॉनिकल' के प्रतिनिधिसे हुई भेंटमें गांधीजीने कहा कि मुझे यह जानकर दुःख हुआ कि मुझे रिहा करनेके निश्चयका आधार मेरा दुर्बल स्वास्थ्य माना गया।

७ फरवरी : गांधीजीने कांग्रेस अध्यक्ष द्वारा राष्ट्रको सन्देश दिया कि वे अपनी रिहाईसे खुश नहीं हैं।

१२ फरवरी : मुहम्मद याकूवसे प्रार्थनाकी कि आप असेम्वलीमें मुझे नोवल शान्ति पुरस्कार देनेकी सिफारिशका प्रस्ताव प्रस्तुत न करें।

१४ फरवरी : वर्ग क्षेत्र विधेयक (क्लास एरिया विल) पर वक्तव्य दिया।

२५ फरवरी : जैतोंमें सिखोंके जलूसपर गोली चलाये जानेपर वक्तव्य दिया।

२८ फरवरी : सिन्धके प्रतिनिधि मण्डलसे मिले। मण्डलमें जयरामदास दौलतराम, काजी अब्दुल रहमान, सेठ ईश्वरदास तथा आर० के० सिधवा शामिल थे।

१ मार्च : हॉर्निमैनको भारतमें वापस आनेके लिए पारपत्र देनेसे इनकार करनेके विरोधमें की गई पूनाके नागरिकोंकी सभाको सन्देश भेजा।

४ मार्च : अकाली आन्दोलनके सम्बन्धमें वक्तव्य।

७ मार्च या उसके पूर्व : दिल्ली प्रान्तीय राजनीतिक सम्मेलनको भेजे अपने सन्देशमें गांधीजीने हिन्दू-मुस्लिम एकताको प्रोत्साहन देनेका अनुरोध किया।

९ मार्च : अकाली शिष्टमण्डलसे हुई वातचीतके वारेमें एसोसिएटेड प्रेसके प्रतिनिधिसे भेंट।

१० मार्च : पूनाके वी० जे० मेडीकल स्कूलके छात्रोंके सम्मुख विदाई भाषण। स्वस्थ होनेपर ससून अस्पताल छोड़ा और रातमें ट्रेनसे वम्बईके लिए रवाना हुए।

११ मार्च : वम्बई पहुँचे। जुहूमें नरोत्तम मोरारजीके निवास-स्थानपर स्वास्थ्य-लाभके लिए ठहरे।

१५ मार्च : हरिजनोंके मन्दिर-प्रवेशके सम्बन्धमें पोट्टी श्रीरामुलुके अनशनपर वक्तव्य।

१७ मार्च : हर सोमवारको मौनव्रत रखना आरम्भ किया।

१९ मार्च : वाइकोम सत्याग्रहियोंको सन्देश।

२० मार्च : अफीम सम्वन्धी नीतिपर वक्तव्य।

२१ मार्च : वम्वई राष्ट्रीय शालाके अध्यापकों तथा विद्यार्थियोंके समक्ष भाषण।

२३ मार्च : वर्ग क्षेत्र विधेयक (क्लास एरिया विल) पर दूसरा वक्तव्य।

२९ मार्च : मदनमोहन मालवीय, लाजपतराय तथा मोतीलाल नेहरूसे अपरिवर्तनवादी एवं स्वराज्यवादियोंके वारेमें विचार-विमर्श।

३० मार्चके पूर्व : जुहूके पास विलेपार्लेमें राष्ट्रीय शालाके अध्यापकों, प्रवन्ध समितिके सदस्यों और छात्रोंके संरक्षकोंकी सभामें भाषण।

२ अप्रैल : 'दक्षिण आफ्रिकाके सत्याग्रहका इतिहास' की भूमिका लिखी।

३ अप्रैल : गांधीजीने 'यंग इंडिया' का सम्पादन-भार सँभाला। डा० किचलूसे भेंट की।

४ अप्रैल : मदनमोहन मालवीय, मोतीलाल नेहरू तथा हकीम अजमलखाँसे हिन्दू-मुस्लिम एकतापर वातचीत।

६ अप्रैल : 'नवजीवन' का सम्पादन-भार सँभाला। वर्ग क्षेत्र विधेयक (क्लास एरिया बिल) पर तीसरा वक्तव्य।

११ अप्रैल : कौंसिल-प्रवेशसे सम्बन्धित वक्तव्यका पहला मसविदा तैयार किया।

१३ अप्रैल : मोतीलाल नेहरूको कौंसिल-प्रवेशसे सम्बन्धित वक्तव्यके पहले मसविदेकी प्रति भेजी।

१६ अप्रैल : गांधीजीने 'हिन्दू' के प्रतिनिधिसे हुई भेंटमें वाइकोम सत्याग्रहके बारेमें अपने विचार व्यक्त किये।

२३ अप्रैल : कार्य-समितिकी बैठकमें गये।
श्रीनिवास शास्त्री गांधीजीसे मिलने आये।

२४ अप्रैल : 'डेली एक्सप्रेस' के प्रतिनिधिसे हुई भेंटमें स्वराज्यपर विचार व्यक्त किये।

१ मई : भूखसे ग्रस्त मोपलोंकी मददके लिए हिन्दुओंसे अपील।

४ मईके पूर्व : काठियावाड़ राजनीतिक परिषद्के सम्बन्धमें वक्तव्य।

शीर्षक-सांकेतिका

विविध

सांकेतिका

आ

इ

ई

उ

ए

ओ

औ

क

घ

च

ठ

ड

ढ

त

द

ध

न

प

फ

ब

भ

य